॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कल्याण

श्रीरामभक्ति-अङ्क

[जनवरी सन् १९९४ ई०]

वर्ष ६८ संख्या १

कल्याण-कार्यालय, पो० गीताप्रेस
गोरखपुर—२७३००५

कल्याण

'जन्मभूमि मम पुरी सुहावनि'

श्रीरामभक्ति-अङ्क

संख्य
१
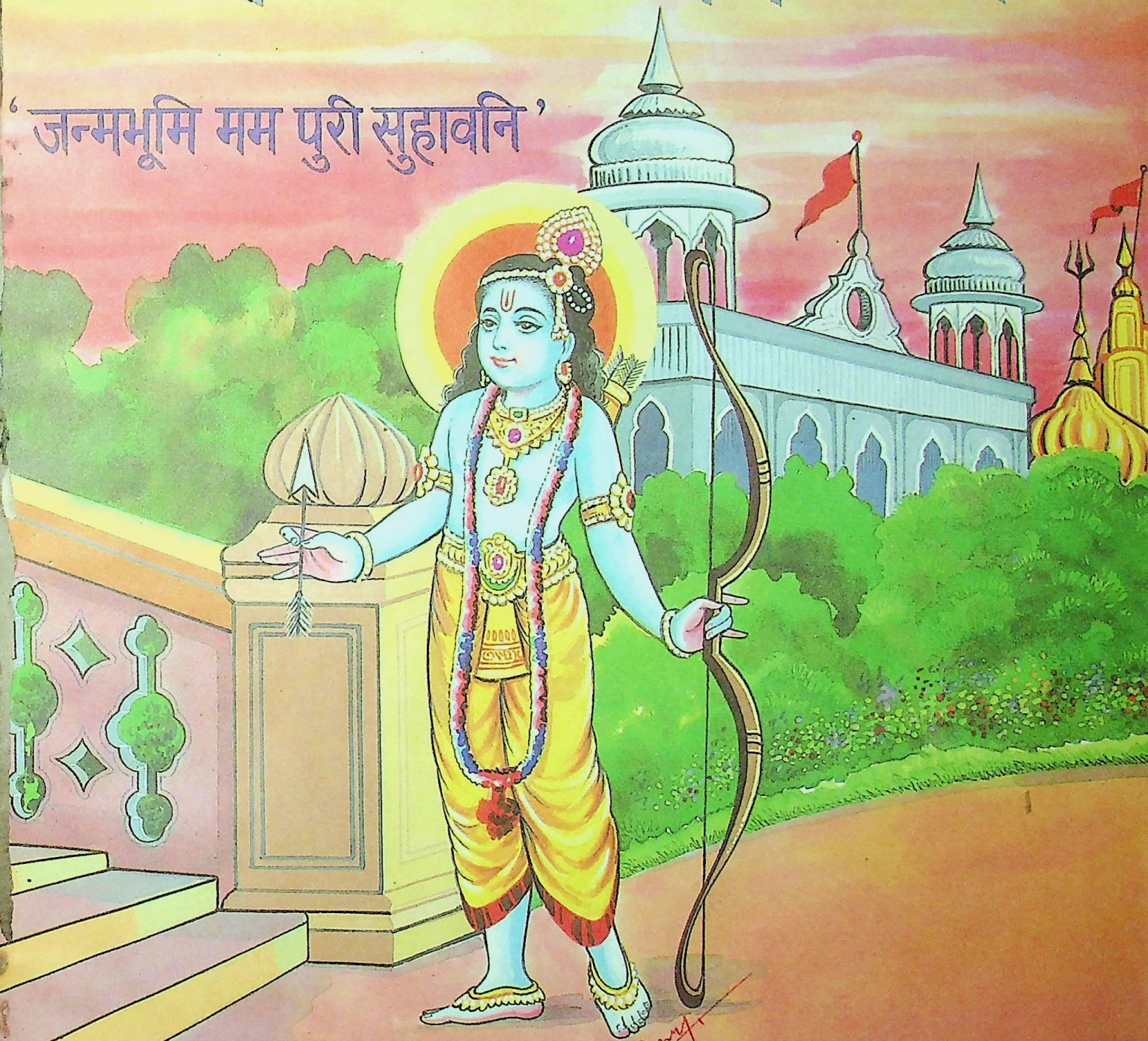
दुर्गति-नाशिनि दुर्गा जय-जय, काल-विनाशिनि काली जय जय।
उमा-रमा-ब्रह्माणी जय जय, राधा-सीता-रुक्मिणि जय जय॥
साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, साम्ब सदाशिव, जय शंकर।
हर हर शंकर दुखहर सुखकर अघ-तम-हर हर हर शंकर॥
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥
जय-जय दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥
जयति शिवाशिव जानकिराम। गौरीशंकर सीताराम॥
जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम॥

(संस्करण २,०५,०००)

भक्तकी भावना

रघुवर तव मूर्तिर्मामके मानसाब्जे
नरकगतिहरं ते नामधेयं मुखे मे।
अनिशमतुलभक्त्या मस्तकं त्वत्पदाब्जे
भवजलनिधिमग्नं रक्ष मामार्तबन्धो॥

(भगवद्भक्त भगवान्से प्रार्थना करते हुए कहता है—) हे दीनबन्धु रघुश्रेष्ठ ! आपकी मनोहर मूर्ति मेरे हृदयकमलमें निरन्तर विराजमान रहे, नरकगतिका निवारण करनेवाला आपका मङ्गलमय मधुर नाम मेरे मुखमें सदा स्थिर रहे, मेरा मस्तक अहर्निश अनुपम भक्तिभावसे आपके चरणकमलोंमें अवनत रहे। प्रभो ! मैं भवसागरमें डूबा हुआ हूँ, आप कृपापूर्वक मेरा उद्धार कर दीजिये।

इस अङ्कका मूल्य ६५ रु०
वार्षिक शुल्क (भारतमें)
डाक-व्ययसहित ६५ रु०
(सजिल्द ७० रु०)
विदेशमें—US$10

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

पंद्रह वर्षीय शुल्क
डाक-व्ययसहित
(भारतमें) ५०० रु०
(सजिल्द ६०० रु०)

संस्थापक—ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका
आदिसम्पादक—नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार
सम्पादक—राधेश्याम खेमका
केशोराम अग्रवालद्वारा गोविन्दभवन-कार्यालयके लिये गीताप्रेस, गोरखपुरसे मुद्रित तथा प्रकाशित

'कल्याण'के सम्मान्य ग्राहकों और प्रेमी पाठकोंसे नम्र निवेदन

१-'कल्याण'के ६८वें वर्ष सन् १९९४ का यह विशेषाङ्क 'श्रीरामभक्ति-अङ्क' आप लोगोंकी सेवामें प्रस्तुत है। इसमें ४०८ पृष्ठोंमें पाठ्यसामग्री और ८ पृष्ठोंमें विषय-सूची आदि है। कई बहुरंगे तथा सादे चित्र भी दिये गये हैं।

२-जिन ग्राहकोंसे शुल्क-राशि अग्रिम मनीआर्डरद्वारा प्राप्त हो चुकी है, उन्हें विशेषाङ्क फरवरी अङ्कके सहित रजिस्ट्री-द्वारा भेजा जा रहा है तथा जिनसे शुल्क-राशि यथासमय प्राप्त नहीं होगी, उन्हें ग्राहक-संख्याके क्रमानुसार वी॰ पी॰ पी॰ द्वारा भेजा जायगा। रजिस्ट्रीकी अपेक्षा वी॰ पी॰ पी॰ के द्वारा विशेषाङ्क भेजनेमें डाक-खर्चके ५.०० (पाँच रुपये) अधिक लगते हैं, अतः वार्षिक शुल्क-राशि मनीआर्डरद्वारा भेजनेकी कृपा करें। 'कल्याण'का वार्षिक शुल्क डाक-खर्चसहित ६५.०० (पैंसठ रुपये) मात्र है, जो केवल विशेषाङ्कका ही मूल्य है। सजिल्द विशेषाङ्कके लिये ५.०० (पाँच रुपये) अतिरिक्त देय होगा।

३-'कल्याण' के पंद्रह वर्षीय ग्राहक भी बनाये जाते हैं। सदस्यता-शुल्क रु॰ ५००.०० (पाँच सौ रुपये), सजिल्द विशेषाङ्कका ६००.०० (छः सौ रुपये) मात्र है। इस योजनाके अन्तर्गत फर्म, प्रतिष्ठान आदि सभी ग्राहक बन सकते हैं।

४-ग्राहक सज्जन मनीआर्डर-कूपनपर अपनी ग्राहक-संख्या अवश्य लिखें। ग्राहक-संख्या या 'पुराना-ग्राहक' न लिखनेसे आपका नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है, जिससे आपकी सेवामें 'श्रीरामभक्ति-अङ्क' नयी ग्राहक-संख्याके क्रमसे रजिस्ट्रीद्वारा पहुँचेगा और पुरानी ग्राहक-संख्याके क्रमसे इसकी वी॰ पी॰ पी॰ भी जा सकती है। यदि आपने मनीआर्डर विलम्बसे भेजा है तो सम्भव है कि आपके पास विशेषाङ्क वी॰ पी॰ पी॰ द्वारा पहुँचे। ऐसी स्थितिमें आपसे अनुरोध है कि वी॰ पी॰ पी॰ लौटायें नहीं, अपितु प्रयत्न करके नया ग्राहक बनाकर वी॰ पी॰ पी॰ द्वारा भेजा गया विशेषाङ्क उन्हें दे दें और उस नये ग्राहकका पूरा पता स्पष्ट लिपिमें लिखकर हमारे कार्यालयको भेजनेकी कृपा करें। आपके इस कृपापूर्ण सहयोगसे आपका अपना 'कल्याण' डाक-व्ययकी हानिसे बचेगा तथा आप 'कल्याण' के पावन प्रचारमें सहयोगी बनकर पुण्यके भागी होंगे।

५-इस अङ्कके लिफाफे (कवर) पर आपकी ग्राहक-संख्या एवं पता छपा हुआ है, उसे कृपया जाँच कर लें तथा अपनी ग्राहक-संख्या सावधानीसे नोट कर लें। रजिस्ट्री अथवा वी॰ पी॰ पी॰ का नम्बर भी नोट कर लेना चाहिये। पत्र-व्यवहारमें ग्राहक-संख्याका उल्लेख नितान्त आवश्यक है; क्योंकि इसके बिना आपके पत्रपर हम समयसे कार्यवाही नहीं कर पाते हैं। डाकद्वारा अङ्कोंके सुरक्षित वितरणमें सही पिन कोड नम्बर आवश्यक है। अतः अपने लिफाफेपर छपा पता जाँच कर लें।

६-'कल्याण' एवं 'गीताप्रेस-पुस्तक-विभाग' की व्यवस्था अलग-अलग है। अतः पत्र, मनीआर्डर आदि सम्बन्धित विभागको पृथक्-पृथक् भेजने चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण'-कार्यालय, पत्रालय—गीताप्रेस, गोरखपुर (उ॰ प्र॰) पिन—२७३००५

'कल्याण' के पुराने अति उपयोगी विशेषाङ्क

[पुनर्मुद्रित ग्रन्थाकारमें उपलब्ध]

गीताप्रेस, पुस्तक-विक्रय-विभागसे प्राप्य—

संक्षिप्त पद्मपुराण—(सन् १९४५)-पृष्ठ-संख्या ९०४, रंगीन चित्र १, अनेक रेखाचित्र, सजिल्द, मूल्य रु॰ ५५.०० डाकखर्च रु॰ १६.०० अतिरिक्त।

संक्षिप्त महाभारत—(सन् १९४३ ई॰) दो खण्ड, कुल पृष्ठ-संख्या १६९१, रंगीन चित्र २, रेखाचित्र ९७८, सजिल्द, मूल्य रु॰ ९०.००, डाकखर्च रु॰ २३.००।

संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत—(सन् १९६०)-पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र ८, सादे चित्र १८, रेखा-चित्र १७६, सजिल्द, मूल्य रु॰ ५०.००, डाकखर्च रु॰ १५.००।

संक्षिप्त शिवपुराण—(सन् १९६२ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ७००, रंगीन चित्र ४, सादे चित्र १२, रेखा-चित्र १३८, सजिल्द, मूल्य रु॰ ४०.००, डाकखर्च रु॰ १२.००।

नारी-अङ्क—(सन् १९४८ ई॰) पृष्ठ-संख्या ८०४, रंगीन चित्र ९, सादे चित्र ४४, रेखा-चित्र १९८, सजिल्द, मूल्य रु॰ ५०.००, डाकखर्च रु॰ १५.००।

गर्ग-संहिता—(सन् १९७०-७१) पृष्ठ-संख्या ५६८, रंगीन चित्र १, सजिल्द, मूल्य रु॰ ४५.००, डाकखर्च रु॰ १२.००।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७**

'कल्याण'-कार्यालयसे उपलब्ध—

शक्ति-अङ्क—(सन् १९३६ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ७०३, रंगीन चित्र १६, सादे चित्र २१०, अनेक रेखा-चित्र और उपयोगी यन्त्र, सजिल्द, मूल्य रु॰ डाकखर्च रु॰ ७.६५ अतिरिक्त।

भक्त-चरिताङ्क—(सन् १९५२ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ८०८, बहुरंगे चित्र २५, सादे चित्र २०१, सजिल्द, मूल्य रु॰ ६०.०० डाकखर्च रु॰ ७.७५।

संक्षिप्त स्कन्दपुराणाङ्क—(सन् १९५१ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ११३४, बहुरंगे चित्र ७, सादे चित्र ४१, रेखाचित्र ११९, सजिल्द, मूल्य रु॰ ८०.००, डा रु॰ ८.०० अतिरिक्त।

संक्षिप्त योगवासिष्ठ-अङ्क—(सन् १९६१ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ७२२, बहुरंगे चित्र ७, अनेक रेखाचित्र, सजिल्द, मूल्य रु॰ ६५.००, डाकखर्च रु॰ ८.००।

हिन्दू-संस्कृति-अङ्क—(सन् १९५० ई॰) पृष्ठ-संख्या ९२०, बहुरंगे चित्र १०, सादे चित्र २४०, सजिल्द, मूल्य रु॰ ७५.००, डाकखर्च रु॰ ८.०

परलोक-पुनर्जन्माङ्क—(सन् १९६९ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ७१६, बहुरंगे चित्र-१३, सादे चित्र ३०, रेखाचित्र ३०, सजिल्द, मूल्य रु॰ ६५.००, डाकखर्च रु॰ ८.

श्रीहनुमान-अङ्क—(सन् १९७५)-पृष्ठ-संख्या ५२०, बहुरंगे चित्र ८, सजिल्द, मूल्य रु॰ ४०.००, डाकखर्च रु॰ ८.००।

संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क—(सन् १९४७ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ७३८, रंगीन चित्र ७, रेखाचित्र २८६, सजिल्द, मूल्य रु॰ ६५.००, डाकखर्च रु॰ ८.०

बालक-अङ्क—(सन् १९५३ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ८१८, बहुरंगे चित्र ७, सादे चित्र १०६, रेखाचित्र ४६, सजिल्द, मूल्य रु॰ ७०.००, डाकखर्च रु॰ ८.००।

सत्कथा-अङ्क—(सन् १९५६ ई॰)-पृष्ठ-संख्या ७०४, बहुरंगे चित्र ८, सजिल्द, मूल्य रु॰ ६५.००, डाकखर्च रु॰ ८.००।

व्यवस्थापक—**'कल्याण'-कार्यालय, गोरखपुर—२७३००**

श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान)

गीताप्रेस, गोरखपुर (प्रधान कार्यालय—श्रीगोविन्दभवन, कलकत्ता) द्वारा संचालित राजस्थानके चूरू नगर-स्थित इस आश्रममें बालकोंके लिये प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं वैदिक परम्परानुरूप शिक्षा-दीक्षा और आवासकी उचित व्यवस्था है। इस आश्रमकी स्थापना ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा आजसे लगभग ७० वर्ष पूर्व इस विशेष उद्देश्यसे की गयी थी कि इसमें पढ़नेवाले बालक अपनी संस्कृतिके अनुरूप विशुद्ध संस्कार तथा तदनुरूप शिक्षा प्राप्तकर सच्चरित्र, आध्यात्मिक दृष्टिसे सम्पन्न आदर्श भावी नागरिक बन सकें—एतदर्थ भारतीय संस्कृतिके अमूल्य स्रोत—वेद तथा श्रीमद्भगवद्गीता आदि शास्त्रों एवं प्राचीन आचार-विचारोंकी दीक्षाका यहाँ विशेष प्रबन्ध है। संस्कृतके मुख्य अध्ययनके साथ अन्य महत्त्वपूर्ण उपयोगी विषयोंकी शिक्षा भी यहाँ दी जाती है। विस्तृत जानकारीके लिये मन्त्री, श्रीऋषिकुल-ब्रह्मचर्याश्रम, चूरू (राजस्थान) के पतेपर सम्पर्क करना चाहिये।

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५**

श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों विश्व-साहित्यके अमूल्य ग्रन्थ-रत्न हैं। इनके पठन-पाठन एवं मननसे मनुष्य लोक-परलोक दोनोंमें अपना कल्याण-साधन कर सकता है। इनके स्वाध्यायमें वर्ण-आश्रम, जाति, अवस्था आदि कोई भी बाधक नहीं है। आजके इस कुसमयमें इन दिव्य ग्रन्थोंके पाठ और प्रचारकी अत्यधिक आवश्यकता है। अतः धर्मपरायण जनताको इन कल्याणमय ग्रन्थोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तों एवं विचारोंसे अधिकाधिक लाभ पहुँचानेके सदुद्देश्यसे श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघकी स्थापना की गयी है। इसके सदस्योंकी संख्या इस समय लगभग बावन हजार है। इसमें श्रीगीताके छः प्रकारके और श्रीरामचरित-मानसके तीन प्रकारके सदस्य बनाये गये हैं। इसके अतिरिक्त उपासना-विभागके अन्तर्गत नित्यप्रति इष्टदेवके नामका जप, ध्यान और मूर्तिकी पूजा अथवा मानसिक पूजा करनेवाले सदस्योंकी श्रेणी भी है। इन सभीको श्रीमद्भगवद्गीता एवं श्रीरामचरितमानसके नियमित अध्ययन तथा उपासनाकी सत्प्रेरणा दी जाती है। सदस्यताका कोई शुल्क नहीं है। इच्छुक सज्जन परिचय-पुस्तिका निःशुल्क मँगवाकर पूरी जानकारी प्राप्त करनेकी कृपा करें एवं श्रीगीताजी और श्रीरामचरितमानसके प्रचार-यज्ञमें सम्मिलित होकर अपने जीवनका कल्याणमय पथ प्रशस्त करें।

पत्र-व्यवहारका पता—मन्त्री, श्रीगीता-रामायण-प्रचार-संघ, *पत्रालय*—स्वर्गाश्रम—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), *जनपद*—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)।

साधक-संघ

मानव-जीवनकी सर्वतोमुखी सफलता आत्म-विकासपर ही अवलम्बित है। आत्म-विकासके लिये जीवनमें सत्यता, सरलता, निष्कपटता, सदाचार, भगवत्परायणता आदि दैवी गुणोंका ग्रहण और असत्य, क्रोध, लोभ, मोह, द्वेष, हिंसा आदि आसुरी गुणोंका त्याग ही एकमात्र श्रेष्ठ और सरल उपाय है। मनुष्यमात्रको इस सत्यसे अवगत करानेके पावन उद्देश्यसे लगभग ४६ वर्ष पूर्व 'साधक-संघ' की स्थापना की गयी थी। इसका सदस्यता-शुल्क नहीं है। सभी कल्याणकामी स्त्री-पुरुषोंको इसका सदस्य बनना चाहिये। सदस्योंके लिये ग्रहण करनेके १२ और त्याग करनेके १६ नियम बने हैं। प्रत्येक सदस्यको एक 'साधक-दैनन्दिनी' एवं एक 'आवेदन-पत्र' भेजा जाता है, सदस्य बननेके इच्छुक भाई-बहनोंको साधक-दैनन्दिनीका वर्तमान मूल्य १.५० तथा डाकखर्च ०.५० पैसे—कुल रु० २.०० मात्र, डाकटिकट या मनीआर्डरद्वारा अग्रिम भेजकर उन्हें मँगवा लेना चाहिये। संघके सदस्य इस दैनन्दिनीमें प्रतिदिन साधन-सम्बन्धी अपने नियम-पालनका विवरण लिखते हैं। विशेष जानकारीके लिये कृपया नियमावली निःशुल्क मँगवाइये।

पता—संयोजक, 'साधक-संघ' *पत्रालय*—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५ (उ० प्र०)।

श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति

श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानस दोनों मङ्गलमय एवं दिव्यतम ग्रन्थ हैं। इनमें मानवमात्रको अपनी समस्याओंका समाधान मिल जाता है तथा जीवनमें अपूर्व सुख-शान्तिका अनुभव होता है। प्रायः सम्पूर्ण विश्वमें इन अमूल्य ग्रन्थोंका समादर है और करोड़ों मनुष्योंने इनके अनुवादोंको भी पढ़कर अवर्णनीय लाभ उठाया है। इन ग्रन्थोंके प्रचारके द्वारा लोकमानसको अधिकाधिक परिष्कृत करनेकी दृष्टिसे श्रीमद्भगवद्गीता और श्रीरामचरितमानसकी परीक्षाओंका प्रबन्ध किया गया है। दोनों ग्रन्थोंकी परीक्षाओंमें बैठनेवाले लगभग बीस हजार परीक्षार्थियोंके लिये ४०० परीक्षा-केन्द्रोंकी व्यवस्था है। नियमावली मँगानेके लिये कृपया निम्नलिखित पतेपर पत्र-व्यवहार करें।

व्यवस्थापक—श्रीगीता-रामायण-परीक्षा-समिति, *पत्रालय*—स्वर्गाश्रम, *पिन*—२४९३०४ (वाया-ऋषिकेश), *जनपद*—पौड़ी-गढ़वाल (उ० प्र०)।

═══ ★ ═══

'श्रीरामभक्ति-अङ्क'की विषय-सूची

'रामायन सत कोटि अपारा'—

भगवान् श्रीरामके परम उपासक (श्रीरामभक्तोंकी कथाएँ)—

रामकथाकी व्यापकता (विदेशों एवं क्षेत्रीय संस्कृतिमें भगवान् श्रीराम)—

चित्र-सूची

(रंगीन चित्र)

(सादे चित्र)

श्रीरामभक्तिका मूलमन्त्र—नाम-संकीर्तन

श्री कनकभवन बिहारी जी
(अयोध्या)

पुष्पवाटिकामें सीता और रामका प्रथम दर्शन

माता कौसल्याकी गोदमें परब्रह्म श्रीराम

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
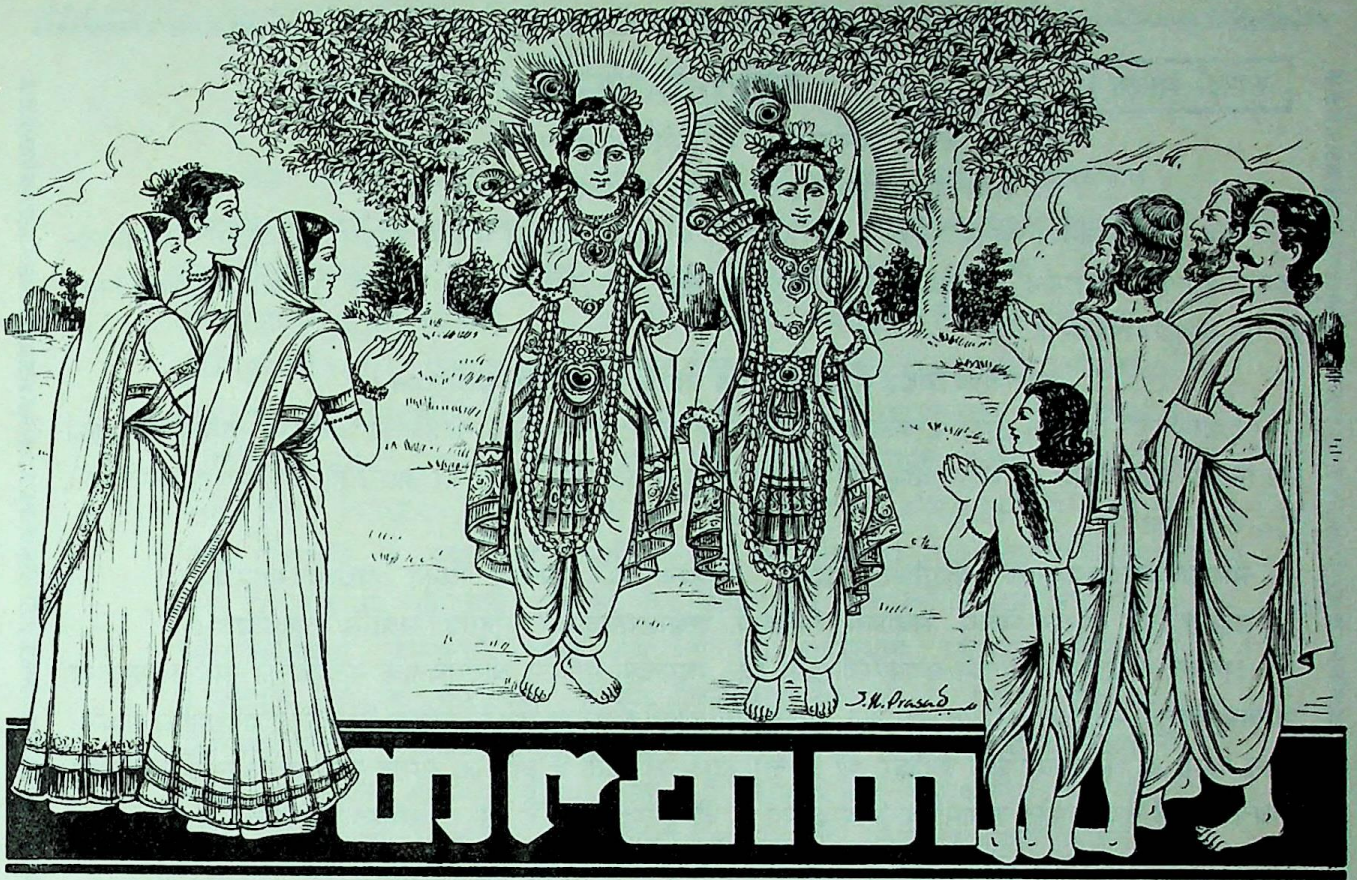
यः पृथिवीभरवारणाय दिविजैः सम्प्रार्थितश्चिन्मयः संजातः पृथिवीतले रविकुले मायामनुष्योऽव्ययः।
निश्चक्रं हतराक्षसः पुनरगाद् ब्रह्मत्वमाद्यं स्थिरां कीर्तिं पापहरां विधाय जगतां तं जानकीशं भजे ॥

वर्ष ६८ } गोरखपुर, सौर माघ, वि॰सं॰ २०५०, श्रीकृष्ण-सं॰ ५२१९, जनवरी १९९४ ई॰ { संख्या १ पूर्ण संख्या ८०६

माता कौसल्यापर अनुग्रहार्थ भगवान् रामका मङ्गलमय अवतरण

भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी। हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप बिचारी ॥
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी। भूषन बनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ॥
कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करौं अनंता। माया गुन ग्यानातीत अमाना बेद पुरान भनंता ॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहिं श्रुति संता। सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकंता ॥
ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै। मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै ॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै। कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै ॥
माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूपा। कीजै सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा ॥
सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा। यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भवकूपा ॥

स्मरण-स्तवन

स्तुति-प्रार्थना

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्द आत्मा।
यः सच्चिदानन्दाद्वैतैकचिदात्मा भूर्भुवःसुवस्तस्मै वै नमो नमः॥

ॐ जो जगत्प्रसिद्ध श्रीरामचन्द्रजी हैं, वे निश्चय ही भगवान् (षड्विध ऐश्वर्यसे सम्पन्न) हैं, अद्वितीय परमानन्द-स्वरूप हैं। जो सच्चिदानन्द अद्वितीय एकचित्-स्वरूप हैं, **भूः, भुवः, स्वः**—ये तीन लोक हैं, उन श्रीरामचन्द्रजीको निश्चय ही मेरा बारंबार नमस्कार है।

दाशरथाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि। तन्नो रामः प्रचोदयात्।

दशरथनन्दन भगवान् रामके तत्त्वको हम अच्छी तरह जानते हैं। भगवती सीताके प्राणवल्लभ भगवान् रामभद्रका हम निरन्तर ध्यान करते हैं। वे भगवान् राम कृपापूर्वक हमें विशुद्ध बुद्धि प्रदान कर अपनी ही ओर आकृष्ट करते रहें। शुद्ध प्रेरणा देते रहें।

श्रीमद्राघवपादपद्मयुगलं पद्मार्चितं पद्मया पद्मस्थेन तु पद्मजेन विनुतं पद्माश्रयस्याप्तये।
यद्वेदैश्च नुतं सुखैकनिलयं सर्वाश्रयं निष्क्रियं शश्वच्छंकरशंकरं मुहुरहो सन्नौमि तल्लब्धये॥

भगवती पद्मालया कमलाने पद्मपुष्पोंके द्वारा जिन रघुनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रके पादपद्मोंकी अर्चना की तथा भगवान् विष्णुके नाभिपद्मपर स्थित ब्रह्माजीने भी भगवती लक्ष्मीके कृपाकटाक्षकी प्राप्तिके लिये जिन पादपद्मोंका स्तवन-वन्दन किया था, जिन चरणोंकी वेदोंद्वारा भी निरन्तर स्तुति की जाती है और जो समस्त सुख एवं आनन्दके एकमात्र आश्रयस्थल हैं तथा समस्त प्राणिमात्रके लिये शरण्य हैं, जो कूटस्थस्वरूप हैं और जो समस्त कल्याणके स्वरूप भगवान् शंकरका भी नित्य कल्याण करनेमें समर्थ हैं, मैं परमतत्त्वकी प्राप्तिके लिये उन पदद्वन्द्वोंकी बार-बार वन्दना करता हूँ।

तर्तुं संसृतिवारिधिं त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभोर्येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संसृतम्।
यश्चैतन्यघनप्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभुस्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम्॥

जिन भगवान्का नाम तीनों लोकोंमें संसारसमुद्रसे पार होनेके लिये नौका-रूप है, जिनसे उत्पन्न और पालित होकर यह सम्पूर्ण संसार सदैव शोभा पाता है, जो चैतन्यघनस्वरूप एवं प्रमाणसे परे हैं, वेदान्तशास्त्रके द्वारा जाननेके योग्य और सर्वत्र व्यापक हैं, उन सहज प्रकाशरूप निर्मल परमात्मा श्रीरामचन्द्रजीको मैं प्रणाम करता हूँ।

रक्ताम्भोजदलाभिरामनयनं पीताम्बरालङ्कृतं श्यामाङ्गं द्विभुजं प्रसन्नवदनं श्रीसीतया शोभितम्।
कारुण्यामृतसागरं प्रियगणैर्भ्रात्रादिभिर्भावितं वन्दे विष्णुशिवादिसेव्यमनिशं भक्तेष्टसिद्धिप्रदम्॥

रक्तकमलदलके समान सुन्दर नेत्रयुक्त, पीले वस्त्रसे अलंकृत, श्याम-शरीर, द्विभुज, प्रसन्नमुख, भगवती श्रीसीताके साथ सुशोभित, कृपापूर्ण अमृतके समुद्र, अपने प्रिय मित्रों तथा बन्धुजनोंद्वारा सद्भावसे सुसेवित, विष्णु, शिव आदि देवताओंसे भी अहर्निश सेव्यमान और अपने उपासकोंको सभी अभीष्ट सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले भगवान् श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ।

वामे भूमिसुता पुरस्तु हनुमान् पृष्ठे सुमित्रासुतः शत्रुघ्नो भरतश्च पार्श्वदलयोर्वाय्वादिकोणेषु च।
सुग्रीवश्च विभीषणश्च युवराट् तारासुतो जाम्बवान् मध्ये नीलसरोजकोमलरुचिं रामं भजे श्यामलम्॥

जिनके बायें भागमें श्रीसीताजी, सामने हनुमान्, पीछे लक्ष्मण, दोनों बगल शत्रुघ्न और भरत तथा वायव्य, ईशान और अग्नि एवं नैर्ऋत्यकोणमें क्रमशः सुग्रीव, विभीषण तथा तारापुत्र युवराज अङ्गद और जाम्बवान् हैं, उनके बीच विराजमान श्यामकमलसदृश मनोहर कान्तिवाले परमपुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी मैं स्तुति करता हूँ।

भक्तिर्मुक्तिविधायिनी भगवतः श्रीरामचन्द्रस्य हे लोकाः कामदुघाङ्घ्रिपद्मयुगलं सेवध्वमत्युत्सुकाः।
नानाज्ञानविशेषमन्त्रविततिं त्यक्त्वा सुदूरे भृशं रामं श्यामतनुं स्मरारिहृदये भान्तं भजध्वं बुधाः॥

अरे लोगो! भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी भक्ति ही मोक्ष देनेवाली है। अतः कामधेनुरूप उनके चरणकमलोंकी अति उत्सुकतासे सेवा करो। हे बुद्धिमान् लोगो! इन विविध विज्ञानवार्ताओं और मन्त्रविस्तारको अत्यन्त दूर—अलग रखकर तुरंत ही श्रीशंकरके हृदयधाममें शोभा पानेवाले श्याम-शरीर भगवान् रामका भजन करो।

श्रीरामानुस्मृति

श्रीब्रह्मोवाच

वन्दे रामं जगद्वन्द्यं सुन्दरास्यं शुचिस्मितम्। कन्दर्पकोटिलावण्यं कामितार्थप्रदायकम्॥
भास्वत्किरीटकटककटिसूत्रोपशोभितम्। विशाललोचनं भ्राजत्तरुणारुणकुण्डलम्॥
नीलजीमूतसंकाशं नीलालकवृताननम्। ज्ञानमुद्रालसद्दक्षबाहुं ज्ञानमयं विभुम्॥
वामजानुपरिन्यस्तवामाम्बुजकरं हरिम्। वीरासने समासीनं विद्युत्पुञ्जनिभाम्बरम्॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोमलावयवोज्ज्वलम्। जानकीलक्ष्मणाभ्यां च वामदक्षिणशोभितम्॥
हनुमद्रविपुत्रादिकपिमुख्यैर्निषेवितम्। दिव्यरत्नसमायुक्तसिंहासनगतं प्रभुम्॥
प्रत्यहं प्रातरुत्थाय ध्यात्वैवं राघवं हृदि। एभिः षोडशभिर्नामपदैः स्तुत्वा नमेद्धरिम्॥
नमो रामाय शुद्धाय बुद्धाय परमात्मने। विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय ते नमः॥
नमो रावणहन्त्रे ते नमो वालिविनाशिने। नमो वैकुण्ठनाथाय नमो विष्णुस्वरूपिणे॥
नमो यज्ञस्वरूपाय यज्ञभोक्त्रे नमोऽस्तु ते। योगिध्येयाय योगाय परमानन्दरूपिणे॥
शङ्करप्रियमित्राय जानक्याः पतये नमः। य इदं प्रातरुत्थाय भक्तिश्रद्धासमन्वितः॥
षोडशैतानि नामानि रामचन्द्रस्य नित्यशः। पठेद्विद्वान् स्मरेन्नाम स एव स्याद्रघूत्तमः॥
श्रीरामभक्तिरतुला भवत्येव हि सर्वदा। जगत्पूज्यः सुखं जीवेद् रामभद्रप्रसादतः॥
मरणे समनुप्राप्ते श्रीरामः सीतया सह। हृदि संदृश्यते तस्य साक्षात् सौमित्रिणा सह॥
नित्यं चापररात्रेषु रामस्येमां समाहितः। मुच्यतेऽनुस्मृतिं जप्त्वा मृत्युदारिद्र्यपातकैः॥

ब्रह्माजी कहते हैं—'जो जगद्वन्द्य, सुन्दरमुख, पवित्र मन्द मुस्कानयुक्त, करोड़ों कामदेवोंके समान सुन्दर, अभिलषित पदार्थको प्रदान करनेवाले, दिव्य मुकुट, कटक (बाजूबंद), कटिसूत्र (करधनी) से सुशोभित और विशाल नेत्रयुक्त हैं तथा जो लाल तपे हुए स्वर्णकुण्डलसे सुशोभित, नीले बादलके समान श्यामवर्ण, सघन नीले केशोंसे आवृत मुखवाले, दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण किये हुए तथा विशुद्ध विज्ञानमय एवं सर्वसमर्थ हैं और बायें घुटनेपर बायें करकमलको स्थापित कर वीरासनसे बैठे हुए हैं, जिनके वस्त्र सघन विद्युत्-समूहके समान पीतवर्ण—पीतप्रकाशयुक्त हैं, जो करोड़ों सूर्यके समान आभावाले हैं और जिनके अङ्ग अत्यन्त कोमल तथा निर्मल हैं, जिनके दाहिनी ओर लक्ष्मणजी तथा बायीं ओर भगवती सीता विराजित हैं, जो वानरराज सुग्रीव और हनुमान् आदि श्रेष्ठ वानरोंसे सुशोभित हैं तथा दिव्य रत्नोंसे मण्डित सिंहासनपर विराजमान हैं, ऐसे विष्णुस्वरूप भगवान् श्रीरामकी मैं वन्दना करता हूँ।' इस प्रकार प्रातःकाल उठकर भगवान् श्रीरामका हृदयमें ध्यानकर इन षोडश नामोंसे विष्णुरूप भगवान् श्रीरामकी स्तुति करके नमस्कार करना चाहिये—(१) **शुद्धबुद्ध,** (२) **परमात्मस्वरूप,** (३) भगवान् **श्रीरामको** मेरा नमस्कार है।(४) **विशुद्धज्ञानविग्रह,** (५) **रघुनाथ !** आपको नमस्कार है। (६) **रावणका संहार करनेवाले** तथा (७) **बालिको विदीर्ण करनेवाले !** आपको मेरा नमस्कार है। (८) **वैकुण्ठनाथ** और (९) **विष्णुस्वरूप** श्रीरामको नमस्कार है। (१०) आप **यज्ञस्वरूप** और (११) एकमात्र समस्त **यज्ञोंके भोक्ता** हैं, आपको नमस्कार है। (१२) **योगस्वरूप,** (१३) **योगियोंके द्वारा ध्येय,** (१४) **परमानन्दस्वरूप !** आपको मेरा नमस्कार है। (१५) भगवान् **शंकरके परमप्रिय मित्र** और (१६) भगवती **जानकीके पति** जानकीवल्लभ ! आपको प्रणाम है। जो विद्वान् प्रतिदिन प्रातःकाल (शय्यासे) उठकर श्रद्धा-भक्तिके साथ भगवान् श्रीरामके इन षोडश नामोंका प्रतिदिन पाठ करता है और ध्यानसे स्मरण करता है, वह साक्षात् भगवान् श्रीरामका ही स्वरूप बन जाता है। उसके हृदयमें भगवान् श्रीरामकी अतुलनीय भक्ति सदा निवास करती है। भगवान् श्रीरामकी कृपासे वह समूचे संसारमें आदरणीय बनकर सुखपूर्वक बहुत समयतक जीता है और जीवनके अन्तिम समय प्राप्त होनेपर सीता और लक्ष्मणके साथ साक्षात् भगवान् श्रीराम उसके हृदयमें प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। जो व्यक्ति रात्रिके अन्तिम प्रहर—ब्राह्ममुहूर्तमें प्रतिदिन सावधान होकर भगवान् श्रीरामकी इस अनुस्मृतिका जप करता है, वह अकाल-मृत्यु, दुःख-दारिद्र्य तथा सभी पातक-उपपातकोंसे मुक्त हो जाता है।
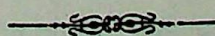
शेषनागके रूपमें दिखायी देते हैं। श्रीराम ! आप ही तीनों लोकोंको तथा देवता, गन्धर्व और दानवोंको धारण करनेवाले विराट् पुरुष नारायण हैं। सबके हृदयमें रमण करनेवाले परमात्मन् ! मैं ब्रह्मा आपका हृदय हूँ और देवी सरस्वती आपकी जिह्वा हैं। प्रभो ! मुझ ब्रह्माने जिनकी सृष्टि की है, वे सब देवता आपके विराट् शरीरमें रोम हैं। आपके नेत्रोंका बंद होना रात्रि और खुलना ही दिन है। वेद आपके संस्कार हैं। आपके बिना इस जगत्का अस्तित्व नहीं है। सम्पूर्ण विश्व आपका शरीर है। पृथिवी आपकी स्थिरता है। अग्नि आपका कोप है और चन्द्रमा प्रसन्नता है, वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न धारण करनेवाले भगवान् विष्णु आप ही हैं। पूर्वकालमें (वामनावतारके समय) आपने ही अपने तीन पगोंसे तीनों लोक नाप लिये थे। आपने अत्यन्त दारुण दैत्यराज बलिको बाँधकर इन्द्रको तीनों लोकोंका राजा बनाया था। सीता साक्षात् लक्ष्मी हैं और आप भगवान् विष्णु हैं। आप ही सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण एवं प्रजापति हैं। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ रघुवीर ! आपने रावणका वध करनेके लिये ही इस लोकमें मनुष्यके शरीरमें प्रवेश किया था। हमलोगोंका कार्य आपने सम्पन्न कर दिया। श्रीराम ! आपके द्वारा रावण मारा गया। अब आप प्रसन्नतापूर्वक अपने दिव्य धाममें पधारिये। देव ! आपका बल अमोघ है। आपके पराक्रम भी व्यर्थ होनेवाले नहीं हैं। श्रीराम ! आपका दर्शन अमोघ है। आपका स्तवन भी अमोघ है तथा आपमें भक्ति रखनेवाले मनुष्य भी इस भूमण्डलमें अमोघ ही होंगे। आप पुराणपुरुषोत्तम हैं। दिव्यरूपधारी परमात्मा हैं। जो लोग आपमें भक्ति रखेंगे, वे इस लोक और परलोकमें अपने सभी मनोरथ प्राप्त कर लेंगे। यह परम ऋषि ब्रह्माका कहा हुआ दिव्य स्तोत्र तथा पुरातन इतिहास है। जो लोग इसका कीर्तन करेंगे, उनका कभी पराभव नहीं होगा।'
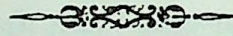
इन्द्रकृत श्रीरामस्तुति

भजेऽहं सदा राममिन्दीवराभं भवारण्यदावानलाभाभिधानम्। भवानीहृदा भावितानन्दरूपं भवाभावहेतुं भवादिप्रपन्नम्॥
सुरानीकदुःखौघनाशैकहेतुं नराकारदेहं निराकारमीड्यम्। परेशं परानन्दरूपं वरेण्यं हरिं राममीशं भजे भारनाशम्॥
प्रपन्नाखिलानन्ददोहं प्रपन्नं प्रपन्नार्तिनिःशेषनाशाभिधानम्। तपोयोगयोगीशभावाभिभाव्यं कपीशादिमित्रं भजे राममित्रम्॥
सदा भोगभाजां सुदूरे विभान्तं सदा योगभाजामदूरे विभान्तम्। चिदानन्दकन्दं सदा राघवेशं विदेहात्मजानन्दरूपं प्रपद्ये॥
महायोगमायाविशेषानुयुक्तो विभासीश लीलानराकारवृत्तिः। त्वदानन्दलीलाकथापूर्णकर्णाः सदानन्दरूपा भवन्तीह लोके॥
अहं मानपानाभिमत्तप्रमत्तो न वेदाखिलेशाभिमानाभिमानः। इदानीं भवत्पादपद्मप्रसादात् त्रिलोकाधिपत्याभिमानो विनष्टः॥
स्फुरद्रत्नकेयूरहाराभिरामं धराभारभूतासुरानीकदावम्। शरच्चन्द्रवक्त्रं लसत्पद्मनेत्रं दुरावारपारं भजे राघवेशम्॥
सुराधीशनीलाभ्रनीलाङ्गकान्तिं विराधादिरक्षोवधाल्लोकशान्तिम्। किरीटादिशोभं पुरारातिलाभं भजे रामचन्द्रं रघूणामधीशम्॥
लसच्चन्द्रकोटिप्रकाशादिपीठे समासीनमङ्के समाधाय सीताम्। स्फुरद्धेमवर्णां तडित्पुञ्जभासां भजे रामचन्द्रं निवृत्तार्तितन्द्रम्॥

(अध्या० रामा० ६। १३। २४—३२)

जो नीलकमलकी-सी आभावाले हैं, संसाररूप वनके लिये जिनका नाम दावानलके समान है, श्रीपार्वतीजी जिनके आनन्दरूपका हृदयमें ध्यान करती हैं, जो (जन्म-मरणरूप) संसारसे छुड़ानेवाले हैं और शंकरादि देवोंके आश्रय हैं, उन भगवान् रामको मैं भजता हूँ। जो देवमण्डलके दुःखसमूहका नाश करनेके एकमात्र कारण हैं तथा जो मनुष्यरूपधारी, आकारहीन और स्तुति किये जानेयोग्य हैं, पृथिवीका भार उतारनेवाले उन परमेश्वर परानन्दरूप पूजनीय भगवान् रामको मैं भजता हूँ। जो शरणागतोंको सब प्रकारका आनन्द देनेवाले और उनके आश्रय हैं, जिनका नाम शरणागत भक्तोंके सम्पूर्ण दुःखोंको दूर करनेवाला है, जिनका तप और योग एवं बड़े-बड़े योगीश्वरोंकी भावनाओंद्वारा चिन्तन किया जाता है तथा जो सुग्रीवादिके मित्र हैं, उन मित्ररूप भगवान् रामको मैं भजता हूँ। जो भोगपरायण लोगोंसे सदा दूर रहते और योगनिष्ठ पुरुषोंके सदा समीप ही विराजते हैं, श्रीजानकीजीके लिये आनन्दस्वरूप उन चिदानन्दघन श्रीरघुनाथजीको मैं सर्वदा भजता हूँ। हे भगवन् ! आप अपनी महान् योगमायाके गुणोंसे युक्त होकर लीलासे ही मनुष्यरूप प्रतीत हो रहे हैं। जिनके कर्ण आपकी इन आनन्दमयी

लीलाओंके कथामृतसे पूर्ण होते हैं वे संसारमें नित्यानन्दरूप हो जाते हैं। प्रभो ! मैं तो सम्मान और सोमपानके उन्मादसे मतवाला हो रहा था, सर्वेश्वरताके अभिमानवश मैं अपने आगे किसीको कुछ भी नहीं समझता था। अब आपके चरणकमलोंकी कृपासे मेरा त्रिलोकाधिपतित्वका अभिमान चूर हो गया। जो चमचमाते हुए रत्नजटित भुजबन्ध और हारोंसे सुशोभित हैं, पृथिवीके भाररूप राक्षसोंके लिये दावानलके समान हैं, जिनका शरच्चन्द्रके समान मुख और अति मनोहर नेत्रकमल हैं तथा जिनका आदि-अन्त जानना अत्यन्त कठिन है, उन रघुनाथजीको मैं भजता हूँ। जिनके शरीरकी इन्द्रनीलमणि और मेघके समान श्याम कान्ति है, जिन्होंने विराध आदि राक्षसोंको मारकर सम्पूर्ण लोकोंमें शान्ति स्थापित की है, उन किरीटादिसे सुशोभित और श्रीमहादेवजीके परम धन रघुकुलेश्वर रामचन्द्रजीको मैं भजता हूँ। जो तेजोमय सुवर्णके-से वर्णवाली और बिजलीके समान कान्तिमयी जानकीजीको गोदमें लिये करोड़ों चन्द्रमाओंके समान देदीप्यमान सिंहासनपर विराजमान हैं, उन निर्दुःख और आलस्यहीन भगवान् रामको मैं भजता हूँ।

प्रातःकालिक श्रीरामका स्मरण-कीर्तन

प्रातः स्मरामि रघुनाथमुखारविन्दं मन्दस्मितं मधुरभाषि विशालभालम्।
कर्णावलम्बिचलकुण्डलशोभिगण्डं कर्णान्तदीर्घनयनं नयनाभिरामम्॥
प्रातर्भजामि रघुनाथकरारविन्दं रक्षोगणाय भयदं वरदं निजेभ्यः।
यद् राजसंसदि विभज्य महेशचापं सीताकरग्रहणमङ्गलमाप सद्यः॥
प्रातर्नमामि रघुनाथपदारविन्दं पद्मा (वज्रा)ङ्कुशादिशुभरेखि सुखावहं मे।
योगीन्द्रमानसमधुव्रतसेव्यमानं शापापहं सपदि गौतमधर्मपत्न्याः॥
प्रातर्वदामि वचसा रघुनाथनाम वाग्दोषहारि सकलं शमलं निहन्ति।
यत्पार्वती स्वपतिना सह भोक्तुकामा प्रीत्या सहस्रहरिनामसमं जजाप॥
प्रातः श्रये श्रुतिनुतां रघुनाथमूर्तिं नीलाम्बुजोत्पलसितेतररत्ननीलाम्।
आमुक्तमौक्तिकविशेषविभूषणाढ्यां ध्येयां समस्तमुनिभिर्जनमुक्तिहेतुम्॥
यः श्लोकपञ्चकमिदं प्रयतः पठेद्धि नित्यं प्रभातसमये पुरुषः प्रबुद्धः।
श्रीरामकिङ्करजनेषु स एव मुख्यो भूत्वा प्रयाति हरिलोकमनन्यलभ्यम्॥

'जो मधुर मुसकानयुक्त, मधुरभाषी और विशाल भालसे सुशोभित हैं, जिनके दोनों कपोल कानोंमें लटके हुए चञ्चल कुण्डलोंसे शोभित हो रहे हैं तथा जो कर्णपर्यन्त फैले बड़े-बड़े नेत्रोंसे शोभायमान और नेत्रोंको आनन्द देनेवाले हैं, ऐसे श्रीरघुनाथजीके मुखारविन्दका मैं प्रातःकाल स्मरण करता हूँ। मैं प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीके उन करकमलोंका स्मरण करता हूँ, जो राक्षसोंको भय एवं अपने भक्तोंको वर देनेवाले हैं और जिन्होंने (जनककी) राजसभामें शंकरका धनुष शीघ्र तोड़कर सीताका मङ्गलमय पाणिग्रहण किया था। मैं प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीके चरणकमलोंको नमस्कार करता हूँ, जो पद्म (या वज्र), अङ्कुश आदि शुभ रेखाओंसे युक्त, मुझे सुख देनेवाले तथा योगियोंके मन-मधुपद्वारा सेवित और गौतमपत्नी अहल्याके शापको दूर करनेवाले हैं। मैं प्रातःकाल अपनी वाणीसे श्रीरघुनाथजीके नामका जप (वैखरी वाणीमें कीर्तन) करता हूँ, जो वाणीके दोषोंको नष्ट करनेवाला और सभी पापोंको हरनेवाला है तथा जिसे भगवती पार्वतीजीने अपने पति शंकरके साथ भोजन करनेकी लालसासे शीघ्रतामें भगवान्‌के सहस्रनामके सदृश (मानकर) प्रीतिसहित जपा था। मैं प्रातःकाल श्रीरघुनाथजीकी वेदवन्दित मूर्तिका आश्रय लेता हूँ, जो नीलकमल और नीलमणिके समान नीलवर्ण, लटकते हुए मोतियोंकी मालासे विभूषित एवं समस्त मुनियोंकी ध्येय तथा भक्तोंको मोक्ष प्रदान करनेवाली है। जो पुरुष प्रातःकाल नींदसे जगकर जितेन्द्रियभावसे इन पाँच श्लोकोंका नित्य पाठ करता है, वह श्रीरामजीके सेवकों (भक्तों)-में मुख्य होकर श्रीहरिके लोकको जो दूसरोंके लिये दुर्लभ है, प्राप्त करता है।'

श्रीहनुमत्प्रोक्त मन्त्रराजात्मक रामस्तव

तिरश्चामपि चारातिसमवायं समेयुषाम्। यतः सुग्रीवमुख्यानां यस्तमुग्रं नमाम्यहम्॥
सकृदेव प्रपन्नाय विशिष्टामैरयच्छ्रियम्। विभीषणायाब्धितटे यस्तं वीरं नमाम्यहम्॥
यो महान् पूजितो व्यापी महान् वै करुणामृतम्। स्रुतं येन जटायोश्च महाविष्णुं नमाम्यहम्॥
तेजसाप्यायिता यस्य ज्वलन्ति ज्वलनादयः। प्रकाशते स्वतन्त्रो यस्तं ज्वलन्तं नमाम्यहम्॥
सर्वतोमुखता येन लीलया दर्शिता रणे। रक्षसां खरमुख्यानां तं वन्दे सर्वतोमुखम्॥
नृभावं यः प्रपन्नानां हिनस्ति च तथा नृषु। सिंहः सत्त्वेष्विवोत्कृष्टस्तं नृसिंहं नमाम्यहम्॥
यस्माद्बिभ्यति वातार्कज्वलनेन्द्राः समृत्यवः। भियं तनोति पापानां भीषणं तं नमाम्यहम्॥
परस्य योग्यतापेक्षारहितो नित्यमङ्गलम्। ददात्येव निजौदार्याद् यस्तं भद्रं नमाम्यहम्॥
यो मृत्युं निजदासानां नाशयत्यखिलेष्टदः। तत्रोदाहतये व्याधो मृत्युमृत्युं नमाम्यहम्॥
यत्पादपद्मप्रणतो भवत्युत्तमपूरुषः। तमजं सर्वदेवानां नमनीयं नमाम्यहम्॥
अहंभावं समुत्सृज्य दास्येनैव रघूत्तमम्। भजेऽहं प्रत्यहं रामं ससीतं सहलक्ष्मणम्॥
नित्यं श्रीरामभक्तस्य किंकरा यमकिंकराः। शिवमय्यो दिशस्तस्य सिद्धयस्तस्य दासिकाः॥
इमं हनूमता प्रोक्तं मन्त्रराजात्मकं स्तवम्। पठत्यनुदिनं यस्तु स रामे भक्तिमान् भवेत्॥

अपने मुख्य शत्रु रावणके विनाशके लिये जिन्होंने कपिराज सुग्रीवादि तिर्यक्-योनिमें उत्पन्न वानर-भालुओंकी सेना संगठित की (और सैन्य-शिक्षाके द्वारा उन्हें सुप्रबुद्ध कर लंकापर विजय प्राप्त कर ली), उन अति उग्र भगवान् रामको मैं नमस्कार करता हूँ। समुद्र-तटपर आये विभीषणको, केवल एक बार 'मैं आपकी शरण हूँ'—ऐसा कहनेपर जिन्होंने लंका आदिके राज्यसहित अपार वैभवको प्रदान किया, उन महावीर श्रीरामको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वव्यापक हैं, सबसे महान् हैं और देवता, ऋषि-मुनियोंसे भी पूजित हैं तथा महान् कृपा-सुधाके मूर्तिमान् स्वरूप हैं और उस कृपा-सुधासे जटायुतकको भी जिन्होंने संसिक्तकर मुक्त कर दिया, उन महाविष्णुस्वरूप भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ। अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य आदि तेजस्वी ज्योतिष्पुञ्ज जिनके तेजसे ही प्रकाशित एवं प्रज्वलित होते हैं और जो स्वयं अपने तेजसे प्रकाशित होते हैं, उन प्रज्वलित तेजोमय भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ। रणस्थलमें खर-दूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसोंसे युद्ध करते समय जिन्होंने अपनी लीलासे अपना मुखमण्डल सभी ओर दिखलाया (और सबका नाश कर दिया), उन सर्वतोमुख भगवान् रामकी मैं वन्दना करता हूँ। शरणमें आते ही जो मनुष्योंके सामान्य मोहमय मनुष्यभावको नष्टकर उन्हें लोकोत्तर ज्ञान एवं विशिष्ट दिव्य शक्तियोंसे सम्पन्न कर देते हैं और जो सम्पूर्ण विश्वमें सिंहके समान बली हैं, उन नरसिंह भगवान् रामको मैं नमन करता हूँ। जिनसे अग्नि, वायु, सूर्य, इन्द्र, यम आदि सभी भयभीत रहते हैं और पाप तो उनके भयसे सदा ही दूर भागता है, उन भीषण रामको मैं नमस्कार करता हूँ। जो अपने भक्तोंकी किसी योग्यता आदिकी अपेक्षा किये बिना ही अपने उदार-स्वभावके कारण सदा सब कुछ देते ही रहते हैं और जो नित्य मङ्गलस्वरूप हैं, उन परम भद्र-स्वरूप सौजन्यमूर्ति भगवान् रामको मैं प्रणाम करता हूँ। जो अपने भक्तोंके मृत्युका समूलोच्छेदन कर उसकी सारी अभिलाषा पूर्ण कर देते हैं, इस सम्बन्धमें महर्षि वाल्मीकि जो पहले कभी व्याधका काम कर रहे थे, परम प्रमाण हैं, ऐसे मृत्युके भी मृत्यु भक्तवत्सल भगवान्को मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके चरण-कमलोंमें प्रणाम करते ही अधम पुरुष भी अति उत्तम पुरुष बन जाता है, उन जन्मादि षड्-विकारोंसे मुक्त, सभी देवताओंके द्वारा वन्दनीय भगवान् रामकी मैं वन्दना करता हूँ। मैं (हनुमान्) ब्रह्मैकात्म्य-भावका परित्याग कर दास्यभाव अर्थात् सेव्य-सेवककी भावनासे अहर्निश लक्ष्मणसहित श्रीसीतारामकी उपासना करता हूँ। भगवान् श्रीरामके भक्तोंके लिये यमदूत भी सदाके लिये किंकर (सेवक—दास) बन जाते हैं, उसके लिये दसों दिशाएँ मङ्गलमयी हो जाती हैं और सभी सिद्धियाँ उसके चरणोंमें लोटती हैं। हनुमान्जीद्वारा प्रोक्त इस मन्त्रराजात्मक स्तोत्रका जो पाठ करता है, वह भगवान् श्रीरामका भक्त हो जाता है।

श्रीरामस्तुति

श्रीमहादेव उवाच

नमोऽस्तु रामाय सशक्तिकाय नीलोत्पलश्यामलकोमलाय। किरीटहाराङ्गदभूषणाय सिंहासनस्थाय महाप्रभाय॥
त्वमादिमध्यान्तविहीन एकः सृजस्यवस्यत्सि च लोकजातम्। स्वमायया तेन न लिप्यसे त्वं यत्स्वे सुखेऽजस्त्ररतोऽनवद्यः॥
लीलां विधत्से गुणसंवृतस्त्वं प्रपन्नभक्तानुविधानहेतोः। नानावतारैः सुरमानुषाद्यैः प्रतीयसे ज्ञानिभिरेव नित्यम्॥
स्वांशेन लोकं सकलं विधाय तं बिभर्षि च त्वं तदधः फणीश्वरः। उपर्यधो भान्वनिलोडुपौषधिप्रवर्षरूपोऽवसि नैकधा जगत्॥
त्वमिह देहभृतां शिखिरूपः पचसि भुक्तमशेषमजस्त्रम्। पवनपञ्चकरूपसहायो जगदखण्डमनेन बिभर्षि॥
चन्द्रसूर्यशिखिमध्यगतं यत् तेज ईश चिदशेषतनूनाम्। प्राभवत् तनुभृतामिव धैर्यं शौर्यमायुरखिलं तव सत्त्वम्॥
त्वं विरिञ्चिशिवविष्णुविभेदात् कालकर्मशशिसूर्यविभागात्। वादिनां पृथगिवेश विभासि ब्रह्म निश्चितमनन्यदिहैकम्॥
मत्स्यादिरूपेण यथा त्वमेकं श्रुतौ पुराणेषु च लोकसिद्धः। तथैव सर्वं सदसद्विभागस्त्वमेव नान्यद्भवतो विभाति॥
यद्यत्समुत्पन्नमनन्तसृष्टावुत्पत्स्यते यच्च भवच्च यच्च। न दृश्यते स्थावरजङ्गमादौ त्वया विनातः परतः परस्त्वम्॥
तत्त्वं न जानन्ति परात्मनस्ते जनाः समस्तास्तव माययातः। त्वद्भक्तसेवामलमानसानां विभाति तत्त्वं परमेकमैशम्॥
ब्रह्मादयस्ते न विदुः स्वरूपं चिदात्मतत्त्वं बहिरर्थभावाः। ततो बुधस्त्वामिदमेव रूपं भक्त्या भजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखः॥
अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो वसामि काश्यामनिशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं दिशामि मन्त्रं तव रामनाम॥
इमं स्तवं नित्यमनन्यभक्त्या शृण्वन्ति गायन्ति लिखन्ति ये वै। ते सर्वसौख्यं परमं च लब्ध्वा भवत्पदं यान्तु भवत्प्रसादात्॥

(अध्या० रा० ६। १५। ५१—६३)

श्रीमहादेवजी बोले—नीलकमलके समान सुकोमल श्यामशरीरवाले, किरीट, हार और भुजबन्ध आदिसे विभूषित तथा अपनी शक्ति (श्रीसीताजी) के सहित सिंहासनपर विराजमान महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। हे राम! आप आदि, अन्त और मध्यसे रहित अद्वितीय हैं, अपनी मायासे आप ही सम्पूर्ण लोकोंकी रचना, पालन और संहार करते हैं, तो भी उससे लिप्त नहीं होते, क्योंकि आप निरन्तर स्वानन्दमग्न और अनिन्द्य हैं। अपनी मायाके गुणोंसे आवृत होकर आप अपने शरणागत भक्तोंको मार्ग दिखानेके लिये देव, मनुष्यादि नाना प्रकारके अवतार लेकर विचित्र लीलाएँ करते हैं। उस समय सदा ज्ञानीजन ही आपको जान पाते हैं। आप अपने अंशसे सम्पूर्ण लोकोंकी रचना करके उन्हें शेषरूप होकर नीचेसे धारण करते हैं तथा सूर्य, वायु, चन्द्र, ओषधि और वृष्टिरूप होकर उनका नाना प्रकारसे ऊपरसे पालन करते हैं। आप ही जठराग्निरूप होकर (प्राण, अपान आदि) पाँच प्राणोंकी सहायतासे प्राणियोंके खाये हुए अन्नको पचाकर उसके द्वारा सर्वदा सम्पूर्ण जगत्का पालन करते हैं। हे ईश! चन्द्र, सूर्य और अग्निमें जो तेज है, समस्त प्राणियोंमें जो चेतनांश है तथा देहधारियोंमें जो धैर्य, शौर्य और आयुर्बल-सा दिखायी देता है वह आपहीकी सत्ता है। हे राम! भिन्न-भिन्न ईश्वरवादियोंको एक आप ही ब्रह्मा, महादेव और विष्णुके तथा काल, कर्म, चन्द्रमा और सूर्यके भेदसे पृथक्-पृथक्-से भासते हैं, किंतु इसमें संदेह नहीं, वास्तवमें आप हैं एक अद्वितीय ब्रह्म ही। जिस प्रकार वेद, पुराण और लोकमें आप एक ही मत्स्यादि अनेक रूपोंसे प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार संसारमें जो कुछ सत्, असद्रूप विभाग है, वह आप ही हैं—आपसे भिन्न और कुछ नहीं है। इस अनन्त सृष्टिमें जो कुछ उत्पन्न हुआ है, जो उत्पन्न होगा और जो हो रहा है, उस स्थावर-जंगमादिरूप सम्पूर्ण प्रपञ्चमें आपके बिना और कोई दिखायी नहीं देता। अतः आप (प्रकृति आदि) परसे भी पर हैं। हे राम! आपकी मायासे मोहित होनेके कारण सब लोग आपके परमात्म-स्वरूपका तत्त्व नहीं जानते। अतः जिनका अन्तःकरण आपके भक्तोंकी सेवाके प्रभावसे निर्मल हो गया है, उन्हींको आपका अद्वितीय ईश्वररूप भासता है। जिनकी बाह्य पदार्थोंमें सत्त्व-बुद्धि है वे ब्रह्मादि भी आपके चित्स्वरूपको नहीं जानते (फिर औरोंका तो कहना ही क्या है?), अतः बुद्धिमान् पुरुष इस श्यामसुन्दरस्वरूपसे ही आपका भक्तिपूर्वक भजन करके दुःखोंसे पार होकर मोक्ष प्राप्त कर लेता है। प्रभो! आपके नामोच्चारणसे कृतार्थ होकर मैं अहर्निश पार्वतीजीके सहित काशीमें रहता

हूँ और वहाँ मरणासन्न पुरुषोंको उनके मोक्षके लिये आपके तारक-मन्त्र 'राम' नामका उपदेश करता हूँ। (अब आपसे यही प्रार्थना है कि) जो लोग मेरे कहे इस स्तोत्रको अनन्य-भक्तिसे नित्यप्रति सुनें, कहें अथवा लिखें वे आपकी कृपासे सम्पूर्ण परमानन्द लाभ करके आपके निजपदको प्राप्त हों।
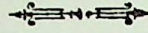
श्रीरामशतनामस्तोत्र

शम्भुरुवाच

राघवं करुणाकरं भवनाशनं दुरितापहम्। माधवं खगगामिनं जलरूपिणं परमेश्वरम्॥
पालकं जनतारकं भवहारकं रिपुमारकम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
भूधवं वनमालिनं घनरूपिणं धरणीधरम्। श्रीहरिं त्रिगुणात्मकं तुलसीधवं मधुरस्वरम्॥
श्रीकरं शरणप्रदं मधुमारकं व्रजपालकम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
विट्ठलं मथुरास्थितं रजकान्तकं गजमारकम्। सन्नुतं बकमारकं वृषघातकं तुरगार्दनम्॥
नन्दजं वसुदेवजं बलियज्ञगं सुरपालकम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
केशवं कपिवेष्टितं कपिमारकं मृगमर्दिनम्। सुन्दरं द्विजपालकं दितिजार्दनं दनुजार्दनम्॥
बालकं खरमर्दिनं ऋषिपूजितं मुनिचिन्तितम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
शंकरं जलशायिनं कुशबालकं रथवाहनम्। सरयूनतं प्रियपुष्पकं प्रियभूसुरं लवबालकम्॥
श्रीधरं मधुसूदनं भरताग्रजं गरुडध्वजम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
गोप्रियं गुरुपुत्रदं वदतां वरं करुणानिधिम्। भक्तपं जनतोषदं सुरपूजितं श्रुतिभिः स्तुतम्॥
भुक्तिदं जनमुक्तिदं जनरञ्जनं नृपनन्दनम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
चिद्घनं चिरजीविनं मणिमालिनं वरदोन्मुखम्। श्रीधरं धृतिदायकं बलवर्धनं गतिदायकम्॥
शान्तिदं जनतारकं शरधारिणं गजगामिनम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
शार्ङ्गिणं कमलाननं कमलादृशं पदपङ्कजम्। श्यामलं रविभासुरं शशिसौख्यदं करुणार्णवम्॥
सत्पतिं नृपपालकं नृपवन्दितं नृपतिप्रियम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
निर्गुणं सगुणात्मकं नृपमण्डनं मतिवर्धनम्। अच्युतं पुरुषोत्तमं परमेष्ठिनं स्मितभाषिणम्॥
ईश्वरं हनुमन्नुतं कमलाधिपं जनसाक्षिणम्। त्वां भजे जगदीश्वरं नररूपिणं रघुनन्दनम्॥
ईश्वरोदितमेतदुत्तममादराच्छतनामकम्। यः पठेद् भुवि मानवस्तव भक्तिमांस्तपनोदये॥
त्वत्पदं निजबन्धुदारसुतैर्युतश्चिरमेत्य नः। सोऽस्तु ते पदसेवने बहुतत्परो मम वाक्यतः॥

(आनन्दरामायण, पूर्णकाण्ड ६। ३२—५१)

श्रीशिवजी कहते हैं—जो रघुवंशमें उत्पन्न, करुणाकी खान, आवागमनके विनाशक, पापापहारी, लक्ष्मीके पति, पक्षिराज गरुडपर सवार होनेवाले, जलरूपमें स्थित, परमेश्वर (जगत्‌के) पालक, भक्तजनोंका उद्धार करनेवाले, भव-बाधाके नाशक, शत्रुओंका संहार करनेवाले, नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो पृथिवीके पति, वनमाला-धारी, नील मेघ-सदृश श्यामकाय, पृथिवीको धारण करनेवाले, श्रीहरि, सत्त्व, रजस्, तमस्—इन तीनों गुणोंसे समन्वित, तुलसीके पति, मधुर स्वरसे सम्पन्न, शोभाका विस्तार करनेवाले, शरणदाता, मधु नामक दैत्यका वध करनेवाले, व्रजके रक्षक, नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो विट्ठलरूपसे मथुरामें स्थित, रजकके संहारक, गजको मारनेवाले, सत्पुरुषोंद्वारा संस्तुत, बकासुर, वृषासुर और अश्वरूपी केशी नामक राक्षसका वध करनेवाले, नन्दकुमार, वसुदेवके पुत्र, बलिके यज्ञमें गमन करनेवाले, देवताओंके रक्षक, मानवरूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ।

जो केशव, वानरोंद्वारा आवेष्टित, (वाली नामक) वानरका वध करनेवाले, मृगरूपी राक्षस मारीचके संहारक, शोभाशाली, ब्राह्मणोंके रक्षक, दैत्यों और दानवोंके वधकर्ता, बालरूपधारी, खर नामक राक्षसका वध करनेवाले, ऋषियोंद्वारा पूजित, मुनियोंद्वारा चिन्तित, नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो कल्याणकारी तथा जलमें शयन करनेवाले हैं, कुश जिनके बालक (पुत्र) हैं, रथ जिनका वाहन है, जो सरयूद्वारा नमस्कृत, पुष्पक विमानके प्रेमी और ब्राह्मणोंको प्रिय हैं, लव जिनका बालक (पुत्र) है, जो (वक्षःस्थलपर) लक्ष्मीको धारण करनेवाले, मधु नामक राक्षसके संहारक और भरतके ज्येष्ठ भ्राता हैं, जिनकी ध्वजापर गरुडका चिह्न वर्तमान रहता है, जो मानवरूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो गौओंके प्रेमी, यमलोकसे गुरुपुत्रको लाकर गुरुको प्रदान करनेवाले, वक्ताओंमें श्रेष्ठ, दयानिधान, भक्तोंके रक्षक, स्वजनोंके लिये संतोषदाता, देवताओंद्वारा पूजित, श्रुतियोंद्वारा संस्तुत, भोगदाता, स्वजनोंके लिये मुक्तिदायक, जनताको प्रसन्न करनेवाले, राजकुमार, मनुष्यरूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो चिद्घनस्वरूप, चिरजीवी, मणियोंकी माला धारण करनेवाले, वर प्रदान करनेके लिये उद्यत, सौन्दर्यशाली, धैर्य प्रदान करनेवाले, बलवर्धक, मोक्षदाता, शान्तिदायक, भक्तोंको तारनेवाले, बाणधारी, हाथीकी-सी चालसे चलनेवाले (अथवा हाथीकी सवारी करनेवाले), नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो शार्ङ्गधनुष धारण करनेवाले हैं; जिनके चरण और मुख कमल-सरीखे हैं, जो लक्ष्मीकी ओर निहारते रहते हैं, जिनके शरीरका रंग श्याम है, जो सूर्यके समान देदीप्यमान, चन्द्रमा-सरीखे सुखदाता, दयासागर, श्रेष्ठ स्वामी, राजाओंके रक्षक, राजाओंद्वारा वन्दित, राजाओंके लिये प्रिय, मानवरूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो निर्गुण एवं सगुणस्वरूप, राजाओंमें भूषणरूप, बुद्धिवर्धक, अपनी मर्यादासे च्युत न होनेवाले, पुरुषोंमें श्रेष्ठ, ब्रह्मस्वरूप, मुसकराते हुए बोलनेवाले, ऐश्वर्यशाली, हनुमान्द्वारा संस्तुत, लक्ष्मीके अधीश्वर, लोकसाक्षी, नररूपधारी जगदीश्वर हैं, उन आप रघुनन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो मनुष्य भूतलपर सूर्योदयकालमें शिवजीद्वारा कथित इस उत्तम शतनाम नामक स्तोत्रका आदरपूर्वक पाठ करेगा, उसकी आपके चरणोंमें भक्ति हो जायगी तथा वह मेरे कथनानुसार अपने बन्धु, स्त्री और पुत्रोंके साथ मेरे लोकमें आकर चिरकालतक आपके चरणोंकी सेवामें दृढ़तापूर्वक तत्पर हो जायगा।
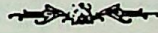
अत्रिमुनिकृत श्रीरामस्तुति

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलं॥ त्वदंघ्रि मूल ये नराः। भजंति हीन मत्सराः॥
भजामि ते पदांबुजं। अकामिनां स्वधामदं॥ पतंति नो भवार्णवे। वितर्क वीचि संकुले॥
निकाम श्याम सुंदरं। भवाम्बुनाथ मंदरं॥ विविक्त वासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा॥
प्रफुल्ल कंज लोचनं। मदादि दोष मोचनं॥ निरस्य इंद्रियादिकं। प्रयांति ते गतिं स्वकं॥
प्रलंब बाहु विक्रमं। प्रभोऽप्रमेय वैभवं॥ तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
निषंग चाप सायकं। धरं त्रिलोक नायकं॥ जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥
दिनेश वंश मंडनं। महेश चाप खंडनं॥ भजामि भाव वल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं॥
मुनींद्र संत रंजनं। सुरारि बृंद भंजनं॥ स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥
मनोज वैरि वंदितं। अजादि देव सेवितं॥ अनूप रूप भूपतिं। नतोऽहमुर्विजा पतिं॥
विशुद्ध बोध विग्रहं। समस्त दूषणापहं॥ प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥
नमामि इंदिरा पतिं। सुखाकरं सतां गतिं॥ पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं॥
भजे सशक्ति सानुजं। शची पति प्रियानुजं॥ व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्ति संयुताः॥

(रा॰ च॰ मा॰ ३। छं॰ ४)
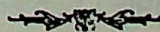
श्रीरामजन्म-रहस्य

जिस समय संसारमें दुराचार, दुर्विचारका परितः प्रसार होने लगता है, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, धैर्य, न्याय आदि मानवोचित सद्गुणोंका अपमान होने लगता है, दम्भका ही साम्राज्य तथा वेद-शास्त्रोक्त वर्णाश्रमधर्मका विलोप होने लगता है, दैत्य-दानवों या दैत्यप्राय कुपुरुषोंसे धरा व्याकुल हो जाती है, सत्पुरुष तथा देवगण अनीतिसे उद्विग्न हो उठते हैं, उस समय सर्वपालक भगवान् किसी रूपमें प्रकट होकर श्रुति-सेतुका पालन करते और अपने मनोहर, मङ्गलमय, परम पवित्र चरित्रोंका विस्तार करके प्राणियोंके लिये मोक्षका मार्ग प्रशस्त कर देते हैं।

अभिज्ञोंका मत है कि यदि भगवान्‌का विशुद्ध, सत्त्वमय, परम मनोहर, मधुर स्वरूप प्रकट न होता तो अदृश्य, अग्राह्य, अव्यपदेश्य परब्रह्मके साक्षात्कारकी बात ही जगत्‌से मिट जाती। भगवान्‌की मधुर मूर्ति एवं चरित्रोंमें मनके आसक्त हो जानेपर उसकी निर्मलता और एकाग्रता सहजमें ही सिद्ध हो जाती है। निर्मल एवं एकाग्र चित्त ही भगवान्‌के अचिन्त्य रूपके चिन्तनमें समर्थ होता है। जैसे अंजनद्वारा शुद्ध नेत्रसे सूक्ष्म वस्तुका परिज्ञान सुगमतासे हो जाता है, वैसे ही भगवच्चरित्र एवं उनके मधुर स्वरूपके परिशीलनसे निर्मल होकर चित्त सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भगवदीय रहस्योंको समझ लेता है।

इसके अतिरिक्त अमलात्मा परमहंस महामुनीन्द्रोंको प्रेमयोग-प्रदान करनेके लिये भी प्रभुके लीला-विग्रहका आविर्भाव होता है। इन्हीं सब भावोंको लेकर मधुमासके शुक्लपक्षकी नवमीको मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रका जन्म हुआ।

अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-नायक, भगवान् सर्वान्तरात्मा, सर्वशक्तिमान्‌की भ्रुकुटीके संकेतमात्रसे उनकी मायाशक्ति विश्वप्रपञ्चका सर्जन, पालन तथा संहार करती है। जैसे अयस्कान्त (चुम्बक) के सांनिध्यसे लौहमें हलचल होती है, वैसे ही भगवान्‌के सांनिध्य मात्रसे मायाशक्तिको चेतना प्राप्त होती है। जैसे झरोखोंमें सूर्य-किरणोंके सहारे निरन्तर परिभ्रमण करते हुए अपरिगणित त्रसरेणु दिखायी देते हैं, वैसे ही प्रकृतिपारदृश्वा लोकोत्तरपुरुष-धौरेयोंको भगवान्‌के सन्निधानमें अनन्त विश्व दिखायी देते हैं—**'यत्सन्निधौ चुम्बकलोहवद्धि जगन्ति नित्यं परितो भ्रमन्ति ॥'** भगवान् अपने पारमार्थिक रूपसे निराकार, निर्विकार, निष्कल, निरीह, निर्गुण होते हुए भी मायाशक्ति-युक्तरूपसे अनादिबद्ध, स्वांशभूत जीवोंपर कृपा करके उनके कल्याणार्थ विश्वके सर्जन एवं संहारादि लीलाओंमें प्रवृत्त होते हैं। मनीषी बड़े कुतूहलसे सकल विरुद्ध धर्माश्रय भगवान्‌के इस कौतुकको देखकर कहते हैं—

त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो वदन्त्यनीहादगुणादविक्रियात्।
त्वयीश्वरे ब्रह्मणि नो विरुद्ध्यते त्वदाश्रयत्वादुपचर्यते तथा ॥

अर्थात्—हे नाथ ! विज्ञजन निर्गुण, निरीह, अविक्रियसे ही इस विविध वैचित्र्योपेत विश्वका जन्म, स्थिति तथा संहार बतलाते हैं। भला जो निरीह तथा सर्वथा निष्क्रिय है वही निरन्तर चाञ्चल्यपूर्ण विश्वकी सृष्टि करनेवाला है—यह कैसे ?

परंतु भगवान्‌के ईश्वर तथा ब्रह्म इन दो रूपोंमें इन विरुद्ध धर्मोंके सामञ्जस्य होनेमें कोई भी आपत्ति नहीं है। मायायुक्त ऐश्वररूपमें विश्वनिर्माणके उपयुक्त निखिल क्रियाएँ हैं, परंतु मायारहित ब्रह्मरूपमें निरी निरीहता एवं निष्क्रियता ही है। अर्थात् मायाशक्तिके सहारे होनेवाले समस्त व्यवहारोंका मायाधिष्ठान, स्वप्रकाश, विशुद्ध ब्रह्ममें उपचार होता है। अस्तु, वही व्यापक ब्रह्म निरञ्जन, निर्गुण, विगत-विनोद, भक्तप्रेमवश श्रीमद्राघवेन्द्र रामचन्द्ररूपमें श्रीकौसल्याम्बाके मङ्गलमय अङ्कमें व्यक्त होता है।

निखिल ब्रह्माण्ड-मण्डल जिसके परतन्त्र है, वह मायापति भगवान् भास्वती भगवती श्रीकृपादेवीके पराधीन है और वह अनुकम्पा महारानी भी दीनताके परतन्त्र है। भगवान्‌के यहाँ दीनोंकी खूब सुनवायी होती है।

जगद्विधेयं ससुरासुरं ते भवान् विधेयो भगवन् कृपायाः।
सा दीनताया नमतां विधेया ममास्त्ययत्नोपनतैव सेति ॥

जो दीनता अन्यत्र अवहेलनाकी दृष्टिसे देखी जाती है, वही भगवान्‌के यहाँ परमादरणीया है। शोक, मोह, जरा,

मरण, आधि-व्याधि, दारिद्र्य-दुःखोंसे उत्पीड़ित प्राणियोंके यहाँ दीनताकी कमी नहीं है। उसीका दुखड़ा सर्वत्र गाया जाता है, परंतु दुर्भाग्यवश वह गाया जाता है ऐसी जगह जहाँ कुछ मिलना-जुलना तो दूर रहा, फूटे मुँहसे सहानुभूतिका भी एक शब्द नहीं निकलता। वहाँ तो दीनको अवहेलनाओंका ही पात्र बनना पड़ता है। परंतु 'दीनानाथ' होनेके नाते भगवान् दीनताके ग्राहक हैं। उनके सामने दीनता प्रकट करनेमें तो कृपणता न होनी चाहिये। जैसे संघर्षके द्वारा व्यापक अग्निका सगुण साकार रूपमें प्राकट्य होता है, किंवा शैत्यके सम्बन्धसे जलका ओला हो जाता है, वैसे ही प्रेमियोंके प्रेम-प्राखर्यसे विशुद्ध सत्त्वमयी श्रीकौसल्याम्बासे पूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान्‌का प्राकट्य होता है। यज्ञपुरुषद्वारा समर्पित चरुके विभागानुसार भगवान्‌का ही श्रीराम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्नरूपमें आविर्भाव होता है।
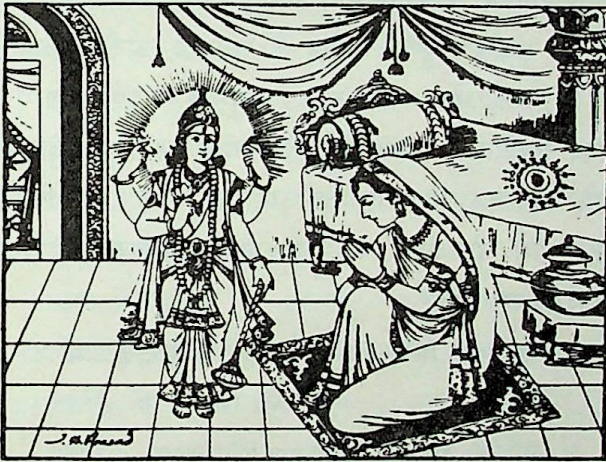
कुछ महानुभावोंका मत है कि साङ्गोपाङ्ग शेषशायी भगवान्‌का आविर्भाव चार रूपमें होता है। साक्षात् भगवान् श्रीरामरूपमें और शेष, शंख, चक्र ये लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न-रूपमें प्रकट होते हैं। आधे अंशमें राम और आधेमें लक्ष्मण-प्रभृति तीनों भ्राता। दूसरे शब्दोंमें यह भी कहा जा सकता है कि सप्रपञ्च ब्रह्मका भरतादि तीन रूपमें प्राकट्य हुआ और निष्प्रपञ्च ब्रह्मका श्रीरामरूपमें आविर्भाव हुआ।

प्रणवके 'अ' 'उ' 'म्' इन तीन मात्राओंके वाच्य विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृतका शत्रुघ्न, लक्ष्मण तथा भरतरूपमें और अर्द्धमात्राका अर्थ तुरीयपाद या वाच्यवाचकातीत, सर्वाधिष्ठान परम तत्त्वका श्रीरामरूपमें प्रादुर्भाव हुआ। निष्प्रपञ्च अर्द्धमात्राका अर्थ तुरीय तत्त्व ही चरुके अर्द्ध अंशसे और शेष तीन मात्राओंके अर्थ सप्रपञ्च तीनों तत्त्व चरुके अर्द्ध अंशसे व्यक्त हुए हैं। प्रणवकी जैसे साढ़े तीन मात्रा मानी गयी है, वैसे ही सोलह मात्रा भी मानी जाती है। **'अकारो वै सर्वा वाक्।'** समस्त वाक्योंका अन्तर्भाव अकारमें ही होता है और समस्त वाक्योंका आविर्भाव प्रणवसे ही होता है। अतः प्रणवमें ही सोलह मात्राकी कल्पना करके उसके सोलह वाच्य स्थिर किये गये हैं। जाग्रत्-अवस्थाका अभिमानी व्यष्टि विश्व और समष्टि स्थूल प्रपञ्चका अभिमानी विराट् होता है। सूक्ष्म प्रपञ्च और स्वप्नावस्थाका अभिमानी तैजस और हिरण्यगर्भ एवं कारण प्रपञ्च, सुषुप्ति-अवस्थाका अभिमानी प्राज्ञ और अव्याकृत होता है। इन सभी कल्पनाओंका अधिष्ठान शुद्ध ब्रह्म तुरीय तत्त्व होता है।

इस पक्षमें 'तुरीय विराट्' शत्रुघ्न, 'तुरीय हिरण्यगर्भ' लक्ष्मण, 'तुरीय अव्याकृत' भरत और 'तुरीय तुरीय' श्रीमद्राघवेन्द्र रामचन्द्र-रूपमें प्रकट होते हैं, और उनकी माधुर्याधिष्ठात्री महाशक्ति, श्रीजनक-नन्दिनीरूपमें प्रकट होती हैं। सर्वथा पूर्णतम पुरुषोत्तम वेदान्तवेद्य भगवान्‌का ही श्रीरामचन्द्र-रूपमें प्राकट्य होता है तभी तो उनके दर्शन, स्पर्शन, श्रवण, अनुगमन मात्रसे प्राणियोंकी परमगति हो जाती है—

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥

जो परमतत्त्व विषय, करण, देवताओं तथा जीवको भी सत्ता-स्फूर्ति प्रदान करनेवाला है, वही श्रीरामचन्द्ररूपमें प्रकट होता है।

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक तें एक सचेता॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई॥

समष्टि-व्यष्टि, स्थूल-सूक्ष्मकारण समस्त प्रपञ्चमय क्षेत्रके कूटस्थ निर्विकार भासक ही राम हैं— ***'जगत प्रकास्य प्रकासक रामू।'***

जिनके अनुग्रहसे एवं जिनमें सब रमण करते हैं और जो सर्वान्तरात्मा रूपसे सबमें रमण करते हैं वे ही मर्यादापुरुषोत्तम रामचन्द्र हैं। जिन आनन्दसिन्धु सुखराशिके एक तुषारसे अनन्त ब्रह्माण्ड आनन्दित होता है वे ही जीवोंके जीवन, प्राणोंके प्राण, आनन्दके भी आनन्द भगवान् 'राम' हैं।

(भक्ति-सुधा)

प्रसाद

भगवान् श्रीरामके परम भक्त एवं उपासक—भगवान् सदाशिव

हस्तेऽक्षमाला हृदि कृष्णतत्त्वं
जिह्वाग्रभागे वरराममन्त्रम्।
यन्मस्तके केशवपादतीर्थं
शिवं महाभागवतं नमामि ॥

'जिनके हस्तकमलमें रुद्राक्षकी माला है, हृदयमें श्रीकृष्ण-तत्त्व विराजमान है, जिह्वाके अग्रभागमें निरन्तर सुन्दर राम-मन्त्र है, जिनके मस्तकपर भगवान् नारायणके चरण-कमलोंसे निकली गङ्गा विराजमान है, ऐसे महाभागवत, परम भक्त, उपासक श्रीशिवजीको नमस्कार है।'

तीनों लोकोंमें यदि श्रीरामका कोई परम भक्त, परमोपासक है तो वह वैष्णवोंमें अग्रगण्य वैष्णवाचार्य आदि-अमर कथावक्ता, वैष्णवकुलभूषण, शशाङ्क-शेखर आदिदेव महादेव ही हैं। श्रीशिवजी महामन्त्र 'श्रीराम'का अहर्निश जप करते रहते हैं।

भगवान् शंकर रामायणके आदि आचार्य हैं। उन्होंने राम-चरित्रका वर्णन सौ करोड़ श्लोकोंमें किया है। श्रीशिवजीने देवता, दैत्य और ऋषि-मुनियोंमें श्लोकोंका समान बँटवारा किया तो हर एकके भागमें तैंतीस करोड़, तैंतीस लाख, तैंतीस हजार, तीन सौ तैंतीस श्लोक आये। कुल निन्यानबे करोड़, निन्यानबे लाख, निन्यानबे हजार नौ सौ निन्यानबे श्लोक वितरित हुए। एक श्लोक शेष बचा। देवता, दैत्य, ऋषि—ये तीनों एक श्लोकके लिये लड़ने-झगड़ने लगे। यह श्लोक अनुष्टुप् छन्दमें था। अनुष्टुप् छन्दमें बत्तीस अक्षर होते हैं। श्रीशिवजीने प्रत्येकको दस-दस अक्षर वितरित किये। तीस अक्षर बँट गये तथा दो अक्षर शेष बचे। तब शिवजीने कहा—ये दो अक्षर अब किसीको नहीं दूँगा। ये अक्षर मैं अपने कण्ठमें ही रखूँगा। ये दो अक्षर ही 'रा' और 'म' अर्थात् रामका नाम है, जो वेदोंका सार है।

राम-नाम अति सरल है, अति मधुर है, इसमें अमृतसे भी अधिक मिठास है। यह अमर मन्त्र है, शिवजीके कण्ठ तथा जिह्वाग्रभागमें विराजमान है, इसीलिये जब सागर-मन्थनके समय हालाहल-पान करते समय शिव-भक्तोंमें हाहाकार मच गया, तब भगवान् भूतभावन भवानीशंकरने सबको सान्त्वना—आश्वासन देते हुए कहा—

श्रीरामनामामृतमन्त्रबीजं
संजीवनी चेन्मसि प्रविष्टा।
हालाहलं वा प्रलयानलं वा
मृत्योर्मुखं वा विशतां कुतो भीः ॥

(आनन्दरामायण, जन्मकाण्ड ६। ४३)

भगवान् श्रीरामका नाम सम्पूर्ण मन्त्रोंका बीज मूल है, वह मेरे सर्वाङ्गमें पूर्णतः प्रविष्ट हो चुका है, अतः हालाहल विष हो, प्रलयानल-ज्वाला हो या मृत्युमुख ही क्यों न हो मुझे इनका किंचित् भी भय नहीं है।' यह कहते हुए शिवजी 'विष'-पान कर गये। वह विष अमृत बन गया। उसी दिनसे उनका नाम 'नीलकण्ठ' पड़ गया। और सब देव हैं, शिवजी 'महादेव' बन गये।

नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

(रा० च० मा० १। १९। ८)

महामंत्र जोइ जपत महेसू।

(रा० च० मा० १। १९। ३)

वह राम-नाम ही है जिसे वे माता पार्वतीके साथ निरन्तर जपते रहते हैं। यथा—

अहं भवन्नाम गृणन् कृतार्थो
वसामि काश्यामनिशं भवान्या।
मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं
दिशामि मन्त्रं तव रामनाम ॥

(अध्यात्मरामा० ६। १५। ५२)

यही नहीं आज भी काशीमें विराजमान भगवान् शिव मरणासन्न प्राणियोंको मुक्ति दिलानेके लिये उनके कानमें तारक मन्त्र—रामनामका उपदेश देते हैं। अनन्त जीवोंको भी तारते

हैं। यथा—

रामनाम्ना शिवः काश्यां भूत्वा पूतः शिवः स्वयम्।
स निस्तारयते जीवराशीन् काशीश्वरः सदा॥

(शिवसंहिता २।१४)

कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

(रा० च० मा० १।११९।१-२)

महिमा राम नाम कै जान महेस। देत परमपद कासी करि उपदेस॥

(बरवै रामा० ७।५३)

उपदिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ॥
रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति।

(आनन्दरामायण, यात्राकां० २।१५-१६)

भगवान् शिव अपने प्राण-धन भगवान् श्रीरामका अहर्निश निरन्तर नाम-स्मरण करते रहते हैं। श्रीराम-नाम तारक तथा ब्रह्मसंज्ञक है और ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है। यथा—

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञकम्।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः॥

भगवान् शिव भगवान् श्रीराम तथा उनके नामकी महिमा पार्वतीजीको बताते हुए कहते हैं—

आपदामपहर्तारं दातारं सर्वसम्पदाम्।
लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्॥
भर्जनं भवबीजानामर्जनं सुखसम्पदाम्।
तर्जनं यमदूतानां राम रामेति गर्जनम्॥
रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥
राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे।
सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥

(रामरक्षास्तोत्र ३५—३८)

'आपत्तियोंको हरनेवाले तथा सब प्रकारकी सम्पत्ति प्रदान करनेवाले लोकाभिराम भगवान् रामको मैं बारंबार नमस्कार करता हूँ। 'राम-राम' ऐसा घोष करना सम्पूर्ण संसारबीजोंको भून डालनेवाला, समस्त सुख-सम्पत्तिकी प्राप्ति करानेवाला तथा यमदूतोंको भयभीत करनेवाला है। राजाओंमें श्रेष्ठ श्रीरामजी सदा विजयको प्राप्त होते हैं। मैं लक्ष्मीपति भगवान् रामका भजन करता हूँ। जिन रामचन्द्रजीने सम्पूर्ण राक्षससेनाका ध्वंस कर दिया था, मैं उनको प्रणाम करता हूँ। रामसे बड़ा और कोई आश्रय नहीं है। मैं उन रामचन्द्रजीका दास हूँ। मेरा चित्त सदा राममें ही लीन रहे; हे राम! आप मेरा उद्धार कीजिये। (श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—) हे सुमुखि! रामनाम विष्णुसहस्रनामके तुल्य है। मैं सर्वदा 'राम, राम, राम'—इस प्रकार मनोरम रामनाममें ही रमण करता हूँ।'

रामावतारमें सीता-हरण होनेपर जब श्रीराम वन-वन रोते-बिलखते, वृक्षोंसे पूछते, चिपटते, लताओंसे लिपटते अपनी प्राण-प्यारी सीताके वियोगमें इधर-उधर ढूँढ़ रहे थे, ऐसे श्रीरामजीके दर्शन शिवजीको हुए। उनके मनमें आनन्द हुआ। कपोलोंमें मन्द हास्यकी रेखा खिंच गयी कि आज आनन्द रुदन कर रहा है। परमात्मा कैसा नाटक कर रहे हैं? मनुष्य-जैसी लीला कर रहे हैं। श्रीशिवजीने सोचा यदि मैं सम्मुख जाकर वन्दन करूँगा तो मेरे भगवान्‌को संकोच होगा। शिवजी वट-वृक्षकी ओटसे परमात्माका दर्शन कर रहे थे। श्रीअङ्गमें रोमाञ्च हो रहा था, आँखोंसे अश्रुपात हो रहा था।

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन॥
चले जात सिव सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपानिकेता॥

(रा० च० मा० १।५०।३-४)

श्रीशिवजीने मन-ही-मनमें ***'जय सच्चिदानंद जग पावन'*** कहकर दूरसे प्रणाम किया। वन्दन कर जय-जयकार किया। सतीजीको आश्चर्य हुआ, पूछा—'महाराज! आप किसे प्रणाम कर रहे हैं?' श्रीशिवजीने कहा—'ये मेरे इष्टदेव हैं। इनका दर्शन कर रहा हूँ। अपने रामजीका वन्दन कर रहा हूँ।' सतीजीने पुनः पूछा—यह जो रोते-रोते जा रहे हैं, आपके इष्टदेव हैं? श्रीशिवजीने कहा—'हाँ! यही मेरे इष्टदेव हैं। ये परमात्मा हैं।'

जब-जब भगवान्‌ने अवतार लिया, तब-तब भगवान् श्रीशंकर अपने आराध्यके बाल-रूपके दर्शनहेतु विचित्र, विभिन्न वेष बनाकर अवध आदि क्षेत्रोंमें आये। रामावतारमें श्रीशंकरजी काकभुशुण्डिको बालक बनाकर और स्वयं वृद्ध ज्योतिषीका वेष धारण कर अयोध्याके रनिवासमें प्रवेश कर

गये। कौसल्यादि माताओंने शिशु रामको ज्योतिषीकी गोदमें बैठा दिया, तब पुलकित होकर शंकरजीने उनका हाथ देखा, चरण देखे, गोदमें खिलाया—

काकभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥

(रा० च० मा० १।१९६।४)

अवध आजु आगमी एकु आयो।
करतल निरखि कहत सब गुनगन, बहुतन्ह परिचौ पायो॥
बूढ़ो बड़ो प्रमानिक ब्राह्मन संकर नाम सुहायो।
सँग सिसु सिष्य, सुनत कौसल्या भीतर भवन बुलायो॥

(गीतावली, बालकाण्ड १७)

जब श्रीरामजीने द्वापरमें श्रीकृष्णावतार लिया तो बाबा भोलेनाथ अलख जगाते हुए, बाघम्बर पहने शृंगीनाद करते हुए जा पहुँचे व्रज-गोकुलमें नन्दबाबाके द्वार। यशोदा मैयाने बाबाका भयंकर रूप, लिपटे हुए सर्प, अंगमें भस्म, लंबी जटाएँ, लाल नेत्र देखकर लालाका दर्शन नहीं कराया। बाबाने द्वारपर धूनी लगा दी, शृंगीनाद किया, लाला डर गया, कन्हैया रोने लगा, चुप ही नहीं हो रहा है, लालाको नजर लग गयी है यह समझकर सखीको भेजकर बाबाको बुलवाया। बाबाने लाला कन्हैयाको गोदमें लिया। चरणोंको अपनी जटासे लगाया, चुम्बन किया, लाला हँसने लगा, नजर उतर गयी। आज भी नन्दगाँवमें बाबा 'नन्देश्वर' नामसे विराजमान हैं।

यही नहीं अपने इष्ट श्रीरामकी अनन्य सेवाकी उत्कट अभिलाषासे भगवान् शिवजीने श्रीहनुमान्‌के रूपमें अवतार लिया। तन, मन, धनसे श्रीरामकी निःस्वार्थ भावसे सेवा की। विभीषणने मोतियों, हीरोंकी माला भेंट की, उसे दाँतोंसे तोड़ दिया। विभीषणको बुरा लगा, अपना अपमान समझा। परीक्षा ली तो वक्षःस्थल चीरकर दिखला दिया कि राम मेरे रोम-रोममें बसे हुए हैं।

जिस प्रकार भगवान् शंकरके इष्ट राम हैं, उपास्य राम हैं, उसी प्रकार श्रीरामके इष्ट, उपास्य भगवान् शंकर हैं। परस्पर एक-दूसरेके इष्ट एवं उपास्य हैं। मूलतः जो राम हैं वे ही श्रीशिव हैं और जो शिव हैं वे ही श्रीराम हैं। तात्त्विक दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं है तथापि भक्तोंको आनन्दित करनेके लिये और स्वयं भी आनन्दित होनेके लिये इस प्रकारकी उपास्य-उपासक-भावसे, पूज्य-पूजक-भावसे अनेक लीलाएँ भगवान् किया ही करते हैं। भक्तोंके परमाराध्य उस हरि-हरात्मक स्वरूपको नमस्कार है—

'एकात्मने नमस्तुभ्यं हरये च हराय च।'

(आचार्य गोस्वामी श्रीरामगोपालजी)

रामहृदय श्रीहनुमान्‌जीकी भक्तिका स्वरूप

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

प्रनवउँ पवनकुमार खल बन पावक ग्यानघन।
जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर॥

भगवान् शंकरके अंशसे वायुके द्वारा कपिराज केसरीकी पत्नी अञ्जनामें हनुमान्‌जीका प्रादुर्भाव हुआ। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी सेवा शंकरजी अपने रूपसे तो कर नहीं सकते थे, अतएव उन्होंने ग्यारहवें रुद्ररूपको इस प्रकार वानररूपमें अवतरित किया। जन्मके कुछ ही समय पश्चात् महावीर हनुमान्‌जीने उगते हुए सूर्यको कोई लाल-लाल फल समझा और उसे निगलने आकाशकी ओर दौड़ पड़े। उस दिन सूर्यग्रहणका समय था। राहुने देखा कि कोई दूसरा ही सूर्यको पकड़ने आ रहा है, तब वह उस आनेवालेको पकड़ने चला, किंतु जब वायुपुत्र उसकी ओर बढ़े, तब वह डरकर भागा। राहुने इन्द्रसे पुकार की। ऐरावतपर चढ़कर इन्द्रको आते देख पवनकुमारने ऐरावतको कोई बड़ा-सा सफेद फल समझा और उसीको पकड़ने लपके। घबराकर देवराजने वज्रसे प्रहार किया। वज्रसे इनकी ठोड़ी (हनु) पर चोट लगनेसे वह कुछ टेढ़ी हो गयी, इसीसे ये हनुमान् कहलाने लगे। वज्र लगनेपर ये मूर्च्छित होकर गिर पड़े। पुत्रको मूर्च्छित देखकर वायुदेव बड़े कुपित हुए। उन्होंने अपनी गति बंद कर ली। श्वास रुकनेसे देवता भी व्याकुल हो गये। अन्तमें हनुमान्‌को सभी लोकपालोंने अमर होने तथा अग्नि-जल-वायु आदिसे अभय होनेका वरदान देकर वायुदेवको संतुष्ट किया।

जातिस्वभावसे चञ्चल हनुमान् ऋषियोंके आश्रमोंमें वृक्षों-को सहज चपलतावश तोड़ देते तथा आश्रमकी वस्तुओंको अस्त-व्यस्त कर देते थे। अतः ऋषियोंने इन्हें शाप दिया—'तुम अपना बल भूले रहोगे। जब कोई तुम्हें स्मरण दिलायेगा, तभी तुम्हें अपने बलका भान होगा।' तबसे ये सामान्य वानरकी भाँति रहने लगे। माताके आदेशसे सूर्यनारायणके समीप जाकर वेद-वेदाङ्ग-प्रभृति समस्त शास्त्रों एवं कलाओंका इन्होंने अध्ययन किया। उसके पश्चात् किष्किन्धामें आकर सुग्रीवके साथ रहने लगे। सुग्रीवने इन्हें अपना निजी सचिव बना लिया। जब बालिने सुग्रीवको मारकर निकाल दिया, तब भी ये सुग्रीवके साथ ही रहे। सुग्रीवके विपत्तिके साथी होकर ऋष्यमूकपर ये उनके साथ ही रहते थे।

बचपनमें माता अञ्जनासे बार-बार आग्रहपूर्वक इन्होंने अनादि रामचरित सुना था। अध्ययनके समय वेदमें, पुराणोंमें श्रीरामकथाका अध्ययन किया था। किष्किन्धा आनेपर यह भी ज्ञात हो गया कि परात्पर प्रभुने अयोध्यामें अवतार धारण कर लिया। अब वे बड़ी उत्कण्ठासे अपने स्वामीके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगे। श्रीमद्भागवतमें कहा गया है—'जो निरन्तर भगवान्‌की कृपाकी आतुर प्रतीक्षा करते हुए अपने प्रारब्धसे प्राप्त सुख-दुःखको संतोषपूर्वक भोगते रहकर हृदय, वाणी तथा शरीरसे भगवान्‌को प्रणाम करता रहता है—हृदयसे भगवान्‌का चिन्तन, वाणीसे भगवान्‌के नाम-गुणका गान-कीर्तन और शरीरसे भगवान्‌का पूजन करता रहता है, वह मुक्तिपदका स्वत्वाधिकारी हो जाता है।' श्रीहनुमान्‌जी तो जन्मसे ही मायाके बन्धनोंसे सर्वथा मुक्त थे। वे तो अहर्निश अपने स्वामी श्रीरामके ही चिन्तनमें लगे रहते थे। अन्तमें श्रीराम अपने छोटे भाई लक्ष्मणके साथ रावणके द्वारा सीताजीके चुरा लिये जानेपर उन्हें ढूँढ़ते हुए ऋष्यमूकके पास पहुँचे। सुग्रीवको शङ्का हुई कि इन राजकुमारोंको बालिने मुझे मारनेको न भेजा हो। हनुमान्‌जीको परिचय जाननेके लिये उन्होंने भेजा। विप्रवेष धारणकर हनुमान्‌जी आये और परिचय पूछकर जब अपने स्वामीको पहचाना, तब वे उनके चरणोंपर गिर पड़े। वे रोते-रोते कहने लगे—

एकु मैं मंद मोह बस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥

श्रीरामने उठाकर उन्हें हृदयसे लगा लिया। तभीसे हनुमान्‌जी श्रीअवधेशकुमारके चरणोंके समीप ही रहे। हनुमान्‌जीकी प्रार्थनासे भगवान्‌ने सुग्रीवसे मित्रता की और बालिको मारकर सुग्रीवको किष्किन्धाका राज्य दिया। राज्यभोगमें सुग्रीवको प्रमत्त होते देख हनुमान्‌जीने ही उन्हें सीतान्वेषणके लिये सावधान किया। वे पवनकुमार ही वानरों-को एकत्र कर लाये। श्रीरामजीने उनको ही अपनी मुद्रिका दी। सौ योजन समुद्र लाँघनेका प्रश्न आनेपर जब जाम्बवन्तजीने हनुमान्‌जीको उनके बलका स्मरण दिलाकर कहा कि 'आपका तो अवतार ही रामकार्य सम्पन्न करनेके लिये हुआ है,' तब अपनी शक्तिका बोधकर केसरीकिशोर उठ खड़े हुए। देवताओंके द्वारा भेजी हुई नागमाता सुरसाको संतुष्ट करके समुद्रमें छिपी राक्षसी सिंहिकाको मारकर हनुमान्‌जी लंका पहुँचे। द्वाररक्षिका लंकिनीको एक घूँसेमें सीधा करके छोटा रूप धारणकर ये लंकामें रात्रिके समय प्रविष्ट हुए। विभीषणजीसे पता पाकर अशोकवाटिकामें जानकीजीके दर्शन किये। उनको आश्वासन देकर अशोकवनको उजाड़ डाला। रावणके भेजे राक्षसों तथा रावणपुत्र अक्षयकुमारको मार दिया। मेघनाद इन्हें किसी प्रकार बाँधकर राजसभामें ले गया। वहाँ रावणको भी हनुमान्‌जीने अभिमान छोड़कर भगवान्‌की शरण लेनेकी शिक्षा दी। राक्षसराजकी आज्ञासे इनकी पूँछमें आग लगा दी गयी। इन्होंने उसी अग्निसे सारी लंका फूँक दी। सीताजीसे चिह्नस्वरूप चूड़ामणि लेकर भगवान्‌के समीप लौट आये।

समाचार पाकर श्रीरामने युद्धके लिये प्रस्थान किया। समुद्रपर सेतु बाँधा गया। संग्राम हुआ और अन्तमें रावण अपने समस्त अनुचर, बन्धु-बान्धवोंके साथ मारा गया। युद्धमें श्रीहनुमान्‌जीका पराक्रम, उनका शौर्य, उनकी वीरता सर्वोपरि रही। वानरी सेनाके संकटके समय वे सदा सहायक रहे। राक्षस उनकी हुंकारसे ही काँपते थे। लक्ष्मणजी जब मेघनादकी शक्तिसे मूर्च्छित हो गये, तब मार्गमें पाखण्डी कालनेमिको मारकर द्रोणाचलको हनुमान्‌जी उखाड़ लाये और इस प्रकार संजीवनी ओषधि आनेसे लक्ष्मणजीको चेतना प्राप्त हुई। मायावी अहिरावण जब माया करके राम-लक्ष्मणको युद्धभूमिसे चुरा ले गया, तब पाताल जाकर अहिरावणका वध

करके हनुमान्‌जी श्रीरामजीको भाई लक्ष्मणजीके साथ ले आये। रावणवधका समाचार श्रीजानकीजीको सुनानेका सौभाग्य और श्रीराम लौट रहे हैं—यह आनन्दमयी समाचार भरतजीको देनेका गौरव भी प्रभुने अपने प्रिय सेवक हनुमान्‌जीको ही दिया।

हनुमान्‌जी विद्या, बुद्धि, ज्ञान तथा पराक्रमकी मूर्ति हैं, किंतु इतना सब होनेपर भी अभिमान उन्हें छूतक नहीं गया। जब वे लंका जलाकर अकेले ही रावणका मान-मर्दन करके प्रभुके पास लौटे और प्रभुने पूछा कि 'भुवन-विजयी रावणकी लंकाको तुम कैसे जला सके?' तब उन्होंने उत्तर दिया—

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥
सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

हनुमान्‌जीकी भक्ति तो अतुलनीय है। अयोध्यामें राज्याभिषेक हो जानेपर भगवान्‌ने सबको पुरस्कृत किया। सबसे अमूल्य अयोध्याके कोषकी सर्वश्रेष्ठ मणियोंकी माला श्रीजानकीजीने अपने कण्ठसे उतारकर हनुमान्‌जीके गलेमें डाल दी। हनुमान्‌जी मणियोंको ध्यानसे देख-देखकर तोड़ने लगे और मुखमें डालकर फोड़ने भी लगे। दुर्लभ रत्नोंको इस प्रकार नष्ट होते देख कुछ लोगोंको बड़ा कष्ट हुआ। कुछने उन्हें रोका। हनुमान्‌जीने कहा—'मैं इनमें भगवान्‌का नाम तथा उनकी मूर्ति ढूँढ़ रहा हूँ। जिस वस्तुमें मेरे स्वामी श्रीसीतारामका नाम न हो, जिसमें उनकी मूर्ति न हो, वह तो व्यर्थ है।' प्रश्न करनेवालेने पूछा—'क्या आपके शरीरमें वह मूर्ति और नाम है?' तुरंत अपने नखोंसे हनुमान्‌जीने छातीका चमड़ा फाड़कर सबको दिखाया। उनके रोम-रोममें 'राम' यह परम दिव्य नाम अङ्कित था और उनके हृदयमें श्रीजनकनन्दिनीजीके साथ सिंहासनपर बैठे महाराजाधिराज श्रीअवधेशकी भुवनसुन्दर मूर्ति विराजमान थी। सब लोग 'जय-जयकार' करने लगे। भगवान्‌ने हनुमान्‌जीको हृदयसे लगा लिया।

हनुमान्‌जी आजन्म नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं। व्याकरणके महान् पण्डित हैं, वेदज्ञ हैं, ज्ञानिशिरोमणि हैं, बड़े विचारशील, तीक्ष्णबुद्धि तथा अतुलपराक्रमी हैं। श्रीहनुमान्‌जी बहुत निपुण संगीतज्ञ और गायक भी हैं। एक बार एक देव-ऋषि-दानवोंके महान् सम्मेलनमें जलाशयके तटपर भगवान् शंकर तथा देवर्षि नारदजी आदि गा रहे थे। अन्यान्य देवर्षि-दानव भी योग दे रहे थे। इतनेमें ही हनुमान्‌जीने मधुर स्वरसे ऐसा सुन्दर गान आरम्भ किया कि जिसे सुनकर उन सबके मुख म्लान हो गये। जो बड़े उत्साहसे गा-बजा रहे थे और वे सभी अपना-अपना गान छोड़कर मोहित हो गये तथा चुप होकर सुनने लगे। उस समय केवल हनुमान्‌जी ही गा रहे थे—

म्लानमम्लानमभवत् कृशाः पुष्टास्तदाभवन्।
स्वां स्वां गीतिमतः सर्वे तिरस्कृत्यैव मूर्च्छिताः॥
तूष्णीम्भूतं समभवद् देवर्षिगणदानवम्।
एकः स हनुमान् गाता श्रोतारः सर्व एव ते॥

(पद्मपुराण, पातालखण्ड)

जबतक पृथ्वीपर श्रीरामकी कथा रहेगी, तबतक पृथ्वीपर रहनेका वरदान उन्होंने स्वयं प्रभुसे माँग लिया है। श्रीरामजीके अश्वमेधयज्ञमें अश्वकी रक्षा करते समय जब अनेक महासंग्राम हुए, तब उनमें हनुमान्‌जीका पराक्रम ही सर्वत्र विजयी हुआ। महाभारतमें भी केसरीकुमारका चरित है। वे अर्जुनके रथकी ध्वजापर बैठे रहते थे। उनके बैठे रहनेसे अर्जुनके रथको कोई पीछे नहीं हटा सकता था। कई अवसरोंपर उन्होंने अर्जुनकी रक्षा भी की। एक बार भीम, अर्जुन और गरुडजीको आपने अभिमानसे भी बचाया था।

कहते हैं कि हनुमान्‌जीने अपने वज्रनखसे पर्वतकी शिलाओंपर एक रामचरित-काव्य लिखा था। उसे देखकर महर्षि वाल्मीकिको दुःख हुआ कि यदि यह काव्य लोकमें प्रचलित हुआ तो मेरे आदिकाव्यका समादर न होगा। ऋषिको संतुष्ट करनेके लिये हनुमान्‌जीने वे शिलाएँ समुद्रमें डाल दीं। सच्चे भक्तमें यश, मान, बड़ाईकी इच्छाका लेश भी नहीं होता। वह तो अपने प्रभुका पावन यश ही लोकमें गाता है।

श्रीरामकथा-श्रवण, राम-नाम-कीर्तनके हनुमान्‌जी अनन्यप्रेमी हैं। जहाँ भी राम-नामका कीर्तन या राम-कथा होती है, वहाँ वे गुप्तरूपसे आरम्भमें ही पहुँच जाते हैं। दोनों हाथ जोड़कर सिरसे लगाये सबसे अन्ततक वहाँ वे खड़े ही रहते हैं। प्रेमके कारण उनके नेत्रोंसे बराबर आँसू झरते रहते हैं। उन अनन्य तथा अतुलनीय श्रीरामभक्तके पावन पद-कमलोंमें अनन्त नमस्कार।

श्रीसनकादिमुनियोंकी विलक्षण प्रेममयी राम-भक्ति

राम चरन पंकज प्रिय जिन्हही। बिषय भोग बस करहिं कि तिन्हही ॥

× × × ×

रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़ भागी ॥

श्रीसनकादि (सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन) ब्रह्माजीके मानसपुत्र हैं। ब्रह्माजीने अपनी शक्तिके साथ निर्मल अन्तःकरण होकर इनकी सृष्टि की। ये देखनेमें तो सदा पाँच वर्षके बालक-जैसे लगते हैं; किंतु अवस्थामें शंकरजीसे भी बड़े हैं। इनके मुखमें निरन्तर '**श्रीहरिः शरणम्**' मन्त्र रहता है। ये अद्भुत तेजोमयी दीप्तिसे सम्पन्न, सुन्दर गुणों और शीलसे युक्त तथा नित्य ब्रह्मानन्दमें लवलीन रहते हैं। भगवान्‌के गुणोंका गान, हरिकीर्तन, अध्यात्मचिन्तन तथा भगवत्प्रेम ही इनका मुख्य ध्येय है। वास्तवमें चारों बालकोंके रूपमें चारों वेद ही अवतरित हुए हैं। ये मुनि समदर्शी और सर्वत्र अभेदबुद्धि रखनेवाले हैं—

ब्रह्मानंद सदा लयलीना। देखत बालक बहुकालीना ॥
रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा ॥

(रा० च० मा० ७ । ३२ । ४-५)

जब ब्रह्माजीने सृष्टिके आरम्भमें इन्हें मनोमय संकल्पसे उत्पन्न किया और सृष्टि बढ़ानेके लिये कहा, तब इन्होंने स्वीकार नहीं किया। इनका मन तो सर्वथा भगवान्‌के आत्मा-रामगणाकर्षी मुनि-मन-मधुप-निवास पद-पङ्कजमें लगा था, इनमें रज-तमका लेश भी नहीं था, अतः इन्होंने भगवत्प्रीत्यर्थ तपमें ही मन लगाया।

भगवद्भक्तिके तो ये साक्षात् प्राण हैं। श्रीमद्भागवत-माहात्म्यमें आया है कि जब भक्ति अपने पुत्रों (ज्ञान-वैराग्य)-के दुःखसे बड़ी दुःखी थी और उनका क्लेश किसी प्रकार दूर नहीं हो रहा था, तब श्रीनारदजीके आग्रहपर सनकादिने ही भागवतकी कथा सुनाकर उनका दुःख दूर किया। भगवच्चरित्रके ये इतने प्रेमी हैं कि सर्वोत्तम समाधि-सुखका भी परित्याग करके भगवल्लीलामृतका पान करते हैं—

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं ॥

× × × ×

सनकादिक नारदहि सराहहिं। जद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥

जीवनमुक्त ब्रह्मपर चरित सुनहिं तजि ध्यान ॥

इनको भगवच्चरितामृत सुननेका पूरा व्यसन है—जहाँ भी रहते हैं, भगवान्‌का चरित्र ही सुनते रहते हैं—

आसा बसन ब्यसन यह तिन्हहीं। रघुपति चरित होइ तहँ सुनहीं ॥

नारदजी भक्ति-मार्गके आचार्योंके भी आचार्य हैं, पर ये तो उनके भी उपदेष्टा हैं। नारदपुराणका पूरा पूर्वभाग इनके द्वारा ही श्रीनारदजीको उपदिष्ट है। उसमें भक्तिकी बड़ी ही उत्तम बातें हैं। इन्होंने कहा था—नारदजी ! भगवान्‌की उत्तम भक्ति मनुष्योंके लिये कामधेनुके समान मानी गयी है, उसके रहते हुए भी अज्ञानी मनुष्य संसाररूपी विषका पान करते हैं, यह कितने आश्चर्यकी बात है। नारदजी ! इस संसारमें ये तीन बातें ही सार हैं—भगवद्भक्तोंका संग, भगवान् रामकी भक्ति और द्वन्द्वोंको सहनेका स्वभाव—

हरिभक्तिः परा नृणां कामधेनूपमा स्मृता।
तस्यां सत्यां पिबन्त्यज्ञाः संसारगरलं ह्यहो ॥
असारभूते संसारे सारमेतदजात्मज।
भगवद्भक्तसंगश्च हरिभक्तिस्तितिक्षुता ॥

(१ । ४ । १२-१३)

नारदपुराणके तृतीय पादमें श्रीसनकादिके द्वारा नारदजीको सपरिकर रामोपासनाका विशद उपदेश दिया गया है। श्रीरामके ध्यान-स्वरूप तथा उनके छोटे-बड़े मन्त्र निर्दिष्ट हैं। सनकादि मुनि श्रीरामजीके अनन्य प्रेमी-भक्त हैं। उनका कहना है कि हे नारद ! सब उत्तम मन्त्रोंमें वैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ है। गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिवसम्बन्धी मन्त्रोंकी अपेक्षा वैष्णव मन्त्र शीघ्र अभीष्ट सिद्ध करनेवाला है। वैष्णव मन्त्रोंमें भी श्रीराम-मन्त्रोंके फल अधिक हैं। '**रां रामाय नमः**' यह षडक्षर-मन्त्र सभी राम-मन्त्रोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ है। इस मन्त्रके उच्चारणमात्रसे सभी ज्ञाताज्ञात महापातकोपपातक तत्काल नष्ट हो जाते हैं। पञ्चाक्षर-मन्त्र '**रामाय नमः**' में स्व-बीज—**रां**, कामबीज—**क्लीं**, सत्यबीज—**ह्रीं**, वाग्-बीज—**ऐं**, लक्ष्मीबीज—**श्रीं** तथा तार—**ॐ** लगानेसे पृथक्-पृथक् षडक्षर मन्त्र बन जाता है। यथा—'**रां रामाय नमः**', '**क्लीं रामाय नमः**', '**ह्रीं रामाय**

नमः', **'ऐं रामाय नमः'**, **'श्रीं रामाय नमः'** और **'ॐ रामाय नमः'**। इन मन्त्रोंका जप धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है और साधककी रघुनाथजीके चरणोंमें अनन्य भक्ति हो जाती है।

श्रीसनकादिने भगवान् श्रीरामके अन्य मन्त्र भी बताये हैं, यथा—**'ॐ रामचन्द्राय नमः, ॐ रामभद्राय नमः'**—ये दो मन्त्र अष्टाक्षर हैं।' **'ॐ नमो भगवते रामचन्द्राय'** अथवा **'ॐ नमो भगवते रामभद्राय'**—ये दो प्रकारके द्वादशाक्षर-मन्त्र हैं।' **'श्रीराम जय राम जय जय राम'**—यह त्रयोदशाक्षर-मन्त्र है। इसी प्रकार श्रीरामजीके अन्य मन्त्र, सीता, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न तथा हनुमान् आदिके मन्त्र और उनकी अनुष्ठान-पद्धतिका उपदेश सनकादिने नारदजीको दिया। श्रीसनत्कुमारजीद्वारा बताये गये ध्यान बड़े ही सुन्दर, राम-भक्तिसे ओतप्रोत तथा रामजीके प्रति प्रेमको बढ़ानेवाले हैं। भगवान् सीतारामका एक युगल ध्यान-स्वरूप इस प्रकार निर्दिष्ट है—

कालाम्भोधरकान्तं च वीरासनमास्थितम्।
ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम्॥
सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम्।
पश्यन्तीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम्॥

(ना० पूर्व० अ० ७३)

अर्थात् 'भगवान् श्रीरामकी अङ्गकान्ति मेघकी काली घटाके समान श्याम है। वे वीरासन लगाकर बैठे हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण करके उन्होंने अपने बायें हाथको बायें घुटनेपर रख छोड़ा है। उनके वामपार्श्वमें विद्युत्के समान कान्तिमती और नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सीतादेवी विराजमान हैं। उनके हाथमें कमल है और वे अपने प्राणवल्लभ श्रीरामचन्द्रका मुखारविन्द निहार रही हैं।'

इस प्रकार अन्य पुराणोंमें तथा विविध रामायणोंमें सनकादि कुमारोंकी भक्ति एवं रामप्रेमके अनेक स्थल उपलब्ध होते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि वे निरन्तर रामधुनमें लीन रहते हैं।

इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् (७।१।१—२६), महाभारत, शान्तिपर्व (२२६, २८६ कुम्भको०), अनुशासनपर्व (१६५—१६९ कुम्भको०) आदिमें इन्होंने नारदजीको भगवत्तत्त्वका उपदेश किया है। इन्होंने सांख्यायनको श्रीमद्भागवत पढ़ाया था। श्रीमद्भागवतमें इनके द्वारा महाराज पृथुको भी बहुत सुन्दर उपदेश दिया गया है। उसमें उन्होंने श्रीभगवच्चरित्र-श्रवणको ही परम साधन बतलाया है। भगवद्भक्तिके सहारे बन्धनोन्मुक्ति जितनी सरल है, उतनी इन्द्रियनिग्रह आदि योग अथवा संन्याससे नहीं—

यत्पादपङ्कजपलाशविलासभक्त्या
कर्माशयं ग्रथितमुद्ग्रथयन्ति सन्तः।
तद्वन्न रिक्तमतयो यतयोऽपि रुद्ध-
स्रोतोगणास्तमरणं भज वासुदेवम्॥

(श्रीमद्भा० ४।२२।३९)

श्रीसनकादिके अभीष्ट देव भगवान् श्रीराम जब राज्यारूढ थे, तो ये प्रतिदिन उनके तथा उनके नगर अयोध्याके दर्शनके लिये आते थे और वहाँकी राम-भक्ति, साधु-संतोंकी सेवा तथा अयोध्यापुरीके अद्भुत सौन्दर्यको देखकर उन्हें भी वहीं रहनेको मन होता था और उनका स्वाभाविक वैराग्य विस्मृत होकर विशुद्ध प्रेमाभक्तिके रूपमें परिवर्तित हो जाता था—

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा॥
दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं॥

जब सनकादि मुनीश्वर भगवान् श्रीराघवेन्द्रजीके राज्याभिषेकके बाद अयोध्यामें उनका दर्शन करते हैं, तब इनके मानसिक आनन्दका ठिकाना नहीं रहता, बस, निर्निमेष-दृष्टिसे उन्हें एकटक देखते ही रह जाते हैं—

मुनि रघुपति छबि अतुल बिलोकी। भए मगन मन सके न रोकी॥
स्यामल गात सरोरुह लोचन। सुंदरता मंदिर भव मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहिं। प्रभु कर जोरें सीस नवावहिं॥

सनकादिकी ऐसी प्रेमविह्वल दशा देखकर श्रीरघुनाथजीके नेत्रोंसे भी उन्हींकी तरह प्रेमाश्रुका प्रवाह बहने लगा और शरीर पुलकित हो गया। भगवान्ने अपने प्रेमी भक्तोंको बड़े ही स्नेहसे हाथ पकड़कर बिठाया, और बोले—हे मुनीश्वरो! सुनिये, आज मैं धन्य हूँ। आपके दर्शनोंहीसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। बड़े ही भाग्यसे सत्संगकी प्राप्ति होती है, जिससे बिना परिश्रम ही जन्म-मृत्युका चक्र नष्ट हो जाता है—

आजु धन्य मैं सुनहु मुनीसा। तुम्हरें दरस जाहिं अघ खीसा॥
बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भव भंगा॥

भगवान् और भक्त, प्रेमी और प्रेमास्पद, संत और

भगवंतकी यह प्रेमलीला धन्य है। मानो भक्ति एवं प्रेमका आनन्द ही बरस रहा हो।

अपने आराध्य श्रीरामके वचनोंको सुनकर चारों कुमार हर्षित हो गये। शरीर पुलकित हो उठा और स्तुति-प्रार्थना करने लगे—प्रभो ! आप अन्तरहित, विकाररहित, स्वरूपोंमें प्रकट, अद्वितीय करुणामय हैं। आप ज्ञानके भण्डार, मानरहित और दूसरोंको मान देनेवाले हैं। आप सर्वरूप हैं, सबमें व्याप्त हैं और सबके हृदयरूपी घरमें सदा निवास करते हैं, अतः आप हमारा परिपालन कीजिये। राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता, जन्म-मृत्यु आदि द्वन्द्व, विपत्ति और जन्म-मृत्युके जालको काट दीजिये। हे श्रीरामजी ! आप हमारे हृदयमें बसकर काम और मदका नाश कर दीजिये। आप परमानन्दस्वरूप कृपाके धाम और मनकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं। हे रामजी ! हमको अपनी अविचल प्रेमाभक्ति दीजिये। हे रघुनाथजी ! आप हमें अपनी अत्यन्त पवित्र करनेवाली और तीनों प्रकारके तापों तथा जन्म-मरणका नाश करनेवाली भक्ति दीजिये। हे शरणागतोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये कामधेनु और कल्पवृक्षरूप प्रभो ! प्रसन्न होकर हमें यही वर दीजिये—

सर्ब सर्बगत सर्ब उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय ॥
द्वंद बिपति भव फंद बिभंजय। हृदि बसि राम काम मद गंजय ॥
परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम ॥
देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिधि ताप भव दाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुरधेनु कलपतरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु ॥

भगवान्‌से वर प्राप्तकर उन्हींका गुणगान करते हुए सनकादि ब्रह्मलोक चले गये। इनका चित्त भगवान्‌को छोड़कर कभी अलग नहीं होता। अब भी ये निरन्तर भगवद्भजन, भगवन्नाम-जपमें ही रत रहते हैं—

सुक सनकादि मुक्त बिचरत तेउ, भजन करत अजहू।

× × ×

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी ॥

देवर्षि नारदजीकी रामभक्ति

अहो देवर्षिधन्योऽयं यत्कीर्तिं शार्ङ्गधन्वनः।
गायन्माद्यन्निदं तन्त्र्या रमयत्यातुरं जगत् ॥

(श्रीमद्भा० १।६।३९)

'अहो ! ये देवर्षि नारदजी धन्य हैं जो वीणा बजाते, हरिगुण गाते और मस्त होते हुए इस दुखी संसारको आनन्दित करते रहते हैं।'

देवर्षि नारद भगवान्‌के उन चुने हुए पात्रोंमें हैं, जो भगवान्‌की ही भाँति अवतीर्ण होकर भगवान्‌की भक्ति और उनके माहात्म्यका विस्तार करते हुए लोककल्याणके लिये जगत्‌में विचरते हैं और भगवान्‌के लीला-सहचरके रूपमें तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध हैं। उनका काम ही है—अपनी वीणाकी मनोहर झंकारके साथ भगवान्‌के गुणोंका गान करते हुए सदा पर्यटन करना। वे कीर्तनके परमाचार्य हैं। भागवतधर्मके प्रधान बारह आचार्योंमें हैं और भक्तिसूत्रके निर्माता भी हैं। इनके द्वारा रचित भक्तिसूत्रोंमें भक्तितत्त्वकी बड़ी सुन्दर व्याख्या की गयी है। उन्होंने सम्पूर्ण पृथिवीपर घर-घर एवं जन-जनमें भक्तिकी स्थापना करनेकी प्रतिज्ञा भी की है। देवर्षि नारदजीने अपनी स्थितिके विषयमें स्वयं कहा है—

प्रगायतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः।
आहूत इव मे शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥

(श्रीमद्भा० १।६।३४)

'जब मैं उन परमपावन-चरण प्रियश्रवा प्रभुके गुणोंका गान—संकीर्तन करने लगता हूँ, तब वे प्रभु अविलम्ब मेरे चित्तमें बुलाये हुएकी भाँति तुरंत प्रकट हो जाते हैं।'

देवर्षि नारदजी ब्रह्माजीके मनसे प्रकट हुए। वे भगवान्‌के मनके अवतार हैं। दयामय भक्तवत्सल प्रभु जो कुछ करना चाहते हैं, देवर्षिके द्वारा वैसी ही चेष्टा होती है। पुराणोंसे स्पष्ट होता है कि महर्षि वाल्मीकि, व्यास, शुकदेव, प्रह्लाद, ध्रुव तथा अम्बरीष आदिको इन्होंने ही भक्तिका उपदेश दिया। श्रीमद्भागवत और श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण-जैसे दो अनूठे ग्रन्थ इन्हींकी कृपा-प्रसादसे संसारको प्राप्त हुए। भगवान् व्यास जब सम्पूर्ण वेदोंका विभाजन, इतिहास, पुराण तथा महाभारत आदिकी रचनाकर अपनेको अकृतार्थ और असम्पन्न तथा अत्यन्त खिन्न अनुभव कर रहे थे तो उसी समय सहसा

नारदजी वहाँ पहुँच गये और कहने लगे—'ब्रह्मन्! आप तो साक्षात् नारायणके अवतार हैं, आपने सभी धर्मोंका अनुष्ठानकर वेद, पुराण और महाभारत आदिका भी निबन्धन किया है, फिर आप अत्यन्त खिन्न-से क्यों दीखते हैं ? इसपर व्यासजीने कहा—देवर्षे ! मैं खिन्न अवश्य हूँ, पर मुझे अपनी न्यूनताका कोई बोध ही नहीं हो पा रहा है। प्रभो ! आप तो त्रिकालज्ञ हैं, वायुके समान सर्वत्र व्याप्त-से हैं—**'अन्तश्चरो वायुरिवात्मसाक्षी'** (श्रीमद्भा० १।५।७)।

कृपाकर अब आप ही मेरे दुःखका निवारण कीजिये—कोई उपाय बतलाइये।

नारदजी बोले—व्यासजी ! आपने भक्तिसाहित्यकी रचना नहीं की है, भगवान्‌के निर्मल यशका गान नहीं किया है, आपने वर्णधर्म, आश्रमधर्म, स्त्रीधर्म, राजधर्म, आपद्धर्म तथा मोक्षधर्म आदि विविध धर्मोंका तो पर्याप्त वर्णन किया है, किंतु परमहंस, परमभागवत-भक्त एवं संतोंके परम प्रिय भागवतधर्मका वर्णन नहीं किया। इसलिये आपके मनमें पूर्ण शान्ति नहीं है। अतः आप भगवद्भक्तिरससे परिप्लुत भागवत ग्रन्थका निर्माण कीजिये, क्योंकि भगवान्‌को अपने भक्त ही बहुत प्रिय हैं। इससे आपको पूर्ण कृतार्थता, परम आनन्द एवं परम शान्तिकी प्राप्ति हो जायगी।

देवर्षि नारदजीके उपदेशानुसार भगवान् वेदव्यासने कल्याणकारी भागवत ग्रन्थकी रचना कर डाली और शुकदेवजीको उसे पढ़ाया। इस प्रकार प्रकारान्तरसे महान् भक्तिग्रन्थ श्रीमद्भागवत नारदजीका ही कृपा-प्रसाद है और वाल्मीकीय रामायण भी उन्हींका प्रसाद है; क्योंकि उसका प्रथम श्लोक—

तपःस्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम्।
नारदं परिपप्रच्छ वाल्मीकिर्मुनिपुङ्गवम्॥

—इस बातका परम प्रमाण है। विश्वप्रसिद्ध श्रीसत्य-नारायण-कथा भी जो नारायणकी भक्तिसे परिपूर्ण और घर-घर प्रचलित है, देवर्षि नारदजीकी कृपा-प्रसादकी ही प्रसूति है। ध्रुवको इन्होंने ही मन्त्र दिया। प्रह्लादकी माता कयाधूको जो इन्होंने शिक्षा दी, उससे गर्भस्थ बालकसहित माता और पुत्र दोनों भगवान्‌के परम भक्त बन गये और उस कुलमें आगे चलकर विरोचन, बलि आदि महाभागवतोंकी परम्परा चल पड़ी।

नारदजीके नामसे एक नारदमहापुराण और नारदपुराण भी प्राप्त होता है। दोनोंमें आद्योपान्त भक्तिकी ही अमृतरससे परिपूर्ण कथाएँ भरी पड़ी हैं। उनका पाञ्चरात्र भागवत-मार्गका मुख्य ग्रन्थ है। देवर्षिने कितने लोगोंपर कब कैसे कृपा की, इसकी गणना कोई नहीं कर सकता। वे कृपाकी ही मूर्ति हैं, जो जैसा अधिकारी होता है उसे वे वैसा भक्तिका मार्ग बताकर भगवान्‌के चरणोंतक पहुँचा देते हैं, उनका एकमात्र उद्देश्य है भगवद्गुणगान करते हुए जीवको जैसे भी बन पड़े, जल्दी-से-जल्दी भगवान्‌को प्राप्त करा देना। संसारपर इनका अमित उपकार है। उनकी समस्त लोकोंमें अबाधित गति है। यूँ तो देवर्षि नारदजीने सभी भगवदीय अवतारोंमें भगवान्‌के अनन्य सहचर बनकर उनके लिये लीलाकी उचित भूमि तैयार की तथापि श्रीराम और श्रीकृष्णकी लीलाओंमें वे विशेषरूपसे लीला-सहचर बनते हैं।

सभी रामायणों, रामचरित्रों, रामोपासना-ग्रन्थों तथा समस्त स्तोत्रों आदिमें प्रायः देवर्षि नारदजी ही वक्ता, श्रोता तथा उपासक अथवा स्तोताके रूपमें भगवान् श्रीरामके साथ या उनके परमोच्च भक्तोंके साथ दिखलायी पड़ते हैं। श्रीरामके तो नारदजी अनन्य निष्ठावान् प्रेमी हैं। श्रीरामचरितमानसमें प्रायः वे श्रीरामजीकी प्रत्येक लीलाओंमें प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष-रूपसे उनके साथ विद्यमान रहते हैं। भगवान्‌की प्राकट्य-लीला, वनवास, पम्पासरोवर, सीताजीसे वियुक्त होनेपर वे बहुत देरतक श्रीरामजीसे वार्तालाप करते हैं। राम-रावण-युद्धके अवसरमें भी वे भगवान् श्रीरामके पास आकर उन्हें उत्साहित करते हैं। अयोध्यामें भगवान् श्रीरामके राज्याभिषेक होनेके बाद वे प्रतिदिन अपने आराध्यकी नगरी अयोध्याकी शोभा देखने और भगवान् रामके दैनन्दिन कृत्योंको देखने वहाँ आते हैं, उनकी स्तुति करते हैं तथा पुनः ब्रह्मलोक जाकर ब्रह्माजी एवं सनकादि ऋषियोंको सारी कथाएँ सुनाते हैं। इस प्रकरणमें गोस्वामीजी कहते हैं—

तेहिं अवसर मुनि नारद आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल कीरति सदा नबीन॥

(रा० च० मा० ७।५०)

उसी अवसरपर नारदमुनि हाथमें वीणा लिये हुए आये।

वे श्रीरामजीकी सुन्दर नित्य-नवीन रहनेवाली कीर्ति गाने लगे।

अपने आराध्यकी स्तुति-प्रार्थना एवं उनकी महिमाका वर्णन करते हुए नारदजी कहते हैं—

मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
नील तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि॥
जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥
भूसुर ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक॥
भुजबल बिपुल भार महि खंडित। खर दूषन बिराध बध पंडित॥
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥
सुजस पुरान बिदित निगमागम। गावत सुर मुनि संत समागम॥
कारुनीक ब्यलीक मद खंडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन॥
कलि मल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन॥
प्रेम सहित मुनि नारद बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि गए जहाँ बिधि धाम॥

(रा० च० मा० ७। ५१। १—९, ५१)

नारदजी कहते हैं—कृपापूर्वक देख लेनेमात्रसे शोकके छुड़ानेवाले हे कमलनयन! मेरी ओर देखिये (मुझपर भी कृपादृष्टि कीजिये) हे हरि! आप नीलकमलके समान श्यामवर्ण और कामदेवके शत्रु महादेवजीके हृदयकमलके मकरन्द (प्रेम-रस) के पान करनेवाले भ्रमर हैं। आप राक्षसोंकी सेनाके बलको तोड़नेवाले हैं। मुनियों और संतजनोंको आनन्द देनेवाले और पापोंका नाश करनेवाले हैं। ब्राह्मणरूपी खेतीके लिये आप नये मेघसमूह हैं और शरणहीनोंको शरण देनेवाले तथा दीनजनोंको अपने आश्रयमें ग्रहण करनेवाले हैं। अपने बाहुबलसे पृथिवीके बड़े भारी बोझको नष्ट करनेवाले, खर-दूषण और विराधके वध करनेमें कुशल, रावणके शत्रु, आनन्दस्वरूप, राजाओंमें श्रेष्ठ और दशरथके कुलरूपी कुमुदिनीके चन्द्रमा श्रीरामजी! आपकी जय हो, आपका सुन्दर यश पुराणों, वेदों और तन्त्रादि शास्त्रोंमें प्रकट है। देवता, मुनि और संतोंके समुदाय उसे गाते हैं। आप करुणा करनेवाले और झूठे मदका नाश करनेवाले, सब प्रकार कुशल (निपुण) और श्रीअयोध्याजीके भूषण ही हैं। आपका नाम कलियुगके पापोंको मथ डालनेवाला और ममताको मारनेवाला है। हे तुलसीदासके प्रभु! शरणागतकी रक्षा कीजिये। श्रीरामचन्द्रजीके गुणसमूहोंका प्रेमपूर्वक वर्णन करके मुनि नारदजी शोभाके समुद्र प्रभुको हृदयमें धरकर जहाँ ब्रह्मलोक है, वहाँ चले गये।'

जैसी भक्ति नारदजीकी अपने प्रभु श्रीराममें है, वैसी ही भक्ति भगवान् श्रीरामकी भी अपने प्रेमी भक्त नारदजीमें है। भक्तकी इतनी महिमा है कि स्वयं भगवान् भी उनकी महिमाका बखान करते रहते हैं। उन्हें भक्त ही सर्वाधिक प्रिय हैं।

एक बार भगवान् श्रीराम भगवती सीताके साथ रत्न-सिंहासनपर समासीन थे, उसी समय भगवान्का दर्शन करनेके लिये देवर्षि नारदजी आकाशमार्गसे उतरे। दिव्यमूर्ति नारदजीका दर्शन कर श्रीराम सहसा उठ खड़े हुए और सीताजीके सहित प्रेम और भक्तिपूर्वक पृथिवीपर सिर रखकर उन्हें प्रणाम कर कहने लगे—मुनिश्रेष्ठ! हम-जैसे विषयासक्त मनुष्योंके लिये आपका दर्शन अत्यन्त [illegible]। आज अपने पूर्वजन्मकृत पुण्य-पुंजके उदय होनेसे ही मुझे आपका दर्शन हुआ; क्योंकि हे मुने! पुण्योदय होनेपर संसारी पुरुषको भी सत्संग प्राप्त हो जाता है। हे मुनीश्वर! आज आपके दर्शनसे ही मैं कृतार्थ हो गया।

इसपर नारदजीने भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामसे कहा—प्रभो! आप सामान्य मनुष्योंके समान इन वाक्योंसे क्यों मुझे मोहमें डाल रहे हैं। आपने कहा कि मैं संसारी हूँ, सो ठीक नहीं, क्योंकि आपकी आदिशक्तिरूपा भगवती सीता महामाया-स्वरूपा हैं। प्रभो! आपकी उस मायासे ही ब्रह्मा आदि सब प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं, वह त्रिगुणात्मिका माया सदा आपके आश्रित होकर भासमान होती है। आप भगवान् विष्णु हैं और जानकीजी लक्ष्मी हैं, आप शिव हैं और जानकीजी पार्वती हैं। आप ब्रह्मा हैं और जानकीजी सरस्वती हैं, आप सूर्यदेव हैं और जानकीजी प्रभा हैं। हे राघव! निःसंदेह संसारमें जो कुछ स्त्रीवाचक है वह सब श्रीजानकीजी हैं और जो पुरुषवाचक है वह सब आप ही हैं। हे देव! त्रिलोकीमें आप दोनोंसे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। यह सम्पूर्ण जगत् आपहीसे उत्पन्न हुआ है, आपमें ही स्थित है और आपमें ही लीन होता है, इसलिये आप ही सबके कारण हैं। हे नाथ! आपके चरणकमलोंकी भक्तिसे युक्त पुरुषोंको ही क्रमशः ज्ञानकी प्राप्ति होती है। अतः जो पुरुष आपकी भक्तिसे युक्त हैं वे ही वास्तवमें मुक्तिके पात्र हैं—

त्वं विष्णुर्जानकी लक्ष्मीः शिवस्त्वं जानकी शिवा ।
ब्रह्मा त्वं जानकी वाणी सूर्यस्त्वं जानकी प्रभा ॥
लोके स्त्रीवाचकं यावत् तत्सर्वं जानकी शुभा ।
पुन्नामवाचकं यावत् तत्सर्वं त्वं हि राघव ॥
तस्माल्लोकत्रये देव युवाभ्यां नास्ति किञ्चन ॥
त्वत्त एव जगज्जातं त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
त्वय्येव लीयते कृत्स्नं तस्मात् त्वं सर्वकारणम् ॥
त्वत्पादभक्तियुक्तानां विज्ञानं भवति क्रमात् ।
तस्मात् त्वद्भक्तियुक्ता ये मुक्तिभाजस्त एव हि ॥

(अध्या० रामा० २ । १ । १३, १८-१९, २५, २९)

भगवान्के भक्तों और दासोंकी दासता स्वीकार करते हुए नारदजीने भगवान् श्रीरामके सामने अपनी अत्यन्त दीनता प्रकट कर भक्तिका एक विशिष्ट आदर्श सामने रखा है। वास्तवमें नारदजीकी भक्ति विलक्षण है, उसके रहस्यको तो श्रीराम ही जान सकते हैं। नारदजी भगवान् रामसे उनके अनुग्रह प्राप्त करनेकी प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

हे प्रभो ! मैं तो आपके भक्तोंके भक्त और उनके भी भक्तोंका दास हूँ, अतः आप मुझे मोहित न कर मुझपर अनुग्रह कीजिये । प्रभो ! आपके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए ब्रह्माजी मेरे पिता हैं, अतः मैं आपका पौत्र हूँ। हे राघव ! आप मुझ भक्तकी रक्षा कीजिये—

अहं त्वद्भक्तभक्तानां तद्भक्तानां च किंकरः ।
अतो मामनुगृह्णीष्व मोहयस्व न मां प्रभो ॥
त्वन्नाभिकमलोत्पन्नो ब्रह्मा मे जनकः प्रभो ।
अतस्तवाहं पौत्रोऽस्मि भक्तं मां पाहि राघव ॥

(अध्या० रामा० २ । १ । ३०-३१)

जो मनुष्य भक्तप्रवर देवर्षि नारद और भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामजीके संवादको नित्य भक्तिपूर्वक पढ़ता-सुनता या स्मरण करता है, वह वैराग्यपूर्वक क्रमशः देवताओंको भी अत्यन्त दुर्लभ कैवल्य-मोक्षपदको प्राप्त कर लेता है—

संवादं पठति शृणोति संस्मरेद्वा
यो नित्यं मुनिवररामयोः स भक्त्या ।
सम्प्राप्नोत्यमरसुदुर्लभं विमोक्षं
कैवल्यं विरतिपुरःसरं क्रमेण ॥

(अध्या० रामा० २ । १ । ४१)

ऐसे अनन्यभक्त, उनकी भक्ति और भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामको बार-बार प्रणाम है।

महर्षि वसिष्ठजीकी रामभक्ति

तपस्या एवं क्षमाके साक्षात् विग्रहस्वरूप महर्षि वसिष्ठ ब्रह्माजीके मानस पुत्र हैं। विभिन्न पुराणोंमें इनके आविर्भावकी कथा भिन्न-भिन्न रूपसे आती है। कहीं ये ब्रह्माजीके मानस पुत्र, कहीं आग्नेय पुत्र और कहीं मित्रावरुणके पुत्र कहे गये हैं। कल्पभेदसे ये सभी बातें सत्य हैं। महर्षि वसिष्ठ सप्तर्षियोंमें प्रधान हैं और अद्वैत सम्प्रदायकी परम्परामें तीसरे स्थानपर हैं—**'नारायणं पद्मभुवं वसिष्ठम् ।'** अद्वैत वेदान्तके सम्पूर्ण ग्रन्थोंका मूलस्रोत 'योगवासिष्ठ' इनकी ही रचना है, इनके ही मुखसे निकला हुआ ज्ञानका उद्गार है, अतः सम्पूर्ण ज्ञानी-विज्ञानियोंमें तो ये सर्वोपरि हैं ही, भक्तिमें भी सर्वोपरि हैं। सतीशिरोमणि भगवती अरुन्धती इनकी पत्नी हैं, जो सप्तर्षि-मण्डलके पास ही अपने पतिदेवकी सेवामें लगी रहती हैं। महर्षि वसिष्ठजीने वसिष्ठसंहिताके प्रणयनके द्वारा कर्मके महत्त्व और आचरणका आदर्श स्थापित किया है। इतिहास-पुराणोंमें इनके महनीय उज्ज्वल चरित्रका बहुत विस्तार है। यहाँ तो केवल उनके अनन्य आराध्य भगवान् श्रीरामके भक्तिविषयक स्थलोंका किंचित् संकेत किया जा रहा है—

साक्षात् ब्रह्मस्वरूप भगवान् श्रीरामके चरणोंमें महर्षि वसिष्ठजीकी निष्ठा एवं भक्ति तो जन्म-जन्मान्तरोंसे थी, परंतु सप्तर्षिके इस अवतारमें उनकी राम-दर्शनकी लालसा अत्यन्त ही तीव्र हो गयी थी। इसे जानकर उनके पिता ब्रह्माजीने उनसे कहा—'वत्स ! तुम इक्ष्वाकुकुलका पौरोहित्य स्वीकार कर लो', किंतु उसे अत्यन्त निन्दित समझकर महर्षिने उसका प्रत्याख्यान कर दिया। शास्त्रोंमें पुरोहितका पद ब्राह्मणके लिये श्रेष्ठ नहीं माना गया है। जिनमें धनका लोभ न हो, विषयभोगोंकी इच्छा न हो, वह भला क्यों ऐसे छोटे कामको स्वीकार करे।

ब्रह्माजी सर्वज्ञ और विशेष ज्ञानी थे, उन्होंने समझाते हुए

कहा—'बेटा ! तुम ऐसा क्यों कहते हो, तुम्हारे परम ध्येय, परब्रह्म परमात्माका रामके रूपमें इसी वंशमें प्रादुर्भाव होगा, जिनके दर्शनोंकी तुम्हें उत्कट अभिलाषा है, अतः तुम्हें इस कार्यमें लाभ ही है, हानि नहीं। तुम अपने आराध्य श्रीरामजीके गुरुका गौरवशाली पद पाकर कृतार्थ हो जाओगे, तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो जायगा।' पिताकी बात सुनकर महर्षि अत्यन्त प्रसन्न हो गये और बोले—तात ! समस्त योगसाधना, यज्ञ, दान, स्वाध्याय एवं जप, तप तथा तीर्थका अथवा जितने भी शुभ कर्म हैं, सबका एकमात्र फल भगवत्प्राप्ति ही है और जब वह सूर्यकुलके आचार्यत्व-जैसे सुखमय कार्यके करनेसे ही प्राप्त हो जाय तो इससे अधिक लाभकी बात मेरे लिये और क्या हो सकती है ? पिताकी बात उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर ली। इसी बातको राज्याधिरूढ श्रीरामसे वसिष्ठजीने अपने मुखसे कहा था—

उपरोहित्य कर्म अति मंदा। बेद पुरान सुमृति कर निंदा॥
जब न लेउँ मैं तब बिधि मोही। कहा लाभ आगें सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषन भूपा॥
तब मैं हृदयँ बिचारा जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहउँ धर्म न एहि सम आन॥
जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥

(रा० च० मा० ७। ४८। ६—८, ४९। १—४)

महर्षि वसिष्ठजीका जीवन तो राममय था ही, वे सदा उनकी भक्ति-उपासनामें डूबे रहते थे। उन्होंने भगवान्‌के प्रति अपनी अनन्य भक्ति जताकर सबको भक्ति करनेका ही उपदेश दिया। क्योंकि उनकी दृष्टिमें भक्तिका साधन ही सुगम और सरल था। अपने हृदयकी बात उन्होंने अपने आराध्यके सामने खोलकर रख दी और यह स्पष्ट कह दिया कि 'प्रभो ! कर्म-काण्डादि अन्य साधनोंसे साधकका अज्ञानजनित आभ्यन्तर मलका अन्धकार दूर नहीं होता। आपके चरणोंकी आत्यन्तिक अनुरागात्मिका भक्ति ही हृदयग्रन्थि और हृदयके मलको धोनेमें सर्वथा समर्थ हो सकती है—

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(रा० च० मा० ७। ४९। ५-६)

जैसे मैलसे क्या मैल छूटता है ? जलके मथनेसे कोई घी पा सकता है ? वैसे ही हे रघुनाथजी ! प्रेमभक्तिरूपी निर्मल जलके बिना अन्तःकरणका मल कभी नहीं जाता।

अनेक जन्मोंका विकार जो हृदयमें मलके रूपमें जमा रहता है, वह हरिभक्तिसे ही धुलता है, इसी बातको भागवतमें पृथुजी कहते हैं—

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विनामशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित्॥
विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमानसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान्।
यदङ्घ्रिमूले कृतकेतनः पुनर्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते॥

(श्रीमद्भा० ४। २१। ३१-३२)

जिनके चरणकमलोंकी सेवामें निरन्तर बढ़नेवाली प्रीति तपस्वियोंके अनेकों जन्मोंके संचित मनोमलको इस प्रकार तत्काल नष्ट कर देती है, जैसे उन्हींके चरणनखसे निकली हुई श्रीगङ्गाजी तथा जिनके चरणमूलका आश्रय लेनेवाला पुरुष सम्पूर्ण मनोमलसे मुक्त होकर और असंगताके ज्ञानसे विशेष बल पाकर फिर इस दुःखमय संसारचक्रमें नहीं पड़ता। अतएव उन्हें प्रभुका मन-वचन एवं कर्मसे भजन करना चाहिये—

'तमेव यूयं भजतात्मवृत्तिभिर्मनोवचःकायगुणैः स्वकर्मभिः।'

(श्रीमद्भा० ४। २१। ३३)

पुनः महर्षि वसिष्ठजी भगवान्‌की भक्ति एवं भगवद्भक्तकी महिमाका वर्णन करते हुए कहते हैं—हे प्रभो ! मेरी दृष्टिमें वास्तवमें वही त्रिकालज्ञ, सर्वज्ञ, तत्त्वज्ञ और सभी रहस्योंका मर्मज्ञ है तथा वही सर्वोपरि पण्डित, विद्वान् है, वही समस्त गुणोंका आगार है एवं अखण्ड ज्ञान-विज्ञानोंका भण्डार है, वही चतुर तथा समस्त लक्षणोंसे युक्त है—जिसकी आपके पदकमलोंमें दृढ़ भक्ति-निष्ठा है, जिसका आपके चरणकमलोंमें निरन्तर वर्धमान प्रेम है—

सोइ सर्बग्य तग्य सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिग्यान अखंडित॥
दच्छ सकल लच्छन जुत सोई। जाकें पद सरोज रति होई॥

(रा० च० मा० ७। ४९। ७-८)

भाव यह है कि ऐसे व्यक्तिमें कोई गुण हो या न हो, केवल भगवान्‌में प्रेम होनेसे उसमें ये सब गुण समझे जायँगे।

सब गुणोंको देनेवाली एक भगवान्‌के चरणोंकी प्राप्ति है और प्रभु-पद-प्रेमके बिना सर्वज्ञत्वादि गुण होते हुए भी उनकी सर्वज्ञतादि सब व्यर्थ है। अतः भगवान्‌के श्रीचरणोंमें प्रेम होना ही सर्वोपरि वस्तु है।

महर्षि वसिष्ठजी इस रहस्यको जानते थे, अतः उन्होंने प्रभुसे अन्य कुछ नहीं माँगा, यहाँतक कि मुक्ति भी नहीं माँगी, माँगी तो केवल एकमात्र श्रीरामकी अखण्ड भक्ति—

नाथ एक बर मागउँ राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभु पद कमल कबहुँ घटै जनि नेहु॥

(रा० च० मा० ७। ४९)

अर्थात् हे नाथ! मैं आपसे एक वर माँगता हूँ कृपा करके दीजिये। हे रामजी! आपके चरणकमलोंमें मेरा प्रेम जन्म-जन्मान्तरमें भी न घटे। वसिष्ठजीकी प्रेमभरी बातें श्रीरामजीको बहुत ही अच्छी लगीं और उन्होंने 'ये मेरे गुरु हैं' इस प्रकारकी मर्यादाका ध्यान रखते हुए प्रसन्नता जताकर बिना कुछ कहे ही वसिष्ठजीको अखण्ड भक्तिका वर दे दिया और श्रीरामकी उनपर पूर्ण कृपा हो गयी।

श्रीरामके अनन्य भक्त तथा रामजीके गुरु महर्षि वसिष्ठजी भगवती अरुन्धतीदेवीके साथ सप्तर्षि-मण्डलमें आज भी स्थित होकर भगवान् श्रीरामकी प्रेममयी भक्तिमें निमग्न रहकर सारे जगत्‌के कल्याणमें लगे हुए हैं।

महर्षि वाल्मीकिकी रामभक्ति

कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्।
आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥
रामेति परिकूजन्तमारूढं कवितालताम्।
शृण्वतो मोदयन्तं तं वाल्मीकिं को न वन्दते॥

भगवन्नाम-यश कीर्तन करनेमें महर्षि वाल्मीकिका नाम अद्वितीय है। भगवान् राम और उनकी विशेषताओंको विश्वमें प्रकट करनेका श्रेय महर्षि वाल्मीकिको ही है। उन्होंने आदिकाव्य, आदिरामायण अथवा वाल्मीकीय रामायणकी प्रथम रचना की। प्रायः सभी रामचरितकार महर्षि वाल्मीकिके ही ऋणी हैं और उनका ही आदिकाव्य श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण सभी कवियोंका उपजीव्य है; अतः सभीने अपनी रचनाओंके प्रारम्भमें उन्हें सादर नमन किया है। वेद जिस परमतत्त्वका वर्णन करते हैं, वही श्रीमन्नारायण-तत्त्व श्रीमद्रामायणमें श्रीरामरूपसे निरूपित है। वेदवेद्य परम पुरुषोत्तम दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें अवतीर्ण होनेपर साक्षात् वेद ही प्रचेताके पुत्र श्रीवाल्मीकिके मुखसे श्रीरामायणरूपमें प्रकट हुए, ऐसी आस्तिकोंकी चिरकालसे मान्यता है।[1]

महर्षिके रामायण और उनकी रामभक्ति-निष्ठाका इतना प्रचार हुआ कि वह जैन, बौद्ध आदि धर्मोंका भी वर्ण्यविषय बन गया और उन भाषाओंमें भी अनेकों रामायणोंकी रचना हो गयी तथा फिर चलते-चलते उनकी संख्या अनन्त हो गयी, जैसा कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

नाना भाँति राम अवतारा। रामायन सत कोटि अपारा॥

(रा० च० मा० १। ३३। ६)

राम चरित सत कोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा॥
जल सीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति चरित न बरनि सिराहीं॥

(रा० च० मा० ७। ५२। २, ४)

फिर संतों और भगवद्भक्तोंने यह नियम ले लिया कि हमलोग रामकथाकी बातको छोड़कर न कुछ कहेंगे और न कुछ सुनेंगे—

जानकि-जीवनकी बलि जैहों।
चित कहै रामसीय-पद परिहरि अब न कहूँ चलि जैहों॥

× × ×

श्रवननि और कथा नहिं सुनिहौं, रसना और न गैहों।
रोकिहौं नयन बिलोकत औरहिं, सीस ईस ही नैहों॥

(विनय-पत्रिका १०४)

प्रायः सभी पुराणों तथा काव्य-नाटकों आदिमें महर्षि वाल्मीकिकी सिद्धि-प्राप्तिकी कथाएँ आती हैं। उनके सम्बन्धमें यह भी प्रसिद्धि है कि वे पहले रत्नाकर (मतान्तरसे अग्निशर्मा) नामके डाकू थे और प्रतिलोमक्रमसे श्रीराम-नामका जप करके ब्रह्माजीके समान पूज्य बन गये।

---

१. वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना॥

उलटा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

(रा० च० मा० २। १९४। ८)

जान आदि कबि तुलसी नाम प्रभाउ।

उलटा जपत कोल ते भए ऋषिराउ॥

(बरवै रामायण)

कहत मुनीस महेस महातम, उलटे सूधे नामको॥

(विनय-पत्रिका १५६)

वाल्मीकिरामायणमें यह भी आता है कि महर्षि वाल्मीकि महाराज दशरथके मन्त्रियोंमें भी एक थे और वनयात्राके समय भगवान् राम चित्रकूट जाते समय उनके आश्रममें एक दिन रुके थे। वाल्मीकि-आश्रम कई हैं, कुछ तो चित्रकूटके ही समीप हैं, कुछ प्रयागके आस-पास हैं और कुछ दूरवर्ती क्षेत्रोंमें हैं। यह भी माना जा सकता है कि विभिन्न चातुर्मास्योंमें महर्षि तत्तद् भिन्न-भिन्न स्थानोंमें रहते रहे हों। पर गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीको चित्रकूट बहुत प्रिय था और वे बार-बार वहाँ आते-जाते रहते थे। उन्होंने सुस्पष्ट रीतिसे श्रीरामके चित्रकूट-गमनके मार्गमें महर्षि वाल्मीकिसे उनकी भेंट करवायी है और कई दोहों-चौपाइयोंमें दोनोंके प्रेम-भक्ति-रससे परिपूर्ण संवादको बड़े आकर्षक ढंगसे अङ्कित किया है। प्रकरणका आरम्भ करते हुए वे लिखते हैं—

देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए॥
राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥
सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥

सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन।
सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन॥

मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥
मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मगाए॥
सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए॥

(रा० च० मा० २। १२४। ५—८, १२४, १२५। १—४)

इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि महर्षि वाल्मीकिके आश्रमका स्वरूप गोस्वामीजीके समयमें भी बड़ा रमणीय था। यहाँ गोस्वामीजीने बड़ी चतुरताके साथ यह संकेत किया है कि महर्षि वाल्मीकि भगवान् रामको पहलेसे जानते थे और पहले भी उनसे उनकी कई बार भेंट हुई थी, क्योंकि योगवासिष्ठको भी महर्षि वसिष्ठसे सुनते हुए उस समय उस सभामें रहकर स्वयं वाल्मीकिजीने लिपिबद्ध किया था और उन्हींके नाम-जपसे उन्हें परमसिद्धि मिली थी। महर्षि वाल्मीकि भगवान् रामकी आनन्दकन्दता, परम मङ्गलमयता तथा सकल कल्याण-गुणैकनिलयता आदिके रहस्योंसे पूर्ण परिचित थे। यह बात उनके आगेके कथनसे स्पष्ट हो जाती है। स्वयं भगवान् श्रीराम उन्हें त्रिकालदर्शी और त्रिलोकदर्शी कहकर उनके सम्यक् ज्ञानका प्रमाण प्रस्तुत करते हैं—

तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा॥

(रा० च० मा० २। १२५। ७)

जब श्रीरामजीने अपने रहनेके लिये उचित स्थान बतलानेकी प्रार्थना की तो महर्षिने कहा—'महाराज! संसारमें ऐसा कोई स्थान नहीं दीखता जहाँ आप नहीं हों, अतः आप ही कोई ऐसा स्थान बतलानेकी कृपा करें, जहाँ आप न हों तो फिर मैं प्रार्थना करूँ कि आप वहाँ रहिये'—

पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥

(रा० च० मा० २। १२७)

और महर्षि कहते हैं—'प्रभो! आप तो ब्रह्मा, विष्णु और शिवको भी नचानेवाले हैं, जब धर्मका लोप होता है तो वेदमार्गकी रक्षाके लिये आप अवतार लेते हैं। ये भगवती सीता आपकी महाशक्ति योगमाया हैं और ये लक्ष्मणजी साक्षात् शेषावतार हैं तथा आपकी रावण आदि राक्षसोंके विनाशकी लीला प्रारम्भ हो गयी है। हे राम! आपका स्वरूप वाणीके अगोचर, बुद्धिसे परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरन्तर नेति-नेति कहकर उसका वर्णन करते हैं—

श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥
राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर।
अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह॥

(रा० च० मा० २। १२६। छं० २)

यहाँ महर्षिकी असीम रामभक्तिकी सीमा देखते ही बनती

है। उनकी वाणी भक्तिरसामृतसे ओतप्रोत हो गयी। वे कहते हैं—'हे प्रभो! जब ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव भी आपके क्रिया-कलापोंके रहस्योंको नहीं जान सके तो और संसारमें कौन जान सकेगा? यदि मैं जानता हूँ अथवा जो भी भक्त आपके रहस्यको जानते हैं तो वह आपकी कृपा और भक्तिकी ही विशेषता है—

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥
सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥

(रा० च० मा० २। १२७। १—४)

वाल्मीकिजी कहते हैं—प्रभो! भक्त आपके विषयमें यही जानते हैं कि आपका शरीर सच्चिदानन्दघन शुद्ध ब्रह्ममय है और उसमें लेशमात्र भी सांसारिक विकारोंका प्रवेश या स्पर्श नहीं है—

चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥

(रा० च० मा० २। १२७। ५)

इसके बाद महर्षि वाल्मीकिने भगवान्‌के निवास योग्य जो स्थान बतलाये, वे भक्ति-साहित्यके लिये सर्वोपरि महत्त्वके तत्त्व हैं। उन्होंने कहा—'हे नाथ! जिनके समुद्र-जैसे विशाल कान आपके चरित्ररूपी पवित्र नदियोंको ग्रहण करनेके लिये सदा उत्सुक रहते हैं और आपकी अमृतमयी कथाओंको सुनते-सुनते कभी तृप्त नहीं होते, उन भक्तोंका हृदय ही आपका निवास-स्थान है—

जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे॥

(रा० च० मा० २। १२८। ४-५)

इसी प्रकार जो आपकी छबिका दर्शन करनेके लिये अपने नेत्रोंको चातकके समान उत्सुक, तृषित, पिपासायुक्त बनाये रहते हैं तथा दूसरे दिव्य भव्य रूपोंकी भी नदी-सरोवरके जलकी तरह उपेक्षा करते हैं और आपके मङ्गलमय विग्रहको स्वातिके बूँदके समान समझकर सदा एकटक देखते रहते हैं, उनका हृदय ही आपका सर्वोत्तम निवास-स्थान है—

लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥
तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥

(रा० च० मा० २। १२८। ६—८)

वाल्मीकिजी कहते हैं—प्रभो! वैसे तो ये सारे वेद-पुराण, इतिहास, काव्य-नाटक आपके चरित्रोंका ही समूह या जाल है, फिर भी जो आपके रामावतारके मुख्य चरित्र हैं, वे मानसरोवरमें मुक्ताके समान हैं। जिनकी जिह्वा निरन्तर उनका स्वाद लेती है, प्रवचन करती है और मोतीके समान चयनकर हृदयमें आनन्द लेती है, आप कृपापूर्वक उनके हृदयमें अवश्य निवास करें—

जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥

(रा० च० मा० २। १२८)

महर्षि वाल्मीकि भक्ति-रहस्यके पूर्ण मर्मज्ञ थे, इसलिये वे इस बातको जानते थे कि भक्तिका पूर्ण परिपाक भक्तके नम्र, विनयपूर्ण मधुर स्वभावसे परिलक्षित-प्रमाणित होता है और आत्यन्तिक विनय तथा नम्रता ही वास्तविक भक्ति है। वह चाहे संतोंके प्रति हो अथवा गुरु या दूसरे मुनि-महात्मा, ब्राह्मण, भक्त या साक्षात् देवता या अपने इष्ट देवताके प्रति हो, साथ ही उन्हें देखते ही हार्दिक भावके साथ मस्तक झुक जाता है—

सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥

(रा० च० मा० २। १२९। ३)

महर्षि वाल्मीकि भक्तके विरक्त स्वभावसे भी पूर्ण परिचित थे। वे जानते थे कि भक्तको किसीसे कोई अपेक्षा नहीं रहती, क्योंकि भगवान्‌के पास क्या नहीं है और वह कौन-सी वस्तु है, जो अपने भक्तको वे दे नहीं सकते? अतः भक्त सदा-सर्वदा-सर्वत्र निरपेक्ष होकर केवल भक्तिका ही पालन करता है। उसे केवल आपका ही एकमात्र भरोसा रहता है, वह निरन्तर नाम-जप, ध्यान और अनेक उपचारोंसे आपकी मानसिक तथा बाह्य पूजा-अर्चना सम्पन्न करता रहता है—

कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥

(रा० च० मा० २। १२९। ४)

भगवान्‌के भजन-पूजन, भक्ति-भावमें वह दिव्य आनन्द और सर्व-सम्पन्नता है जहाँ श्रीमद्भगवद्गीताके **'विहाय कामान्यः सर्वान्०,' 'प्रजहाति यदा कामान्०'** तथा **'रसवर्जं**

रसोऽप्यस्य॰' इत्यादि सर्वभोग-सुख—कामनाओंतकका परित्यागरूपी वैराग्य स्वतः स्वभावगत होकर भक्तके हृदयमें आत्म-प्रविष्ट हो जाता है।

वाल्मीकिजी भगवान् श्रीरामसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं—हे प्रभो! जिनके पैर आपके मन्दिरों, भ्रमण-स्थलों, मुख्य अवतारोंके प्राकट्य-स्थानों, लीलास्थलोंमें भ्रमण करते हैं, चलते-चलते नहीं थकते और सदा-सर्वत्र वहाँ आपकी विशेष स्थिति देखते हैं, भगवन्! आप उनके हृदयमें निश्चित रूपसे निवास कीजिये—

चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

(रा॰ च॰ मा॰ २। १२९। ५)

इसके आगे महर्षि वाल्मीकि भगवान् रामके मन्त्रराजकी चर्चा करते हैं, यह मन्त्रराज गुरूपदिष्ट षडक्षर-मन्त्र (**रां रामाय नमः**) हो सकता है, क्योंकि रामतापिनी-उपनिषद्, रामार्चन-चन्द्रिका, रामपटल और शारदातिलक आदिमें इसकी अपार महिमा निरूपित हुई है। इसके अतिरिक्त 'सीताराम', 'राम' नाम आदि भी मन्त्रराजके समान ही महत्त्वपूर्ण हैं, क्योंकि महर्षि वाल्मीकिने 'राम'-नामका उलटा (मरा-मरा) जप किया था, इसलिये उनका हृदय उस मन्त्रराजके अविस्मरणीय प्रभावसे कभी रिक्त नहीं हुआ, तात्पर्य यही है कि ये सभी मन्त्र परमकल्याणकारक हैं, इसमें संदेह नहीं; किंतु सभी सत्कर्मों और धार्मिक अनुष्ठानोंका वे एक ही फल प्राप्त करना चाहते हैं और वह यह कि भगवान्‌में प्रेम, उनके चरणोंमें भक्ति बराबर बढ़ते जायँ, प्रेम-प्रवाह तनिक भी शिथिल न हो। क्योंकि जो भक्तिरूपी सम्पत्तिके महत्त्वको जानता है, वह तो उसे ही नित्य बढ़ानेमें प्रयत्नशील बना रहेगा, क्योंकि भक्ति ही इस विश्वकी सर्वाधिक मूल्यवान् निधि है और कल्याणकारी तत्त्व भी। जो ऐसा करते हैं हे प्रभो! आप कृपापूर्वक भगवती सीता और लक्ष्मणजीके साथ उनके हृदयमें निवास कीजिये—

मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा।
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥
सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥

(रा॰ च॰ मा॰ २। १२९। ६—८, १२९)

भगवत्कृपासे भगवद्भक्तके सारे दोष तत्काल नष्ट हो जाते हैं। इसलिये उनके हृदयमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, छल-छद्मके लिये कोई स्थान नहीं रह जाता। जैसे कि सूर्यके सामने अन्धकार नहीं रहता। भक्त नित्य भगवान्‌की स्मृतिको अपना सर्वस्व मानता है। अतः वह सोते-जागते उसी भक्तिरूपी सम्पत्तिको सँभाले रहता है। उनकी शरणमें रहकर उनका ही निरन्तर जप-ध्यान करता रहता है। अनन्य भक्तके हृदयमें भगवान् या भगवद्भजनके अतिरिक्त अन्य कोई गति नहीं होती। अतः हे रघुवीर! हे नाथ! आप ऐसे भक्तजनोंके हृदयमें अवश्य निवास करें—

काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥
सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥

(रा॰ च॰ मा॰ २। १३०। १—५)

हे भगवन्! भक्तको आप अपने प्राणोंसे भी प्रिय होते हैं और आपकी भक्ति भी प्राणोंसे अधिक प्रिय होती है, क्योंकि वही सब कुछ है। जो ऐसा जानता है, वही ज्ञानी है। हे कृपासिन्धु! ऐसे भक्तोंका निर्मल हृदय ही आपका शुभ-मङ्गलमय निवास-स्थान है—

जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥

(रा॰ च॰ मा॰ २। १३०। ८)

जो आपको ही अपना माता, पिता, स्वामी, सखा, सम्पत्ति और सब कुछ मानते हैं, उनके मन-मन्दिरमें आप सीता, लक्ष्मणके साथ अवश्य निवास करें, क्योंकि वे आपके अनन्य भक्त हैं—

स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥

(रा॰ च॰ मा॰ २। १३०)

पुनः वाल्मीकिजी आगे कहते हैं—हे प्रभो! जिनकी दृष्टिमें न कहीं नरक है न ही स्वर्ग, न अपवर्ग है और न संसारका कोई स्थान। उन्हें तो सदा-सर्वत्र धनुष-बाण धारण किये हुए आप ही एकमात्र दृष्टिगोचर होते हैं, उनकी दृष्टि जहाँ घूमती है, जहाँ जाती है, वहाँ आपके सुन्दरतम सौम्य

आकृतिका ही दर्शन होता रहता है और वह मन, वचन, कर्म तथा अन्तरात्मासे सदा आपका ही स्मरण करता रहता है और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, ऐसे भक्तके हृदयमें आप अवश्य निवास कीजिये, वह आपका घर है—

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥
जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

(रा॰ च॰ मा॰ २। १३१। ७-८)

इतनी प्रार्थना करनेके बाद महर्षि वाल्मीकिने उन्हें अपने आश्रमसे थोड़ी दूरपर ही कामदगिरिके निकट मन्दाकिनीके तटपर वास करनेका परामर्श दिया, जहाँ महर्षि अत्रि आदि तपस्वियोंका भी निवास था। महर्षिकी प्रार्थनापर भगवान् रामने महर्षि अत्रि और महर्षि वाल्मीकिजीके आश्रमोंके मध्य अपने वनवासके लिये निवासका स्थान बनाया—

जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥

(रा॰ च॰ मा॰ २। २२५। ६)

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीका सारा जीवन राममय था, वे रामजीके अनन्य भक्त थे और उन्होंने सभीके लिये यह संदेश दिया कि वे रामकी भक्तिसे अपने जीवनको सफल बनायें। उन्होंने स्थल-स्थलपर अनन्तगुणगणनिलय भगवान् श्रीरामकी गुणगाथा और उनकी दयालुता तथा भक्त-वत्सलताका बखानकर अपनी वाणीको पवित्र बनाया है। श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणकी एक स्तुतिमें उनकी गूढ़ भक्ति प्रस्फुटित होती है। वहाँ वे कहते हैं—प्रभो ! अग्नि आपका क्रोध तथा श्रीवत्साङ्कचन्द्रमा आपकी प्रसन्नताका स्वरूप है। पहले वामनावतारमें आपने अपने पराक्रमसे तीनों लोकोंका उल्लंघन किया था। आपने ही दुर्धर्ष बलिको बाँधकर इन्द्रको राजा बनाया था। भगवती सीता लक्ष्मी और आप प्रजापति विष्णु हैं। रावणके वधके लिये ही आपने मनुष्य-शरीरमें प्रवेश किया है और यह कार्य आपने सम्पन्न किया। देव ! आपका बल, वीर्य तथा पराक्रम सर्वथा अमोघ है।

श्रीराम ! आपका दर्शन और स्तुति अमोघ है तथा पृथिवीपर आपकी भक्ति करनेवाले मनुष्य भी अमोघ ही होंगे—

अमोघं दर्शनं राम अमोघस्तव संस्तवः।
अमोघास्ते भविष्यन्ति भक्तिमन्तो नरा भुवि॥

वे फिर कहते हैं—हे पुराणपुरुषोत्तम श्रीराम ! जो लोग आपमें भक्ति रखेंगे तथा आपकी उपासना करेंगे, उनके लिये इस लोक तथा परलोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा—

ये त्वां देवं ध्रुवं भक्ताः पुराणं पुरुषोत्तमम्।
प्राप्नुवन्ति तथा कामानिह लोके परत्र च॥

(पं॰ श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

भगवान्‌का रामरूपमें दर्शन

एक युवकने माँ आनन्दमयीके सम्मुख जिज्ञासा की—

'माँ ! तुलसीदासजी तो महान् ज्ञानी और भक्त थे !'

माँने उत्तर दिया—'निस्संदेह वे थे ही।'

युवकने पूछा—'उन्हें जब भगवान्‌ने श्रीकृष्णके विग्रह-रूपमें दर्शन दिया, तब उन्होंने यह क्यों कहा कि 'मैं आपका इस रूपमें दर्शन नहीं चाहता; मुझे रामरूपमें दर्शन दीजिये।' क्या यह ज्ञानकी बात थी ? वे (भगवान्) ही तो सबमें हैं, फिर इस तरह तुलसीदासजीने उनको भिन्न क्यों समझा ?'

माँने उत्तर दिया—'तुम्हीं तो कहते हो कि वे ज्ञानी भी थे, भक्त भी थे। उन्होंने ज्ञानकी ही बात तो कही कि 'आप हमें रामरूपमें दर्शन दीजिये; मैं आपके इस (कृष्ण) रूपका दर्शन नहीं करना चाहता। मैं रामरूपका ही दर्शन चाहता हूँ।' यही प्रमाण है कि वे जानते थे, श्रीराम और श्रीकृष्ण एक ही हैं, अभिन्न हैं। 'आप मुझे दर्शन दीजिये'—यह उन्होंने कहा था। रूपमात्र भिन्न था, पर मूलतः तत्त्व तो एक ही था। इन्हीं शब्दोंमें तो उन्होंने अपनी बात कही। भक्तिकी बात तो उन्होंने यह कही कि 'मैं अपने रामरूपमें ही आपका दर्शन करना चाहता हूँ; क्योंकि यही रूप मुझे प्रिय है।' इस कथनमें ज्ञान और भक्ति—दोनों भाव प्रकाशित हैं।' (श्रीश्रीमाँ आनन्दमयी)

भगवान् वेदव्यासकी दृष्टिमें श्रीराम-भक्ति

नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धे
फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र ।
येन त्वया भारततैलपूर्णः
प्रज्वालितो ज्ञानमयः प्रदीपः ॥
व्यासं वसिष्ठनप्तारं शक्तेः पौत्रमकल्मषम् ।
पराशरात्मजं वन्दे शुकतातं तपोनिधिम् ॥

अज्ञानके अन्धकाररूपी समुद्रमें निमग्न प्राणियोंको शिक्षा देनेके लिये साक्षात् नारायण ही जगद्गुरु व्यासके रूपमें अवतीर्ण हुए और प्रसिद्धि यही है कि व्यासजी आज भी अजर-अमर हैं। शंकरदिग्विजयमें भगवान् व्यासके द्वारा बदरीक्षेत्रमें आकर आदिगुरु शंकराचार्यको दर्शन देने, उनके साथ सत्ताईस दिनतक खड़े होकर शास्त्रार्थ करने और अन्तमें प्रसन्न होकर अपना परिचय देते हुए उनकी आयुको द्विगुणित कर देनेका उल्लेख प्राप्त होता है। इसी प्रकार सच्चे भक्तोंको उनके आज भी दर्शन होते हैं। उनके साथ सदा ही भक्त, संत और ऋषि-मुनियोंका एक समूह स्थिर रहता है। वे भगवान् वसिष्ठके प्रपौत्र, शक्ति ऋषिके पौत्र, पराशरजीके पुत्र, शुकदेवजीके पिता तथा गुरु एवं शंकराचार्य, गोविन्दाचार्य और गौडपादाचार्यके परम गुरु रहे हैं। जनक आदि राजर्षियोंके भी वे ही गुरु रहे हैं। पुराणोंमें प्रसिद्ध है कि यमुनाके द्वीपमें प्रकट होते ही वे युवा हो गये और सम्पूर्ण वेदोंका पाठ करने लगे, इसलिये वे सामान्य व्यक्ति नहीं हैं। पुराणोंमें यह श्लोक बार-बार आता है—

कृष्णद्वैपायनं व्यासं विद्धि नारायणं प्रभुम् ।
को ह्यन्यो भुवि मैत्रेय महाभारतकृद्भवेत् ॥

(विष्णुपुराण ३।४।५)

अर्थात् अठारह पुराणों तथा महाभारतके रचयिता, ब्रह्म-सूत्रके निर्माता, वेदोंको शाखा-प्रशाखाओंमें विभाजित करनेवाले भगवान् वेदव्यास पुण्डरीकाक्ष नारायणसे भिन्न अन्य सामान्य व्यक्ति कैसे हो सकते हैं? **'यत्र भारते तत्र भारते'** के अनुसार आजके विश्वका सारा ज्ञान-विज्ञान भगवान् व्यास-देवका ही उच्छिष्ट है, अतः **'व्यासोच्छिष्टं जगत्सर्वम्'** की प्रसिद्धि सत्य ही है।

भगवान् व्यासदेवका शुद्ध सत्संग-सत्र निर्बाध-रूपसे निरन्तर चलता रहता था। उनकी गोष्ठी तथा सत्संगमें ब्रह्म-तत्त्वका निरूपण, परमात्माके निर्गुण-सगुण स्वरूपोंका विचार, धर्म-कर्मोंकी व्यापकता तथा उनके फलाफलकी मीमांसा, योग, सांख्य, अध्यात्म-ज्ञान एवं भक्तिके सम्पूर्ण अङ्गोंपर सदा प्रकाश भीं पड़ता था। वे स्वयं भी इनके आचरण तथा पालनमें निरन्तर निरत रहते थे।

व्यासजीने शिव, विष्णु, सूर्य, गणेश और देवी आदिके नामोंसे विभिन्न पुराणोंका निर्माणकर उनमें तत्तद् देवोंकी भक्तिका ऐसा प्रवाह प्रवाहित किया कि वह आज भी भक्तोंके सच्चे हितसाधनका परम साधन बना हुआ है। भगवान् विष्णुके मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन आदि अवतारोंके नामपर भी उन्होंने पुराणोंकी रचना की।

राम-भक्तिपर भगवान् व्यासकी दो रचनाएँ सम्पूर्ण रूपसे प्राप्त हैं—(१) पद्मपुराण तथा (२) अध्यात्मरामायण।

पद्मपुराणमें भगवान् रामका चरित्र विस्तारसे निरूपित है। पद्मपुराणका रामाश्वमेध-खण्ड इतना अधिक व्यापक है कि उसके बिना भगवान् श्रीरामके उत्तरचरित्रका पूरा पता प्राप्त नहीं होता और अध्यात्मरामायणमें योग, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिका इतना मधुर भक्तिमय प्रवाह है जिसे आत्मसात् किये बिना गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी अपने हृदयको रोक नहीं सके। प्रायः सभी विद्वान् रामचरितमानसका आधार अध्यात्मरामायण मानते हैं, जो **'उमामहेश्वरसंवादे'** नामसे भगवान् व्यासद्वारा रचित ब्रह्माण्डपुराणका मुख्य अंश माना जाता है।

गोस्वामीजीने मानसके प्रारम्भमें ही—

ब्यास आदि कबि पुंगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥
चरन कमल बंदउँ तिन्ह केरे। पुरवहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥

—यह कहकर आभार स्वीकार करते हुए व्यासजीके प्रति अपनी भक्ति प्रकट की है और अपनी रचनापर भी उनका प्रभाव माना है। यहाँ महात्मा श्रीतुलसीदासजीका तात्पर्य भगवान् वेदव्यासकृत रामभक्ति-ज्ञानसे ओतप्रोत अध्यात्म-रामायणसे ही परिलक्षित होता है। वैसे उनके कथानकका प्रवाह भी अध्यात्मरामायणका अनुसरण करता है।

भगवान् श्रीरामकी जितनी स्तुतियाँ भगवान् वेदव्यासकृत अध्यात्मरामायणमें हैं उसीसे प्रायः सभी राम-भक्तिके ग्रन्थ और

रामजीके स्तोत्र-संग्रह भी संगृहीत हुए हैं। विभिन्न रामगीताएँ भी अध्यात्मरामायणसे ही संगृहीत हैं। जिनमें तीन तो केवल भक्तिपरक हैं—(१) हनुमान्‌जीके प्रति उपदिष्ट, (२) लक्ष्मणजीके प्रति दण्डकवनमें उपदिष्ट तथा (३) किष्किन्धा पहुँचनेके पहले शबरीको उपदिष्ट। स्थान-स्थानपर गोस्वामी-जीने इनका भी संग्रह किया है, पर शबरीके प्रसंगको तो प्रायः अक्षरशः अनूदित-सा कर दिया है। अध्यात्मरामायणके वचन इस प्रकार हैं—

तस्माद्भामिनि संक्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम्।
सतां संगतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम्॥
द्वितीयं मत्कथालापस्तृतीयं मद्गुणेरणम्।
व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत्॥
आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्ध्यामायया सदा।
पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च॥
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम्।
मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते॥
मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः।
बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा॥
अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि।
एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा॥
स्त्रियो वा पुरुषस्यापि तिर्यग्योनिगतस्य वा।
भक्तिः संजायते प्रेमलक्षणा शुभलक्षणे॥

(अध्यात्मरामायण, अरण्य० १०। २२—२८)

अतः हे भामिनि! मैं संक्षेपसे अपनी भक्तिके साधनोंका वर्णन करता हूँ। उनमें पहला साधन तो सत्संग ही है। मेरे जन्म-कर्मोंकी कथाका कीर्तन करना दूसरा साधन है, मेरे गुणोंकी चर्चा करना—यह तीसरा उपाय है और (गीता-उपनिषदादि) मेरे वाक्योंकी व्याख्या करना उसका चौथा साधन है। हे भद्रे! अपने गुरुदेवकी निष्कपट होकर भगवद्बुद्धिसे सेवा करना पाँचवाँ, पवित्र स्वभाव, यम-नियमादिका पालन और मेरी पूजामें सदा प्रेम होना छठा तथा मेरे मन्त्रकी साङ्गोपाङ्ग उपासना करना सातवाँ साधन कहा जाता है। मेरे भक्तोंकी मुझसे भी अधिक पूजा करना, समस्त प्राणियोंमें मेरी भावना करना, बाह्य पदार्थोंमें वैराग्य करना और शम-दमादि-सम्पन्न होना—यह मेरी भक्तिका आठवाँ साधन है तथा तत्त्व-विचार करना नवाँ है। हे भामिनि! इस प्रकार यह नौ प्रकारकी भक्ति है। हे शुभलक्षणे! जिस किसीमें ये साधन होते हैं, वह स्त्री, पुरुष अथवा पशु-पक्षी आदि कोई भी क्यों न हो, उसमें प्रेम-लक्षणा-भक्तिका आविर्भाव हो ही जाता है।

श्रीगोस्वामीजीने रामचरितमानसमें इन्हीं भावोंको उल्लिखित किया है। मूल वचन इस प्रकार हैं—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥
नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥
जोगि बृंद दुरलभ गति जोई। तो कहुँ आजु सुलभ भइ सोई॥

(रामचरितमानस ३। ३५। ७-८, ३५; ३६। १—८)

पद्मपुराणके प्रायः सभी खण्डोंमें रामचरित एवं उनकी भक्तिका वर्णन व्यासजीने बार-बार किया है, किंतु पद्मपुराणका पातालखण्ड तो आद्योपान्त राम-भक्ति, रामोपासना और भगवान् श्रीरामके उपदेशोंमें ही पर्यवसित होता है। इसका दूसरा नाम रामाश्वमेध-खण्ड भी है। इसके सभी आख्यान राम-भक्तिसे ओत-प्रोत हैं। यह सब व्यासजीकी कृपापूर्ण रचनाका फल है जो इतने विस्तारसे भगवान् श्रीरामकी भक्तिका विवरण हमें प्राप्त होता है। इसमें आरण्यक मुनि और लोमश मुनिके संवादके वर्णनमें श्रीराम-भक्तिकी अपार महिमा निरूपित है। प्रायः सभी प्रकारके वर्ण, आश्रम, अवस्था और स्थितिवाले व्यक्तियोंके संसार-तरणके लिये उपाय पूछनेपर महर्षि लोमशजीने आरण्यक मुनिसे राम-नाम और राम-भक्तिकी महिमा बतलायी, जिसके आश्रयणसे महापापी भी दुःखमय संसार-समुद्रको सरलतासे पार कर जाते हैं। और यदि नाम-जप, भगवच्चरित्र तथा भगवद्भक्ति—इन तीनोंका

आश्रय हो तो फिर पार उतरनेमें देर ही नहीं लगती।

अग्निपुराणमें भी रामजीके द्वारा लक्ष्मणको उपदिष्ट सम्पूर्ण राजनीतिके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंका प्रायः २५ अध्यायोंमें वर्णन भगवान् व्यासदेवजीने किया है। ये श्लोक प्रायः ज्यों-के-त्यों 'कामन्दकीय नीतिसार'में भी आ गये हैं। इसपर जयमंगला, उपाध्यायनिरपेक्षा आदि टीकाएँ हैं।

इसी प्रकार स्कन्दपुराणके भी प्राय सभी खण्डोंमें न्यूनाधिक रूपसे व्यासजीने राम-भक्तिकी सर्वत्र चर्चा की है, किंतु ब्रह्मखण्डका सेतु-माहात्म्य तो अद्भुत राम-स्तोत्रों एवं चरित्रोंसे परिपूर्ण है, जिसे देखनेसे एक बार ऐसा प्रतीत होता है कि यही सबसे अधिक राम-भक्तिकी महिमाका ग्रन्थ है। उसमें हनुमान्‌जीके द्वारा रामजीकी स्तुति बड़ी ही प्रभावशाली और विलक्षण है, जिसका माहात्म्य ही लगभग ६० श्लोकोंमें निरूपित है। यह सब श्रीव्यासजीकी राम-भक्ति एवं राम-प्रेमका ही एक स्वल्प निदर्शन है।

भक्तिसे ओतप्रोत श्रीमद्भागवत यद्यपि कृष्ण-भक्तिपरक ग्रन्थ है, पर उसमें '**सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः**' (श्रीमद्भा० ११।४।२१) अर्थात् यशमें सीतापति श्रीरामजी ही सबसे अधिक बढ़ गये और उनकी कीर्ति-सीमाका आजतक कोई भी उल्लंघन नहीं कर सका—यह कहकर व्यासजीने भगवान् श्रीरामकी अद्भुत महिमा निरूपित की है। आज भी पूजा-विधानमें सभी मन्दिरोंमें भागवतके '**वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्**' की आवृत्तिवाले दो श्लोकोंको पूजा-आरती और नमस्कारके लिये गेय माना जाता है। विशेष महत्त्वके होने तथा रामजीकी विशेष भक्तियुक्त होनेसे इन्हें यहाँ दिया जा रहा है—

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम्।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥
त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

(श्रीमद्भा० ११।५।३३-३४)

अर्थात् 'हे प्रभो! आप शरणागतरक्षक हैं। आपके चरणारविन्द सदा-सर्वदा ध्यान करने योग्य, माया-मोहके कारण होनेवाले सांसारिक पराजयोंका अन्त कर देनेवाले तथा भक्तोंकी समस्त अभीष्ट वस्तुओंका दान करनेवाले कामधेनु-स्वरूप हैं। वे तीर्थोंको भी तीर्थ बनानेवाले स्वयं परम तीर्थस्वरूप हैं; शिव, ब्रह्मा आदि बड़े-बड़े देवता उन्हें नमस्कार करते हैं और चाहे जो कोई उनकी शरणमें आ जाय, उसे स्वीकार कर लेते हैं। सेवकोंकी समस्त आर्ति और विपत्तिके नाशक तथा संसार-सागरसे पार जानेके लिये जहाज हैं। महापुरुष! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ। भगवन्! आपके चरण-कमलोंकी महिमा कौन कहे? रामावतारमें अपने पिता दशरथजीके वचनोंसे देवताओंके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आपके चरण-कमल वन-वन घूमते फिरे। सचमुच आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं और महापुरुष! अपनी प्रेयसी सीताजीके चाहनेपर जान-बूझकर आपके चरण-कमल मायामृगके पीछे दौड़ते रहे। सचमुच आप प्रेमकी सीमा हैं। प्रभो! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ।'

यह स्तुति मूलतः व्यासजीकी श्रीरामके प्रति अपनी अनन्य निष्ठा, श्रद्धा, प्रेम एवं भक्तिकी ही परिचायिका है। उन्होंने श्रीरामचरितके उपसंहारमें यहाँतक कह डाला कि—

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥
पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥

(श्रीमद्भा० ९।११।२२-२३)

'जिसने रामको छुआ या रामके द्वारा छुआ गया, जिसने रामको देखा या रामके द्वारा जो देखा गया, जो उनके साथ बैठा, उठा या चला अथवा कुछ बात की, वे सब-के-सब उत्तरकोसलके निवासी उन सांतानिक लोकोंमें भगवान्‌के साथ ही चले गये, जहाँ बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र भी बड़ी कठिन साधनासे पहुँच पाते हैं। जो पुरुष अपने कानोंसे भगवान् श्रीरामका चरित्र सुनता है,उसे सरलता, कोमलता आदि गुणोंकी प्राप्ति होती है। परीक्षित्! केवल इतना ही नहीं, वह समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है।'

भला व्यासजीके अतिरिक्त और किस राम-भक्तके हृदयसे ऐसे उद्गार प्रकट हो सकते हैं?

भगवान् वेदव्यासजीने वेदान्तदर्शनमें जिस ब्रह्मकी चर्चा की है, वह ब्रह्म भी रामसे भिन्न नहीं हैं; क्योंकि परवर्ती रामचरितकार ***'राम ब्रह्म चिनमय अबिनासी। सर्ब रहित सब उर पुर बासी॥'*** (मानस, बा० १२०। ६)—आदिसे प्रतिपद उन्हें ब्रह्म ही मानते हैं, जिसका आधार वेदव्यासरचित वेदान्तदर्शन ब्रह्मसूत्र ही है। विशेषकर आचार्य रामानन्दजी ब्रह्मसूत्रके अपने आनन्दभाष्यमें प्रायः प्रत्येक सूत्रमें रामकी भक्ति और रामकी विशेषताओंको वाल्मीकिरामायण और विष्णुपुराण आदिके आधारपर सिद्ध करते हुए उनका रामभक्तिपरक ही अर्थ करते हैं और सारांश भी यही निकालते हैं कि किसी भी क्षण रामको भूल जाना सबसे बड़ी हानि, उपसर्ग, चूक, दुर्भाग्य और अज्ञान या मूर्खताका काम है। उन्हें स्मरण करना या उनकी भक्ति करना परम सौभाग्य, कल्याणका मार्ग, बुद्धिमानी तथा आनन्द-सुखकी वस्तु है। वेदव्यासजीने ब्रह्मसूत्रके **'अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः'**, **'अनुस्मृतेर्बादरिः'**, **'सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति'** तथा **'आमनन्ति चैनमस्मिन्'** (ब्र० सू० १। २। २९—३२)—इन चार सूत्रोंमें अपने बादरि नामका उल्लेख करते हुए कहा है कि भगवान् अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ध्यान-भजन करते ही राम-कृष्ण आदि रूपोंमें अभिव्यक्त हो जाते हैं, उनके मनोऽनुकूल वार्तालाप करते हैं और उनका सभी प्रकारसे कल्याण-सम्पादन करते हैं। कई टीकाकारोंने इन सूत्रोंके प्रमाणमें व्यासविरचित भागवत (३। ९। ११) के इस श्लोकको भी उद्धृत किया है—

यद् यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

अर्थात् 'महान् यशस्वी परमेश्वर! आपके भक्तजन हृदयमें आपका जिस-जिस रूपमें चिन्तन करते हैं, आप उन संत-महानुभावोंपर अनुग्रह करनेके लिये वही-वही शरीर धारण कर लेते हैं।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि संसारमें राम-भक्तिके प्रचार-प्रसारमें सर्वाधिक योगदान महर्षि कृष्णद्वैपायन व्यासदेवका ही है। यद्यपि उन्होंने थोड़ा-बहुत सभी अवतारोंका विभिन्न रुचिवाले भक्तोंके लिये वर्णन अवश्य किया है, किंतु नाम, रूप, लीला, धाम आदि किसी लक्ष्यको लेकर देखा जाय तो सिद्ध-पुरुषका मुख्य लक्ष्य तो **'व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन'** (गीता २। ४१) के अनुसार एक ही व्यक्ति अथवा रूप होता है। इस दृष्टिसे संसारमें राम-नामका और ***'रामायन सत कोटि अपारा'*** (मानस, बाल० ३३। ६) से अनन्तकोटि रामचरित-साहित्यका और ग्राम-ग्राममें उनके मन्दिरोंका जैसा प्रचार-प्रसार देखा जाता है, उनके मूलमें भगवान् व्यासजीका ही प्रयास कारण दीखता है। इससे बड़ा और महनीय कार्य हो भी नहीं सकता, जिसे सम्पन्न करनेका श्रेय उन्हें ही प्राप्त हुआ है। वे भगवान् श्रीरामके अद्वितीय सर्वोपरि भक्त भी थे और स्वयं भगवान्‌के अवतार भी थे। ऐसे प्रातःस्मरणीय श्रीरामके अनन्य-भक्त श्रीव्यासदेव और उनके आराध्य गेय, ध्येय एवं पूज्य भगवान् श्रीरामको शतशः नमन है।

भरद्वाज मुनिकी श्रीरामभक्ति-निष्ठा

महामोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥

भगवान्‌के मङ्गलमय चरितोंको सुननेसे त्रयतापसंतप्त प्राणीको शान्ति प्राप्त होती है। मायाके काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि विकार दूर होते हैं। हृदय निर्मल होता है। इसीलिये संत-सत्पुरुष सदा भगवत्कथा कहने-सुननेमें ही लगे रहते हैं। श्रीहरिके नित्य दिव्य गुणोंमें जिनका हृदय लग गया, उनको फिर संसारके सभी विषय फीके लगते हैं। उन्हें वैराग्य करना या जगाना नहीं पड़ता, अपने-आप उनका चित्त सभी लौकिक भोगोंसे विरक्त हो जाता है। आनन्दकन्द प्रभुके चरित भी आनन्दरूप ही हैं। उनकी सुधा-मधुरिमाका स्वाद एक बार मनको लगाना चाहिये, फिर तो वह अन्यत्र कहीं जाना ही नहीं चाहेगा।

देवगुरु बृहस्पतिके भाई उतथ्यके पुत्र भरद्वाजजी श्रीरामकथा-श्रवणके अनन्य रसिक थे। ये ब्रह्मनिष्ठ, श्रोत्रिय,

तपस्वी और भगवान्‌के परम भक्त थे। तीर्थराज प्रयागमें गङ्गा-यमुनाके संगमसे थोड़ी दूरपर भरद्वाजजीका आश्रम था। सहस्रों ब्रह्मचारी इनसे विद्याध्ययन करने आते और बहुत-से विरक्त साधक इनके समीप रहकर अपने अधिकारके अनुसार योग, उपासना, तत्त्वानुसंधान आदि पारमार्थिक साधन करते हुए आत्मकल्याणकी प्राप्तिमें लगे रहते। भरद्वाजजीकी दो पुत्रियाँ थीं, जिनमें एक महर्षि याज्ञवल्क्यजीको विवाही थी और दूसरी विश्रवा मुनिकी पत्नी हुई, जिसके पुत्र लोकपाल कुबेर हुए।

भगवान् श्रीराममें भरद्वाजजीका अनन्य अनुराग था। जब श्रीराम वन जाने लगे, तब मुनिके आश्रममें प्रयागराजमें उन्होंने एक रात्रि निवास किया। मुनिने भगवान्‌से उस समय अपने हृदयकी निश्चित धारणा बतायी थी—

करम बचन मन छाड़ि छलु जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुखु सपनेहुँ नहीं किएँ कोटि उपचार॥

जब श्रीभरतलालजी प्रभुको लौटानेके उद्देश्यसे चित्रकूट जा रहे थे, तब वे भी एक रात्रि मुनिके आश्रममें रहे थे। अपने तपोबलसे, सिद्धियोंके प्रभावसे मुनिने अयोध्याके पूरे समाजका ऐसा अद्भुत आतिथ्य किया कि सब लोग चकित रह गये। जो भगवान्‌के सच्चे भक्त हैं, उन्हें भगवान्‌के भक्त भगवान्‌से भी अधिक प्रिय लगते हैं। किसी भगवद्भक्तका मिलन उन्हें प्रभुके मिलनसे भी अधिक सुखदायी होता है। भरद्वाजजीको भरतजीसे मिलकर ऐसा ही असीम आनन्द हुआ। उन्होंने कहा भी—

सुनहु भरत हम झूठ न कहहीं। उदासीन तापस बन रहहीं॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥
तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥

जब श्रीरघुनाथजी लंका-विजय करके लौटे, तब भी वे पुष्पक विमानसे उतरकर प्रयागमें भरद्वाजजीके पास गये। श्रीरामके साकेत पधारनेपर भरद्वाजजी उनके भुवनसुन्दर रूपके ध्यान तथा उनके गुणोंके चिन्तनमें ही लगे रहते थे। माघ महीनेमें प्रतिवर्ष ही प्रयागराजमें ऋषि-मुनिगण मकर-स्नानके लिये एकत्र होते थे। एक बार जब माघभर रहकर सब मुनिगण जाने लगे, तब बड़ी श्रद्धासे प्रार्थना करके भरद्वाजजीने महर्षि याज्ञवल्क्यको रोक लिया और उनसे श्रीरामकथा सुनानेकी प्रार्थना की। याज्ञवल्क्यजीने प्रसन्न होकर श्रीरामचरितका वर्णन किया। इस प्रकार भरद्वाजजीकी कृपासे लोकमें श्रीरामचरितका मङ्गल-प्रवाह प्रवाहित हुआ।

महर्षि अगस्त्यजीकी रामभक्ति

यह बर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥
(रा० च० मा० ३। १३। १०)

विन्ध्यगिरिकी गतिको अवरुद्ध कर देनेवाले परमतेजस्वी अगस्त्यजीका आश्रम अत्यन्त मनोहर था। वहाँ प्रत्येक ऋतुमें सुन्दर पुष्प एवं सुस्वादु फल सुलभ थे। मृगादि पशु वहाँ शान्ति एवं सुखपूर्वक विचरण करते थे एवं नाना प्रकारके पक्षी मधुर स्वरमें गान करते रहते थे। राक्षसगण उनके आश्रमके समीप भी नहीं आते थे। वे भयाक्रान्त होकर दूर चले गये थे। आश्रम प्रत्येक दृष्टिसे सुखद एवं निरापद था। इसी कारण तपश्चर्याके लिये वहाँ ऋषि-मुनि ही नहीं, देवता, यक्ष, नाग और पक्षी भी अत्यन्त संयमित जीवन व्यतीत करते हुए निवास करते थे। तपस्वी अगस्त्यजीकी प्रशंसा करते हुए स्वयं कमल-लोचन श्रीरामने अपने अनुज लक्ष्मणसे कहा था—

नात्र जीवेन्मृषावादी क्रूरो वा यदि वा शठः।
नृशंसः पापवृत्तो वा मुनिरेष तथाविधः॥
(वा० रा० ३। ११। ९०)

'ये मुनि ऐसे प्रभावशाली हैं कि इनके आश्रममें कोई झूठ बोलनेवाला, क्रूर, शठ, नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता।'

जिस समय क्षीराब्धिके निकट ब्रह्माजीने प्रभुसे रावणका वधकर पृथ्वीका भार हरण करनेकी प्रार्थना की थी, उसी समयसे तपस्वी अगस्त्यजी उस पवित्रतम आश्रममें रहकर श्रीरामके दर्शनार्थ उनके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने अपने शिष्य सुतीक्ष्णजीके विशेष आग्रहसे गुरुदक्षिणा माँगी थी—'मुझे यहाँ भगवान् श्रीरामके दर्शन कराओ।'

सुतीक्ष्णजीने श्रीअगस्त्यजीके चरणोंमें प्रणाम किया और भगवान् श्रीरामकी प्राप्तिके लिये वहाँसे चले गये। वे निरन्तर साधन-भजनमें लगे रहते थे। श्रीरामके चरणोंमें उनकी भक्ति

अनुपम थी और इसी कारण श्यामसुन्दर श्रीरामने श्रीसीता एवं लक्ष्मणसहित उन्हें दर्शन दिया। उनकी लालसा पूरी हुई। वे प्रभुके साथ अपने गुरु श्रीअगस्त्यजीके आश्रमकी ओर चले। आश्रमके पास पहुँचकर सुतीक्ष्णजी तुरंत अपने गुरुके पास चले गये। उस समय श्रीअगस्त्यजी रामभक्तोंके साथ प्रभुका गुणगान कर रहे थे। वहाँ पहुँचकर—

दण्डवत् प्रणिपत्याह विनयावनतः सुधीः।
रामो दाशरथिर्ब्रह्मन् सीतया लक्ष्मणेन च।
आगतो दर्शनार्थं ते बहिस्तिष्ठति साञ्जलिः॥

(अ० रा० ३।३।९)

'उन्हें विनयपूर्वक दण्डवत्-प्रणाम कर सुबुद्धि सुतीक्ष्णजीने कहा—'ब्रह्मन्! दशरथकुमार श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ आपके दर्शनोंके लिये आये हैं और अञ्जलि बाँधे आश्रमके बाहर खड़े हैं।'[1]

इस संवादमें कितना सुख था, इसे परमभक्त श्रीअगस्त्य-जी ही जानते थे। ***'सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए।'*** (रा० च० मा० ३।११।५)—'श्रीअगस्त्यजी अपने परमाराध्यके दर्शनार्थ दौड़ पड़े।'

रामोऽपि मुनिमायान्तं दृष्ट्वा हर्षसमाकुलः।
सीतया लक्ष्मणेनापि दण्डवत् पतितो भुवि॥
द्रुतमुत्थाप्य मुनिराड् राममालिङ्ग्य भक्तितः।
तद्गात्रस्पर्शजाह्लादस्रवन्नेत्रजलाकुलः॥

(अ० रा० ३।३।१३-१४)

'मुनीश्वरको आते देख श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताके सहित पृथ्वीपर दण्डके समान लेट गये। तब मुनिराजने तुरंत ही रामको उठाकर प्रेमपूर्वक हृदयसे लगा लिया और उनके शरीर-स्पर्शसे प्राप्त हुए आनन्दसे उनके नेत्रोंमें जल भर आया।'

फिर अगस्त्यजीने बड़े ही स्नेहसे उनसे कुशल-प्रश्न पूछा। प्रभु श्रीरामके अमृतमय वचनोंसे अगस्त्यजीका रोम-रोम पुलकित हो रहा था। उन्होंने लक्ष्मण एवं सीतासहित अपने प्राणाधार श्रीरामको सुन्दर आसनपर बैठाया तथा उनकी प्रेमपूर्वक पूजा की। वनके सुन्दर एवं सुस्वादु फलोंसे प्रभुको संतुष्टकर वे कहने लगे—'आज मेरे-जैसा भाग्यशाली कोई नहीं, जो मैं, जिनमें योगियोंका मन रमण करता है तथा जो भक्तोंको आनन्द प्रदान करनेवाले हैं, उन धर्मात्मा रामको विदेहतनया सीता और लक्ष्मणके साथ अपने आश्रममें प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। दयामय! आपकी दया अनन्त है।' इस प्रकार स्तुति करते हुए अगस्त्यजीने प्रभु श्रीरामसे कहा—

दीर्घकालं मया तप्तमनन्यमतिना तपः।
तस्येह तपसो राम फलं तव यदर्चनम्॥
सदा मे सीतया सार्धं हृदये वस राघव।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि स्मृतिः स्यान्मे सदा त्वयि॥

(अ० रा० ३।३।४३-४४)

'प्रभो! मैंने बहुत समयतक अनन्यभावसे तपस्या की है। राम! आज जो मैंने आपकी प्रत्यक्ष पूजा की, यह उस तपस्याका फल है। राघव! सीताके सहित आप सर्वदा मेरे हृदयमें निवास करें, मुझे चलते-फिरते सदा आपका स्मरण बना रहे।'

इस प्रकार स्तुति कर महाभाग अगस्त्यजीने (राक्षसोंका संहार करनेके लिये) पूर्वकालमें श्रीरामके लिये इन्द्रका दिया हुआ धनुष, बाणोंसे कभी खाली न होनेवाले दो तरकश तथा एक रत्नजटित खड्ग देते हुए मुनिजनवन्दित श्रीरामसे कहा—

अनेन धनुषा राम हत्वा संख्ये महासुरान्।
आजहार श्रियं दीप्तां पुरा विष्णुर्दिवौकसाम्॥
तद्धनुस्तौ च तूणी च शरं खड्गं च मानद।
जयाय प्रतिगृह्णीष्व वज्रं वज्रधरो यथा॥

(वा० रा० ३।१२।३५-३६)

'श्रीराम! पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने इसी धनुषसे युद्धमें बड़े-बड़े असुरोंका संहार करके देवताओंकी उद्दीप्त लक्ष्मीको उनके अधिकारसे लौटाया था। मानद! आप यह धनुष, ये दोनों तरकश, ये बाण और यह तलवार (राक्षसोंपर) विजय पानेके लिये ग्रहण कीजिये—ठीक उसी तरह, जैसे वज्रधारी इन्द्र वज्र ग्रहण करते हैं।'

१-तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥
नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥ (रा० च० मा० ३।१२।६—८)

सर्वसमर्थ सर्वेश्वर श्रीरामने उन श्रेष्ठ आयुधोंको ले लिया और विनयपूर्वक पूछा—'महामुने! आप मुझे कृपापूर्वक ऐसा स्थान बताइये, जहाँ जल एवं पुष्प-फलादिकी सुविधा हो और मैं वहाँ कुटी बनाकर सुखपूर्वक रह सकूँ।'

अपने परमाराध्य, निखिल सृष्टिके स्वामी, जगदाधार श्रीरामके मुखारविन्दसे ऐसा वचन सुनकर अगस्त्यजीके नेत्र भर आये। वे प्रभुके सौन्दर्य, शील एवं विनय आदि गुणोंपर अत्यन्त मुग्ध थे ही, उन्हें यह सम्मान देते देखकर गद्गद हो गये। उनकी वाणी अवरुद्ध-सी हो गयी। कुछ देर बाद उन्होंने श्रीरामके मुखारविन्दकी ओर एकटक निहारते हुए कहा—

संतत दासन्ह देहु बड़ाई। तातें मोहि पूँछेहु रघुराई॥
है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पंचबटी तेहि नाऊँ॥
दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू॥

(रा० च० मा० ३।१३।१४—१६)

पद्मपत्राक्ष श्रीरामने अगस्त्यजीके चरणोंमें सादर प्रणाम निवेदन किया और फिर वहाँसे दण्डकवनके लिये प्रस्थान किया। *'चले राम मुनि आयसु पाई।'* (रा० च० मा० ३।१३।१८)।

धन्य थे महाभाग अगस्त्यजी और धन्य थी उनकी श्रीराम-पदप्रीति।

आरण्यक मुनिकी रामभक्ति

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥

त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामका अवतार हुआ, उससे पहलेकी बात है। आरण्यक मुनि परमात्मतत्त्वको जानकर परम शान्ति पानेके लिये घोर तपस्या कर रहे थे। दीर्घकालीन तपसे भी जब सफलता नहीं मिली, तब मुनि किसी ज्ञानी महापुरुषकी खोज करने लगे। वे अनेक तीर्थोंमें घूमे, बहुत लोगोंसे मिले, पर उनको संतोष नहीं हुआ। एक दिन उन्होंने तीर्थयात्राके लिये तपोलोकसे पृथिवीपर उतरते दीर्घजीवी लोमश ऋषिके दर्शन किये। वे ऋषिके समीप गये और उनके चरणोंमें प्रणाम करके नम्रतापूर्वक प्रार्थना की—'भगवन्! दुर्लभ मनुष्य-शरीर पाकर जीव किस उपायसे दुस्तर संसार-सागरको पार कर सकता है? आप दया करके मुझे कोई ऐसा व्रत, दान, जप, यज्ञ या देवाराधन बतलाइये, जिससे मैं इस भवसागरसे पार हो सकूँ।'

महर्षि लोमशने कहा—'दान, तीर्थ, व्रत, यम, नियम, यज्ञ, योग, तप आदि सभी उत्तम कर्म हैं, किंतु इनका फल स्वर्ग है। जबतक पुण्य रहता है, प्राणी स्वर्गके सुख भोगता है और पुण्य समाप्त होनेपर नीचे गिर जाता है। जो लोग स्वर्गसुखके लिये ही पुण्यकर्म करते हैं, वे कुछ भी शुभ कर्म न करनेवाले मूढ़ लोगोंसे तो उत्तम हैं, पर बुद्धिमान् नहीं हैं।' देखो, मैं तुम्हें एक उत्तम रहस्य बतलाता हूँ—'भगवान् श्रीरामसे बड़ा कोई देवता नहीं, रामसे उत्तम कोई व्रत नहीं, रामसे श्रेष्ठ कोई योग नहीं और रामसे उत्कृष्ट कोई यज्ञ नहीं। श्रीराम-नामका जप तथा श्रीरामका पूजन करनेसे मनुष्य इस लोक तथा परलोकमें भी सुखी होता है। श्रीरामकी शरण लेकर प्राणी अनायास संसार-सागरको पार कर जाता है। श्रीरामका स्मरण-ध्यान करनेसे मनुष्यकी सभी कामनाएँ पूर्ण होती हैं और उसे परम पद प्राप्त करानेवाली भक्ति भी श्रीराम देते हैं। जो उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं, उनकी तो चर्चा ही क्या, चाण्डाल भी श्रीरामका प्रेमपूर्वक स्मरण करके परम गति पाता है। श्रीराम ही एकमात्र परम देवता हैं, श्रीरामका पूजन ही प्रधान व्रत है, राम-नाम ही सर्वोत्तम मन्त्र है और जिनमें रामकी स्तुति है, वे ही उत्तम शास्त्र हैं। अतएव तुम मन लगाकर श्रीरामका ही भजन, पूजन एवं ध्यान करो।'

आरण्यक मुनिको बड़ी प्रसन्नता हुई यह उपदेश सुनकर। उन्होंने महर्षि लोमशसे ध्यान करनेके लिये श्रीरामके स्वरूपको जानना चाहा। महर्षिने कहा—'रमणीय अयोध्या नगरीमें कल्पतरुके नीचे विचित्र मण्डपमें भगवान् श्रीरामचन्द्र विराजमान हैं। महामरकतमणि, नीलकान्तमणि और स्वर्णसे बना हुआ अत्यन्त मनोहर उनका सिंहासन है। सिंहासनकी प्रभा चारों ओर छिटक रही है। नवदूर्वादलश्याम सौन्दर्यसागर देवेन्द्रपूजित भगवान् श्रीरघुनाथजी सिंहासनपर बैठे अपनी छटासे मुनियोंका मन हरण कर रहे हैं। उनका मनोमुग्धकारी मुखमण्डल करोड़ों चन्द्रमाओंकी छबिको लज्जित कर रहा है। उनके कानोंमें दिव्य मकराकृति कुण्डल झलमला रहे हैं, मस्तकपर किरीट सुशोभित है। किरीटमें जड़ी हुई मणियोंकी

रंग-बिरंगी प्रभासे सारा शरीर रञ्जित हो रहा है। मस्तकपर काले घुँघराले केश हैं। उनके मुखमें सुधाकरकी किरणों-जैसी दन्तपंक्ति शोभा पा रही है। उनके होंठ और अधर विद्रुममणि-जैसे मनोहर कान्तिमय हैं। जिसमें अन्यान्य शास्त्रोंसहित ऋक्, साम आदि चारों वेदोंकी नित्य-स्फूर्ति हो रही है, जवाकुसुमके समान ऐसी मधुमयी रसना उनके मुखके भीतर शोभा पा रही है। उनकी सुन्दर देह कम्बु-जैसे कमनीय कण्ठसे सुशोभित है। उनके दोनों कन्धे सिंह-स्कन्धोंकी तरह ऊँचे और मांसल हैं। उनकी लंबी भुजाएँ घुटनोंतक पहुँची हुई हैं। अँगूठीमें जड़े हुए हीरोंकी आभासे अँगुलियाँ चमक रही हैं। केयूर और कङ्कण निराली ही शोभा दे रहे हैं। उनका सुमनोहर विशाल वक्षःस्थल श्रीलक्ष्मी और श्रीवत्सादि विचित्र चिह्नोंसे विभूषित है। उदरमें त्रिवली है, गम्भीर नाभि है और मनोहर कटिदेश मणियोंकी करधनीसे सुशोभित है। उनकी सुन्दर निर्मल जंघाएँ और मनोहर घुटने हैं। योगिराजोंके ध्येय उनके परम मङ्गलमय चरणयुगलमें वज्र, अङ्कुश, जौ और ध्वजादिके चिह्न अङ्कित हैं। हाथोंमें धनुष-बाण और कंधेपर तरकश शोभित हैं। मस्तकपर सुन्दर तिलक है और अपनी इस छबिसे वे सबका चित्त जबरदस्ती अपनी ओर खींच रहे हैं।'

इस प्रकार भगवान्‌के मङ्गलमय तथा छबिमय दिव्य स्वरूपका वर्णन करके लोमशजीने कहा—'हे मुने! यदि तुम इस प्रकार भगवान् श्रीरामका ध्यान और स्मरण करोगे तो अनायास ही संसार-सागरसे पार हो जाओगे।'

लोमशजीकी बात सुनकर आरण्यक मुनिने उनसे विनम्र शब्दोंमें कहा—'भगवन्! आपने कृपा करके मुझे भगवान् श्रीरामका ध्यान बतलाया सो बड़ा ही अच्छा किया, मैं आपके उपकारके भारसे दब गया हूँ, परंतु नाथ! इतना और बतलाइये कि ये श्रीराम कौन हैं, इनका मूलस्वरूप क्या है और ये अवतार क्यों लेते हैं?'

महर्षि लोमशजीने कहा—'हे वत्स! पूर्ण सनातन परात्पर परमात्मा ही श्रीराम हैं। समस्त विश्व-ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति इन्हींसे हुई है, यही सबके आधार, सबमें फैले हुए, सबके स्वामी, सबके सृजन, पालन और संहार करनेवाले हैं। सारा विश्व इन्हींकी लीलाका विकास है। समस्त योगेश्वरोंके भी परम ईश्वर दयासागर ये प्रभु जीवोंकी दुर्गति देखकर उन्हें घोर नरकसे बचानेके लिये जगत्‌में अपनी लीला और गुणोंका विस्तार करते हैं, जिनका गान करके पापी-से-पापी मनुष्य भी तर जाते हैं। ये श्रीराम इसी हेतु अवतार धारण करते हैं।'

इसके बाद लोमशजीने भगवान् श्रीरामका पवित्र चरित्र संक्षेपमें सुनाया और कहा—'त्रेताके अन्तमें भगवान् श्रीराम अवतार धारण करेंगे। उस समय जब वे अश्वमेध यज्ञ करने लगेंगे, तब अश्वके साथ उनके छोटे भाई शत्रुघ्नजी आपके आश्रममें पधारेंगे। तब आप श्रीरामके दर्शन करके उनमें लीन हो सकेंगे।'

महर्षि लोमशके उपदेशानुसार आरण्यक मुनि रेवा नदीके किनारे एक कुटिया बनाकर रहने लगे। वे निरन्तर राम-नामका जप करते थे और श्रीरामके पूजन-ध्यानमें ही लगे रहते थे। बहुत समय बीत जानेपर जब अयोध्यामें मर्यादापुरुषोत्तमने श्रीराघवेन्द्रके रूपमें अवतार धारण करके लंका-विजय आदि लीलाएँ सम्पन्न कर लीं और अयोध्यामें वे अश्वमेध यज्ञ करने लगे, तब यज्ञका अश्व छोड़ा गया। अश्वके पीछे-पीछे उसकी रक्षा करते हुए बड़ी भारी सेनाके साथ शत्रुघ्नजी चल रहे थे। अश्व जब रेवातटपर मुनिके आश्रमके समीप पहुँचा, शत्रुघ्नजीने अपने साथी सुमतिसे पूछा—'यह किसका आश्रम है?' सुमतिसे परिचय प्राप्त कर वे मुनिकी कुटियापर गये। मुनिने उनका स्वागत किया और शत्रुघ्नजीका परिचय पाकर तो वे आनन्दमग्न हो गये। 'अब मेरी बहुत दिनोंकी इच्छा पूरी होगी। अब मैं अपने नेत्रोंसे भगवान् श्रीरामके दर्शन करूँगा। मेरा जीवन धारण करना अब सफल हो जायगा।' इस प्रकार सोचते हुए मुनि अयोध्याकी ओर चल पड़े।

आरण्यक मुनि देवदुर्लभ परम रमणीय अयोध्या नगरीमें पहुँचे। उन्होंने सरयूके तटपर यज्ञशालामें यज्ञकी दीक्षा लिये, नियमके कारण आभूषणरहित, मृगचर्मका उत्तरीय बनाये, हाथमें कुश लिये, नवदूर्वादलश्याम श्रीरामको देखा। वहाँ दीन-दरिद्रोंको मनमानी वस्तुएँ दी जा रही थीं। विप्रोंका सत्कार हो रहा था। ऋषिगण-मन्त्रपाठ कर रहे थे, परंतु आरण्यक मुनि तो एकटक श्रीरामकी रूप-माधुरी देखते हुए जहाँ-के-तहाँ खड़े रह गये। उनका शरीर पुलकित हो गया। वे बेसुध-से होकर उस भुवनमङ्गल छबिको देखते ही रहे। मर्यादापुरुषोत्तमने तपस्वी मुनिको देखा और देखते ही वे उठ

खड़े हुए। इन्द्रादि देवता तथा लोकपाल भी जिनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं, वे ही सर्वेश्वर श्रीराम 'मुनिवर! आज आपके पधारनेसे मैं पवित्र हो गया।' यह कहकर मुनिके चरणोंपर गिर पड़े। तपस्वी आरण्यक मुनिने झटपट अपनी भुजाओंसे उठाकर श्रीरामको हृदयसे लगा लिया। इसके पश्चात् मुनिको उच्चासनपर बैठाकर राघवेन्द्रने स्वयं अपने हाथसे उनके चरण धोये और वह चरणोदक अपने मस्तकपर छिड़क लिया। भगवान् ब्रह्मण्यदेव हैं। उन्होंने ब्राह्मणकी स्तुति की—'मुनिश्रेष्ठ! आपके चरणजलसे मैं अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ पवित्र हो गया। आपके पधारनेसे मेरा अश्वमेध यज्ञ सफल हो गया। अब निश्चय ही मैं आपकी चरणरजसे पवित्र होकर इस यज्ञद्वारा रावण-कुम्भकर्णादि ब्राह्मण-संतानके वधके दोषसे छूट जाऊँगा।'

भगवान्की मधुर वाणी सुनकर मुनिने कुछ हँसते हुए कहा—'प्रभो! मर्यादाके आप ही रक्षक हैं, वेद तथा ब्राह्मण आपकी ही मूर्ति हैं। अतएव आपके लिये ऐसी बातें करना ठीक ही है। दूसरे राजाओंके सामने उच्च आदर्श रखनेके लिये ही आप ऐसा आचरण कर रहे हैं। ब्रह्महत्याके पापसे छूटनेके लिये आप अश्वमेध यज्ञ कर रहे हैं, यह सुनकर मैं अपनी हँसी रोक नहीं पाता। मर्यादापुरुषोत्तम! आपका मर्यादापालन धन्य है। सारे शास्त्रोंके विपरीत आचरण करनेवाला सर्वथा मूर्ख और महापापी भी जिसका नाम-स्मरण करते ही पापोंके समुद्रको भी लाँघकर परमपद पा जाता है, वह ब्रह्महत्याके पापसे छूटनेके लिये अश्वमेध यज्ञ करे—यह क्या कम हँसीकी बात है? भगवन्! जबतक मनुष्य आपके नामका भलीभाँति उच्चारण नहीं करता, तभीतक उसे भय देनेके लिये बड़े-बड़े पाप गरजा करते हैं। रामनामरूपी सिंहकी गर्जना सुनते ही महापापरूपी गजोंका पतातक नहीं लगता। मैंने मुनियोंसे सुना है कि जबतक रामनामका भलीभाँति उच्चारण नहीं होता, तभीतक पापी मनुष्योंको पाप-ताप भयभीत करते हैं। श्रीराम! आज मैं धन्य हो गया। आज आपके दर्शन पाकर मैं संसारके तापसे छूट गया।'

भगवान् श्रीरामने मुनिके वचन सुनकर उनका पूजन किया। सभी ऋषि-मुनि भगवान्की यह लीला देखकर 'धन्य-धन्य' कहने लगे। आरण्यक मुनिने भावावेशमें सबसे कहा—'मुनिगण! आपलोग मेरे भाग्यको तो देखें कि सर्वलोकमहेश्वर श्रीराम मुझे प्रणाम करते हैं। ये सबके परमाराध्य मेरा स्वागत करते हैं। श्रुतियाँ जिनके चरण-

कमलोंकी खोज करती हैं, वे मेरा चरणोदक लेकर अपनेको पवित्र मानते हैं। मैं आज धन्य हो गया!' यह कहते-कहते सबके सामने ही मुनिका ब्रह्मरन्ध्र फट गया। बड़े जोरका धड़ाका हुआ। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। देवता फूलोंकी वर्षा करने लगे। ऋषि-मुनियोंने देखा कि आरण्यक मुनिके मस्तकसे एक विचित्र तेज निकला और वह श्रीरामके मुखमें प्रविष्ट हो गया।
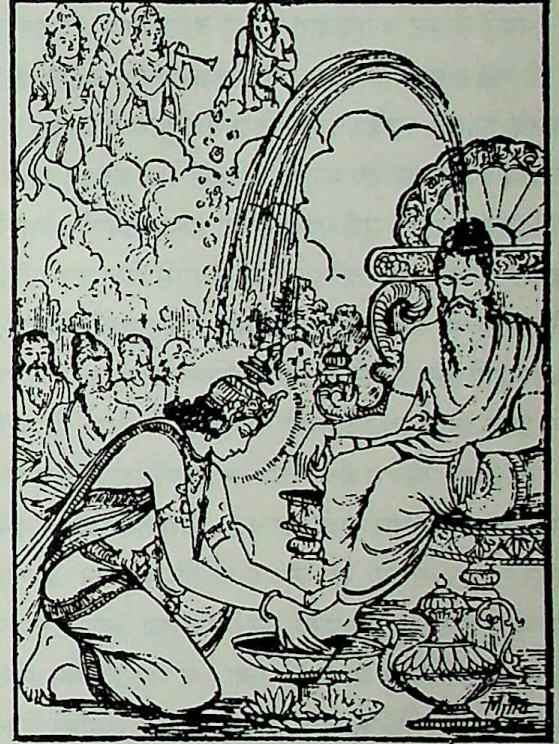
नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥

महर्षि शरभङ्गकी अद्भुत रामभक्ति

तपोभूमि दण्डकारण्य-क्षेत्रमें अनेकानेक ऊर्ध्वरेता ब्रह्मवादी ऋषियोंने घोर तपस्याएँ की हैं। कठिन योगाभ्यास एवं प्राणायामादिद्वारा संसारके समस्त पदार्थोंसे आसक्ति, ममता, स्पृहा एवं कामनाका समूल नाश करके अपनी उग्र तपस्याद्वारा समस्त इन्द्रियोंपर पूर्ण विजय प्राप्त करनेवाले अनेकानेक ऋषियोंमेंसे शरभङ्गजी भी एक थे।

अपनी उत्कट तपस्याद्वारा इन्होंने ब्रह्मलोकपर विजय प्राप्त कर ली थी। देवराज इन्द्र इन्हें सत्कारपूर्वक ब्रह्मलोकतक पहुँचानेके निमित्त आये। इन्होंने देखा कि पृथिवीसे कुछ ऊपर आकाशमें देवराजका रथ खड़ा है। बहुत-से देवताओंसे घिरे वे उसमें विराजमान हैं। सूर्य एवं अग्निके समान उनकी शोभा है। देवाङ्गनाएँ उनकी स्वर्ण-दण्डिकायुक्त चँवरोंसे सेवा कर रही हैं। उनके मस्तकपर श्वेत छत्र शोभायमान है। गन्धर्व, सिद्ध एवं अनेक ब्रह्मर्षि उनकी अनेक उत्तमोत्तम वचनोंद्वारा स्तुति कर रहे हैं। ये इनके साथ ब्रह्मलोकको यात्राके लिये तैयार ही थे कि इन्हें पता चला कि राजीवलोचन कोसलकिशोर श्रीराघवेन्द्र रामभद्र भ्राता लक्ष्मण एवं भगवती श्रीसीताजीसहित इनके आश्रमकी ओर पधार रहे हैं। ज्यों ही भगवान् श्रीरामके आगमनका शुभ समाचार इनके कानोंमें पहुँचा, त्यों ही तपःपूत अन्तःकरणमें भक्तिका संचार हो गया। वे मन-ही-मन सोचने लगे—'अहो ! लौकिक और वैदिक समस्त धर्मोंका पालन जिन भगवान्के चरण-कमलोंकी प्राप्तिके लिये ही किया जाता है—वे ही भगवान् स्वयं जब मेरे आश्रमकी ओर पधार रहे हैं, तब उन्हें छोड़कर ब्रह्मलोकको जाना तो सर्वथा मूर्खता है। ब्रह्मलोकके प्रधान देवता तो मेरे यहाँ ही आ रहे हैं तब वहाँ जाना निष्प्रयोजन ही है। अतः मन-ही-मन यह निश्चय कर कि 'तपस्याके प्रभावसे मैंने जिन-जिन अक्षय लोकोंपर अधिकार प्राप्त किया है, वे सब मैं भगवान्के चरणोंमें समर्पित करता हूँ' इन्होंने देवराज इन्द्रको विदा कर दिया।

ऋषि शरभङ्गजीके अन्तःकरणमें प्रेमजनित विरह-भावका उदय हो गया—

'चितवत पंथ रहेउँ दिन राती।'

वे भगवान् श्रीरामकी अल्प-कालकी प्रतीक्षाको भी युग-युगके समान समझने लगे। 'भगवान् श्रीरामके सम्मुख ही मैं इस नश्वर शरीरका त्याग करूँगा'—इस दृढ़ संकल्पसे वे भगवान् रामकी क्षण-क्षण प्रतीक्षा करने लगे।

कमल-दल-लोचन श्यामसुन्दर भगवान् श्रीराम इनके आश्रमपर पधारे ही। सीता-लक्ष्मणसहित रघुनन्दनको मुनिवर-ने देखा। उनका कण्ठ गद्गद हो गया। वे कहने लगे—

चितवत पंथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुड़ानी छाती॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना॥

भगवान् श्रीरामको देखते ही प्रेमवश इनके लोचन भगवान्के रूप-सुधामकरन्दका साग्रह पान करने लगे।

देखि राम मुख पंकज मुनिबर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति धन्य जन्म सरभंग॥

मुनिके नेत्रोंके सम्मुख तो वे थे ही—अपने प्रेमसे इन्होंने उन्हें अपने अन्तःकरणमें भी बैठा लिया—

सीता अनुज समेत प्रभु नील जलद तनु स्याम।
मम हियँ बसहु निरंतर सगुनरूप श्रीराम॥

भगवान्को अपने अन्तःकरणमें बैठाकर मुनि योगाग्निसे अपने शरीरको जलानेके लिये तत्पर हो गये। योगाग्निने इनके रोम, केश, चमड़ी, हड्डी, मांस और रक्त—सभीको जलाकर भस्म कर डाला। अपने नश्वर शरीरको नष्टकर वे अग्निके समान तेजोमय शरीरसे उत्पन्न हुए। परम तेजस्वी कुमारके रूपमें वे अग्नियों, महात्मा ऋषियों और देवताओंके भी लोकोंको लाँघकर दिव्य धामको चले गये।
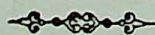
जप तप नियम जोग निज धर्मा। श्रुति संभव नाना सुभ कर्मा॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धर्म कहत श्रुति सज्जन॥
आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥
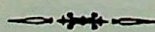
परमभक्त महर्षि अत्रि एवं भक्तिमती सती अनसूयाकी रामभक्ति

प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे ॥

(मानस ३। ४। ११ छं०)

परमतपस्वी महर्षि अत्रि ब्रह्माजीके मानसपुत्र और प्रजापति हैं। दक्षिण दिशामें इनका निवास है। इनकी परम पतिव्रता पत्नी अनसूया स्वायम्भुव मनुकी पुत्री देवहूतिकी बेटी तथा भगवान् कपिलकी भगिनी थीं। महर्षि कर्दम उनके पिता थे। जैसे महर्षि अत्रि राग-द्वेषरहित परम भगवद्भक्त थे, वैसे ही देवी अनसूया असूयारहित भक्तिमती थीं।

ब्रह्माजीने इन्हें सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। सृष्टि करनेके पूर्व इस भगवद्भक्त दम्पतिने तप करनेका निश्चय कर, अत्यन्त कठोर तपस्या की। इनकी तपश्चर्याका लक्ष्य संतानकी प्राप्ति नहीं, निखिल सृष्टिके स्वामी परम प्रभुको अपने सम्मुख देखना था। श्रद्धा एवं विश्वासपूर्वक दीर्घकालीन कठोर तपश्चरणके फल-स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और आशुतोष महेश्वर—तीनों देवताओंने प्रत्यक्ष दर्शन देकर इन्हें कृतार्थ किया। ये उनके चरणकमलोंमें लेट गये और गद्गद कण्ठसे त्रिदेवोंकी स्तुति करने लगे।

'वर माँगो'—महर्षि अत्रि एवं सती अनसूयाकी श्रद्धा-भक्ति एवं दृढ़ प्रीतिसे प्रसन्न होकर त्रिदेवोंने कहा।

'हमारे मनमें लौकिक कामना नहीं है।' भक्त दम्पतिने हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयपूर्वक निवेदन किया, 'किंतु विधाताने सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है। अतएव आप तीनों पुत्ररूपमें मेरे यहाँ पधारें।'

'ऐसा ही होगा।' त्रिदेव अन्तर्धान हो गये और कुछ समय बाद इनके यहाँ श्रीविष्णुके अंशसे 'दत्तात्रेय', ब्रह्माके अंशसे 'चन्द्रमा' और शंकरके अंशसे 'दुर्वासा' का जन्म हुआ।

जिन परम प्रभुकी चरण-रजके स्पर्शसे सम्पूर्ण पाप-ताप नष्ट हो जाते हैं और जीव अक्षय सुख-शान्ति प्राप्त कर लेता है, वे ही महामहिम करुणानिधान भगवान् परम भगवद्भक्त अत्रिके आँगनमें देवी अनसूयाकी गोदमें खेल रहे थे, पल रहे थे। देवी अनसूया सतत बालकोंकी चिन्तामें रहने लगी थीं।

महर्षि अत्रि एवं देवी अनसूयाकी श्रद्धा-भक्ति एवं अपने चरणोंमें दृढ़ प्रीति देखकर भगवान् श्रीराम अपनी धर्मपत्नी सीता एवं भाई लक्ष्मणसहित इनके आश्रममें पधारे थे।

'सीता और लक्ष्मणसहित परम प्रभु मेरे आश्रममें आये हैं।' यह समाचार सुनते ही महर्षि अत्रिकी विचित्र दशा हो गयी। उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। उनका शरीर पुलकित हो गया। वे मुनिजनवन्दित श्रीरामको देखते ही आतुर होकर दौड़ पड़े[1]।—

गत्वा मुनिमुपासीनं भासयन्तं तपोवनम्।
दण्डवत् प्रणिपत्याह रामोऽहमभिवादये॥
पितुराज्ञां पुरस्कृत्य दण्डकाननमागतः।
वनवासमिषेणापि धन्योऽहं दर्शनात्तव॥

(अ० रा० २। ९। ८०-८१)

'वहाँ पहुँचनेपर उन्होंने (श्रीरामने) अपने आश्रममें विराजमान और सम्पूर्ण तपोवनको प्रकाशित करते हुए मुनीश्वरके पास जा, उन्हें दण्डवत् प्रणाम करके कहा—'मैं राम आपका अभिवादन करता हूँ। मैं पिताकी आज्ञासे दण्डकारण्यमें आया हूँ। इस समय वनवासके मिससे आपका दर्शन कर मैं कृतार्थ हो गया।'

श्रीरामको दण्डवत् करते हुए महर्षिने उन्हें तुरंत उठाया और अपने हृदयसे लगा लिया। प्रेमाधिक्यके कारण महर्षिके दोनों नेत्रोंसे अश्रु बह रहे थे। श्रीरामके अलौकिक सौन्दर्यको देखकर उनके नेत्र शीतल हो गये। फिर अत्यन्त आदरपूर्वक वे प्रभुको अपने आश्रममें ले आये—

करत दंडवत मुनि उर लाए। प्रेम बारि द्वौ जन अन्हवाए॥
देखि राम छबि नयन जुड़ाने। सादर निज आश्रम तब आने॥

(मानस ३। ३। ६-७)

इसके अनन्तर महर्षि अत्रिने सीता और लक्ष्मणसहित प्रभु श्रीरामको अत्यन्त पवित्र आसनपर बैठाकर विधिपूर्वक उनकी पूजा की और वन्यफलोंसे उनका आतिथ्य-सत्कार किया। महर्षिकी प्रेममयी भावना एवं सेवासे श्रीराम अत्यन्त संतुष्ट हुए। महर्षि अत्रिने आसनपर बैठे हुए कमलदल-लोचन

---

१ अत्रि के आश्रम जब प्रभु गयऊ। सुनत महामुनि हरषित भयऊ॥
पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥ (मानस ३। ३। ४-५)

नवनीरदवपुको जी भरकर देखा और वे कृतार्थ हो, हाथ जोड़कर प्रभुकी स्तुति करने लगे—

प्रभु आसन आसीन भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिबर परम प्रबीन जोरि पानि अस्तुति करत॥[1]

(मानस ३।३)

परम भाग्यवान् महर्षि अत्रि प्रभुकी सौन्दर्य-सुधाका पान करते हुए उनकी स्तुति कर रहे थे। प्रेमातिरेकसे उनकी विलक्षण दशा हो गयी थी। प्रार्थनाके अन्तमें सिर झुकाकर परमभक्त श्रीअत्रिजीने अपनी तीव्रतम लालसा व्यक्त की—

बिनती करि मुनि नाइ सिरु कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि कबहुँ तजै मति मोरि॥

इसके बाद धर्मज्ञ ऋषिने भगवान् श्रीरामको अपनी धर्मपत्नी अनसूया देवीका परिचय देते हुए कहा—

देवकार्यनिमित्तं च यया संत्वरमाणया।
दशरात्रं कृता रात्रिः सेयं मातेव तेऽनघ॥
तामिमां सर्वभूतानां नमस्कार्यां तपस्विनीम्।
अभिगच्छतु वैदेही वृद्धामक्रोधनां सदा॥

(वा० रा० २।११७।१२-१३)

'निष्पाप श्रीराम! जिन्होंने देवताओंके कार्यके लिये अत्यन्त उतावली होकर दस रातके बराबर एक ही रात बनायी थी, वे ही ये अनसूया देवी तुम्हारे लिये माताकी भाँति पूजनीया हैं। ये सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये वन्दनीया तपस्विनी हैं। क्रोध तो इन्हें कभी छू भी नहीं सका है। विदेहनन्दिनी सीता इन वृद्धा अनसूया देवीके पास जायँ।'

प्रभु श्रीरामका आदेश पाकर श्रीसीतादेवी अत्यन्त तपस्विनी वृद्धा अनसूयाजीके समीप जाकर दण्डकी भाँति उनके चरणोंमें लोट गयीं—

दण्डवत् पतितामग्रे सीतां दृष्ट्वातिहृष्टधीः।
अनसूया समालिंग्य वत्से सीतेति सादरम्॥
दिव्ये ददौ कुण्डले द्वे निर्मिते विश्वकर्मणा।
दुकूले द्वे ददौ तस्यै निर्मले भक्तिसंयुता॥
अङ्गरागं च सीतायै ददौ दिव्यं शुभानना।
न त्यक्ष्यतेऽङ्गरागेण शोभा त्वां कमलानने॥

(अ० रा० २।९।८७—८९)

'अनसूयाजीने अपने सम्मुख सीताजीको दण्डके समान पड़ी देख, अति हर्षित हो, 'बेटी सीता!' कहकर आदरपूर्वक आलिङ्गन किया और भक्तिसहित उन्हें विश्वकर्माके बनाये हुए दो दिव्य कुण्डल और दो स्वच्छ रेशमी साड़ियाँ दीं। सुन्दर मुखवाली अनसूयाजीने उन्हें दिव्य अङ्गराग भी दिया और कहा—'कमलमुखि! इस अङ्गरागके लगानेसे तेरे शरीरकी शोभा कभी कम न होगी।'

इसके अनन्तर अनसूयाजीने सती सीताके मिससे पातिव्रत-धर्मका बड़ा सुन्दर उपदेश दिया। अन्तमें उन्होंने कहा—

सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहिउँ कथा संसार हित॥

(मानस ३।५ (क, ख))

साथ ही अनसूयाजीने सीताजीको आशीष दी—'रघुनाथजी तुम्हारे साथ कुशलपूर्वक घर लौटें।' अनसूयाजीके अत्यन्त स्नेहपूर्ण उपहार, उपदेश एवं आशीषसे श्रीसीताजी बहुत प्रसन्न हुईं। फिर उन्होंने बड़ी ही श्रद्धा और प्रीतिसे लक्ष्मण और सीतासहित श्रीरामजीको भोजन कराया। इसके बाद उन्होंने हाथ जोड़कर श्रीरामजीसे कहा—

राम त्वमेव भुवनानि विधाय तेषां
संरक्षणाय सुरमानुषतिर्यगादीन्।
देहान् बिभर्षि न च देहगुणैर्विलिप्त-
स्त्वत्तो बिभेत्यखिलमोहकरी च माया॥

(अ० रा० २।९।९२)

'राम! इन सम्पूर्ण भुवनोंकी रचना करके आप ही इनकी रक्षाके लिये देवता, मनुष्य और तिर्यगादि योनियोंमें शरीर धारण करते हैं, तथापि देहके गुणोंसे आप लिप्त नहीं होते। सम्पूर्ण संसारको मोहित करनेवाली माया भी आपसे सदा डरती रहती है।'

परम प्रभु श्रीरामने श्रीसीता और लक्ष्मणसहित उस दिन महर्षि अत्रिके ही आश्रममें विश्राम किया और दूसरे दिन स्नानोपरान्त प्रभु श्रीरामने अत्यन्त विनयपूर्वक महर्षि अत्रिसे

१- श्रीरामचरितमानसमें अत्यन्त सुन्दर स्तुति है।

निवेदन किया—

आयसु होइ जाउँ बन आना ॥

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू ॥

(मानस ३ । ५ । ६ । २-३)

जिस परम प्रभुकी कृपा-प्राप्तिके लिये योगीन्द्र-मुनीन्द्र सतत प्रयत्नशील रहते हैं, उन प्रभुको अपने मुखारविन्दसे इस प्रकारकी विनीत वाणीमें आज्ञा माँगते देखकर महर्षिके अङ्ग-प्रत्यङ्ग पुलकित हो गये और उनके नेत्रोंसे आँसू बहने लगे। उनकी वाणी अवरुद्ध-सी हो गयी। साहसपूर्वक उन्होंने कहा—

केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥

(मानस ३ । ६ । ७)

प्रेममूर्ति प्रभुने पुनः विनयपूर्वक महर्षिसे निवेदन किया—'मुने ! हम ऋषि-मुनियोंसे पूरित दण्डकारण्यमें जाना चाहते हैं। आप हमें मार्ग बतानेके लिये कुछ शिष्योंको साथ भेज दीजिये'—**मार्गप्रदर्शनार्थाय शिष्यानाज्ञप्तुमर्हसि।** (अ० रा० ३ । १ । ३)।

श्रुत्वा रामस्य वचनं प्रहस्यात्रिर्महायशाः।
प्राह तत्र रघुश्रेष्ठं राम राम सुराश्रय ॥
सर्वस्य मार्गद्रष्टा त्वं तव को मार्गदर्शकः।
तथापि दर्शयिष्यन्ति तव लोकानुसारिणः ॥

(अ० रा० ३ । १ । ३-४)

'श्रीरामजीका यह कथन सुनकर महायशस्वी अत्रि मुनिने श्रीरघुनाथजीसे हँसकर कहा—'हे राम! हे देवताओंके आश्रयस्वरूप ! सबके मार्गदर्शक तो आप हैं, फिर आपका मार्गदर्शक कौन बनेगा, तथापि इस समय आप लोक-व्यवहारका अनुसरण कर रहे हैं, अतः मेरे शिष्यगण आपको मार्ग दिखाने जायँगे।'

भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभु श्रीरामने महर्षि अत्रिके चरण-कमलोंमें सिर झुकाया और वे दण्डकारण्यके लिये प्रस्थित हुए। महर्षि अत्रि खड़े-खड़े अश्रुपूरित नेत्रोंसे देखते ही रहे। धन्य थे श्रीरामप्रेमी महर्षि अत्रि और धन्य थीं परम वन्दनीया अनसूयाजी।

श्रीभरतजीके सर्वस्व श्रीराम

जयति
भूमिजा-रमण-पदकंज-मकरंद-रस-
रसिक-मधुकर भरत भूरि भागी।
भुवन-भूषण, भानुवंश-भूषण, भूमिपाल-
मणि रामचंद्रानुरागी ॥

(वि० प० ३९ । १)

'बड़े भाग्यवान् श्रीभरतजीकी जय हो, जो कि जानकी-पति श्रीरामजीके चरण-कमलोंके मकरन्दका पान करनेके लिये रसिक भ्रमर हैं। जो संसारके भूषण-स्वरूप, सूर्यवंशके विभूषण और नृपशिरोमणि श्रीरामचन्द्रजीके पूर्ण प्रेमी हैं।'

बिस्व भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ॥

(रा० च० मा० १ । १९७ । ७)

'जो संसारका भरण-पोषण करते हैं, उनका नाम भरत है।' यदि जगत्में भरतका जन्म न होता तो पृथिवीपर सम्पूर्ण धर्मोंकी धुरीको कौन धारण करता ?

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥

(रा० च० मा० २ । २३३ । १)

होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को ॥

(रा० च० मा० २ । २३८ । ८)

यदि इस पृथिवी-तलपर भरतका जन्म (अथवा प्रेम) न होता, तो जड़को चेतन और चेतनको जड़ कौन करता ? भरतजीकी जितनी महिमा गायी जाय, थोड़ी ही है। श्रीराम तो उनके सर्वस्व थे। पिता, माता, भाई, बन्धु, जीवन सब कुछ राम ही थे।

श्रीरामजीका वन जाना सुनकर, भरतजीको पिताका मरना भूल गया और वे इस सारे अनर्थका कारण अपनेको ही जानकर, मौन होकर स्तम्भित रह गये। यथा—

भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौनु।
हेतु अपनपउ जानि जियँ थकित रहे धरि मौनु ॥

(रा० च० मा० २ । १६०)

श्रीरामसे अथाह प्रेमके कारण भरतजीने माता कैकेयीको अपशब्द कहे। उन्होंने कहा—

बर मागत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुहँ परेउ न कीरा ॥

(रा० च० मा० २ । १६२ । २)

उन्होंने कहा कि जगत्‌के जीव-जन्तुओंमें ऐसा कौन है, जिसे श्रीरघुनाथजी प्राणोंसे प्यारे नहीं हैं? वे रामजी भी तुझे अहितकर हो गये? इस प्रकार माताको बुरा-भला कहते हुए बड़े दुखित हो अन्तमें श्रीराम-वनगमनमें उन्होंने अपनेको ही दोषी माना और वे अनेक प्रकारसे पश्चात्ताप करने लगे, किंतु माता कौसल्या भरतके स्वाभाविक सच्चे स्वभावको जानती थीं, वे बोल पड़ीं—'हे तात! तुम तो मन, वचन और शरीरसे सदा ही रामचन्द्रके प्यारे हो।'

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥

(रा० च० मा० २। १६९। १)

'श्रीराम तुम्हारे प्राणोंसे भी बढ़कर प्राण (प्रिय) हैं और तुम भी श्रीरघुनाथको प्राणोंसे भी अधिक प्यारे हो।'

तत्पश्चात् श्रीवामदेव और वसिष्ठजीने धीरज बँधाया। और श्रीवसिष्ठजीने जब शुभ दिन देखकर राज्यसभा आहूत की, उसमें मन्त्रियों, सभासदों, भरत एवं माता कौसल्याको बुलाया गया तथा सभाने एकमतसे भरतजीसे राज्य ग्रहण करनेका आग्रह किया, तब भरतजीने विनयपूर्वक उत्तर दिया—

पितु सुरपुर सिय रामु बन करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित कै आपन बड़ काजु॥

(रा० च० मा० २। १७७)

पिताजी स्वर्गमें हैं, श्रीसीतारामजी वनमें हैं और मुझे आप राज्य करनेको कहते हैं। इसमें आप मेरा कल्याण समझते हैं या अपना कोई बड़ा काम होनेकी आशा रखते हैं। श्रीरामके बिना मेरे हृदयकी बात कौन जान सकता है। उनके मनमें निश्चयपूर्वक यही था कि प्रातःकाल प्रभु रामजीके पास चल दूँगा; क्योंकि ***'हित हमार सियपति सेवकाईं'***— (रा० च० मा० २। १७८। १) मेरा कल्याण तो सीतापति श्रीरामकी चाकरीमें है।

श्रीराम-सीता-लक्ष्मणके पास वनमें जाते समय जब भरतजीकी निषादसे भेंट हुई तो वे निषादसे कहते हैं—मुझ पापोंके समुद्रको धिक्कार है, जिसके कारण ये सब उत्पात हुए हैं। विधाताने मुझे कुलका कलंक बनाकर पैदा किया है। इसपर निषादने श्रीभरतजीको सान्त्वना देते हुए कहा कि 'उस रातको प्रभुजी बार-बार आदरपूर्वक आपकी बड़ी प्रशंसा करते थे। श्रीरामचन्द्रजीको आपके समान अतिशय प्रिय और कोई नहीं है।' यह मैं सौगन्ध खाकर कहता हूँ।

इसी प्रकार मुनिवर भरद्वाजने भी उनसे कहा—

सुनहु भरत रघुबर मन माहीं। पेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाहीं॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती॥

(रा० च० मा० २। २०८। ३-४)

तुम्ह तौ भरत मोर मत एहू। धरें देह जनु राम सनेहू॥

(रा० च० मा० २। २०८। ८)

और यह कहकर कि हे भरत! तुम धन्य हो, तुमने अपने यशसे जगत्‌को जीत लिया है, मुनि प्रेममें मग्न हो गये।

तब भरतजी मुनि-मण्डलीको प्रणाम करके बोले कि मुझे माता कैकेयीके करतबका कुछ भी सोच नहीं है और न मुझे इस बातका दुःख है कि जगत् मुझे नीच समझेगा। न यही डर है कि मेरा परलोक बिगड़ जायगा और न पिताजीके मरनेका ही मुझे शोक है, क्योंकि उनका पुण्य और सुयश जगत्‌में सुशोभित है, उन्होंने राम-लक्ष्मण-जैसे पुत्र पाये। सोच इसी बातका है कि—

राम लखन सिय बिनु पग पनहीं। करि मुनि बेष फिरहिं बन बनहीं॥
अजिन बसन फल असन महि सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम आतप बरषा बात॥
एहि दुख दाहँ दहइ दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती॥

(रा० च० मा० २। २११। ८, दो० २११; २१२। १)

श्रीरामजी, लक्ष्मणजी और सीताजी पैरोंमें बिना जूतीके मुनियोंके वेषमें वन-वनमें फिरते हैं। वे वल्कल वस्त्र पहनते हैं, फलोंका भोजन करते हैं, पृथिवीपर कुश और पत्ते डालकर सोते हैं तथा वृक्षोंके नीचे निवास करके नित्य गर्मी, वर्षा और हवा सहते हैं। इसी दुःखकी जलनसे निरन्तर मेरी छाती जलती रहती है। मुझे न दिनमें भूख लगती है और न रातको नींद आती है।

श्रीरामका नाम 'राम' कहनेसे संसार-सागर सूख जाता है। ***'नामु लेत भवसिंधु सुखाहीं'*** (रा० च० मा० १। २५। ४) परंतु भरतजीका नाम-स्मरण करते ही सब पाप, प्रपञ्च (अज्ञान) और समस्त अमङ्गलोंके समूह मिट जाते हैं तथा इस लोक और परलोकमें सुख प्राप्त होता है। यथा—

मिटिहहिं पाप प्रपंच सब अखिल अमंगल भार।

लोक सुजसु परलोक सुखु सुमिरत नामु तुम्हार॥

(रा० च० मा० २। २६३)

जब भरतजी प्रयागमें पहुँचे तो तीर्थराजसे वर-याचना करते हैं—

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निरबान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

(रा० च० मा० २। २०४)

'मुझे न अर्थकी रुचि है, न धर्मकी और न कामकी; न मैं मोक्ष ही चाहता हूँ। जन्म-जन्ममें (हर घड़ी) मेरा श्रीरामके चरणोंमें प्रेम हो, बस यही वरदान माँगता हूँ दूसरा कुछ नहीं।'

श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका प्रेम ही भरतका साधन है और वही सिद्धि है। भरतजीका बस यही एकमात्र सिद्धान्त है।

श्रीलक्ष्मणजीको भ्रम हुआ कि भरतजी श्रीरामजीके विरोधी हैं, तब श्रीरघुनाथजीने उन्हें विश्वास दिलाया और कहा—'लक्ष्मण! सुनो, भरत-सरीखा उत्तम पुरुष ब्रह्माकी सृष्टिमें न तो कहीं सुना गया है और न देखा ही गया है। इन्हें विधि, हरि तथा हरके पदको भी पाकर राजमद नहीं हो सकता।'

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥
भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरि हर पद पाइ।

(रा० च० मा० २। २३१। ८, २३१)

श्रीराम गुरु वसिष्ठकी सौगन्ध और पिताजीके चरणोंकी दुहाई देकर कहते हैं कि विश्वभरमें भरतके समान भाई कोई हुआ ही नहीं—

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुअन भरत सम भाई॥

(रा० च० मा० २। २५९। ४)

चित्रकूटमें भरतजी अपने स्वामी श्रीरामजीके स्नेहमें विवश हो गये। उनका शरीर पुलकित हो उठा, प्रेमाश्रु-जल नेत्रोंमें भर आया। व्याकुल होकर उन्होंने श्रीरामचन्द्रजीके चरणकमल पकड़ लिये। उस समयको और स्नेहको कहा नहीं जा सकता। इसपर भरतको प्रेमसे अपने पास बैठाकर श्रीरामजीने कहा—

तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना॥
राज काज सब लाज पति धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाउ पालिहि सबहि भल होइहि परिनाम॥
सो तुम्ह करहु करावहु मोहू। तात तरनिकुल पालक होहू॥

(रा० च० मा० २। ३०४। ८; ३०५; ३०६। ३)

'हे तात भरत! तुम धर्मकी धुरीको धारण करनेवाले हो, लोक और वेद दोनोंको जाननेवाले और प्रेममें प्रवीण हो। राज्यका सब कार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, पृथिवी, धन, घर—इन सभीका पालन गुरुजीका प्रभाव करेगा। अतः हे तात! तुम वही करो और मुझसे भी कराओ तथा सूर्यकुलके पालक बनो।' यह सुनकर भरतजीको संतोष हुआ। उन्होंने पुनः प्रेमपूर्वक प्रणाम किया और करकमल जोड़कर कहा—

नाथ भयउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को॥

इस प्रकार भरतजीकी प्रेम-कथा अथाह समुद्र है। भरतजी गुणसम्पन्न और उपमारहित हैं। भरतजीके समान बस भरतजी ही हैं, ऐसा जानना चाहिये। भरतके शील, गुण, नम्रता, बड़प्पन, भाईपन, भक्ति, भरोसे और अच्छेपनका वर्णन करनेमें सरस्वतीजीकी बुद्धि भी हिचकती है। सीपसे कहीं समुद्र उलीचे जा सकते हैं। यथा—

भरत सील गुन बिनय बड़ाई। भायप भगति भरोस भलाई॥
कहत सारदहु कर मति हीचे। सागर सीप कि जाहिं उलीचे॥

महाराज जनक कहते हैं—भरतकी महिमा अपार है, जिसे श्रीरामजी जानते हैं, परंतु वह भी उसका वर्णन नहीं कर सकते—

भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहिं रामु न सकहिं बखानी॥

भरतजी और श्रीरघुनाथजीका प्रेम अगम्य है, जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शिवजीका भी मन नहीं जा सकता।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु बिधि हरि हर को॥

(रा० च० मा० २। २४१। ५)

भरत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही॥

(रा० च० मा० २। २१८। ७)

वास्तवमें भरतकी कथा भव-बन्धनसे छुड़ानेवाली है—

भरत कथा भव बंध बिमोचनि॥

(रा० च० मा० २। २८८। ३)

कहत सुनत सति भाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को॥

'भरतके सद्भावको कहते-सुनते कौन मनुष्य श्रीसीता-रामजीके चरणोंमें अनुरक्त न होगा।'

(श्रीमुकुटसिंहजी भदौरिया)

महर्षि जनककी निगूढ़ रामभक्ति

प्रनवउँ परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ़ सनेहू॥
जोग भोग महँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥

(रा० च० मा० १। १६। १-२)

'अनेक ऋषियोंके साथ महर्षि विश्वामित्र हमारे नगरके आम्र-काननमें पधारे हैं'—यह संवाद पाते ही महाराज जनक[1] अपने मन्त्रियों एवं ब्राह्मणोंके साथ विश्वामित्रजीसे मिलने चले।

महाराज जनकने श्रीविश्वामित्रजीके चरणोंमें सादर प्रणाम किया। विश्वामित्रजीने इन्हें बड़े ही प्यारसे अपने समीप बैठाकर कुशल-प्रश्न पूछा। इसी बीच नवजलधरवपु श्रीरामके साथ श्रीलक्ष्मण वाटिका-अवलोकन कर लौटे।

स्याम गौर मृदु बयस किसोरा। लोचन सुखद बिस्व चित चोरा॥

(रा० च० मा० १। २१५। ५)

तेज-पुञ्ज दोनों अलौकिक बालकोंको देखकर वहाँ उपस्थित सभी लोग उठकर खड़े हो गये। महर्षि विश्वामित्रने उनको निकट बैठा लिया। उनके अद्भुत रूप-लावण्यको देखकर सब-के-सब आनन्दित हो गये। उनके शरीर पुलकित हो गये तथा नेत्रोंसे आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। उनके दर्शन कर महाराज विदेहकी अत्यन्त विचित्र दशा हो गयी—

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

(रा० च० मा० १। २१५। ८)

प्रेम-मग्न महाराज जनकने विवेकपूर्वक धैर्य धारण किया और महर्षिके चरणोंमें मस्तक झुकाकर गद्गद-कण्ठसे यह पूछा—

कहहु नाथ सुंदर दोउ बालक। मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि की सोइ आवा॥
सहज बिरागरूप मनु मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥

(रा० च०मा० १। २१६। १—३)

इतना ही नहीं, उन्होंने श्रीविश्वामित्रजीके सम्मुख अपनी मानसिक स्थिति निस्संकोच प्रकट कर दी—

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

(रा० च० मा० १। २१६। ५)

सच तो यह है कि महाराज जनकका भगवान् श्रीरामके प्रति जो अत्यन्त गूढ़ स्नेह था, वे उसे किसीपर किसी प्रकार भी व्यक्त नहीं होने देना चाहते थे। उनके अकथनीय प्रेम-सम्बन्धको वे और श्रीराम ही जानते थे। उस अद्भुत प्रीतिको महाराज जनकने ऐश्वर्यमय नीतिकुशल जीवनमें छिपा रखा था, पर सीता-स्वयंवरके लिये धनुष-यज्ञका आयोजन करनेपर जब उनके आमन्त्रणपर महर्षि विश्वामित्रके साथ उनके प्राणधन राम-लक्ष्मण पधारे, तब उनका वह गूढ़ भाव, वह अपार प्रेम गुप्त नहीं रह सका, प्रकट हो गया और उनके मुँहसे उपर्युक्त वाणी निकल गयी। वे श्रीराम और लक्ष्मणको देखते ही रह गये। मन-वाणीसे अगोचर ब्रह्म आज प्रत्यक्ष-नयनगोचर हो गया। फिर उनके आनन्दका क्या कहना? वे प्रेममें इतने विभोर हो गये थे कि उन्हें तन-मनकी सुधि भी भूली जा रही थी।

आज उन्हें वर्षों पूर्व नारदजीकी कही हुई वाणी सत्य सिद्ध होती दीख रही थी। श्रीनारदजीने उनसे कहा था—

शृणुष्व वचनं गुह्यं तवाभ्युदयकारणम्॥
परमात्मा हृषीकेशो भक्तानुग्रहकाम्यया।
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं रावणस्य वधाय च॥
जातो राम इति ख्यातो मायामानुषवेषधृक्।
आस्ते दाशरथिर्भूत्वा चतुर्धा परमेश्वरः॥
योगमायापि सीतेति जाता वै तव वेश्मनि।
अतस्त्वं राघवायैव देहि सीतां प्रयत्नतः॥
नान्येभ्यः पूर्वभार्यैषा रामस्य परमात्मनः।

(अ० रा० १। ६। ६२—६६)

'राजन्! अपने कल्याणका कारणरूप यह परम गुह्य वचन सुनो—परमात्मा हृषीकेश भक्तोंपर कृपा, देवताओंकी

१- महाराज निमिके शरीरका मन्थन कर ऋषियोंने एक कुमार उत्पन्न किया था, उसका नाम 'जनक' पड़ा। वह माताके शरीरसे उत्पन्न नहीं हुआ, इस कारण 'विदेह' कहा गया और मन्थनसे उत्पन्न हुआ, इस कारण उसकी संज्ञा 'मिथिल' हुई। इस कुलमें आगे उत्पन्न होनेवाले सभी राजाओंको 'विदेह' और 'जनक' कहा गया। महर्षि याज्ञवल्क्यके अनुग्रहसे वे सभी 'आत्मज्ञानी' और 'योगी' हुए। इसी कुलमें ये सीताजीके पिता महाराज 'सीरध्वज' जनक भी उत्पन्न हुए थे। ये अत्यन्त ज्ञानी, विद्वान्, सर्वसद्गुणसम्पन्न, कर्मठ, धर्मात्मा एवं श्रीभगवान्के परम भक्त थे। श्रीरामके गूढ़ प्रेमको ये किसीपर प्रकट नहीं होने देते थे, सदा गुप्त रखते थे।

कार्य-सिद्धि और रावणका वध करनेके लिये माया-मानव-रूपसे अवतीर्ण होकर 'राम'-नामसे विख्यात हुए हैं। वे परमेश्वर अपने चार अंशोंसे दशरथके पुत्र होकर अयोध्यामें रहते हैं और इधर योगमायाने तुम्हारे यहाँ सीताके रूपमें जन्म लिया है। अतः तुम प्रयत्नपूर्वक इस सीताका पाणिग्रहण रघुनाथजीके साथ ही करना और किसीसे नहीं—क्योंकि वह पहलेसे ही परमात्मा रामकी ही भार्या हैं।'

सीताजीका विवाह हो जानेपर श्रीजनकजीने निश्चित-रूपसे अपना जीवन सफल समझ लिया और उन्होंने सदा-सर्वदाके लिये प्रभु-पद-पद्मोंकी शरण ग्रहण की।

अद्य मे सफलं जन्म राम त्वां सह सीतया ॥
एकासनस्थं पश्यामि भ्राजमानं रविं यथा।
यत्पादपङ्कजपरागसुरागयोगि-
वृन्दैर्जितं भवभयं जितकालचक्रैः।
यन्नामकीर्तनपरा जितदुःखशोका
देवास्तमेव शरणं सततं प्रपद्ये ॥

(अ० रा० १। ६। ७१-७२, ७५)

श्रीजनकजीने कहा—'हे राम! आज मेरा जन्म सफल हो गया, जो मैं सूर्यके समान देदीप्यमान और सीताके साथ एक आसनपर विराजमान आपको देख रहा हूँ।⋯ जिनके चरण-कमल-परागके रसिक, काल-चक्रको जीतनेवाले योगिजनोंने संसार-भयको जीत लिया है तथा जिनके नाम-कीर्तनमें लगे रहकर देवगण दुःख और शोकको जीत लेते हैं, उन आपकी मैं निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ।'

इसी प्रकार विवाहोपरान्त जब पुत्र-पुत्रबधुओंसहित महाराज दशरथ अयोध्याके लिये प्रस्थान करते हैं, तब श्रीजनकजी अधीर हो जाते हैं। उनका प्रेम छिप नहीं पाता। उनके नेत्र अश्रुपूरित हैं। वे एकटक कभी दशरथकी ओर, कभी श्रीरामकी ओर और कभी सीताकी ओर देखते हैं। श्रीराम क्या जा रहे हैं, उनका प्राण चला जा रहा है। दशरथजी बार-बार प्रेमपूर्वक उन्हें लौट जानेके लिये कहते हैं, किंतु इनका मन नहीं मानता, हृदय छटपटा उठता है। श्रीदशरथजी-के बार-बार आग्रह करनेपर वे रथसे उतरकर साश्रुनयन, हाथ जोड़े उनसे प्रार्थना करने लगे। मुनियोंकी स्तुति कर उनके चरणोंमें प्रणाम किया और अन्तमें अपने जामाता—निखिल-ब्रह्माण्डनायक नवनीरदघन श्रीरामके समीप जाते हैं, तब उनके नेत्र बरबस झरने लगते हैं। हाथ स्वतः जुड़ जाते हैं। वे बोलना चाहते हैं, पर प्रीतिवश बोला नहीं जाता। वाणी अवरुद्ध हो जाती है। बड़े साहससे धीरे-धीरे विनम्र वाणीमें उन्होंने कहा—

राम करौं केहि भाँति प्रसंसा। मुनि महेस मन मानस हंसा ॥
करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोहु मोहु ममता मदु त्यागी ॥
ब्यापकु ब्रह्मु अलखु अबिनासी। चिदानंदु निरगुन गुनरासी ॥
मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहिं सकल अनुमानी ॥
महिमा निगमु नेति कहि कहई। जो तिहुँ काल एकरस रहई ॥
नयन बिषय मो कहुँ भयउ सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ भएँ ईसु अनुकूल ॥
सबहि भाँति मोहि दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई ॥
मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा ॥

(रा० च० मा० १। ३४१। ४—८; ३४१; ३४२।१, ३)

इस प्रकार स्तुति करते-करते विदेहराजने अन्तमें श्रीरामसे याचना की, वरदान माँगा—

बार बार मागउँ कर जोरें। मनु परिहरै चरन जनि भोरें ॥

(रा० च० मा० १। ३४२। ५)

यहाँ भी जनकजीकी गूढ़ प्रीति प्रकट हो गयी। उनकी प्रेमाभक्तिकी प्रशंसा किन शब्दोंमें की जाय? पराम्बा जगज्जननी सीता पुत्रीके रूपमें जिनकी गोदमें क्रीड़ा कर चुकी हों एवं सच्चिदानन्दघन प्रभुने जिनके यहाँ दूल्हा बनकर विवाह किया हो, प्रभुके विवाहका उत्सव हुआ हो, मङ्गल-वाद्य बजे हों, उनके सौभाग्य, उनके प्रेम और उनकी भक्तिका गुणगान कोई किस प्रकार करे?

भगवान् श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण एवं धर्मपत्नी सीताके साथ अयोध्याको त्यागकर वन-गमन करते हैं और भरतजी विकल-विह्वल होकर श्रीरामको लौटानेके लिये चित्रकूट जाते हैं। यह संवाद पाकर श्रीजनकजी भी चित्रकूट पहुँचते हैं। वे श्रीरामके दर्शन एवं भरतकी भक्ति देखकर निहाल हो जाते हैं, उनसे कुछ कहते नहीं बनता। महारानी कौसल्याके इच्छानुसार सुनयनाजी जब जनकजीसे उनका संदेश कहती हैं, तब श्रीजनकजी उनसे स्पष्ट कह देते हैं कि भरत और श्रीरामके पारस्परिक प्रेमको समझना सम्भव नहीं, वह अतर्क्य है—

देबि परंतु भरत रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी॥

(रा० च० मा० २। २८९। ५)

पर श्रीजनकजीकी गूढ़ प्रीति एवं दृढ़ विश्वासको भी समझना सरल नहीं। जनकजी कर्मयोगके श्रेष्ठ आदर्श, ज्ञानियोंमें अग्रगण्य एवं बारह प्रधान भागवताचार्योंमें माने जाते हैं। वे परम ज्ञानी होकर भी श्रीभगवान्‌के प्रति विलक्षण प्रेमके अनुपम आदर्श बन गये। धन्य थे जनकजी और धन्य था उनका गूढ़ प्रभु-प्रेम।
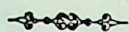
भक्तराज श्रीकाकभुशुण्डिजीकी रामभक्ति

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥

(रा० च० मा० ७। ११९ (ख))

बात है तबकी, जब लंकामें युद्ध हो रहा था। लीलाधारी भगवान् श्रीराम मेघनादके नागपाशमें बँध गये। प्रभुको बन्धन-मुक्त करनेके लिये देवर्षि नारदने गरुडको भेजा। गरुडने नागपाश तो काट दिया, किंतु गरुडके मनमें संदेह हो गया—यदि ये सर्वसमर्थ भगवान् हैं तो तुच्छ मेघनादके बन्धनमें कैसे बँध गये—

भव बंधन ते छूटहिं नर जपि जा कर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम॥
नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ग्यान हृदयँ भ्रम छावा॥

(रा० च० मा० ७। ५८,५९। १)

इस प्रकार व्याकुल होकर गरुडजी नारदजीके पास पहुँचे और उन्होंने अपने मनका संदेह मुनिके सम्मुख प्रकट किया। नारदजीने भगवान् रामकी प्रबल मायाकी महिमा बताते हुए कहा—'गरुड! तुम्हारे हृदयमें भी महामोह उत्पन्न हो गया है। तुम ब्रह्माके पास जाओ और वे जो आज्ञा दें, वही करो।'

गरुडजी ब्रह्माके पास पहुँचे। उन्होंने उन्हें पार्वतीवल्लभ शंकरजीके पास भेज दिया। गरुड श्रीशंकरजीके पास चले। उस समय श्रीशंकरजी कुबेर-गृह जा रहे थे। गरुडजीने भगवान् शंकरके चरणोंमें श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर अपना संदेह प्रकट किया। भगवान् शंकर बोले—'तुम्हारा संदेह तभी निवारण हो सकता है, जब तुम कुछ समयतक सत्संग करो। मेरे पास तो समय नहीं है, तुम महात्मा काकभुशुण्डिके पास जाओ। वे परम प्रवीण श्रीराम-भक्त हैं। वे सदा ही श्रीभगवान्‌की लीला-कथा कहते हैं और उनके पास वयोवृद्ध राजहंस तथा श्रेष्ठ पक्षी कथा सुनते हैं। तुम वहाँ जाकर प्रभुचरित्र सुनो। वहीं तुम्हारा भ्रम दूर हो सकेगा।'

भगवान् शंकरके आज्ञानुसार गरुडजी नीलाचलपर काकभुशुण्डिजीके परम पावन आश्रममें पहुँचे। काकभुशुण्डिजीके आश्रमका ही ऐसा प्रभाव था कि वहाँ पहुँचते ही विष्णुवाहन गरुडजीका सारा संशय छिन्न हो गया।

स्नानादिसे निवृत्त होकर गरुडजी काकभुशुण्डिजीके समीप उस समय पहुँचे, जब वे हरि-कथा प्रारम्भ करना ही चाहते थे। उन्होंने गरुडजीका सम्मानपूर्वक स्वागत किया और उनके इच्छानुसार धीरे-धीरे विस्तारपूर्वक परमपावन सम्पूर्ण रामचरित सुनाया।

गरुडजीकी इच्छासे काकभुशुण्डिजीने उन्हें बताया—पूर्वके किसी कल्पमें कलियुगमें मेरा जन्म अयोध्यामें शूद्र-कुलमें हुआ था। एक बार अकाल पड़ा। इस कारण मैं अयोध्या छोड़कर उज्जयिनी चला गया। मैं अत्यन्त दरिद्र था, किंतु कुछ समय बाद मेरे पास कुछ सम्पत्ति भी हो गयी। वहाँ भगवान् शंकरके उपासक परम साधु एक सरल ब्राह्मण रहते थे। उन्होंने कृपापूर्वक मुझे शिव-मन्त्रकी दीक्षा दे दी। मैं भगवान् शंकरका भक्त था, किंतु राम-कृष्णके प्रति मेरे मनमें बड़ी ईर्ष्या थी। मैं उनकी निन्दा किया करता था। मेरे गुरुदेव यह जानकर बड़े दुखी थे। वे मुझे बार-बार शिव-रामका अभेद-तत्त्व समझाते, वे कहते—'भगवान् शंकर सदा ही अत्यन्त श्रद्धापूर्वक राम-नामका जप करते हैं। तुम्हें श्रीरामके प्रति द्वेष नहीं करना चाहिये।' इस प्रकार गुरुके बार-बार समझानेपर भी मेरे मनपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। मैं अहंकारमें चूर था और परम पूज्य गुरुकी भी उपेक्षा कर दिया करता था।

एक बारकी बात है। मैं अपने आराध्य भगवान् शंकरके मन्दिरमें उनका नाम जप रहा था। उसी समय वहाँ मेरे गुरुदेव पधारे, किंतु मैंने अहंकारके कारण उठकर उन्हें प्रणाम नहीं किया। मेरे गुरुके मनमें तो कोई विचार नहीं हुआ, पर मेरी

यह उद्दण्डता भगवान् शंकर नहीं सह सके। उन्होंने तुरंत शाप दिया। आकाशवाणी हुई—'यह एक सहस्र जन्म ग्रहण करेगा।' इस आकाशवाणीसे मेरे दयालु गुरुदेव 'हाय! हाय!!' कर उठे। उन्होंने प्रभुसे अत्यन्त करुण स्वरमें प्रार्थना की। गुरुदेवकी प्रार्थनासे संतुष्ट होकर भगवान् उमानाथने कहा—'मेरा शाप व्यर्थ नहीं जायगा। इसे अधम योनियोंमें एक हजार बार अवश्य जन्म लेना पड़ेगा, किंतु इसे जन्म और मृत्युका कष्ट नहीं होगा। जो भी शरीर इसे प्राप्त होगा, यह अनायास ही बिना कष्टके उसे त्याग देगा। मेरी कृपासे इसे ये सारी बातें याद रहेंगी। अन्तिम जन्ममें यह ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न होगा। उस समय इसे भगवान् श्रीरामके चरणोंमें प्रीति प्राप्त हो जायगी और इसकी अव्याहत गति होगी।'

भगवान् शंकरके शापके अनुसार अनेक योनियोंमें भटकनेके बाद अन्तमें मैंने देव-दुर्लभ ब्राह्मण-कुलमें जन्म लिया। दयामय आशुतोषकी दयासे मुझे पूर्वजन्मकी स्मृति थी, इस कारण मेरा मन भगवान् श्रीरामके चरणोंका चिन्तन कर रहा था। कुछ ही समय बाद मेरे माता-पिता परलोकवासी हुए और मैं प्रभु-भजनके लिये घर त्यागकर वनमें चला गया। वहाँ जहाँ-कहीं ऋषि-मुनि मिलते, मैं उनसे श्रीराघवेन्द्रका गुणगान सुनता। इस प्रकार धीरे-धीरे मेरे मनमें श्रीरामके चरण-दर्शनकी लालसा तीव्र हो गयी। मैं जिस ऋषिसे पूछता, वे ही निर्गुण-निराकार एवं सर्वव्यापक प्रभुका उपदेश देते, पर मुझे संतोष नहीं होता था। मेरा हृदय तो त्रैलोक्यमोहन भक्तभयहारी श्रीराघवेन्द्रके दर्शनार्थ व्याकुल हो रहा था। इसी प्रकार मैं महर्षि लोमशके आश्रममें पहुँच गया और उनके चरणोंमें प्रणाम कर मैंने उनसे सगुण-साकार प्रभुके दर्शनका उपाय पूछा। महर्षि लोमशने मुझे अधिकारी ब्राह्मणबालक समझकर उपदेश देना प्रारम्भ किया। वे निर्गुण-निराकार ब्रह्मका प्रतिपादन करते, किंतु मैं उनका खण्डन कर सगुण-साकारका समर्थन करने लगा। महर्षि बार-बार मुझे निर्गुण ब्रह्मको समझानेका प्रयत्न करते और मैं प्रत्येक बार उनका खण्डन कर सगुण-साकारकी प्राप्तिका मार्ग पूछता।

'मूर्ख कहींका!' ऋषि क्रुद्ध हो गये। उन्होंने मुझे शाप दे दिया—'तू मेरे सत्य वचनपर विश्वास न कर तर्क करता जा रहा है। तुझे अपने पक्षका अत्यन्त दुराग्रह है। जा, तुरंत अधम काग हो जा।'

तत्काल मेरा शरीर कौएका हो गया, किंतु इसका मुझे तनिक भी क्लेश नहीं हुआ। मैंने अत्यन्त आदरपूर्वक मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और उड़कर जाना ही चाहता था कि दयालु लोमशजीके हृदयमें मुझ-जैसे क्षमाशील ब्राह्मण-बालकको शाप देनेपर पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने अत्यन्त स्नेहसे मुझे बुलाया और अनेक प्रकारसे मुझे प्रसन्न करते हुए उन्होंने मुझे भगवान् श्रीरामके बालरूपका ध्यान तथा श्रीराम-मन्त्र प्रदान किया। इतना ही नहीं, मेरे मस्तकपर अपना स्नेहमय कर-कमल फेरते हुए उन्होंने मुझे आशीष प्रदान की—'तुम्हारे हृदयमें श्रीराम-भक्ति सदा बनी रहे और श्रीराम तुम्हें सदा प्यार करें। ज्ञान-वैराग्य एवं सम्पूर्ण शुभ गुण तुममें सदा निवास करेंगे। तुम इच्छानुसार रूप धारण कर सकोगे और तुम्हारी मृत्यु भी इच्छानुसार ही होगी। तुम मनमें जो इच्छा करोगे, भगवत्कृपासे वह सब पूरी हो जायगी। इतना ही नहीं, तुम जिस आश्रममें रहोगे, वहाँ एक योजनतक अविद्या प्रविष्ट नहीं हो सकेगी।'

मैं कृतार्थ हो गया और गुरुकी आज्ञा प्राप्तकर मैंने उनके चरणोंकी वन्दना की और फिर यहाँ आ गया। यहाँ रहते मुझे सत्ताईस कल्प व्यतीत हो गये। श्रीभगवान् जब-जब अवतार ग्रहण करते हैं, तब-तब मैं श्रीरामकी पाँच वर्षकी आयुतक उनके भुवनमोहन रूप एवं अत्यन्त दुर्लभ बाल-लीलाको देखकर कृतार्थ होता हूँ और फिर हृदयमें उनके उस शिशुरूपको धारणकर यहाँ इस आश्रममें लौट आता हूँ। यहाँ मैं सदा भगवान् श्रीरामका ध्यान, जप एवं मानसिक पूजाके साथ नियमितरूपसे प्रभुकी लीला-कथा कहता हूँ, जिसे श्रेष्ठ राजहंस आदरपूर्वक सुनते हैं।

परमभक्त काकभुशुण्डिजीकी महिमाका बखान किस प्रकार किया जाय, जहाँ जानेपर भगवान् शंकरको विशेष आनन्द प्राप्त हुआ था। भगवान् शंकरने स्वयं अपने मुखारविन्दसे माता पार्वतीसे काकभुशुण्डिजीके आश्रमका वर्णन करते हुए कहा था—

जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेषा॥

तब कछु काल मराल तनु धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन पुनि आयउँ कैलास॥

भगवत्पाद आद्यशंकराचार्यकी अनन्य राम-भक्ति

आदिशंकराचार्य भगवान् शंकर साक्षात् शिवके ही अवतार या विग्रह थे। वे एक साथ ही योग, ज्ञान, वैराग्य और भक्तिके भी मूर्तिमान् स्वरूप थे। उनकी कर्मठता भी इतनी प्रचण्ड थी कि उन्होंने थोड़े ही समयमें बौद्धों, जैनियों आदिको परास्त कर भारतके चारों सीमाओंपर चार मठों, उपमठों आदिका निर्माण करते हुए समस्त देशमें सत्यसनातन धर्मकी स्थापना कर दी। साथ ही उपनिषदों, गीता, वेदान्तदर्शन आदिपर अद्भुत भाष्योंकी रचनाकर अपनी तीव्र प्रतिभा और दिव्य विज्ञानसे समस्त संसारको चकित कर दिया। उनके भाष्योंकी उत्कृष्टता दिखानेके लिये परवर्ती विद्वानोंने अनेक भाष्योत्कर्षदीपिका नामक व्याख्याएँ, उपव्याख्याएँ लिखीं । शक्तिकी उपासनापर 'सौन्दर्यलहरी', नृसिंह-उपासनापर 'लक्ष्मी-नृसिंह-स्तोत्र' तथा इसी प्रकार शिव, विष्णु, कृष्ण, गणपति और हनुमान् आदि देवताओंकी उपासनापर भी उनके स्तोत्र अत्यन्त दिव्य एवं उत्कृष्ट हैं।

यद्यपि महर्षि वाल्मीकिने आदिकाव्य श्रीमद्रामायणकी रचनाकर अनुपम कार्य किया, जिसकी कोई तुलना सम्भव नहीं है, पर आचार्यके 'श्रीरामभुजंगप्रयातस्तोत्र'को देखकर भी यही प्रतीत होता है कि केवल २९ श्लोकोंमें ही इन्होंने भगवान् श्रीरामके प्रति जो अनन्य निष्ठा, विशुद्ध भक्ति और आत्मपरायणता दिखलायी है, उससे ऐसा लगता है कि उन्होंने वाल्मीकिरामायणसहित तत्कालीन प्राप्त अनेक रामचरितोंका अनेक बार बड़ी श्रद्धा-भक्तिसे स्वाध्याय किया और श्रीराम-भक्तिमें वे सबसे आगे बढ़ गये। उनके श्रीरामभुजङ्गप्रयात-स्तोत्रके प्रत्येक पदसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे अहर्निश राम-नामका जप करते, श्रीरामके स्वरूपका ध्यान करते, अत्यन्त नम्रतापूर्वक भगवान् रामकी स्तुति करते और सदा ही अपने आराध्यदेव श्रीरामकी नवधा भक्तिमें लवलीन रहते थे। इस स्तुतिमें उनके २९ पद हैं, पर यह पता नहीं चलता कि इनमें कौन-सा पद सर्वोत्तम है, अर्थात् प्रत्येक पद ही सर्वोत्कृष्ट-सा प्रतीत होता है और उनकी लोकोत्तर राम-भक्तिका परिचायक है। इस स्तोत्रमें आचार्यने अपनी रामनिष्ठा, राम-प्रेमको इतने मार्मिक ढंगसे वर्णित किया है कि इसे बार-बार पढ़नेसे मन नहीं हटता। साथ ही पाठककी भी श्रीरामके प्रति भक्ति बढ़ने लगती है। इसी दृष्टिसे यहाँ उनके कुछ पदोंका भावानुवाद दिया जा रहा है। आशा है, पाठकोंको इससे अपार लाभ होगा। स्तुतिका प्रारम्भ करते हुए आचार्य शंकर भगवत्पाद कहते हैं—

विशुद्धं परं सच्चिदानन्दरूपं
गुणाधारमाधारहीनं वरेण्यम्।
महान्तं विभान्तं गुहान्तं गुणान्तं
सुखान्तं स्वयंधाम रामं प्रपद्ये॥

'जो शुद्ध सच्चिदानन्द परमात्मस्वरूप हैं, जो स्वयं तो सर्वथा निराधार हैं, पर सभी गुणोंके आधार हैं। संसारमें सबसे श्रेष्ठ हैं, सदा स्वयं प्रकाश-स्वरूप हैं और सबसे महान् हैं तथा प्रत्येक प्राणीके हृदय-गुहामें विराजमान रहते हैं, अनन्त गुणोंकी सीमा हैं और सर्वोपरि सुखस्वरूप हैं, उन स्वप्रकाश-स्वरूप भगवान् श्रीरामकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।'

शिवं नित्यमेकं विभुं तारकाख्यं
सुखाकारमाकारशून्यं सुमान्यम्।
महेशं कलेशं सुरेशं परेशं
नरेशं निरीशं महीशं प्रपद्ये॥

'जो परम कल्याण-स्वरूप हैं और त्रिकालमें नित्य एक ही रूपमें स्थित हैं, जो सर्वसमर्थ, सबको मुक्ति देनेवाले अथवा तारनेवाले तारक रामके नामसे प्रसिद्ध हैं, सुखके स्वरूप हैं और निराकार भी हैं तथा सबके द्वारा सभी प्रकार मान्य हैं, जो ईश्वरके भी ईश्वर हैं, सम्पूर्ण कलाओंके स्वामी हैं, सभी देवताओंके स्वामी हैं और सबके स्वामी हैं, पर उनका कोई भी स्वामी नहीं है। जो सम्पूर्ण मनुष्योंके स्वामी हैं, जो पृथ्वीके भी स्वामी हैं, पर उनका कोई शासक नहीं है, मैं उन भगवान् श्रीरामकी शरण लेता हूँ।'

यदावर्णयत् कर्णमूलेऽन्तकाले
शिवो राम रामेति रामेति काश्याम्।
तदेकं परं तारकब्रह्मरूपं
भजेऽहं भजेऽहं भजेऽहं भजेऽहम्॥

'काशीमें भगवान् शंकर प्राणियोंके अन्तकालमें उनके कानोंके पास सटकर 'राम-राम' कहकर जिस राम-नामका उपदेश देते हैं, उन एक तारकब्रह्मस्वरूप भगवान् रामका मैं

बार-बार निरन्तर भजन करता हूँ।'

महारत्नपीठे शुभे कल्पमूले
सुखासीनमादित्यकोटिप्रकाशम् ।
सदा जानकीलक्ष्मणोपेतमेकं
सदा रामचन्द्रं भजेऽहं भजेऽहम् ॥
क्वणद्रत्नमञ्जीरपादारविन्दं
लसन्मेखलाचारुपीताम्बराढ्यम् ।
महारत्नहारोल्लसत्कौस्तुभाङ्गं
नदच्चञ्चरीमञ्जरीलोलमालम् ॥
लसच्चन्द्रिकास्मेरशोणाधराभं
समुद्यत्पतङ्गेन्दुकोटिप्रकाशम् ।
नमद्ब्रह्मरुद्रादिकोटीररत्न-
स्फुरत्कान्तिनीराजनाराधिताङ्घ्रिम् ॥

'कल्पवृक्षके नीचे महारत्नमय मङ्गलमय सिंहासनपर करोड़ों सूर्यके समान प्रकाशवाले, सुखपूर्वक विराजमान रहनेवाले सीता और लक्ष्मणसहित अनुपम भगवान् श्रीरामचन्द्रकी मैं बार-बार निरन्तर शरण ग्रहण करता हूँ। भगवान् रामके चरण-कमलोंमें रत्नोंसे जटित मञ्जीरोंसे खनखनकी ध्वनि उत्पन्न हो रही है; शरीरपर रम्य पीताम्बर फहरा रहा है और कटिप्रदेशमें स्वर्णमयी मेखला सुशोभित हो रही है। वक्षः-स्थलपर महारत्नमय हार एवं दिव्य कौस्तुभमणि उद्भासित हो रही है और गलेमें प्रलुब्ध भौंरोंके निनादसे आवृत दिव्य वनमाला सुशोभित हो रही है। भगवान्के लाल ओठोंपर मन्द मुसकानकी दिव्य चन्द्रिका छिटक रही है, वह करोड़ों सूर्योंकि उदयकालीन शोभाको तिरस्कृत कर रही है, ब्रह्मा, शिव आदि देवतागण नीराजनसे चमत्कृत उनके चरणपीठके रत्नोंकी और चरणोंकी आराधना करते हुए वन्दना करते हैं।'

पुरः प्राञ्जलीनाञ्जनेयादिभक्तान्
स्वचिन्मुद्रया भद्रया बोधयन्तम्।
भजेऽहं भजेऽहं सदा रामचन्द्रं
त्वदन्यं न मन्ये न मन्ये न मन्ये ॥

'भगवान् श्रीरामके सामने अञ्जनीनन्दन हनुमान् आदि भक्त अञ्जलि बाँधे खड़े हैं और भगवान् उन्हें कल्याणमयी ज्ञानमुद्राद्वारा दिव्य विज्ञानका उपदेश दे रहे हैं। मैं ऐसे उन रामचन्द्रजीका सदा बार-बार भजन करता हूँ और हे प्रभो! आपको छोड़कर सच कहता हूँ, मैं किसी अन्य देवताको स्वप्न, जाग्रत् एवं सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओंमें भी नहीं मानता, नहीं मानता, नहीं मानता।'

असीतासमेतैरकोदण्डभूषै-
रसौमित्रिवन्द्यैरचण्डप्रतापैः ।
अलङ्केशकालैरसुग्रीवमित्रै-
ररामाभिधेयैरलं दैवतैर्नः ॥

'सीतासे समन्वित, कोदण्ड-धनुषसे विभूषित, लक्ष्मण-जीके द्वारा अभिवन्दित, प्रचण्ड प्रतापसे समन्वित, लङ्केश रावणके लिये कालस्वरूप, सुग्रीवके परम मित्र और श्रीराम-नामसे सुशोभित परदैवत भगवान् श्रीरामको छोड़कर मेरा किसी अन्य दूसरे देवतासे कोई प्रयोजन नहीं है।'

अवीरासनस्थैरचिन्मुद्रिकाढ्यै-
रभक्ताञ्जनेयादितत्त्वप्रकाशैः ।
अमन्दारमूलैरमन्दारमालै-
ररामाभिधेयैरलं दैवतैर्नः ॥

'वीरासनसे स्थित, ज्ञानमुद्रासे संयुत और अपने भक्त अञ्जनीनन्दन हनुमान्जीको ज्ञान-तत्त्वका प्रकाश करते हुए मन्दारनामक देववृक्षके नीचे विराजित, मन्दार-पुष्पकी माला धारण किये हुए श्रीराम-नामधारी अपने इष्टदेवताको छोड़कर किसी भी अन्य देवतासे मेरा कोई भी प्रयोजन नहीं है।'

असिन्धुप्रकोपैरवन्द्यप्रतापै-
रबन्धुप्रयाणैरमन्दस्मिताढ्यैः ।
अदण्डप्रवासैरखण्डप्रबोधै-
ररामाभिधेयैरलं दैवतैर्नः ॥

'समुद्रपर प्रकोप करनेवाले, जिनका प्रताप (प्रसन्नता या प्रकोप) कभी व्यर्थ नहीं होता, लक्ष्मणके साथ वन आदिकी यात्रा करनेवाले, सदा मन्द मुसकानसे सुशोभित रहनेवाले, दण्डक, चित्रकूट आदिमें निवास करनेवाले, अखण्ड ज्ञान-स्वरूप श्रीराम-नामधारी अपने इष्टदेवता भगवान् श्रीरामको छोड़कर किसी भी अन्य देवतासे मेरा कोई भी प्रयोजन नहीं है।' (इन तीन श्लोकोंमें शंकराचार्यजीने श्रीरामके प्रति अपनी अनन्य भक्ति-निष्ठाका स्वरूप प्रदर्शित किया है।)

इन श्लोकोंमें परम भक्त श्रीशंकराचार्यजीकी काव्य-कला, वेद-शास्त्रोंका परिज्ञान, नित्य अद्वैतनिष्ठाके साथ

आत्यन्तिक विनय, नम्रता, निरभिमानता, हृदयकी स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता, भावोंकी कोमलता, ध्यानकी परिपक्वता, श्रद्धा-भक्तिका उद्रेक और भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति-निष्ठा भी सूर्यालोककी भाँति सुस्पष्ट-रूपसे पद-पदपर परिलक्षित होती है। इन श्लोकोंमें पूरे रामचरितका भी आद्योपान्त निबन्धन हो गया है। और रामके स्वभावका भी परिपूर्ण चित्रण हो गया है। वैसे तो इसका प्रत्येक श्लोक अप्रतिम महिमामय है और बार-बार पठन-मननके बाद भी इनकी नवीनता और रमणीयता तथा आकर्षण और अधिक बढ़ता जाता है। पर जिन श्लोकोंके अन्तिम चरणोंमें आवर्तन दीखता है, वे तो और भी रमणीय हैं, किंतु जिनके अन्तमें **'अरामाभिधेयैरलं दैवतैर्नः'** यह पद आवृत होता है, उसमें उनके हृदयकी राम-भक्ति इस प्रकार उद्वेलित होती है कि जो किसी भी नीरस पाठकके मनको भी झकझोर देगी और दृढ़ भक्तिके प्रभावसे उसे रामके सम्मुख लाकर खड़ा कर देगी। छन्द एवं पदबन्ध यद्यपि अत्यन्त सरल है, पर उनके भाव इतने गम्भीर, योग-वैराग्य-भक्तियुक्त चमत्कारसे परिपूर्ण हैं कि जो अत्यन्त सामान्य व्यक्तिको भी उत्कृष्ट भगवद्भक्त बनानेके लिये सक्षम है।

श्रीयामुनाचार्यकी रामभक्ति-निष्ठा

यतिराज श्रीरामानुजाचार्यजीका विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय राम-भक्तिके लिये अत्यन्त प्रसिद्ध है। वाल्मीकीय रामायण-की टीका लिखनेवालोंमेंसे माधवयोगीन्द्र, गोविन्दाचार्य, रामानुजकन्दाल आदि अनेक विद्वान् इसी सम्प्रदायके अनुयायी रहे हैं और वाल्मीकीय रामायणकी सर्वोत्तम भूषण टीका भी गोविन्दाचार्यकी ही रचना है, जिन्होंने १२ वर्षतक अखण्ड तपस्याद्वारा भगवान् श्रीरामकी आराधनाकर उनकी कृपा प्राप्त करके इस टीकाका प्रणयन प्रारम्भ किया। इस सम्प्रदायके मूल प्रवर्तक आचार्य रामानुज कहे जाते हैं, पर उन्हें राम-भक्तिकी वास्तविक शिक्षा-दीक्षा अपने परमगुरु श्रीयामुनाचार्यजीसे प्राप्त हुई थी।

श्रीयामुनाचार्य वैष्णव सम्प्रदायके महान् आचार्य रहे हैं। आप श्रीनाथ मुनिके पौत्र और श्रीईश्वर मुनिके पुत्र थे। आपका आविर्भाव वि० सं० १०१० में वीरनारायण (मदुरा) में हुआ था। उनका पूरा जीवन भगवत्सेवा एवं भगवत्कैंकर्यमें ही बीता। श्रीयामुनाचार्यजीका श्रीरामानुजाचार्यजीपर बड़ा प्रेम था और श्रीरामानुजाचार्यजी भी उनके प्रति अटूट भक्तिभाव रखते थे। भगवत्सेवा करते हुए श्रीयामुनाचार्यजीने भगवद्गुणोंका गुणगान किया और उनके सामने अपना दैन्य प्रकट किया।

श्रीयामुनाचार्यजीके सभी ग्रन्थ प्राप्त नहीं हैं; केवल आगमप्रामाण्यम्, स्तोत्ररत्नम्, सिद्धित्रय तथा गीतार्थ-संग्रह आदि कुछ ही ग्रन्थ प्राप्त हैं। यामुनाचार्यजीका दूसरा नाम आलवन्दार था, इसलिये स्तोत्ररत्नम् भी विद्वत्समाजमें आलवन्दारस्तोत्रके नामसे ही विशेष रूपसे प्रसिद्ध हो गया और यह किसी एक सम्प्रदायकी वस्तु न रहकर सम्पूर्ण भक्तसमुदाय और सभी सम्प्रदायोंके विद्वानों-भक्तोंका कण्ठहार बन गया है। महाप्रभु चैतन्य भी अपने कीर्तनों-प्रवचनोंमें इस स्तोत्रके श्लोकोंको बड़े प्रेमसे गाते थे, जिसका चैतन्य-चरितामृतमें कई बार उल्लेख हुआ है। इस स्तोत्रमें यद्यपि अनेक दिव्य गुण हैं, पर काव्यरचना, अलंकारोंकी विशेषता, भावोंकी प्रवणता, दैन्य और भगवान्पर पूर्ण निर्भरता, शरणागति तथा किसी भी मतवाद-विशेषके पक्षपातका अभाव—ये इसके ऐसे गुण हैं जिनके कारण कोई भी भक्त-पाठक इसके पढ़ते ही इसके प्रति वैसे ही पूर्ण आकृष्ट हो जाता है जैसे गोस्वामी तुलसीदासजीके प्रति सभी सम्प्रदायके लोग उनकी शुद्ध भक्तिभावना और दीनताके कारण आकृष्ट हो जाते हैं।

श्रीयामुनाचार्यजीकी भक्तिका निर्मल स्रोत 'स्तोत्ररत्नम्' नामक ग्रन्थमें विशेष रूपसे प्रवाहित हुआ है। उनके हृदयका गम्भीर अनुराग, प्रगाढ प्रेम, उसमें सर्वत्र स्फुटित हुआ है। इन पदोंमें पद-पदपर आत्मविसर्जनका भाव भरा हुआ है। भगवान् अशरणशरण, निराश्रयके आश्रय हैं, अतः सर्वस्व उन्हींको निवेदित किया गया है। सब कुछ भूलकर उनके चरण-कमलोंका आश्रय प्राप्त करनेके लिये कितनी व्याकुलता है—उन्हींको दिखानेके लिये यहाँ नीचे उनके 'स्तोत्ररत्नम्' से कुछ मुख्य विशिष्ट श्रीरामभक्तिभाव एवं निष्ठासे परिपूर्ण

पद्योंका मूलसहित अनुवाद दिया जा रहा है, जिसके पठन-मननसे तत्काल हृदय शुद्ध, पवित्र और रामभक्तिसे परिपूर्ण होने लगता है।

अनन्य भक्तको भगवान् राम नित्य ही अपने हृदयमें तथा बाहर भी सर्वत्र दिखायी देते हैं और वह शिव-विष्णु, उनके अवतारों तथा सूर्य-शक्ति आदिमें भी तनिक भेदभाव न कर परम श्रद्धासे उनको ही सर्वत्र देखता है, जैसा कि गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

(रा॰ च॰ मा॰, ७। ११२ख)

इसी तरह श्रीयामुनाचार्यजी इस स्तोत्रमें कहीं भगवान् राम, कहीं कृष्ण, कहीं वामन, कहीं शेषशायी नारायण आदिकी स्तुति करते हुए प्रतीत होते हैं; पर उनमें उन्हें कहीं कोई भेद नहीं दिखलायी देता और वे सभीके गुणोंको एक साथ ही स्मरण करते हैं।

पहली बात यह है कि भगवान् अत्यन्त शरणागतवत्सल और आश्रितवत्सल हैं, शरणमें आते ही उसके दोष-पापोंका विचार न कर वे उसे अपना लेते हैं और फिर उसका कभी परित्याग नहीं करते—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(रा॰ च॰ मा॰, ५। ४४। १-२)

इस भावको स्मरण करते हुए आचार्य यामुन कहते हैं कि हे नाथ! आप अपनी विभीषणके सामने की गयी प्रतिज्ञाको स्मरण कीजिये, जिसमें आपने पूरी सभाके बीचमें घोषणा की थी कि 'मैं आपका हूँ' यह कहकर कोई भी मेरी शरणमें एक बार आ जाता है तो वह कैसा भी पापी क्यों न हो, मैं उसे तीनों लोकोंसे अभय कर देता हूँ।' आप उसी प्रतिज्ञाको स्मरणकर मुझे पूरी तरह अपना लें और यदि आप ऐसा नहीं करते तो क्या आपने एकमात्र मुझे छोड़कर शेष तीनों लोकोंके प्राणियोंके लिये प्रतिज्ञा की थी? क्या यह आपका शरणागतपालकका व्रत मुझ अकिंचनके लिये नहीं है? इसलिये यह सिद्ध हो जाता है कि आपके लिये मैं अनुकम्पनीय हूँ और मुझपर आपको कृपा करनी पड़ेगी। मूल श्लोक इस प्रकार है—

ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ तवाहमस्मीति च याचमानः।
तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां मदेकवर्जं किमिदं व्रतं ते॥

हे रघुवर! आपने तो सबसे बड़े अपराधी काकरूपधारी इन्द्रके पुत्र जयन्ततकको क्षमा कर दिया था, जिसने अकारण पतिव्रताशिरोमणि भगवती जगदम्बिका सीताके शरीरको पैर और चोंचसे मारकर क्षत-विक्षत कर दिया था। जब सीताजीने उसे पकड़कर आपके चरणोंमें लगा दिया था, तब आपको भी उसपर दया आ गयी और फिर आपकी क्षमाशीलताकी कहीं नाप-जोख हो सकती है?

रघुवर यदभूस्त्वं तादृशो वायसस्य
प्रणत इति दयालुर्यच्च चैद्यस्य कृष्णः।
प्रतिभवमपराद्धुर्मुग्धसायुज्यदोऽभू-
र्वद किमु पदमागस्तस्य तेऽस्ति क्षमायाः॥

आचार्यकी मान्यता है कि भगवान् अनन्त गुणगणोंके निवास-स्थान हैं, अतः सदा उनको सम्मुख रखकर उनकी ही परिचर्या, उपासना, स्तुति आदि करनेकी इच्छा निरन्तर तीव्रतर होती जाती है—

वशी वदान्यो गुणवानृजुः शुचिर्मृदुर्दयालुर्मधुरः स्थिरः समः।
कृती कृतज्ञस्त्वमसि स्वभावतः समस्तकल्याणगुणामृतोदधिः॥

इन्हीं कारणोंसे उन्होंने अपनी विशुद्ध बुद्धि, अपरिमित दीनतापूर्ण निष्कामता और सेवाकी एकतानताका अद्भुत परिचय दिया है—

भवन्तमेवानुचरन् निरन्तरं प्रशान्तनिःशेषमनोरथान्तरः।
कदाहमैकान्तिकनित्यकिंकरः प्रहर्षयिष्यामि सनाथजीवितम्॥

वे कहते हैं—'प्रभो! मेरी अन्य सभी कामनाएँ सर्वथा निर्मूल हो गयी हैं, बस केवल एक यही इच्छा है कि आपके पादपद्मोंकी ही अहर्निश अखण्डित-अबाधित कृपासे उपासना-सेवा करता रहूँ और वह भी ऐकान्तिक, अनन्यसेवककी सेवा-निष्ठासे। यदि ऐसा होने लग जाता तो निश्चय रूपसे मुझे मोक्षसे भी अधिक आनन्द—आह्लाद प्राप्त होता, मेरा जीवन धन्य—सफल हो जाता और सम्पूर्ण उपलब्धियाँ हस्तगत हो जातीं, पर यह तो आपकी कृपासे ही सम्भव है, तो यह आपकी कृपा कब होगी? मेरी भक्तिकी लालसा तथा तीव्र संवेग तो अपनी चरम सीमापर है।'

आचार्य यामुनका दैन्यभाव भी देखते ही बनता है। यह दैन्य ऐसा है कि जिसमें अहंकारका लेशमात्र स्पर्श नहीं; विनय, शील और नम्रताकी सीमा है और इसीके कारण किसी उपासकका इनसे साम्प्रदायिक मतभेद नहीं है। आचार्य कहते हैं—हे परम श्रेष्ठ मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम! भला जिन प्रभुकी योगियोंमें श्रेष्ठ शिव, ब्रह्मा, सनक-सनन्दन आदि मुनिगण ठीकसे ध्यान-स्मरण और अभिनन्दनकी क्षमता नहीं रखते, मैं उन आपके चरणोंकी सेवाका अधिकारी बनना चाहता हूँ। पार्षद् और परिकरोंमें प्रवेश करना चाहता हूँ। ओह! मैं कितना निर्लज्ज हूँ, कितना ढीठ हूँ, कितना दुस्साहसी, अपवित्र और हृदयका कठोर हूँ, यह मेरी छिपी हुई काम-वृत्तिका ही व्यक्त रूप है—

धिगशुचिमविनीतं निर्दयं मामलज्जं
परमपुरुष योऽहं योगिवर्याग्रगण्यैः।
विधिशिवसनकाद्यैर्ध्यातुमत्यन्तदूरं
तव परिजनभावं कामये कामवृत्तः॥

इसके अगले पद्यमें वे कहते हैं कि प्रभो! मेरे अपराधोंकी कोई गणना नहीं है और मैं भयंकर भवसागरमें गिरकर डूब रहा हूँ, मेरा कोई उद्धार भी करनेवाला नहीं है। पर मैं किसी प्रकार आपकी शरणको स्मरण कर रहा हूँ, क्योंकि मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, अब केवल आप अपनी कृपासे ही मेरा उद्धार कर सकते हैं, मुझे अपना सकते हैं, अब कृपापूर्वक अपना ही लीजिये—

अपराधसहस्रभाजनं पतितं भीमभवार्णवोदरे।
अगतिं शरणागतं हरे कृपया केवलमात्मसात्कुरु॥

वास्तवमें 'इस संसारमें सारवस्तु सत्संग ही है, वही समस्त कल्याण, अभ्युदय, निःश्रेयस्का भी मूल है'। इस बातको आचार्यने इस छोटे स्तोत्रमें कई जगह संकेतित किया है। पर एक जगह तो वे इसकी आत्यन्तिक उत्प्रेक्षा करते हुए यहाँतक कह डालते हैं कि हे प्रभो! हे नाथ! आपके भक्तों, उपासकों और संतोंके घरोंमें कीड़ेका जन्म लेकर भी रहना पड़े तो मेरे लिये बड़ा सुखद होगा, पर अन्यत्र यदि भक्त, संत, योगियोंके संगके अतिरिक्त मुझे कहीं चतुर्मुख ब्रह्मा बननेका अवसर भी प्राप्त हो तो मुझे वह स्वीकार नहीं है, आप मुझे वह जन्म न दें—

तव दास्यसुखैकसंगिनां भवनेष्वस्त्वपि कीटजन्म मे।
इतरावसथेषु मास्मभूदपि मे जन्म चतुर्मुखात्मना॥

आचार्य यामुन श्रीरामजीसे प्रार्थना करते हुए कहते हैं—प्रभो! मेरा संसारमें अन्य कोई नहीं है, बस आप ही एकमात्र मेरे माता, पिता, प्रियतम, पुत्र, मित्र, भृत्य, कलत्र, गुरु और संसारमें एकमात्र आश्रय हैं और सत्य बात यह है कि आप मेरे ही नहीं, तत्त्वतः सबके लिये आप ही सब कुछ हैं और मैं भी केवल आपका ही हूँ, आपका ही दास हूँ, आश्रित हूँ, शरण हूँ, आपके द्वारा पालन करने योग्य हूँ, रक्षणीय हूँ, आप ही एकमात्र मेरी गति हैं, अतः आप मेरा पालन कीजिये, शरणमें लीजिये और मेरा उद्धार कीजिये—

पिता त्वं माता त्वं दयिततनयस्त्वं प्रियसुहृत्
त्वमेव त्वं मित्रं गुरुरसि गतिश्चासि जगताम्।
त्वदीयस्त्वद्भृत्यस्तव परिजनस्त्वद्गतिरहं
प्रपन्नश्चैवं सत्यहमपि तवैवास्मि हि भरः॥

इस श्लोकमें आचार्य यामुनकी श्रीरामके प्रति अनन्य आश्रयता, अनन्य निर्भरता और अनन्य भक्ति-निष्ठाका परिचय प्राप्त होता है।
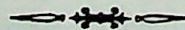
भवविपिनदवाग्निनामधेयं भवमुखदैवतदैवतं दयालुम्। दनुजपतिसहस्रकोटिनाशं रवितनयासदृशं हरिं प्रपद्ये॥
परधनपरदारवर्जितानां परगुणभूतिषु तुष्टमानसानाम्। परहितनिरतात्मनां सुसेव्यं रघुवरमम्बुजलोचनं प्रपद्ये॥

जिनका नाम संसार-वनके लिये दावानलके समान है, जो महादेव आदि देवोंके भी देव हैं, जो करोड़ों दानवेन्द्रोंका नाश करनेवाले हैं और यमुनाजीके समान श्यामवर्ण हैं, उन दयामय हरिकी मैं शरण लेता हूँ। जो परधन और परस्त्रीसे सदा दूर रहते हैं तथा पराये गुण और परायी विभूतिको देखकर प्रसन्न होते हैं ऐसे उन निरन्तर परहितपरायण महात्माओंके द्वारा सुसेव्य कमल-लोचन श्रीरघुनाथजीकी मैं शरण लेता हूँ।

श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदाय और भगवान् श्रीराम

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य श्री 'श्रीजी' श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजी महाराज)

अखिलब्रह्माण्डनायक, क्षराक्षरातीत, जगज्जन्मादिहेतु, ब्रह्मरुद्रेन्द्रादिकिरीटकोट्येडितपादपीठ, परब्रह्म, अनुग्रहविग्रह, कौसल्यानन्दवर्द्धन, दशरथतनय, मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामभद्रका पावनतम चरित कितना समुज्ज्वल, दिव्य और शास्त्रमर्यादाओंसे निबद्ध है—इसे प्राकृत भाषामें अङ्कित करना अति कठिन है। लोकाभिराम भगवान् श्रीरामका ऐसे अत्यन्त भीषण संकटकालमें आविर्भाव हुआ, जब कि दुर्दान्त रावण-कुम्भकर्ण, मेघनाद एवं खर-दूषण-जैसे अगणित प्रबल अत्याचारी क्रूरकर्मा निशाचरका अतिशय प्राबल्य था। गो-ब्राह्मण-साधुजन, देवगण, ऋषि-मुनि-महात्मा नाना प्रकारसे महाघोर-कर्मपरायण इन असुरोंके अकल्पनीय भयंकर कुकृत्योंसे अत्यन्त उत्पीड़ित थे। त्रिभुवनविमोहन करुणा-वरुणालय श्रीराघवेन्द्र सरकारने कृपा कर इन नृशंस दुष्ट दैत्योंका दलन और प्रपन्न भक्तजनोंका परित्राण कर वैदिक धर्म एवं शास्त्रमर्यादाकी सम्यक् प्रकारसे स्थापना की। आपके लोकपावन चरितका श्रवण, मनन और निदिध्यासन कर आज भी विभ्रान्त मानव सत्पथानुगामी बनकर आपकी महामहिमामयी परमानुकम्पाका सद्भाजन बन जाता है, तथाच आपके अति दुर्लभ मधुर दर्शनोंका सौभाग्य प्राप्त कर लेता है। भगवान् श्रीरामके सभी चरित्र इतने आदर्श और महान् हैं कि उनके स्मरणमात्रसे ही त्रिविध ताप एवं पातकोपपातक पलभरमें ही प्रणष्ट हो जाते हैं।

रघुकुलतिलक श्रीरामके अखण्ड साम्राज्यमें सर्वत्र सुख-शान्तिकी अजस्र धारा प्रवहमान थी। सम्पूर्ण प्रजा धन-जन-समृद्धिसे सम्पन्न थी और नित्यनव-हर्षोल्लासका अनुभव करती थी। जनकतनया श्रीसीताजीसहित श्रीरामभद्रकी अतुलित अनुपम सौन्दर्य-माधुर्यजन्य विलक्षण शोभाके दर्शन-हेतु अगणित देव-ऋषि-मुनिवृन्द आ-आकर अपनी अनन्त कालकी उपार्जित तपःसाधनाकी उपलब्धिका साक्षात्कार करते थे। असीम बलनिधान पवनतनय श्रीहनुमान् जिन भगवान् श्रीरामके युगल पदकंजमें सदा अनुरक्त रहते थे, उन प्रभुकी इच्छित सेवा-सामग्रीको सतत प्रस्तुत करना कैसी आदर्श और उत्कृष्ट भक्तिका निदर्शन है। श्रीप्रभुके सुविस्तृत राज्यमें धर्म और नीतिके अद्वितीय मर्मज्ञ महामुनि श्रीवसिष्ठ-जैसे प्रमुख परामर्शदाताका होना रामराज्यकी गरिमाका महत्तम द्योतक था। अवधेश महाराज दशरथ और माता कौसल्याका अनिर्वचनीय अगाध अनुराग बरबस किसे अनुप्राणित नहीं कर देता। लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न-जैसे परम अजेय महामहिम भ्राता रामाज्ञाके अनुपालनमें सर्वदा विनम्रभावसे संनद्ध रहते एवं तदनुवर्तनमें अपना अतिशय सौभाग्य मानते हैं।

इस प्रकार मानव-जीवनका यथार्थ प्रेरक एवं उदात्त उद्बोधनप्रदायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका त्रैलोक्य-पावन मङ्गलमय चरित सामने है। वह जिस दृष्टिसे भी देखा जाय, सर्वोत्कृष्ट और दिव्यातिदिव्य है। नीलाम्बुजश्यामल-कोमलाङ्ग हृदयरमण नयनाभिराम श्रीराघवेन्द्र प्रभुके निखिल-लोकवन्दित परमाद्भुत चरितका श्रुति-स्मृति-पुराण-तन्त्रादि धर्मशास्त्र एवं वाल्मीकिरामायण, अध्यात्म-रामायण प्रभृति अनेक रामायणों तथा अनेक ऋषीश्वर, सम्प्रदायाचार्यों, संत-महात्माओंने भी भव्य, सरस और अति विस्तृतरूपसे वर्णन किया है। श्रीरामचरितमानस तो प्रसिद्ध ही है। श्रीगोस्वामीजीने जिस अनूठे प्रकारसे मानसका प्रणयन किया है, वह अद्वितीय है। श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके सर्वमूर्धन्य पूर्वाचार्य एवं परवर्ती आचार्यचरणोंने भी श्रीराममहिमाका गुणगान जिस अनुपमेय, अतिललित भाषामें किया है, वह भी विशेषतः द्रष्टव्य है।

श्रीमन्निम्बार्काचार्यपीठाधिरूढ जगद्विजयी जगद्गुरु श्री-केशवकाश्मीरी भट्टाचार्यजी महाराजने **'श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्र'**में भगवान् श्रीकृष्णकी प्रपन्नताकी आकांक्षा करते हुए भगवान् श्रीरामकी भी प्रपत्ति बड़ी ही सरसतासे की है—

श्रीरामचन्द्र रघुनाथ जगच्छरण्य
राजीवलोचन धनुर्धर रावणारे।
सीतापते रघुपते रघुवीर राम
त्रायस्व केशव हरे शरणागतं माम्॥

(श्रीकृष्णशरणापत्तिस्तोत्र ४)

ऐसे ही श्रीनिम्बार्कपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीपरशुराम-देवाचार्यजी महाराजने भी अपने 'श्रीपरशुरामसागर' नामक बृहद् ग्रन्थमें अनेक दोहों और पदोंसे राजीवलोचन भगवान्

रामका गुणगान किया है। उदाहरणार्थ कतिपय दोहे और पद यहाँ उद्धृत किये जा रहे हैं—

रंक बिभीषन कों दयो, लै रावन कौ राज।
'परसा' परम उदार अति, राम गरीब निवाज॥
'परसा' हित करि सेइयै, हरि तारन भवपार।
और न को रघुनाथ सम, नेह निबाहन हार॥
घर बाहर सनमुख सदा, हरि जहँ-तहँ इक तार।
रामचंद्र भजि 'परसराम', दाता परम उदार॥
रामचंद्र दसरथ सुअन 'परसा' परम उदार।
लंक दई जिन हेत करि, भयो अवधि दातार॥
जिन तारी सिल सिंधु परि, 'परसराम' सो राम।
ता सुमिर्‌यां सब सुद्धरै, करिये जो कछु काम॥

(श्रीपरशुरामसागर, खं० २, दो० ९,११,१३,१४,१७, पृ० ३४)

पद-रज पावन राम! तुम्हारी।
सदगति भई सिला अब-हीं-अब, देखि प्रगट साखी रिषि-नारी॥
पलट गयो पाषान पलक मैं, यह अचिरज लागत अति भारी।
कटे कलंक सकल पद-पंकज परसत दिब्य देह जिनि धारी॥
बरनि सकै कबि कौन सुमहिमा जानि अजानि सेस बिसतारी।
सोइ दीजै, रघुनाथ! कृपा करि 'परसा' जन-रज काज भिखारी॥

(श्रीपरशुरामसागर, खं० ४, पद ३६,२, पृ० ११९,२०५)

इसी प्रकार श्रीनिम्बार्काचार्यपीठाधिपति जगद्गुरु श्रीवृन्दावनदेवाचार्यजी महाराजने अपने निजप्रणीत 'गीतामृतगङ्गा' नामक वाणी-ग्रन्थमें अवधेशकुमार श्रीरामललाकी महिमाका अनेक स्थलोंपर बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। यथा—

जय-जय रघुवर! करुणासागर! कार्मुक-हस्त! अयोध्यानागर!
भव-भय-खण्डन! निज-जन-मण्डन! हय-खुर कृत दानवपुर-कण्डन।
जनकसुता-सहचर गुणराशे, वितर दयां 'वृन्दावनदासे'॥

जागु रे, मनुवाँ! लै रे राम कौ नाम।
काम-क्रोध-मद-लोभ-मोहमें कत भटकत बेकाम॥
बिनसि गयें तन छिनक एक में कोउ न छुवै है चाम।
'(श्री)बृंदाबन' यह समझि, बावरे! बेगि पकरि निज धाम॥

(श्रीगीतामृतगङ्गा, घाट १०,१३, पद २०,६)

श्रीनिम्बार्काचार्यपीठसमारूढ आचार्यवर्य जगद्गुरु श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजी महाराजने भी अपनी अति मनोहर मञ्जुल पदावलीमें रघुकुलतिलक जनकसुतापति विश्वविमोहन श्रीराघवेन्द्रके विवाहोत्सव एवं हिंडोरा-उत्सवका कितना हृदयग्राही और मनोरम वर्णन किया है, जिसका कुछ अंश नीचे उद्धृत है—

मिथिला आय जनकपुर हंसा। गुन रूप सील अवतंसा॥
ठाढ़ी जनक-लली जु अटा हैं। मानों रूप की घटा हैं॥
सजनी सौं बोलीं बैना। ये काके कुँवर छबि-ऐना॥
तन साँवल सरस सलोनें। सुंदर अस भये न होने॥
यासों मन-लगन लगी है। मेरी नींद रु भूख भगी है॥
पितु कठिन धनुष पन लीनों। कोउ कहै जाय कहा कीनौं॥
ये मृदुल मनोहर गाता। यह धनुष कठिन अति ताता॥
सब घातैं भई अकामी। (मैं) इनकी पतनी ये स्वामी॥
जनकसुता की करुना-बानी। रघुपति अपने मन मानी॥
सिव कठिन धनुष लै तोर्‌यौ। भट बीरन कों मद मोर्‌यौ॥
भयौ ब्याह, बधाई भलियाँ। सब गली गली रँगरलियाँ॥
दुलही लै निज पुर आये। भये 'गोविंदसरन' मन भाये॥

(श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यजीकी वाणी, पद ६७)

झूलत जनकलली रघुनंदन।
अति अभिराम धाम छबि, गुन निधि धनुष बान कर कंजन॥
सरजू तीर कलपतरु छइयाँ हरित भूमि मनरंजन।
पावस रितु बन उपबन सोभा निरखि होत मन मंजन॥
उर बिसाल मुक्ताफल सोहैं भक्तन के भय भंजन।
'गोबिंदसरन' राजाधिराज नृप, तिलक असुर दल गंजन॥

(श्रीगोविन्दशरणदेवाचार्यकी वाणी, पद २०२)

यद्यपि श्रीनिम्बार्क-सम्प्रदायके आराध्य नित्यनिकुञ्ज-विहारी युगलकिशोर श्यामा-श्याम भगवान् श्रीराधा-कृष्ण हैं, तथापि सम्प्रदायके सिद्धान्तानुसार भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णमें अन्तर नहीं माना गया है। तत्त्वतः वे एक ही परात्पर तत्त्व रसस्वरूप परब्रह्म हैं, लीला-विलासहेतु भक्तोंको आनन्द देने, धर्मके संस्थापन एवं निशाचरोंके दमनार्थ ही समय-समयपर विभिन्न रूपसे अवतार लेते हैं।

भगवान् श्रीरामका दिव्य चरित मर्यादा-स्थापनादिके उद्देश्यसे की गयी अनेक लीलाओंसे परिपूरित है और इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके लोकोत्तर ललित चरितका भी मुख्य उद्देश्य निज-प्रपन्नजनोंको सुख देनेके अतिरिक्त दिव्य-केलि-रस-प्रदान ही है, असुर-संहारादि कार्य तो प्रासङ्गिक हैं।

श्रीवल्लभ-सम्प्रदायमें भगवान् श्रीराम

श्रीमद्भागवत, द्वितीय स्कन्धके सप्तम अध्यायमें श्रीब्रह्माने श्रीनारदके समक्ष जिस क्रमसे अवतारोंका वर्णन किया है, उस क्रममें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम बीसवें अवतार हैं। अतः क्रमानुसार भगवान् श्रीराम अन्तर्यामीके 'हासपेशल' पदसे सूचित रुचिर हासरूप है। आचार्य श्रीवल्लभने स्वप्रकटित श्रीसुबोधिनी व्याख्यामें इस प्रसंगका मार्मिक विश्लेषण किया है।

इस संदर्भमें श्रीब्रह्माने भगवान् श्रीरामके चरित्रका केवल तीन ही श्लोकोंद्वारा वर्णन किया है। उसका आशय स्पष्ट करते हुए आचार्य श्रीवल्लभ बतलाते हैं कि 'हास तीन प्रकारका होता है—प्रसन्नताके कारण होनेवाला हास 'सात्त्विक हास' कहलाता है, लोगोंको मोहित करनेके लिये किया जानेवाला हास 'राजस हास' कहलाता है और अभिमानियोंके अभिमान-खण्डनके लिये किया गया हास 'तामस हास' कहलाता है। यद्यपि भगवान् श्रीरामके अनन्त चरित्र हैं, परंतु सात्त्विक-राजस-तामस प्रकृतिवाले जीवोंके हितार्थ किये जानेवाले समस्त चरित्रोंका वर्गीकरण तीन श्लोकोंमें करते हुए श्रीब्रह्माने इन श्लोकोंद्वारा त्रिविध चरित्रोंको उपलक्षित किया है।'

श्रीब्रह्माद्वारा वर्णित श्रीरामचरितका प्रथम श्लोक—

प्रसन्नताहेतुक हासकी अभिव्यक्ति एवं सात्त्विक चरित्र

अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश
इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश
यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत्॥

(श्रीमद्भा० २।७।२३)

'सर्वकलाओंके अधिपति भगवान् जब हमलोगोंपर अनुग्रह करनेके लिये प्रसन्नमुख होते हैं, तब संकर्षणादि व्यूहात्मक श्रीलक्ष्मणादिरूप कलाके साथ इक्ष्वाकुके वंशमें श्रीरामरूपसे अवतीर्ण होते हैं। इस अवतारमें पिता दशरथकी आज्ञाका पालन करनेके लिये वे पत्नी एवं लघु भ्राता लक्ष्मणके साथ वनवास करते हैं तथा दशग्रीव रावण उन्हें विरोधका विषय बनाकर पीड़ाको प्राप्त होता है।'

उक्त श्लोकपर आचार्य श्रीवल्लभका वक्तव्य

आचार्य बतलाते हैं कि यहाँ '**अस्मत्प्रसादसुमुखः**' इस पदद्वारा अन्तर्यामीके प्रसन्नताहेतु सात्त्विक हासकी अभिव्यक्ति स्पष्ट हो रही है। एवं कलाके साथ होनेसे उस हासकी पेशलता या सुन्दरता भी '**कलया**' पदसे स्पष्ट हो रही है। दूसरी बात यह है कि ब्रह्मादि देवताओंने रावणादि असुरोंसे त्रस्त होकर अपनी रक्षाके उद्देश्यसे भगवत्प्रार्थना की थी—इसलिये भगवान्‌को हास हुआ कि 'इस रावणादि वधको तो मेरी वह एक कला ही कर सकती है, जो वैकुण्ठमें विष्णुरूपसे स्थित है, मैंने रक्षा या पालनका कार्य तो उसे ही सौंप रखा है, इस साधारणसे कार्यके लिये ये लोग मुझसे प्रार्थना करते हैं, सम्भवतः ये लोग अधिक घबरा गये हैं।'

'हासो हि कार्यस्याल्पत्वे भवति।····अनेन भगवान् पूर्ण एव रघुनाथोऽवतीर्ण इति सूचितम्।'

कृपा करके पूर्णपुरुषोत्तम भगवान् ही श्रीरघुनाथरूपसे प्रकट हुए और आपकी ज्ञानकला सर्वोत्कृष्ट सौन्दर्यमयी शक्ति श्रीसीतारूपसे विदेहवंशमें प्रकट हुई। भगवान् श्रीरघुनाथके प्रकट होनेमें धर्मात्मा ऋषि-मुनियोंकी संकटसे रक्षा करना तो उद्देश्य था ही; क्योंकि धर्म भी आपकी अन्यतम कला है और आप 'कलेश' हैं—कलाओंके समर्थ स्वामी हैं। आपने इक्ष्वाकु राजाके वंशको अपने प्राकट्यके लिये इस दृष्टिसे चुना कि महाराज इक्ष्वाकु भगवद्भक्त थे। श्रीनरसिंहपुराणमें यह कथा प्रसिद्ध है कि 'इक्ष्वाकुकी भक्तिसे भगवान् श्रीरङ्गनाथ ब्रह्माजीके समीप न रह सके, महाराज इक्ष्वाकुके समीप आ गये।' अतः भक्तवंशका उद्धार ही श्रीरामके अवतारका मुख्य उद्देश्य था—यह सिद्ध हो जाता है। 'व्रतके समान पिता दशरथकी आज्ञाका पालन करते हुए भी श्रीरामभद्रने श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मणके साथ वन-प्रवेश क्यों किया? महाराज दशरथकी आज्ञा तो उस प्रकारकी नहीं थी।' आचार्य वल्लभ इस शंकाका समाधान करते हैं कि—'**देवानां कामनया**' तथा '**संकल्पः कृतः।**'—देवताओंकी कामना थी कि सपरिवार रावणका विनाश हो; यह कामना तभी पूर्ण हो सकती थी, जब रावण श्रीसीताजीका हरण कर श्रीरामसे विरोध करता। अतः

विरोधके निमित्त श्रीसीताको वनमें साथ ले जानेका संकल्प श्रीरामने किया तथा रावणके पुत्र इन्द्रजित् मेघनादके वधके लिये श्रीलक्ष्मणको साथमें लेनेका संकल्प किया; क्योंकि मेघनादका वध श्रीलक्ष्मणद्वारा ही सम्भव था।

श्रीसीताहरणकी संगतिपर आचार्य श्रीवल्लभके विचार

यद्यपि सीताहरण केवल नाट्यमात्र था, तथापि यह नाट्य इसलिये आवश्यक था कि पत्नीके साथ पुरुषका या पतिके साथ स्त्रीका वनवास वास्तविक वनवास नहीं कहा जा सकता। अतः वनवासकी वास्तविकता सिद्ध करनेके लिये यह लीला हुई।

उक्त विवेचनसे इस संदर्भमें भगवान् श्रीरामके सात्त्विक चरित्रोंका दिग्दर्शन हो जाता है। (१) देवताओंका हित साधन, (२) धर्मादि कलाओंका पालन, (३) भक्तवंशमें अवतार-द्वारा भक्तोद्धार, (४) पिताकी आज्ञाका पालन तथा (५) वनवास—ये पाँचों ही चरित्र सात्त्विक हैं। रावणकी पीड़ा भी श्रीरामके सात्त्विक चरित्रसे विरुद्ध नहीं कही जा सकती। आचार्य श्रीवल्लभ कहते हैं—

'सत्त्वविरोधे तमसो लयो युक्त एव।'

'सत्त्वसे विरोध करनेपर तमका लय होना उचित ही है।' श्रीरामसे विरोध करनेपर रावणको पीड़ित होना ही था।

श्रीब्रह्माजीद्वारा वर्णित रामचरितका द्वितीय श्लोक—

इतरव्यामोहक हासकी अभिव्यक्ति एवं राजस चरित्र

यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो
मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद् दिधक्षोः।
दूरे सुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या
तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः ॥

(श्रीमद्भा० २।७।२४)

'त्रिपुर विमानके जलानेको उद्यत शंकरके समान भगवान् श्रीराम शीघ्र ही लंकाको जला देना चाहते थे। श्रीसीता एवं श्रीभरतादि प्रियजनोंके वियोगसे क्रोधाग्नि धधक उठी और आँखें अत्यन्त लाल हो गयीं। उनकी उस दृष्टिसे ही समुद्रके मकर, मत्स्य, सर्प, ग्राह आदि प्राणी अधिक संतप्त होने लगे तथा भयसे थरथर काँपते हुए समुद्रने उन्हें मार्ग दे दिया।'

उक्त श्लोकपर आचार्य श्रीवल्लभका वक्तव्य

आचार्य बतलाते हैं कि इस संदर्भमें भगवान् श्रीरामके रोषका वर्णन हुआ है, अतः इस चरित्रकी राजसता स्पष्ट ही है, और यहाँ भगवान् श्रीरामकी इतरव्यामोहक हासरूपताका परिचय भी समुद्रके व्यामोहसे स्पष्ट उपलब्ध हो रहा है। समुद्रको उचित था कि भगवान् श्रीरामको प्रीतिपूर्वक मार्ग दे देता, अपनी प्रिय पत्नीका हरण करनेवाले रावणका वध उन्हें करना था, ऐसी स्थितिमें उनके उस कार्यमें सहायता करना ही उचित था, परंतु व्यामोहवश समुद्र श्रीरामके मार्गमें विघ्नरूपसे ही उपस्थित हुआ। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम तो समुद्रकी मर्यादाकी रक्षाके लिये ही उसे पादाक्रान्त करना नहीं चाहते थे। अतः अनशन-व्रत लेकर उसके तटपर वे विनीतभावसे विराजमान हो गये। परंतु व्यामोहवश समुद्रको अन्यथा ही भान हुआ कि जब ये मेरे पार जानेके उपायको ही नहीं जानते, तब रावणका वध कैसे कर सकेंगे? इनके पूर्वजोंने मुझे प्रकट किया है, इस नाते इनकी प्राणरक्षा मुझे करनी चाहिये। ये यहींपर रहें इसमें ही हित है। जब पर्याप्त समयतक प्रतीक्षा करनेपर मार्ग न मिला, तब भगवान् श्रीरामको रोष आया और समुद्रके शोषणार्थ बाणका संधान किया।

उस समय श्रीरामका रोष प्रियजनोंके दुःख-निवारणार्थ था, इस कारण विवेकद्वारा वह नहीं रुक सका। **'हरवदरिपुरम्'** इस योजनासे इस श्लोकमें यह भी सूचित किया गया है कि 'यदि रावणकी रक्षाके लिये उसके आराध्य शंकर भी पधारें तो भी उनके सहित उस लंकाको जला डालना है; जिस स्थानपर वैदेही श्रीसीता दुःखित हों, वह स्थान ही सर्वथा भस्मसात् कर डालना है, रावण-वध तो साधारण-सी बात है'—ऐसा निश्चय श्रीरामने किया था। श्रीरामकी दृष्टिमात्रसे समुद्रको ताप हो जाना, यह उनकी महिमा है। प्रियमिलन-विलम्बासहिष्णु श्रीरामकी रोषमयी लाल आँखोंसे उस अगाध समुद्रमें क्षोभका होना तथा उसके अन्तर्वर्ती जलचरोंमें तीव्र तापका होना—ये श्रीरामकी लोकोत्तर सामर्थ्यके बोधक हैं।

समुद्र इतना भयभीत हुआ कि मानो विवाहिता पत्नीकी भाँति भीतिने उसके हृदयमें प्रवेश किया हो। उसके अङ्ग-अङ्ग काँपने लगे और मृत्युके चिह्न शोषण आदि भी प्रतीत होने लगे। वह उनकी महिमाका प्रत्यक्ष कर शरणागत हुआ और

मार्ग देनेमें अनुकूल हो गया। इस प्रकार इस श्लोकमें रोष-वर्णनसे चरित्रकी राजसता स्पष्ट हुई है और समुद्रके व्यामोहसे श्रीरामकी इतर-व्यामोहक हासरूपता भी स्पष्ट हुई है।

श्रीब्रह्माजीद्वारा वर्णित रामचरितका तृतीय श्लोक—

इतरगर्वापहारक हासकी अभिव्यक्ति एवं तामसचरित्र

वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाह-
दन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम्।
सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तु-
र्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये॥

(श्रीमद्भा० २।७।२५)

'श्रीसीताका हरण करनेवाले रावणका गर्व अत्यन्त बढ़ चुका था, दिग्विजय तो उसके लिये एक साधारण तुच्छ बात थी। उसे वह अपनी प्रशंसाका हेतु नहीं समझता था; क्योंकि उसका शारीरिक बल इतना अधिक था कि उसके वक्षःस्थलसे टकराकर देवराज इन्द्रके वाहन ऐरावत हस्तीके दन्त चूर-चूर हो चुके थे। भगवान् श्रीराम उस रावणके प्राणोंके साथ उसके उस बढ़े-चढ़े गर्वको अपने उस धनुषकी टंकारोंसे शीघ्र ही दूर करेंगे, जो धनुष संग्राममें सबसे ऊपर खेलता है।'

उक्त श्लोकपर आचार्य श्रीवल्लभका वक्तव्य

आप बतलाते हैं कि यहाँ 'हास' शब्द गर्वका बोधक ही है, जिसके अपहरणद्वारा श्रीरामकी इतरगर्वापहारक हासरूपता स्पष्ट हो जाती है। इस चरित्रकी तामसता भी आततायी रावणके प्राण एवं गर्वके नाशद्वारा स्पष्ट ही है। दिग्विजयी वीरोंके सामर्थ्यसे भी रावणका सामर्थ्य कहीं अधिक था, इस कारण उसे महान् गर्व हो गया था, महाभिमानी रावणका वह गर्व प्राणोंके साथ ही गया। भगवान्के हासके सामने अन्यका हास नहीं ठहर सकता तथा इस चरित्रकी तामसता इस श्लोकमें '**उच्चरतः**' इस उभयार्थक पदद्वारा अधिक पुष्ट हुई है; क्योंकि उस महापराधी रावणकी मुक्तिमें प्रतिबन्ध उपस्थित करनेको श्रीरामका धनुष उस समय अपने मलरूप बाणोंको छोड़ रहा था, यह अर्थ भी यहाँ विवक्षित है। इस प्रकार आचार्य श्रीवल्लभने भगवान् श्रीरामकी अन्तर्यामिहासरूपता-का समर्थन साकार ब्रह्मवादके समर्थनके अनुकूल किया है।

श्रीवल्लभसम्प्रदायमें मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके निम्नाङ्कित चरित्र पुष्टिलीलाके अनुरूप माने जाते हैं—

१.अहल्याका उद्धार, २.शबरीका आतिथ्य-स्वीकार, ३.सेतुबन्धन तथा ४.समस्त अयोध्यावासियोंको साथ लेकर स्वधामगमन।

क्योंकि इन चरित्रोंमें निस्साधनजनोंको कृपाकर फलका दान दिया है और सेतुबन्धनका मुख्य उद्देश्य भी लंकामें रहनेवाली नारियोंको अपने दर्शनसे कृतार्थ करना ही था। रावणादि-वध तो आनुषङ्गिक ही था।

(पं० श्रीसबलकिशोरजी पाठक)

रामनामका अद्भुत प्रभाव

(महात्मा गाँधी)

रामनामके प्रतापसे पत्थर तैरने लगे, रामनामके बलसे वानर-सेनाने रावणके छक्के छुड़ा दिये, रामनामके सहारे हनुमान्ने पर्वत उठा लिया और राक्षस (रावण) के घर अनेक मास रहनेपर भी सीता अपने सतीत्वको बचा सकी। भरतने चौदह सालतक प्राण धारण कर रखा; क्योंकि उनके कण्ठसे रामनामके सिवा कोई दूसरा शब्द नहीं निकलता था। इसीलिये तुलसीदासजीने कहा है कि 'कलिकालका मल धो डालनेके लिये रामनाम जपो।'

मेरा विश्वास है कि रामनामके उच्चारणका विशेष महत्त्व है। अगर कोई जानता है कि ईश्वर सचमुच उसके हृदयमें बसता है तो मैं मानता हूँ कि उसके लिये मुँहसे रामनाम जपना जरूरी नहीं है। लेकिन मैं किसी ऐसे आदमीको नहीं जानता। उलटे, मेरा अपना अनुभव कहता है कि मुँहसे रामनाम जपनेमें कुछ अनोखापन है। क्यों या कैसे—यह जानना आवश्यक नहीं है।

संतशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी अनुपम रामभक्ति-निष्ठा

(ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज)

संतोंका मत है कि जीवका परम कल्याण भगवद्भक्तिमें ही है। समस्त प्राणियोंको भक्त एवं संत बनाना ही संतोंका लक्ष्य रहा है। सभी धर्मोंकी सफलता भी भगवद्भक्तिमें ही है। पर यह किसी बड़े सौभाग्यशाली साधकको ही प्राप्त होती है। इसलिये सभी लोग भक्ति-मुक्ति प्राप्त नहीं कर पाते। अतः भगवान्‌ने सोचा कि यदि इस क्रमसे इतने स्वल्प जीव मेरे भक्ति-प्रेमकी उपलब्धि कर सकेंगे, तब तो कल्पोंमें भी प्रेम पानेवालोंकी संख्या अँगुलीपर गिननेके बराबर ही रहेगी। इसलिये अब मुझे स्वयं जीवोंके बीच चलना चाहिये—प्रकट होना चाहिये और ऐसी लीला करनी चाहिये कि मेरे अन्तर्धान होनेपर भी वे मेरे गुणों और लीलाओंका कीर्तन, श्रवण एवं स्मरण करके मेरे सच्चे प्रेमको प्राप्त कर सकें।

भगवान् आये, उनके गुण, लीला स्वरूपके कीर्तन, श्रवण-स्मरणकी प्रेरणा भी आयी। अभी लीला-संवरण हो भी नहीं पाया था कि वाल्मीकिने उन्हींके पुत्र लव-कुशके द्वारा उनकी कीर्तिका गायन कराकर सुना दिया और भगवान्‌से उनकी यथार्थताकी स्वीकृति भी कर ली। जगत्‌में आदिकवि हुए वाल्मीकि और आदिकाव्य हुआ उनके द्वारा रचित श्रीमद्रामायण। पर उसका भी प्रसार संस्कृत भाषामें होनेके कारण जब कुछ सीमित-सा होने लगा तो भगवत्कृपासे गोस्वामी तुलसीदासजीका प्राकट्य हुआ। जिन्होंने सरल, सरस हिन्दी भाषामें मानसकी रचना की। उन दिनों मध्यकालमें भारतकी परिस्थिति बड़ी विषम थी। विधर्मियोंका बोल-बाला था। वेद, पुराण, शास्त्र आदि सद्ग्रन्थ जलाये जा रहे थे। एक भी हिन्दू अवशेष न रहे, इसके लिये गुप्त एवं प्रकट-रूपसे चेष्टा की जा रही थी। धर्मप्रेमी निराश-से हो गये थे। तभी भगवत्कृपासे श्रीरामानंदजीके सम्प्रदायमें महाकविका प्रादुर्भाव हुआ था।

नरहरि स्वामीने वैष्णव-संस्कारपूर्वक उन्हें राममन्त्रकी दीक्षा दी। अवधमें ही उन्होंने दस महीनोंतक हनुमान् टीलेपर निवास किया। हेमन्त ऋतु आनेपर गुरु-शिष्य दोनोंने अवधपुरीसे यात्रा की। वहाँसे फिर वे सूकरक्षेत्र पहुँच गये। वहीं गुरुजीने प्रेमसे तुलसीदासजीको रामकथा सुनायी—**'मैं पुनि निज गुर सन सुनी कथा सो सूकरखेत।'** ऐसा कहकर गोस्वामीजीने इस बातका स्मरण भी दिलाया है। कुछ दिनोंके बाद वे काशी आये। काशीके शेषसनातनजी तुलसीदासकी योग्यतापर रीझ गये। उन्होंने नरहरिजीसे माँगकर उन्हें पंद्रह वर्षतक अपने पास रखा और वेद-वेदाङ्गोंका सम्पूर्ण अध्ययन कराया। तुलसीदासजीने विद्याध्ययन तो कर लिया, परंतु ऐसा जान पड़ता है कि उन दिनों भजन कुछ शिथिल पड़ गया। उनके हृदयमें लौकिक वासनाएँ जाग उठीं और अपनी जन्मभूमिका स्मरण हो आया। अपने विद्यागुरुकी अनुमति लेकर वे राजापुर पहुँचे।

राजापुरमें अब उनके घरका ढूहामात्र अवशेष था। पता लगनेपर गाँवके भाटने बताया—जब हरिपुरसे आकर नाईने कहा कि अपने बालकको ले आओ और आत्मारामजीने अस्वीकार कर दिया, तभी एक सिद्धने शाप दे दिया कि छः महीनेके भीतर तुम्हारा और दस वर्षके भीतर तुम्हारे वंशका नाश हो जाय। वैसा ही हुआ। इसलिये अब तुम्हारे वंशमें कोई नहीं है। उसके बाद तुलसीदासजीने विधिपूर्वक पिण्डदान एवं श्राद्ध किया। गाँवके लोगोंने आग्रह करके मकान बनवा दिया और वहींपर रहकर तुलसीदासजी लोगोंको भगवान् रामकी कथा सुनाने लगे। कार्तिककी द्वितीयाके दिन भारद्वाज गोत्रका एक ब्राह्मण वहाँ सकुटुम्ब यमुना-स्नान करने आया था। कथा बाँचते समय उसने तुलसीदासजीको देखा और मन-ही-मन मुग्ध होकर कुछ दूसरा ही संकल्प करने लगा। गाँवके लोगोंसे उनकी जाति-पाँति पूछ ली और अपने घर लौट गया।

वह वैशाख महीनेमें दूसरी बार आया। तुलसीदाससे उसने बड़ा आग्रह किया कि आप मेरी कन्या स्वीकार करें। पहले तो तुलसीदासजीने स्पष्ट 'नहीं' कर दी, परंतु जब उसने अनशन कर दिया, धरना देकर बैठ गया, तब उन्होंने स्वीकार कर लिया। संवत् १५८३, ज्येष्ठ शुक्ला १३, गुरुवारकी आधी रातको विवाह सम्पन्न हुआ। अपनी नवविवाहिता वधूको लेकर तुलसीदासजी अपने ग्राम राजापुर आ गये।

एक बार जब उसने अपने पीहर जानेकी इच्छा प्रकट की तो उन्होंने अनुमति नहीं दी। वर्षों बीतनेपर एक दिन वह अपने भाईके साथ मायके चली गयी। जब तुलसीदासजी बाहरसे आये और उन्हें ज्ञात हुआ कि मेरी स्त्री मायके चली गयी, तब वे भी चल पड़े। रातका समय था, किसी प्रकार नदी पार करके जब वे ससुरालमें पहुँचे तब सब लोग किवाड़ बंद करके सो गये थे। तुलसीदासजीने आवाज दी, उनकी स्त्रीने पहचानकर किवाड़ खोल दिये। उसने कहा कि—'प्रेममें तुम इतने अन्धे हो गये थे कि अँधेरी रातकी भी सुधि नहीं रही, धन्य हो! तुम्हारा मेरे इस

हाड़-मांसके शरीरसे जितना मोह है, उसका आधा भी यदि भगवान्से होता तो इस भयंकर संसारसे तुम्हारी मुक्ति हो जाती—

हाड़ मांस को देह मम, तापर जितनी प्रीति।
तिसु आधी जो राम प्रति, अवसि मिटिहि भव भीति॥

फिर क्या था, वे एक क्षण भी न रुके, वहाँसे चल पड़े। उन्हें अपने गुरुके वचन याद हो आये, वे मन-ही-मन उसका जप करने लगे—

नरहरि कंचन कामिनी, रहिये इनते दूर।
जो चाहिय कल्याण निज, राम दरस भरपूर॥

जब उनकी पत्नीके भाईको मालूम हुआ तब वह उनके पीछे दौड़ा, परंतु बहुत मनानेपर भी वे लौटे नहीं, फिर वह घर लौट आया। तुलसीदासजी ससुरालसे चलकर प्रयाग आये। वहाँ गृहस्थ-वेष छोड़कर साधु-वेष धारण किया। फिर अयोध्यापुरी, रामेश्वर, द्वारका, बदरीनारायण, मानसरोवर आदि स्थानोंमें तीर्थाटन करते हुए काशी पहुँचे। मानसरोवरके पास उन्हें अनेक संतोंके दर्शन हुए, काकभुशुण्डिजीसे मिले और कैलासकी प्रदक्षिणा भी की। इस प्रकार अपनी ससुरालसे चलकर तीर्थ-यात्रा करते हुए काशी पहुँचनेमें उन्हें पर्याप्त समय लग गया।

वे काशीमें प्रह्लाद घाटपर प्रतिदिन वाल्मीकिरामायणकी कथा सुनने जाया करते थे। वहाँ एक विचित्र घटना घटी। तुलसीदासजी प्रतिदिन शौच होने जंगलमें जाते, लौटते समय जो अवशेष जल होता, उसे एक पीपलके वृक्षके नीचे गिरा देते। उस पीपलपर एक प्रेत रहता था। उस जलसे प्रेतकी प्यास मिट जाती। जब प्रेतको मालूम हुआ कि ये महात्मा हैं, तब एक दिन प्रत्यक्ष होकर उसने कहा कि 'तुम्हारी जो इच्छा हो कहो, मैं पूर्ण करूँगा।' तुलसीदासजीने कहा कि 'मैं भगवान् रामका दर्शन करना चाहता हूँ।' प्रेतने कुछ सोचकर कहा कि कथा सुननेके लिये प्रतिदिन प्रायः कोढ़ीके वेशमें श्रीहनुमान्जी आते हैं। वे सबसे पहले आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं। समय देखकर उनके चरण पकड़ लेना और हठ करके भगवान्का दर्शन करानेको कहना। तुलसीदासजीने वैसा ही किया। श्रीहनुमान्जीने कहा कि 'तुम्हें चित्रकूटमें भगवान्के दर्शन होंगे।' तुलसीदासजीने चित्रकूटकी यात्रा की।

चित्रकूट पहुँचकर वे मन्दाकिनीके तटपर रामघाटपर ठहर गये। वे प्रतिदिन मन्दाकिनीमें स्नान करते, मन्दिरमें भगवान्के दर्शन करते, रामायणका पाठ करते और निरन्तर भगवान्के नामका जप करते। एक दिन वे प्रदक्षिणा करने गये। मार्गमें उन्हें अनूपरूप भूप-शिरोमणि भगवान् रामके दर्शन हुए। उन्होंने देखा कि दो बड़े ही सुन्दर राजकुमार दो घोड़ोंपर सवार होकर हाथमें धनुष-बाण लिये शिकार खेलने जा रहे हैं। उन्हें देखकर तुलसीदास मुग्ध हो गये। परंतु ये कौन हैं—यह नहीं जान सके। पीछेसे श्रीहनुमान्जीने प्रकट होकर सारा भेद बताया। वे पश्चात्ताप करने लगे, उनका हृदय उत्सुकतासे भर गया। श्रीहनुमान्जीने उन्हें धैर्य दिया कि प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे। तब कहीं जाकर तुलसीदासजीको संतोष हुआ।

संवत् १६०७, मौनी अमावास्या, बुधवारकी बात है। प्रातः-काल गोस्वामी तुलसीदासजी पूजाके लिये चन्दन घिस रहे थे। तब भगवान् राम और लक्ष्मणने आकर उनसे तिलक लगानेको कहा। श्रीहनुमान्जीने सोचा कि शायद इस बार भी तुलसीदास न पहचानें, इसलिये उन्होंने तोतेका वेष धारण करके चेतावनीका दोहा पढ़ा—

चित्रकूट के घाट पर भइ संतन की भीर।
तुलसिदास चंदन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

इस दोहेको सुनकर तुलसीदास अतृप्त नेत्रोंसे भगवान् रामकी मनमोहिनी छबिसुधाका पान करने लगे। देहकी सुध भूल गयी, आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली। अब चन्दन कौन घिसे! भगवान्ने पुनः कहा कि—'बाबा! मुझे चन्दन दो!' परंतु सुनता कौन? वे बेसुध पड़े थे। भगवान्ने अपने हाथसे चन्दन लेकर अपने एवं तुलसीदासके ललाटमें तिलक किया और अन्तर्धान हो गये। तुलसीदासजी पानी-विहीन मछलीकी भाँति विरह-वेदनामें तड़फड़ाने लगे। सारा दिन बीत गया, उन्हें पता नहीं चला। रातमें आकर श्रीहनुमान्जीने जगाया और उनकी दशा सुधार दी। उन दिनों तुलसीदासजीकी बड़ी ख्याति हो गयी थी। उनके द्वारा कई चमत्कारकी घटनाएँ भी घट गयीं, जिनसे उनकी प्रतिष्ठा बढ़ गयी और बहुत-से लोग उनके दर्शनको आने लगे।

संवत् १६१६ में जब तुलसीदासजी कामदगिरिके पास निवास कर रहे थे, तब गो॰ श्रीगोकुलनाथजीकी प्रेरणासे श्रीसूरदासजी उनके पास आये। उन्होंने तुलसीदासजीको अपना सूरसागर दिखाया और दो पद गाकर सुनाये, तुलसीदासजीने पुस्तक उठाकर हृदयसे लगा ली और भगवान् श्रीकृष्णकी बड़ी महिमा गायी। सूरदासजीका हाथ पकड़कर उन्हें संतुष्ट किया और श्रीगोकुलनाथजीको एक पत्र लिख दिया। सात दिन सत्संग करके सूरदासजी लौट गये।

उन्हीं दिनों मेवाड़से मीराबाईका पत्र लेकर सुखपाल नामक ब्राह्मण आया था। उनकी चिट्ठी पढ़कर तुलसीदासने यह पद बनाकर उत्तर दिया कि सब छोड़कर भगवान्का भजन करना ही उत्तम है—

जाके प्रिय न राम बैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही ।
तज्यो पिता प्रह्लाद, बिभीषण बंधु, भरत महतारी ॥
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनितन्हि, भये मुद मंगलकारी ॥
नाते नेह रामके मनियत सुहृद सुसेब्य जहाँ लौं ।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह रामपद, एतो मतो हमारो ॥

तत्पश्चात् गोस्वामीजी काशी पहुँचे और वहाँ प्रह्लाद-घाटपर एक ब्राह्मणके घर निवास किया। वहाँ उनकी कवित्वशक्ति स्फुरित हो गयी और वह संस्कृतमें रचना करने लगे। यह एक अद्भुत बात थी कि दिनमें वे जितनी रचना करते, रातमें सब-की-सब लुप्त हो जाती। यह घटना रोज घटती, परंतु वे समझ नहीं पाते थे कि मुझको क्या करना चाहिये।

आठवें दिन तुलसीदासजीको स्वप्न हुआ। भगवान् शंकरने कहा कि तुम अपनी भाषामें काव्य-रचना करो। नींद उचट गयी, तुलसीदासजी उठकर बैठ गये। उनके हृदयमें स्वप्नकी आवाज गूँजने लगी। उसी समय भगवान् शिव और माता पार्वती दोनों ही उनके सामने प्रकट हुए। तुलसीदासने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। शिवजीने कहा कि 'भैया ! अपनी मातृभाषामें काव्य-निर्माण करो, संस्कृतके पचड़ेमें मत पड़ो। जिससे सबका कल्याण हो, वही करना चाहिये। बिना सोचे-विचारे अनुकरण करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम जाकर अयोध्यामें रहो और वहीं काव्य-रचना करो। मेरे आशीर्वादसे तुम्हारी कविता सामवेदके समान सफल होगी।' इतना कहकर गौरीशंकर अन्तर्धान हो गये और उनकी कृपा एवं अपने सौभाग्यकी प्रशंसा करते हुए तुलसीदासजी अयोध्या पहुँचे।

तुलसीदासजी वहीं रहने लगे। एक समय दूध पीते थे। भगवान्का भरोसा था। संसारकी चिन्ता उनका स्पर्श नहीं कर पाती थी। कुछ दिन यों ही बीते। संवत् १६३१ आ गया। उस वर्ष चैत्र शुक्ल रामनवमीके दिन प्रायः वैसा ही योग जुट गया था, जैसा त्रेतामें रामजन्मके दिन था। उस दिन प्रातःकाल श्रीहनुमान्जीने प्रकट होकर तुलसीदासजीका अभिषेक किया। शिव, पार्वती, गणेश, सरस्वती, नारद और शेषने आशीर्वाद दिये और सबकी कृपा एवं आज्ञा प्राप्त करके श्रीतुलसीदासजीने श्रीरामचरितमानसकी रचना प्रारम्भ की। दो वर्ष सात महीने छब्बीस दिनमें श्रीरामचरितमानसकी रचना समाप्त हुई। संवत् १६३३, मार्गशीर्ष मासके शुक्लपक्षमें रामविवाहके दिन सातों काण्ड पूर्ण हो गये।

यह कथा पाखंडियोंके छल-प्रपञ्चको मिटानेवाली है। पवित्र सात्त्विक धर्मका प्रचार करनेवाली है। कलिकालके पाप-कलापका नाश करनेवाली है। भगवत्प्रेमकी छटा छिटकानेवाली है। संतोंके चित्तमें भगवत्प्रेमकी लहर पैदा करनेवाली है। भगवत्प्रेम श्रीशिवजीकी कृपाके अधीन है, यह रहस्य बतानेवाली है। इस दिव्य ग्रन्थकी समाप्ति मंगलवारको हुई, उसी दिन इसपर लिखा गया कि **'शुभमिति हरिः ओम् तत्सत्।'** देवताओंने जय-जयकारकी ध्वनि की और फूल बरसाये। श्रीतुलसीदासजीको वरदान दिये, रामायणकी प्रशंसा की। श्रीरामचरितमानस क्या है, इस बातको सभी अपने-अपने भावके अनुसार समझते एवं ग्रहण करते हैं। परंतु अब भी उसकी वास्तविक महिमाका स्पर्श विरले ही पुरुष कर सके होंगे।

मनुष्योंमें सबसे प्रथम यह ग्रन्थ सुननेका सौभाग्य प्राप्त हुआ मिथिलाके परम संत श्रीरूपारुण स्वामीजीको। वे निरन्तर विदेह जनकके भावमें ही मग्न रहते थे और श्रीरामजीको अपना जामाता समझकर प्रेम करते थे। गोस्वामीजीने उन्हींको सबसे अच्छा अधिकारी समझा और श्रीरामचरितमानस सुनाया। उसके बाद बहुतोंने रामायणकी कथा सुनी। उन्हीं दिनों भगवान्की आज्ञा हुई कि तुम काशी जाओ और श्रीतुलसीदासजीने वहाँसे प्रस्थान किया तथा वे काशी आकर रहने लगे।

मानसके प्रचारसे काशीके संस्कृत-पण्डितोंके मनमें बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने सोचा हमारा तो सब मान-माहात्म्य ही खो जायगा। वे दल बाँधकर गोस्वामीजीकी निन्दा करने लगे और उनकी पुस्तकको ही नष्ट कर देनेका उद्योग करने लगे। पुस्तक चुरानेके लिये दो चोर भेजे गये। उन्होंने जाकर देखा कि तुलसीदासकी कुटीके आसपास दो वीर हाथमें धनुष-बाण लेकर पहरा दे रहे हैं। वे बड़े ही सुन्दर श्याम और गौर वर्णके थे। रातभर उनकी सावधानी देखकर चोर बड़े प्रभावित हुए और उनके दर्शनसे उनकी बुद्धि भी शुद्ध हो गयी। उन्होंने श्रीतुलसीदासजीके पास जाकर सब वृत्तान्त कहा और पूछा कि आपके ये पहरेदार कौन हैं ? तुलसीदासजीकी आँखोंसे आँसूकी धारा बह चली, वाणी गद्गद हो गयी। अपने प्रभुके कृपा-समुद्रमें वे डूबने-उतराने लगे। उन्होंने अपनेको सँभालकर कहा कि 'तुमलोग बड़े भाग्यवान् हो, धन्य हो कि तुम्हें भगवान्के दर्शन प्राप्त हुए।' उन चोरोंने अपना रोजगार छोड़ दिया और वे भजनमें लग गये। तुलसीदासजीने कुटीकी सब वस्तुएँ लुटा दीं, मूल पुस्तक यत्नके साथ अपने मित्र टोडरमलके घर रख दीं। श्रीगोस्वामीजीने एक दूसरी प्रति लिखी। उसीके

आधारपर पुस्तककी प्रतिलिपियाँ तैयार होने लगीं। दिन-दूना, रात-चौगुना प्रचार होने लगा। पण्डितोंका दुःख बढ़ने लगा। उन्होंने प्रसिद्ध तान्त्रिक वटेश्वर मिश्रसे प्रार्थना की कि हमलोगोंको बड़ी पीड़ा हो रही है, किसी प्रकार तुलसीदासजीका अनिष्ट होना चाहिये। उन्होंने मारण-प्रयोग किया और प्रेरणा करके भैरवको भेजा। भैरव तुलसीदासके आश्रमपर गये, वहाँ हनुमान्‌जीको तुलसीदासकी रक्षा करते देखकर वे भयभीत होकर लौट आये, मारणका प्रयोग करनेवाले वटेश्वर मिश्रके प्राणोंपर ही आ बीती।

परंतु अब भी पण्डितोंका समाधान नहीं हुआ। उन्होंने श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीके पास जाकर कहा कि भगवान् शिवने उनकी पुस्तकपर सही तो कर दी है, परंतु यह किस श्रेणीकी पुस्तक है, यह बात नहीं बतलायी है। अब आप उसे देखिये और बतलाइये कि वह किसके समकक्ष है। श्रीमधुसूदन सरस्वतीजीने रामायणकी पुस्तक मँगायी। उसका आद्योपान्त अवलोकन किया और उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने उस पुस्तकपर सम्मति लिख दी—

आनन्दकानने ह्यस्मिन् जङ्गमस्तुलसीतरुः।
कवितामञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥

टोडरमलने गोस्वामी तुलसीदासजीको रहनेके लिये अस्सीघाटपर स्थान और एक मन्दिर बनवा दिया। श्रीगोस्वामीजी वहीं रहने लगे।

एक बार गोस्वामीजीने जनकपुरकी यात्रा की। रास्तेमें बहुत-से लोगोंका कल्याण किया। अनेकों चमत्कार प्रकट हुए। एक स्थानपर धनीदासने आकर कहा कि 'कल मेरे प्राण जानेवाले हैं, मैंने यह कहकर कि भगवान् स्वयं भोजन कर रहे हैं चूहेको प्रसाद खिला दिया। यहाँके जमींदार रघुनाथसिंहको मेरा अपराध मालूम हो गया। उन्होंने कहा है कि यदि कल मेरे सामने भगवान् भोजन नहीं करेंगे तो मैं तुम्हारा वध कर डालूँगा। अब आप मेरी रक्षा कीजिये।' गोस्वामीजीने उन्हें ढाढ़स बँधाया। धनीदासने रसोई बनायी और जमींदारके सामने आकर भगवान्‌ने भोजन किया। गोस्वामीजीने भगवान्‌की महिमा गायी, जमींदार उन्हें अपने घर ले गया। उसके गाँवका नाम बदलकर रघुनाथपुर रख दिया। वहाँसे चलकर विचरते-विचरते वे हरिहर-क्षेत्र पहुँचे और मिथिला पास ही रह गयी। श्रीजनकनन्दिनी श्रीजानकीजी एक बालिकाका वेष धारण करके आयीं और गोस्वामीजीको खीर खिलाया। जब गोस्वामीजीको यह बात ज्ञात हुई तब वे उनकी अहैतुकी कृपाका अनुभव कर भाव-विह्वल हो गये।

आगे चलनेपर ब्राह्मणोंने उनके पास आकर कहा कि हमलोग बड़ी विपत्तिमें हैं। यहाँके नवाबने हमारी बारहों गाँवोंकी वृत्ति छीन ली है।

गोस्वामीजीने श्रीहनुमान्‌जीका स्मरण किया और उन्होंने दण्ड देकर उनकी वृत्ति वापस करा दी। संवत् १६४० में मिथिलासे काशी आये और वहाँ दोहावलीकी रचना की। संवत् १६४२, फाल्गुन शुक्ल पञ्चमीको पार्वतीमंगलकी रचना प्रारम्भ की—

जय संवत् फागुन सुदि पाँचैं गुरु दिनु।
अस्विनि बिरचेउँ मंगल सुनि सुख छिनु छिनु॥

(पार्वतीमंगल ५)

एक बार काशीमें महामारीका प्रकोप हुआ। सब लोगोंने बड़ी दीनतासे प्रार्थना की कि हे स्वामिन्! आप हमलोगोंकी प्रार्थना सुनिये। हमलोग बड़े निर्बल हैं। हमारी रक्षा भगवान्‌के सेवक या स्वयं भगवान् ही कर सकते हैं। उनकी दीनता देखकर गोस्वामीजीका कोमल चित्त द्रवित हो गया और उन्होंने कवित्त बनाकर भगवान्‌से प्रार्थना की। भगवान्‌की कृपासे महामारी शान्त हो गयी, सब लोग सुखी हो गये।

एक दिन महाकवि केशवदास तुलसीदासजीसे मिलने आये। बाहरसे उन्होंने सूचना भेजी कि मैं मिलना चाहता हूँ। गोस्वामीजीने कहा कि 'केशव प्राकृत कवि हैं उन्हें आने दो!'

यह बात केशवके कानोंमें पड़ी। वे बिना मिले ही लौट गये। अपनी तुच्छता उनकी समझमें आ गयी और वहाँके सेवकके पुकारनेपर उन्होंने कहा कि मैं कल आऊँगा। घर जाकर राम-चन्द्रिकाकी रचना की और फिर उसके बाद गोस्वामीजीके पास गये। दोनों खूब हृदयसे मिले। प्रेम-भक्तिका आनन्द छा गया।

एक बार आदिल शाही राज्यके थानाध्यक्ष दत्तात्रेय नामके ब्राह्मण गोस्वामीजीके पास आये। उनके प्रसाद माँगनेपर गोस्वामीजीने अपनी हस्तलिखित दोहावली रामायणकी पोथी दे दी। उन दिनों जिसपर विपत्ति आती, वही गोस्वामीजीके पास आता और गोस्वामीजी उसकी रक्षा करते। नीमसारके वनखण्डीजी-के पास तीर्थयात्रा करता हुआ एक प्रेत आया। गोस्वामीजीके दर्शन-मात्रसे ही वह प्रेत-योनिसे मुक्त हो गया और दिव्य रूप धारण करके भगवान्‌के धाममें चला गया। वनखण्डीजीकी प्रार्थनासे गोस्वामीजीने तीर्थयात्रा की। अयोध्यामें पहुँचकर उन्होंने गायकको (राम) गीतावली दे दी। वहाँसे वे अनेकों तीर्थोंमें गये, कहीं दुखियोंकी रक्षा करते, कहीं सत्संगसे साधुओंको आनन्दित करते, कहीं भगवान्‌की कथा कहते। उस यात्रामें गोस्वामीजीने कितने लोगोंका लौकिक, पारलौकिक और पारमार्थिक कल्याण-साधन

किया, यह वर्णनातीत है।

नीमसार पहुँचकर गोस्वामीजीने वनखण्डीजीकी इच्छाके अनुसार सब तीर्थ-स्थानोंको ढूँढ़ निकाला और उनकी स्थापना की। उस समय संवत् १६४९ था। वहाँसे अनेक स्थानोंमें होते हुए वृन्दावन पहुँचे। वहाँ रामघाटपर ठहरे। चारों ओर धूम मच गयी। लोग दर्शनके लिये आने लगे। गोस्वामीजी नाभादासजीके पास गये। उन्होंने बड़ा सम्मान किया। फिर उन्हींके साथ भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये श्रीमदनमोहनजीके दर्शन करने गये। तुलसीदासको राम-उपासक जानकर श्रीमदनमोहनजीने धनुष-बाण धारण करके उन्हें रामरूपमें दर्शन दिया। भगवान् बड़े ही भक्तवत्सल हैं, उनकी लीला ऐसी ही होती है। बरसाने भरमें यह बात फैल गयी, गोस्वामीजीके स्थानपर बड़ी भीड़ हो गयी। कुछ कृष्ण-उपासकोंके मनमें द्वेष-भाव आ गया, वे धनुष-बाण धारण करनेपर शंका करने लगे। उन्हें गोस्वामीजीने समझाया कि भैया ! रामने अपने सेवकोंका प्रण कब नहीं रखा है ? वे सर्वदा अपने भक्तोंकी इच्छा पूर्ण करते हैं।

कुछ लोग दक्षिण देशसे भगवान् रामकी मूर्ति लेकर स्थापना करनेके लिये श्रीअवध जा रहे थे। यमुना-तटपर उन्होंने विश्राम किया। उदय नामके ब्राह्मण वह मूर्ति देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने चाहा कि इस मूर्तिकी स्थापना यहींपर हो जाय। गोस्वामीजीसे प्रार्थना की। दूसरे दिन जब उन लोगोंने उस प्रतिमाको उठाकर ले जाना चाहा तब वह उठी ही नहीं। तब उसकी स्थापना वहीं कर दी। गोस्वामीजीने उनका नाम कौसल्यानन्दन रख दिया। श्रीगोस्वामीजीके विद्या पढ़नेके समयके गुरुभाई नन्ददासजी कनौजिया यहीं मिले। उनके साथ भगवान्‌का दर्शन एवं प्रसाद पाकर भक्तोंको आनन्दित कर गोस्वामीजीने चित्रकूटकी यात्रा की।

दिल्लीके बादशाहने अपना आदमी भेजकर गोस्वामीजीको बुलवाया। जब गोस्वामीजी चित्रकूटसे चलकर ओरछा होकर दिल्ली जाने लगे, तब ओरछेके पास रातमें केशवदास प्रेतके रूपमें मिले। गोस्वामीजीने बिना प्रयास ही उनका उद्धार किया और वे विमानपर चढ़कर स्वर्ग गये। चरवारीके ठाकुरकी लड़की जो कि बहुत ही सुन्दरी थी, उसका विवाह एक स्त्रीके साथ हो गया था। उस स्त्रीकी माताने संतान होते ही यह घोषणा कर दी थी कि मेरे पुत्र हुआ है। परंतु अब तो विवाह हो चुका था, लोग करते ही क्या ? जब गोस्वामीजी उधरसे निकले, तब लोगोंने उन्हें घेर लिया और प्रार्थना की कि इस कन्याकी रक्षा कीजिये। गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसका नवाह पाठ किया और वह स्त्रीसे पुरुष बन गयी। यह देखकर गोस्वामीजीका शरीर पुलकित हो गया और उनके मुँहसे अतर्कित ही 'जय जय सीताराम' निकल गया।

गोस्वामीजी दिल्ली पहुँचे। बादशाहने दरबारमें बुलाकर कहा कि कोई चमत्कार दिखाओ। गोस्वामीजीने कहा कि मुझे कोई चमत्कार मालूम नहीं। बादशाहने खीझकर उन्हें कैद कर लिया। जेलमें जाते ही—**'ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले।'** पदकी रचना की। फिर क्या था, वानरोंने बड़ा उत्पात किया। महलमें कोहराम मच गया। बादशाहको बड़ी चोट आयी, फिर तो तुरंत गोस्वामीजी जेलसे छोड़ दिये गये और बड़ा अनुनय-विनय करके उनसे अपराध क्षमा कराया गया। बादशाहने बड़े सम्मानके साथ उन्हें बिदा किया।

दिल्लीसे चलकर अनेक प्राणियोंका उद्धार करते हुए, लोगों-को अपने धर्ममें स्थिर और भगवान्‌की ओर बढ़ाते हुए वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ एक भक्त भजन गाया करते थे। उनके भजनमें कुछ अशुद्धि थी, गोस्वामीजीने उसे सुधारनेको कहा। वे सुधार न सके, इससे उनके भजनमें विघ्न पड़ गया। स्वप्नमें गोस्वामीजीसे भगवान्‌ने कहा कि 'तुम उसके भजनमें शुद्ध-अशुद्धका विचार मत करो। वह जैसे भजन करता है वैसे ही करने दो !' गोस्वामीजीने जाकर उससे कहा कि 'तुम जैसे गाते थे, वैसे ही गाया करो।' गोस्वामीजीने उनके मुखसे भगवान्‌की बाल-लीला सुनी। बड़ा आनन्द हुआ। उन्हें पीताम्बर देकर गोस्वामीजीने सम्मान किया।

मुरारीदेवसे भेंट करके मलूकदासके साथ गोस्वामीजी काशी आये। काशीमें उन्होंने क्षेत्र-संन्यास ले लिया। शरीर वृद्ध हो गया था, फिर भी वे माघके महीनेमें सूर्योदयसे पूर्व गङ्गामें खड़े होकर मन्त्र-जप किया करते थे। रोएँ खड़े होते, शरीर काँपता होता, परंतु उन्हें इसकी तनिक भी परवाह नहीं। एक दिन गङ्गा-स्नान करके निकलते समय उनकी धोतीका दो बूँद छींटा एक वेश्यापर पड़ गया। उसकी मनोदशा ही बदल गयी। वह बहुत देरतक उन्हें एकटक देखती रही, पीछे उसके मनमें बड़ा निर्वेद हुआ। उसकी आँखोंके सामने नरकके अनेकों दृश्य आ गये। उसने सब बखेड़ोंसे पिण्ड छुड़ा लिया और उपदेश लेकर भगवान्‌के गुणोंका गायन करने लगी। गङ्गा-पार हरिदत्त नामके एक ब्राह्मण रहते थे। बहुत ही दरिद्र थे, उन्होंने गोस्वामीजीसे अपना दुःख निवेदन किया। गोस्वामीजीने गङ्गा मातासे प्रार्थना की, उन्होंने उसको बहुत-सी जमीन देकर उसकी विपत्ति नष्ट कर दी।

एक भुलई नामका कलवार था। वह भक्ति-पथ और गोस्वामीजीकी निन्दा किया करता था। उसकी मृत्यु हो गयी। सब

लोग उसे टिकठीपर सुलाकर श्मशान ले गये। उसकी स्त्री रोती हुई आयी, उसने गोस्वामीजीको प्रणाम किया। गोस्वामीजीके मुँहसे निकल गया सौभाग्यवती होओ! जब उसने अपने पतिकी दशा बतलायी, तब तुलसीदासजीने उसके शवको अपने पास मँगवा लिया और मुँहमें चरणामृत देकर उसे जीवित कर दिया। उसी दिनसे गोस्वामीजीने नियम ले लिया और बाहर बैठना छोड़ दिया।

तीन बालक बड़े ही पुण्यात्मा थे। वे प्रतिदिन गोस्वामीजीके दर्शनके लिये आते। गोस्वामीजी उनका प्रेम पहचानते थे। वे केवल उन्हें ही दर्शन देनेके लिये बाहर निकलते और फिर अंदर बैठ जाते। जिन्हें दर्शन नहीं मिलता, वे इस बातसे अप्रसन्न थे। गोस्वामीजीको पक्षपाती बतलाते। एक दिन गोस्वामीजीने उनका महत्त्व सब लोगोंपर प्रकट किया। उनके आनेपर भी वे बाहर नहीं निकले। गोस्वामीजीका दर्शन न मिलनेपर उन तीनोंने अपने शरीर त्याग दिये। गोस्वामीजी बाहर निकले और सबके सामने भगवान्‌का चरणामृत पिलाकर उन्हें जीवन-दान दिया।

संवत् १६६९ वैशाख शुक्लमें टोडरमलजीका देहान्त हुआ। उसके पाँच महीने बाद उनके दोनों लड़कोंको उनकी धन-सम्पत्ति गोस्वामीजीने बाँट दी। इसके बाद छोटी-मोटी और कई रचनाएँ कीं। बाहु-पीड़ा होनेपर हनुमान-बाहुकका निर्माण किया। पहलेके ग्रन्थोंको दुहराया, दूसरोंसे लिखवाया। संवत् १६७० बीतनेपर जहाँगीर आया, वह बहुत-सी जमीन और धन देना चाहता था। परंतु गोस्वामीजीने ली नहीं। एक दिन बीरबलकी चर्चा हुई, उनकी बुद्धि और वाक्‌पटुताकी प्रशंसा की गयी। गोस्वामीजीने कहा कि 'खेद है कि इतनी बुद्धि पाकर उन्होंने भगवान्‌का भजन नहीं किया।'

एक दिन अयोध्याका भंगी आया। गोस्वामीजीने भगवान्‌का स्वरूप समझकर अपने हृदयसे लगा लिया। गिरनारके बहुत-से सिद्ध आकाश-मार्गसे आये। तुलसीदासजीका दर्शन करके बड़े आनन्दित हुए। उन्होंने बड़े प्रेमसे पूछा कि तुम कलियुगमें रहते हो फिर भी कामसे प्रभावित नहीं होते, इसका क्या कारण है? यह योगकी शक्ति है अथवा भक्तिका बल है। गोस्वामीजीने कहा कि 'मुझे न भक्तिका बल है, न ज्ञानका बल है, न योगका बल है। मुझे तो केवल भगवान्‌के नामका भरोसा है।' गोस्वामीजीका उत्तर सुनकर वे सिद्ध बहुत प्रसन्न हुए। उनसे आज्ञा लेकर गिरनार चले गये।

गोस्वामीजीके पास चन्द्रमणि नामका एक भाट आया। उसने उनके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना की कि 'मेरी आधी उमर विषयोंके भोगमें ही बीत गयी। अब जो बची है, वह भी वैसे ही न बीत जाय। इन्द्रियोंके कारण मेरी बड़ी हँसी हुई। कहीं अब भी न हो! मेरे मनमें काम-क्रोधादि बड़े-बड़े खल रहते हैं। कहीं अब भी वे न रह जायँ? गोस्वामीजी महाराज! अब मुझे भगवान्‌के चरणोंमें ही रखिये! काशीसे मत हटाइये।' गोस्वामीजीने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। बड़ी प्रसन्नतासे कहा कि 'तुम यहीं हमेशा रहो और भगवान्‌का गुणगान करो!'

गोस्वामीजीके पास चन्द्र नामका एक हत्यारा ब्राह्मण आया। दूर खड़ा होकर वह राम-राम कहने लगा। अपने इष्टदेवका नाम सुनकर तुलसीदास आनन्द-मग्न हो गये और उसके पास जाकर उसे हृदयसे लगा लिया। आदरसे भोजन कराया और बड़ी प्रसन्नतासे कहा—

तुलसी जाके बदन ते, धोखेहुँ निकसत राम।
ताके पग की पगतरी, मेरे तन को चाम॥
(वैराग्य-संदीपनी)

यह बात बात-की-बातमें सारे नगरमें फैल गयी। संध्या होते-होते बड़े-बड़े ज्ञानी, ध्यानी, विद्वान् इकट्ठे हो गये। उन लोगोंने गोस्वामीजीसे पूछा 'यह हत्यारा कैसे शुद्ध हो गया?' गोस्वामीजीने कहा कि वेदोंमें, पुराणोंमें, नाम-महिमा लिखी है, उसे पढ़कर देख लीजिये। उन लोगोंने कहा कि लिखा तो है, परंतु हमें विश्वास नहीं होता। आप कोई ऐसा उपाय करें, जिससे हमें विश्वास हो जाय। गोस्वामीजीने उसके हाथोंसे भगवान् शिवके नन्दीको भोजन कराया, यह देखकर सबको विश्वास हो गया। चारों ओर जय-जयकी ध्वनि होने लगी। निन्दकोंने गोस्वामीजीके पैरोंपर पड़कर क्षमा माँगी।

वह ब्राह्मण दिनभर गोस्वामीजीके स्थानपर बैठकर लोभवश राम-राम रटता। संध्याके समय श्रीहनुमान्‌जी उसे धन दे देते थे। उसने भगवान् रामके दर्शनके लिये बड़ा हठ किया। गोस्वामीजीने कहा—'पेड़पर चढ़कर त्रिशूलपर कूद पड़ो। भगवान्‌के दर्शन हो जायँगे।' वह त्रिशूल गाड़कर वृक्षपर चढ़ा, परंतु कूदनेकी हिम्मत नहीं पड़ी। उतर आया। एक पछाहीं घुड़सवार उधरसे जा रहा था, उसने सब बातें पूछ लीं और पेड़पर चढ़कर त्रिशूलपर कूद पड़ा। उसे भगवान्‌के दर्शन प्राप्त हो गये। हनुमान्‌जीने उसे तत्त्वज्ञानका उपदेश किया।

गोस्वामीजीका अन्तिम समय आ गया। उन्होंने अपनी दशा देखकर लोगोंसे कहा कि 'श्रीरामचन्द्रजीके चरित्रका वर्णन करके अब मैं मौन होना चाहता हूँ। आप लोग तुलसीदासके मुखमें अब तुलसी डालें।' संवत् १६८० श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवारको गङ्गाके तटपर अस्सी घाटपर गोस्वामीजीने राम-राम कहते हुए

अपने शरीरका परित्याग किया[१]।

गोस्वामीजी अमर हैं, वे अब भी श्रीरामचरितमानसके रूपमें लोगोंके बीचमें विद्यमान हैं। अनन्त कालतक हमलोगोंमें ही रहकर हमलोगोंका कल्याण करेंगे। भक्त भगवान्से पृथक् नहीं होते। भक्त ही भगवान्के मूर्त स्वरूप हैं, वे कृपा करके हमारे हृदयको शुद्ध करें और भगवान्के चरणोंमें निष्कपट प्रेम दें।

यह संक्षिप्त जीवनी गोसाईंजीके समकालीन श्रीबेनीमाधवदासजीद्वारा रचित 'मूल गोसाईं-चरित' नामक पोथीके आधारपर लिखी गयी है। कुछ सज्जनोंने इस पोथीको अप्रामाणिक माना है, परंतु महात्मा बालकरामजी विनायक, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदासजी, स्वर्गीय श्रीरामदासजी गौड़ आदि महानुभावोंने इसको अत्यन्त विश्वसनीय और प्रामाणिक माना है। बेनीमाधवदासजीकी पहली भेंट श्रीगोसाईंजीसे संवत् १६०९ और १६१६ के बीच हुई थी। गोसाईंजी महाराज १६८० में साकेतवासी हुए थे। इतने लम्बे परिचयवाले सज्जनकी लिखी जीवनीको अप्रामाणिक कैसे कहा जा सकता है? इसके सम्बन्धमें स्व० गौड़जीने लिखा था—

'मूल गोसाईं-चरितमें वे सभी बातें मौजूद हैं, जिनका अन्तःसाक्ष्य गोस्वामीजीकी रचनाओंसे मिलता है।' उन बातोंको यहाँ दोहरानेसे लेखका कलेवर बहुत बढ़ जाता है। उन विषयोंपर सुभीतेसे और लेख लिखे जा सकते हैं। यहाँ हम इतना ही कहना चाहते हैं कि जो बातें अप्राकृत मालूम होती हैं, उनके समान बातें भक्तोंकी कथाओंमें, संसारके सभी देशोंके साहित्यमें पायी जाती हैं। जो बातें घटना-सम्बन्धी असंगति लिये हुए जान पड़ती हैं, उनकी सत्यताकी परख उन कसौटियोंपर नहीं कसी जा सकती, जिनको अभी इतिहास स्वयं विश्वासयोग्य नहीं ठहरा पाया है। लिखा है गोसाईंजीसे चित्सुखाचार्य मिले थे, परंतु चित्सुखाचार्य कब जन्मे, कहाँ जन्मे—इसका ही निश्चय नहीं है। मूल गोसाईं-चरितसे उनके समयका कुछ पता लग जाता है। मीराबाईके देहान्त-वर्षके सम्बन्धमें स्वयं झगड़ा है तो गोस्वामीजीसे उनके पत्र-व्यवहारकी बात क्यों संदिग्ध मानी जाय? उसीको क्यों न प्रमाण मानकर यह सिद्ध किया जाय कि मीराबाईकी मृत्यु १६२० के लगभग हुई, जिससे कि उदयपुर-दरबार और भारतेन्दुजीकी बातकी भी पुष्टि होती है। मीराकी ससुरालवालोंके निकट तो मीरा तभी मर गयीं, जब उन्होंने गृहस्थी छोड़कर वैराग्य लिया। इस प्रकार बेनीमाधवदासजी अपने समयकी जो बात लिखते हैं, वे क्यों न स्वयं प्रमाणकी तरह ग्रहण की जायँ? बजाय इसके कि हम मूल गोसाईं-चरितकी बातोंको इतिहासकी संदिग्ध सामग्रीसे परखें, क्यों न हम उस संदिग्ध सामग्रीकी ही मूल गोसाईं-चरितसे जाँच करें?

बेनीमाधवदासजी गोसाईंजीके शिष्य थे और श्रद्धालु भक्त थे। सम्भव है कि गुरुके सम्बन्धमें अपने विश्वासके अनुसार कुछ सुनी-सुनायी बातें भी लिखी हों। अच्छे-से-अच्छा लेखक अनेक बातोंमें अपनी स्मृति और धारणापर अत्यधिक विश्वास करके नेकनीयतीके साथ ऐतिहासिक भूलें कर सकता है। मूल गोसाईं-चरितमें तिथियोंके देनेमें जो सावधानी बेनीमाधवदासजीने बरती है, उससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि बेनीमाधवदासजीने और घटनाओंके लिखनेमें भी साधारणतया सावधानी बरती होगी। उनके वर्णनका मेल यदि किसी और लेखकसे न मिले तो हमें बेनीमाधवदासपर अविश्वास करनेकी उतावली नहीं करनी चाहिये बल्कि सत्यान्वेषणमें और अधिक प्रवृत्त होना चाहिये।

सिव अज सुक सनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद॥
सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥

१-संवत् सोलह सै असी, असी गंगके तीर। सावन स्यामा तीज सनि तुलसी तज्यो शरीर॥

एक दोहा यह भी प्रसिद्ध है—

संवत् सोलह सै असी असी गंगके तीर। श्रावण शुक्ला सत्तमी तुलसी तज्यो सरीर॥

इसी दोहेको देखकर कुछ सज्जनोंद्वारा यह शंका की जाती है कि जब श्रावण शुक्ला सप्तमी गोस्वामीजीके परमधाम पधारनेकी तिथि है, तब इस दिन जयन्ती क्यों मनायी जाती है? उन सज्जनोंको यह जानना चाहिये कि गोस्वामीजीकी जन्मतिथि तो श्रावण शुक्ला सप्तमी उपर्युक्त चरित्रमें निश्चित है ही। निधन-तिथिमें अन्तर है। सम्भव है जन्मतिथिके अनुसार निधन-तिथिके लिखनेमें श्रीबेनीमाधवजी महाराजकी भूल रही हो! दोहेमें भी लोग वैसा ही कहने लगे हों। अथवा श्रावण शुक्ला सप्तमीको ही उनका परमधाम-गमन हुआ हो; श्रीबेनीमाधवजीके कथनानुसार निधनतिथि श्रावण कृष्ण तीज ही होनी चाहिये।

परब्रह्मस्वरूप सीता-रामका वेदमूलक लोकोत्तर माहात्म्य

(ब्रह्मलीन अनन्तश्री स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज)

सौन्दर्यसारसर्वस्वं माधुर्यगुणबृंहितम्।
ब्रह्मैकमद्वितीयं तत् तत्त्वमेकं द्विधा कृतम्॥
वेदादिशास्त्रसंवेद्यं सीतारामस्वरूपकम्।
सरहस्यं सतां सेव्यमद्भुतं प्रणमाम्यहम्॥

श्रीसीता-रामका अनुपम ऐश्वर्य

श्रीसीता और श्रीराम अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके अधिष्ठान स्वप्रकाश परब्रह्मस्वरूप हैं। वे ही सूर्य, चन्द्र, अग्नि आदि बाह्य ज्योतियों तथा श्रोत्र, नेत्र, मन, बुद्धि, चित्त, जीव, दैवत आदि आन्तर ज्योतियोंके भी ज्योति हैं। वे ही ईश्वरके ईश्वर, समस्त आनन्दोंके सार तथा अनुपम अचिन्त्य अनन्त कल्याण-गुणगणोंके निलय हैं और सौन्दर्य, माधुर्य, सौरस्य, सौगन्ध्य, सौकुमार्य, सौशील्य, आभा, प्रभा, शोभा, कान्ति, शान्ति प्रभृति दिव्य गुणोंकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मी-समुदायोंसे सेव्य, अतएव अनन्त लक्ष्मियों-की भी लक्ष्मी हैं—

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।
श्रियाः श्रीश्च भवेदग्र्या कीर्त्याः कीर्तिः क्षमाक्षमा॥

(वा० रा० २।४४।१५)

श्रीसीता प्रेमसारसर्वस्व रामकी सौन्दर्यसारसर्वस्व

श्रीसीता-रामका स्वरूप सुषमाकामधेनुके सौन्दर्य-पयोराशिसे जनित नवनीतसे निर्मित है। म्रदिमाकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मीके चरणकमल कमलसे भी कोटिगुण अधिक सुकोमल हैं। वह म्रदिमाकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मी अपने लोकोत्तर सुकोमल हस्तारविन्दसे श्रीसीताके चरणारविन्दका स्पर्श करनेमें अपने पाणिपङ्कजको कठोर समझकर सकुचाती है। श्रीतुलसीदासजीके अनुसार सीता अनुपमेय हैं। ज्ञान-विज्ञानकी अधिष्ठात्री राजराजेश्वरी महात्रिपुरसुन्दरी भी अनेक कारणोंसे श्रीसीताकी उपमानश्रेणीमें नहीं आ सकतीं। श्रीमहालक्ष्मीके प्राकट्यके लिये क्षीरसमुद्रका मन्थन करना पड़ा था। तदर्थ मन्दराचलको मन्थानदण्ड बनाना पड़ा था। मन्दराचलको धारण करनेके लिये भगवान्‌को कच्छपावतार धारण करना पड़ा था। वासुकि नागरूपी रज्जुसे मन्दराचलको निबद्ध कर देवताओं, दानवों तथा स्वयं श्रीविष्णुको मन्थन करनेका आयास करना पड़ा था, तब महालक्ष्मीका प्रादुर्भाव हुआ था, पर आनन्द-सिन्धुसार-सर्वस्व भगवान् रामके माधुर्यसार-सर्वस्वकी अधिष्ठात्री राघवेन्द्र-प्राणेश्वरी श्रीसीताके उपमानके लिये वह पर्याप्त नहीं है। हाँ, यदि क्षीरसागरके बदले छविसुधा-सागर हो और पाषाणमय मन्दराचलके स्थानमें शृङ्गाररूप मन्दराचल हो और उसका आधारभूत कच्छप भी परम रूपमय हो, वासुकि नागके स्थानमें शोभामयी रज्जु हो और मन्थन करनेवाले देवता आदिके स्थानमें साक्षात् आधिदैविक काम ही स्वयं अपने पाणिपद्मसे मन्थनका कार्य करें तो इस विधि-विधानसे जो अलौकिक लक्ष्मी प्रकट होगी वही कथंचित् श्रीसीताका उपमान बन सकती है। विजयलक्ष्मी, साम्राज्यलक्ष्मी, ऐश्वर्यलक्ष्मी, माधुर्यलक्ष्मी, मोक्षलक्ष्मी प्रभृति सब लक्ष्मियाँ अनायास ही वहाँ उपस्थित हो जाती हैं जहाँ श्रीसीताके कृपाकटाक्ष-लेशका उन्मेष होता है।

अनुपम प्रेम, अनुपम सौन्दर्य एक दूसरेसे अभिन्न है। प्रेमसार-सर्वस्व राम हैं एवं सौन्दर्यसार-सर्वस्व श्रीसीता हैं। राघवेन्द्र-हृदयेश्वरी श्रीसीताके अरुण चरणारविन्दकी अरुण रज ही श्रुति-सीमन्तिनी-जनोंके सीमन्तका सिन्दूर है अर्थात् श्रीसीताके चरणारविन्दोंकी रजसे ही श्रुतियाँ सौभाग्यशालिनी होती हैं।

श्रीसीता रामकी महाशक्ति एवं सर्वस्व हैं

सीतोपनिषद्‌में कहा है, अनेकरूपा श्रीसीताके अनुग्रहसे वेद एवं वेदवेद्य परमात्मा सौभाग्यशाली होते हैं। जैसे शीतलता, मधुरता एवं पवित्रता ही गङ्गाके प्रवाहका सार है तथा मधुरिमा अमृतका सर्वस्व है, वैसे ही आनन्दसिन्धु सुखराशि श्रीराघवेन्द्रके माधुर्यसारसर्वस्वकी अधिष्ठात्री महालक्ष्मी ही सीता हैं। यद्यपि श्रीसीता और राम दोनों परस्पर अभिन्न प्रेमसौन्दर्यसार हैं, उनमें चन्द्र तथा चन्द्रिकाका एवं भास्कर तथा प्रभाका-जैसा अभेद-सम्बन्ध है। अमृतसिन्धुका उसके माधुर्यसे विप्रयोगकी कल्पना असम्भव है। श्रीसीता और रामका सम्बन्ध तो पूर्वोक्त उदाहरणोंसे भी अत्यधिक घनिष्ठ है, वह कैसे विच्छिन्न हो सकता है। फिर भी श्रीसीताजी रामकी अनन्य भक्ति एवं अनन्य सेवा-स्वरूप होनेके कारण सम्प्रयोग-विप्रयोगात्मक उद्बुद्ध उभयविध शृंगाररससार-सर्वस्वस्वरूपा हैं। यही कारण है कि उनका जहाँ अखण्डरूपसे श्रीरामके साथ नित्य-सम्बन्ध है, वहीं उनका श्रीरामके साथ चिर-विप्रयोग भी परिलक्षित होता है। विप्रयोग शृङ्गारका महत्त्व रसिकोंकी दृष्टिमें सम्प्रयोग शृङ्गारसे कहीं अधिक है। तभी तो किसीने कहा है—

सङ्गमविरहवितर्के वरमिह विरहो न सङ्गमस्तस्याः।

सङ्गे सैव तथैका त्रिभुवनमपि तन्मयं विरहे ॥

सङ्गम और विरहका वरदान मिल रहा हो तो भक्त विरहका वरदान माँगेगा, सङ्गमका नहीं, क्योंकि सङ्गमसे प्रियतमका सम्मिलन सीमित होता है, परंतु विरहमें तो प्रियतम ही सर्वत्र सर्वरूपसे अन्तःकरण, अन्तरात्मा, प्राणों तथा रोम-रोममें निरन्तर मिलते रहते हैं। उसीकी अनुभूति श्रीराम इस प्रकार करते हैं—

कुबलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥
सो मनु रहत सदा तोहि पाहीं। जानु प्रीति रसु एतनेहि माहीं ॥

(रा० च० मा० ५। १५। ३-४, ६-७)

लोकमें जो उत्कण्ठा प्रियके विप्रयोगमें होती है वह संयोगमें नहीं होती, पर प्रियतमके बिना उस उत्कण्ठाका रसास्वादन ही नहीं होता और जब प्रियतम हैं तब वह उत्कण्ठा नहीं होती। इसी दृष्टिसे श्रीसीता-राममें सर्वदा सर्वाङ्गीण सम्मिलन-संश्लेष रहनेपर भी औपाधिक विश्लेषकी अभिव्यक्ति होती है, जिसमें प्रियतमकी उपस्थितिसे भी उत्कट उत्कण्ठा अनुभूत होती है और उत्कट उत्कण्ठाके साथ-ही-साथ प्रियतमका पूर्ण परिष्वङ्ग प्राप्त होता है। उत्कण्ठापूर्ण परिष्वङ्ग ही पूर्ण भक्ति है, वही पूर्ण सेवा है, वही प्रभु-प्राप्तिका साधन है एवं वही फल भी है। वही सीता है, वही श्रीरामका हृदय है और वही लोकोत्तर माधुर्य है। 'श्रीराम' इस महामन्त्रमें 'श्री' शब्दसे श्रीसीताका ही उल्लेख हुआ है। 'श्री' शब्दका **श्रयति इति श्रीः'** इस व्युत्पत्तिसे सेवा करनेवाली श्रीसीता महालक्ष्मीका नाम ही 'श्री' है। भावार्थक प्रत्यय करनेपर भी 'श्री' शब्दका अर्थ सेवा एवं भक्ति है। उत्कट उत्कण्ठापूर्वक मन, बुद्धि, चित्त एवं अन्तःकरण तथा अन्तरात्माका तन्मयतापूर्ण प्रियतम-परिष्वङ्ग ही 'सेवा' है, वही 'श्री' सीता हैं। वही **'श्रीयते सर्वैर्गुणैर्या सा श्रीः'** के अनुसार सकल कल्याणोंकी अधिष्ठात्री शक्तियोंद्वारा सेव्या और वन्दनीया हैं। कान्ति, शान्ति, आभा, प्रभा, शोभा आदि सभी दिव्य शक्तियाँ उस श्रीसीताकी सेविकाएँ हैं। **'श्रीयते हरिणापि या सा श्रीः'** के अनुसार श्रीराम भी उसी श्रीसीताकी सेवा एवं आराधना करते हैं। आत्मारामका स्वरूप-माधुर्य ही आत्मा है। उसमें आसमन्तात् रमण करना ही आत्माराम-की आत्मारामता है। आत्मा ही परप्रेमास्पद होता है। आत्मज्ञोंका वही सेव्य है। आनन्दसिन्धु रामका माधुर्यसारसर्वस्व सीता ही आत्मा हैं। वही परप्रेमास्पद हैं, वही परम सम्भजनीय एवं परम वरेण्य रामका स्वरूपभूत भर्ग है। ऐश्वर्यकी दृष्टिसे भी अद्भुत-रामायणके अनुसार श्रीनारदके उपदेशसे श्रीरामने सीताकी ध्यान, स्तुति, स्तोत्र आदिद्वारा आराधना की थी और सदा ही करते रहते हैं। माधुर्यकी दृष्टिसे सीता श्रीरामकी विशुद्ध अन्तरात्मा हैं। ऐश्वर्यकी दृष्टिसे सीता ही श्रीरामके ऐश्वर्यका मूलमन्त्र महाशक्ति हैं। शक्तिके बिना ब्रह्ममें अनन्तब्रह्माण्डोत्पादकत्व, सर्वपालकत्व, सर्वसंहारकत्व आदि कुछ भी नहीं हो सकता है। तभी तो अध्यात्म-रामायणमें श्रीसीताने कहा है—'सृष्टि, स्थिति आदि तथा शिव-धनुर्भङ्ग, रावण-वध आदि सब कार्य मैं ही करती हूँ। श्रीराम तो सर्वथा निर्विकार, कूटस्थ चिदानन्दघनमात्र हैं।'

अभिन्नरूप श्रीसीता-रामकी सेवा-शिक्षा-प्रदानार्थ भिन्नरूपता

इसी तरह श्रीसीता श्रीरामकी सेविका हैं 'श्री' हैं, शोभा हैं और वही श्रीरामकी सेवा हैं, आराधना हैं एवं मूर्तिमती अलभ्य, दुर्लभ, भक्तसर्वस्व भक्ति हैं। वही श्रीरामकी ऐश्वर्यशक्ति हैं, महाशक्ति हैं, महालक्ष्मी हैं और वही सीता सर्वगुणोंकी सेव्या तथा आराध्या हैं। वही श्रीरामकी आराधनीया हैं एवं वही श्रीरामके स्वरूपभूत माधुर्यसार-सर्वस्वकी अधिष्ठात्री परप्रेमास्पदरूपा श्रीरामकी आत्मा हैं। इस तरह यद्यपि सीता ही राम हैं, राम ही सीता हैं इसमें किंचिन्मात्र भी अन्तर नहीं है तथापि—

सेवक सेब्य भाव बिनु भव न तरिअ उरगारि।

(रा० च० मा० ७। ११९ (क))

—के अनुसार वही अभिन्न होते हुए भी उपासना, आराधना तथा सेवाकी शिक्षा देनेके लिये सीता-राम दो रूपोंमें प्रकट हैं। **'कृष्णश्चैव बृहद्बलः'** (वा० रा० ६। ११९। १५) के अनुसार श्रीराम ही श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हुए हैं और उस स्थितिमें श्रीसीताकी मुख्य शक्ति श्रीकृष्ण-प्राणेश्वरी श्रीराधाके रूपमें प्रकट होती हैं। अन्य शक्तियाँ रुक्मिणी आदिके रूपमें प्रकट होती हैं। श्रीराम ही जब अनन्त ब्रह्माण्डोंके उत्पादक सर्वविधाता बनते हैं तब श्रीसीता ज्ञान-विज्ञानकी अधिष्ठात्री महासंवित् सरस्वती बन जाती हैं। जब श्रीराम विश्वपालक विष्णुरूपमें व्यक्त होते हैं तब श्रीसीता ही अनन्त ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री महापालिनी, महालक्ष्मीरूपमें प्रकट होती हैं। श्रीसीता रघुकुलकमल-दिवाकर श्रीरामकी प्रभा तथा रामचन्द्रकी चन्द्रिका हैं। आनन्दसिन्धु श्रीराममें वह माधुर्यसार-सर्वस्व हैं। अध्यात्मरामायणके अनुसार जितने पुरुषवाचक शब्द हैं उनका अर्थ श्रीराम है, जितने स्त्रीवाचक शब्द हैं उनका अर्थ श्रीजनकनन्दिनी 'जानकी' ही है। श्रीसीता मूलप्रकृति ही नहीं किंतु वह चित्स्वरूप परमतत्त्व भी हैं—

'यो ह वै श्रीपरमात्मा नारायणः स भगवान्'

(तारसारोपनिषद् ३ । ६)

'कलातीता भगवती सीता चित्स्वरूपा'

(तारसारोपनिषद् ३ । ८)

सर्वनियन्ता परमेश्वरका अस्तित्व अवश्य मान्य है

दिनके पहले रात एवं रातके पहले दिन होता है। बीजके पहले अङ्कुर एवं अङ्कुरके पहले बीजका होना अनिवार्य है। इसी प्रकार सोनेके पहले जागना और जागनेके पहले सोना होता है, सृष्टिके पहले प्रलय, प्रलयके पहले सृष्टि एवं कर्मके पहले जन्म, जन्मके पहले कर्मका होना अनिवार्य है। जन्ममूलक देह, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार आदिकी हलचल ही कर्म है। लोकमें शुभ कर्मका शुभ फल एवं अशुभ कर्मका अशुभ फल होता है। संसारमें आकस्मिक कोई वस्तु नहीं होती, कार्य-कारणभाव सर्वत्र व्याप्त है। मेज, घट, प्रासाद, मोटर, वायुयान, राकेट आदि सभी विलक्षण कार्योंका निर्माण किसी ज्ञानवान् इच्छावान् तथा क्रियावान् चेतनद्वारा ही देखा जाता है। ठीक इसी प्रकार वृक्ष, भूमि, भूधर, चन्द्र, सूर्य, सागर आदिका निर्माण भी किसी ज्ञानवान्, क्रियावान् तथा चेतनके द्वारा ही सम्भव है। हाँ, लौकिक छोटे-छोटे कार्य अल्पशक्ति अल्पज्ञ चेतन जीवके द्वारा निर्मित होते हैं, परंतु विश्व-प्रपञ्चका निर्माण अल्पज्ञ अल्पशक्ति जीवद्वारा सम्भव नहीं, अतः उसके निर्माणके लिये सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर स्वीकार्य होते हैं। लोकमें भी अचेतन देह आदि या अचेतन कर्म स्वयं अपना फल नहीं दे सकते हैं, उनका फलदाता चेतन राजा आदि ही होता है। उसी प्रकार जीवोंके कर्मोंका फल भी स्वयं कर्म नहीं दे सकते। जड़ प्रकृति भी फल देनेमें समर्थ नहीं। जीव चेतन होनेपर भी जब अपने एक जन्मके कर्मों एवं उनके फलोंको नहीं जानता है तब अन्य अनेक जन्मोंके कर्मोंको कैसे जान सकेगा ? उसमें फल देनेकी भी क्षमता नहीं है, अतः अनन्त ब्रह्माण्डों तथा एक ब्रह्माण्डके अनन्त जीवों एवं एक जीवके अनन्त-अनन्त कर्मों तथा उनके विचित्र फलोंको जाननेवाला और तदनुसार फल देनेकी क्षमतासे सम्पन्न सर्वशक्तिमान् सर्वनियन्ता परमेश्वरका अस्तित्व अवश्य ही मानना होगा।

संसारका संचालन नियमोंपर ही आधृत है। सूर्य, चन्द्र, भौम, बुध, शुक्र आदि ग्रहोंकी गति और उदय-अस्त सभी नियमित हैं। यदि उनकी गति अनियमित हो तो वे आपसमें ही टकराकर विश्व-विप्लव उपस्थित कर सकते हैं। समुद्रका ज्वार-भाटा तथा विभिन्न चेतनाचेतन पदार्थोंके गुण और स्वभाव नियमित परिलक्षित होते हैं। कल्प, युग, वर्ष, पक्ष, दिन, प्रहर, दण्डकी कौन कहे क्षण-क्षणका हिसाब-किताब प्रकृतिमें नियत है। नियमोंका पालन तभी हो सकता है जब उनके पीछे कोई सावधान नियामक शासक होता है। इस दृष्टिसे भी सब प्राकृतिक नियमोंका व्यवस्थापक, पालक एवं नियामक सर्वज्ञ सर्वेश्वर अत्यावश्यक है।

वेदोंका स्वतःप्रामाण्य

उस सर्वनियन्ता सर्वेश्वरका शाश्वत संविधान वेदादि सच्छास्त्र हैं। पुरुष-निर्मित ग्रन्थोंमें पुरुषाश्रित भ्रम, प्रमाद, विप्रलिप्सा, करणापाटव आदि दोषोंसे उनके दूषित होनेकी सम्भावना होती है; क्योंकि पुरुषमात्रमें प्रायः उक्त दोष सम्भावित होते हैं। अतएव पौरुषेय ग्रन्थोंका प्रामाण्य तभी होता है जब उनके मूल पुरुषका आप्तत्व निश्चित हो जाय। किंतु भगवदीय संविधान अपौरुषेय वेद तो स्वतः समस्तपुरुषदोषशङ्कारूपी कलङ्कसे विरहित होनेके कारण स्वतःप्रमाण हैं।

वेदावतार वाल्मीकिरामायणका अकुण्ठ प्रामाण्य

अन्य सभी पौरुषेय ग्रन्थोंमें कारण-दोषकी सम्भावना बनी रहती है। उनमें वेदमूलकत्व तथा पुरुषके आप्तत्वके ज्ञानसे ही प्रामाण्य होता है। वाल्मीकिरामायण, महाभारत, मन्वादि-धर्मशास्त्र, पुराण आदिका प्रामाण्य उनके वेदमूलक होनेसे है, क्योंकि वे सब वेदके व्याख्यानरूप ही हैं। मनु, व्यास आदिके अनुसार वेद अनादि हैं। आधुनिक इतिहासकारोंकी दृष्टिसे भी ऋग्वेद संसारकी सबसे प्राचीन पुस्तक है। वाल्मीकिरामायण वेदोंका अवतार तथा वेद-व्याख्यानरूप ही है, यह पुराणका उद्घोष है—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

वेदवेद्य परमेश्वर श्रीरामके अवतीर्ण होनेपर वेद ही प्राचेतस महर्षिसे रामायणके रूपमें प्रकट हुए। वाल्मीकिरामायणका भी यही मत है कि वेदके उपबृंहणार्थ महर्षिने लव-कुशको रामायण-ग्रन्थ पढ़ाया—

वेदोपबृंहणार्थाय तावग्राहयत प्रभुः॥ (वा० रा० १।४।६)

इस तरह मन्त्र, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, मन्वादि धर्मशास्त्र, पुराण, षट्दर्शन, आगम आदि सभी सनातनधर्मियोंके मान्य ग्रन्थ हैं तथा हिन्दी, मराठी आदि विविध भाषाओंमें लिखित रामचरितमानस, भावार्थरामायण, ज्ञानेश्वरी-गीता आदि ग्रन्थ भी वेदमूलक होनेसे ही प्रमाण हैं।

श्रीसीतारामचरित्रकी वेदमूलकता

श्रीसीता एवं श्रीरामका चरित्र मन्त्ररामायण, पूर्वोत्तर-

तापनीयोपनिषद्, रामरहस्योपनिषद् तथा मुक्तिकोपनिषद् आदिमें स्पष्टरूपसे वर्णित है।

इसी प्रकार मन्त्ररामायणमें रामकथाका विस्तारसे वर्णन है। सीतोपनिषद्में सीताका माहात्म्य वर्णित है। पचासों अन्य उपनिषदोंमें भी श्रीरामकी वन्दना है। वाल्मीकिरामायणमें श्रीसीताराम-चरित्र विस्तारपूर्वक वर्णित है। अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, अद्भुतरामायण, महाभारत, पद्मपुराण, स्कन्दपुराण आदिमें भी श्रीरामका चरित्र वर्णित है। इन सबमें वेदोंका महत्त्व, श्रीरामकी परमेश्वरस्वरूपता तथा श्रीसीताका महाशक्ति या रामका स्वरूप होना स्पष्टरूपसे वर्णित है। ऋग्वेद-दशममण्डलके तिरानबेवें सूक्तमें श्रीरामका राजाके रूपमें स्पष्ट वर्णन है।

वाल्मीकिरामायणमें श्रीसीता-रामका यथार्थ वर्णन

प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥

(वा० रा० १।४।१)

भगवान् वाल्मीकिने रामके राज्यसिंहासनासीन होनेके पश्चात् रामचरित रामायणका निर्माण किया। वाल्मीकिरामायणके अनुसार रामायण-ग्रन्थ श्रीरामचन्द्रके समयका लिखा हुआ है। यह तथ्य मूलरामायणके प्रश्नोत्तरसे भी स्पष्ट है। वहाँ प्रश्न किया गया है।

को न्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान्।

(मू० रा० १।१।२)

इस प्रश्नमें **'साम्प्रतम्'** से वर्तमान-कालमें विशिष्ट गुणसम्पन्न पुरुषके सम्बन्धमें प्रश्न किये गये हैं। उत्तरमें अतीत तथा वर्तमानकी अनेक घटनाओंके सम्बन्धमें तथा भविष्यकी घटनाओंके सम्बन्धमें क्रियाओंका प्रयोग किया गया है। जैसे—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी॥

(मू० रा० १।१।८)

स जगाम वनं वीरः प्रतिज्ञामनुपालयन्।

(मू० रा० १।१।२४)

न पुत्रमरणं केचिद् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाः क्वचित्।

(मू० रा० १।१।९१)

चातुर्वर्ण्यं च लोकेऽस्मिन् स्वे स्वे धर्मे नियोक्ष्यति।

(मू० रा० १।१।९६)

इन उत्तरवाक्योंमें श्रीराम वन गये। राम-राज्यमें कोई पुत्र-मरण नहीं देखेगा। राम चारों वर्णोंको अपने-अपने धर्मोंमें नियुक्त करेंगे। इस प्रकार विभिन्न कालकी क्रियाओंका स्पष्ट निर्देश है।

इन प्रमाणोंके आधारपर सिद्ध होता है कि वाल्मीकिरामायण-ग्रन्थ रामके समकालका ही है, अतः श्रीसीतारामके सम्बन्धमें वाल्मीकिरामायण ही मुख्य प्रमाण है।

वाल्मीकीय रामायणके अनुसार साक्षात् ब्रह्माजीने कहा—महर्षे! मेरी प्रेरणासे ही **'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वम्'** इस श्लोकके रूपमें रामायण-ग्रन्थ तुम्हारे मुखसे प्रकट हुआ है। तुमने धर्मात्मा श्रीरामका चरित्र नारदजीके मुखसे जैसा सुना है, वैसा वर्णन करो। श्रीरामके चरित्रका रहस्य, गुप्त, प्रकट जो-जो भी वृत्त है, वर्णन करो। श्रीराम तथा लक्ष्मणका, वैदेही और राक्षसोंका प्रकाश तथा रहस्य-चरित्र भी ऋतम्भरा-प्रज्ञाके प्रभावसे तुम्हें विदित हो जायगा। इस काव्यमें तुम्हारी कोई भी वाणी मिथ्या नहीं होगी—

रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः।
वैदेह्याश्चैव यद् वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥

(वा० रा० १।२।३४-३५)

इस प्रकार श्रीब्रह्माकी आज्ञा होनेपर महर्षिने आचमनकर, प्राचीनाग्र कुशोंपर समासीन हो धर्मसे समाधिजन्य आर्ष-ज्ञान ऋतम्भरा-प्रज्ञासे श्रीसीता, राम, लक्ष्मण आदिके सब चरित्रोंका साक्षात्कार किया। उसमें सीता, राम, लक्ष्मण आदि सबके हसित, भाषित, गति तथा चेष्टित तकका भी धर्म-वीर्यसे उन्होंने सम्यक् दर्शन किया। सीतासहित सत्यसन्ध राम तथा लक्ष्मणने जो किया उन सबका महर्षिने करतलगत आमलकके तुल्य यथावत् साक्षात्कार किया। संवाददाताओं, तारों, टेलीप्रिन्टर आदिके समाचारों तथा आँखों-देखी घटनाओंमें भी भ्रान्ति हो सकती है, परंतु योगज आर्षऋतम्भरा-प्रज्ञाजनित साक्षात्कारमें भ्रान्तिकी सम्भावना नहीं। महर्षि वाल्मीकिने जब धर्मके बलपर सब कुछ तत्त्वतः अनुभवमें बैठा लिया, तब रामचरित-निर्माण करनेके लिये वे उद्यत हुए—

हसितं भाषितं चैव गतिर्यावच्च चेष्टितम्।
तत् सर्वं धर्मवीर्येण यथावत् सम्प्रपश्यति॥
ततः पश्यति धर्मात्मा तत् सर्वं योगमास्थितः।
पुरा यत् तत्र निर्वृत्तं पाणावामलकं यथा॥
तत् सर्वं तत्त्वतो दृष्ट्वा धर्मेण स महामतिः।
अभिरामस्य रामस्य तत् सर्वं कर्तुमुद्यतः॥

(वा० रा० १।३।४, ६-७)

चौबीस हजार श्लोकों, पाँच सौ (प्रायः साढ़े छः सौ) सर्गों, छः काण्डों तथा उत्तरकाण्डके रूपमें सीताचरित्र रामायणका निर्माण वाल्मीकिने किया और वेदार्थमें परिनिष्ठित सीता-पुत्र कुश और लवको वेदका उपबृंहण करनेके उद्देश्यसे यह ग्रन्थ पढ़ाया। इससे सिद्ध होता है कि यह रामायण श्रुतितात्पर्य-विषयीभूत परम तत्त्वका ही प्रतिपादन करनेवाला ग्रन्थ है।

यह रामायण सीताका महान् चरित्र है। यह शृङ्गार, करुण, हास्य, रौद्र, भयानक, वीर आदि विविध रसोंसे युक्त है। गान्धर्व-तत्त्वज्ञ स्वरसम्पन्न परम रूपवान् कुश और लवने वीणा-वादनके साथ इसका गायन कर अभ्यास किया। इनके गानसे ऋषि-महर्षि भी विस्मित होकर साधु-साधु कहने लगते थे और संतुष्ट होकर कमण्डलु, कुठार आदि पुरस्कारके रूपमें देने लगते थे। वे अपने दिव्य गायनसे सबके शरीरों, अङ्गों, मनों एवं हृदयों तथा कानोंको आह्लादित करते थे (वा० रा० १।४)। इतना ही नहीं कुश और लवको पढ़ाकर उस रामायण-ग्रन्थके परीक्षार्थ महर्षिने तत्कालीन जनतामें उसे प्रचारित भी कराया। अधिकांश अयोध्यावासियोंके समक्ष जो घटनाएँ घटी थीं, उनके सामने उन घटनाओंका वर्णन हुआ और अयोध्यावासियोंकी दृष्टिमें यह ग्रन्थ अक्षरशः परम सत्य सिद्ध हुआ।

वाल्मीकीय रामायणके अनुसार श्रीविष्णु भगवान् ही रामके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं, वाल्मीकीय रामायणमें यह स्पष्ट उल्लेख है कि महाद्युति शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करनेवाले विष्णु आये (वा० रा० १।१५।१६)।

देवताओंने कहा—हे विष्णो! आप अपनेको चतुर्धा विभक्त कर मनुष्यरूपमें अवतीर्ण हों तथा प्रवृद्ध लोककण्टक रावणको मारें (वा० रा० १।१५।२१-२२)।

तब सुरश्रेष्ठोंद्वारा प्रार्थना करनेपर भगवान्, व्यापक नारायण श्रीरामचन्द्रके रूपमें प्रकट हुए (वा० रा० १।१७)।

भगवान् विष्णु पुत्र-भावको प्राप्त हुए। उत्तम ग्रह और नक्षत्रोंके उदित होनेपर श्रीकौसल्याने 'सर्वलोकनमस्कृत जगन्नाथ परमेश्वर' को रामरूपमें प्रकट किया।

श्रीसीतारामकी भगवत्ता एवं उनके लोकोत्तर अलौकिक गुण-गणोंका दिग्दर्शन निम्नलिखित पंक्तियोंमें स्वतः प्राप्त होता है—

श्रीराम स्वयं कहते हैं—इच्छा करनेपर मैं संसारके सभी पिशाच, दानव और राक्षसोंका एक अँगुलीके अग्रभागसे संहार कर सकता हूँ। संकल्पसिद्धि ईश्वरका लक्षण है। अपरिमेयशक्ति ईश्वर यदि अपनी निरतिशय शक्ति एवं महिमाको प्रकट करें तो उनके लिये कुछ भी असाध्य नहीं है, परंतु ब्रह्माके दिये हुए वरदानके अनुसार नरलोकका अनुसरण करते हुए श्रीरामने वानर आदिकी सहायताकी अपेक्षा की है। जो अनन्य-भावसे भगवान् रामकी प्रपत्ति स्वीकार कर लेता है अथवा सेव्य-सेवकभावसे, रक्ष्य-रक्षकभावसे भी—'मैं आपका हूँ', इस प्रकार प्रार्थना करता है उसे वे सब भूतोंसे तात्कालिक एवं आत्यन्तिक अभय प्रदान करते हैं (वा० रा० ६।१८।२३, ३३)।

श्रीसीताका वचन है—मैं राघवसे वैसे ही अभिन्न हूँ जैसे भास्करसे उसकी प्रभा अभिन्न होती है। जैसे विदितात्मा व्रत-स्नात विप्रकी विद्या अनपायिनी होती है, वैसे ही मैं श्रीरामकी अनपायिनी शक्ति हूँ। जैसे लोपामुद्रा अगस्त्यकी, सुकन्या च्यवनकी, सावित्री सत्यवान्‌की एवं श्रीमती अनसूया अत्रिकी अनन्य अनपायिनी हैं, वैसे ही मैं श्रीरामकी अनन्य अनपायिनी हूँ (वा० रा० ५।२१।१६)।

जैसे अरुन्धती वसिष्ठकी तथा रोहिणी चन्द्रमाकी अनुगामिनी हैं, वैसे ही मैं श्रीरामकी अनुगामिनी हूँ (वा० रा० ५।२१।२४)।

महातेजा रामको सुर या असुर कोई भी जीत नहीं सकता (वा० रा० ५।२७।२२)।

इसी प्रकार वाल्मीकिरामायणमें सभी लोकपाल एवं ब्रह्मा कहते हैं—आप चक्रधारी नारायणदेव हैं, विभु हैं। आप ही एकशृङ्ग (एक दंष्ट्रावाले) वराहरूपमें प्रकट होते हैं। आप अतीत तथा अनागत सब शत्रुओंको जीतनेवाले हैं। आप अक्षर परब्रह्म हैं। सब लोकोंके आदि, मध्य और अन्तमें आप ही परम सत्यरूपसे विद्यमान रहते हैं। सब लोकोंके लिये आप ही परम धर्मस्वरूप हैं। आप ही चतुर्भुज विष्वक्सेन हैं। आप ही शार्ङ्गधन्वा हृषीकेश हैं। आप ही पुराण-पुरुषोत्तम हैं—

अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः॥

(गीता १५।१८)

अर्थात् क्षराक्षरातीत पुरुषोत्तम ही वेदान्त-वेद्य शुद्धपरब्रह्म-तत्त्व हैं।

आप अजित हैं, खड्गधारी विष्णु हैं एवं बृहद्बल कृष्ण हैं। आप ही सेनानी, नेता, मन्त्री, बुद्धि, सत्त्व, क्षमा, दम तथा सबके प्रभव एवं अप्यय हैं। आप ही उपेन्द्र, वामन तथा मधुहन्ता मधुसूदन हैं। आप सर्वात्मा होनेके कारण इन्द्रकर्मा महेन्द्र हैं। आप ही पद्मनाभ तथा रणमें शत्रुओंका अन्त करनेवाले हैं। दिव्य महर्षि लोग आपको शरणार्ह, शरण (आश्रय) कहते हैं। हजारों शाखावाले वेद एवं सैकड़ों जिह्वावाले शेष तथा अपरिगणित महर्षि

भी आपको ही शरण्य कहते हैं। आप तीनों लोकोंके आदिकर्ता और स्वयम्प्रभु हैं। सिद्धों, साध्यों आदि सबके परम आश्रय और सबके पूर्वज आप ही हैं। आप ही यज्ञ हैं, आप ही वषट्कार, ॐकार तथा परंतप हैं। आप कौन हैं, आपका प्रभाव एवं अन्त कहाँ है, यह कोई नहीं जानता। ज्ञानियोंको ज्ञान-दृष्टिसे सब भूतोंमें विशेषतः ब्राह्मणोंमें, गायोंमें सभी दिशाओंमें, गगनमें, पर्वतोंमें, वनोंमें, सर्वात्मरूपमें तथा विशिष्ट विभूतियोंके रूपमें आपका दर्शन होता है। आप महाविराट्रूपसे सहस्रों चरण, सहस्रों मस्तक एवं सहस्रों नेत्रवाले होकर शोभित होते हैं। आप सभी भूतों तथा पर्वतोंवाली पृथ्वीको धारण करते हैं। प्रलय होनेपर जलमें महोरग—शेषरूपसे आप दिखायी देते हैं।। हे राम! देव, दानव और गन्धर्वों-सहित तीनों लोकोंको आप धारण करते हैं।

ब्रह्मा कहते हैं—राम! मैं आपका हृदय (बुद्धि) हूँ। सरस्वती देवी आपकी जिह्वा हैं, सब देवता आपके गात्रमें रोमोंके रूपमें मुझसे निर्मित हैं। आपके निमेषसे रात्रि तथा उन्मेषसे दिन होता है। आपके नित्य-ज्ञानसे अनुविद्ध शब्द ही वेद हैं। किंबहुना, आपके बिना कहीं भी, कोई भी वस्तु नहीं है—

लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः।

लोकमें ऐसा कोई नहीं है जो आपका निष्ठावान् भक्त न हो। सारा संसार ही आपका शरीर है। आपका स्थैर्य ही वसुधा है। अग्नि आपका रोष है। आपका प्रसाद ही श्रीवत्सरूप सोम है। प्राचीन कालमें आपने ही तीन डगोंसे तीनों लोकोंको नापा था और महान् असुर बलिको बाँधकर महेन्द्रको राजा बनाया था। श्रीसीता साक्षात् लक्ष्मी हैं। आप विष्णु एवं प्रजापति कृष्ण हैं। रावणके वधार्थ आप मानुषी तनुमें प्रविष्ट हुए हैं। धार्मिक श्रेष्ठ! हम लोगोंका रावण-वधादि कार्य आपने सम्पन्न कर दिया है। अब आप अपने दिव्य धाममें आइये। आपका बल एवं वीर्य अमोघ है। आपका दर्शन तथा स्तुति भी अमोघ है। आपके प्रति भक्तिसम्पन्न मनुष्य भी अमोघ (सफल कामनावाले) होंगे। (वा० रा० ६। ११७। २—३१)।

ये इन्द्रसहित तीनों लोक, सिद्ध, परमर्षि पुरुषोत्तम-स्वरूप आपका अभिवादन कर अर्चन कर रहे हैं। हे सौम्य! इस रामरूप परम तत्त्वको तुम जानो, जिसे भगवती श्रुतिने देवताओंका हृदय कहा है और देवताओंका परम गुह्य महोपनिषद् कहा है। सम्पूर्ण जगतोंका कारण नित्य अव्यक्त जो ब्रह्म है वही परंतप राम हैं (वा० रा० ६। ११९। ३०—३१)।

श्रीरामने कहा—सीता मुझसे वैसे ही अभिन्न है जैसे भास्करसे प्रभा। जनक-पुत्री मैथिली तीनों लोकोंमें अत्यन्त विशुद्ध हैं। जैसे आत्मवान् प्राणीद्वारा कीर्तिका त्याग अशक्य है वैसे ही सीताका त्याग भी अशक्य है (वा० रा० ६। ११८। १९-२०)।

इस रामायणके पढ़ने और सुननेसे श्रीराम सतत प्रसन्न होते हैं और वे राम सनातन विष्णु हैं। वे महाबाहु आदिदेव हरि एवं प्रभु नारायण हैं (वा० रा० ६। १२८। ११९)।

सब लोग विश्वासके साथ जोरसे बोलें—

'भगवान् विष्णुका बल प्रवृद्ध हो।' (वा० रा० ६। १२८। १२१)।

आप नारायण, चतुर्भुज, सनातनदेव हैं। अप्रमेय अव्यय प्रभु राक्षसोंको मारनेके लिये श्रीरामरूपमें उत्पन्न हुए हैं। समय-समयपर नष्ट-धर्मको व्यवस्थित करनेके लिये प्रजाहितार्थ आप प्रकट होते हैं। हे शरणागतवत्सल! आप दस्यु लोगोंके वधार्थ अवतीर्ण होते हैं (वा० रा० ७। ८। २६-२७)।

इन सब बातोंसे सिद्ध है कि भगवान् राम साक्षात् नारायण विष्णु ही हैं और उनकी भक्ति ही सर्वोत्तम धर्म या सर्वोत्तम साधना है और उसीसे कल्याण होना सुनिश्चित है। यही कल्याणका मार्ग है तथा यही सभी शास्त्रों और संतों एवं विद्वानोंका सुविचारित सुनिर्णीत मत है। अतः अपनी उन्नति तथा कल्याण चाहनेवाले बुद्धिमान् व्यक्तिको सदा सर्वात्मना श्रीराम-भक्तिमें निरत रहना चाहिये।

रामभक्ति कैसे हो

मद्भक्तसंगो मत्सेवा मद्भक्तानां निरन्तरम्। एकादश्युपवासादि मम पर्वानुमोदनम्॥
मत्कथाश्रवणे पाठे व्याख्याने सर्वदा रतिः। मत्पूजापरिनिष्ठा च मम नामानुकीर्तनम्॥
एवं सततयुक्तानां भक्तिरव्यभिचारिणी। मयि संजायते नित्यं ततः किमवशिष्यते॥

मेरे भक्तका संग करना, निरन्तर मेरी और मेरे भक्तोंकी सेवा करना, एकादशी आदिका व्रत करना, मेरे पर्वदिनोंको मानना, मेरी कथाके सुनने, पढ़ने और उसकी व्याख्या करनेमें सदा प्रेम करना, मेरी पूजामें तत्पर रहना, मेरा नाम-कीर्तन करना—इस प्रकार जो निरन्तर मुझमें लगे रहते हैं, उनकी मुझमें अविचल भक्ति अवश्य हो जाती है। फिर बाकी ही क्या रह जाता है?

बालक-बालिकाओंका भविष्य उज्ज्वल बनाना चाहते हो तो उन्हें श्रीरामनामामृतका पान कराओ

(ब्रह्मलीन सिद्ध संत स्वामी श्रीहरिहरबाबाजी महाराजके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश)

श्रीविश्वनाथपुरी काशीके ब्रह्मलीन परम पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय महान् सिद्ध संत स्वामी श्रीहरिहरबाबाजी महाराज बड़े ही उच्चकोटिके संत थे और उन्हें साक्षात् श्रीशंकरस्वरूप माना जाता था। आप श्रीपतितपावनी कलिमलहारिणी भगवती भागीरथी श्रीश्रीगङ्गाजी महारानीकी गोदमें हर समय नौकापर विराजमान रहा करते थे। आप बिलकुल नग्न-दिगम्बर रहा करते थे, वस्त्र न ओढ़ते थे न बिछाते थे। जाड़ा-गर्मी, वर्षा आदि सभी मौसम आपके लिये एक समान थे। जलमें खड़े होकर भगवान् श्रीसूर्यकी घोर तपस्या करनेके कारण और अपने नेत्र तथा मुख सूर्यकी ओर करनेके कारण आपके नेत्र जाते रहे, पर सिद्धि प्राप्त हो गयी थी, बड़े-बड़े राजा-महाराजा, काशीके प्रमुख विद्वान् आदि सभी आपके श्रीचरणोंमें उपस्थित हुआ करते थे और आपके श्रीचरणोंके दर्शनकर अपनेको कृतकृत्य माना करते थे। महामना पं० श्रीमदनमोहन मालवीयजी महाराज तो आपके श्रीचरणोंमें बड़ी श्रद्धा-भक्ति रखा करते थे और आपके दर्शनकर अपनेको कृतकृत्य हुआ मानते थे। भगवान् श्रीशंकरजी महाराजकी कृपासे हमें अनेकों बार आपके श्रीचरणोंके दर्शन करनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सर्वप्रथम जब हमें श्रीविश्वनाथपुरी काशीमें जाकर आपके श्रीचरणोंके दर्शन करनेका परम सौभाग्य प्राप्त हुआ तो उस समय हम विद्यार्थी थे और सनातनधर्म हाईस्कूल गाजियाबादमें पढ़ा करते थे। मेरे साथ पिलखुवाके एक सज्जन और भी थे। हम दोनों महाराजके पास पहुँचे और पूज्यपाद बाबाके श्रीचरणोंमें मत्था टेककर बैठ गये। मैंने धीरेसे एक हाथसे तो पूज्यपाद बाबाके श्रीचरणोंको दबाना प्रारम्भ किया और दूसरे हाथमें कागज-पेंसिल लेकर बाबाके सदुपदेश लिखने प्रारम्भ किये। बाबाके श्रीरामनाम-सम्बन्धी सदुपदेश इस प्रकार हैं—

श्रीरामनामामृतका पान करो

प्रश्न—बाबा ! हमें कुछ अपने सदुपदेश दीजिये।

पूज्य बाबा—कौन हो ? कहाँ रहते हो ? क्या काम करते हो ?

मैं—महाराज ! मैं आपका बालक हूँ, विद्यार्थी हूँ और पिलखुवा रहता हूँ। गाजियाबादमें पढ़ता हूँ।

पूज्य बाबा—बेटा ! बालकोंको तो हमारा यह उपदेश है कि तुम खूब श्रीराम-नाम जपा करो। बालको ! यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो खूब श्रीरामनामामृतका पान किया करो। श्रीरामनामामृतका पान करनेसे तुम्हारे लोक-परलोक दोनों ही बन जायँगे। यदि तुमने श्रीराम-नाम नहीं लिया तो मानो तुमने अपने जीवनमें कुछ भी नहीं किया और व्यर्थहीमें भारतमें और मनुष्य-योनिमें जन्म लिया।

प्रश्न—बाबा ! और क्या करें ?

पूज्य बाबा—नित्य स्नान करो और सूर्य भगवान्‌को नित्य जल दो और श्रीराम-नाम लो। चाय-तंबाकूसे बचो, यही तुम्हारे लिये सब कुछ है।

प्रश्न—बाबा ! क्या भगवान् श्रीरामजीकी मूर्ति भी सामने रखें या यों ही श्रीराम-नामका जप किया करें ?

पूज्य बाबा—श्रीराम-नाम-जपके साथ-साथ यदि श्रीरामजीकी मूर्ति भी सामने हो तो फिर क्या कहने हैं। अवश्य रखो, भगवान् श्रीरामजीकी मूर्ति रखोगे तो इससे बड़ी जल्दी भगवान् श्रीराम तुमसे प्रसन्न हो जायँगे। श्रीरामजीकी मूर्तिको स्नान कराके उनके मस्तकपर चन्दन लगाओ और बचे हुए चन्दनको अपने मस्तकपर लगाओ। तिलक लगाते हुए शर्म मत करो। तुम हिन्दू हो इसलिये तिलक लगाना तुम्हारा धर्म है।

प्रश्न—बाबा !श्रीराम-नाम जपें तो मालापर जपें या यों ही मुखसे राम-राम कहते रहें ?

पूज्य बाबा—राम-राम चाहे यों ही जपो, पर मालापर श्रीराम-राम जपनेसे विशेष लाभ होता है, इसलिये अपने पास माला अवश्य रखो।

प्रश्न—बाबा ! हम पढ़ें क्या ?

पूज्य बाबा—अपने देशकी पवित्र देववाणी संस्कृत-हिन्दी पढ़ो और संस्कृत-हिन्दी पढ़कर वेद, शास्त्र, रामायण,

गीता पढ़ो, शास्त्रानुसार चलो और अपने सनातनधर्मका पालन करो।

प्रश्न—बाबा! और कुछ करें?

पूज्य बाबा—सनातनधर्मकी मर्यादाओंका पालन करो और श्रीराम-नाम जपते जाओ तथा मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके भक्त बनकर तुम भी मर्यादानुसार अपना जीवन बनाओ। विद्यार्थीको अपना खान-पान तथा आचरण नहीं बिगाड़ना चाहिये। यदि जहाँ-तहाँ खाया-पीया तो घोर नरक भोगना होगा। परलोकमें तुम्हें राम-नाम ही साथ देगा और धर्म ही रक्षा करेगा। धर्मकी रक्षामें भाग लो, महान् मर्यादाओंकी रक्षा करो और पूज्य गो-ब्राह्मणोंकी सेवा करो। यही तुम बालकोंके लिये हमारा कहना है।

श्रीगङ्गा-स्नान किया करो और हर समय अपने मुखसे राम-रामका जप-स्मरण, कीर्तन किया करो। श्रीराम-नाम ही जीवनका सार है, इसे कभी मत भूलो और हर समय राम-राम कहते रहो।

× × ×

पूज्यपाद बाबा गरीब, अमीर, राजा-महाराजा, विद्वान्, मूर्ख, स्त्री-पुरुष, बच्चे, बूढ़े आदि सभीको अपनी नौकापर बैठे हुए श्रीराम-नामामृतका पान करनेका सदुपदेश किया करते थे। ऐसे थे पूज्यपाद प्रातःस्मरणीय साक्षात् श्रीशिवस्वरूप श्रीराम-नामके अद्भुत विलक्षण प्रेमी श्रीसंत हरिहरबाबाजी महाराज, जो श्रीराम-नाम लुटानेमें तनिक भी संकोच नहीं करते थे।

राम नामकी लूट है, लूट सके तो लूट।
अन्त काल पछतायगा जब प्राण जायँगे छूट॥

—यही प्रातःस्मरणीय बाबाकी घोषणा थी, जिसके कारण लाखों जीवोंका परम कल्याण हुआ।

—गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी

योगिराज श्रीदेवराहा बाबाके अमृत वचन

रामचरितमानस धर्म और संस्कृतिका विश्वकोश है; क्योंकि इसमें मानवधर्म और विश्व-संस्कृतिके सभी तत्त्वोंका सम्यक् विवेचन हुआ है। जीवनको रसमय और आनन्दमय बनानेके लिये श्रीरामभक्तिका आश्रय परमावश्यक है। इसलिये गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने जीवनके प्रत्येक पक्षमें श्रीरामभक्तिको इस प्रकार ओतप्रोत कर दिया है कि वह जीवनका अभिन्न और अनिवार्य अङ्ग बन गयी है। गोस्वामीजीने कर्मसे विमुखताका उपदेश कहीं नहीं दिया, बल्कि भगवान् रामको भी घोर-से-घोर कर्म करने पड़े हैं। गोस्वामीजी तो केवल इतना ही चाहते हैं कि भगवान् श्रीरामको सम्मुख रखकर सारे कर्तव्यकर्म निष्ठासे किये जायँ। यही उनकी भक्तिका स्वरूप है—

राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पांई बिनु पाई॥

तथा—

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥

तुलसीके राम ब्रह्म, परमात्मा और भगवान् सभी कुछ हैं। भक्तिके लिये उनके स्वरूपका ज्ञान आवश्यक है—

जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥
प्रीति बिना नहिं भगति दिढ़ाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥

संत श्रीतुलसीदासजी महाराजने भक्तिको एक योग बताया है और उस योगकी प्राप्तिके साधन भी बताये हैं। भक्ति यद्यपि स्वतन्त्र योग है और ज्ञान-विज्ञान उसीके अधीन हैं, फिर भी जनसाधारणके लिये भगवान् स्वयं ही भक्ति-प्राप्तिका उपाय बताते हैं—

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥
प्रथमहिं बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥
एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥
संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ़ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ़ सेवा॥
मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाकें। तात निरंतर बस मैं ताकें॥
बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निःकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

जिस प्रकार जीवनके प्रत्येक कार्यमें चाहे वह लौकिक हो या पारलौकिक, श्रद्धा और विश्वासकी आवश्यकता होती है, उसी प्रकार जीवनकी आनन्दानुभूति-भक्तिमें भी श्रद्धा और विश्वासकी परमावश्यकता है। प्रत्येक आचरणके लिये

श्रद्धा-भाव आवश्यक है; क्योंकि जबतक किसी कार्यमें निष्ठा न होगी, तबतक हम उसमें पूर्णतः प्रवृत्त ही नहीं हो सकते। यह श्रद्धा और विश्वास ही श्रीरामभक्तिके मूल तत्त्व हैं। तुलसी बाबाने कहा है—

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु।
राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥

विश्वासका पैमाना भी गोस्वामीजीने बता दिया है—

मोर दास कहाइ नर आसा। करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥

विश्वासकी पूर्णतासे ही प्रेमाभक्तिका उदय होता है, जिसका आदर्श गोस्वामीजीने चातकको माना है—

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ॥
चातकु रटनि घटें घटि जाई। बढ़ें प्रेमु सब भाँति भलाई॥
कनकहिं बान चढ़इ जिमि दाहें। तिमि प्रियतम पद नेम निबाहें॥

इस प्रकार भगवत्प्रेम होनेपर प्रेमीके काम, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि सब स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं; क्योंकि उस स्थितिमें भक्त सम्पूर्ण विश्वको प्रभुमय देखता है और सबके कल्याणकी बात सोचता है। अतः राग-द्वेषका कहीं प्रश्न ही नहीं होता—

उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत केहि सन करहिं बिरोध॥

सनकादिक मुनियोंने इसीलिये भगवान् रामसे प्रेमाभक्तिकी प्रार्थना की है—

परमानंद कृपायतन मन परिपूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम॥

भगवान् श्रीरामके भक्ति-योगका आधार पाकर हृदय निष्काम हो जाता है और बुद्धि स्थिर हो जाती है। अन्य सभी साधनोंकी अपेक्षा भक्तिका मार्ग सरल है, परंतु भक्तिमें आराध्यका तैलधारावत् सतत अनुसंधान-चिन्तन तथा ध्यान आवश्यक है—

तन से करम करै बिधि नाना। मन राखै जहँ कृपा निधाना॥
मन ते सकल बासना भागी। केवल राम चरन लय लागी॥

वैराग्यसे ही भक्ति दृढ़ होती है, संसारके विषयोंसे जबतक वैराग्य नहीं होता, तबतक शुद्धा भक्तिका आरम्भ नहीं हो सकता—

तुलसी जौ लौं बिषय की सुधा माधुरी मीठि।
तौ लौं सुधा सहस्र सम राम भगति सुठि सीठि॥

भक्तिमार्गके प्रबल शत्रु हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर। इनमें काम, क्रोध और लोभ अत्यन्त प्रबल हैं। ये बड़े-बड़े साधकोंको भी क्षणभरमें ही साधन-पथसे विचलित कर दुःखी बना देते हैं। भगवान्पर पूर्ण विश्वास होनेपर भगवत्कृपासे ही इनका नाश होता है। जबतक हृदयमें चाप-बाणधारी श्रीरामका वास नहीं होता, तबतक लोभ-मोहादि दोष मानवको सताते रहते हैं, सच्ची भक्ति प्राप्त नहीं होने देते—

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥

भक्ति प्रेमकी अनिर्वचनीय लहर है। इस लहरमें प्रेमी, प्रेम और प्रेमास्पदमें कोई अन्तर नहीं रह जाता। इसमें तीनों एक लय हो जाते हैं। जब ध्याता, ध्यान और ध्येय एक-स्वरूप हो जाते हैं तब दुर्लभ आध्यात्मिकताकी सृष्टि होती है। वस्तुतः भक्ति एक ऐसी लहर है जो आराध्यके गुण, माहात्म्य और कृपाका स्मरण कराकर चित्तको द्रवित करती है तथा धारा-प्रवाह मनकी सारी वृत्तियोंको उसी ओर उन्मुख करती है।

आराधना-साधनाके अन्य साधनोंमें जहाँ अनेकशः अर्हताएँ हैं, वहाँ भक्तिके क्षेत्रमें बाध्यता नहीं है। भक्तिके अधिकारी अनन्त सृष्टिके सभी प्राणिमात्र हैं। भगवान् श्रीरामने स्वयं कहा है—

पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ॥

अतः मनुष्यमात्रको आत्मकल्याणार्थ त्रैलोकपावनी श्रीरामभक्ति-सरितामें अवगाहन कर जीवन-लाभ लेना चाहिये। (प्रेषक—श्रीमदनजी शर्मा, शास्त्री)

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥
सोइ गुनग्य सोई बड़भागी। जो रघुबीर चरन अनुरागी॥

सृष्टि-लीला-विकासमें श्रीराम

[श्रीअरविन्दजीके विचार]

भक्तिहेतु भागवत-सृष्टि और भागवत-लीला—ये दोनों अनिवार्य तत्त्व हैं। अतः मानव-तन प्राप्त कर उसका उपयोग या व्यवहार भक्ति-जैसे अमूल्य और सार्थक क्रिया-कलापमें करना चाहिये।

स्रष्टा और सृष्टिके मिलनकी प्रक्रियाका नाम ही लीला है और यह प्रक्रिया अनन्त है। इसीलिये सृष्टिमें अनन्त नाम-रूपोंमें रमण करनेवाले रामकी लीला भी अनन्त है। इस रामके प्रति चेतनामें आकर्षण जागे, यह भगवान्‌की कृपाके द्वारा सम्भव है। भगवान्‌का अवतारके रूपमें अभिव्यक्त होना मानवताकी सहायताके लिये है; क्योंकि इस सहायतासे मानव अपने दिव्यत्वको खोजने लगता है और उसके अनुभवका रास्ता ढूँढ़ लेता है। श्रीअरविन्दजी यह मानते हैं कि अवतार पार्थिव चेतनाके क्रम-विकासमें सहायता करने आते हैं। जब-जब निम्न पार्थिव चेतनाके भागवत-चेतनामें वर्द्धित होनेके मार्गमें संकट-काल आते हैं, तब-तब भगवान् स्वयं मानुषी तनुमें अवतीर्ण होकर आगेका विकास-सोपान पार करते हैं और मानव-चेतनाके आगे बढ़नेका मार्ग प्रशस्त करते हैं। श्रीअरविन्द एक प्रसंगमें—गीताप्रबन्धमें कहते हैं—'अवतारका आना होता है मानव-प्रकृतिमें भागवत-प्रकृतिको प्रकट करनेके लिये, जिससे कि मानव-प्रकृति भागवत-प्रकृतिमें रूपान्तरित हो जाय।' श्रीरामका अवतार परात्परका ही अवतरण है—

सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण
एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।
मायातनुं लोकविमोहनीयां
धत्ते परानुग्रह एष रामः॥

(अ० रा० १।५।४९)

अर्थात् उन्हीं पुराणपुरुष परमात्मा रामने संसारपर परम अनुग्रह करनेके लिये एक स्वयंप्रकाश अनन्त और सबके आदिकारण होते हुए भी यह जगन्मोहन मायारूप धारण किया है।

ऐसे श्रीरामके प्रति मानवमें जब न्यायाधीशका अहंकार जागता है तो वह रामके ईश्वरत्वको ही शंकाकी दृष्टिसे देखता हुआ उनके कार्योंको परखनेका प्रयास करता है। अपने मानसिक तथा नैतिक आदर्शोंको उनपर लादने लगता है या आधुनिक नैतिकताके दृष्टिकोणसे श्रीरामके कार्यकलापोंकी व्याख्या देने लगता है। श्रीअरविन्दने इसे स्पष्ट करते हुए कहा है कि 'अवतारको अलौकिक कार्य करनेकी बाध्यता नहीं है। अवतारको अपने कार्य और श्रमको एक प्रतीकार्य और प्रभावी स्वरूप देना होता है; क्योंकि वे उसके अङ्ग होते हैं जो पृथिवी तथा मानव-जातिके इतिहासमें करना आवश्यक होता है।'

'अवतारको आध्यात्मिक मसीहा होनेकी बाध्यता नहीं है।' अतः राम जब भगवती सीताके आत्मशुद्ध्यर्थ अग्नि-प्रवेशपर उद्विग्न होते हैं तो इन्द्र, वरुण आदि लोकपालोंके सान्त्वना देनेके उत्तरमें कहते हैं—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।

—तो उनका परब्रह्मत्व खण्डित नहीं होता। अवतार यदि जिसके उद्धारके लिये आया है वैसा न होकर निर्गुण-निराकार-जैसा आचरण करे तो उद्देश्य-सिद्धिकी लीलाका स्वरूप ही बदल जायगा। यदि यह तर्क स्वीकार कर लिया जाय कि श्रीरामको अवतार होनेके कारण संघर्ष और प्रयत्न नहीं करना पड़ा, क्योंकि वे जानते थे कि यह सभी क्रिया-कलाप माया या लीलामात्र है तो इसी तर्कके अनुसार मानवकी अन्तरात्मा भी भगवत्स्वरूप, अमर, अस्पृश्य और दिव्य है और उसे ज्ञान है कि दुःख और अज्ञान मिथ्या हैं किंतु यदि मानव उन्हें यथार्थ मानता है तो अवतार भी अपने लीलाधर्मके कारण इन समस्याओंको यथार्थ ही मानेंगे, क्योंकि भगवान् अपनी दिव्यताको पुनः प्राप्त करनेमें मानवको सहायता देनेके लिये ही मूल-रूपसे अवतार ग्रहण करते हैं। भले ही प्रकृतिके विकासके अनुसार युग-युगोंमें भिन्न उद्देश्य दिखायी पड़ें। यदि श्रीराम अपने अवतार-स्वरूपमें मानवसे बहुत अधिक अन्तर रखते और मानवकी प्रकृति अपनी सभी सम्भावनाओंमें उनके द्वारा निर्देशित पथका अनुसरण करनेमें अवरुद्ध अनुभव करती तो इसका अर्थ यही होता कि अवतारका दिव्यत्व इतना ऊँचा है कि मानवका दिव्यत्व उसका स्पर्श ही न कर सके। इस स्थितिमें अवतार लेनेका निर्दिष्ट उद्देश्य मानवका विकास तथा सृष्टिके लीलविकासमें

अगला आयाम प्रदर्शित करनेका उद्देश्य पूरा नहीं होता।

अतः श्रीराम सात्त्विक मनके प्रतिष्ठापक अवतार होते हुए भी जब मानव-तनमें वैश्व प्रकृतिको धारण करते हैं तो पूरी तरह धारण करते हैं, ये कोई इन्द्रजाल या छल-छद्ममयी मायाका आश्रय नहीं लेते। उनके व्यवहारसे यदि कोई गुह्य सत्य आवरणके पीछेसे ही झलक उठता है तो मूल-रूपमें यह वही तत्त्व है जो सभी जनोंके या जो श्रीरामसे प्रेम या भक्ति करते हैं, उनके विकासके लिये आवश्यक है, भले ही उसमें मायाकी प्रधानता सामान्य मानव-बुद्धिसे दिखायी देती हो।

श्रीरामका अवतार किसी आध्यात्मिक साम्राज्यकी स्थापनाके लिये नहीं हुआ था। अवतार सृष्टि-विकासकी लीलाके पुरोधा या अग्रदूतके रूपमें आते हैं और जड़से जगदीश्वरकी ओर संचलित इस विकास-प्रक्रियामें केवल एक कदम आगे रहते हैं। भगवान् तो सूक्ष्म-रूपसे भूतमात्रमें चेतनाके रूपमें तथा इन्द्रियोंके उत्पन्न होनेपर मनके रूपमें अवस्थित हैं। यह मन सद्रूप है। वसिष्ठ मुनि स्वयं कहते हैं कि मन बाहर नहीं है और हृदयमें भी नहीं है, यह तो सद्रूप होनेके कारण जगत् जैसा दिखायी देता है, वही मनका स्वरूप है। यही मन मानवके आकारको धारण करनेपर इतना योग्य हो जाता है कि भगवान् और आत्माकी कल्पना कर सके। मानव ही नहीं सम्पूर्ण सृष्टिको विग्रहवान् धर्मके अनुशीलनका अवसर रामावतारमें मिला। रामावतारका एक उद्देश्य तमस् अर्थात् तामसिक देहधारी रावणका नाश करना था।

इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये रामने जो किया वह मानवके लिये अनुकरणीय ही किया। श्रीअरविन्दने लिखा है कि 'राम परमात्मा थे, जिन्होंने मानवीय मानसिकताके आधारको स्वीकार किया और उसे शोभामय सम्मान दिया।'

ऐसे श्रीरामने उस मनका मानव-चेतनामें प्रवेश कराया जो स्थूलको पारकर उसे उच्चतर भूमिकामें प्रतिष्ठित करता है। उसे सूक्ष्मकी सीमाहीन परिधि देता है। धर्मके अनेक आयामोंकी रीति-नीति सिखाता है। मानव-विकासमें इतने बड़े परिवर्तनके प्रणेताके चिन्मय नाम-रूपकी भक्ति मानव-चेतनाकी बंद कोठरीके द्वारा अध्यात्मके स्वर्णिम विहानकी ओर खोल देती है।

श्रीरामने जिस तरह व्यक्तिके आचरणकी मर्यादाएँ बतायीं, उसी तरह समाज और देशकी विभिन्न समस्याओंके समाधानका आदर्श हमारे सामने रखा। चक्रवर्ती साम्राज्यकी विधिसे सुसंगठित शासन-प्रबन्धसे हमें अवगत कराया। यह शासन-प्रबन्ध आज भी 'रामराज्य' के नामसे जाना जाता है। और अन्तिम सत्यके रूपमें उन्होंने दिखा दिया कि इतने गुणोंकी खान होते हुए भी वे अपनी चित्-शक्ति, उद्भवस्थितिसंहारकारिणी भक्ति-रूपिणी भगवती सीताके बिना दीन हैं। वास्तवमें भक्तितत्त्वके राहित्य होनेपर सब कुछ होना भी कुछ न होनेके समान ही है। अतः भक्ति ही जीवनका मुख्य तत्त्व है और यही भक्ति ही चरम सिद्धि है, पराकाष्ठा है और अन्तिम परिणति है। (प्रेषक—श्रीदेवदत्तजी)
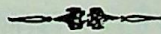
रामायणके आदर्श—राम, लक्ष्मण और हनुमान्

(महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीय)

श्रीरामकी अनुपम उदारता—मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्र जब वनमें भक्तिन शबरीके आश्रममें पहुँचे, तब उन्होंने उससे घृणा नहीं की; क्योंकि भिलनी बाह्य और आभ्यन्तर-शुद्धि तथा भक्तिभावसे समन्वित थी। भगवान्ने उस बुढ़ियाकी कुटियामें जानेमें जरा भी संकोच नहीं किया।

श्रीलक्ष्मणका आदर्श—जब मेघनादके विषयमें श्रीरामचन्द्रजीको चिन्ता हुई कि उसे कौन मारेगा, तब इस कार्यको लक्ष्मणने किया, जिनकी सीताजीके चरणपर दृष्टि पड़ी थी, पर मुखकी ओर जिन्होंने नहीं देखा था।

श्रीहनुमान्जीकी मूर्ति-स्थापना—महावीरजी मनके समान वेगवाले और शक्तिशाली हैं।⋯ मेरी हार्दिक इच्छा है कि उनका दर्शन लोगोंको गली-गलीमें हो। महल्ले-महल्लेमें हनुमान्जीकी मूर्ति स्थापित करके लोगोंको दिखलायी जाय। जगह-जगह अखाड़े हों, जहाँ ये मूर्तियाँ हों।

भगवान् श्रीरामके दर्शनार्थ विविध साधन

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

बहुत-से सज्जन मनमें शंका उत्पन्नकर इस प्रकारके प्रश्न किया करते हैं कि 'दो प्यारे मित्र जैसे आपसमें मिलते हैं, क्या उसी प्रकार इस कलिकालमें भी भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शन मिल सकते हैं ? यदि यह सम्भव है तो ऐसा कौन-सा उपाय है कि जिससे हम उस मनोमोहिनी मूर्तिका शीघ्र ही दर्शन कर सकें ?'

यद्यपि मैं एक साधारण व्यक्ति हूँ, तथापि परमात्माकी और महान् पुरुषोंकी दयासे केवल अपने मनोविनोदार्थ दोनों प्रश्नोंके सम्बन्धमें क्रमशः कुछ लिखनेका साहस कर रहा हूँ।

कृते यद् ध्यायतो विष्णुं त्रेतायां यजतो मखैः ।
द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात् ॥

(श्रीमद्भा० १२ । ३ । ४२)

'सत्ययुगमें निरन्तर विष्णुका ध्यान करनेसे, त्रेतामें यज्ञद्वारा यजन करनेसे और द्वापरमें पूजा (उपासना) करनेसे जिस परमगतिकी प्राप्ति होती है, वही कलियुगमें केवल नाम-कीर्तनसे मिल जाती है।'

जैसे अरणिकी लकड़ियोंके मन्थनसे अग्नि प्रज्वलित हो जाती है, उसी प्रकार सच्चे हृदयकी प्रेमपूरित पुकारकी रगड़से, अर्थात् उस भगवान्‌के प्रेममय नामोच्चारणकी गम्भीर ध्वनिके प्रभावसे भगवान् भी प्रकट हो जाते हैं। महर्षि पतञ्जलिने भी अपने 'योगदर्शन'में कहा है—

'स्वाध्यायादिष्टदेवतासम्प्रयोगः ।'

'नामोच्चारणसे इष्टदेव परमेश्वरके साक्षात् दर्शन होते हैं।'

वास्तवमें नामकी महिमा वही पुरुष जान सकता है, जिसका मन निरन्तर श्रीभगवन्नाममें संलग्न रहता है। नामकी प्रिय और मधुर स्मृतिसे जिसके क्षण-क्षणमें रोमाञ्च और अश्रुपात होते हैं, जो जलके वियोगमें मछलीकी भाँति क्षणभरके नाम-वियोगसे भी विकल हो उठता है, जो महापुरुष निमेषमात्रके लिये भी भगवान्‌के नामको नहीं छोड़ सकता और जो निष्कामभावसे निरन्तर प्रेमपूर्वक जप करते-करते उसमें तल्लीन हो चुका है, ऐसा ही महात्मा पुरुष इस विषयके पूर्णतया वर्णन करनेका अधिकारी है और उसीके लेखससे संसारमें विशेष लाभ पहुँच सकता है।

मेरा अनुभव—कुछ मित्रोंने मुझे भगवन्नामके विषयमें अपना अनुभव लिखनेके लिये अनुरोध किया है, परंतु जब कि मैंने भगवन्नामका विशेष संख्यामें जप ही नहीं किया, तब मैं अपना अनुभव क्या लिखूँ ? भगवत्कृपासे जो कुछ यत्किंचित् नामस्मरण मुझसे हो सका है, उसका माहात्म्य भी पूर्णतया लिखा जाना कठिन है।

नामका अभ्यास मैं लड़कपनसे ही करने लगा था, जिससे शनैः-शनैः मेरे मनकी विषय-वासना कम होती गयी और पापोंसे हटनेमें मुझे बड़ी सहायता मिली। काम-क्रोधादि अवगुण कम होते गये, अन्तःकरणमें शान्तिका विकास हुआ। कभी-कभी नेत्र बंद करनेसे भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका अच्छा ध्यान भी होने लगा। सांसारिक स्फुरणा बहुत कम हो गयी। भोगोंमें वैराग्य हो गया। उस समय मुझे वनवास या एकान्त स्थानका रहन-सहन अनुकूल प्रतीत होता था।

इस प्रकार अभ्यास होते-होते एक दिन स्वप्नमें श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीसहित भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके दर्शन हुए और उनसे बातचीत भी हुई। श्रीरामचन्द्रजीने वर माँगनेके लिये मुझसे बहुत कुछ कहा, पर मेरी इच्छा कुछ भी माँगनेको नहीं हुई। अन्तमें बहुत आग्रह करनेपर भी मैंने इसके सिवा और कुछ नहीं माँगा कि 'आपसे मेरा वियोग कभी न हो।' यह सब नामका ही फल था।

इसके बाद नामजपसे मुझे और भी अधिक लाभ हुआ, जिसकी महिमाका वर्णन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। हाँ, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि नामजपसे मुझे जितना लाभ हुआ है, उतना श्रीमद्भगवद्गीतांके अभ्यासको छोड़कर अन्य किसी भी साधनसे नहीं हुआ।

जब-जब मुझे साधनसे च्युत करनेवाले भारी विघ्न प्राप्त हुआ करते थे, तब-तब मैं प्रेमपूर्वक, भावनासहित नामजप करता था और उसीके प्रभावसे मैं उन विघ्नोंसे छुटकारा पाता था। अतएव मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि साधन-पथके विघ्नोंको दूर करने और मनमें होनेवाली सांसारिक स्फुरणाओंका नाश करनेके लिये स्वरूपचिन्तनसहित प्रेमपूर्वक भगवन्नाम-जप करनेके समान दूसरा कोई साधन नहीं है। जब कि साधारण संख्यामें भगवन्नामका जप करनेसे ही मुझे इतनी

परम शान्ति, इतना अपार आनन्द और इतना अनुपम लाभ हुआ है, जिसका मैं वर्णन नहीं कर सकता, तब जो पुरुष भगवन्नामका निष्काम भावसे ध्यानसहित नित्य-निरन्तर जप करते हैं, उनके आनन्दकी महिमा तो कौन कह सकता है।

कलिजुग सम जुग आन नहिं जौं नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥

(रा० च० मा० ७। १०३ (क))

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥

(रा० च० मा० १। २१)

प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय—आनन्दमय भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनके लिये सर्वोत्तम उपाय 'सच्चा प्रेम' है। वह प्रेम किस प्रकार होना चाहिये, इस विषयमें आपकी सेवामें कुछ निवेदन किया जाता है।

श्रीलक्ष्मणकी तरह कामिनी-काञ्चनको त्यागकर भगवान्‌के लिये वन-गमन करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

ऋषिकुमार सुतीक्ष्णकी तरह प्रेमोन्मत्त होकर विचरनेसे भगवान् मिल सकते हैं।

श्रीरामके शुभागमनके समाचारसे सुतीक्ष्णकी कैसी विलक्षण स्थिति होती है, इसका वर्णन श्रीतुलसीदासजीने बड़े ही प्रभावशाली शब्दोंमें किया है। भगवान् शिवजी उमासे कहते हैं—

होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी॥
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा। को मैं चलेउँ कहाँ नहिं बूझा॥
कबहुँक फिरि पाछें पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥
अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखैं तरु ओट लुकाई॥
अतिसय प्रीति देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदयँ हरन भव भीरा॥
मुनि मग माझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
तब रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥

(रा० च० मा० ३। १०। ९—१६)

श्रीहनुमान्‌जीकी तरह प्रेममें विह्वल होकर अति श्रद्धासे भगवान्‌की शरण ग्रहण करनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं।

कुमार भरतकी तरह राम-दर्शनके लिये प्रेम-विह्वल होनेसे भगवान् प्रत्यक्ष मिल सकते हैं। चौदह सालकी अवधि पूरी होनेके समय प्रेममूर्ति भरतजीकी कैसी विलक्षण दशा थी, इसका वर्णन श्रीतुलसीदासजीने बहुत ही मार्मिक शब्दोंमें किया है—

रहेउ एक दिन अवधि अधारा। समुझत मन दुख भयउ अपारा॥
कारन कवन नाथ नहिं आयउ। जानि कुटिल किधौं मोहि बिसरायउ॥
अहह धन्य लछिमन बड़भागी। राम पदारबिंदु अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहिं लीन्हा॥
जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहिं निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई। मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥
बीतें अवधि रहहिं जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना॥

राम बिरह सागर महँ भरत मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत आइ गयउ जनु पोत॥
बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात॥

(रा० च० मा० ७। १। १—८; ७। १ क, ख)

हनुमान्‌के साथ वार्तालाप होनेके अनन्तर श्रीरामचन्द्रजी-से भरत-मिलाप होनेके समयका वर्णन इस प्रकार है। शिवजी महाराज देवी पार्वतीसे कहते हैं—

राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदयँ लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुअन धनी॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मो पहिं जाति नहिं उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही॥
बूझत कृपानिधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कौसलनाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

(रा० च० मा० ७। ५। छं० १-२)

भगवान् श्रीरामका ध्यान—श्रीभगवान्‌ने गीतामें ध्यानकी बड़ी महिमा गायी है। ध्यानके प्रकार बहुत-से हैं। साधकको अपनी रुचि, भावना और अधिकारके अनुसार तथा अभ्यासकी सुगमता देखकर किसी भी एक प्रकारसे ध्यान करना चाहिये। एकान्तमें आसनपर बैठकर साधकको दृढ़ निश्चयके साथ आगे लिखी धारणा करनी चाहिये—

(१) मिथिलापुरीमें महाराज जनकके दरबारमें भगवान् श्रीरामजी अपने छोटे भाई श्रीलक्ष्मणजीके साथ पधारते हैं। भगवान् श्रीराम दूर्वाके अग्रभागके समान हरित आभायुक्त सुन्दर श्यामवर्ण और श्रीलक्ष्मणजी स्वर्णाभ गौरवर्ण हैं। दोनों इतने सुन्दर हैं कि जगत्की सारी शोभा और सारा सौन्दर्य इनके सौन्दर्यसमुद्रके सामने एक जलकण भी नहीं है। किशोर-अवस्था है। धनुष-बाण और तरकश धारण किये हुए हैं। कमरमें सुन्दर दिव्य पीताम्बर है। गलेमें मोतियोंकी, मणियोंकी और सुन्दर सुगन्धित तुलसीमिश्रित पुष्पोंकी मालाएँ हैं। विशाल और बलकी भण्डार सुन्दर भुजाएँ हैं, जो रत्नजटित कड़े और बाजूबंदसे सुशोभित हैं। ऊँचे और पुष्ट कंधे हैं, अति सुन्दर चिबुक है, नुकीली नासिका है। कानोंमें झूमते हुए मकराकृति सुवर्णकुण्डल हैं। सुन्दर अरुणिमायुक्त कपोल हैं। लाल-लाल अधर हैं। उनके सुन्दर मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको भी नीचा दिखानेवाले हैं। कमलके समान बहुत ही प्यारे उनके विशाल नेत्र हैं। उनकी सुन्दर चितवन कामदेवके भी मनको हरनेवाली है। उनकी मधुर मुस्कान चन्द्रमाकी किरणोंका तिरस्कार करती है। तिरछी भौंहें हैं। चौड़े और उन्नत ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक सुशोभित है। काले, घुँघराले मनोहर बालोंको देखकर भौरोंकी पंक्तियाँ भी लजा जाती हैं। मस्तकपर सुन्दर सुवर्णमुकुट सुशोभित हैं। कंधेपर यज्ञोपवीत शोभा पा रहे हैं। मत्त गजराजकी चालसे दोनों चल रहे हैं। इतनी सुन्दरता है कि करोड़ों कामदेवोंकी उपमा भी उनके लिये तुच्छ है।

(२) महामनोहर चित्रकूट पर्वतपर वटवृक्षके नीचे भगवान् श्रीराम, भगवती श्रीसीताजी और श्रीलक्ष्मणजी बड़ी सुन्दर रीतिसे विराजमान हैं। नीले और पीले कमलके समान कोमल और अत्यन्त तेजोमय उनके श्याम और गौर शरीर ऐसे लगते हैं, मानो चित्रकूटरूपी कामसरोवरमें प्रेम, रूप और शोभामय कमल खिले हों। ये नखसे शिखातक परम सुन्दर, सर्वथा अनुपम और नित्य दर्शनीय हैं। भगवान् राम और लक्ष्मणके कमरमें मनोहर मुनिवस्त्र और सुन्दर तरकश बँधे हैं। श्रीसीताजी लाल वसनसे और नानाविध आभूषणोंसे सुशोभित हैं। दोनों भाइयोंके वक्षःस्थल और कंधे विशाल हैं। वे कंधोंपर यज्ञोपवीत और वल्कलवस्त्र धारण किये हुए हैं। गलेमें सुन्दर पुष्पोंकी मालाएँ हैं। अति सुन्दर भुजाएँ हैं। कर-कमलोंमें सुन्दर धनुष सुशोभित हैं। परम शान्त, परम प्रसन्न मनोहर मुखमण्डलकी शोभाने करोड़ों कामदेवोंको जीत लिया है। मनोहर मधुर मुस्कान है। कानोंमें पुष्पकुण्डल शोभित हो रहे हैं। सुन्दर अरुण कपोल हैं। विशाल, कमल-जैसे कमनीय और मधुर आनन्दकी ज्योतिधारा बहानेवाले अरुण नेत्र हैं। उन्नत ललाटपर ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक हैं और सिरपर जटाओंके मुकुट बड़े मनोहर लगते हैं। तीनोंकी यह वैराग्यपूर्ण मूर्ति अत्यन्त सुन्दर है।

भगवान् श्रीरामचन्द्र—सर्वमान्य आदर्श

(परमपूज्य गुरुजी श्रीमाधवराव सदाशिवराव गोलवलकर)

सम्पूर्ण भारतीय समाजके लिये समान आदर्शके रूपमें भगवान् रामचन्द्रको उत्तरसे लेकर दक्षिणतक सब लोगोंने स्वीकार किया है। उत्तरमें गुरु गोविन्दसिंहजीने रामकथा लिखी है, पूर्वकी ओर 'कृत्तिवासरामायण' चलती है, महाराष्ट्रमें 'भावार्थरामायण' चलती है, हिंदीमें गोस्वामीजीकी रामायण 'श्रीरामचरितमानस' सर्वत्र प्रसिद्ध है ही। सुदूर दक्षिणमें महाकवि कम्बनद्वारा लिखित 'कम्बरामायण' अत्यन्त भक्तिपूर्ण सरस ग्रन्थ है। मनुष्यके जीवनमें आनेवाले सभी सम्बन्धोंको पूर्ण एवं उत्तमरूपसे निभानेकी शिक्षा देनेवाला प्रभु रामचन्द्रके चरित्रके समान दूसरा कोई चरित्र नहीं है। उनका पराक्रम समग्र भारतकी एकताका प्रत्यक्ष चित्र है। आदिकविने उनके सम्बन्धमें कहा है कि वे गाम्भीर्यमें समुद्रके समान और धैर्यमें हिमाचलके समान हैं—'समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव।' इस प्रकारके शब्दोंका प्रयोग करके मानो उन्होंने हम सबके सामने वह बात रखी कि आसेतु 'हिमाचल' भारतके लिये प्रभु श्रीराम ही आदर्श हैं। उत्तरसे लेकर दक्षिणतक भिन्न-भिन्न भाषाओंके सभी महाकवियोंने इस आदर्शको स्वीकार करके तथा उस महापुरुषके चरित्रका गान करके हमलोगोंको धर्मके मार्गपर चलनेके लिये प्रेरित किया है।

श्रीरामकी कृपा-प्राप्तिका अन्यतम मार्ग—नाम-साधना

(ब्रह्मलीन पूज्यपाद श्रीप्रेमभिक्षुजी महाराजकी अमृत वाणी)

करुणावरुणालय श्रीमद्राघवेन्द्र सरकार महाप्रभु अप्राकृत और सच्चिदानन्दघन हैं। उनके नाम भी अप्राकृत और सच्चिदानन्द-स्वरूप हैं। भगवान् श्रीराम सर्वथा पूर्ण, शुद्ध, नित्यमुक्त और रसस्वरूप एवं रससिद्ध हैं। उनका नाम भी रसात्मक और त्रयताप-विनाशक है। संत रज्जब कहते हैं—

राम रस पीजिये रे, पीये सब सुख होय।
पीवत ही पातक कटै सब संतनि दिसि जोय॥
निसिदिन सुमिरण कीजिये तन-मन-प्राण समोय।
जनम सुफल साईं मिलै, सोइ जपि साधहु दोय॥

श्रीरामनामका निरन्तर उच्चारण अथवा जप उस आध्यात्मिक लोकका मार्ग है, जहाँ सच्चे तत्त्वका अस्तित्व है। सत्यकी सिद्धिके लिये प्रधान आवश्यकता इस बातकी है कि निष्ठापूर्वक निरन्तर भगवन्नामका जप किया जाय। भगवन्नामोच्चारके समय हृदय द्रवित हो उठे, नेत्रोंमें प्रेमाश्रु छलक आये, शरीर पुलकायमान हो उठे तो समझो नामकी सिद्धि हो गयी। गोस्वामीजीने कहा है कि—

हिय फाटहुँ फूटहुँ नयन जरउ सो तन केहि काम।
द्रवहिं स्रवहिं पुलकइ नहीं तुलसी सुमिरत राम॥

और भगवान् रामने कहा है—

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गदगद गिरा नयन बह नीरा॥

प्रभुपाद-पद्मोंके अनन्यानुरागी भरतलालजीको यह स्थिति सहज प्राप्त थी। नन्दिग्रामकी पर्णकुटीमें वास करते समय जो उनकी दशा हो रही थी, वही भक्तिकी पराकाष्ठा है—

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥

अतः भगवद्दर्शनाभिलाषी भक्तको चाहिये कि वह नित्यप्रति अपने हृदयकी परीक्षा करे और जबतक नाम-जपमें पुलक एवं अश्रुपात नहीं होता, तबतक भक्तिमें कमी मानकर आगे बढ़नेका प्रयास करे। इस प्रकारके भगवन्नामोच्चारका प्रभाव यह होता है कि जापकका मन सब प्रकारके कुविचारों तथा दुरभिलाषाओंसे मुक्त होकर निर्मल हो जाता है, सत्संगकी ओर रुचि बढ़ती है, आध्यात्मिक मार्गमें आनेवाली विघ्न-बाधाएँ सहज ही दूर हो जाती हैं तथा हृदय नाम-साधनाके शीर्षबिन्दुमें केन्द्रित हो जाता है और अन्तमें जापककी आँखोंके समक्ष निरतिशय आनन्द और नित्य ज्ञानस्वरूप भगवान् श्रीरामकी मनोरममूर्ति उपस्थित हो जाती है, जिससे वह पूर्णकाम होकर मुक्त हो जाता है।

श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजीका विश्वास है कि भगवन्नामको हम चाहे जिस प्रकार लें वह महामङ्गलकारी होता है—

तुलसी अपने राम को, रीझ भजो या खीझ।
उलटो सीधो जामिहैं, खेत परे को बीज॥

जैसे बीज खेतमें उलटा पड़े या सीधा वह अङ्कुरित हो ही जाता है, वैसे ही श्रीरामजीका भजन प्रसन्नताके साथ किया जाय या क्रोधके साथ वह सर्वथा कल्याणप्रद होता है।

श्रीराम-नाम गङ्गाजल-जैसा पवित्र है। गङ्गा-जल यदि मृतककी खोपड़ीपर डाला जाय तो उसे भी पवित्र कर देता है। वैसे ही नामरूपी गङ्गाजल नाम-जापकके मस्तिष्करूपी खोपड़ीमें आकर समस्त जन्म-जन्मान्तरके संचित विकारोंको दूर कर देता है। भगवान्‌का ऐसा पावन नामोच्चार करते समय ऐसी भावना करनी चाहिये कि हमारे सभी पाप-ताप, कलुष-कल्मष दूर हो गये हैं और बुरे कर्मोंको छोड़नेका प्रयास करें तभी नामका माहात्म्य समझमें आयेगा। नामजप करते समय हम प्रभुके पावन चरितका ध्यान करें, उसे अपने जीवनमें उतारें तभी हमारा कल्याण होगा और हमारी भक्ति फलवती होगी।

(प्रेषक—श्रीचन्द्रेश्वरप्रसादसिंहजी)

जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करइ चैतन्य।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य॥
सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

भगवान् श्रीसीतारामजीका ध्यान

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

कोसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकस्य मनभृङ्गसङ्गिनौ॥

(रा० च० मा० उ०, श्लोक २)

'कोसलपुरीके स्वामी श्रीरामचन्द्रजीके सुन्दर और कोमल दोनों चरण-कमल ब्रह्माजी और शिवजीके द्वारा वन्दित हैं, श्रीजानकीजीके करकमलोंसे दुलराये हुए हैं और चिन्तन करनेवालेके मनरूपी भौंरेके नित्य-सङ्गी हैं, अर्थात् चिन्तन करनेवालोंका मनरूपी भ्रमर सदा उन चरण-कमलोंमें बसा रहता है।'

ध्याताको चाहिये कि वह सावधानीके साथ अपने चित्त-को श्रीअवधमें ले चले। बड़ा सुन्दर रमणीय श्रीअवधधाम है। अखिलभुवन-मण्डलके एकच्छत्र सम्राट् चक्रवर्ती महाराज भगवान् श्रीराघवेन्द्रजीकी पुरी बड़ी रमणीय है। रामराज्यकी सारी शोभा, रामराज्यकी आदर्श समाजव्यवस्था श्रीअवधमें वर्तमान है। सभी ओर सब कुछ सुशोभन है। कलुषनाशिनी श्रीसरयूजी मन्द-मन्द वेगसे बह रही हैं। श्रीसरयूजीके तटपर श्रीराघवेन्द्रका विहारोद्यान है। फलों और पुष्पोंसे सुसज्जित बड़ा सुन्दर बगीचा है। बगीचेमें चारों ओर बड़े सुन्दर और मनोहर पुष्पोंसे सुशोभित वृक्ष हैं। उनमें भाँति-भाँतिके पुष्प खिले हुए हैं। उनके विविध प्रकारके सौरभसे सारा उद्यान सुरभित हो रहा है। पुष्पोंपर भौंरे मँडरा रहे हैं। पुष्पोंकी रंग-बिरंगी शोभासे सभी ओर सुषमा छा रही है। फलोंके वृक्ष विविध फलोंके भारसे लदे हैं। बीचमें एक बड़ा मनोहर सरोवर है। सरोवरमें कमल खिले हुए हैं। सरोवरके भीतर जलपक्षी केलि कर रहे हैं। चारों ओर सुन्दर-सुन्दर घाट हैं। सरोवरके उत्तरकी ओर एक बड़ा सुन्दर कल्पवृक्ष है। वह सघन और फैला हुआ है। कल्पवृक्षके नीचे बहुत बढ़िया स्फटिकमणिका सिंहासन बना हुआ है। चारों ओर विविध पुष्पोंकी लताएँ बिखरी हुई हैं। उनमें विविध भाँतिके सुन्दर एवं सुरभित पुष्प खिले हुए हैं। संध्याका समय है। बड़ा सुन्दर और सुगन्धित मन्द-मन्द समीर बह रहा है। इस मनोहर पुष्पोद्यानमें श्रीराघवेन्द्र भगवान् श्रीरामचन्द्रजी और अखिल जगत्की जननी श्रीजानकीजी नित्य संध्याके समय पधारते हैं। उस समय उनके साथ कोई सेवक नहीं रहता, केवल श्रीहनुमान्जी रहते हैं। आज भी भगवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी सारी सुषमाके साथ—समस्त शोभाओंसे युक्त विश्वजननी श्रीजनकनन्दिनीके साथ पधारे हैं। भगवान् बड़ी मन्दगतिसे धीरे-धीरे सरोवरके निकट चले आते हैं। उनके पीछे-पीछे हनुमान्जी हैं। श्रीभगवान् उत्तरतटकी ओर पधारे हैं। शाखा-प्रशाखाओंके सुन्दर वितानवाले कल्पवृक्षके नीचे स्फटिक-मणिकी एक मनोहर पीठिका है। उस स्फटिकमणिके सुन्दर सिंहासनपर बहुत ही बढ़िया और सुकोमल दूर्वाके रंगका एक गलीचा बिछा हुआ है। उसके पीछे दो तकिये लगे हुए हैं। दोनों ओर दो सुन्दर मसनद हैं। चौकीके सामने नीचेकी ओर चरण रखनेके लिये दो पादपीठ (पीढ़े) सुसज्जित हैं। उनपर दो सुन्दर कोमल गद्दियाँ बिछी हुई हैं। सामने बायीं ओर थोड़ी दूरपर मरकतमणिकी नीची चौकीपर श्रीहनुमान्जीके लिये आसन है। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी श्रीजनकनन्दिनीजीके साथ गलीचेवाले स्फटिकमणिके सिंहासनपर विराजमान हो गये हैं। श्रीहनुमान्जी सामने बैठ गये हैं और भगवान् श्रीरामके नेत्रोंकी ओर किसी आज्ञाकी प्रतीक्षामें टकटकी लगाकर देख रहे हैं। भगवान् श्रीरामका बड़ा सुन्दर स्वरूप है। भगवान्के श्रीअङ्गका वर्ण नील-हरिताभ उज्ज्वल है—नीला, नीलेमें कुछ हरी आभा, उसपर उज्ज्वल प्रकाश—**'केकीकण्ठाभ-नीलम्'** जैसे मयूरके कण्ठकी नीलिमामें हरित आभा होती है, चमकता रंग होता है, उसी प्रकार श्रीभगवान्के अङ्गका रंग नीलहरिताभ उज्ज्वल है। बड़ी ही सुन्दर आभा है—दिव्य चमकता प्रकाश। भगवान्के श्रीअङ्गका वर्णन आता है—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।

(रा० च० मा० १। १४६)

—नील सुन्दर कमलके समान भगवान्के कोमल अङ्ग हैं, नीलमणिके समान अत्यन्त चिकने और चमकते हुए अङ्ग हैं, नव-नील-नीरद-जलवाले बादलोंके समान सरस अङ्ग हैं। सरसता, सुकोमलता और सुचिक्कणता महान् प्रकाशके साथ सुशोभित हैं। एक-एक अङ्ग इतना मनोहर, मधुर और आकर्षक है कि करोड़ों कामदेव एक-एक अङ्गपर निछावर

किये जा सकते हैं। इनकी शोभा अतुलनीय और निरुपम है। श्रीभगवान्‌के अङ्ग-अङ्गसे मनोहर सुस्निग्ध ज्योति निकल रही है। उनमें सहस्रों, लक्षों, कोटि-कोटि सूर्यका प्रकाश है; पर उसमें तनिक भी उत्ताप नहीं, दाहकता नहीं। करोड़ों चन्द्रमाकी शीतलता साथ लिये हुए हैं। सूर्यकी तीव्र प्रकाशमयी उष्णता और चन्द्रमाकी सुधावर्षिणी ज्योत्स्नामयी शीतलताका समन्वय, दोनोंका एक ही समय, एक ही साथ रहना कैसा होता है, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता। श्रीभगवान्‌के रोम-रोमसे एक प्रकारकी दिव्य ज्योति निकल रही है, जो अपनी आभासे समस्त प्रदेशको ज्योतिर्मय बनाये हुए है। भगवान्‌ने ज्योतिर्मय पीतोज्ज्वल रंगका दिव्य वस्त्र धारण कर रखा है, जिसमें लाल किनारी है। किनारीकी लालिमा भी उज्ज्वल प्रकाशमयी है। उस वस्त्रके सुन्दर स्वर्णमय प्रकाशके भीतरसे नील-हरिताभ अङ्गज्योति निकल-निकलकर एक विचित्र विलक्षण रंगवाली आभा बन गयी है। नील-हरिताभ-उज्ज्वल ज्योतिके साथ-साथ भगवान्‌के स्वर्णवर्ण पीताम्बरकी पीताभ-ज्योति मिलकर एक विचित्र वर्णवाली ज्योति बन गयी है, जिसे देखकर चित्त मुग्ध हो जाता है। उसे देखते ही बनता है। भगवान्‌की पीठपर गलेसे आता हुआ एक दुपट्टा लहरा रहा है, जिसका स्वर्ण-अरुण वर्ण है। भगवान्‌के श्रीचरण बड़े सुन्दर, सुकोमल और अत्यन्त मनोहर हैं। श्रीभगवान्‌का वाम चरण नीचेके पादपीठपर टिका हुआ है। दक्षिण चरणको भगवान् श्रीराघवेन्द्रने अपने बायें जङ्घेपर रख लिया है, जिसका तल जगज्जननी जानकीजीकी ओर है। भगवान्‌के श्रीचरण-तल बड़े मनोहर और सुन्दर हैं, उनके ध्वंजा-वज्र-कमल आदिकी सुन्दर रेखाएँ स्पष्ट हैं। चरण-तल सुकोमल, अरुणाभ हैं, उनसे लाल-लाल ज्योति निकल रही है। भगवान्‌के श्रीचरणोंकी अँगुलियाँ, जो एक-से-एक छोटी अँगुलीसे अँगूठेतक उत्तरोत्तर वृद्धिको प्राप्त हो रही हैं, परम सुशोभित हैं। भगवान्‌के श्रीचरणोंसे ज्योति निकल रही है, चरण-नखसे विद्युत्‌की तरह सुस्निग्ध मनोहर ज्योति निःसृत हो रही है, जो अत्यन्त प्रकाशमयी है। उस ज्योतिकी किरणें जिस-जिसके समीप जाती हैं, उसी-उसीमें ब्रह्मज्ञानका उदय हो जाता है। यह उनकी चरण-कमल-प्रभाका सहज प्रसाद है। भगवान्‌के श्रीचरणोंमें नूपुर हैं। पिंडलियाँ और घुटने बड़े सुन्दर हैं। जाँघें बड़ी सुकोमल, बड़ी स्निग्ध, सुचिक्कण और अत्यन्त शोभनीय हैं। भगवान्‌की कटि अत्यन्त सुन्दर है। भगवान्‌ने उसमें रत्नोंकी—दिव्य रत्नोंकी—दिव्य स्वर्णकी करधनी पहन रखी है। उस करधनीमें नवीन-नवीन प्रकारके छोटे-बड़े मुक्ताफल लटक रहे हैं, बीच-बीचमें—मुक्ताओंके बीचमें मधुर ध्वनि करनेवाली घुँघरियाँ लगी हैं। भगवान्‌का उदरदेश बड़ा सुन्दर है, गम्भीर नाभि है, उदरमें तीन रेखाएँ हैं। भगवान्‌का वक्षःस्थल बहुत चौड़ा है, विशाल है। वक्षःस्थलमें बायीं ओर भृगुलताका चिह्न है, दाहिनी ओर पीत-केसरवर्णकी मनोहर रेखा है तथा श्रीवत्सका चिह्न—गोलाकार रोमसमूह है। भगवान्‌के विशाल वक्षःस्थलपर अनेक प्रकारके आभूषण सुशोभित हैं। गलेमें रत्नमाला लटक रही है, मुक्तामणिके हार हैं और कौस्तुभमणि है। राजोद्यानके सुन्दर-सुन्दर विचित्र पुष्पोंकी माला है, पुष्पोंका हार है, जो सारे वक्षःस्थलको आच्छादित करते हुए नाभिदेशतक लटक रहा है। कटितटतक नीचे पुष्पहारसे सुगन्ध निकल रही है। उस पुष्पहारपर भ्रमर मँडरा रहे हैं, मधुर गुंजार कर रहे हैं। भगवान्‌के कंधे बड़े मजबूत—सुदृढ़ और बड़े ऊँचे हैं—सिंहके समान कंधे हैं। भगवान्‌की विशाल बाहुएँ हैं। वे आजानुबाहु हैं। उनकी भुजाएँ घुटनोंतक लंबी हैं; हाथीकी सूँडकी तरह, ऊपर मोटी, नीचे पतली हैं। इतनी सुडौल और सुन्दर हैं कि देखते ही चित्त मुग्ध हो जाता है। वे भुजाएँ सारे जगत्‌की रक्षाके लिये, साधु-परित्राण और असाधुओंके विनाशके लिये नित्य प्रस्तुत हैं। विशाल बाहुओंमें बाजूबंद हैं। उनमें नीलम, पन्ना और हीरे जड़े हुए हैं। उन दोनों बाजूबंदोंके बीचमें एक-एक लड़ लटक रही है। लड़में बड़े सुन्दर, महामूल्यवान् रत्न जड़े हुए हैं। भगवान्‌के पहुँचोंमें रत्नोंके जो कड़े हैं, उनसे ज्योति निकल रही है। भगवान्‌के करकमलोंकी अंगुलियोंमें रत्नोंकी अँगूठियाँ सुशोभित हैं, जो एक-से-एक विचित्र हैं। भगवान्‌के श्रीअङ्गका वर्ण नील-हरिताभ-उज्ज्वल है और पीताम्बरका वर्ण स्वर्णसम उज्ज्वल है। भगवान्‌के विविध आभूषणोंके भाँति-भाँतिके रत्न अलग-अलग वर्णोंकी आभा बिखेर रहे हैं। सभी रत्नोंकी आभा मिलकर भगवान्‌के चारों ओर एक विचित्र ज्योति छिटक रही है, जिसके कारण भगवान्‌की विलक्षण शोभा हो रही है। उसके विषयमें मनुष्य न तो कुछ कह सकता

है न वर्णन कर सकता है। कम्बुकण्ठ है—गलेमें रेखाएँ हैं। भगवान्‌की बड़ी सुन्दर ठोड़ी है। अधरोष्ठ अरुण वर्णके हैं। मनोहर स्वाभाविक मन्द-मन्द मुसकान उनपर थिरक रही है। मन्दहास्य सबको विमोहित कर रहा है। दन्तपंक्ति बड़ी ही सुन्दर है, ऐसा लगता है मानो हीरे चमक रहे हैं। उनमें उज्ज्वलता है, उनसे ज्योति निकल रही है, जो अरुण अधरोष्ठपर पड़कर विचित्र शोभा उत्पन्न कर रही है। भगवान्‌के सुन्दर सुचिक्कण कपोल हैं। उनकी नुकीली नासिका है। भगवान्‌के दोनों कान बड़े मनोहर हैं, उनमें मछलीकी आकृतिके बड़े सुन्दर रत्नोंके कुण्डल चमचमा रहे हैं। भगवान्‌के नेत्र बहुत बड़े हैं, बहुत विशाल हैं। भगवान्‌के नेत्रोंसे कृपा, शान्ति और आनन्दकी धारा अनवरत निकल रही है। भगवान्‌की सुन्दर नेत्र-ज्योति है। मनोहर टेढ़ी भ्रुकुटि है, जो मुनियोंके भी मनको हर लेती है। जिन्होंने एक बार भी उनका दर्शन कर लिया, वे सारे साधन भूलकर, जीवन भूलकर भगवान्‌के श्रीचरण-प्रान्तमें निरन्तर निवास करनेका मनोरथ करने लगते हैं। भगवान्‌का विशाल ललाट है, उसपर तिलक सुशोभित है। तिलकके दोनों ओर श्वेत रेखा है और बीचमें लाल रेखा है। मस्तकपर काले-काले घुँघराले केश ऐसे लगते हैं, मानो अगणित भ्रमर मँडरा रहे हों। भगवान्‌की मनोहर अलकावली मुनियोंके मनको हरनेवाली है। उनके मस्तकपर सुन्दर रत्नोज्ज्वल किरीट है; वह इतना चमकता है, इतना बढ़िया है, उसमें इतने रत्न जड़े हैं कि उसकी शोभाका वर्णन नहीं किया जा सकता। वह इतना हलका और पुष्प-सा कोमल है कि कुछ कहा नहीं जा सकता। भगवान्‌के वस्त्राभूषण सब-के-सब दिव्य हैं, चेतन हैं। भगवान् श्रीराघवेन्द्रके दाहिने कंधेपर धनुष है, बायें हाथमें बाण सुशोभित है, पीछे कटिमें बाणोंका तरकश बँधा हुआ है। भगवान् दाहिने हाथमें सुन्दर पुष्प लिये हुए हैं—बड़ा मधुर सुगन्धयुक्त, छोटा-सा अनेक दलोंका सुन्दर रक्त-कमल है, उसकी नालको पकड़े हुए वे घुमा रहे हैं। इस प्रकार श्रीराघवेन्द्र कल्पवृक्षके नीचे स्फटिकमणिके सिंहासनपर हरिताभ गलीचेपर विराजमान हैं।

वामपार्श्वमें श्रीजनकनन्दिनीजी विराजमान हैं। उनके दोनों अति कोमल श्रीचरण-कमल नीचेके पादपीठपर विराजित हैं। उनका पवित्र सुन्दर स्वर्णोज्ज्वल वर्ण है। सोनेके समान वदनकी आभा है, पर सोनेकी भाँति कठोर नहीं है। सोनेकी भाँति चमचमाते हुए माताजीके समस्त अङ्ग अत्यन्त सुकोमल और तेजसे युक्त हैं। करोड़ों सूर्य-चन्द्रकी शीतल प्रकाशमयी उज्ज्वल ज्योतिधारा उनके श्रीअङ्गसे वैसे ही निकल रही है, जैसे भगवान् श्रीरामके श्रीअङ्गसे। श्रीसीताजी विविध आभूषणोंसे सज्जित हैं—नीलवर्णके वस्त्र हैं, वक्षःस्थलपर आभूषण हैं, बायें हाथमें पुष्प है, दाहिने हाथसे कर्ण-कुण्डलोंको सुधार रही हैं। जङ्घापर रखे भगवान्‌के श्रीचरण-तलकी ओर जनकनन्दिनीके दिव्य नेत्र लगे हैं—पलक नहीं पड़ रही है। वे श्रीरामके चरणतलके दर्शनानन्दमें विभोर हैं, दूसरी ओर उनका दृष्टिपात ही नहीं है। भगवान्‌की नील-हरिताभ उज्ज्वल आभावाली ज्योति नित्य नयी छटा दिखा रही है। उसके साथ श्रीजनकनन्दिनीजीकी स्वर्णिम अङ्गज्योति, उनके नील वस्त्रकी ज्योति, आभूषणोंकी ज्योति—सब मिलकर एक विचित्र वर्णवाली ज्योति चारों ओर छिटक रही है। उसकी शोभा अवर्णनीय है।

सामने बायीं ओर थोड़ी दूरपर नीचे मरकतमणिके आसनपर श्रीमारुतिजी विराजमान हैं। उनके श्रीअङ्गका पिङ्गलवर्ण है, जो उज्ज्वल आभासे युक्त है। वे लाल वस्त्र पहने हुए हैं, सब अङ्गोंपर श्रीरामनाम अङ्कित है। हृदय-देश मानो दर्पण है। उसमें स्फटिकमणिके सिंहासनपर विराजमान श्रीराम-जानकी प्रतिबिम्बित हैं। उनके नेत्रोंसे अविरत प्रेमाश्रुधारा बह रही है। वे टकटकी लगाये हुए हैं। वे श्रीरामके नेत्रकी कृपाधारामें नहाते हुए अपने-आपको कृतकृत्य मान रहे हैं। शरीर रोमाञ्चित है। मुखमण्डल ज्योतिसे झलमला रहा है। शरीर आनन्दसे पुलकित है, आनन्दका अनुभव करते हुए विशेष आज्ञाकी प्रतीक्षामें वे निर्निमेष नेत्रोंसे श्रीराघवेन्द्रकी ओर निहार रहे हैं।

इस प्रकार भगवान् श्रीराम-जानकी श्रीहनुमान्‌के साथ विहारोद्यानमें विराजमान हैं। मन्द-मन्द समीर बह रहा है। समीप ही सरयूकी मन्द धारा है। अनेक प्रकारके पक्षी चहचहा रहे हैं। वनकी शोभा अत्यन्त मनोहर हो रही है। भगवान्‌का यह स्वरूप अत्यन्त मनोहर सुन्दर है। उसकी सुषमा वर्णनातीत है। कोई भी किसी कालमें वर्णन नहीं कर सकता, देखनेसे मन मुग्ध

हो जाता है। यों जब हृदयमें श्रीराम आते हैं, तब मारुतिकी तरह शीतल अश्रु-धारा बहने लगती है, शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। इस मनोहर ध्यानमें मग्न हो जाना चाहिये।

इस प्रकार भगवान् सामने हैं, उन्हें मनके द्वारा आप देख सकते हैं। तन्मयता होनेपर ध्यान हो सकता है। बड़ा सुन्दर ध्यान है। इसमें मन लग जाय तो क्या कहना है।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम

(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज)

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।४)

(श्रीशुकदेवजी कहते हैं—'राजन्!) जिन श्रीरामचन्द्रजीने अपने पिताके प्रणको पूरा करनेके निमित्त राज्यको त्याग दिया, जो इतने सुकुमार थे कि अपनी प्रिया जानकीके पाणिस्पर्शको भी सहन नहीं कर सकते थे, वे ही अति मृदुल चरणकमलोंसे पैदल ही वन-वन विचरते रहे। जिनके पथश्रमको हनुमान्‌जी तथा लक्ष्मणजी दूर करते थे। शूर्पणखाको विरूप करनेके कारण प्रिया-हरणकी विरह-व्यथासे कुपित तथा कुटिल भ्रुकुटियोंसे सागर भयभीत हो गया था, उसपर जो पुल बाँधकर दुष्ट-दलरूप वनके लिये दावानल हुए, वे कोसल-किशोर हमारी रक्षा करें।'

रामनाम अति मधुर सुखद सबकूँ सुखकारी
राम-धाम अति विमल पुण्यप्रद सब अघहारी।
राम-रूप अति सुघर मनोहर सुख सरसावन
राम-प्रिया जगजननि जीव जग-जरनि जरावन॥
राम अनुज आदरश अति, राम भक्त सुखसार हैं।
राम-चरित पावन परम, होवें सुनि भवपार हैं॥

हे राम! तुम्हारा नाम कितना मोहक है, चाहे जैसे हो रामका नाम लिये बिना कोई रह ही नहीं सकता। जिनको आपके नाम लेनेका रस मिल जाता है वे एक दिन अन्न-जलके बिना तो रह भी सकते हैं, किंतु तुम्हारा नाम लिये बिना रह नहीं सकते। और चाहे जीवनोपयोगी वस्तुओंसे मन हट भी जाय, किंतु तुम्हारे नामसे नाम-व्यसनियोंका चित्त कभी नहीं हटता। वे चाहते हैं कि जबतक जीवें, तबतक तुम्हारे नामामृतका निरन्तर पान करते रहें। प्राण जिस समय निकलने लगें, तब हमारे मुखमें एकमात्र तुम्हारा ही नाम हो। तुम्हारे नाममें इतनी मोहकता, मादकता क्यों है? क्यों इतना प्रिय है? इसे हम नामविमुख अज्ञ प्राणी क्या जानें?

जैसे तुम्हारे 'राम' इन दो सरल-सीधे अक्षरोंमें अत्यधिक आकर्षण है, वैसे ही तुम्हारे चारु-चरितोंमें आवश्यकतासे अधिक आकर्षण है। जो भी कवि कविता करने चला है, उसने आपके ही चरितोंके गानमें अपनी कविताकी सार्थकता समझी है। आपके चरितोंके गानमें कविताके गुण न भी हों, वे पद्य असम्बद्ध भी हों तो भी मनीषियोंने उनकी प्रशंसा की है। जिनको आपके चरित्रोंके सुननेका व्यसन पड़ गया है उनके कर्णकुहर कभी सुनते-सुनते भरते नहीं। जिन्हें आपके गुणगानका रोग हो गया है, उनकी वाणी आपके गुण गाते-गाते कभी थकती नहीं। जिनकी लेखनीको आपके चरित लिखनेका व्यसन पड़ गया है, उनकी लेखनी लिखते-लिखते कभी घिसती नहीं। न जाने इन चरित्रोंमें कैसा अमृत भरा है, कि बारंबार सुननेपर भी ये नित्य नये-से ही लगते हैं।

भक्तोंकी बात तो पृथक् है। भक्त तो इस लोकके जीव होते ही नहीं। वे तो अनुगृह्य-सृष्टिके जीव हैं, किंतु जो संसारी मनुष्य हैं, उनको भी आपका चरित्र आदर्श लगता है और वे आपको मनुष्य मानकर ही आपकी लीलाओंके विषयमें ऊहापोह करते रहते हैं। रामका रहन-सहन, रामका उठना-बैठना, रामका आचार-विचार, रामका मिलना-जुलना, रामका हँसना-बोलना, रामका चलना-फिरना, रामका खेलना-कूदना, रामका पढ़ना-लिखना, रामका विवाह-वनगमन, मैत्री, युद्ध, राज्य-संचालन यहाँतक कि क्रोध आदि सभी आदर्श हैं। उनमें न्यूनता नहीं, त्रुटि नहीं, परिपूर्णके समस्त कार्य परिपूर्ण ही होते हैं।

हम रामके जीवनपर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो हमें उसमें कहीं भी अपूर्णता दृष्टिगोचर नहीं होती। जिस समय जैसा कार्य करना चाहिये, रामने उस समय वैसा ही कार्य किया। राम रीति, नीति, प्रीति तथा भीति सभी जानते हैं। राम परिपूर्ण हैं, आदर्श हैं। रामने नियमका,त्यागका एक आदर्श स्थापित किया। रामने ईश्वर होकर मानवरूप रखकर मानवजातिको मानवताका पाठ पढ़ाया। मानवताका उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। मायातीत महेश होकर उन्होंने मायाका आश्रय लेकर मानवलीलाएँ कीं। क्यों कीं?

धर्मसंस्थापनके निमित्त। धर्म क्या ? जिसके अधीन होकर प्राणी अपने कर्तव्यको कुशलतापूर्वक, उत्तमतापूर्वक पालन कर सके, अपनी असीमित विषयवासनाओंको सीमित करके निर्विषय बन सके। धर्म साध्य नहीं है, साधन है। भगवान्का अवतार साधन सिखानेके निमित्त होता है, क्योंकि मनुष्य साधक है।

कर्ममात्र दोषमय, अपूर्ण और बन्धनके हेतु हैं। इसलिये नैष्कर्म्य-स्थितिको सर्वश्रेष्ठ कहा है। नैष्कर्म्य-स्थिति कर्म करके ही प्राप्त की जा सकती है, अतः धर्मपूर्वक कर्म करना ही उत्तम साधन है। इन्द्रियोंके अनुकूल विषयोंके भोगनेमें स्वाभाविक प्रवृत्ति है। इन्द्रियाँ इतनी अतृप्त हैं, इतनी भूखी हैं कि विषयोंको भोगते-भोगते ये तृप्त ही नहीं होतीं, उनको नियममें रखना यही धर्मका कार्य है। धर्म यही शिक्षा देता है। इसका उद्देश्य भोगमें प्रवृत्त कराना नहीं है, परंतु प्रधान लक्ष्य है त्याग। एकमात्र त्यागसे ही अमृतत्वकी प्राप्ति हो सकती है। भगवती श्रुति कहती हैं—**'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'** भोग करो,त्याग-भावसे करो—**'मा गृधः कस्य स्विद् धनम्'**— किसी दूसरेके धनपर मन मत चलाओ। अधर्मपूर्वक जो दूसरेके उपभोगकी वस्तु है, उसका उपभोग करनेका विचार मत करो। त्याग ही प्रधान उद्देश्य है। त्यागद्वारा ही तुम परम-पदको प्राप्त कर सकोगे। अपने मुख्य उद्देश्यकी पूर्ति कर सकोगे। रामने अपने जीवनमें एकमात्र त्यागको ही प्रधानता दी है, त्यागसे ही उन्होंने सबके मनपर अपना अधिकार जमा लिया है। त्यागकी मर्यादा स्थापित करके वे मर्यादापुरुषोत्तमके नामसे विख्यात हुए हैं। उनका जीवन सार्वजनिक होनेसे सबके उपयोगी है, क्योंकि उसमें नियमकी दृढ़ता और त्यागकी प्रबलता है, कृष्णावतारमें प्रेमकी प्रबलता और त्यागकी दृढ़ता है। यही दोनों अवतारोंमें अन्तर है। इसलिये कृष्णोपासना वैयक्तिक है और रामोपासना सार्वजनिक। रामका जीवन अनुकरणीय और शिक्षाप्रद है, आदर्श है, श्रीकृष्णका चरित्र अनुकरणीय नहीं है, वह श्रवणीय है, पठनीय है, उससे अभिप्राय निकाला जाता है कि जगत्में प्रेम ही सार है प्रेम करो, प्रेम करो।

रामका जीवन नियम-प्रधान है, कृष्णका जीवन प्रेम-प्रधान है। नियम और प्रेम—ये दोनों ही त्यागके बिना व्यर्थ हैं। अतः दोनोंके जीवनमें त्याग ओतप्रोत है। त्यागके बिना जीवन नहीं। वह तो बन्धन है, मोह है। कृष्णकी लीलाएँ प्रेम-प्रधान होनेसे वैयक्तिक हैं। रामकी लीलाएँ आदर्श, मर्यादापूर्ण होनेसे सार्वजनिक हैं। शिक्षाप्रद हैं। प्रेमके बिना तो वे हो ही नहीं सकतीं। किंतु उनमें संयत प्रेम है। नियमपूर्वक प्रेम है और श्रीकृष्ण तो **'इभराडिव भिन्नसेतुः'** हैं। जैसे गजराज नदीके तटोंको छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण-लीलामें प्रेमके सम्मुख सबको तुच्छ माना है, इसलिये यह मार्ग अत्यन्त कठिन है। पग-पगपर पतनकी सम्भावना है। रामचरित्र राजपथ है, आँख मूँदकर चले जाओ। गन्तव्य स्थानपर पहुँच जाओगे। रामने मानवधर्मको प्रकाशित करके अवतार धारण किया। भक्तोंको मर्यादाका पाठ पढ़ानेके लिये ही अपने चार चरित्रोंका सुन्दर सेतु बना दिया, जिससे सुगमता-पूर्वक प्राणी भवसागरको पार कर सकें।

रामका जीवन त्यागमय जीवन है, राम सबका आदर करते हैं, इसीलिये वे बड़े हैं। जो संग्रही है, अपनी ही प्रतिष्ठा चाहता है, अपनी ही बात रखना चाहता है, वह कृपण है। राम जो करते हैं, दूसरोंके लिये करते हैं, मेरे कारण किसीको क्लेश न हो इसका वे सदा ध्यान रखते हैं। रामके दो रूप हैं, परब्रह्म-रूप और पुरुषोत्तम-रूप। परब्रह्म-रूप तो मन-वाणीसे अगोचर है, उसके विषयमें तो वेदोंने भी 'नेति-नेति' कहा है। उसका अनुभव तो योगिजन समाधिमें करते हैं, वह विचारका विषय नहीं, उस विषयमें तर्क-वितर्कसे काम चलनेका नहीं, वह तो अनुभवगम्य है।

विचारणीय विषय तो उनका पुरुषोत्तम-रूप है। नर-रूप धारण करके जो उन्होंने मानवीय लीलाएँ की हैं, उन्होंने जो एक मनुष्य-चरित्रका सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित किया है, उसके विषयमें मानवताके नाते हम विचार कर सकते हैं। राम अपने सब भाइयोंमें बड़े थे, अतः छोटेके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये, इसका आदर्श उन्होंने बाल्यकालसे ही उपस्थित किया। भरतजी जब खेलमें हारने लगते, तब आप ढीले पड़ जाते, भरतको जिता देते और स्वयं प्रसन्न होते।

राजाने रामको युवराज बनाना चाहा। गुरुने आज्ञा दी। राम पिता तथा गुरुकी आज्ञाका उल्लंघन कैसे करते ? वे राज्याभिषेक-के लिये प्रस्तुत हो गये। नगर सजाया गया। उन्हें दुःख था, उनके भाई भरत, शत्रुघ्न इस समय उपस्थित न थे, कारण जो भी रहा हो, लग्न उसी दिनकी निकली थी। राज्याभिषेक होते-होते रुक गया। कुबरीकी प्रेरणासे कैकेयीने राजाको मोहकर रामका वनवास और भरतका राज्याभिषेक—ये दो वर माँग लिये। धर्मपाशमें बँधे दुःखी राजाने ये वर दे दिये। रामको सूचना हुई। राम उसी उत्साहसे लक्ष्मण और सीतासहित वन चले गये। राजाने बहुत रोका, राम नहीं रुके, राजा सुरपुर पधार गये, भरतने राज्य नहीं ग्रहण किया। रामको लौटाने चित्रकूट गये। राम लौटे नहीं भरत उनकी चरण-पादुका लेकर लौट आये। इस विषयमें लोग ये तर्क करते हैं—

१-रामने वन जाकर बुद्धिमानीका काम नहीं किया।——

२-राजा स्त्रीके वशमें थे, ऐसे स्त्रैण पिताकी अनुचित आज्ञा नहीं माननी चाहिये।

३-राम क्षत्रिय थे, उनका मुख्य धर्म प्रजापालन था, वनमें वास करना मुनियोंका धर्म था, रामको प्रजापालन-रूप स्वधर्मका पालन करना चाहिये था।

४-जब घरपर भरत-शत्रुघ्न नहीं थे, लक्ष्मण भी साथ जा रहे थे, बूढ़े पिता स्त्रीके वशमें होकर रो रहे थे, मरणासन्न हो रहे थे, ऐसी दशामें रामको विलखती प्रजाको छोड़कर, बूढ़े पिताको तड़पते छोड़कर, रोती हुई दुखिया माताको छोड़कर वन नहीं जाना चाहिये था। भरतकी प्रतीक्षा करते। भरत यदि राज्य स्वीकार करते तो राम वन जा सकते थे। जब सम्पूर्ण प्रजा नहीं चाहती, राजा नहीं चाहते, पुरोहित नहीं चाहते, भाई भरत नहीं चाहते ऐसी दशामें एक विकृत मस्तिष्ककी स्त्रीके कहनेसे वे वनको क्यों चले गये ?

५-और भरतकी प्रतीक्षा न भी करते, तो कम-से-कम पिताके इस अनुरोधको तो वे स्वीकार कर ही लेते कि एक दिन उनके साथ रहकर साथ-साथ भोजन करके दूसरे दिन चले जाते।

६-रामने ऐसी निष्ठुरता दिखायी कि माता, पिता, पुरोहित, मन्त्री, प्रजा, वृद्ध, विप्रगण तथा किसी भी स्वजनके अनुरोधको उन्होंने स्वीकार न किया और निष्ठुरताके साथ वन चले गये। राजा मर गये, किंतु वे लौटे नहीं।

इस प्रकारकी और भी अनेकों शंकाएँ की जाती हैं। इन सबका एक ही उत्तर है—विरोध विरोधसे बढ़ता है। अधिकारके लिये लड़नेपर कलह होता है। एकमात्र त्यागसे ही सबके मनको जीता जा सकता है। छोटे लोगोंका काम है लालच करना। बड़े लोगोंका काम है लालचीकी उपेक्षा करना। उनके प्रति प्रेमभाव प्रदर्शित करना, उनके लिये अपने अधिकारको त्याग देना। माता-पिता बच्चोंको थालीमें साथ बिठाकर खिलाते हैं। बच्चोंका स्वभाव होता हैं, थालीमें जो भी अच्छी वस्तु देखेंगे उसे शीघ्रतासे पहिले खा जायँगे। माता-पिता उनकी इस चातुरीको देखकर हँस पड़ेंगे। वे उनसे लड़ेंगे नहीं, अधिकार नहीं जतायेंगे कि मिठाईमें आधा भाग हमारा भी है, तुम इन सबको क्यों खाये जा रहे हो ? इसी प्रकार छोटे यदि लालच भी करें तो बड़ोंको त्याग-वृत्तिसे ही उनपर विजय प्राप्त करनी चाहिये। लड़कर उन्हें परास्त करके जो प्राप्त होता है वह उत्तम मार्ग नहीं है।

१-श्रीरामने वन जाकर अत्यन्त बुद्धिमानी की। उनका चरित्र उसी कारण परम पावन और त्रिभुवनमें गान करने योग्य बन गया।

२-राजा स्त्रीके वशमें थे, इसे राम भी जानते थे, किंतु राजा विवश थे धर्मके कारण। कैकेयीने उनसे शपथ करा ली थी। राजाको कैकेयीके प्रति तनिक भी ममत्व न था, वह मरे या जीवे। उन्हें चिन्ता थी अपने प्रणकी। मेरे कुलमें आजतक कोई ऐसा नहीं हुआ, जिसने प्रतिज्ञा करके उसे पूरा न किया हो। इसीलिये राम पिताके वचनको पूरा करने वन गये थे, न कि कैकेयीको प्रसन्न करनेके निमित्त। वन जानेसे कैकेयीकी प्रसन्नता स्वाभाविक थी, यही उसको अभीष्ट था।

३-रामने कोई गृहस्थ-धर्मका त्याग नहीं किया, विधिवत् वानप्रस्थ ग्रहण नहीं किया। वनमें चौदह वर्ष मुनि-वेष बनाकर रहना ही था, इसलिये उनका वनवास नैमित्तिक था। वहाँ उनका जो स्वधर्म था, उनका उन्होंने पालन किया।

४-रामको विश्वास था, हमारी प्रजा हमसे संतुष्ट है। भय उस राजाको होता है, जिसकी प्रजा मन-ही-मन राजासे असंतुष्ट हो। राम जानते थे कोई भी न रहे, तो भी हमारी प्रजा हमारे विरुद्ध कोई भी षड्यन्त्र नहीं रच सकती। राज्यभारको तो हमारे पुरोहित ही सँभाल लेंगे। मैं लोभवश यहाँ रहता हूँ, तो मेरी कैकेयी माँ तो मर ही जायगी। मेरे पिता भी झूठे पड़ेंगे। प्रजाके मनमें भी यह बात आयेगी। राजा शपथ करके वचन हारकर भी उसे पूरा न करा सके। सम्भव है हमारे साथ भी ऐसा ही व्यवहार करेंगे।

५-पिताके एक दिन रहनेके आग्रहको राम स्वीकार करते तो उनकी उतनी प्रशंसा न होती जितनी अब हो रही है। वन तो उन्हें जाना ही था। एक दिन रह भी जाते, तो इससे राग-द्वेष और अधिक बढ़ जाता, दो पक्षके होनेपर उचित-अनुचित बातें होतीं। क्रुद्ध हुई कैकेयी न जाने क्या कर डालती ? उसने स्पष्ट कह दिया था, श्रीराम जबतक पुरसे बाहर न होंगे तबतक मैं जल भी न पीऊँगी। पिता तो मोहवश कह रहे थे। एक दिन रह भी जाते तो क्या हो जाता। वन तो जाना ही था, आज न गये कल गये। फिर कैकेयीके संदेहको बढ़ानेसे क्या लाभ ? इसलिये तुरंत वन जाकर रामने कलहको शान्त करनेका एक सर्वोत्तम आदर्श उपस्थित किया।

६-लक्ष्मणने उन्हें अधिकारका स्मरण दिलाया, राजाको बंद कर देनेकी बात बतायी, अपनी सेवाएँ रामको अर्पण करनेको कहा। रामसे राज्यसिंहासनपर बलपूर्वक बैठ जानेको कहा। दूसरा कोई होता तो इतनी सुविधा पाकर अपना अधिकार समझ कर धर्मके नामपर विचलित हो जाता। किंतु राम तो राम ही ठहरे। लक्ष्मणको इस प्रकार समझाया कि आगे उनका कुछ कहनेका साहस ही न पड़ा। राम राज्यके भूखे नहीं थे, राम कलह नहीं चाहते थे, उन्हें तो प्रेमपूर्वक आत्मीयोंके ऊपर विजय पानी थी,

त्याग और तपस्याद्वारा कुलके गौरवकी रक्षा करनी थी। यदि राम राज्यके अधिकारमें फँस जाते तो उनका चरित्र कैसे बढ़ता, कैसे लोग उस पावन चरित्रोंको पढ़-पढ़कर पार होते।

रामचरितमें जो मुख्य प्रसंग है वह राज्यको त्यागकर वन जानेका ही है। अर्थात् त्याग ही आदर्श है। पंद्रह वर्षतक विवाह-चरित्र है, १४ वर्षतक वनका चरित्र है, २९ वर्षोंका ही वर्णन है। इसके पश्चात् उन्होंने ग्यारह सहस्र वर्ष राज्य किया, उसका कुछ वर्णन नहीं। इसमें वर्णनवाली कोई बात नहीं। राम राजा थे, राजाके कर्तव्यका उन्होंने उत्तमतासे पालन किया। संध्या करना द्विजमात्रका धर्म है, कर्तव्य है, इसके करनेसे कोई विशेष पुण्य नहीं। हाँ, न करनेसे पाप अवश्य लगता है। संध्या-वन्दनके अतिरिक्त जो विशेष दान, धर्म, तप आदि किये जाते हैं उनसे यश होता है, प्रशंसा होती है। रामने राजकुमार होकर—राज्यका अधिकार मिलते-मिलते प्रसन्नतापूर्वक उसे त्याग दिया और सर्वस्व त्यागकर क्षणभरमें वनवासी बन गये। यही उनका महान् आदर्श था। त्यागी-वैरागी रामके उसी रूपके उपासक हैं। वे जटा बढ़ाकर भस्म रमाकर रामके उसी रूपको बनाते हैं और वनवासी रामका ध्यान करते हैं।

वनवासका भी रामने कितना उत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। तेरह वर्षोंतक वे वनोंमें विचरते रहे। कहीं कुटी और मठ बनाकर नहीं रहे। त्यागी जहाँ कुटी-मठ बनाकर रहने लगता है वहाँ राग-द्वेष हो ही जाता है, फिर उसके जीवनमें स्फूर्ति नहीं रहती। नियमितता आ जाती है, सहयोगियोंके गुण-दोष दीखने लगते हैं। इसीलिये कहावत है—**'पानी बहता भला, साधू रमता भला।'** अन्तिम चौदहवें वर्षमें पञ्चवटीमें कुटी बनाकर आश्रम निर्माण करके रहने लगे, वहीं उपद्रव खड़ा हो गया। भाग्यकी मारी शूर्पणखा आयी। वह आते ही रामके रूपपर मोहित हो गयी। दोष तो इसमें रामका ही था, यदि वें इतने सुन्दर न होते, तो नरमांस-भक्षिणी राक्षसी विमोहित क्यों हो जाती। किंतु राम करें क्या ? वे माया तो कर नहीं सकते, कि भीतर कुछ और बाहर कुछ और; वे जैसे थे वैसे बने रहे। राक्षसीने माया की। वह भीतरसे कुरूपा थी, ऊपरसे सुरूपा बन गयी। किंतु राम ठहरे अत्यन्त भोले-भाले। राममें बनावट नहीं, दुराव नहीं, छिपाव नहीं। **'रामो द्विर्नाभिभाषते'** राम बातको पलटना नहीं चाहते। इसीलिये वे जैसे-के-तैसे बने रहे। फिर सीधे-साधे रामने राक्षसीसे हँसी क्यों की ? उसके नाक-कान काटकर उसे कुरूपा क्यों बनाया ? क्या रामने यह अन्याय नहीं किया ?

देखिये ऊपरसे देखनेमें यह अन्याय-सा भले ही दीखे, पर रामने कोई अन्याय नहीं किया। शूर्पणखाको दण्ड देकर एक सर्वोत्कृष्ट आदर्श उपस्थित किया। राम नहीं चाहते थे कि उसे दण्ड दिया जाय, किंतु वे विवश थे, अन्य कोई उपाय न देखकर उन्होंने ऐसा किया। साम, दाम और भेदसे काम न चले तो विवश होकर दण्डका आश्रय लेना ही पड़ता है। जिनके मनमें कामवासनाने घर कर लिया है, वहाँ राम अपने रामरूपसे रह नहीं सकते। **'जहाँ काम तहँ राम नहिं।'**

राक्षसी रामके त्रिभुवन-विमोहित अनूप-रूपको देखकर आसक्त हो गयी और रामसे उसने कहा—'मेरे साथ तुम विवाह कर लो।'

रामने शान्तिसे कहा—'देवीजी ! मेरे पास तो बहू है। मैं दो विवाह नहीं करता।'

वह बोली—'इसे मैं खाये जाती हूँ।'

रामने सामसे काम न होते देखकर दामका आश्रय लिया। कह दिया—'अच्छा मैं अपने भाईको कह देता हूँ, उसे दुलहा बना लो।'

लक्ष्मणने उसे नहीं स्वीकारा। सेवा-धर्मके विरुद्ध था। सेवा-धर्ममें शारीरिक सुखको कोई स्थान नहीं। दामसे भी काम न चला तो रामने भेद डाला। कह दिया—'लक्ष्मण ऊपरसे ही कहता है, तुम उसकी अनुनय-विनय करो।' राक्षसी फिर लक्ष्मणके समीप गयी। यथार्थ बात यह थी कि राम समयको टाल रहे थे, कामका वेग, ज्वरका वेग तथा वैराग्यका वेग सदा एक-सा नहीं रहता। राम समय टाल रहे थे, राक्षसीका रंग गाढ़ा होता जाता था। **'कामात्क्रोधोऽभिजायते।'** कामवासनाकी इच्छानुसार पूर्ति नहीं होती, तो क्रोध आ ही जाता है। राक्षसीने देखा राम कामके वशीभूत नहीं होते। ये निर्विकार बने हुए हैं। तब उसे क्रोध आ गया। जब दोनों ही ओरसे विकार हो तभी सम्बन्ध होता है। राम निर्विकार, राक्षसी कामके अधीन, सम्बन्ध न हो सका। वह सीताजीको खाने दौड़ी। अब हम पूछते हैं नाक, कान काटनेके अतिरिक्त दूसरा कौन-सा साधन था। अब तो वह आततायिनी बन गयी थी। आग लगानेवाला, विष देनेवाला, अन्यायपूर्वक हाथमें अस्त्र लेकर मारनेवाला, धनहारी, क्षेत्रहारी तथा पत्नीहारी—इन छःको आततायी बताया है। इनके वधमें कोई दोष नहीं है। औरोंको तो क्षमा भी किया जा सकता है, किंतु जो हत्या करनेको सिरपर चढ़ा है, अन्याय कर रहा है, उसे दण्ड देनेके अतिरिक्त और क्या उपाय है। वह सीताजीपर झपट रही थी, सीताजी डर रही थीं। वह प्रहारकारिणी भी थी और पत्नीहारिणी भी थी, कामिनी और

धर्महारिणी भी थी। ऐसी स्त्रीको मार डालनेमें भी कोई दोष नहीं, किंतु रामने उसे मारा नहीं, विरूप करके विदा किया। रामके इस व्यवहारमें सर्वोत्कृष्ट सदाचार, पतिकर्तव्य, जितेन्द्रियता, निर्भयता तथा पूर्ण पवित्रताका समावेश है।

अब प्रश्न यह उठता है, रामने उस स्त्रीसे हँसी की ही क्यों ? इसका उत्तर तो हम पहिले ही दे चुके हैं। राम उसे इधर-उधर करके समय टाल रहे थे। थोड़ी देरको मान लो कुछ शिष्ट विनोद कर भी दिया, तो राममें कुछ तो मानव-स्वभावकी झलक रहने ही दो। सहसा कोई स्त्री आकर ऐसा सरस प्रस्ताव करती है, तो उससे रूखापन किया भी नहीं जाता। देखते ही उसे डाँट दे, लाठी मार दे, यह मानवता नहीं, सदाचार नहीं। मनुष्य नीरस प्राणी नहीं, सरस है। उस सरसताको स्त्री बढ़ाती है। किंतु सरसता धर्मविरुद्ध न हो।

इस प्रकार रामके चरित्रमें हम पग-पगपर मर्यादा देखते हैं। राम मानवधर्मके प्रतीक हैं, राम त्यागकी मूर्ति हैं, राम प्रेमकी सजीव प्रतिमा हैं। राम लोकव्यवहारके उपदेष्टा हैं, राम मर्यादाके रक्षक हैं, राम सदाचारके शिक्षक हैं, रामका चरित्र इतना विशुद्ध है कि उनमें त्रुटि-शंकाकी सम्भावना ही नहीं। अन्तमें पाठकोंसे यही प्रार्थना है कि वे रामके सरल नामका जप करें, रामके सुमधुर नामोंका कीर्तन करें, रामके अनुपम रूपका ध्यान करें, रामकी सुन्दर शिक्षाओंको धारण करें, रामकी सुमधुर कथाका नियमपूर्वक श्रवण करें। रामके अनुपम आदर्शको आगे रखकर व्यवहार करें और रामकी भक्तिमें अपनेको निमग्न कर दें। रामके सच्चे भक्तोंका आश्रय लें। उपासनाके लिये राम-सा सरल-सीधा, स्वामी कहाँ मिलेगा ?

राम ! हृदय महँ बसो काम कूँ तुरत भगाओ।
राम ! मलिन मारीच बन्यो मन मारि गिराओ॥
राम ! सिन्धु भव बहत सेतु करि पार लगाओ।
राम ! निहारे राह आइ तन तपन बुझाओ॥
राम ! न साधन भजन मन, बने परे पाषान हम।
राम ! छुआओ चरन निज, हो जड़ चेतन करन तुम॥

(प्रेषक—श्रीरामानुजजी पाण्डेय)

रामजीकी सेवा

(ब्रह्मलीन संत श्रीरामचन्द्र डोंगरेजी महाराज)

भगवान्‌को चन्दन-पुष्प अर्पण करना, इतने मात्रमें कोई भक्ति पूर्ण नहीं होती, यह तो भक्तिकी एक प्रक्रिया मात्र है। भक्ति तो तब होती है जब सबमें भक्ति-भाव जागता है। ईश्वर सबमें हैं। 'मैं जो कुछ भी करता हूँ, उस सबको ईश्वर देखते हैं' जो ऐसा अनुभव करता है, उसको कभी पाप नहीं लगता। उसका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बनता है। वह अतिशुद्ध व्यवहार है और यही तो भक्ति है। जिसके व्यवहारमें दम्भ है, अभिमान है, कपट है, उसका व्यवहार शुद्ध नहीं। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं, उसे भक्तिमें आनन्द आता नहीं।

मानव भक्ति करता है, परंतु व्यवहार शुद्ध नहीं रखता। जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं, वह मन्दिरमें भी भक्ति नहीं कर सकता। जिसका व्यवहार शुद्ध है, वह जहाँ बैठा है, वहीं भक्ति करता है और वहीं उसका मन्दिर है। व्यवहार और भक्तिमें बहुत अन्तर नहीं है। अमुक समय व्यवहारका, अमुक समय भक्तिका, ऐसा विभाजन नहीं है। रास्ता चलते, गाड़ीमें यात्रा करते अथवा दुकानमें बैठकर धंधा करते, सर्वकालमें और सर्वस्थलमें सतत भक्ति करनी है।

बहुतसे लौकिक कार्योंसे विश्राम लेनेके बाद जो भी समय मिले, उसमें भक्ति करना यह मर्यादा-भक्ति कही जाती है। मर्यादा-भक्तिमें व्यवहार और भक्ति अलग-अलग होते हैं। परंतु पुष्टि-भक्तिमें व्यवहार और भक्ति अलग-अलग नहीं होते। एक ही होते हैं। भक्त बाजारमें शाक-भाजी लेने जाय, यह भी भक्ति है। उसका ऐसा भाव है कि—'मैं अपने ठाकुरजीके लिये शाक-भाजी लेने जाता हूँ।' प्रत्येक कार्यमें ईश्वरका अनुसंधान, इसे कहते हैं पुष्टिभक्ति।

प्रभुका स्मरण करते-करते घरका काम करो तो वह भी भक्ति है। 'यह घर ठाकुरजीका है। घरमें कचरा रहेगा तो ठाकुरजी नाराज होंगे।' ऐसा मानकर झाड़ू देना भी भक्ति है। मेरे नारायण आरोगते हैं, ऐसी भावनासे किया हुआ भोजन भी भक्ति है। बहुत-सी बार माताओंको ऐसा लगता है कि 'कुटुम्ब बहुत बड़ा है, जिससे सारा दिन रसोईघरमें ही चला जाता है। सेवा-पूजा कुछ हो नहीं पाती' परंतु घरमें सबको भगवद्रूप मानकर की हुई सेवा यह भी भक्ति है। भक्ति करनेके लिये घर छोड़ने या व्यापार छोड़नेकी आवश्यकता नहीं। केवल अपने ही लिये कार्य करो, यह पाप है। घरके मनुष्योंके लिये काम करो, यह व्यवहार है और परमात्माके लिये काम करो, यह भक्ति है। कार्य तो एक ही है, परंतु इसके पीछे भावनामें बहुत फर्क है। महत्त्व क्रियाका नहीं, क्रियाके पीछे हेतु क्या है, भावना क्या है—यह महत्त्वपूर्ण है। मन्दिरमें एक मनुष्य

बैठा-बैठा माला फेरे परंतु विचार संसारका करे, दूसरा मनुष्य प्रभुका स्मरण करते-करते बुहारी करे तो उस माला जपनेवालेसे यह बुहारी करनेवाला श्रेष्ठ है।

व्यवहार करो। व्यवहार करना खोटा नहीं, परंतु जो व्यवहार प्राप्त हुआ है, उसमें विवेककी आवश्यकता है। मनुष्यको सतत-भक्तिमें आनन्द नहीं आता। अपने-जैसे साधारण मनुष्यका मन पाँच-छः घंटे परमात्माका ध्यान, सेवा-स्मरण करनेके उपरान्त कुछ और-और माँगने लगता है। निरन्तर मिठाई मिले तो मनमें अभाव होने लगता है, वैसे ही मनुष्यको सतत भक्ति करनेका अवसर मिलनेपर वह भक्ति नहीं कर सकता। भगवान्‌मेंसे उसका मन हट जाता है। जैसे शरीरको थकान होती है, वैसे ही मनको थकान होती है। पाँच-छः घंटा सेवा-स्मरण करनेके उपरान्त मन थक जाता है। इसलिये दोनों प्रवृत्तियोंको ढूँढ़ता है। भक्तिके लिये प्रवृत्तियोंका निरन्तर त्याग करनेकी आवश्यकता नहीं है। प्रवृत्तियोंको सतत भक्ति बनाओ। भक्ति दो-तीन घंटेकी नहीं, चौबीसों घंटोंकी करो। अपनी प्रत्येक प्रवृत्तिको भक्तिमय बनाओ, भक्ति बनाओ।

बड़े-बड़े संत भी प्रारम्भमें धंधा करते थे। संत यह धंधा करते-करते ही भक्ति करते थे और प्रभुको प्राप्त करते थे।

नामदेव दर्जी था, गोरा कुम्हार घड़ा बनाता था, कबीरजी बुनकर थे, सेना भगत हजामतका काम करता था।

संत धंधा करते, परंतु सबमें प्रभुको देखते। ग्राहकमें भी परमात्माका अनुभव करते। प्रत्येक महापुरुषको अपने धंधेमेंसे ज्ञान मिला। प्राचीन कालमें महान् ज्ञानी ब्राह्मण भी वैश्यके घर सत्संगके लिये जाते। जाजलि ऋषिकी कथा है। एक दिन उनको आकाशवाणीसे आज्ञा हुई कि सत्संग करना हो तो जनकपुरमें तुलाधार वैश्यके यहाँ जाओ। जाजलि ऋषि तुलाधारके यहाँ गये।

तुलाधार उस समय दुकानमें काम कर रहे थे। जाजलिको देखकर उन्होंने पूछा—क्या आकाशवाणी सुनकर आये हो? जाजलिको महान् आश्चर्य हुआ कि वैश्य और इतना महान्। तुलाधारसे पूछा कि तुम्हारा गुरु कौन है?

तुलाधारने कहा—मेरा धंधा ही मेरा गुरु है। मैं अपने तराजूकी डंडी ठीक रखता हूँ। किसीको कम नहीं तोलता, बहुत नफा नहीं लेता। मेरी दुकानपर आनेवाला ग्राहक प्रभुका अंश है, ऐसा मानकर व्यवहार करता हूँ। तराजूकी डंडीकी तरह अपनी बुद्धिको ठीक रखता हूँ, टेढ़ी होने नहीं देता। अपने माता-पिताको परमात्माका स्वरूप मानकर उनकी सेवा करता हूँ तथा धंधा करता-करता मनमें मालिकका सतत स्मरण रखता हूँ।

धंधा करनेमें ईश्वरको भूलो नहीं तो तुम्हारा धंधा ही भक्ति बन जायगा। ठाकुरजीका दर्शन करनेमें यदि दुकान दीखे तो दुकानका काम-काज करनेमें भगवान् क्यों न दीखें। कोई-कोई वैष्णव दुकानमें श्रीद्वारिकानाथजीका चित्र पधराते हैं, यह ठीक है, परंतु द्वारिकानाथ सदा हाजिर हैं, ऐसा समझकर व्यवहार करे, यह बहुत जरूरी है। जबतक देहका भान है तबतक व्यवहार तो करना ही पड़ेगा। व्यवहार करो परंतु व्यवहार करते-करते परमात्मा सबमें विराजते हैं, यह भूलो मत। व्यवहारमें अपने धर्मको मत छोड़ो। जीवनमें धर्म ही मुख्य है। अन्य चीजें गौण हैं।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।

श्रीराम मानव-समाजको धर्मका शिक्षण देनेके लिये जगत्‌में पधारे हैं। रामजीका प्राकट्य राक्षसोंके संहारके लिये नहीं हुआ। श्रीराम परमात्मा हैं, कालके भी काल हैं। श्रीराम संकल्प करें तो एक क्षणमें राक्षसोंका तो क्या सारे संसारका प्रलय कर सकते हैं। श्रीराम लंकाधीश रावणको मारनेके लिये नहीं आये। श्रीराम तो मानवमात्रमें रहनेवाले रावणका विनाश हो, ऐसे धर्मका शिक्षण देनेके लिये प्रकट हुए हैं।

रावण कौन है? यह काम रावण है। यह क्रोध रावण है। यह मोह रावण है। प्रत्येक मानवको स्वयंके अंदर रहनेवाले इस रावणको धर्मका आचरण करके मारना है। जीवनमें धर्मके आचरणका आदर्श रामजीने जगत्‌को बताया है। श्रीराम धर्मकी मूर्ति हैं। श्रीरामचन्द्रको धर्म पालनेकी आवश्यकता नहीं। राम तो ईश्वर हैं, ईश्वर होनेपर भी समाजको धर्मका शिक्षण देनेके लिये प्रभुने मर्यादाका पालन किया है।

जो धर्मकी मर्यादाका पालन करते हैं, उनका ही मन शुद्ध होता है। परमात्माकी आज्ञा समझकर जो धर्मकी मर्यादाका पालन करते हैं, उन्हींको भक्तिका रंग लगता है। मानव भक्ति करे परंतु धर्मका पालन न करे, तो उसका ज्ञान और भक्ति सफल नहीं होते। आजकल लोग मन्दिरमें बहुत जाते हैं। भक्ति बढ़ रही है, ऐसा दीखता है। पुस्तकोंद्वारा ज्ञानका प्रचार भी बहुत बढ़ता हुआ मालूम पड़ता है। प्राचीन कालमें ऐसा बहुत ज्ञान नहीं था। प्राचीन कालमें तो ऐसा था कि जो तीन बार संध्या करे, गायत्रीका जप करे, ब्रह्मचर्यका पालन करे, सद्‌गुरुकी सेवा करे, उसीको ज्ञान मिलता था।

आजकल तो संध्या करनेकी जरूरत नहीं, गायत्री-जप करनेकी जरूरत नहीं, गुरुकी सेवा करनेकी जरूरत नहीं, आराम-कुर्सीमें पड़े-पड़े पुस्तकें पढ़कर ही लोग ज्ञानी हो जाते हैं और पीछे

ज्ञानकी अच्छी-अच्छी बातें करते हैं और धर्मका भाषण भी करते हैं, परंतु इस ज्ञान-भक्तिसे मनुष्यको जो शान्ति मिलनी चाहिये, वह मिलती नहीं। उसका एक ही कारण है कि मानव धर्मको भूला हुआ है। वह धर्मका पालन करता नहीं, मर्यादाका पालन करता नहीं।

जिस प्रकार भोजनकी खाली बात करनेसे तृप्ति नहीं होती, उसी प्रकार ज्ञानकी केवल बातें करनेसे शान्ति प्राप्त होती नहीं। ज्ञानको जीवनमें उतारो तो शान्ति मिल सकती है। ज्ञानको जीवनमें उतारना अर्थात् धर्मका बराबर पालन करना है। धर्मका फल है शान्ति, अधर्मका फल है अशान्ति। धर्मकी मर्यादाका पालन न करे तो उसे शान्ति मिलती नहीं। स्त्री, स्त्रीकी मर्यादामें रहे। पुरुष, पुरुषकी मर्यादामें रहे। मनुष्य जब मर्यादाका उल्लंघन करता है तभी अशान्ति आती है। उसकी ज्ञान-भक्ति बह जाती है।

ज्ञान और भक्ति धर्मानुकूल हों तो सार्थक होते हैं और तभी मनको शान्ति प्राप्त होती है। धर्मका भक्तिके साथ विरोध नहीं, भक्ति धर्म-मर्यादा-विरुद्ध हो तो वह भक्ति नहीं। परमात्माने जगत्को बतलाया है कि कदाचित् तुम भक्ति न कर सको तो बाधा नहीं, परंतु धर्म मत छोड़ो। जो सुधर्मका बराबर पालन करते हैं उन्हींको भक्तिका रंग लगता है।

मनुष्य आकाशमेंसे धरतीके ऊपर नहीं गिरा। इसका किसी कुलमें, गोत्रमें जन्म हुआ है। जन्मसे ही कुलधर्म-जातिधर्मका इसके ऊपर बन्धन पड़ जाता है। ज्ञान बढ़े, धन मिले, मान बढ़े, फिर भी अपना धर्म छोड़ना नहीं। अनेक बार मनुष्यको बहुत मान मिले तो अभिमानमें यह धर्मकी मर्यादाको भङ्ग कर देता है। ज्ञान बहुत बढ़ जाय तो यह ऐसा समझता है कि 'मुझे जँचे वैसा बर्ताव करूँ तो कोई बाधा नहीं। मैं तो बहुत बड़ा हूँ, बहुत विद्वान् हूँ, बहुत ज्ञानी हूँ।' ज्ञानी होकर भी जो धर्म पालता नहीं, उसके ऊपर भगवान् कोप करते हैं।

श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे यस्त उल्लंघ्य वर्तते।
आज्ञाच्छेदी मम द्वेषी मद्भक्तोऽपि न वैष्णवः॥

भगवान्को यह जरा भी सह्य नहीं होता। भगवान् कहते हैं, मैंने तुझे संसारमें इसलिये ज्ञान नहीं दिया कि तू धर्मकी मर्यादाको तोड़। भगवान् उसको बहुत सजा देते हैं। ज्ञानी वही है, जो धर्मकी मर्यादामें रहे। कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि आत्माको पुण्य और पाप नहीं लगते। आत्मा शुद्ध है, चेतन है, ब्रह्मरूप है। पाप और पुण्यके परे है, धर्म और अधर्मसे परे है। सिद्धान्त खोटा नहीं है, परंतु आत्मा जबतक देहमें है, देह साथ है, जबतक थोड़ा-सा भी देहका भान है तबतक धर्मकी बहुत ही आवश्यकता है। परमात्माका ध्यान-स्मरण करते हुए जो देह-भान भूलता है, वह धर्मकी मर्यादा भंग करे तो बाधा नहीं। ज्ञानी महापुरुष देहातीत दशामें रहते हैं। त्रिगुणातीत दशामें रहनेवाले महापुरुषोंके लिये धर्मकी मर्यादाका बन्धन नहीं रहता। वे धर्मको नहीं छोड़ते, उनका धर्म छूट जाता है। परमात्माके स्वरूपमें अतिशय तन्मयता ठहर जानेके कारण इनको शरीरका भान नहीं रहता। देहातीत ब्रह्मस्वरूपमें स्थिर हो जानेसे वे जगत्को भूल जाते हैं। उनका जगत्का सम्बन्ध छूट जाता है, देहका सम्बन्ध छूट जाता है। जिस पुरुषके प्राण, इन्द्रिय, मन और बुद्धिकी वृत्तियाँ संकल्परहित हो जाती हैं, वे देहमें रहते हुए भी देहके गुणसे मुक्त ही हैं। देह-सम्बन्ध छूटे और ब्रह्म-सम्बन्ध हो जाये। पीछे धर्म छूटे तो बाधा नहीं।

परंतु जबतक देहका सम्बन्ध है, जबतक खबर रहती है कि मैं यह हूँ, मैं वह हूँ, मैं पुरुष या स्त्री हूँ, जबतक यह देहाभिमान है, जबतक आत्मस्वरूपका ज्ञान हुआ नहीं है, तबतक धर्मकी बहुत जरूरत है।

भक्ति भी धर्मकी मर्यादामें रहकर करो। भक्तिमें अधर्म आये तो भक्ति बिगड़े। स्वधर्मका पालन करो। जबतक जगत्का भान है, तबतक धर्म छोड़े, देहवान् होते हुए धर्मका त्याग करे, यह मोटा अपराध है। ऐसे ज्ञान और भक्ति परमात्माको सह्य नहीं होते।

आत्माका धर्म है—परमात्मासे मिलना, जबतक परमात्मा न मिले तबतक धर्मका पालन करना ही पड़ेगा। धर्मका पालन करनेसे मन शुद्ध होता है, पाप नष्ट होते हैं और उसे परमात्माके दर्शन होते हैं, परमात्मा प्राप्त होते हैं। जिन महापुरुषोंने परमात्माका साक्षात्कार किया है, उनको धर्म-पालन करनेकी जरूरत रहती नहीं, परंतु जगत्को आदर्श बतानेके लिये वे धर्म पालते हैं। बड़ा कौन? बड़ा वह है जो धर्मकी मर्यादाको तनिक भी भङ्ग नहीं करता। बहुतसे पढ़े-लिखे लोग सुबह सूर्यनारायणके सम्मुख खटियामें पड़े रहते हैं, सूर्योदय होनेके उपरान्त भी खटिया छोड़ते नहीं। सूर्यनारायणके सम्मुख खटियामें लेटनेके समान कोई पाप नहीं। सूर्यनारायण तुम्हारे घर आयें और तुम्हारे स्नान भी न हों, इसके समान क्या पाप हो सकता है। सूर्यनारायणके उगनेसे पहले स्नान करो। रामायणमें लिखा है कि रामजी महाराज सूर्य उगनेसे पहले स्नान करते थे। भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य उगनेसे पहले स्नान करते और सूर्यनारायणको अर्घ्य देते थे।

तुम लाइट जलाते हो, सरकार तुम्हारे पास उसका बिल भेजती है। अमुक दिनोंकी मोहलत देती है, उतने ही समयमें बिल भर देना पड़ता है, नहीं तो पीछे दण्ड होता है। आजतक

सूर्यनारायणने किसीके घर बिल भेजा हो, ऐसा सुना नहीं। सूर्य-नारायणके प्रकाशका तुम उपयोग करते हो, बदलेमें तुम सूर्य-नारायणको क्या देते हो। दीपावलीमें तुम छुट्टी लेते हो, परंतु दीपावलीके दो-चार दिन सूर्यनारायण छुट्टी ले लें तो तुम्हारी दीपावली कैसी हो। सूर्यनारायण किसी दिन छुट्टी नहीं लेते। वे नित्यप्रति प्रकाश देते हैं। तुम्हारे पाससे सूर्यनारायण और कुछ नहीं माँगते। केवल एक अपेक्षा रखते हैं कि मानव सूर्य उगनेसे पूर्व स्नान कर लें।

किसी-किसीको बहुत ऊँचा ओहदा (पद) मिल जाय तो उसको ऐसा लगता है कि मैं बहुत बड़ा साहब हूँ, मुझसे कौन पूछनेवाला है। भगवान् कहते हैं—तू ऊपर आ। पीछे तुझे बतलाता हूँ। क्या मैंने तुझे इसलिये धन-मान-पदवी दी है कि तू मेरे धर्मकी मर्यादाको भंग करे?

कुछ लोग भक्तिका बहाना करते हैं कि मैं भक्ति करता हूँ, मैं चाहूँ जब उठूँ तो कोई बाधा नहीं। क्या भक्ति ऐसे की जाती है? भक्तिका बहाना करके धर्म छोड़े, धर्मकी मर्यादाको भंग करे, उसकी भक्ति भगवान्‌को सहन नहीं होती। भक्तिका बहाना करके जो स्वेच्छाचारी जीवन जीता है, धर्मको एक तरफ उठाकर रख देता है, वह ईश्वरको जरा भी सुहाता नहीं।

अपना सनातनधर्म अतिशय श्रेष्ठ है। अपने धर्मकी मर्यादा छोड़ो नहीं, रातको देरतक जागो नहीं। प्रातःकाल चार-साढ़े चार बजेके बाद सोओ नहीं। कुछ लोग तो रात्रिके ऐसे राजा होते हैं कि ये रात्रिके बारह-एक बजेतक गप्प न मारें तो इनको नींद ही न आये। बादमें सुबह छः-सात बजे उठते हैं। रामायण हमको राक्षसोंका लक्षण बताती है। एक लक्षण यह है कि राक्षसलोग रातको साढ़े दस बजेके बाद जागते और सुबह चार बजेके बाद शय्यापर सोये पड़े रहते हैं।

तुम नित्यप्रति सूर्य उगनेसे पहले स्नान करो, तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हारे ऊपर सूर्यनारायणकी कृपा उतरेगी। सूर्यनारायण बुद्धि शुद्ध करते हैं। सूर्यनारायण आरोग्य प्रदान करते हैं। अपने भारतमें पहले इतने अधिक रोग नहीं थे, आजकल रोगोंकी संख्या बहुत बढ़ गयी है, दवाखानेमें जहाँ देखो, वहाँ बहुत भीड़ दिखायी देती है। पहले भारतके लोग सूर्यनारायणकी उपासना करते थे। लोगोंमें संयम था। आज तो भोगोंका साधन बढ़ गया है, विकार-वासनाएँ बढ़ गयी हैं। जीवन बहुत विलासी हो गया है। जीवनमें संयम रहा नहीं, सदाचार रहा नहीं, सूर्यनारायणकी उपासना रही नहीं, इससे रोग बढ़ गये हैं।

श्रीरामचन्द्रजी सूर्यवंशमें प्रकट हुए हैं। सूर्यनारायण तन-मन और बुद्धि तीनोंको सुधारते हैं। सूर्य उगनेसे पहले स्नान करो, सूर्यनारायणको अर्घ्य दो। तुमको दूसरा कोई मन्त्र न आता हो तो ऐसा बोलो—'**श्रीसूर्यनारायणाय नमः।**'

सूर्यनारायण प्रत्यक्ष परमात्मा हैं। अन्य बहुतसे देवता प्रत्यक्ष दर्शन नहीं देते, परंतु सूर्यनारायण प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। दूसरे बहुतसे देवता भावनासे दिखायी पड़ पाते हैं। 'यह गणपति हैं', 'यह हनुमान्‌जी हैं', अपनेको ऐसी भावना रखनी पड़ती है। भावना न हो तो केवल मूर्ति दिखायी पड़ती है, परंतु सूर्यनारायणमें भावना करनेकी जरूरत नहीं पड़ती।

धर्मकी मर्यादाका भङ्ग अर्थात् परमात्माकी आज्ञाका लोप। भगवान्‌की आज्ञाका लोप करनेवालेको भगवान् कभी अपनाते नहीं। परमात्माकी आज्ञाको भंग करनेवालेको बहुत सजा मिलती है। समुद्र इतना बड़ा है, परंतु प्रभुने जो हद समुद्रको सौंपी है कि 'यहाँसे आगे तुम बढ़ना नहीं' उस मर्यादाका समुद्र बराबर पालन करता है। समुद्र भी मर्यादा छोड़ता नहीं, छोड़े तो जगत्‌का प्रलय हो जाय। जगत्‌को प्रकाश देनेवाले सूर्य और चन्द्र प्रभुकी आज्ञामें रहते हैं। एक मनुष्य ही ऐसा दुष्ट है कि उसका ज्ञान बढ़े, उसको बहुत मान मिले, बहुत धन मिले तो यह बहुत अकड़कर चलता है और अभिमानी बनकर परमात्माकी मर्यादा तोड़ता है, धर्म छोड़ता है।

स्वधर्मका पालन करना ही तो भक्ति है। प्रभुकी आज्ञाका पालन न करे और भगवान्‌को फूलकी माला अर्पण करने जाय, ठाकुरजीके सम्मुख सामग्री पधरावे, उसको भगवान् कहते हैं कि मैं तेरे हाथकी सामग्री नहीं लूँगा, तू मेरा कहा करता नहीं। जो स्वधर्मका त्याग करते हैं, उनकी सेवाको भगवान् स्वीकार नहीं करते। भगवान्‌को धर्म अतिशय प्रिय है। धर्मका रक्षण करनेके लिये ही तो परमात्मा जगत्‌में आते हैं—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

× × ×

धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ७-८)

श्रीरामजी मर्यादापुरुषोत्तम हैं। रामजी एक भी मर्यादाको भंग नहीं करते, सनातनधर्मका दर्शन करना हो तो तुम रामजीका दर्शन करो। रामजीके चरित्रका मनन करो। सनातनधर्म-जैसा धर्म दूसरा नहीं और होगा भी नहीं। सनातनधर्म ईश्वरका स्वरूप है। धर्म साधन भी है और साध्य भी है। सनातनधर्मकी विशिष्टता यह है

कि वहाँ साध्य और साधन दोनों एक ही हैं। भक्ति एक साधन है और पीछे भक्ति साध्य बन जाती है। भक्ति भगवद्रूप होनेसे भक्ति और भगवान् पृथक् नहीं। धर्मानुकूल पवित्र जीवन कैसे व्यतीत किया जाय, यह जगत्को रामजीने बताया है। सनातनधर्म रामजी-का स्वरूप है।

रामो विग्रहवान् धर्मः।

धर्माची तुं मूर्त्ति, पाप पुण्य तुझें नाहिं।

पुरुषका आचरण श्रीराम-जैसा होना चाहिये और स्त्रीका आचरण श्रीसीताजी-जैसा होना चाहिये। श्रीसीतारामजी मानव-समाजको, स्त्री-पुरुषोंको स्वधर्मका तत्त्व समझानेके लिये लीला करते हैं। आचरण रामजी-जैसा होगा तो ही भक्ति सफल होगी। बहुतसे लोग भक्ति करते हैं, परंतु उनका आचरण रामजी-जैसा होता नहीं। आचरण रावण-जैसा रखे और राम-रामका जप करे तो राम-नामका फल मिलता नहीं। तुम किसी देवताकी सेवा करो, किसी भी देवताको मानो, परंतु तुमको रामजीकी सेवा तो करनी ही पड़ेगी।

मानवमात्रके लिये रामजीकी सेवा अनिवार्य है। परमात्मा श्रीकृष्णकी भक्ति करनेवाला कोई वैष्णव हो, उपासना करनेवाला कोई शैव हो या कोई शाक्त हो, परंतु उसका आचरण तो श्रीरामजी-जैसा ही होना चाहिये। शिवजीकी पूजा करनेवाला यदि आचरण रामजी-जैसा रखे तो ही उसकी पूजा सफल होगी, भक्ति सफल होगी। श्रीराम-सेवाके बिना रावण मरता नहीं। जगत्में जितने महा-पुरुषोंको शान्ति मिली है, उन सबको श्रीरामचन्द्रजीकी सेवा करनेसे ही मिली है। श्रीरामकी सेवासे ही शान्ति मिलती है। रामजीका एक-एक गुण जीवनमें उतारना, यही रामजीकी उत्तम सेवा है।

रामवद् व्यवहर्तव्यम्।

रामजीकी सेवा अर्थात् रामजीकी मर्यादाका पालन करना। चन्दन और पुष्पसे रामजीकी सेवा करो, तुम रामजीको फूलकी माला अर्पण करो अथवा भोग धरो, यह तो साधारण सेवा है। रामजी विचार करते हैं कि बेटा! फूल तो मेरा ही बनाया हुआ है, मेरा ही मुझको देता है।

फूल क्या किसी मनुष्यने उत्पन्न किया है? मनुष्य कागजका फूल बना सकता है, परंतु उसमें सुगन्ध उत्पन्न करनी उसे आती है क्या? मिट्टी प्रभुने उत्पन्न की, पानी प्रभुने उत्पन्न किया है, फूल प्रभुने उत्पन्न किया है। फूलमें सुगन्ध भी प्रभुने स्थापित की है। इस संसारमें जो भी कुछ है, उसके मालिक श्रीराम हैं। रामजीका तुम रामजीको अर्पण करो, यह ठीक है, परंतु उससे श्रीरामजी विशेष प्रसन्न नहीं होते। रामजी कहते हैं कि बेटा! यह सब तो मेरा है, मैंने ही जो तुझे दिया है, उसको मुझे देनेवाला तू कौन होता है?'

मन्दिरमें बहुत सेवा करनेवाले कुछ लोग ऐसा समझते हैं कि मन्दिर मैं चलाता हूँ। भगवान् कहते हैं कि मूर्ख! तुमको बोलना तो आता नहीं, तू मेरा मन्दिर चलाता है, परंतु तेरे घरको तो मैं चलाता हूँ। तेरे शरीरको मैं चलाता हूँ तुझे खबर है?

इस जगत्में जो कुछ भी है उसके मालिक परमात्मा हैं। मनुष्य तो शरीरका भी मालिक नहीं। फिर धनका मालिक तो हो ही कैसे सकता है। इस शरीरका मालिक क्या जीव है? यह तो परमात्माकी ही आज्ञा है कि जीवको शरीर छोड़ना ही पड़ेगा। परमात्माकी आज्ञा छोड़नेको न मिले तबतक इस मकानमें रह सकते हो।

आजकल तो ऐसा भी कायदा है कि किरायेके मकानमें किरायेदारको भी अधिकार प्राप्त हो जाता है। मालिकके कहनेपर भी वह मकान खाली करता नहीं, मकान छोड़ता ही नहीं। परंतु यह कायदा तो यहींपर है। ऊपर यह कायदा लागू नहीं। ऊपरसे जैसे ही आदेश हुआ कि 'मकान छोड़ो' तो तुरंत राम बोलो भाई राम—मकान छोड़ना ही पड़ेगा।

मनुष्य तो शरीरका भी मालिक नहीं तो फिर धनका मालिक कैसे हो सकता है? मालिक तो एक श्रीराम हैं। 'परमात्मा ही मालिक हैं, मेरा क्या है' मनुष्य यह समझता नहीं, इससे मारा-मारी करता है। कितने तो ऐसे होते हैं कि उनकी हदमें भिखारी बैठा हो और खाता हुआ हो तो भी उनको सहन नहीं होता। उससे कहते हैं कि चलो! उठो यहाँसे, यहाँ क्यों बैठा है, यह स्थान मेरा है। सब कुछ छातीसे बाँधकर अन्त समयमें साथ ले जाना है? स्थान तुम्हारा है? मालिक परमात्मा हैं। प्रभुने कृपा करके अपनेको यह बहुत दिया है, परमात्माका परमात्माको तुम अर्पण करो, यह ठीक है, परंतु उससे प्रभु विशेष प्रसन्न होते नहीं। परमात्माको प्रसन्न करनेकी इच्छा हो तो प्रभुकी आज्ञाका पालन करो।

यह तो रामजीकी मोटी पूजा है। अरे, रामजीको जोरकी भूख लगे तो उनको पेटभर भोजन करानेकी शक्ति क्या मनुष्यमें है? इसीलिये वेदमें ऐसा वर्णन आता है कि परमात्मा खाता नहीं। परमात्मा तो जगत्का पोषण करता है, विश्वम्भर है। उसको तुम क्या देनेमें समर्थ हो! भगवान्की आज्ञाका पालन करो, यह परमात्माकी सच्ची सेवा है। धर्मका पालन करो। तुम बहुत भक्ति न करो तो भगवान्को खोटा लगेगा नहीं, परंतु तुम अपने धर्मका पालन नहीं करो तो भगवान्को खोटा लगेगा। भगवान्ने मनुष्यको तन, मन, बुद्धि मर्यादाका पालन करनेके लिये दिये हैं।

स्वेच्छाचार पतन करनेवाला है। जगत्में स्वेच्छाचार बहुत बढ़

गया है। आजकल छोकरोंको माँ-बापके अधीन रहना सहन नहीं होता। चाहे जब उठें, चाहे जो बोलें, चाहे जिसके हाथका खायँ, चाहे जहाँ जायँ, यह भला नहीं, अपितु मूर्खता है। लोग स्वतन्त्रताकी बहुत बातें करते हैं, परंतु सच्चा स्वतन्त्र तो वही है जो जितेन्द्रिय है। जबतक मनुष्य इन्द्रियोंका गुलाम है, तबतक वह स्वतन्त्र नहीं। जो व्यसनी है वह क्या स्वतन्त्र कहा जा सकता है ? व्यसनी तो जड़ पदार्थके अधीन है, परतन्त्र है। जिसका मन चञ्चल है, वह परतन्त्र है। स्वतन्त्र वह है जिसकी बुद्धि परमात्मामें स्थिर हो गयी है। स्वेच्छाचार मनुष्यको पतनकी खाईमें गिराता है। सदाचार परमात्माके चरणोंमें ले जाता है। सदाचारके बिना कभी जीवन सफल रहता नहीं।

सदाचार अर्थात् शास्त्र-सम्मत आचार। क्या करना और क्या न करना, यह यदि अपने मनसे पूछोगे तो मन धोखा देगा। मनसे पूछना नहीं, शास्त्रसे पूछो, संतसे पूछो।

तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ॥

(गीता १६। २४)

मानवका जीवन शास्त्र-मर्यादाके अनुसार होना चाहिये। आजकल सुधरे हुए मनुष्य शास्त्रकी मर्यादा पालते नहीं। वे ऐसा समझते हैं कि 'मैं बहुत भला हूँ, सुधरा हुआ हूँ' सबेरे उठनेके बाद पहले हजामतका ही काम करता है। सुबह उठनेके बाद पहले हजामतका काम करे तो क्या वह सुधरा हुआ कहा जायगा ? अपने ऋषियोंने लिखा है कि मंगलवारके दिन क्षौर-कर्म न करे। अपने ऋषि महान् बुद्धिमान् थे, ज्ञानी थे। ध्यान रखो—तुम ऋषियोंके बालक हो। तुम्हारा जन्म किसी ऋषिके वंशमें हुआ है। ब्राह्मण ही ऋषि-बालक हों, ऐसा नहीं। क्षत्रिय और वैश्य भी ऋषियोंके बालक हैं।

'हमारे पूर्वज महान् ऋषि थे। उनको अच्छा लगे, ऐसा पवित्र जीवन मुझे व्यतीत करना है, मैं ऋषियोंका बालक हूँ'—ऐसा सदैव याद रखो। ऐसा सतत अनुसंधान रखनेके लिये ही तिलक होता है। कण्ठी होती है। गलेमें कण्ठी धारण करनेके पीछे जीवका ऐसा भाव होना चाहिये। यह शरीर मैं कृष्णार्पण करता हूँ। श्रीकृष्ण जैसे राजी रहें, उसी प्रकार शरीरका उपयोग करो।

जीवनमें संयम हो, सदाचार हो, सेवा हो, मर्यादाका बराबर पालन हो, तब ही जीवन सुधरता है। जो धर्मकी मर्यादामें रहते हैं उनके ही मनकी शुद्धि होती है। पुस्तक पढ़ने मात्रसे शब्द-ज्ञान ही बढ़ता है। तीर्थयात्रा करनेसे क्या मन शुद्ध होता है ? अरे, तीर्थयात्रा तो कौवा भी कर आता है। चारों धाममें कौवा फिरकर आ जाता है। तीर्थयात्रा करने मात्रसे मन शुद्ध होता नहीं। बहुत दान देनेसे क्या मन शुद्ध होता है ? श्रीमान् लोग और राजा लोग बहुत दान देते हैं, यह ठीक है। परंतु उससे मन शुद्ध होता नहीं। मनका सदाचार, संयम, धर्मकी मर्यादाका संग हो तब ही मन शुद्ध होता है।

श्रीराम प्रत्येक लीला करते हैं, उसमें धर्मकी मर्यादाका पालन करते हैं। पापका भय मानते हैं। आजकलके लोगोंको पापका भय लगता ही नहीं। जिनको पापका भय नहीं उनका मन अशान्त ही रहता है। तुम किसी मनुष्यका भय रखो नहीं, परंतु दो वस्तुओंका भय हमेशा रखो—पापका और ईश्वरका। ईश्वर किसीको मारता नहीं। मानवको मारता है उसका पाप। पापका भय सदा रखना, जिससे प्रभु नाराज न हों।

रामजीने पापका भय रखनेके लिये जगत्को ज्ञान दिया है। विश्वामित्रजीने कहा कि 'इस अहल्याका स्पर्श करो। गौतम ऋषिके शापसे अहल्या पत्थर बन गयी है।' रामजी कहते हैं—'गुरुजी ! मैं किसी स्त्रीका स्पर्श करता नहीं। यदि स्पर्श करूँ तो मुझे पाप लगेगा' रामजी प्रत्येक लीलामें सावधान रहते हैं कि 'मुझे पाप न लगे।' रामजीकी प्रत्येक लीला मनुष्यके लिये अति उपयोगी है।

श्रीरामजीमें समस्त सद्‌गुण एकत्रित हुए हैं। श्रीराम अर्थात् जगत्के समस्त दिव्य सद्‌गुणोंके भण्डार यही तो श्रीराम हैं। रामजीकी मातृपितृभक्ति, रामजीका बन्धु-प्रेम, रामजीका संयम, रामजीका सदाचार, रामजीकी सरलता, रामजीका एकपत्नीव्रत, रामजीका एक-वचन, रामजीकी उदारता, रामजीकी शरणागत-वत्सलता, रामजीका विनय, रामजीकी मधुर वाणी आदि सभी दिव्य सद्गुण रामजीमें एकत्रित हुए हैं।

आशीर्वाद

शुद्ध ब्रह्म परात्पर राम

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु निवृत्त शंकराचार्य स्वामी श्रीनिरञ्जनदेवतीर्थजी महाराज)

अनन्तकोटिब्रह्माण्डनायक, परात्पर, पूर्णतम, सच्चिदानन्द-कन्द, निर्गुण, निर्विकार, अच्छेद्य, अभेद्य, अलक्ष्य, अखण्ड, अचिन्त्य, अव्यय, सद्घन, चिद्घन, आनन्दघन, उपनिषद्वेद्य, शुद्ध ब्रह्म ही सकलकल्याणमय, गुणगणनिलय, सगुण, साकार, सर्वजनमनोहर, सर्वेन्द्रियाभिराम शरीर धारणकर रघुनन्दन, दशरथनन्दन, कौसल्यानन्दन श्रीरामरूपमें प्रकट होते हैं। भक्तशिरोमणि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने इसी बातको अपने श्रीरामचरितमानसमें स्पष्ट लिखा है—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

(रा॰ च॰ मा॰ १।१९८)

मन क्रम बचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर बिचर प्रभु सोई॥

(रा॰ च॰ मा॰ १।२०३।५)

राम सच्चिदानंद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा॥

(रा॰ च॰ मा॰ १।११६।५)

ब्यापक अकल अनीह अज निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना बिधि करत चरित्र अनूप।

(रा॰ च॰ मा॰ १।२०५)

—यह श्रीतुलसीदासजी महाराजकी कोई अपनी मनमानी कल्पना नहीं है; किंतु प्राचीन सभी ग्रन्थकारोंने इसका समर्थन किया है—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

'वेदवेद्य परब्रह्म साक्षात् भगवान्‌के दशरथपुत्र-रूपमें प्रकट होनेपर भगवान्‌का प्रतिपादन करनेवाले वेदको भी रामायणके रूपमें परमतत्त्व परब्रह्मका प्रतिपादन करनेके लिये प्रचेताके पुत्र वाल्मीकिके द्वारा प्रकट होना पड़ा।'

महर्षि श्रीवाल्मीकिने भी युद्धकाण्डके अन्तमें अपने-आपको रामायणका कर्ता और प्रचेताका पुत्र लिखकर यह भी लिखा है कि 'मेरी लिखी हुई इस रामायणका आदिदेव ब्रह्माजीने भी अनुमोदन किया है'—

एतदाख्यानमायुष्यं सभविष्यं सहोत्तरम्।
कृतवान् प्रचेतसः पुत्रस्तद् ब्रह्माप्यन्वमन्यत॥

(वा॰ रा॰ ७।१११।११)

महर्षि वाल्मीकिने पदे-पदे श्रीमद्राघवेन्द्र सरकारको **'साक्षाद्विष्णुः सनातनः'** लिखा है। पर कुछ लोगोंका कहना है कि निर्गुण-निराकार सगुण-साकार हो ही नहीं सकता। किंतु उनका यह कहना असंगत है। निर्गुण-निराकारको सर्वज्ञ-सर्वत्र सर्वशक्तिमान् तो वे भी मानते ही हैं। यदि निर्गुण-निराकार सगुण-साकार नहीं हो सकता तो वह 'सर्वत्र' नहीं हो सकता और उसे सगुण-साकार होनेका ज्ञान नहीं होनेसे 'सर्वज्ञ' भी नहीं कह सकते हैं। अतः निर्गुण-निराकारकी सर्वव्यापकता और सर्वज्ञता सिद्ध करनेके लिये उसे सगुण-साकार होना ही पड़ेगा। इसी प्रकार सगुण-साकार हुए बिना निर्गुण-निराकार सर्वशक्तिमान् भी नहीं हो सकता। निर्गुण-निराकारको सर्वशक्तिमान् होनेके लिये भी सगुण-साकार बनना ही पड़ेगा, नहीं तो उसमें एक शक्तिकी कमी रह जायगी।

यह भी कहा जा सकता है कि 'निर्गुण-निराकार शुद्ध परात्पर ब्रह्म सर्वत्र, सर्वशक्तिमान् तो हैं, पर ऐसी कोई आवश्यकता नहीं कि जिसके लिये उनको अपना निर्गुण-निराकार रूप त्यागकर सगुण-साकार रूप धारण करना पड़े। सगुण-साकार रूप धारण किये बिना ही शुद्ध परात्पर ब्रह्म जगत्‌की उत्पत्ति-प्रलय आदि सम्पूर्ण क्रिया-कलाप अपनी प्रकृतिरूपा शक्तिसे कर लेंगे।' पर ऐसा कहनेवालोंको यह भी समझ लेना चाहिये कि यदि शुद्ध परात्पर ब्रह्म अपनी प्रकृति-रूपा शक्तिसे इतने बड़े अनन्तकोटि ब्रह्माण्डात्मक प्रपञ्चको और तदन्तर्वर्ती भोग्य-प्रपञ्चोंको पैदा कर सकते हैं—यदि उनकी प्रकृतिमें इतनी सामर्थ्य है, तब फिर इस कार्यके लिये एक दिव्यातिदिव्य शरीर धारण करना उनके लिये अति साधारण कार्य है और शरीर-धारणका प्रयोजन है, अपने

अनन्यभक्तोंके मनोऽभिवाञ्छित अर्थोंका सम्पादन करना।

वस्तुतः ऐसी ही शंकाओंके उत्तरमें भगवान् श्रीकृष्णने अर्जुनसे कहा है—'अर्जुन! यद्यपि मैं निर्गुण-निर्विकार परात्पर शुद्ध ब्रह्म हूँ, अज एवं अनादि-अनन्त हूँ और समस्त संसारके प्राणियोंका स्वामी हूँ, तथापि अपनी प्रकृतिको अधिष्ठित करके अपनी मायाशक्तिके द्वारा सगुण-साकार कल्याणमय गुण-गण-निलय-स्वरूपसे प्रकट होता हूँ और मेरे एवंविध स्वरूपमें प्रकट होनेका प्रयोजन है—साधु-परित्राण, दुष्ट-दमन तथा धर्म-संस्थापन।'

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

(गीता ४। ६—८)

भगवान् स्पष्ट कहते हैं कि सज्जनोंका परित्राण करनेके लिये, दुर्जनोंको उनकी दुर्जनताका दण्ड देनेके लिये और धर्मकी संस्थापनाके लिये मुझे युग-युगमें शुद्ध ब्रह्मपरात्पर रूपका परित्याग कर सगुण-साकार दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्र एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र आदि अनेक रूप धारणकर इस संसारमें आना पड़ता है।

कुछ लोगोंका यह कहना ठीक नहीं है कि 'संसारमें आनेसे तो भगवान् बन्धनमें फँस जायँगे। संसार बन्धनस्वरूप है। जब एक साधारण बुद्धिमान् जीव भी जेलखानेमें जाना पसंद नहीं करता, तब नित्यशुद्ध, नित्यमुक्त, परात्पर ब्रह्म संसाररूपी बन्धनमें क्यों आयेगा?' यह सभी जानते हैं कि जेलखानेमें कैदी अपने कर्मोंके फलको भोगनेके लिये जाता है, इसीलिये बंदीके लिये कारागार बन्धन है; किंतु जेलखानेके मालिक अथवा जेलरके लिये, जो कैदियोंको उनके कर्मोंका फल देनेके लिये जेलखानेमें जाता है, जेलखाना बन्धनस्वरूप नहीं है। भगवान् भी इसी प्रकार संसारके प्राणियोंको अपने कर्मोंका फल देनेके लिये और जेलके स्वामी (राजा) की तरह संसारकी व्यवस्था सुसम्पादित करनेके लिये इस संसारमें आते हैं। इसलिये उनके लिये संसार बन्धनका कारण या बन्धन-स्वरूप नहीं हो सकता।

पूछा जा सकता है कि 'जो भगवान् अपने निःश्वासमात्रसे वेदोंका प्राकट्य कर देते हैं, महाभूतोंको उत्पन्न कर देते हैं और इस सृष्टिकी उत्पत्ति-स्थिति तथा प्रलय कर देते हैं, वे निराकार-स्वरूपमें स्थित रहते हुए संकल्पमात्रसे सज्जनोंका रक्षण, दुर्जनोंका विनाश और धर्मकी संस्थापना क्या नहीं कर सकते? रावण-कुम्भकर्ण आदि राक्षसोंको मारनेके लिये निर्गुण-निराकारका अवतार लेना क्या, मच्छरको मारनेके लिये तोप दागनेके समान न होगा?' अवश्य ही रावण-कुम्भकर्ण-मेघनाद आदि राक्षसोंको मारनेके लिये भगवान्‌के अवतारकी आवश्यकता नहीं है; संकल्पमात्रसे अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंका संहार करनेकी सामर्थ्य रखनेवाले भगवान् रावण-कुम्भकर्ण आदिको भी संकल्पमात्रसे ही मार सकते हैं, किंतु कुछ भगवद्भक्त ऐसे होते हैं, जिनके लिये नित्य-मुक्त परात्पर ब्रह्मको सगुण-साकार रूप धारण करना पड़ता है। इन भक्तोंकी मालामें महामति व्रजाङ्गनाएँ, व्रजवासी, अवध या व्रजके समस्त जड-चेतन प्राणी, राजरानी मीराँ, रैदास चमार, धन्ना जाट आदि असंख्य अनन्य भगवत्प्रेमियोंके अतिरिक्त शबरी-जैसी सामान्य स्त्री और गीध-जैसे पशु-पक्षी आदि भी आते हैं, जो जप, तप, योग, यज्ञ, श्रवण, मनन, यम, नियम, ध्यान एवं समाधिके द्वारा भगवान्‌को जन्म-जन्मान्तर तो क्या, कल्प-कल्पान्तरमें भी शुद्ध परात्पर ब्रह्म-रूपमें प्राप्त नहीं कर सकते। उनके लिये ही भगवान् सगुण-साकार नयनाभिराम श्रीरामरूप धारणकर दण्डकारण्यमें अपने निरावरण-चरण-विन्यासके द्वारा ही कल्याण प्रदान करते हैं। इसीलिये शुद्ध परात्पर ब्रह्म श्रीरामरूपमें अवतरित होते हैं। इतिहास-पुराणादिमें तो इनकी महिमा भरी ही है, 'श्रीरामतापिनी' आदि उपनिषदोंमें भी भगवान् श्रीरामके अवतार-स्वरूपका सविस्तर वर्णन मिलता है। इतना ही नहीं, आजकलके ऐतिहासिकोंकी दृष्टिसे सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदकी मन्त्रसंहितामें भी शुद्ध परात्पर ब्रह्मका राजा रामके रूपमें स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

ऋषि-मुनियोंके देश भारतमें जन्म लेकर भी आजकल बहुतसे लोग भगवान् श्रीरामके परात्पर ब्रह्म होनेमें संदेह प्रकट करते हैं, इन्हें ऐतिहासिक न मानकर काल्पनिक घोषित करते हैं, यह हिन्दू देशका और हिन्दूजातिका दुर्भाग्य है। यह उनका

स्वयंका भी महान् दुर्भाग्य है कि उनके मनमें ऐसे गंदे विचार उठते हैं और वे अपने हाथों अपना लोक-परलोक बिगाड़ रहे हैं। भगवान् कौसल्यानन्दन दशरथनन्दन श्रीराम साक्षात् परात्पर शुद्ध ब्रह्म हैं और ये ही हम सनातनधर्मी हिन्दुओंके पूज्य परमाराध्य हैं। भगवान् श्रीरामके होनेमें संदेह करना अथवा उन्हें काल्पनिक बताना अथवा उन्हें साधारण मनुष्य बताना महान् पाप है। भगवान् श्रीरामके ब्रह्म होनेमें तनिक-सा भी संदेह करनेपर जब भगवती सतीदेवीको भी इसका दण्ड भोगना पड़ा, तब हम कलियुगी नारकीयोंकी क्या गति होगी ? इसलिये सब संदेहोंको दूरकर भगवान् श्रीरामभद्रका ही खूब भजन-स्मरण-चिन्तन-कीर्तन करो। भगवान् श्रीराम ही हमारे प्राणाधार हैं और उनका स्मरण-चिन्तन करना ही हमारे जीवनका एकमात्र लक्ष्य है।
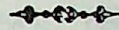
रामाभिरमण

(वीतराग स्वामी श्रीनन्दनन्दनानन्दजी सरस्वती, एम्० ए०, एल्० एल्० बी०, भूतपूर्व संसद-सदस्य)

रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते॥
वन्दे गुरुपदद्वन्द्वमवाङ्मनसगोचरम्।
रक्तशुक्लप्रभामिश्रमतर्क्यं त्रैपुरं महः॥

शुद्ध प्रकाशस्वरूप शिव अपनी शक्तिमें प्रतिबिम्बित हो विमर्शमिश्रण अणुरूप धारण करते हैं। यही माया अव्यक्त प्रकृति तथा महान् बन जाती है। यह दोनों विम्ब-प्रतिविम्ब परस्पर ओतप्रोत होकर सामरस्य (समान रस)-रूप—एक-तत्त्व बनते हैं। इसीको आदर्शवादी और भूतार्थवादी दार्शनिक अनुभव कहते हैं। इस रूपमें अनुभव आदर्श और भूतार्थका सम्मिश्रण है। इसीमें तीन लोक (जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति) से युक्त जीव-चैतन्यका चेतनविलास है। यह चेतनविलास चिद्ब्रह्मके द्वारा अनुभूत सद्ब्रह्म है। चिद्ब्रह्म और सद्ब्रह्ममें ब्रह्मके दो तत्त्व—चित् और सत् एक-दूसरेसे अभिन्न और परम आनन्दमय हैं। इसी आनन्दका अन्तरङ्ग अनुभव करनेवाले एकात्मा राम और आनन्दशक्ति चिदात्माके दर्शनसे प्रफुल्लित सीता शक्ति है। इसी रसका आस्वादन वेदके कर्म, उपासना और ज्ञानकाण्डोंके द्वारा तथा रामायण, महाभारत और पुराण-ग्रन्थोंके द्वारा, इतिहास और अध्यात्मशास्त्रमें भक्ति तथा ज्ञानके द्वारा चित्रण और उपबृंहण किया गया है। यह जगत् चित्-अचित्, चेतन-जडका सम्मिश्रण है। चित्के द्वारा अपने चारों ओर जाग्रत्का ज्ञान होना स्वाभाविक है। सत्-जगत् कितना भी व्यापक हो, किंतु ज्ञानका विषय होनेसे जड कहलायेगा। जडका लक्षण इस रूपमें है—**'ज्ञानविषयत्वं जडत्वम्।'** अर्थात् ज्ञानका विषय होना ही जड बनना है। जीव-चेतन ही जड-जगत्का अर्थ समझकर उसे अपनी सत्ताका मूल्य प्रदान करता है। यहाँ तत्त्वाङ्कन ही मूल्याङ्कन है और जो व्यक्ति जिस तत्त्वका जितना अधिक तत्त्वाङ्कन कर सकता है, उसका मूल्याङ्कन भी उसी अनुपातसे सम्भव है। चेतनकी चिच्छक्ति अनन्त है और सत्ताकी सच्छक्ति भी अनन्त है। जीव-चेतन अपनी सीमित चिच्छक्तिद्वारा अनन्त सत्ताका अर्थाङ्कन करनेमें असमर्थ है। इसके लिये उसे अनन्त चैतन्यका आश्रय लेना पड़ता है। सीमित चैतन्य ही सीमितशक्तिद्वारा चैतन्य होते हुए भी अनन्त चैतन्यके सामने घुटने टेक देता है। इसी सीमाका नाम 'कुण्ठा' है। और अनन्तशक्ति अनन्तचैतन्यके पास विकुण्ठा बनकर उसे वैकुण्ठनाथ बना देती है। वैकुण्ठाधिपति 'राम' जब पञ्च ज्ञानेन्द्रिय-पञ्च कर्मेन्द्रियरूप दश-रथद्वारा प्रकट होते हैं तो दश इन्द्रियोंद्वारा सीमित रथमें आकर सीमित ही अभिनय और सीमित चित्तत्वका प्रदर्शन करते हैं। इसीसे दशरथनन्दन कहलाते हैं। इसीसे **'व्यापिवैकुण्ठस्य प्रपञ्चे समागमनमवतारः'** राम अवतार कहलाते हैं। इसके अनुसार वैकुण्ठाधिपति 'राम' अयोध्यापति और दशरथभवनाधिपति कहलाने लगते हैं। यहाँ केवल डिग्री (मात्रा Quantity) का भेद है। गुण अथवा प्रकार (Quality और Kind) का भेद नहीं है। यही भेद जीव-चेतनमें भी अभिव्यक्त होता है। इसलिये आदिशंकराचार्य भगवान्ने **'जीवो ब्रह्मैव नापरः'** जीवको ब्रह्म ही कहा है। दूसरेमें ही प्रकार-भेद होता है। असीम और ससीममें केवल मात्राका भेद है। इसीलिये प्रकार-भेद न होनेसे वस्तुभेद नहीं माना जायगा। अनन्तका सीमाङ्कन सीमित ज्ञानवाला व्यक्ति अपनी सीमित ज्ञानयुक्त बुद्धिसे

मनमानी सीमा मानकर करता है। इस सीमाके बाहर अनन्त-तत्त्व और सीमाके भीतर शान्ततत्त्व परस्पर भिन्न भी नहीं और विभक्त भी नहीं। तब इनको एक-दूसरेसे भिन्न कैसे माना जाय ? भिन्नता माननेवालोंने अपनी मनमानी रेखा खींच करके अभिन्नको भिन्न और निरावरणको सावरण मानकर भिन्न माननेका दुस्साहस किया है। वैकुण्ठाधिपति राम ही अयोध्यापति राम हैं और स्वयंमें निरावरण हैं। इसलिये इनमें भेद नहीं। किंतु जीव अन्तःकरणचतुष्टयके आवरणमें कुण्ठित होकर सीमित तत्त्वका ही अनुभव और विवेचन कर सकता है। इसलिये वैकुण्ठतक पहुँचनेकी शक्तिके अभावमें अल्पज्ञ स्वल्प शक्तिमान् होकर भी वास्तविक तत्त्वभेद न होनेपर भी मनमानी आवरणके भिन्न इव—भिन्न-सा प्रतीत होता है। जहाँ लीलावरण राममें वैकुण्ठस्वरूपकी अभिव्यक्ति होनेपर ब्रह्मा इन्द्रादि देवता स्तुति करते हैं, वहाँ वाल्मीकि, कालिदास आदि **'रामाभिधानो हरिः'** अथवा **'रामो नाम जनैः श्रुतः'** इस रूपमें श्रुतिप्रतिपादित परब्रह्मका वर्णन करते हैं। किसी साधारण जीवका प्रतिपादन नहीं करते, प्रत्युत उसके सर्वव्यापी सर्वान्तरात्मा विष्णुरूपका प्रतिपादन करते हुए ही उसे इस जगत्के ऐतिहासिक रामसे भी अभिन्नरूपमें मानव-सुख-दुःख और मनमानी सीमाओं, मानव-मर्यादाओंके साथ चित्रित करते हैं। इसलिये रामको मर्यादापुरुषोत्तम अर्थात् मानव-मर्यादायुक्त पुरुषोत्तम कहा गया है। **'पुरुषु शेते इति पुरुषः एषु एभ्यो वा उत्तमः—उद्यतमः सावरणजीवस्य सीमामतिक्रान्तः'** अर्थात् जीव और ब्रह्ममें प्रकारभेद गुण अथवा प्रकारका भेद न होनेसे राम और परब्रह्म सर्वथा अभिन्न है और जगत्पर अनन्त अनुकम्पा रखते हुए स्वयं मानव-दुःखोंसे अभिभूत जीवको मानवताकी सीमासे ऊपर उठानेके लिये स्वयं मानवोचित मर्यादाओंसे ऊपर उठकर ब्रह्मतत्त्वमें जीवका आरोहण (Sublimetion) प्रदान करते हैं, इस जीवत्वमें हिरण्यगर्भ लोक (ब्रह्मसे लेकर स्तम्बपर्यन्त) सब जीव समाविष्ट हैं, जिनका प्रकार अथवा गुण-भेद ब्रह्मसे न होकर मनमानी सीमाका निराकरण कर निरावरण ब्रह्मके साथ सर्वथा अभेद हो जाता है।

अब रामावतार हो गया। महाराज दशरथके घरमें गाजे-बाजे बजे। अयोध्यामें घर-घर बधाई हुई। प्रकृति भी आनन्दसे परिपूर्ण हो गयी—

नौमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता ॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक बिश्रामा ॥

× × × ×

जगनिवास प्रभु प्रगटे अखिल लोक बिश्राम ॥

इस आनन्द-तत्त्वको महाराज दशरथ और उनका रनिवास ही नहीं समझता, अपितु जिसके घरमें पुत्ररूपमें राम प्रकट होते हैं, वे सभी अपने-अपने ढंगसे प्रसन्नताकी अभिव्यक्ति करते ही हैं। इसलिये राम केवल अयोध्याके राजमहलोंको ही आनन्द नहीं देते, प्रत्युत सम्पूर्ण अयोध्या, सरयू और पुलसे पारकर मणिपर्वत, नगर, ग्राम, पशु-पक्षी, सिंह-व्याघ्र, नर-राक्षस आदिमें भी आनन्दकी अभिसूची लगा देते हैं। इस अलौकिक आनन्दसे तड़पकर राक्षसराज खर चिल्ला उठता है। तुलसीदासजीके शब्दोंमें—

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। बध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥

कहीं-कहीं रामेश्वर-स्थापनाके अवसरपर आचार्य रावणको कर्मकी दक्षिणा देनेका आग्रह करते हुए रावणने यह वर माँगा है कि 'जब हमारा युद्ध हो, तब हमारे मनमें तुम्हारे प्रति प्रेम न आ जाय।' महर्षि वाल्मीकिने रामको दिव्य-सौन्दर्यसम्पन्न राजीवलोचन और पूर्णचन्द्रनिभानन कहा है। श्रीहनुमान्‌जीने भी लंकामें सीताजीके समक्ष रामकी विशेषता बतलायी और उन्हें अनन्त सौन्दर्यकी परिभाषा कहा है। ब्रह्मतत्त्वका समस्त बौद्धिक, कायिक, मानसिक आदर्शके रूपमें निचय है। दार्शनिकोंके लिये भी दर्शनशास्त्रका उच्चतम आदर्श, तर्कशास्त्र (Logic) का सूक्ष्मतम आदर्श, चरित्र अथवा नीतिशास्त्रका परम कल्याणकारी मङ्गलमय शिव आदर्श और सौन्दर्यशास्त्र (Aesthetics) की परम आह्लादजनक सुन्दरतम पराकाष्ठा है।

इन सबमें 'राम' शब्द रामनाम, रामरूप तथा भगवान् रामके लोकोत्तर चरित्र हैं। महाकवि भवभूतिने—

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति ॥

—इसीका गोस्वामी तुलसीदासजीने अनुवाद किया है—

कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर समुझि परइ कहु काहि ॥

सर्वलोकप्रिय राम सदा-सर्वदा, सर्वथा प्रियदर्शन, मृदुभाषी और आश्रितके लिये शीतल कल्पवृक्षकी परम सुखद छाया हैं। दण्डकवनके ग्रामीण अथवा मिथिला-वीथिकाओंके अबोध बालक रामको मार्ग दिखाने अथवा सेवा करनेका बहाना खोजते हैं और अपनी सेवाएँ हठात् समर्पित करते हैं। इसलिये रामायणके बालकाण्ड अथवा अयोध्याकाण्डमें समान आकर्षण है। सुमित्राजी सुख-समृद्धिका आधार रामजीको ही मानती हुई लक्ष्मणजीसे कहती हैं—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

राम ही सुख हैं, राम ही आनन्द हैं। पशुओंमें, पक्षियोंमें, राक्षसोंमें, निषादोंमें सबमें सुखका केन्द्र राम हैं। वस्तुतः राम ही रामायणके रसके अन्तिम सार हैं।

रामचरित्रका अथ वैकुण्ठसे आरम्भ होता है, जहाँ शेषशायी नारायण जगत्में अपने लोकोत्तर आनन्दका संचार करनेकी भावना लाते हैं। सत्यसंकल्प-नारायणकी भावना आते ही नारायणके भावनारूप सनक-सनातन-सनन्दन-सनत्कुमार दर्शनार्थ आ रहे हैं, उसी समय वैकुण्ठपार्षद जय-विजयके मनमें भगवन्मानसकी जगदनुकम्पा-भावनाकी छाया उदित होती है। आदर्श पार्षद-सेवक प्रभुके परम कल्याणमय संकल्पको अग्रसर बनानेके लिये स्वयं उद्यत होते हैं और अपना सहयोग—बलिदान देनेका निश्चय कर लेते हैं। वैकुण्ठसे बाहर जानेके लिये नित्यमुक्त पुरुषोंके लिये कोई बहिरंग कारण अपेक्षित नहीं है। स्वयं ही भगवदिच्छा सारी सामग्री संकलित करती है। चारों सनकादिकुमार प्रभुके दर्शनार्थ आगे बढ़ रहे थे। पार्षदोंने तत्काल रोका, भगवद्भावनोद्भूत क्रिया-कलापका पटाक्षेप हुआ। कुमार आश्चर्यमें कहने लगे—'वैकुण्ठमें ऐसा रजोगुण-तमोगुण कैसे आया। जय-विजय पार्षदोंने क्षमा माँगी। नारायणकी इच्छासे प्रेरित कुमारोंने पार्षदोंको राक्षसयोनि और परब्रह्मलीलामें प्रतिरोध-रूप द्वेष-बुद्धिका निर्देश दिया और तीन जन्ममें पुनः वैकुण्ठ लौटनेका सीमाङ्कन भी किया। यह सब इतिहासोत्तर घटना है, जो रामावतारका निमित्त बनी। कहींका कोई कार्य, कोई हलचल और जड जगत् बिना भगवदिच्छाके नहीं होता। चेतन जीव चेतन है, परंतु सांख्यदर्शनके अनुसार अकर्ता है, जगत् प्रमितिजन्य है, परंतु चेतनके ज्ञानका विषय होनेसे जड है। प्रकृति और जीवका परस्पर सम्पर्क ईश्वररूप ब्रह्मके द्वारा ही सम्भव है। सत्तामें अनन्त विविधता ही सत्ताके सत्यत्वका प्रमाण है। दर्शनमें सत्ता सीमित होनेपर असत्तासे परिवेष्टित है और उसे अपने अन्तर्गत अधिकारयुक्त करनेके लिये परिवर्तन—नाम-भिन्न-रूपका आश्रयण करती है। यह सत्ताका स्वभाव है। प्रथम अक्षर 'अ' यदि केवल 'अ' बना रहे और आ, ई, क, ख आदिमें परिवर्तित न हो सके अथवा उनके संयोगसे अपना अस्तित्व धारण न कर सके तो केवल 'अ-अ' की पुनरावृत्ति निरर्थक हो जायगी, इसलिये दार्शनिकोंने सत्ताके स्वभावमें आत्मोद्घोष **'अहमस्मि'** को स्वीकार कर इस प्रकृतिको ही सत्ताका परिसीमन और परिसीमनको प्रत्याख्यान माना है। आत्मोद्घोष ही आत्म-परिसीमन और आत्मपरिसीमन ही आत्मप्रत्याख्यान है।

Self Assertion is seff limitation and self limitaion is self Abnegation.

इसे हीगल आदि चरम संघर्षात्मक त्रित्वका रूपक देते हैं, जिसमें सत्ताके परिसीमनसे असत्ता अथवा नास्तित्वका अनन्त क्षेत्र सीमित सत्ताको अनन्त समुद्रके रूपमें घेर लेता है। तब चित्सत्ता परिसीमनकी सीमाका उल्लंघनकर अपने प्रतिद्वन्द्वी 'नञ्' (नास्तित्व) को अभिभूत कर **'अहमस्मि सर्वः'** अथवा **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** इस आदर्शको प्राप्त करती है। इस त्रिकोणात्मक संघर्ष अथवा संघर्षात्मक त्रिकोणका संक्षिप्त रूप इस प्रकार है—
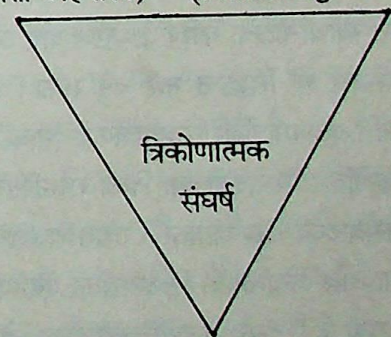
इस संघर्षकी प्रशान्ति सर्वव्यापक परब्रह्मकी सर्व-व्यापकतामें ही है। इसको हीगल Idea और Absolute में

करता है। हीगलके अनुयायियोंने इसके बहुत रूपान्तर दिये हैं। 'राम' शब्दमें इन सबका अन्तर्भाव है। **'सर्वेषु रमते'** अथवा **'सर्वः रमते यस्मिन् असौ स रामः।'** रामका प्राकट्य (आविर्भाव) और तिरोभाव एवं मध्यंगत सभी अवस्थाओं और मात्राओंमें रमणीयत्व और रमणत्व ओतप्रोत है। यही सत्ता 'चित्ता'में वास्तविक अर्थका परिपूर्ण होकर आनन्दत्व अथवा आह्लादकत्वका लोकोत्तर स्वरूप है। दशरथनन्दन रामद्वारा दशानन-वध दश इन्द्रियोंके जगत्पर परमात्मशक्तिके परम विजयके अनन्तर समस्त जगत्में रामराज्यकी स्थापना है। जो इतिहासमें लाखों वर्ष पूर्व होनेपर भी तीन कालमें और आज भी वैसे ही सत्य है, जैसे सत्यको त्रिकालाबाधित होना चाहिये। इसलिये रामराज्यके अयोध्यामें स्थापित होनेपर वास्तवमें वह अयोध्या हो गयी, श्रुतिने भी **'देवानां पूरयोध्या'** अर्थात् **'दिवु प्रकाशने'** चित्तत्वका अन्तिम आश्रय अयोध्या है, जिसके साथ कोई भी युद्ध नहीं कर सकता। वही सत्यकी पराकाष्ठा त्रिकालाबाधित मङ्गलमय शिव और सुन्दर है। वही आदर्श रामराज्य है। वाल्मीकिरामायणमें वर्णित रामराज्यकी तुलनामें कोई भी राजनीतिकवाद फैल नहीं सकता। जिसमें सदा ही आनन्द रहता है और **'निरामया विशोकाश्च रामे राज्यं प्रशासति'**—**'नित्यं प्रमुदितो लोकः'** जहाँ सदा आनन्द-ही-आनन्द हो, जहाँ कुत्तेको भी एक महात्माके विरुद्ध न्याय मिले, जहाँ पिताके रहते पुत्रकी मृत्यु न हो, स्त्रियाँ विधवा न हों, जहाँ सब कोई दूसरेके साधक हों कोई बाधक न हो, कोई किसीसे वैर-द्वेष न करता हो। विश्वमें रामराज्यवादकी तुलनामें आजतक कोई दूसरा वाद नहीं फैल सकता। भारतमें शुद्ध संकुचित स्वार्थान्धताके कारण रामराज्यवाद अभी स्वतन्त्र भारतके शासनका भी सिद्धान्त नहीं बन सका। भारतहृदय-सम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराजका 'मार्क्सवाद और रामराज्य' राजनीतिमें परमोद्बोधक दिव्य राजनीतिक ग्रन्थ है, जिसमें मार्क्सवादका खण्डनकर रामराज्यवादकी परम-कल्याणरूपता और जीवमात्रके निःश्रेयसका एकमात्र राजतन्त्र सिद्ध किया गया है। दूसरे राजनीतिकवादोंका दोष बताकर उनके खण्डनपूर्वक रामराज्यकी स्थापनाके गुण अनन्त हैं और भारतवर्षकी राजनीति एवं परम्पराके सर्वथा अनुकूल है। दूसरे वाद और पाश्चात्त्य-भौतिकवादसे प्रेरित होकर जान स्टुअर्ट गिल, थामस हौम्स अथवा प्राचीन ग्रीक, प्लेटो और एरिस्टौटलकी राजनीतिक पद्धतिकी तुलनामें रामराज्यवादको अकाट्य सिद्धान्तके रूपमें विस्थापित किया जा सकता है। भारतके सम्पर्कमें आनेवाले सभी विदेशियोंने भारतीय प्राचीन संस्कृतिके गुणोंका अवलोकन किया। भौतिक वैभव और इन्द्रियलोलुपताका परित्याग कर कर्तव्यपालनपर रामराज्यमें विशेष बल दिया गया है।

वैदेशिक सभी लेखकोंने पक्षपातशून्य होकर भारतीय संस्कृति और रामराज्यके गुण गाये। वाल्मीकि और तुलसीदासके रामसे प्रभावित विधर्मी वैदेशिकोंने राम-भक्तिका चोला पहिननेकी उत्कट इच्छा प्रकट की है। भारतवर्षमें विगत प्रायः ५०० वर्षसे अधिक मुस्लिम शासन था। इसी कालमें साधारण व्यक्तियोंको छोड़कर बड़े-बड़े उच्च स्तरके मुसलमान भक्त रामकी शरणमें जानेकी इच्छा प्रकट करते हैं। अकबर महान्‌के सेनापति वैरमखाँके पुत्र अब्दुर्रहीम-खानखाना संस्कृत, हिन्दीके विद्वान् थे, उन्होंने रामसे प्रार्थना कर यह श्लोक लिखा है—

अहल्या पाषाणः प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमू-
र्गुहोऽभूच्चण्डालस्त्रितयमपि नीतं निजपदम्।
अहं चित्तेनाश्मा पशुरपि तवार्चादिकरणे
क्रियाभिश्चण्डालो रघुवर न मामुद्धरसि किम्॥

अहल्या पत्थरकी शिला थी और वानरसेना स्वभावसे पशुसमूह था। गुह निषादराज चाण्डाल था। इन तीनोंको आपने अपने पदमें पहुँचा दिया, मैं चित्तसे पत्थर आपके पुण्यराशिसे विमुख निरा पशु और अपने कर्मोंसे चाण्डाल हूँ। उन तीनोंका उद्धार करनेवाले राम! क्या मेरा उद्धार नहीं करोगे?

इससे रहीमकी आन्तरिक पीड़ा व्यक्त होती है। एक और छिपे हुए मुस्लिम भक्त मौलाना हलूम हुए हैं, जिनका पारसीमें शेर बड़ा मार्मिक है—

गर खुदा दारे ममारा नाखुदा दरकार नेस्त।
मन तूं सुदं तू मनसुदी मन तनसुदं तू जां सुदी॥
ता कस न गोयद वादरीं मनदीगरं तूं दीगरी॥

केवटकी अटपट वाणीपर मुग्ध हुआ हलूम अपनी इच्छा गा रहा है 'जो अगर खुदा मेरेको स्वीकार ले तो मुझे किसी

नाखुदा (मल्लाह) की आवश्यकता नहीं रहेगी। मैं तुझमें मिल जाऊँ, तू मैं बन जाय मैं जिस्म बन जाऊँ, तू आत्मा बन जाय तब कोई न कहेगा मैं और हूँ तू और है।'

खल्क मे गोयद कि खिसरो बुत परस्ती मे कुनद।
आरे आरे मे कुनम् बा खल्क आलमकार नेस्त॥

लोग कहते हैं, कहते होंगे कि खुसरो बुतपरस्ती (मूर्तिपूजा) करता था, मैं भी समय-समयपर करता हूँ, पर खल्क इसका रहस्य नहीं जानती।

एक वीतराग श्रीरामभक्त संतके सदुपदेश

एक दिन एक भक्तने एक बड़े ही वीतराग, त्यागी, तपस्वी श्रीरामभक्त संतके श्रीचरणोंमें बैठकर उनसे श्रीराम-भक्ति-सम्बन्धी जो सदुपदेश प्राप्त किये, वे पाठकोंके सामने रखे जा रहे हैं। आशा है, पाठक इन्हें बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे।

प्रश्न—पूज्य महाराज! भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभुकी प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है? वह साधन आप बतानेकी कृपा करें।

उत्तर—बेटे! यदि तुम परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभुकी प्राप्ति करना चाहते हो तो इन बातोंपर अवश्य ही ध्यान दो—

(१) यदि तुम मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी प्राप्ति करना चाहते हो तो यह स्मरण रहे कि श्रीराम स्वयं मर्यादा-पुरुषोत्तम हैं, अतः उनको प्रसन्न करनेके लिये तुम भी मर्यादानुसार चलो। तभी तुमसे मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराघवेन्द्र प्रभु प्रसन्न हो सकेंगे।

(२) याद रखो—मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम बड़े ही ब्रह्मण्य हैं और पूज्य भूदेव ब्राह्मणोंके अनन्य भक्त हैं। प्रभु श्रीराम ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें श्रीमुखसे स्पष्ट कहते हैं—

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करइ द्विज सेवा॥

(रा० च० मा० ७।४५।७-८)

इसलिये यदि तुम श्रीरामभक्त बनना चाहते हो तो सदा-सर्वदा पूज्य ब्राह्मणोंका सेवा-सत्कार, मान-सम्मान करते रहना। इससे प्रभु श्रीराम बहुत जल्दी प्रसन्न हो जायँगे।

(३) कलिका समय महाभयंकर है। इसमें भगवान् श्रीरामकी प्राप्ति एकमात्र श्रीराम-राम जपनेसे ही हो जायगी, इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। पर मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम नाम जपनेवालोंमेंसे उसीसे प्रसन्न होंगे, जो श्रीराम-नाम मर्यादानुसार जपेगा।

(४) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके भक्त होकर मर्यादाका उल्लंघन करके जो अभक्ष्य (अंडे, मांस, मछली, प्याज, लहसुन, सलजम, बिस्कुट, डबलरोटी आदि) खाता है, उसकी भक्ति पल्लवित नहीं होती।

(५) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम एकपत्नीव्रतका पालन करनेवाले महान् जितेन्द्रिय थे और परस्त्रीकी ओर आँख उठाकर देखना भी घोर पाप मानते थे। जो मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको प्राप्त करना चाहता है, उसे भूलकर भी कभी परस्त्रीसे कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिये—

जहाँ राम तहँ काम नहिं जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहुँ कि रहि सकैं रबि रजनी इक ठाम॥

(६) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम वर्णाश्रम-धर्मकी रक्षाके लिये अवतीर्ण हुए थे। यदि मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामको प्राप्त करना चाहते हो तो वर्णाश्रमधर्मको मानो।

(७) मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका नाम स्त्री-पुरुष, बच्चा-बूढ़ा, गरीब-अमीर, विद्वान्-मूर्ख—सभी ले सकते हैं और सभीको श्रीरामनामामृत-पान करनेका अधिकार है। स्त्री खूब श्रीरामनाम ले, पर यह स्मरण रखे कि वह नाम-कीर्तनके द्वारा जिनको प्रसन्न करना चाहती है, वे भगवान् श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। स्त्री श्रीरामका नाम लेकर यदि अपने पातिव्रत-धर्मका पालन नहीं करती, पतिकी अवहेलना करती है और पाखण्डी साधु-संतोंके पैरोंको दबाती है, ऐसी कुलटा स्त्रीसे भगवान् श्रीराम प्रसन्न नहीं होंगे। जो अपने पवित्र पातिव्रत-धर्मका पालन करती हुई श्रीरामनाम लेती है, भगवान् श्रीराम उसी स्त्रीसे प्रसन्न होते हैं।

नवविधा रामभक्ति

(अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)

परम प्रभुके दुष्टजन-शिक्षण और शिष्टजन-परिरक्षणके निमित्त गृहीत अवतारोंमें श्रीरामावतार अन्यतम है। कौसल्या और दशरथके पुत्ररूपमें अवतीर्ण भगवान् श्रीरामने रावण आदि दुष्ट राक्षसोंका विनाशकर विश्वामित्र आदि शिष्टजनोंका परित्राण करके अपने अवतारकी यथार्थताका निर्वहण किया।

भक्तिद्वारा आराधना किये जानेपर भगवान् भक्तोंकी अभिलाषा पूर्ण करते हैं। भक्ति परमप्रेमरूपा है। वह नौ प्रकारकी है, जैसा कि शास्त्रोंमें प्रतिपादित है—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदनरूपी नवधाभक्तिके द्वारा परीक्षित्, शुक, प्रह्लाद आदि भगवान्के परम कृपापात्र बनकर निःश्रेयस-पदको प्राप्त हुए, ऐसा श्रीमद्भागवत आदिद्वारा स्पष्ट जान पड़ता है।

भगवान् श्रीरामचन्द्रमें नवविधा भक्ति रखकर अनेक भक्तगणोंने श्रेय प्राप्त किया—यह बात श्रीमद्रामायणद्वारा अच्छी तरह जान पड़ती है। नवविध भक्तियोंमें श्रवणरूपा भक्ति प्रथम भक्ति है। वह भक्ति विशेषरूपसे श्रीहनुमान्में उपलब्ध होती है। जहाँ-जहाँ रामकथा होती है, वहाँ-वहाँ श्रीहनुमान्जीकी उपस्थिति होती है। निम्नाङ्कित श्लोक इसी अर्थकी पुष्टि करता है—

यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं
तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्।
वाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं
मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्॥

श्लोकका भाव यह है कि जहाँ-जहाँ श्रीरघुनाथजीका कीर्तन होता है, वहाँ-वहाँ विनयपूर्वक हाथ जोड़े हुए तथा प्रेमाश्रुओंसे परिपूर्ण नेत्रोंवाले हनुमान्जी सदा उपस्थित रहते हैं, राक्षसोंका अन्त करनेवाले ऐसे उन हनुमान्जीकी वन्दना करनी चाहिये।

शृङ्गगिरि शारदापीठके चौंतीसवें अधिपति हमारे परम गुरु जगद्गुरु श्रीचन्द्रशेखर भारती महास्वामीने अपने उन्नीसवें वर्षमें संन्यासाश्रमको स्वीकार किया। वे अपने पूर्व आश्रममें श्रीमद्रामायणका प्रतिदिन पारायण करते थे। उस समय वे एक पीढ़ा (छोटी चौकी) भगवान् श्रीरामचन्द्रके आगे रख देते थे। ऐसा आप क्यों करते हैं, यह पूछनेपर वे कहते थे कि यह पीढ़ा श्रीहनुमान्जीके आसनके निमित्त है। श्रीरामकी पावन कथा सुननेके लिये श्रीहनुमान्जी आते हैं, ऐसा उनका निश्चल विश्वास था। अतः भगवान् श्रीराममें श्रवणरूपा भक्ति करनेवालोंमें हनुमान् अग्रगण्य हैं।

कीर्तनरूपा भक्ति महर्षि वाल्मीकिमें थी। वे रामनाम-जपके प्रभावसे ही महर्षि बन गये, ऐसी कथा प्रसिद्ध है। भगवान् श्रीरामके चरितोंको रामायणरूपमें निर्मित कर उन्होंने आदिकविकी पदवी (उपाधि) प्राप्त की। निरन्तर रामकथाका संकीर्तन करनेवाले उन श्रेष्ठ महर्षिके विषयमें कीर्तन-भक्तिकी वस्तुस्थिति निम्नलिखित श्लोकमें अभिव्यक्त है—

यः पिबन् सततं रामचरितामृतसागरम्।
अतृप्तस्तं मुनिं वन्दे प्राचेतसमकल्मषम्॥

'जो रामचरितामृतका पान (तथा गान) करते हुए कभी तृप्त नहीं हुए उन महर्षि प्रचेताके पुत्र पुण्यविग्रह वाल्मीकिकी मैं वन्दना करता हूँ।'

स्मरण-भक्ति सीतामें असाधारण-रूपसे थी। रावणद्वारा अपहरण कर लंकामें लायी गयी सीता सदैव श्रीरामका ही स्मरण करती थीं। राक्षसियोंसे घिरी और भयभीत की जाती हुई सीताके जीवनका आधार रामनामका स्मरण ही था। शिंशपा-वृक्षमें अन्तर्हित हनुमान्द्वारा रामकथा सुनाये जानेपर उनको अपरिमित आनन्द प्राप्त हुआ। इस प्रकार भगवती सीता रामस्मरण करती हुई सुशोभित थीं।

पादसेवनरूपा भक्ति भरतमें निरन्तर रहती थी। भरतजीकी अनुपस्थितिमें उनकी माता कैकेयीने रामको अरण्य भेजवाकर भरतको साम्राज्य दिलाया; परंतु घर आनेपर भरतने उसे स्वीकार नहीं किया। 'यह तूने महान् पाप किया है'—ऐसा कहकर उन्होंने मातापर अत्यन्त क्रोध किया। वे अनुनय-विनय करके श्रीरामको वापस लानेके लिये पूरे परिवारके साथ वन गये। 'किसी तरह अयोध्या आकर वे

राज्यकार्यको स्वीकार करें', यह प्रार्थना उन्होंने भाईसे बार-बार की। वसिष्ठ आदिने भी ऐसा ही किया, परंतु पितृ-वचन-परिपालनमें आबद्ध श्रीरामने 'चौदह वर्षके पश्चात् ही अयोध्या आऊँगा, तबतक भरत ही राज्यका परिपालन करें, तभी पिताकी आज्ञाका पालन होगा', ऐसा स्पष्ट किया। तब अनन्यगति होकर भरतने श्रीरामसे चरणपादुकाकी याचना की। 'तथास्तु' कहकर रामने उन्हें अपनी चरणपादुकाएँ दे दीं। वे उन्हें सिरसे लगाकर नन्दिग्राम आये और वहाँ सिंहासनपर पादुकाओंका अभिषेक करके उनके प्रतिनिधि-रूपमें भरतने राज्यका संचालन किया। सदैव रामपादुकाकी पूजा करते हुए भरत रामके अमित कृपापात्र हुए। इस प्रकार पादसेवन-भक्तिसे भरतने कैवल्यपद प्राप्त किया।

अर्चनरूपा भक्तिसे शबरी प्रभुकी कृपापात्र बनी और सीतान्वेषणके समय शबरीको श्रीरामके दर्शन हुए। उसने महर्षियोंकी परिचर्यासे ही अपना जीवनयापन किया। उन्होंने ही उसे रामके आगमनकी सूचना दी थी, इस कारण वह रामके आगमनकी ही प्रतीक्षा करती रही और उनके आश्रममें आते ही उसने परमभक्तिसे श्रीरामकी पूजा की। उसकी इस भक्तिमयी पूजासे प्रसन्न होकर श्रीरामने उसे सायुज्य प्रदान किया। जैसा कि रामायणमें कहा गया है—

तामुवाच ततो रामः शबरीं संशितव्रताम्।
अर्चितोऽहं त्वया भद्रे गच्छ कामं यथासुखम्॥

(वा० रा० अरण्य० ७४। ३१)

तदनन्तर श्रीरामने कठोर व्रतका पालन करनेवाली शबरीसे कहा—'भद्रे! तुमने मेरा बड़ा सत्कार किया। अब तुम अपनी इच्छाके अनुसार आनन्दपूर्वक अभीष्ट लोकको यात्रा करो।'

वन्दनरूपा भक्ति विभीषणमें थी। विभीषण यद्यपि लंकाधिपति रावणका अनुज था तथापि वह महात्मा था। उसमें कुछ भी राक्षसी-स्वभाव नहीं था। रावणद्वारा किये गये सीताके अपहरणकी वह सदैव निन्दा करता था। 'श्रीरामजीके पास सीताको वापस कर दो, अन्यथा राक्षसकुलका सर्वनाश हो जायगा।'—ऐसा उसने रावणसे स्पष्ट कहा। जब रावणने उसकी बात नहीं मानी तो वह यह स्थान निवासके सर्वथा अयोग्य है और श्रीरामचन्द्र ही एकमात्र शरण-ग्रहण करने योग्य हैं—ऐसा निश्चय कर (भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शरण ग्रहण कर) उनके चरणोंमें गिर पड़ा। जैसा कि रामायणमें कहा गया है—

स तु रामस्य धर्मात्मा निपपात विभीषणः॥
पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः।

(वा० रा० युद्ध० १९। २-३)

'धर्मात्मा विभीषण चारों राक्षसोंके साथ श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंमें गिर पड़े।'

कृपापुञ्ज श्रीरामने उसपर अनुग्रह करते हुए रावणके वधके उपरान्त लंकाका राज्य भी विभीषणको दे दिया। इस प्रकार वन्दनभक्तिसे विभीषणने भगवान्‌की कृपा प्राप्त की।

दास्यभक्ति विशेष रूपसे श्रीलक्ष्मणमें थी। वे श्रीरामके अनुज थे। वे बचपनसे ही श्रीरामकी सेवामें सदैव तत्पर रहते थे। कैकेयीके वचनोंसे राजा दशरथने श्रीरामको चौदह वर्षका वनवास दिया था, न कि लक्ष्मणको; परंतु लक्ष्मण रामसे विरहित अयोध्यामें क्षणमात्र भी नहीं रह सकते थे, इसलिये उन्होंने वन जाना निश्चय किया। उन्होंने वनवासके समय भगवती सीता और श्रीरामकी परिचर्या परम भक्तिसे की। लक्ष्मणद्वारा की गयी सेवासे प्रभुको अपार प्रसन्नता हुई। इस प्रकार लक्ष्मण दास्यरूपा-भक्तिसे कृतार्थ हुए।

प्रभुकी सख्यरूपा-भक्तिसे सुग्रीव प्रभुके कृपापात्र हुए। सीताके हरणोपरान्त उनकी खोजमें श्रीराम घूमते हुए ऋष्यमूक-पर्वतपर आये। वहाँ उनका सुग्रीवसे मिलन हुआ। उन दोनोंने परस्पर सम्भाषणसे अग्निको साक्षी बनाकर सख्यभावको अपनाया। जैसा कि रामायणमें कहा गया है—

ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम्॥
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ।

(वा० रा०किं० ५। १५-१६)

'इसके बाद सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीने उस प्रज्वलित अग्निकी प्रदक्षिणा की और दोनों एक दूसरेके मित्र बन गये।'

इसके पश्चात् सुग्रीवने श्रीरामके कार्यको सिद्ध किया। अतएव सुग्रीवमें श्रीरामका असाधारण प्रेम था। राम-पट्टाभिषेकके अवसरपर अयोध्यामें आये हुए वानरोंकी व्यवस्था करनेके लिये श्रीरामने भरतकी आज्ञा दी कि सुग्रीवको हमारा ही भवन निवासार्थ दे दो। जैसा कि

श्रीरामायणसे ज्ञात होता है—

तच्च मद्भवनं श्रेष्ठं साशोकवनिकं महत्।
मुक्तावैदूर्यसंकीर्णं सुग्रीवाय निवेदय॥

(वा० रा० युद्ध० १२८।४५)

'भरत! मेरा जो अशोकवाटिकासे घिरा हुआ मुक्ता एवं वैदूर्य-मणियोंसे जटित विशाल भवन है, वह सुग्रीवको दे दो।'

अतः सख्यरूपा भक्तिसे सुग्रीव कृतार्थ हुए।

आत्मनिवेदनरूपा भक्तिसे जटायु कृतार्थ हुए। रावणद्वारा ले जायी जाती हुई सीताकी दशा देखकर करुणासे द्रवित जटायुने उन्हें मुक्त करानेके लिये रावणके साथ युद्ध किया और उस युद्धमें अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। उन्होंने राम-कार्यके लिये अपना सर्वस्व अर्पण करना अच्छा माना। अतएव उनके विषयमें भगवान् श्रीरामने स्वयं ही कहा है—

सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम्।
यथा विनाशो गृध्रस्य मत्कृते च परंतप॥

(वा० रा० अरण्य० ६८।२५)

'सौम्य! शत्रुओंको संताप देनेवाले लक्ष्मण! इस समय मुझे सीताके हरणका उतना दुःख नहीं है, जितना कि मेरे लिये प्राण त्याग करनेवाले जटायुकी मृत्युसे हो रहा है।'

इसके पश्चात् श्रीरामद्वारा अन्तिम संस्कारसे संस्कृत जटायुने उत्तम गति प्राप्त की।

इसलिये सभी लोग आर्तत्राण-परायण मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रमें भक्तिभाव रखकर श्रेय प्राप्त करें।

धन्यो रामकथाश्रुतौ च हनुमान् वल्मीकभूः कीर्तने
सीता संस्मरणे तथैव भरतः श्रीपादुकासेवने।
पूजायां शबरी प्रणामकरणे लङ्काधिपो लक्ष्मणो
दास्ये सख्यकृतेऽर्कजोऽप्युपहतप्राणो जटायुः स्वयम्॥

परात्पर तत्त्वकी शिशु-लीला

नित्य-प्रसन्न राम आज रो रहे हैं। माता कौसल्या उद्विग्न हो गयी हैं। उनका लाल आज किसी प्रकार शान्त नहीं होता है। वे गोदमें लेकर खड़ी हुईं, पुचकारा, थपकी दी, उछाला; किंतु राम रोते रहे। बैठकर स्तनपान करानेका प्रयत्न किया; किंतु आज तो रामललाको पता नहीं क्या हो गया है। वे बार-बार चरण उछालते हैं, कर पटकते हैं और रो रहे हैं। पालनेमें झुलानेपर भी वे चुप नहीं होते। उनके दीर्घ दृगोंसे बड़े-बड़े बिन्दु टपाटप टपक रहे हैं।

श्रीराम रो रहे हैं। सारा राजपरिवार चिन्तित हो उठा है। तीनों माताएँ व्यग्र हैं। भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न—तीनों शिशु बार-बार उझकते हैं, बार-बार हाथ बढ़ाते हैं। उनके अग्रज रो क्यों रहे हैं? माताएँ अत्यन्त व्यथित हैं। अत्यन्त चिन्तित हैं—'कहीं ये तीनों भी रोने न लगें।'

'अवश्य किसीने नजर लगा दी है।' किसीने कहा—सम्भवतः किसी दासीने। अविलम्ब रथ गया महर्षि वसिष्ठके आश्रमपर। रघुकुलके तो एकमात्र आश्रय ठहरे वे तपोमूर्ति।

'श्रीराम आज ऐसे रो रहे हैं कि चुप होते ही नहीं।' महर्षिने सुना और उन ज्ञानघनके गम्भीर मुखपर मन्दस्मित आ गया। वे चुपचाप रथमें बैठ गये।

'मेरे पास क्या है। तुम्हारा नाम ही त्रिभुवनका रक्षक है, मेरी सम्पत्ति और साधन भी वही है।' महर्षिने यह बात मनमें ही कही। राजभवनमें उन्हें उत्तम आसन दिया गया था। उनके सम्मुख तीनों रानियाँ बैठी थीं। सुमित्रा और कैकेयीजीने लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नको गोदमें ले रखा था और माता कौसल्याकी गोदमें थे दो इन्दीवर-सुन्दर कुमार। महर्षिने हाथमें कुश लिया, नृसिंह-मन्त्र पढ़कर श्रीरामपर कुछ जल-सीकर डाले कुशाग्रसे।

महर्षिने हाथ पकड़कर श्रीरामको गोदमें ले लिया और उनके मस्तकपर हाथ रखा। उन नीलसुन्दरके स्पर्शसे महर्षिका शरीर पुलकित हो गया, नेत्र भर आये। उधर रामलला रुदन भूल चुके थे। उन्होंने तो एक बार महर्षिके मुखकी ओर देखा और फिर आनन्दसे किलकारी मारने लगे।

'देव! इस रघुवंशके आप कल्पवृक्ष हैं।' रानियोंने अञ्चल हाथमें लेकर भूमिपर मस्तक रखा महर्षिके सम्मुख।

'मुझे कृतार्थ करना था इन कृपामयको।' महर्षिके नेत्र तो शिशु रामके विकच-कमल-मुखपर स्थिर थे।

महर्षिके वटु शिष्य एक ओर बैठे तथा अन्तःपुरकी वात्सल्यवती परिचारिकाएँ खड़ी यह मधुर दृश्य देख रही थीं।

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्

(पूज्य श्रीअनिरुद्धाचार्यजी वेंकटाचार्यजी महाराज)

श्रीमद्भागवतके वक्ता परमहंसशिरोमणि श्रीशुकदेवजीने श्रीमन्नारायणके मानवरूपमें श्रीरामरूप-अवतारका मुख्य प्रयोजन मर्त्यशिक्षण माना है, अर्थात् अपने आचरणसे मानवों-को मानवताका शिक्षण देना माना है; रावण आदि राक्षसोंका संहार तो गौण है। वहाँके कुछ मूल वचन इस प्रकार हैं—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥

(श्रीमद्भा० ५। १९। ५)

'अर्थात् प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताके वियोगमें दुःख कैसे हो सकता था। पुनः आगे कहा गया है—

सुरोऽसुरो वाऽप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत् कोसलान् दिवमिति॥

(५। १९। ८)

'(भगवन्!) देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य कोई भी हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिये; क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे भक्तवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्यधामको सिधारे थे तब समस्त उत्तरकोसल-वासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे।'

श्री (रामानुज)-सम्प्रदायके इतिहासमें उल्लेख है कि श्रीमद्भगवत्-श्रीरामानुज-मुनिके गुरु श्रीशैलपूर्ण स्वामीजीने शास्त्रोंके आधारपर धर्मके सामान्य धर्म, विशेष धर्म, विशेषतर धर्म एवं विशेषतम धर्म—ये चार रूप माने हैं। ये चारों मानवताके रूप हैं।

धर्मके इन चारों स्वरूपोंका अपने आचरणसे शिक्षण देनेके लिये श्रीनारायणने भी श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत, श्रीशत्रुघ्न—इन चार मानवरूपोंमें अवतार लेकर अपने आचरणसे मानवधर्मका—मानवताका शिक्षण दिया।

धर्मके इन चारों स्वरूपोंका सुस्पष्ट विवरण श्रीगोविन्द-राजने श्रीवाल्मीकिरामायणकी अपनी गोविन्दराजीय अथवा भूषण नामकी टीकामें किया है, जिसका भाव इस प्रकार है—

(१) श्रीनारायणने श्रीरामरूप—मानवरूपमें अवतार लेकर पितृवचनपालन, मातृवचनपालन, सत्यवचनपालन एवं शरणागत-संरक्षण आदि सामान्य धर्मोंके पालनका अपने आचरणसे मानवोंको शिक्षण दिया है।

(२) श्रीलक्ष्मणरूपमें अवतार लेकर भगवद्भक्ति, भगवत्कैंकर्य, भगवत्सेवारूप विशेष धर्मका अपने आचरणसे मानवोंको शिक्षण दिया है।

(३) श्रीभरतरूपसे अवतार लेकर 'भगवान्के परतन्त्र रहना' इस विशेषतर धर्मका अपने आचरणसे भगवद्भक्त मानवोंको शिक्षण दिया है।

(४) श्रीशत्रुघ्नरूपसे अवतार लेकर 'भगवद्भक्तों'के सेवारूप विशेषतम धर्मका अपने आचरणसे मानवोंको शिक्षण दिया है।

श्रीआनन्दवर्धनाचार्यने 'ध्वन्यालोक' में शतकोटिप्रविस्तर श्रीरामचरितके दो ही तात्पर्य निकाले हैं—

'रामादिवद् वर्तितव्यं न तु रावणादिवत्।'

अर्थात् श्रीराम आदि-जैसा आचरण मानवको करना आवश्यक है। रावण आदि-जैसा आचरण नहीं करना चाहिये। कारण कि श्रीराम आदिके आचरण-जैसा आचरण अभ्युदय—फल देता है। और रावण आदिके आचरण-जैसा मानवका आचरण विनाश-फलजनक है।

श्रीलक्ष्मणजी और श्रीभरतजी—ये दोनों भगवान्के भक्त हैं। दोनों भगवत्सेवक हैं, परंतु इन दोनोंकी भगवद्भक्ति एवं सेवामें अल्प-सा अन्तर है। श्रीलक्ष्मणजी स्वयंकी रुचिके अनुसार भगवत्सेवा करते हैं, पर श्रीभरतजी तो भगवान्की रुचिके अनुसार कैंकर्य करते हैं। भगवत्परतन्त्र होकर रहना यह जीवका स्वरूप है। अतः श्रीलक्ष्मणजीकी विशेष सेवाकी अपेक्षा श्रीभरतजीकी विशेषतर सेवा है।

श्रीलक्ष्मणजी और श्रीशत्रुघ्नजी दोनों भक्तिमान् हैं। श्रीलक्ष्मण भगवद्भक्त हैं अर्थात् श्रीरामभक्त हैं, परंतु श्रीशत्रुघ्नजी तो भगवद्भक्त श्रीभरतजीके भक्त हैं।

श्रीमद्भगवत् श्रीरामानुज मुनिने कहा है कि भगवान्‌की अपेक्षा भगवद्भक्तोंका अर्चन श्रेष्ठतर है अर्थात् अधिक महत्त्वपूर्ण है। भगवान्‌की सेवाकी अपेक्षा भगवद्भक्तोंकी सेवा अधिक महत्त्वशाली है। भगवद्भक्तोंकी सेवासे बड़ा कोई धर्म नहीं है। अतः यह श्रेष्ठतर धर्म है।

इस प्रकार श्रीनारायणने मानवरूपमें प्रकट होकर अपने आचरणसे मानवोंको मानवताका शिक्षण दिया है।

साक्षात् नारायण—भगवान् श्रीराम साक्षात् नारायण हैं, इसका प्रतिपादन श्रीवाल्मीकिरामायणमें इस प्रकार किया गया है—

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।
एकशृंगो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवः कृष्णः प्रजापतिः॥
वधार्थं रावणस्येह प्रविष्टो मानुषीं तनुम्।

रावणवधके अनन्तर इन्द्र, वरुण, महादेव आदि देवोंके साथ श्रीब्रह्माजी भगवान् श्रीरामसे कहते हैं कि—'श्रीराम! आप चक्र धारण करनेवाले सर्वसमर्थ श्रीमान् साक्षात् नारायण हैं। श्रीराम! आप ही तो देवताओंके भूत-भव्य शत्रुओंको जीतनेवाले, एक दाढ़वाले शक्तिशाली वराह हैं। सीतादेवी लक्ष्मी हैं, आप विष्णु हैं। आप ही कृष्णदेव हैं। आप ही प्रजापति हैं। आप दोनोंने रावण-वधके लिये ही मानव-शरीर धारण किया है।'

श्रीसम्प्रदायके आचार्योंका कहना है कि श्रीलक्ष्मीजीने सीतारूप मानुष-अवतार धारण कर, स्वयं रावणके कारावासमें रहकर अनेक देव, गन्धर्व, राक्षस एवं दानव आदिकी स्त्रियोंको कारावाससे मुक्त कराया।

माता सीताके लंकावासका आध्यात्मिक अर्थ—श्रीसम्प्रदायके आचार्योंने माता सीताके लंकावासका एक सुन्दरतम अध्यात्मपरक अर्थ निकाला है। यह भी एक प्रकारका 'मर्त्यशिक्षण' है। उन महापुरुषोंका सूक्ष्मातिसूक्ष्म निरीक्षण है कि संसारमण्डलमें चेतनकी स्थितिको माता सीताने लंकामें रहकर बतलाया है, यथा—

जैसा माता सीताका लंकासे सम्बन्ध था, वैसा ही चेतनका—जीवका देहसे सम्बन्ध है। जैसे माता सीताके लिये एकाक्षी, एककर्णा एवं अकर्णा आदि राक्षसियाँ थीं, वैसे ही चेतन-जीवके लिये अहंकार, ममता, राग-द्वेष आदि शत्रु हैं। माता सीताके लिये भगवच्चरणारविन्दोंके वियोगका हेतु जैसे मारीच हुआ था, वैसे ही भक्तोंके लिये विषय-प्रवणता वियोगका हेतु है। विषयप्रवण जीव भगवद्विमुख हो जाता है। माता जानकीका तर्जन, भर्त्सन करनेवाली राक्षसियोंसे सम्बन्ध वैसा ही है जैसा वैष्णवोंका पुत्र, मित्र एवं कलत्र आदिसे सम्बन्ध है। माताका आञ्जनेय-दर्शनके सदृश चेतनोंको आचार्य-दर्शन है। माताके लिये श्रीहनुमान्‌जीद्वारा किये गये श्रीरामगुणानुवादकी तरह श्रीवैष्णवोंके लिये भगवद्भक्तोंसे रचित गाथाएँ हैं।

माताको अंगुलीयककी प्राप्तिके सदृश जीवको गुरु-परम्पराकी प्राप्ति है। माता जानकीके अंगुलीयकके समान चेतनको श्रीमन्त्र—श्रीराममन्त्रकी प्राप्ति है। माता सीताने अंगुलीयकको देखकर—भगवत्स्मृतिसे जैसे उसे आत्मधारण किया वैसे ही चेतन-जीव आचार्यसम्प्रसादित, अनुगृहीत श्रीमन्त्रके अनुसंधानसे आत्मधारण करता है। माता जानकी-द्वारा श्रीलक्ष्मणजीको कहे गये क्रूर वचन जैसे श्रीरामके वियोगमें हेतु हुए, वैसे ही वैष्णवोंके लिये भागवतापचार, भगवद्भक्तोंका अपराध वियोगका हेतु है। भगवान् जैसे विरोधिभूत रावण आदिका निरसन करके जानकीको अयोध्या-में ले गये, वैसे ही वासनाके साथ प्रकृति-सम्बन्धको हटाकर भक्तको भगवान् वैकुण्ठधाम प्राप्त करा देते हैं और नित्य-भक्तोंके साथ उनकी सेवा स्वीकार करते हैं।

श्री(रामानुज)-सम्प्रदायके आचार्योंका कहना है कि उपर्युक्त इन दस अर्थोंके ज्ञाता वैष्णवके लिये उनका वास-स्थान ही वैकुण्ठ है।

सो सुखु करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहिं राम पेम परधानू॥

श्रीरामभद्रकी भगवद्रूपता, भजनीयता, मर्यादापुरुषोत्तमता तथा भगवद्धाम और भगवन्नामकी प्रामाणिकता एवं दार्शनिकता

(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर स्वामी श्रीनिश्चलानन्द सरस्वतीजी महाराज)

रामस्तु भगवान् स्वयम्—श्रीमद्भागवतमें श्रीकृष्ण-चन्द्रको परमतत्त्व मानकर उन्हें 'स्वयं भगवान्' कहा गया है—**'एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्'** (१। ३। २८)। पञ्चदशीमें स्वयंपद कूटस्थ-निर्विकार-असङ्ग चिदात्माके लिये प्रयुक्त होनेसे अन्योंका वारक माना गया है—**'स्वयंशब्दार्थ एवैष कूटस्थ इति मे भवेत्', 'कूटस्थ-स्यात्मतां वक्तुरिष्टमेव हि तद्भवेत्।' 'स्वयमात्मेति पर्यायौ तेन लोके तयोः सह प्रयोगो नास्त्यतः स्वत्वमात्मत्वं चान्यवार-कम्।'** (पञ्च० ६। ४१—४३)।

श्रीमद्भागवतने जिस 'स्वयं' शब्दके योगसे श्रीकृष्णचन्द्र-को अवतार सिद्ध किया है, उसी 'स्वयं' शब्दके योगसे श्रीमद्-वाल्मीकीय रामायण आदिने श्रीरामभद्रको भगवान् कहा है—

सहस्रशृङ्गो वेदात्मा शतशीर्षो महर्षभः।
त्वं त्रयाणां हि लोकानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः॥

(वा० रा० ६। ११७। १८)

भरणः पोषणाधारः शरण्यः सर्वव्यापकः।
करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम्॥

(महारामायण)

पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः।
अंशा नृसिंहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम्॥

(ब्रह्मसंहिता)

लक्षणसाम्यसे वस्तुसाम्यका नियम चरितार्थ होता है। **'पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः'** (कठोपनिषद् १। ३। ११), **'पुरुषः··· ह्यक्षरात् परतः परः'** (मुण्डक० २। १। २), **'एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः'** (प्रश्नोपनिषद् ४। ४। ९)—कहकर कठ, मुण्डक और प्रश्नोपनिषद्ने पुरुषका सर्वोपरि महत्त्व सिद्ध किया है। परंतु कठमें पुरुषकी इन्द्रिय, अर्थ, मन, बुद्धि, महत् और अव्यक्तसंज्ञक छः कलाओंका निरूपण किया गया है। मुण्डकमें अक्षर, प्राण, मन, इन्द्रिय, आकाश, वायु, तेज, जल और पृथिवीसंज्ञक नव कलाओंका निरूपण किया गया है। प्रश्नमें प्राण, श्रद्धा, आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी, इन्द्रिय, मन, अन्न, वीर्य, तप, मन्त्र, कर्म, लोक और नाम नामक षोडश कलाओंका प्रतिपादन किया गया है। उक्त रीतिसे कलाके भेदसे पुरुषमें भेद अमान्य है। कला (तत्त्वगणना) में भेद-परम्परानुप्रवेश और अननुप्रवेश (कार्यमें कारणका तथा कारणमें कार्यका संनिवेश तथा असंनिवेश) मूलक है (श्रीमद्भागवत ११। २२। ७, २५)।

उक्त रीतिसे श्रीकृष्णचन्द्रको षोडशकलासम्पन्न और श्रीरामचन्द्रको द्वादशकलासम्पन्न कहनेसे दोनोंकी पूर्णतामें कोई अन्तर नहीं आता। चन्द्रवंशी श्रीकृष्णचन्द्रको अमृता, मानदा आदि षोडशचन्द्रकलासम्पन्न तथा सूर्यवंशी श्रीरामभद्रको तपिनी, तापिनी आदि द्वादश सूर्यकलासम्पन्न माननेपर भी दोनोंकी पूर्णतामें कोई अन्तर नहीं है। सोलह आनेका एक रुपया, एक तोलेका एक रुपया और बारह मासेका एक तोला कहनेपर जिस प्रकार सोलह और बारहका अभेद ही सिद्ध होता है, उसी प्रकार श्रीराम और कृष्णका अभेद ही सिद्ध होता है। एकको पूर्ण तथा दूसरेको अंश, एकको कार्य-कारणातीत परब्रह्म तथा ईश्वरसंज्ञक कारणब्रह्म और दूसरेको हिरण्यगर्भ तथा विराट्संज्ञक कार्यब्रह्म मानकर ही सम्भव है। परंतु **'न हि निन्दा निन्द्यं निन्दितुं प्रवर्तते, अपि तु विधेयं स्तोतुम्'**—'निन्द्यकी निन्दामें निन्दाकी प्रवृत्ति नहीं होती, अपितु स्तुत्यकी स्तुतिमें निन्दाकी प्रवृत्ति होती है'—इस न्यायसे भी श्रीराम-कृष्णगत उक्त प्रभेदका रहस्य हृदयङ्गम करने योग्य है। उत्पत्ति, स्थिति, संसृति, निग्रह (निरोध, तिरोधान) और अनुग्रहरूप पञ्चकृत्योंके निर्वाहक होनेसे दोनोंमें एकरूपता है। ऐसा होनेपर भी श्रीरामरूपसे धर्मरूप और ब्रह्मरूप उभयविध वेदार्थ अवतरित है। यही कारण है कि धर्ममूर्ति श्रीरामको रामभद्र और ब्रह्ममूर्ति श्रीरामको श्रीरामचन्द्र कहा जाता है। मर्यादा-पुरुषोत्तममें मर्यादापदका प्रयोग धर्माभिप्रायसे है और पुरुषोत्तमपदका प्रयोग ब्रह्माभिप्रायसे है। श्रीराममें मर्यादा और लीला दोनोंका सामञ्जस्य है। यही कारण है कि उन्हें मर्यादा-

पुरुषोत्तम कहा जाता है। उधर धर्मावतार युधिष्ठिर मान्य हैं और ब्रह्मावतार श्रीकृष्ण मान्य हैं। यही कारण है कि श्रीकृष्णको कृष्णभद्र न कहकर केवल कृष्णचन्द्र ही कहा जाता है। श्रीकृष्णमें बाह्याभ्यन्तर लीलाकी प्रतिष्ठा होनेसे उन्हें लीलापुरुषोत्तम कहा जाता है।

श्रीरामभद्रकी सगुण-निर्गुण उभयविध ब्रह्मरूपता—वेदान्तदर्शन स्वशक्तिरूपा अचिन्त्य लीलाशक्तिके योगसे अद्वितीय सच्चिदानन्दतत्त्वको जगत्का अभिन्न निमित्तोपादान मानता है। निर्गुण-निराकार और सगुण-निराकारभूमिमें उसमें किसी प्रकारका भेद अमान्य है। सगुण-साकार-भूमिमें उसमें लीलासिद्ध पञ्चदेवरूप पञ्चविध प्रभेद मान्य है। पञ्चदेवोंका सगुण-निर्गुण उभयविध तात्त्विक रूप एक होनेपर भी साकारभूमिमें नाम-रूप-लीला और धामगत वैचित्र्य अधिकार और अभिरुचिभेदसे विविध भक्तोंपर अनुग्रहके अभिप्रायसे है—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

(श्रीरामतापिन्युपनिषद् १।७)

निर्गुण-निराकार अद्वयज्ञानरूप कार्य-कारणातीत परब्रह्म पुरुषोत्तम मृत्तुल्य (मिट्टीके सदृश) है। सगुण-निराकार अन्तर्यामी कारणब्रह्म बीजतुल्य है। सगुण-साकार हिरण्यगर्भात्मक कार्यब्रह्म अङ्कुरतुल्य है। सगुण-साकार वैश्वांनररूप कार्यब्रह्म शाखा-प्रशाखा-पत्र-पुष्पसे सम्पन्न वृक्षके तुल्य है। माण्डूक्योपनिषद्ने हिरण्यगर्भ और वैश्वानरको '**सप्ताङ्ग**' और '**एकोनविंशतिमुख**' कहकर सगुण-साकार सिद्ध किया है। सगुण-साकार अवतार-विग्रह लीलापुरुषोत्तम श्रीराम-कृष्णादि फलतुल्य हैं।

जैसे स्वतःशुद्ध स्फटिकमें हिंगुलके योगसे रक्तत्त्वकी और स्फटिकांशके प्रमोषसे (छिपनेसे) पद्मरागत्वकी प्रतीति होती है, उसीमें चन्द्रिकाके योगसे इन्द्रनीलत्वकी स्फूर्ति होती है, वैसे ही स्वप्रकाशब्रह्ममें लीलाशक्तिके योगसे ईशत्वकी, चिदंश (ब्रह्मत्व) के प्रमोषसे और लीलाशक्तिके दार्ढ्यसे लीलावतारोंकी स्फूर्ति होती है—

मणिर्यथा विभागेन नीलपीतादिभिर्युतः।
रूपभेदमवाप्नोति ध्यानभेदात् तथाच्युतः॥

विद्युत्तुल्य भगवान्के सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार उभयरूप मान्य हैं। जिस प्रकार 'विद्युत्' स्वतः निर्गुण (अस्तित्वसम्पन्न किंतु स्वतः आनुकूल्य-प्रातिकूल्य-विवर्जित) तथा निराकार (नीरूप) है, उसी प्रकार 'ब्रह्म' स्वतः निर्गुण और निराकार है। जिस प्रकार 'विद्युत्' उपाधियोगसे सगुण (अर्थ-क्रियाकारी) और साकार (नेत्रगोचर) है, उसी प्रकार 'ब्रह्म' उपाधियोगसे सगुण और साकार है। जिस प्रकार जल-स्थल और नभमें विद्यमान सामान्य विद्युत् निर्गुण-निराकार, शक्तिकेन्द्र (पावर-हाउस) और उससे सम्बद्ध तार-पंखे आदिमें संनिहित विद्युत् सगुण-निराकार तथा बल्व और बादल आदिमें स्फुरित विद्युत् सगुण-साकार मान्य है; उसी प्रकार निरुपाधिक ब्रह्म निर्गुण निराकार, मायाशक्तिविशिष्ट अन्तर्यामी सगुण-निराकार तथा श्रीराम-कृष्णादिरूप अवतारी और अवतार ब्रह्म सगुण-साकार मान्य है। श्रीरामभद्रकी जहाँ कार्य-कारणातीत परब्रह्मरूपता मान्य है, वहाँ कारणब्रह्मरूपता और कार्य-ब्रह्मरूपता तथा अवतारविग्रह (लीलाविग्रह)-युक्त कौसल्यानन्दनतादि भी मान्य है। अभिप्राय यह है कि श्रीरामतत्त्वकी सर्वाश्रयता और सर्वरूपता सिद्ध है। योगिध्येय श्रीरामचन्द्रकी परब्रह्मरूपता शास्त्रसम्मत है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।६)

भगवान् श्रीरामभद्रकी मर्यादापुरुषोत्तमता—'**रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः**' (वाल्मीकीय रामायण ३।३७।१३) के अनुसार भगवान् श्रीरामभद्र मूर्तिमान् धर्म हैं और भी—

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यो ह्यग्नेरग्निः प्रभोः प्रभुः।

(वा० रा० २।४४।१५)

व्यक्तमेष महायोगी परमात्मा सनातनः॥
अनादिमध्यनिधनो महतः परमो महान्।
तमसः परमो धाता शङ्खचक्रगदाधरः॥
श्रीवत्सवक्षा नित्यश्रीरजय्यः शाश्वतो ध्रुवः।
मानुषं रूपमास्थाय विष्णुः सत्यपराक्रमः॥

(वा० रा० ६।१११।११—१३)

भवान् नारायणो देवः श्रीमांश्चक्रायुधः प्रभुः।

एकशृङ्गो वराहस्त्वं भूतभव्यसपत्नजित्॥
अक्षरं ब्रह्म सत्यं च मध्ये चान्ते च राघव।
लोकानां त्वं परो धर्मो विष्वक्सेनश्चतुर्भुजः॥
शार्ङ्गधन्वा हृषीकेशः पुरुषः पुरुषोत्तमः।
अजितः खड्गधृग्विष्णुः कृष्णश्चैव बृहद्बलः॥
सेनानीर्ग्रामणीश्च त्वं बुद्धिः सत्त्वं क्षमा दमः।
प्रभवश्चाप्ययश्च त्वमुपेन्द्रो मधुसूदनः॥

(वा० रा० ६। ११७। १३—१६)

—आदि वचनोंके अनुसार रामभद्र मूर्तिमान् ब्रह्म हैं। इस प्रकार श्रीरामरूपसे सम्पूर्ण वेदार्थ ही अवतरित हुआ है। यही कारण है कि श्रीरामभद्रकी कीर्ति ऋग्वेद (१०। ९३। १४, १०। ३। ३, ४। ५७। ७) से लेकर श्रीहनुमानचालीसा-पर्यन्त अङ्कित है और सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त है। ऐसे भगवान् श्रीरामभद्रकी लीला नेत्रोंको अभिराम, कानोंको मधुर, मङ्गल और सम्पूर्ण जीवनको धन्य-धन्य करनेवाली है।

जहाँ भगवान् श्रीरामभद्रमें सकल सुन्दरताओंका संनिवेश है, वहाँ आभूषण, आयुध, वर्ण-वाहन, शक्ति-सेना-रूपसे काल, स्वभाव, गुण, माया, जीव, अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्म—इन सब वस्तुओंका संनिकर्ष है। अभिप्राय यह है कि ईश्वरात्मक रामरूपमें पुरुष, प्रधान, महत्, अहं, पञ्चतन्मात्राएँ, मन, ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, पञ्चभूत, राग, अविद्या, नियति, काल, कला और मायासंज्ञक आगमोक्त सर्वतत्त्वोंका संनिवेश है।

वेदान्तवेद्य परब्रह्मकी अचिन्त्यलीलाशक्तिके योगसे अविद्या, काम, कर्म-विरहित मर्यादापुरुषोत्तमरूपसे अभिव्यक्त श्रीराम हैं। अविद्या, काम और कर्मके बिना भगवदाविर्भाव होनेसे श्रीहरिके जन्म दिव्य हैं। अविद्या और कामके बिना भगवल्लीला होनेसे भगवान्के कर्म दिव्य हैं।

भगवद्धामकी प्राचीनता—पूर्वमीमांसकोंके अनुसार **'न कदाचिदनीदृशं जगत्'**—'कभी ऐसा नहीं था कि जगत् ऐसा नहीं था' तथा उत्तर-मीमांसादिके अनुसार **'यथापूर्वमकल्पयत्'** (ऋक्० १०। १९०। ३) 'पूर्वकल्पके अनुरूप ही परमात्माने यह जगत् बनाया।' उक्त रीतिके अनुसार अनादि-कालसे भारत आर्योंकी मातृभूमि और अयोध्या श्रीरामजन्म-भूमि है। महाभारतके अनुसार त्रेता और द्वापरकी संधिमें श्रीरामावतार सिद्ध होता है—

संध्यंशे समनुप्राप्ते त्रेतायां द्वापरस्य च।
अहं दाशरथी रामो भविष्यामि जगत्पतिः॥

(शान्तिपर्व ३३९। ८५)

वायु, हरिवंश और ब्रह्माण्डपुराणके अनुसार सातवें मन्वन्तरके २४ वें त्रेतामें श्रीरामावतार सिद्ध होता है—

चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा।
सप्तमो रावणस्यार्थे जज्ञे दशरथात्मजः॥

(वायुपुराण ९८। ७२)

चतुर्विंशयुगे चापि विश्वामित्रपुरःसरः।
रामो दशरथस्याथ पुत्रः पद्मायतेक्षणः॥

(हरिवंश ४। ४१, ब्रह्माण्डपुराण १०४। ११)

श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण आदिके अनुसार भगवान् श्रीरामने ११ हजार वर्षोंतक राज्य किया—

दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च।
रामो राज्यमुपासित्वा ब्रह्मलोकं प्रयास्यति॥

(१। १। ९७)

इस दृष्टिसे वि० सं० २०५० और ई० सन् १९९३ तक श्रीरामावतारके एक करोड़ एक्यासी लाख, साठ हजार, चौरानबे वर्ष होते हैं—

रामराज्यपर्यन्त २४ वाँ त्रेता, द्वापर, कलि—	१,३०,७,०००
२५, २६, २७ वाँ चतुर्युग—	१,२९,६०,०००
२८ वाँ सत्ययुग, त्रेता, द्वापर—	३८,८८,०००
वि० सं० २०५० तक २८ वाँ कलि—	५,०९४
	१,८१,६०,०९४

कल्पभेदसे अट्ठाईसवें त्रेता और द्वापरकी संधिमें श्रीरामावतार माननेपर और श्रीरामराज्यपर्यन्त त्रेताकी स्थिति माननेपर आठ लाख, अस्सी हजार, चौरानबे वर्ष श्रीरामजन्मके सिद्ध होते हैं—

२८ वें त्रेताके—	११,००० वर्ष
२८ वें द्वापरके—	८,६४,००० वर्ष
वि० सं० २०५० तक कलिके—	५,०९४ वर्ष
	८,८०,०९४ वर्ष

भगवत्पाद आद्य शंकराचार्यने मनुपुत्र इक्ष्वाकुको आदि-राज कहा है—

मनुरिक्ष्वाकवे स्वपुत्रायादिराजायाब्रवीत्।

(गीताभाष्य ४। १)

महर्षि वाल्मीकिने अयोध्याको आदिराज इक्ष्वाकुकी राजधानी माना है—

'मनुः प्रजापतिः पूर्वमिक्ष्वाकुश्च मनोः सुतः।
तमिक्ष्वाकुमयोध्यायां राजानं विद्धि पूर्वकम्॥'

(वा॰ रा॰ १। ७०। २१)।

—इस प्रकार विश्वकी प्रथम राजधानी अयोध्या है। ब्रह्मलोककी गणनाके अनुसार श्रीब्रह्माजीकी आयु सौ वर्ष है। मानवीय गणनाके अनुसार ३६० दिनोंका वर्ष माननेपर ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्ष और ३६५ दिनोंका वर्ष माननेपर ३१ नील, ५३ खरब, ६० अरब वर्ष ब्रह्माजीकी पूर्णायु सिद्ध होती है। ३१ नील, १० खरब, ४० अरब वर्षोंमें ३ करोड़, ६० लाख त्रेतायुगोंमें ३ करोड़, ६० लाख बार रामावतार-स्थल अयोध्याको होनेका सौभाग्य प्राप्त है। ३१ नील, ५३ खरब, ६० अरब वर्षोंमें होनेवाले ३ करोड़, ६५ लाख त्रेतायुगोंमें ३ करोड़ ६५ लाख बार अयोध्याको श्रीराम-जन्मभूमि होनेका श्रेय प्राप्त है।

इस तरह श्रीअयोध्याको ब्रह्माजीकी पूर्णायुमें साढ़े तीन करोड़से अधिक बार श्रीरामजन्मभूमि होनेका सौभाग्य प्राप्त है।

'विघ्नेश्वरात् पूर्वभागे वसिष्ठादुत्तरे तथा। लोमशात् पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम्॥' (स्कन्दपुराण, वैष्णवखण्ड १५। २५) आदि वचनोंके अनुसार श्रीअयोध्यामें विघ्नेश्वरसे पूर्वमें तथा वसिष्ठस्थानसे उत्तरमें, लोमशस्थानसे पश्चिममें रामजन्मस्थान कहा गया है।

भगवन्नामकी दार्शनिकता—श्रीरामनाममें 'र' अग्नि-सारसर्वस्व होनेसे अग्निबीज है, 'आ' (ा) सूर्यसारसर्वस्व होनेसे सूर्यबीज है और 'म' चन्द्रसारसर्वस्व होनेसे चन्द्रबीज है। वैश्वानररूप अग्निका, हिरण्यगर्भरूप सूर्यका और प्राज्ञेश्वर-रूप चन्द्रका बीज श्रीरामनाम है। अभिप्राय यह है कि राम-नामसे वैश्वानर, हिरण्यगर्भ और प्राज्ञेश्वर नामोंकी तथा रामरूपसे वैश्वानर, हिरण्यगर्भ और प्राज्ञेश्वररूपोंकी सिद्धि होती है। कल्पके आरम्भमें रामनामसे ही अग्नि, सूर्य और चन्द्रकी अभिव्यक्ति होती है। रामनाम तारक और पारक (प्रेमाभक्ति-प्रदायक) है। 'र' का आधिदैविक रूप अग्नि, आध्यात्मिक-रूप 'वाक्' और आधिभौतिक रूप 'नाम' है। 'आ'का आधि-दैविक रूप 'सूर्य', आध्यात्मिक रूप प्राण तथा नेत्र और आधिभौतिक रूप 'रूप' है। 'म'का आधिदैविक रूप 'चन्द्र', आध्यात्मिक रूप 'मन' तथा आधिभौतिक रूप 'संकल्प' है। राम-नाम आधिदैविक दृष्टिसे जगत्‌की अग्नि—सूर्य और सोमात्मकताका, आध्यात्मिक दृष्टिसे वाक्, नेत्र, प्राण और मनोरूपताका तथा आधिभौतिक दृष्टिसे नाम, रूप और क्रियात्मकताका परिचायक है।

'नामाधीन वस्तु विज्ञान होता है। विज्ञानाधीन वस्तुकी उपयोगिता होती है।' इस दृष्टिसे भगवन्नामके अधीन भगवत्तत्त्व-विज्ञान और भगवत्तत्त्वविज्ञानके अधीन ब्रह्मनिर्वाण है।

श्रीरामतत्त्व-विमर्श

(श्रीगोपाल वैष्णवपीठाधीश्वर आचार्य श्री १०८ श्रीविट्ठलेशजी महाराज)

तर्तुं संसृतिवारिधिं त्रिजगतां नौर्नाम यस्य प्रभो-
र्येनेदं सकलं विभाति सततं जातं स्थितं संहृतम्।
यश्चैतन्यघनः प्रमाणविधुरो वेदान्तवेद्यो विभु-
स्तं वन्दे सहजप्रकाशममलं श्रीरामचन्द्रं परम्॥

अखिलब्रह्माण्डनायक भक्त-मन-सुखदायक भगवान् वैकुण्ठनाथजीको जब युद्धलीला करनेकी उत्कट अभिलाषा हुई तो कोई भी भक्त भगवान्‌से युद्ध करनेको इच्छुक नहीं हुआ। सेव्य-सेवकमें युद्ध कदापि सम्भव नहीं था। तब अन्तर्यामी हरिसे प्रेरित होकर सनकादि मुनिगण भगवान्‌का दर्शन करनेके लिये वैकुण्ठधाममें पधारे। उस समय भगवदीय द्वारपाल जय-विजयने उन्हें दिगम्बर-वेषमें देखकर अंदर प्रवेश करनेसे रोक दिया। भगवद्दर्शनके लिये व्याकुल सनकादि मुनियोंके मनमें इस अप्रत्याशित गतिरोधके कारण दुःख उत्पन्न हुआ। क्रोधावेशमें उन्होंने द्वारपालोंको आसुरी योनिमें तीन बार जन्म लेनेका शाप दे दिया, भगवान्‌ने युद्ध-लीलाका पूर्व-कृत्य कर दिखाया। तब वे स्वयं द्वारपर आये और क्षमा-याचना करके उन्होंने मुनियोंको शान्त किया तथा अपने भक्तोंको शीघ्र शापमुक्त होकर वैकुण्ठधाममें

जानेका वरदान दिया।

शापग्रस्त जय-विजयने पहले कश्यप-दितिके यहाँ हिरण्यकशिपु-हिरण्याक्ष-रूपमें जन्म लिया। उन दोनों दैत्योंको भगवान्‌ने नृसिंह और वराह-रूप धारणकर युद्धमें मार डाला तथा वेद-देव-गौ-ब्राह्मण और धर्म-मर्यादाकी रक्षा की।

दूसरे जन्ममें वे दोनों पुलस्त्यके घरमें रावण-कुम्भकर्ण-रूपमें प्रकट हुए, जो तपोबलसे सुर-असुर-नर—सभीसे अजेय थे। उनका प्रतिद्वन्द्वी संसारमें कोई नहीं था। तब भगवान् श्रीरामने अयोध्यामें महाराज दशरथजीके यहाँ चतुर्व्यूहरूपमें मानुषी विग्रहमें अवतार धारण कर रावणादि दैत्योंका संहार किया और लोककल्याणकारी लीला दिखायी। वे ही विष्णु-पार्षद अपने तीसरे जन्ममें द्वापरमें शिशुपाल और दन्तवक्त्र हुए। तब भगवान्‌ने यशोदानन्दन कृष्णरूपसे अवतीर्ण होकर इनका उद्धार किया। दोनों पार्षद पूर्णतया शापमुक्त होकर पुनः भगवद्धाममें जा पहुँचे।

त्रेतामें जब रावणके अत्याचारसे पीडित एवं प्रताडित हुए देवगणोंने ब्रह्माजीको साथ लेकर प्रभुसे कष्ट-निवारणके लिये प्रार्थना की, तब भक्त-दुःखभंजन, सज्जन-मनरञ्जन श्रीहरिने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। सत्यसंकल्प भगवान्‌ने शरणागत-भक्तोंके दुःख दूर करनेके लिये अवधेश श्रीदशरथजीके घरमें अवतार धारण किया और मन-बुद्धि-अहंकार-चित्तके अधिष्ठाता विश्व-तैजस-प्राज्ञ-तुरीय-तत्त्व-स्वरूपमें अभिव्यक्त होकर सुर-असुर तथा मनुष्योंद्वारा असाध्य कर्म करके संसारको चकित कर दिया। मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरित्र-निर्माणके द्वारा वर्णाश्रमधर्मकी स्थापना की।

सच्चिदानन्दविग्रह श्रीराममें भक्तजन रमते हैं तथा भक्तवत्सल भगवान् निज भक्तोंको नाम-लीला-गुणादिके द्वारा रमाते हैं, इसलिये ये 'राम' कहलाते हैं। अथवा 'रा'= राक्षसोंका, म=मरण जिससे हो वह राम है ऐसा कहा जा सकता है। 'राम' नामसे पाप-तापकी छाप मिट जाती है। जब 'राम' नामके प्रभावसे शिला तर गयी, तब जड़-चेतनके तरनेमें आश्चर्य ही क्या है? जन्म-मरणरूपी संसार-सागरसे तरनेके अभिलाषी त्रिलोकीजनोंके लिये 'राम'-नाम-रूपी नौकाके अतिरिक्त और कोई सहारा नहीं है। इसलिये राम भजनीय-वन्दनीय-स्मरणीय हैं।

श्रीराम सकल जग-प्रकाशक-प्रेरक-प्रवर्तक हैं। उन्हींके प्रकाशसे रवि, चन्द्र, अग्नि, विद्युत् और तारे सभी प्रकाशित होते हैं। वे सृष्टि-पालन और संहार करनेवाले हैं। वेद, वेदान्त, गीता आदि शास्त्रोंसे उनको जाना जा सकता है। वे राम सभीके भीतर-बाहर सर्वत्र व्याप्त हैं। वे कर्तुमकर्तु-मन्यथाकर्तुं सर्वथा समर्थ प्रभु हैं। 'ईश्वर' पदसे वाच्य, माया-सम्बन्धसे रहित, इन्द्रियातीत, मनोऽतीत, वागतीत परम तत्त्व हैं। उनकी कृपा तभी होती है जब प्राणी उनमें आसक्त हो जाते हैं। तनिक भी दोष-दृष्टि प्रभुपर डालनेसे भक्त भी भगवान्‌को नहीं पा सकता।

रामतत्त्व सीता सिद्ध है। रामनाम साधन है और साधक श्रीहनुमान्‌जी रुद्रावतार हैं। रामतत्त्वकी खोज करते समय साधकको साधनासे विचलित करनेके लिये काम-क्रोधादि-रूपी दैत्य-दानवोंका समूह कटिबद्ध रहता है। पर राम-कृपासे सभी दुष्टोंपर सभी बाधाओंपर विजय पाकर साधक राम-तत्त्व—सीताकी गवेषणामें सफलता प्राप्त कर लेते हैं। अतः सदा उन्हींकी कृपादृष्टिका आश्रय लेना चाहिये।

श्रीरामचन्द्रजीने अपने चरित्रके द्वारा प्रजावर्गको वर्णाश्रमधर्म, राजनीति, दण्ड एवं आचारसंहिताका उपदेश दिया है तथा मर्यादाका अनुसरण करनेवाले जीवोंका कल्याण भी किया है। इसलिये रामजीके बताये हुए मार्गपर चलना सभीका परम कर्तव्य है।

राम परमेश्वर हैं, उनमें प्राकृत धर्म कैसे हो सकते हैं? अलौकिक शक्तिसे सम्पन्न मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम प्राकृत धर्मोंका आश्रय केवल लीलाके लिये लेते हैं। लीलाके श्रवण-कीर्तन-स्मरणद्वारा जीवोंका कल्याण होता है।

भगवान् श्रीरामका नाम परम कल्याणकारी है। जो मनुष्य जिस किसी भी भावसे श्रीरामके नामका स्मरण करता है, उसका कल्याण ही होता है।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

'श्रीराम'-नामकी महिमा

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ काञ्चीकामकोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीजयेन्द्र सरस्वतीजी महाराज)

भगवन्नामका महत्त्व भगवान्‌से भी अधिक होता है। यहाँतक कि भगवान्‌को भी अपने 'नाम'के आगे झुकना ही पड़ता है। यही कारण है भक्त 'नाम'के प्रभावसे भगवान्‌को वशमें कर लेते हैं। दक्षिण भारतमें लोकप्रचलित निम्नलिखित कथासे 'राम'-नामकी महिमापर प्रकाश पड़ता है।

रामराज्यका समय था। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम अश्वमेध नामक महान् यज्ञका अनुष्ठान कर रहे थे। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ और विश्वामित्र-सदृश ब्रह्मवेत्ताओंके सांनिध्यमें यज्ञका अनुष्ठान चल रहा था। उस पावन अवसरका लाभ उठानेके लिये देश-विदेशके अनेक राजा-महाराजा अयोध्या पधारे हुए थे।

एक सामन्त राजा, जो आखेटके लिये वनमें गया हुआ था, सम्राट् श्रीरामद्वारा यज्ञकी सूचना पाकर सीधे अयोध्या लौट आया तथा यज्ञमण्डपके बाहरसे ही उसने 'वसिष्ठ आदि महर्षियोंको मेरा प्रणाम' कहकर नमस्कार किया और नित्य-कर्मके लिये अपने स्थानको चला गया।

देवलोकसे देवर्षि नारद भी भगवान् श्रीरामके यज्ञ-वैभवको देखनेके लिये अयोध्या आये हुए थे। सामन्त राजाके 'वसिष्ठ आदि महर्षियोंको प्रणाम' इन शब्दोंको सुनकर देवर्षि नारदके मनमें एक युक्ति सूझी। उन्होंने सोचा कि इसी बहाने 'राम'-नामकी महिमाको क्यों न लोगोंमें प्रकट किया जाय। वे तुरंत महर्षि विश्वामित्रके पास गये और बोले—'महर्षिवर! देखी आपने इस सामन्तकी धृष्टता? वास्तवमें महर्षि वसिष्ठकी अपेक्षा आप महाराज श्रीरामके अत्यन्त उपकारी हैं। श्रीराम आपसे ही समस्त अस्त्र-शस्त्रोंका ज्ञान प्राप्त कर सके हैं। आपकी ही कृपासे श्रीरामको जनकनन्दिनी सीताजी मिली हैं। श्रीरामके द्वारा रावण-जैसे क्रूर महाबलशाली राक्षसका समूल नाश करना आपके ही अनुग्रहका फल है। फिर इस मूर्ख सामन्तने जान-बूझकर आपकी महत्ताका अपमान करनेके लिये महर्षि वसिष्ठके नामको प्रथम स्थान दिया है।'

फिर क्या था? महर्षि विश्वामित्र क्रोधसे पागल-से हो गये। वे तुरंत श्रीरामके सामने जाकर बोले—'राजन्! आपके दरबारमें एक सामन्तने मुझे अपमानित करनेकी चेष्टा कर अक्षम्य अपराध किया है। इसके दण्डके रूपमें आपको आज सूर्यास्तसे पहले उस सामन्तके सिरको मेरे चरणमें समर्पित करना होगा अन्यथा मैं शाप दे दूँगा।'

भगवान् श्रीराम महर्षिकी आज्ञाको शिरोधार्य कर तुरंत उस सामन्तकी खोजमें लग गये।

उधर देवर्षि नारद सीधे उस सामन्त राजाके पास पहुँचे और उसे संकटकी सूचना दी। सामन्त उनके चरणोंपर गिर पड़ा और बोला—'भगवन्! कृपया इस संकटसे मुझे बचाइये। अनजानेमें मैं महाराज श्रीरामके प्रति अपराधी बन गया हूँ। तीनों लोकोंमें मुझे शरण देनेवाला कोई नहीं दीखता। अब तो आप ही किसी उपायसे बचा सकते हैं।'

नारदजी कुछ सोचकर बोले—तब एक उपाय है। तुम इसी समय रामभक्त हनुमान्‌जीकी माता अञ्जनादेवीकी शरणमें जाओ। हनुमान्‌जी माताके प्रति प्रगाढ़ भक्ति रखते हैं। वे माताकी आज्ञा टाल नहीं सकते। माताकी आज्ञा होनेपर वे ही तुम्हें बचा सकते हैं।

सामन्त तुरंत उस स्थानपर गया, जहाँ अञ्जनादेवी पूजा कर रही थीं। उसने उनके चरण पकड़कर अभय माँगा। पूछनेपर सारा वृत्तान्त सुनाकर रक्षा करनेकी प्रार्थना की। अञ्जनादेवीने अपने पुत्र हनुमान्‌जीको बुलाया और उनसे राजाकी रक्षा करनेकी बात कही।

माताकी आज्ञा सुनकर हनुमान्‌जी क्षणभरके लिये विचलित हो गये। राजाकी रक्षा करनेका अर्थ था अपने आराध्य प्रभुके प्रति द्रोह। फिर भी उन्होंने माताकी आज्ञा मान ली और राजाको अभयदान किया।

हनुमान्‌जीने अपनी पूँछ बढ़ायी, उसे लपेटकर एक दुर्ग बनाया और उसीके भीतर बैठकर राजाके साथ ध्यानमग्न होकर 'राम'-नामका अनवरत जप करने लगे।

इधर श्रीराम सामन्तको खोजते-खोजते उसी स्थलपर आ पहुँचे। नारदजीने उन्हें दुर्गको दिखाकर उसमें सामन्तके छिपे रहनेकी बात बतायी।

तब श्रीरामने दुर्गको लक्ष्यकर अपने अमोघ बाणोंका प्रयोग करना प्रारम्भ किया। धनुषके टंकारसे आकाश गूँजने

लगा। बाणोंकी सर्र-सर्रकी आवाज दिशाओंको प्रतिध्वनित करने लगी। लेकिन यह क्या ? जिस वेगसे श्रीरामके बाण धनुषसे छूटते थे, उसी वेगसे दुर्गकी प्रदक्षिणा कर श्रीरामके चरणोंमें वापस लौटकर आ गिरते थे। क्रमशः बाणोंके स्थानको अस्त्रोंने ग्रहण किया। लेकिन सफलता नहीं मिली। श्रीरामके क्रोधका पारावार उमड़ पड़ा। स्थितिको बिगड़ते देख देवर्षि नारद श्रीरामके समीप आये और बोले—'महाराज ! कृपाकर अस्त्रोंका प्रयोग बंद करें। फिर ध्यानसे इस ध्वनिको सुनें।'

भगवान् श्रीरामने अस्त्रोंका प्रयोग बंद किया। शान्त वातावरणमें 'राम-राम'की ध्वनि स्पष्ट सुनायी देने लगी, जो दुर्गसे निकल रही थी। श्रीरामने पास जाकर देखा। दुर्गके भीतर 'राम-राम' जप रहे ध्यानमग्न मारुति और भयभीत राजा दिखायी पड़े।

श्रीराम बोले—'हनुमन् ! यह क्या ? मैंने जिस व्यक्तिका सिर महर्षि विश्वामित्रको भेंट देनेका वचन दिया है, तुम उसकी रक्षा कर रहे हो ? क्या मुझे अनृतवादी बनाना तुम्हारे लिये न्यायसंगत है ?'

हनुमान्‌जीने भगवान्‌के चरण पकड़ लिये और बोले—'प्रभो ! यह मेरे बसका काम नहीं है। फिर मैं माताकी आज्ञाका तिरस्कार नहीं कर सका। तब मुझे आपके नामके सिवाय कोई रक्षक नहीं दीख पड़ा।'

अब श्रीरामको अनृतवादी होनेसे बचानेका भार नारदजीका था। वे स्वयं आगे आकर बोले—'महाराज ! महर्षि विश्वामित्रने इस सामन्तके सिरको उनके चरणोंमें समर्पित करनेकी बात कही है। इसका अर्थ यह नहीं कि इसके सिरको काटकर ही रखा जाय। अतः यह महर्षि विश्वामित्रके चरणोंपर सिर रखकर दण्डवत् करे, जिससे आपके वचनका भी पालन हो जायगा, राजाकी रक्षा भी होगी।'

देवर्षि नारदजीके सुझावके अनुसार सामन्तने विश्वामित्रके चरणोंपर माथा टेककर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। महर्षिका क्रोध भी शान्त हुआ।

धन्य है हनुमान्‌जीकी रामभक्ति। धन्य है राम-नामकी महिमा।

साक्षात् भगवान् श्रीरामका आविर्भाव

(अनन्तश्री ब्रह्मनिष्ठ पूज्यपाद भोगवर्धनपीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णानन्दसरस्वतीजी महाराज)

नमोऽस्तु रामाय सलक्ष्मणाय देव्यै च तस्यै जनकात्मजायै।
नमोऽस्तु रुद्रेन्द्रयमानिलेभ्यो नमोऽस्तु चन्द्रार्कमरुद्गणेभ्यः॥

रामं रामानुजं सीतां भरतं भरतानुजम्।
सुग्रीवं वायुसूनुं च प्रणमामि पुनः पुनः॥
रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे।
रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥

अखिललोकनायक अनन्तकोटिब्रह्माण्ड-परिपालक, मर्यादापुरुषोत्तम सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीमद्राघवेन्द्र रामभद्र प्रभु श्रीरामका मङ्गलमय चरित्र केवल भारतवर्षके लिये ही नहीं; अपितु सम्पूर्ण विश्वके मानवमात्रके लिये आदर्शभूत एवं अनुकरणीय है। अनादि-अपौरुषेय प्रमाणसम्राट् स्वयंप्रमाण भ्रम-विप्रलिप्सा, पक्षपातादिदोषरहित भगवान्‌के श्वाससे आविर्भूत श्रुति तथा स्मृति, पुराण-इतिहास, विविध तन्त्र-आगमादिके अनुसार आदिकवि प्राचेतस महर्षि मुनि श्रीवाल्मीकिजीने आदिकाव्य श्रीमद्रामायणमें तथा चन्द्रमौलीश्वर भगवान् शंकरने अध्यात्मरामायणमें, अन्यान्य राग-द्वेषादि-विवर्जित सर्वभूतहितरत महातपा योगीन्द्र मुनीन्द्र अमलात्मा वीतराग आतमाराम जीवन्मुक्त परमहंसशिरोमणि शुक-सनक-याज्ञवल्क्य आदिने अपनी बुद्धिके अनुसार यथाशक्ति उनकी मङ्गलमयी कीर्तिका गान किया है।

निर्गुण ब्रह्मका वाचक 'श्रीराम' शब्द भी यही सिद्ध करता है कि दाशरथि राम भगवान् ही हैं। **'औत्पत्तिकस्तु शब्दस्यार्थेन सम्बन्धः'** (पूर्वमीमांसादर्शन, अध्याय० १, पा० १, अधिकरण ५, सूत्र ५) शब्दका अर्थके साथ अकृत्रिम सहज औत्पत्तिक सम्बन्ध होता है। शब्द और अर्थका अविनाभाव-सम्बन्ध है। श्रीरामचरितमानसमें इसे ही इस रूपमें कहा है—***'गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। बंदउँ सीता राम पद···॥'*** एवं **'रमन्ते**

योगिनोऽस्मिन् इति रामः' योगीलोग जिसमें रमण करते हैं—ऐसा 'राम' शब्दका अर्थ होता है। आत्माराम आप्तकाम पूर्णकाम परम निष्कामोंके रमणका विषय भूत-भौतिक-प्राकृत विषय तो हो ही नहीं सकता। इनका जब भी, जहाँ भी, जो भी विषय होगा वह भगवान् ही होगा। अनात्माराम देह-इन्द्रिय-विषयारामोंके नेत्रादिका विषय भले ही भूत-भौतिक-प्राकृत विषय-प्रपञ्च हो, किंतु आत्माराम-सम्राट् विदेहराज राजर्षि जनकजीके नेत्रादिके विषय भगवान् श्रीराम ही हो सकते हैं। श्रीपरमहंसचूडामणि श्रीशुकदेवजीके चित्तके आकर्षण-विषय तो मात्र केवल भगवान् ही हो सकते हैं। जनकजी तथा शुकदेवजीकी एक ही स्थिति है—

आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे।
कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः॥
हरेर्गुणाक्षिप्तमतिर्भगवान् बादरायणिः।
अध्यगान्महदाख्यानं नित्यं विष्णुजनप्रियः॥

(श्रीमद्भा० १।७।१०-११)

जो लोग ज्ञानी हैं, जिनकी अविद्याकी गाँठ खुल गयी है और जो सदा आत्मामें ही रमण करनेवाले हैं, वे भी भगवान्‌की हेतुरहित भक्ति किया करते हैं; क्योंकि भगवान्‌के गुण ही ऐसे मधुर हैं, जो सबको अपनी ओर खींच लेते हैं। फिर श्रीशुकदेवजी तो भगवान्‌के भक्तोंके अत्यन्त प्रिय और स्वयं भगवान् वेदव्यासके पुत्र हैं। भगवान्‌के गुणोंने उनके हृदयको अपनी ओर खींच लिया और उन्होंने उससे विवश होकर ही इस विशाल ग्रन्थका अध्ययन किया।

ब्रह्मविद्वरिष्ठोंकी वाणीका विषय अनित्य-विनश्वर भौतिक पदार्थ नहीं हो सकता। उनकी वाणी केवल एकमात्र भगवान्‌के ही गुणानुवादमें रमण करती है। सभी ब्रह्मविद्वरिष्ठोंने अपनी वाणीका विषय इन भगवान् श्रीरामको ही बनाया।

श्रीरामरहस्योपनिषद्में तथा श्रीरामपूर्वतापिनी एवं उत्तरतापिनी उपनिषदोंमें आये हुए श्रीरामविषयक मन्त्र एवं उनके अनुष्ठान आदिका विधि-विधान श्रीरामको भगवान् ही सिद्ध करता है—

किं मन्त्रैर्बहुभिर्विनश्वरफलैरायाससाध्यैर्वृथा
किञ्चिल्लोभवितानमात्रविफलैः संसारदुःखावहैः।
एकः सन्नपि सर्वमन्त्रफलदो लोभादिदोषोज्झितः
श्रीरामः शरणं ममेति सततं मन्त्रोऽयमष्टाक्षरः॥

(रामरहस्योपनिषद् २।३८)

सर्वलोकशरण्य केवल मात्र एक भगवान् ही हो सकते हैं और वे श्रीराम ही हैं। उनके सिवाय और कोई शरण्य हो ही नहीं सकता। अतः श्रीशिव-ब्रह्मादि देवाधिदेव उन्हींकी शरणमें जाते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा० ६।१८।३३)

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(रा० च० मा० ५।४४।१-२)

—यह कहकर अभयदान केवल एक मात्र भगवान् ही दे सकते हैं। भगवान्‌के पूर्णलक्षण भगवान् श्रीराममें ही घटते हैं—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीङ्गना॥

तथा—

उत्पत्तिं च विनाशं च भूतानामागतिं गतिम्।
वेत्ति विद्यामविद्यां च स वाच्यो भगवानिति॥

अखण्ड ऐश्वर्य, अखण्ड धर्म, अखण्ड यश, अखण्ड श्री, अखण्ड ज्ञान, अखण्ड वैराग्य तथा उत्पत्ति-विनाश भूतमात्रोंकी आने-जानेकी स्थिति, विद्या और अविद्या—ये सब जिसमें हों तथा इनपर पूरी तरह जिसका नियन्त्रण हो, इन सबको जो जानता हो, वही भगवान् हो सकता है। ये सब भगवान् श्रीराममें ही हैं। अतः वही अभय एवं शरण दे सकते हैं; क्योंकि एकमात्र वही इस जगत्‌के अभिन्न-निमित्त एवं उपादानकारण हैं। मिट्टी भी वही हैं, कुम्हार भी वही हैं। घड़ा भी वही हैं, चाक और डंडा तथा डोरा आदि सब वही हैं। अणु-अणुमें जो रम रहा है, वही भगवान् राम हैं। उनका भगवान्‌पना महर्षि आदिकवि वाल्मीकिजीने—

लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः।

(वा० रा० अयो० ३७।३२)

—इन शब्दोंमें कहकर वर्णित किया है।

इस लोकमें न कोई ऐसा हुआ है, न है, न होगा जो कि

भगवान् रामका अनुव्रत न हो !

भगवान् श्रीराम ब्रह्माण्ड-निकाय हैं—

जेहिं सृष्टि उपाई त्रिबिध बनाई संग सहाय न दूजा ।

(रा० च० मा० १ । १८६ । छं०)

ब्रह्मांड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति बेद कहै ।

(रा० च० मा० १ । १९२ । छं०)

—ये सब बातें भगवान्‌में ही हो सकती हैं। आत्माराम ब्रह्मविद्वरिष्ठ जिनके सौन्दर्यको निरखकर कहते हैं—

इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥

(रा० च० मा० १ । २१६ । ५)

क्या किसी सामान्य जीवके सौन्दर्यपर ऐसा विमुग्ध होना सम्भव है ? जीवमें ऐसा अलौकिक चमत्कारपूर्ण सौन्दर्य कभी सम्भव नहीं, तो फिर यह सौन्दर्य, यह असमोर्ध्वमाधुर्य, यह अप्राकृत चिन्मय लावण्य तो श्रीभगवान् रामका ही हो सकता है; क्योंकि वे भगवान् हैं, श्रीराम हैं। भगवत्ता उन्हींका वरण करके रहती है; क्योंकि वे वरेण्य हैं—वरने लायक हैं। उनका मङ्गलमय श्रीविग्रह जीवका देह नहीं, किंतु सद्घन चिद्घन आनन्दघन ही है, अतः अनन्त कल्याणगुणगणोंका आश्रय है—

चिदानंदमय देह तुम्हारी । बिगत बिकार जान अधिकारी ॥

उनका कृतकर्मोंके फलस्वरूप मिला भूत-भौतिक शरीर नहीं, अपितु ***'निज इच्छा निर्मित तनु माया गुन गो पार'*** है। यह तो उनका अपना ऐच्छिक मङ्गलमय श्रीविग्रह है जो सर्वभुवन-सुन्दर है। ज्ञान-विज्ञानकी अधिष्ठातृदेवियाँ—साक्षात् भगवती श्रुतियाँ इस मङ्गलमय श्रीविग्रहके दिव्य अप्राकृत सौन्दर्य-माधुर्य-लावण्यामृतपानको ही अपने नेत्रोंका परम फल मानती हैं—

अक्षण्वतां फलमिदं न परं विदामः
सख्यः पशूननुविवेशयतोर्वयस्यैः ।
वक्त्रं व्रजेशसुतयोरनुवेणुजुष्टं
यैर्वा निपीतमनुरक्तकटाक्षमोक्षम् ॥

(श्रीमद्भा० १० । २१ । ७)

—यह स्थिति भगवान्‌के लिये श्रुतियोंकी हो सकती है। अतः श्रीराम ही भगवान् हैं। महर्षि वेदव्यास उन्हीं भगवान् रामके लिये ही ऐसा कह रहे हैं। यथा—

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा ।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः ॥

(श्रीमद्भा० ९ । ११ । २२)

भगवान् श्रीरामचन्द्र प्रभुको जिसने एक बार भी छू लिया, देख लिया, उन्हींको अपना मान लिया, उनके पीछे-पीछे एक-दो कदम भी चल दिया, उन्हें भी योगियोंकी गति प्राप्त हो गयी। ऐसे हैं भगवान् श्रीराम। क्योंकि भगवान् अपने आविर्भाव—अवतार-दशामें साधन-सामर्थ्यसे काम न लेकर स्वरूप-सामर्थ्यसे काम लेते हैं। प्रमाण-बलसे काम न लेकर प्रमेयबलसे ही काम लेते हैं। जीवोंके साधनकी अपेक्षा न रखकर अपनी ओरसे ही सद्गति—मोक्ष आदि देते हैं। भगवान्‌के अवतारका असाधारण कारण यही है कि जीवोंको उनकी क्षमताके आधारपर नहीं, अपितु अपनी कृपाशक्तिसे ही मोक्षादि प्रदान करना। अनवतार-दशामें भगवान् जितना कार्य करते हैं, ठीक उतना ही कार्य अवतार-दशामें भी करें तो दोनों दशाओंमें अन्तर ही क्या रहेगा ?

महर्षि वेदव्यासजी कहते हैं—श्रीशुकदेवजी श्रीराजा परीक्षित्‌को सुना रहे हैं—

नृणां निःश्रेयसार्थाय व्यक्तिर्भगवतो नृप ।
अव्ययस्याप्रमेयस्य निर्गुणस्य गुणात्मनः ॥

(श्रीमद्भा० १० । २९ । १४)

सामान्य तुच्छसे भी तुच्छ प्राणियोंका परम कल्याण हो, इसके लिये ही भगवान् अवतार ग्रहण करते हैं, न कि किसी ब्रह्मविद्वरिष्ठके मोक्षके लिये; क्योंकि वह तो स्वसाधनसे ही मुक्त है—

'जो कबिरा कासी मरै तो रामइ कौन निहोरा रे'

वेद-श्रुतियाँ स्वयं ही कह रही हैं—

दुरवगमात्मतत्त्वनिगमाय तवात्ततनोश्चरितमहामृताब्धि-परिवर्तपरिश्रमणाः ।

(श्रीमद्भा० १० । ८७ । २१)

दुर्बोध आत्मतत्त्व सामान्य जीवोंको बतलाकर उनको मोक्ष देनेके लिये ही आपने शरीर धारण किया है।

कहा जा सकता है कि भगवान् तो देश-काल-वस्तुकी सीमामें आनेवाले तत्त्व नहीं। व्यापक असीमित-तत्त्व सीमित-संकुचित होकर किसी माताके गर्भाशयमें—किसी एक देश,

ग्राम आदिमें कैसे आ सकते हैं ? जैसे जीवोंके उद्धारके लिये, पापियोंको पापमुक्त करनेके लिये श्रीगङ्गाजी ऊपर वैकुण्ठ-कैलास-स्वर्ग-हिमालय आदिसे नीचे उतरकर भूलोकमें हम सबके बीच आती हैं, उसी तरह परब्रह्म परमात्मा सर्वाधार सर्वव्यापक सर्वकारण परमेश्वर भगवान् श्रीरामका लोक-कल्याणार्थ अवतरण श्रीसाकेतादिसे नीचे श्रीअवधादिमें उतरना इस लोकमें आना अवतार है। परंतु परमेश्वर तो आकाशकी तरह सदा-सर्वत्र व्याप्त हैं। श्रीपरब्रह्म परमात्मा सभी कार्योंके महाकारण श्रीराम भगवान् हैं। उनकी व्यापकता-की तो बात ही क्या है !

'नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये'

हरि अनंत हरिकथा अनंता। कहहिं सुनहिं बहुबिधि सब संता ॥

(रा० च० मा० १। १४०। ५)

राम अनंत अनंत गुन अमित कथा बिस्तार।

(रा० च० मा० १। ३३)

'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।' (तैत्ति० उप० २। १)

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥

(रामपूर्वतापि० १। ६)

भगवान् श्रीरामकी अवतार-दशामें भी व्यापकताकी अनुभूति महर्षि महातपा श्रीकाकभुशुण्डिजीने की—

ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं चितयउँ पाछ उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि तात ॥
सप्तावरन भेद करि जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयउँ बहोरि ॥

(रा० च० मा० ७। ७९, (क, ख))

भगवान् श्रीरामजी तो महाकाशके भी महाकाश हैं। सर्वव्यापक तत्त्वका सर्वाधिपति होना तो सहज स्वाभाविक है।

सर्वेश्वर, सर्वनियन्ता, सर्वाधिपति, सर्वात्मा, सर्वकारण, सर्वव्यापक प्रभु चाहे जब जहाँ जिस रूपमें चाहे जिस वस्तुमें अवतरित हों, अवतरण करें, उतरें, आयें, उनकी अपनी स्वरूपभूत सर्वव्यापकता ठीक वैसे ही बनी रहती है, जैसे महाकाशकी सर्वव्यापकता किसी घड़ेकी सीमामें आनेपर घटाकाश कहलानेपर, किसी मकानकी चहारदीवारीमें आकर गृहाकाश-मठाकाश कहलानेपर, किसीके पेटमें आकर उदराकाश कहलानेपर, किसी गर्भिणी स्त्रीके गर्भमें आकर गर्भाकाश कहलानेपर भी साथ-ही-साथ—ये सब सीमाएँ इन सब सीमाओंमें बँधा हुआ-सा दिखायी देनेपर भी उसका अपना स्वरूपभूत महाकाश—सर्वव्यापकपना ठीक उसी पहले स्वरूपमें ही बना रहता है, उसमें जरा भी बाधा नहीं आती। तो फिर जो उस महाकाशके भी आत्मा आकाश हैं श्रीभगवान् राम प्रभु तो उनकी बात ही क्या है? वे तो अनन्तानन्त अपरिमित असंख्य उपाधियोंपर प्रकट—अभिव्यक्त होकर भी व्यापक ही हैं—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद ॥

भगवान् रामके चरणोंकी महिमा

कंज के समान सिद्ध-मानस-मधुप-निधि,
परम निधान सुरसरि मकरंद के।
सब सुख साज, सुरराजन के सिरताज,
भाजन हैं मंगल मुकति रूप कंद के ॥
सरजू-बिहारी, रिषिनारी-तापहारी, ज्ञान-
दाता हितकारी सेनापति मतिमंद के।
बिस्व के भरन, सनकादि के सरन, दोऊ
राजत चरन महराज रामचंद के ॥

—महाकवि सेनापति

रामो विग्रहवान् धर्मः

(अनन्तश्री स्वामी श्रीमाधवाश्रमजी महाराज)

अखिल कोटि-ब्रह्माण्डनायक मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम साक्षात् विग्रहवान् धर्म हैं। शास्त्रोंमें धर्मके अनेक लक्षण मिलते हैं—'**यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः ।**' जिसके द्वारा मर्यादापूर्वक कल्याणका मार्ग प्रशस्त हो वह धर्म है।

वैदिक धर्मकी रक्षाके लिये ही भगवान् श्रीरामका अवतार हुआ; क्योंकि वैदिक धर्मकी रक्षा ही मर्यादाकी रक्षा है और मर्यादा-रक्षण तथा मर्यादा-पालन जिनमें है, वे राघवेन्द्र ही साक्षात् विग्रहवान् धर्म हैं।

मारीच रावणको समझाते हुए राघवके गुणोंका वर्णन और रावणको सन्मार्ग दिखानेके संदर्भमें कहते हैं—

रामो विग्रहवान् धर्मः साधुः सत्यपराक्रमः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवानामिव वासवः ॥

(वा० रा० ३ । ३७ । १३)

अर्थात् श्रीराम साक्षात् विग्रहवान् धर्म हैं। वे साधु और सत्यपराक्रमी हैं। जैसे इन्द्र समस्त देवताओंके अधिपति हैं, उसी प्रकार श्रीराम समस्त जगत्‌के राजा हैं।

विग्रहवान् धर्मके समग्र लक्षण श्रीराममें चरितार्थ हैं—

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥

वेदोंका अध्ययन, शास्त्रोंका चिन्तन, सदाचारका पालन तथा अपने आत्माका प्रिय करना—ये चार धर्मके साक्षात् लक्षण हैं।

माता, पिता, गुरु एवं अतिथि आदिकी पूजा तथा सेवा करना यह शास्त्रीय मर्यादा है। ये साक्षात् देवरूप हैं। इस आचार-मर्यादा एवं धर्मादेशका पालन करना परम धर्म है। शास्त्रकी आज्ञा है—

मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव ।

(तैत्तिरीयारण्यक प्र० पा० ७ । ११)

माता-पिताके प्रति मनुष्य-बुद्धिका परित्याग करके देवता-बुद्धिसे ही उनका पूजन-सम्मान होता है। यही शास्त्रका तात्पर्य है। भगवान् श्रीरामने उसे चरितार्थ करके दिखाया—

श्रीरामकी मातृभक्ति

मन्थराके मुखसे श्रीरामके राज्याभिषेककी बात सुनकर महारानी कैकेयी बहुत प्रसन्न हुईं और कहने लगीं—

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोऽपि राघवः ।
कौसल्यातोऽतिरिक्तं च मम शुश्रूषते बहु ॥

(वा० रा० २ । ८ । १८)

मेरे लिये जैसे भरत आदरके पात्र हैं, वैसे ही बल्कि उनसे भी बढ़कर श्रीराम हैं, क्योंकि वे कौसल्यासे भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करते हैं।

महाराज दशरथ भी कैकेयीको समझाते हुए यही कहते हैं कि—

रामो हि भरताद्भूयस्तव शुश्रूषते सदा ।

(वा० रा० २ । १२ । २५)

मैं देखता हूँ भरतसे अधिक श्रीराम ही सदा तेरी सेवा करते हैं। जब भरतजी श्रीरामको लौटानेके लिये चित्रकूटकी ओर गये तो महाराज वसिष्ठ और कौसल्या, सुमित्रा, कैकेयी अन्य माताएँ भी साथ थीं, जब श्रीरामने उन्हें देखा तो—

तासां रामः समुत्थाय जग्राह चरणाम्बुजान् ।
मातॄणां मनुजव्याघ्रः सर्वासां सत्यसंगरः ॥

(वा० रा० २ । १०४ । १८)

सत्यप्रतिज्ञ नरश्रेष्ठ श्रीराम माताओंको देखते ही उठकर खड़े हो गये और बारी-बारीसे उन सबके चरणारविन्दोंका स्पर्श किया, इस प्रकार श्रीरामकी मातृभक्तिमें श्रद्धा है।

श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने भी श्रीरामकी मातृभक्तिका वर्णन किया, वन जानेके समय श्रीराम जानकीजीको रोकना चाहते हैं और कहते हैं कि—

जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥
तब तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुंदरि समुझाएहु मृदु बानी ॥

(रा० च० मा० २ । ६१ । ६-७)

माताको प्रणाम करते समय—

रघुकुलतिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा ॥

(रा० च० मा० २ । ५२ । १)

श्रीराघवेन्द्र लक्ष्मणजीसे कह रहे हैं कि मैंने यहाँ कभी

जान-बूझकर या अनजानेमें माताओंका तथा पिताजीका कोई छोटा-सा भी अपराध किया हो, ऐसा याद नहीं आता। यह है, भगवान् श्रीरामकी मातृभक्ति।

श्रीरामकी पितृभक्ति

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः।

(श्रीमद्भा० ९। १०। ४)

भगवान् श्रीरामने पिताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये और उनकी सत्यरक्षाके लिये उस राज्यलक्ष्मीका परित्याग किया जिसके लिये देवता भी लालायित रहते हैं—'**त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीम्।**'

श्रीविश्वामित्रजी महाराज राघवेन्द्रको ताड़काका परिचय देते हुए उसके वधके लिये प्रेरित करते हुए उत्साहित कर रहे हैं, उसी संदर्भमें श्रीराम अपनी पितृभक्ति दिखाते हुए कह रहे हैं—

पितुर्वचननिर्देशात् पितुर्वचनगौरवात्।
वचनं कौशिकस्येति कर्तव्यमविशङ्कया॥
अनुशिष्टोऽस्म्ययोध्यायां गुरुमध्ये महात्मना।
पित्रा दशरथेनाहं नावज्ञेयं हि तद्वचः॥

(वा० रा० १। २६। २-३)

भगवन्! अयोध्यामें मेरे पिता महात्मा महाराज दशरथने अन्य गुरुजनोंके बीचमें मुझे उपदेश दिया था कि बेटा! तुम पिताके कहनेसे पिताके वचनोंका गौरव बढ़ानेके लिये कुशिकनन्दन विश्वामित्रकी आज्ञाका पालन निःशंक होकर करना, कभी भी उनकी आज्ञाकी अवहेलना नहीं करना—अतः मैं—

सोऽहं पितुर्वचः श्रुत्वा शासनाद्ब्रह्मवादिनः।
करिष्यामि न संदेहस्ताटकावधमुत्तमम्॥

(वा० रा० १। २६। ४)

—ब्रह्मवादी महात्माकी आज्ञासे ताड़का-वध-सम्बन्धी कार्यको उत्तम मानकर करूँगा, इसमें संदेह नहीं। यह है श्रीरामजीकी पितृभक्ति।

श्रीरामजीकी गुरुभक्ति

बालकाण्डमें विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा करते हुए उनकी आज्ञासे ताड़काका वध, सुबाहु और मारीचसे उन्हें निश्चिन्त करते हुए जब भगवान् श्रीराम एवं लक्ष्मणजीके द्वारा यज्ञ पूर्ण करवा दिया गया तो यज्ञ समाप्त होनेपर महामुनि विश्वामित्रजी उनकी गुरुभक्ति देखकर प्रसन्न होकर कहते हैं—

कृतार्थोऽस्मि महाबाहो कृतं गुरुवचस्त्वया।
सिद्धाश्रममिदं सत्यं कृतं वीर महायशः।

(वा० रा० १। ३०। २६)

हे महाबाहो! तुम्हें पाकर मैं कृतार्थ हो गया। तुमने गुरुकी आज्ञाका पूर्णरूपसे पालन किया, महायशस्वी वीर! तुमने इस सिद्धाश्रमका नाम सार्थक कर दिया, तदनन्तर श्रीरामचन्द्रजीकी प्रशंसा करके मुनिने इन दोनों भाइयोंके साथ संध्या-वन्दन किया। इस प्रकार श्रीरामजी गुरुभक्तिमें तत्पर होकर श्रीविश्वामित्रजी महाराजको संतुष्ट करते हुए धर्मके स्वरूपको प्रतिष्ठित कर रहे हैं—

प्रभातायां तु शर्वर्यां कृतपौर्वाह्णिकक्रियौ।
विश्वामित्रमृषींश्चान्यान् सहितावभिजग्मतुः॥
अभिवाद्य मुनिश्रेष्ठं ज्वलन्तमिव पावकम्।
ऊचतुः परमोदारं वाक्यं मधुरभाषिणौ॥
इमौ स्म मुनिशार्दूल किंकरौ समुपागतौ।
आज्ञापय मुनिश्रेष्ठ शासनं करवाव किम्॥

(वा० रा० १। ३१। २—४)

प्रभात होनेपर दोनों भाई नित्यक्रियासे निवृत्त होकर विश्वामित्र एवं अन्य ऋषियोंके पास गये, वहाँ जाकर उन्होंने अग्निके समान तेजस्वी मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीको प्रणाम किया और मधुर वाणीमें ये परम उदार वचन कहे—'मुनिवर! हम दोनों किंकर आपकी सेवामें उपस्थित हैं, मुनिदेव! आज्ञा दीजिये, हम क्या सेवा करें।'

इस प्रकार भगवान् राघवेन्द्र गुरुभक्तिको चरितार्थ करते हुए '**विग्रहवान् धर्मः**' का स्वरूप उपस्थित कर रहे हैं।

बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥
राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई॥

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम

(अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशी-सुमेरु-पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द सरस्वतीजी महाराज)

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते ॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।६)

'वेदान्तवेद्य जिस अनन्त सच्चिदानन्द-तत्त्वमें योगिवृन्द रमण करते हैं, उसीको परब्रह्म श्रीराम कहते हैं।' वही त्रेता-युगमें श्रीअयोध्यामें दशरथनन्दन, कौसल्यानन्दवर्धनरूपसे अवतार लेते हैं। कार्य-कारणातीत परमतत्त्वका अचिन्त्य-लीलाशक्तिके योगसे अवतार धारण करना उपासकोंपर परम अनुग्रह है। साथ ही स्वयं वैदिक मर्यादाके पालनमें सदा तत्पर रहकर सबके अभ्युदय और निःश्रेयसका पथ प्रशस्त करना यह तो उनका प्राणिमात्रपर परमातिपरम अनुग्रह है। तभी तो कहा गया है—**'रामो विग्रहवान् धर्मः।'** (वा०रा० ३।३७।१३)

भगवती श्रुति कहती हैं—**'मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव।'** (तैत्तिरीय० १।११।२)—'मातृ-भक्ति, पितृ-भक्ति, आचार्य (गुरु-) भक्ति और अतिथिभक्ति-सम्पन्न होओ।' इस श्रुतिको अक्षरशः सार्थक किया है मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने। अज-अनादि, लोक-महेश्वर होते हुए भी तथा सीता, द्रौपदी और धृष्टद्युम्नादिके तुल्य अयोनिज अवतीर्ण होनेमें समर्थ होते हुए भी कौसल्या अम्बाके गर्भसे समुदित होकर श्रीरामचन्द्रने मातृभक्तिका आदर्श प्रस्तुत किया। श्रीरामने मातृभक्ति और पितृभक्तिके कारण अयोध्याका राज्य छोड़ा। तत्त्वज्ञ होनेपर भी गुरुभक्तिके कारण प्रवृत्तिपथको प्रशस्त किया—ताड़काको मारा, शिवजीका धनुष तोड़ा और सीताका पाणिग्रहण किया। अतिथिदेव होनेके कारण श्रीलक्ष्मणजीसे वियुक्त होकर लीलासंवरण किया।

जिस रामराज्यकी गाथा नास्तिक और नास्तिकप्राय लोगोंको भी अति प्रिय लगती है, उस रामराज्यमें सभी दैहिक-दैविक और भौतिक तापोंसे मुक्त थे। श्रुतिसम्मत, साधुमत, भक्तमत, लोकमत और राजमतका सर्वथा समादर था। वर्णाश्रमधर्मकी पूर्ण प्रतिष्ठा थी। लोकरञ्जनके लिये श्रीरामने सती-साध्वी, अनिन्द्या, अयोनिजा, प्राणप्रिया भगवती सीतादेवीकी जहाँ अग्नि-परीक्षा ली, वहाँ कालान्तरमें उनका त्यागतक कर दिया। नीति, प्रीति, स्वार्थ और परमार्थका निर्वाह तो श्रीरामभद्रसे ही करते बना।

ऐसे श्रीरामका नाम सुमङ्गल है, रूप सुमङ्गल है, धाम सुमङ्गल है और उनकी लीला सुमङ्गला है। रामलीला और रामायणके माध्यमसे समाजमें श्रीरामभद्रके आदर्शको प्रतिष्ठित करनेवाले सज्जन सुमङ्गल हैं।

भगवती सीतामें श्रीरामभद्रके प्रति तत्त्व-प्रेमकी प्रतिष्ठा है। दशरथमें श्रीरामभद्रके प्रति सत्यप्रेमकी प्रतिष्ठा है। जनकमें श्रीरामभद्रके प्रति गूढस्नेहकी प्रतिष्ठा है। लक्ष्मणजीमें श्रीराम-भद्रके प्रति अनन्य-प्रेमकी प्रतिष्ठा है। भरतजीमें श्रीरामभद्रके प्रति अगमस्नेह और गूढस्नेहकी प्रतिष्ठा है। अवधवासियोंमें श्रीरामभद्रके प्रति अवधि-प्रेमकी प्रतिष्ठा है। कौसल्याजीके जीवनमें अलौकिक विवेकसहित अनुपम वात्सल्यकी प्रतिष्ठा है। सुमित्रा माताके जीवनमें समत्वसहित अगाध प्रेमकी प्रतिष्ठा है। भगवान् श्रीराममें नीति, प्रीति, स्वार्थ और परमार्थके अनुपम सामञ्जस्यकी प्रतिष्ठा है। श्रीराम सबके जीवनधन हैं। जो अनुरागभरी दृष्टिसे श्रीरामको निहारते हैं और जिन्हें अनुग्रहभरी दृष्टिसे श्रीराघव निहारते हैं, उनका जीवन धन्य है।

भगवल्लीलाके अनुपम रसिक श्रीहनुमान् हैं। वे भगवत्कथामृतका पानकर कभी भी अघाते नहीं। आज भी गन्धमादनपर्वतपर कदलीवनमें गन्धर्वों और अप्सराओंद्वारा रामलीलाका गान, श्रवण और अवलोकन कर वे आनन्द-विभोर रहते हैं। इतना ही नहीं, जहाँ-जहाँ रामकथा होती है, वहाँ-वहाँ नतमस्तक और अञ्जलिबद्ध होकर प्रेमाश्रुपरिप्लुत नेत्र होकर कथामृतका पान करते रहते हैं।

'रामलीला'से रामादिवत् व्यवहार करनेकी और कृष्णलीलासे भक्त-तुल्य आचरण करनेकी शिक्षा प्राप्त करनी चाहिये—

रामादिवद्वर्तितव्यं न क्वचिद्रावणादिवत्।
इत्येष मुक्तिधर्मादिपराणां नय इष्यते ॥
वर्तितव्यं शमिच्छद्भिर्भक्तवन्न तु कृष्णवत्।
इत्येवं भक्तिशास्त्राणां तात्पर्यस्य विनिर्णयः ॥

(उज्ज्वलनीलमणि, श्रीहरिप्रिया-प्रकरण २४, २३)

तुलसीके श्रीराम

(दण्डी स्वामी श्री १०८ श्रीविपिनचन्द्रानन्द सरस्वतीजी 'जज स्वामी')

एक राम दशरथका बेटा,
एक राम घट-घटमें लेटा।
एक रामका सकल पसारा,
एक राम है सबसे न्यारा॥

—इस उक्तिके द्वारा श्रीरामके चार स्वरूप दर्शाये गये हैं, पहला मर्यादापुरुषोत्तम दशरथनन्दन, दूसरा अन्तर्यामी, तीसरा सोपाधिक ईश्वर और चौथा निर्विशेष ब्रह्म। विग्रहवान् धर्म भगवान् श्रीरामके जीवन-चरित्रका प्रामाणिक वर्णन महर्षि वाल्मीकिने आदिकाव्य रामायणमें किया है। श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीने इस माङ्गलिक चरित्रको बहुत सजा-सँवारकर रामचरितमानसमें लिखा है, जो अति लोकप्रिय हो गया है। श्रीगोस्वामीजीके राम परब्रह्मके प्राकट्य हैं, जो निराकार और साकार दोनों हैं। मानसमें गोस्वामीजीने लिखा है—

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अबिगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहिं बेदा॥
(रा० च० मा० २। ९३। ७-८)

इसका समर्थन वेदोंके शिरोभाग उपनिषद्में मिलता है—

राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः।
राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्म तारकम्॥
(रामरहस्योपनिषद् १। ६)

रामतापनीयोपनिषद्में प्रतिपादन किया गया है कि राम तुरीय ब्रह्म, सीता मूल प्रकृति तथा भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न प्राज्ञ, विश्व एवं तेजस् हैं, रामनाम ॐ अथवा अक्षर ब्रह्म है एवं इसका तात्पर्य तत्त्वमसि महावाक्य है—'र'का अर्थ तत् (परमात्मा) है, 'म'का अर्थ त्वम् (जीवात्मा) है और 'आ'की मात्रा (ा) 'असि'की द्योतक है।

ऐसे भगवान् श्रीरामकी उपासनाकी क्या विधि है? इसी बातको बताते हुए श्रीगोस्वामीजीने रामचरितमानसके अन्तिम दोहेमें अपने हृदयके धनको ही खोलकर रख दिया है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर प्रिय लागहु मोहि राम॥
(रा० च० मा० ७। १३० (ख))

गोस्वामीजी कहते हैं कि जैसे कामीको नारी प्यारी लगती है, वैसे ही श्रीरघुनाथ मुझे प्रिय लगें। कामी पुरुष प्रायः नारीके रूपपर आसक्त होता है, तदनन्तर उसमें गुणोंका आधान करता है। उसकी आसक्तिमें उचित और अनुचित, धर्म और अधर्मका विवेक भूल जाता है। परंतु वही नारी यदि कभी कुरूप हो जाय, तो कामीकी प्रीति क्षीण हो जाती है, अतएव गोस्वामीजी कहते हैं कि सगुण-साकार रघुनाथजीमें मेरी ऐसी प्रीति हो, जो किसी प्रकार कभी छिन्न न हो तथा प्रेमकी तीव्र लगन सर्वदा बनी रहे।

इसके विपरीत लोभीकी आसक्ति धनके रूपपर नहीं होती। नोट और रुपये चाहे जैसी शक्लके हों, उनकी गणनामें ही उसे रस आता है और उनके परिग्रहसे अभिमानजनित सुखका अनुभव होता है। उदाहरणार्थ—किसीके पास एक लाखका माल भरा है और उसे सूचना मिली कि बाजारमें इस मालके दाम दुगुने हो गये हैं तो उसे दो लाखकी प्राप्तिके सुखकी अनुभूति होगी, यद्यपि अभी उसने उन रुपयोंकी शक्ल भी नहीं देखी, तथा सम्भव है कि बेचते समय, वह माल दो लाखसे बहुत ही कमका बिके। इसी प्रकार, रामनाम जपनेमें संख्या-वृद्धिका आनन्द होता है कि हमने दस सहस्र नाम-जप कर लिया अथवा एक लाख नाम-जप कर लिया। रामनामकी महिमामें निष्ठासे राम-नामके लोभीको रसकी उत्पत्ति होती है। इसी हेतु गोस्वामीजीने निराकार रामनाममें प्रीतिकी उपमा एक लोभीसे दी है। जो निरन्तर अपने धनको जोड़नेमें तल्लीन रहता है। इस दोहेमें भगवान्के निराकार एवं साकार दोनों तत्त्वोंकी तीव्र उपासनाका विधान है।

रामनामकी महिमाका वर्णन करनेमें गोस्वामीजीने एक महत्त्वपूर्ण बात कही है—

राम नाम मनिदीप धरु जीह देहरीं द्वार।
तुलसी भीतर बाहेरहुँ जौं चाहसि उजिआर॥
(रा० च० मा० १। २१)

जिस घरके भीतर सदा अन्धकार रहता है, जहाँ सूर्य आदि किसीका कभी प्रकाश न हो, वहाँ उल्लू, चमगादड़ और मच्छर इत्यादि रहते हैं। यदि हमारे हृदयमें भगवान्का

प्रकाश नहीं होगा तो वहाँ अज्ञानरूपी उल्लू, मलरूपी चमगादड़ और विक्षेपरूपी मच्छर निवास करेंगे, परंतु प्रकाश होनेपर वे भाग जाते हैं एवं मन निर्मल हो जाता है। इसी प्रकार अन्तःकरणसे बाहर जगत्‌में सत्त्व, रज एवं तमोगुणसे बनी हुई प्राकृतिक वस्तुएँ रहती हैं जो मनुष्योंके दुःखोंका कारण होती हैं। सत्त्वगुण सुखसे बाँधता है, रजोगुण दुःखसे एवं तमोगुण मोहसे बाँधता है। अतएव तीनों ही बन्धन कष्टकारी हैं। अन्धकारमें यदि कोई व्यक्ति जायगा तो घास, कीचड़ और कंकड़ोंके ढेर तथा गड्ढोंमें गिरकर कष्ट पायेगा। यदि प्रकाश होगा तो वह देख लेगा कि घास, कंकड़ और गड्ढोंके बीचमेंसे एक ऐसी पगडंडी है, जिससे वह सुरक्षित पार हो सकता है और जो भगवान्‌की कृपासे ही दृष्ट होती है। यदि वेदान्तके संस्कार होंगे तो उसे अनुभव होगा कि जो सतोगुणी घास, रजोगुणी कंकड़ एवं तमोगुणी गड्ढे उसे दीखते थे, वे तत्त्वतः हैं ही नहीं। वे केवल घरोंके आगे चौक पूरनेके चित्रकी भाँति प्रतीति मात्र हैं। अतः उन्हें देखकर आसक्त एवं दुःखी होनेका कोई कारण नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि भीतर एवं बाहरकी पवित्रता और शान्तिके लिये भगवत्प्रकाशकी परम आवश्यकता है।

प्रकाशके सम्बन्धमें गोस्वामीजीका कथन है कि रामनाम मणिके समान ऐसा प्रकाश है, जिसे प्रज्वलित करनेके लिये तेल, बत्ती एवं दीया आदि किसी साधनकी आवश्यकता नहीं है, वह भगवत्कृपामय स्वतः प्रकाश है, जो न कभी बुझता है, न कभी मन्द होता है। अतः सर्वोपरि प्रकाशक रामनाम है। इसीलिये गोस्वामीजी कहते हैं कि रामनामरूपी मणिको मुँहकी देहरी अथवा जिह्वापर रखो, जिससे भीतर अन्तःकरणमें तथा बाहर संसारमें, दोनों जगह आनन्दकी प्राप्ति हो। इसके अतिरिक्त रामनाम प्रकाशक होनेके साथ ही एक सबल मन्त्र भी है, जो दुःखोंको दूर करनेकी परम सामर्थ्य रखता है।

गोस्वामीजीकी बतायी गयी रामोपासनाका रहस्य दोहावली (७) में इस प्रकार है—

'हियँ निर्गुन नयनन्हि सगुन रसना नाम सुनाम।'

गोस्वामीजीकी अपनी साधना भी यही थी। उन्होंने चित्रकूटमें लक्ष्मणसहित श्रीरामके सगुण साकार-रूपसे दर्शन किये और उनके निर्गुण ब्रह्म-रूपको अपने हृदयमें धारण किया तथा वे नित्य श्रीगङ्गाजीमें खड़े होकर कई घंटे रामनाम जपते थे।

इस प्रकार, साधकोंको चाहिये कि वे भी हृदयमें निर्गुण परमात्माका बोध प्राप्त करें एवं सगुण साकार-रूपके दर्शनसे अपने नेत्र तथा इन्द्रियोंको तृप्त करें और मुखसे रामनामका जप करें। इससे अपने स्थूल-सूक्ष्म एवं कारण-शरीरको कृतकृत्य करके अक्षुण्ण परमानन्दकी प्राप्ति करें। यही रामोपासनाका सबसे सुगम एवं सर्वप्रकारसे कल्याणकारी साधन है।

अन्तमें एक कथा लिखकर इस लेखको समाप्त करते हैं—

एक रामभक्त अपनी पत्नीका गौना कराकर अपने घर ले जा रहा था। रास्तेमें चार ठग मिले। उन्होंने कहा—'जहाँ आप जा रहे हैं, वहीं हम भी जा रहे हैं, साथ-साथ चलें; क्योंकि रास्ता भयानक जंगलका है।' पतिने कहा—'भाई! हमें आपका विश्वास नहीं है।' इसपर ठग बोले—'रामकी शपथ है, हम आपको धोखा नहीं देंगे, हमारे और आपके बीचमें राम हैं।'

जंगलमें कुछ दूर चलनेके बाद, ठगोंने रामभक्त पतिको एक वृक्षसे बाँधकर मार दिया एवं उसकी पत्नीको रस्सी लगाकर खींचकर ले गये। पत्नी चलते-चलते, बार-बार पीछे मुड़कर देखती थी। ठग बोले—'तुम्हारे पतिको हमने तुम्हारे सामने ही मारा है, अब तुम बार-बार पीछे क्या देखती हो?' पत्नी बोली—'मैं पतिको नहीं देखती, मैं तो उस बीचवालेको देख रही हूँ कि वह जमानत देनेवाला कहाँ गया?'

बस, विश्वासपूर्वक यह शब्द बोलना था कि तुरंत ही, दो घोड़ोंपर सवार भगवान् श्रीराम और लक्ष्मण वहाँ प्रकट हो गये तथा उन्होंने चारों ठगोंको मार दिया एवं उस स्त्रीके रामभक्त पतिको पुनर्जीवित कर दिया।

भक्त और उनके भगवान्‌की जय।

यह बर मागउँ कृपा निकेता। बसहु हृदयँ श्री अनुज समेता॥
अबिरल भगति बिरति सतसंगा। चरन सरोरुह प्रीति अभंगा॥

संतोंकी रामभक्ति

(काशी षोडशी (शक्ति) पीठाधीश्वर अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु दण्डी स्वामी श्रीलक्ष्मणाचार्यजी महाराज, एम्० ए०, डी० लिट्०)

तैत्तिरीयोपनिषद्के अनुसार जिसे ब्रह्मका पूर्ण साक्षात्कार हो जाता है उसे ही संत कहते हैं—**'अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद संतमेनं ततो विदुः'** (तैत्तिरीय० २।६।१)। वेदान्त-शास्त्रोंके अनुसार इस मायिक विश्वप्रपञ्चमें शुद्ध ब्रह्म ही वास्तविक तत्त्व है। उसके साक्षात्कार होनेपर यह संसार प्रायः लुप्त-सा हो जाता है और फिर आगे निरन्तर ब्रह्म ही ज्ञान आदिके द्वारा उसे सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है—

अन्तरदृष्टे यस्मिञ्जगदिदमारात् परिस्फुरति।
दृष्टे यस्मिन् सकृदपि विलीयते क्वाप्यसद्रूपम्॥

(आचार्य शंकरकृत प्रबोधसुधाकर १६३)

ऐसे विरक्त संतोंका शुद्ध भगवद्भाव और भजन निरन्तर चलता रहता है, वह उनका स्वभाव बन जाता है—**'अद्वेष्टृत्वादित्येषां स्वभावो भजनं हरेः'** (गीता मधुसूदनी-टीकाका उपोद्धात) अर्थात् संतोंमें जैसी मैत्री, करुणा, मुदिता, द्वेष-शून्यता, ज्ञान-वैराग्य आदि गुण होते हैं, वैसे ही उनका भजन करनेका स्वभाव बन जाता है। कुछ लोगोंका कहना है कि संत ही विशुद्ध कल्याणकारी अपार कृपालु और शुद्ध स्नेही होते हैं। उनकी जिसपर कृपादृष्टि पड़ जाती है, उसका तत्काल उद्धार हो जाता है—

पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया॥

योगवासिष्ठमें महर्षि वसिष्ठने मङ्किसे स्वयं ही कहा था कि तुम अब हमारी दृष्टिपथमें आ गये हो, इसलिये अब तुम इस संसारमें अधिक नहीं भटक सकते। पर ऐसे संतोंका मिलना भगवत्प्राप्तिसे भी अधिक दुर्लभ कहा गया है। यह बात स्वयं भगवान्ने ही ***'मोतें संत अधिक करि लेखा'*** आदि वचनोंसे संतोंको अपनेसे भी अधिक महत्त्व दिया है। इसीलिये संत-संगतिको अति दुर्लभ कहा गया है—

सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥

कुछ पाश्चात्य विवेचकोंका यह भी मत है कि बुद्ध, महाबीर आदि यद्यपि ईश्वर या परमात्माकी बातें नहीं करते थे और उनका पूजन-भजन भी नहीं करते थे, किंतु अपार करुणाके कारण महान् संत माने गये हैं। अतः कोई नास्तिक (प्रायः पूजा-पाठ न करनेवाला) भी यदि निश्छल-भावसे सारे संसारके प्राणियोंका उद्धार करता है तो वह भी संतकोटिमें आ सकता है। जैसा कि निषादराजके—

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगति महुँ जासु न रेखा॥
जायँ जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू॥

किंतु प्रह्लाद आदिके अनुसार संतोंमें रामभक्ति भी अवश्य होती है और भक्ति (रामभक्ति) के कारण ही वे अनन्तानन्त महान् गुणोंके महासागर-से बन जाते हैं—

यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना
सर्वैर्गुणैस्तत्र समासते सुराः।
हरावभक्तस्य कुतो महद्गुणा
मनोरथेनासति धावतो बहिः॥

(श्रीमद्भा० ५।१८।१२)

राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड़ आदर तासू॥

भगवद्गीता आदिमें जहाँ चार प्रकारके भक्तोंकी बात आती है और अन्तमें जहाँ ज्ञानी भक्तको अपनी आत्मा और संसारका दुर्लभ महात्मा कहकर भगवान्ने जिसका परिचय कराया है, वही शुद्ध संत है—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥
उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥

(गीता ७।१९, ७।१८)

महर्षि आपस्तम्ब—जिनके द्वारा निर्मित श्रौतसूत्र, गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र, शुल्ब-सूत्र, यज्ञ-परिभाषा-सूत्र, आपस्तम्ब-स्मृति और उनपर धूर्तस्वामी आदि कई लोगोंके भाष्य भी प्रसिद्ध हैं—मछुओंके द्वारा मछलियोंके साथ जालमें फँसकर बाहर निकाले जानेपर उनकी दुर्दशापर तरस खाते हुए कहते हैं—जो अत्यन्त समृद्ध एवं शक्तिसम्पन्न होनेपर भी अत्यन्त दुःखी प्राणियोंके कष्टोंपर ध्यान नहीं देता, उससे बढ़कर संसारमें क्रूर-हृदय कौन हो सकता है। ज्ञानियोंमें भी जो केवल अपना ही कल्याण देखते हैं वे भी श्रेष्ठ नहीं हैं। मैं ऐसा कौन-सा उपाय करूँ, जिससे सभी प्राणियोंका कष्ट उनके बदले अकेले भोगूँ और वे सब-के-सब सुखी रहें। मेरे पुण्य

तो संसारके सभी दीन-दुःखी प्राणियोंके पास चले जायँ और उन सबके पाप मेरे पास आ जायँ। जो दुःखी प्राणियोंकी रक्षा करनेमें सुख प्राप्त होता है, वह स्वर्ग और मोक्षमें भी नहीं है—

अहो साधुष्वकारुण्यं स्वार्थे चैव बलिर्वृथा।
ज्ञानिनामपि चेद्यस्तु केवलात्महिते रतः॥
आहूतानां भयार्तानां सुखं यदुपजायते।
तस्य स्वर्गापवर्गौ च कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥

(स्क० रेवाखं० १३।३४, ४१)

महर्षि वसिष्ठ, व्यास, वाल्मीकि, नारद, पराशर, शुकदेव, प्रह्लाद, शौनक, पितामह भीष्म, जड भरत, रन्तिदेव आदि लोग ऐसे ही भक्त संतोंकी गणनामें आते हैं। इसी प्रकार सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, दत्तात्रेय आदि महात्मा संत भी ऐसे ही हैं। दत्तात्रेयजीका कथन है कि मुझे भाव-कुभाव, भक्ति या अभक्तिसे तल्लीनतापूर्वक जो याद कर लेता है तो मैं तत्क्षण किसी-न-किसी रूपमें उसके पास उपस्थित होकर उसकी कामना पूर्ण कर देता हूँ—

दत्तात्रेयो मुनिं प्राह मम प्रकृतिरीदृशी॥
अभक्त्या वा सुभक्त्या वा यः स्मरेन्मामनन्यधीः।
तदानीं तमुपागम्य ददामि तदभीप्सितम्॥

(श्रीदत्तात्रेयवज्रकवच २२, २३)

यह उनके संतस्वभावकी ही विशेषता है। वे भगवान्के अवतार भी माने जाते हैं। पर संत होनेके नाते वे उपर्युक्त वचनोंके आधारपर तो भगवान्से भी अधिक हैं। भगवान् तो प्रायः रावण, हिरण्यकशिपु, दुर्योधन, कंस आदिको दण्ड भी देते हैं, पर संत तो स्वयं सब कष्ट सहकर अपने कृपापात्रका सभी प्रकारसे उद्धार कर देते हैं। ये सब शक्तियाँ उनमें भगवान्की भक्तिसे ही आती हैं। भगवान्की सभी प्रकारकी भक्तियाँ ज्ञानयोगमें स्थित रहती हैं और उनका नाम-जप अहर्निश निरन्तर चलता रहता है। जैसे शिवजीका भी भजन-स्मरण निरन्तर चलता रहता है—

तुम्ह पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनँग आराती॥

× × ×

सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥

और—

सुक सनकादि मुकुत बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ।

(विनय-पत्रिका ८६)

विगत दिनोंमें हरिहर बाबा, हरिहरानन्द स्वामी, श्रीकरपात्रीजी महाराज आदिकी भक्ति, आराधना निरन्तर चलती रहती थी। यही निरन्तर भजन-स्मरण, ज्ञान, वैराग्य और संतत्व सभी कल्याणकामी बुद्धिमानोंको अभिलक्षित होना चाहिये। दूसरा कोई कल्याणका मार्ग नहीं है—

'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय' (यजुर्वेद)

भगवान् श्रीराम

सत्येन लोकाञ्जयति द्विजान् दानेन राघवः। गुरूञ्छुश्रूषया वीरो धनुषा युधि शात्रवान्॥
सत्यं दानं तपस्त्यागो मित्रता शौचमार्जवम्। विद्या च गुरुशुश्रूषा ध्रुवाण्येतानि राघवे॥
आनृशंस्यमनुक्रोशः श्रुतं शीलं दमः शमः। राघवं शोभयन्त्येते षड्गुणाः पुरुषर्षभम्॥
मूलं ह्येष मनुष्याणां धर्मसारो महाद्युतिः। पुष्पं फलं च पत्रं च शाखाश्चास्येतरे जनाः॥

(वाल्मीकि०, अयोध्या० १२।२९-३०; ३३।१२, १५)

'वीर श्रीरामचन्द्रने सत्यके द्वारा समस्त लोकोंपर, दानके द्वारा द्विजोंपर, सेवाके द्वारा माता-पिता-आचार्यादि गुरुजनोंपर और धनुष-बाणके द्वारा युद्धमें शत्रुभाव रखनेवालोंपर विजय प्राप्त की है। सत्य, दान, तप, त्याग, मित्रता, पवित्रता, सरलता, विद्या और गुरु-सेवा—ये सद्गुण भी श्रीराममें अटलरूपसे रहते हैं। क्रूरताका अभाव, दया, शास्त्रज्ञान, शील, इन्द्रियसंयम, मनोनिग्रह—ये छः गुण पुरुषोत्तम श्रीरामको सदा सुशोभित रखते हैं। वस्तुतः धर्मके सारतत्त्व-स्वरूप महान् तेजस्वी श्रीराम सम्पूर्ण मनुष्योंके मूल हैं तथा जगत्के दूसरे प्राणी पत्र, पुष्प, फल और शाखास्वरूप हैं।'

भक्ति, भक्त तथा भगवान्

(श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

श्रीमद्भगवद्गीतामें भक्तिकी विशेष महिमा आती है। जब भगवान्ने अर्जुनकी प्रार्थना सुनकर अपना विश्वरूप दिखाया, तब उस विश्वरूपके लिये भगवान्ने अर्जुनसे कहा कि तेरे सिवाय ऐसा रूप पहले किसीने भी नहीं देखा है और देखा जा भी नहीं सकता (गीता ११। ४७-४८)। फिर पुनः अर्जुनके द्वारा प्रार्थना करनेपर भगवान्ने अपना चतुर्भुज (विष्णु) रूप दिखाया और उसके लिये अर्जुनसे कहा—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

(गीता ११। ५३)

'जिस प्रकार तुमने मुझे देखा है, इस प्रकारका (चतुर्भुजरूपवाला) मैं न तो वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ।'

जब किसी भी साधनसे नहीं देखे जा सकते, तो फिर किसके द्वारा देखे जा सकते हैं? इसपर भगवान् कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११। ५४)

'परंतु हे शत्रुतापन अर्जुन! इस प्रकार (चतुर्भुजरूपवाला) मैं अनन्यभक्तिसे ही तत्त्वसे जाना जा सकता हूँ, देखा जा सकता हूँ और प्रवेश (प्राप्त) किया जा सकता हूँ।'

यहाँ ध्यान देनेकी बात यह है कि भक्तिसे जानना, देखना और प्रवेश करना—तीनों हो सकते हैं। परंतु जहाँ भगवान्ने ज्ञानकी परानिष्ठा बतायी है, वहाँ ज्ञानसे केवल जानना और प्रवेश करना—ये दो ही बताये गये हैं—**'ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्'** (गीता १८। ५५)। भक्तिसे भगवान्के दर्शन भी हो सकते हैं—यह भक्तिकी विशेषता है, जबकि ज्ञानकी परानिष्ठा होनेपर भी भगवान्के दर्शन नहीं होते!

रामायणमें भी भक्तिकी विशेष महिमा बतायी गयी है। उसमें ज्ञानको तो दीपककी तरह बताया है, पर भक्तिको मणिकी तरह बताया है (मानस, उत्तर० ११७—१२०)। दीपकको जलानेमें तो घी, बत्ती आदिकी जरूरत होती है और हवा लगनेसे वह बुझ भी जाता है, पर मणिके लिये न तो घी, बत्ती आदिकी जरूरत है और न वह हवासे बुझती ही है—

परम प्रकास रूप दिन राती। नहिं कछु चहिअ दिआ घृत बाती॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा॥
प्रबल अबिद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई॥

(मानस, उत्तर० १२०। ३—५)

इतना ही नहीं, जो मुक्ति ज्ञानके द्वारा बड़ी कठिनतासे प्राप्त होती है, वही मुक्ति भगवान्का भजन करनेसे बिना इच्छा अपने-आप प्राप्त हो जाती है—

अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवइ बरिआईं॥

(मानस, उत्तर० ११९। २)

इसलिये ज्ञानमार्गको तो बड़ा कठिन बताया गया है—***'ग्यान पंथ कृपान कै धारा'*** (मानस, उत्तर० ११९। १), पर भक्तिमार्गको बड़ा सुगम बताया गया है—***'भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥'*** (मानस, अरण्य० १६। ५)। भगवान्ने भी भक्तोंके लिये अपनी प्राप्ति बड़ी सुगम बतायी है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

'हे पार्थ! अनन्य चित्तवाला जो भक्त नित्य-निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस नित्ययुक्त योगीके लिये मैं सुलभ हूँ।'

ज्ञानमार्गपर चलनेवाला तो अपने साधनका बल मानता है, पर भक्तकी यह विलक्षणता होती है कि वह अपने साधनका बल मानता ही नहीं। कारण कि मैं इतना जप करता हूँ, इतना तप करता हूँ, इतना ध्यान करता हूँ, इतना सत्संग करता हूँ—इस तरह भीतरमें अभिमान रहनेसे भक्ति प्राप्त नहीं होती। जिनका सीधा-सरल स्वभाव है, जो भगवान्की कृपापर निर्भर रहते हैं और हरेक परिस्थितिमें मस्त, आनन्दित रहते हैं, उन्हींको भक्ति प्राप्त होती है—

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथा लाभ संतोष सदाई॥

(मानस, उत्तर० ४६। १-२)

जबतक अपने साधनका अभिमान रहता है, तबतक असली भक्ति प्राप्त नहीं होती। भक्ति प्राप्त होनेपर भक्तके मनमें यह बात आती ही नहीं कि मैं भजन करता हूँ। जैसे, हनुमान्‌जी महाराज कहते हैं—*'जानउँ नहिं कछु भजन उपाई'* (मानस, किष्किन्धा० ३।३)। हनुमान्‌जी भक्तिके खास आचार्य होते हुए भी कहते हैं कि मैं भजनका उपाय नहीं जानता कि भजन क्या होता है? कैसे होता है? शबरीको पता ही नहीं था कि भक्ति नौ प्रकारकी होती है और वह मेरेमें पूर्णरूपसे विद्यमान है! वह कहती है—

अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी॥

(मानस, अरण्य० ३५।३)

परंतु भगवान् उसको कहते हैं—

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥

× × ×

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥

(मानस, अरण्य० ३५।७; ३६।७)

हनुमान्‌जी और शबरी झूठ नहीं बोलते, चतुराई नहीं करते, प्रत्युत सहज-सरल भावसे कहते हैं; क्योंकि उनमें किंचिन्मात्र भी अभिमान नहीं है। भक्त अपनेमें कोई विशेषता न देखकर केवल भगवान्‌की कृपा ही मानता है। जब अपनी कोई चीज है ही नहीं, तो फिर अभिमान किस बातका? जब अपनेमें गुण दीखता है और उस गुणको हम अपना मानते हैं, तब अभिमान पैदा होता है। भक्तको अपनेमें कोई गुण दीखता ही नहीं और वह किसी गुणको अपना मानता ही नहीं; अतः उसमें अभिमान पैदा होता ही नहीं। उसका उपाय और उपेय, साधन और साध्य—दोनों भगवान् ही होते हैं। वह साधन भी भगवान्‌की कृपासे मानता है और साध्यकी प्राप्ति भी भगवान्‌की कृपासे मानता है।

भगवान्‌की कृपा सबपर बराबर है—*'सब पर मोहि बराबरि दाया'* (मानस, उत्तर० ८७।७)। जैसे, धूप सबपर समान रूपसे पड़ती है, पर आतशी शीशेमें वह केन्द्रित होकर अग्नि प्रकट कर देती है। अग्नि पैदा करना सूर्यका काम है और उसकी किरणोंको पकड़कर एकाग्र करना आतशी शीशेका काम है। ऐसे ही कृपा करना भगवान्‌का काम है और उनकी कृपाको स्वीकार करना भक्तका काम है। भगवान्‌की कृपामें कोई पक्षपात नहीं है। अपनेमें अभिमान न होनेसे भगवान्‌की कृपाका प्रवाह सीधे आता है। परंतु अपनेमें कुछ विशेषता दीखती है कि मैं इतना जानता हूँ, मैं इतना समझदार हूँ, मेरेमें इतनी योग्यता है तो अभिमानके कारण उस कृपाके आनेमें बाधा लग जाती है।

अपनेमें थोड़ा भी गुण, विशेषता, पुरुषार्थ, योग्यता दीखती है तो भक्ति प्राप्त नहीं होती। अपना अभिमान भक्तिमें बाधक है। इसलिये कोई अच्छा काम हो जाय तो भक्त उसको अपना न मानकर भगवान्‌का ही किया हुआ मानता है, उसकी स्वतः-स्वाभाविक भगवान्‌की तरफ ही दृष्टि जाती है।

आछी करै सो रामजी, कै सद्‌गुरु कै संत।
भूँडा बणै सो आपकी, ऐसी उर धारंत॥
ऐसी उर धारंत, तभी कछु बिगड़ै नाहीं।
उस सेवक की लाज, प्रतिज्ञा राखे सांई॥
संतदास मैं क्या कहूँ, कह गये संत अनंत।
आछी करै सो रामजी, कै सद्‌गुरु कै संत॥

कोई भी अच्छा काम बनता है तो वह भगवान्‌से, सद्गुरुसे अथवा संतोंसे बनता है। महर्षि वाल्मीकिजी भगवान्‌से कहते हैं—

गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥

(मानस, अयोध्या० १३१।३)

भक्त गुणोंको तो भगवान्‌का मानता है और दोषोंको अपना मानता है। कारण कि गुण भगवान्‌के तथा स्वतःसिद्ध हैं और अवगुण व्यक्तिगत तथा उत्पन्न होनेवाले हैं। इसलिये उसको ऐसा दीखता है कि जो अच्छा होता है, वह भगवान्‌की कृपासे होता है और जो बुरा होता है, वह मेरी भूलसे होता है। वास्तवमें बात भी यही सच्ची है। भक्त कोई चालाकी नहीं करता, झूठ नहीं बोलता, प्रत्युत उसको ऐसा ही दीखता है कि मैं तो जैसा हूँ, वैसा ही हूँ! यह तो ठाकुरजीकी कृपासे ऐसा काम बन गया, जिसको लोग मेरा मानकर मेरी बड़ाई कर रहे हैं। जब हनुमान्‌जी लंकासे लौटकर भगवान् रामके पास आये, तब भगवान्‌ने उनसे कहा—

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥

(मानस, सुन्दर० ३२।३)

यह सुनकर हनुमान्‌जी 'त्राहि! त्राहि!!' कहते हुए

भगवान्‌के चरणोंमें गिर गये—

सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख गात हरषि हनुमंत।
चरन परेउ प्रेमाकुल त्राहि त्राहि भगवंत॥

(मानस, सुन्दर० ३२)

हनुमान्‌जीपर ऐसी कौन-सी आफत आ रही थी, जिससे बचनेके लिये उन्होंने 'त्राहि! त्राहि!!' (बचाओ! बचाओ!!) कहा? वह आफत थी—अभिमान। भगवान्‌के द्वारा अपनी बड़ाई सुनकर कहीं अभिमान न आ जाय, इसलिये वे त्राहि-त्राहि पुकारने लगे और बोले कि सब कुछ आपके प्रतापसे ही हुआ है, मेरे बलसे नहीं—

सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई॥

(मानस, सुन्दर० ३३। ९)

जहाँ अपना अभिमान नहीं होता, वहाँ साधकको कोई बाधा नहीं लगती। बाधा वहीं लगती है, जहाँ अपनेमें कुछ योग्यता, बल, समझदारी, विद्या, वैराग्य, त्याग, जप आदिका अभिमान होता है। भक्त अपनेमें कोई योग्यता नहीं देखता, प्रत्युत अपनेको सर्वथा अयोग्य समझता है। इसलिये उसमें भगवान्‌की योग्यता काम करती है। एक भगवान्‌के शरण हो जाय तो सब काम भगवान् करते हैं—'लाद दे, लदवा दे, लदवानेवाला साथ दे', **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** (गीता ९। २२)। यह अनन्यभक्ति है। भगवान्‌की एक बान (स्वभाव, आदत या प्रकृति) है कि उनको वही भक्त प्यारा लगता है, जिसका दूसरा कोई सहारा नहीं है—

एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

(मानस, अरण्य० १०। ४)

इसलिये—

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

—इस प्रकारसे अनन्यभावसे केवल भगवान्‌के आश्रित रहे और भजन करे। भजनका भी अभिमान नहीं होना चाहिये कि मैं इतना जप करता हूँ, इतना ध्यान करता हूँ आदि। भक्त जप आदि तो इसलिये करता है कि इनके बिना और करें भी क्या! क्योंकि बढ़िया-से-बढ़िया काम यही है। परंतु भजनके द्वारा मैं भगवान्‌को प्राप्त कर लूँगा—यह भाव उसमें नहीं होता। उसका यह भाव होता है कि भगवान्‌की प्राप्ति तो उनकी कृपासे ही होगी। भगवान्‌की कृपाके बिना अन्य कोई सहारा न हो—यह अनन्यभक्ति है। अनन्यभक्तिसे भगवान् प्रकट हो जाते हैं।

भगवान्‌के भजनसे बढ़कर मीठी चीज कोई है ही नहीं। इसलिये भक्त नित्य-निरन्तर भगवान्‌के भजनमें मस्त रहता है। भगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्‌गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०। ९)

'मेरेमें चित्तवाले, मेरेमें प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन आपसमें मेरे गुण, प्रभाव आदिको जनाते हुए और उनका कथन करते हुए ही नित्य-निरन्तर संतुष्ट रहते हैं और मेरेमें प्रेम करते हैं।'

कारण कि उनके लिये भगवान्‌के भजनके बिना कोई काम बाकी रहा ही नहीं। भागवतमें आया है—

अकामः सर्वकामो वा मोक्षकाम उदारधीः।
तीव्रेण भक्तियोगेन यजेत पुरुषं परम्॥

(श्रीमद्भा० २। ३। १०)

'जो बुद्धिमान् मनुष्य है, वह चाहे सम्पूर्ण कामनाओंसे रहित हो, चाहे सम्पूर्ण कामनाओंसे युक्त हो, चाहे मोक्षकी कामनावाला हो, उसे तो केवल तीव्र भक्तियोगके द्वारा परमपुरुष भगवान्‌का ही भजन करना चाहिये।'

कोई कहे कि मेरेको कुछ नहीं चाहिये, मेरेमें किसी तरहकी कुछ भी कामना नहीं है तो क्या करूँ? तो यही उत्तर मिलेगा कि केवल भगवान्‌का भजन करो। कोई कहे कि मेरेको तो सब कुछ चाहिये, भोग भी चाहिये, मोक्ष भी चाहिये, इज्जत भी चाहिये, नीरोगता भी चाहिये, बेटा-बेटी भी चाहिये तो क्या करूँ? तो यही उत्तर मिलेगा कि केवल भगवान्‌का भजन करो। कारण कि सब चीजें भगवान् ही दे सकते हैं। पुरुषार्थसे सब चीजें नहीं मिल सकतीं। कोई कहे कि मेरेको केवल मुक्ति चाहिये, और कुछ नहीं चाहिये तो क्या करूँ? तो यही उत्तर मिलेगा कि केवल भगवान्‌का भजन करो। सबके लिये एक ही उपाय है—रात-दिन भगवान्‌का भजन करना, भगवान्‌में ही लगे रहना। जैसे, बच्चा केवल माँपर

निर्भर रहता है। कोई काम पड़े तो वह केवल माँ-माँ पुकारता है। इसके सिवाय वह क्या कर सकता है ? उसमें और क्या करनेकी ताकत है ? वह माँ-माँ इसलिये करता है कि उसको 'माँ' नाम बड़ा मीठा, प्यारा लगता है। आदिशंकराचार्यजी महाराज कितने ऊँचे दार्शनिक संत होते हुए भी भगवान् श्रीकृष्णको 'माँ' कहते हैं—

मायाहस्तेऽर्पयित्वा भरणकृतिकृते मोहमूलोद्भवं मां
मातः कृष्णाभिधाने चिरसमयमुदासीनभावं गतासि।
कारुण्यैकाधिवासे सकृदपि वदनं नेक्षसे त्वं मदीयं
तत्सर्वज्ञे न कर्तुं प्रभवसि भवती किं नु मूलस्य शान्तिम्॥

(प्रबोधसुधाकर २४४)

'हे कृष्ण नामवाली माँ ! मोहरूपी मूल नक्षत्रमें उत्पन्न हुए मुझ पुत्रको भरण-पोषणके लिये मायाके हाथोंमें सौंपकर तू बहुत दिनोंसे मेरी ओरसे उदासीन हो गयी है। अरी एकमात्र करुणामयी मैया ! तू एक बार भी मेरे मुखकी ओर नहीं देखती ? हे सर्वज्ञे ! क्या तू उस मोहरूपी मूलकी शान्ति करनेमें समर्थ नहीं है ?'

ज्ञानी तो आरम्भसे ही अपनेको बड़ा (ब्रह्म) मानने लगता है; परंतु भक्त अपनेको सदा छोटा (बालक) ही मानता है, कभी बड़ा मानता ही नहीं। इसलिये भगवान् कहते हैं—

मोरे प्रौढ़ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥

(मानस, अरण्य० ४३। ८)

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज वृद्ध होनेपर भी अपनेको बालक ही मानते हैं और माँ सीताजीसे कहते हैं—

कबहुँक अंब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ॥
दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ॥
बूझिहै 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ॥
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ॥

(विनय-पत्रिका ४१)

बालकके मनमें अगर कोई बात आ जाय तो वह माँसे ही कहता है। गोस्वामीजीके मनमें बात आयी तो उन्होंने माँ (सीताजी) से कह दी कि रघुनाथजीके सामने यों ही मेरा नाम मत लेना। पहले भक्तोंकी कोई करुण-कथा चलाना और जब रघुनाथजी प्रेममें मस्त हो जायँ, गद्गद हो जायँ, तब मेरा नाम लेना, नहीं तो उनकी दृष्टि मेरे लक्षणोंकी तरफ चली जायगी ! मेरा नाम भी सीधे मत लेना। पहले कहना कि एक ऐसा भक्त है, जो आपका नाम लेकर पेट भरता है और आपकी दासी तुलसीका दास कहलाता है। गोस्वामीजी माँको भी लोभ देते हैं कि मैया ! मेरा काम बन जायगा तो मैं आपके पति रघुनाथजीके गुण गाऊँगा। यह भक्तोंके भोलेपनकी भाषा है, चालाकीकी भाषा नहीं। भक्तके लिये कहा गया है—***'सरल सुभाव न मन कुटिलाई'*** (मानस, उत्तर० ४६। २)।

कपट गाँठ मन में नहीं, सबसों सरल सुभाव।
'नारायण' ता भक्त की, लगी किनारे नाव॥

श्रीरामदर्शनका उपाय

भक्तानां मम योगिनां सुविमलस्वान्तातिशान्तात्मनां
मत्सेवाभिरतात्मनां च विमलज्ञानात्मनां सर्वदा।
संगं यः कुरुते सदोद्यतमतिस्तत्सेवनानन्यधी-
र्मोक्षस्तस्य करे स्थितोऽहमनिशं दृश्यो भवे नान्यथा॥

'जो पुरुष मेरी सेवामें अनुरक्तचित्त, निर्मल-हृदय, शान्तात्मा, विमलज्ञानसम्पन्न और मेरे परम भक्त योगिजनोंका संग अनन्य बुद्धिसे सर्वदा उनकी सेवामें तत्पर रहकर करता है, मुक्ति उसके करतलगत रहती है और मैं सर्वदा उसकी दृष्टिके सम्मुख विराजमान रहता हूँ। इसके अतिरिक्त और किसी उपायसे मेरा दर्शन नहीं हो सकता।'

श्रीरामजन्म-भूमिका शास्त्रगत माहात्म्य

श्रीरामजन्म-भूमि—अयोध्याके विषयमें पुराणोंकी मान्यता

त्रेतायुगमें भगवान् श्रीरामका प्राकट्य श्रीअयोध्याजीमें हुआ, यह निर्विवाद सत्य है। श्रीरामजन्म-भूमिका स्थान कहाँपर है? इसके विषयमें पुराणों और इतिहासोंमें निश्चित संकेत प्राप्त होते हैं। भारतीय आस्थाके प्रतीक पुराण और इतिहास सर्वमान्य प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनकी मान्यता सर्वोपरि है। स्कन्दपुराणके द्वितीय वैष्णवखण्डके अयोध्या-माहात्म्यमें लिखा है कि 'सरयू नदीके तटपर अयोध्याकी रक्षाके लिये नियुक्त योद्धा पिण्डारकका स्थान है। पिण्डारकस्थानसे पश्चिम दिशामें विघ्नेश भगवान् गणेशजीका स्थान है। विघ्नेशसे ईशान-कोणमें श्रीरामजीका जन्मस्थान है, जहाँ नवरात्रोंमें श्रीरामजीका दर्शन करनेसे अपूर्व पुण्यकी प्राप्ति होती है।'

स्कन्दपुराणके द्वितीय वैष्णवखण्डके श्लोक १५—२५ तक अर्थसहित अविकल रूपमें यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

सरयूसलिले स्नात्वा पिण्डारकं च पूजयेत्।
पापिनां मोहकर्तारं मतिदं कृतिनां सदा॥ १५॥

'सरयूजीके जलमें स्नान करके पिण्डारकका पूजन करना चाहिये। ये पिण्डारक पापियोंके लिये मोह उत्पन्न करनेवाले और पुण्यात्माओंके लिये सदा ही विवेक प्रदान करनेवाले हैं।'

तस्य यात्रा विधातव्या सपुष्या नवरात्रिषु।
तस्य पश्चिमदिग्भागे विघ्नेशं किल पूजयेत्॥ १६॥
यस्य दर्शनतो नृणां विघ्नलेशो न बाधते।
तस्माद् विघ्नेश्वरः पूज्यः सर्वकामफलप्रदः॥ १७॥

'इनकी यात्रा नवरात्रिमें (चैत्र मासके शुक्ल पक्षमें) जिस दिन पुष्य नक्षत्र हो (यह प्रायः नवमी तिथिको पड़ता है) उस दिन करनी चाहिये। पिण्डारकसे पश्चिम दिशामें विघ्नेश (भगवान् गणेश) हैं, इनकी पूजा करनी चाहिये। विघ्नेशके दर्शन करनेसे मानवके समस्त विघ्न दूर होते हैं—विघ्न लेशमात्र भी बाधा नहीं पहुँचा सकते। विघ्नेश्वर सभी प्रकारके वाञ्छित फल (भोग) देनेवाले हैं, अतः उनका पूजन करना चाहिये।'

तस्मात् स्थानादैशाने रामजन्म प्रवर्तते।
जन्मस्थानमिदं प्रोक्तं मोक्षादिफलसाधनम्॥ १८॥

'विघ्नेश्वरके स्थानसे ईशान (कोण) में रामजन्म-स्थान है। यह मोक्ष आदि सभी फलोंका देनेवाला कहा गया है।'

विघ्नेश्वरात् पूर्वभागे वासिष्ठादुत्तरे तथा।
लोमशात् पश्चिमे भागे जन्मस्थानं ततः स्मृतम्॥ १९॥

'विघ्नेश्वरसे पूर्वमें तथा वसिष्ठ-स्थानसे उत्तरमें, लोमश-स्थानसे पश्चिम दिशामें रामजन्म-स्थान है।'

यद्दृष्ट्वा च मनुष्यस्य गर्भवासजयो भवेत्।
विना दानेन तपसा विना तीर्थैर्विना मखैः॥ २०॥

'रामजन्म-भूमिके दर्शनमात्रसे बिना दानके, बिना तपके, बिना तीर्थयात्राके तथा बिना यज्ञ किये ही मनुष्यकी मुक्ति हो जाती है, उसे गर्भवासकी प्राप्ति नहीं होती।'

नवमीदिवसे प्राप्ते व्रतधारी हि मानवः।
स्नानदानप्रभावेण मुच्यते जन्मबन्धनात्॥ २१॥

'रामनवमीके दिन रामनवमी-व्रत करनेवाला पुरुष स्नान, दान और तपके प्रभावसे जन्म-मरणके बन्धनसे छुटकारा पा जाता है।'

कपिलागोसहस्राणि यो ददाति दिने दिने।
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ २२॥

'प्रतिदिन हजारों कपिला गौके दानसे जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।'

आश्रमे वसतां पुंसां तापसानां च यत्फलम्।
राजसूयसहस्राणि प्रतिवर्षाग्निहोत्रतः॥ २३॥
नियमस्थं नरं दृष्ट्वा जन्मस्थाने विशेषतः।
मातापित्रोर्गुरूणां च भक्तिमुद्वहतां सताम्॥ २४॥
तत्फलं समवाप्नोति जन्मभूमेः प्रदर्शनात्॥ २५॥

'आश्रममें निवास करनेवाले तपस्वीजनोंको जो फल मिलता है, यावज्जीवन अग्निहोत्र करनेवालोंको जो फल मिलता है, हजारों राजसूय यज्ञ करनेवालोंको जो फल मिलता है, माता-पिता और गुरुकी सदा भक्ति करनेवालों तथा यम-नियमादि व्रतोंके पालनमें तत्पर संयमी सत्पुरुषोंके दर्शनसे जो फल मिलता है, वही फल जन्मभूमिके दर्शनमात्रसे मिल जाता है।'

श्रीरामभद्र धर्म और ब्रह्मके मूर्तिमान् स्वरूप हैं, तभी उन्हें मर्यादापुरुषोत्तम कहते हैं। वे मानव-मात्रके परम आदर्श हैं। रामराज्य और धर्मराज्यकी स्थापना उन्हें ऐतिहासिक पुरुष माननेपर ही सम्भव है।

(प्रेषक—परमहंस स्वामी श्रीवामदेवजी महाराज)

परब्रह्म रामका अनिर्वचनीय स्वरूप

(गोरक्षपीठाधीश्वर महन्त श्रीअवेद्यनाथजी महाराज)

क्षीरसागरके सौम्य शृंगपर अपनी सिसृक्षा-शक्ति परमेश्वरी पार्वतीके प्रति भगवान् शिवद्वारा निर्वचित नाथयोगामृतके दर्शनके परिप्रेक्ष्यमें स्वसंवेद्य अलख निरंजन परमेश्वर द्वैताद्वैत, साकार-निराकार, विलक्षण भावपदातीत—सत्स्वरूप ही परब्रह्म राम है। यह शास्त्रसम्मत परमात्मतत्त्वका स्वरूप प्रतिपादित है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड परमात्मा, जीवात्मा और जगत्से सम्बन्धित अपने अखण्डसच्चिदानन्दत्वमें रूपायित है। नाथयोगदर्शनमें यह स्वीकृति मान्य है कि क्षिति, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पञ्च महाभूत तथा मन, बुद्धि और अहंकारकी साम्यावस्था ही परमप्रकृति-योगमाया है और इसकी क्रियमाणताके स्तरपर जगत्में आत्मा, जीवरूपमें अभिव्यक्त होकर पुनः अपने सत्स्वरूप परमात्मामें लयित हो जाती है और साम्यावस्था-स्वरूपिणी प्रकृति भी परमात्मामें स्वरूपायित हो जाती है। यही परमात्मा, जीवात्मा और जगत्का, प्रकृतिकी महापञ्चभूतात्मक साम्यावस्थाका निरन्तर रूप-निरूपण है। परमात्मा तो सगुण-निर्गुण विलक्षण मायातीत स्वसंवेद्य अलख निरंजन है, यही राम है।

परमात्मा साकार होता है, सगुण होता है, जब वह योगमायासे अभिव्यक्त और अवतरित होता है। इसी तरह परमात्मा निराकार है, इसका अर्थ है अनिर्वचनीय आकारवाला। वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म है, निर्विकल्प ज्ञानद्वारा ही ग्राह्य होता है, परमात्माको निराकार कहनेका लाक्षणिक रूप उसका साकारत्व भी है। यह साकार-निराकारसे अतीत परमात्मा स्वसंवेद्य कहा जाता है। परमात्माके साकारत्वका सम्पादन यह नहीं है कि उसका रूप भौतिक, लौकिक अथवा मायिक है। वह साकार-निराकार-रूपमें सर्वथा सच्चिदानन्द-स्वरूप परब्रह्म राम है जो साकार-निराकार-विलक्षण है। नाथयोग-दर्शनमें यही परमात्म-स्वरूप-निर्वचन ही मान्य, ग्राह्य और स्वसंवेद्य अथवा साक्षात्कारयोग्य, उपास्य है। शास्त्रमें प्रतिपादित है—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥

(अ० रा० १।१।३२-३३)

निःसंदेह परमात्मा राम अपने सत्स्वरूपमें परब्रह्म, सच्चिदानन्द, अद्वय, सर्वोपाधिविनिर्मुक्त सत्-अगोचर, आनन्दस्वरूप, निर्मल, शान्त, निर्विकार, निरंजन, सर्वव्यापक, आत्मस्वरूप, स्वप्रकाश, अकल्मष है। राम अपारबुद्धिसे परे परमात्माके रूपमें अभिव्यक्त है। महायोगी गोरखनाथने परमात्मस्वरूपके द्वैताद्वैत-विलक्षण-स्तरपर निर्वचन व्यक्त किया है—

बदंत गोरष सति सरूप।
तत बिचारैं ते रेष न रूप॥

(गोरखबानी, सबदी १५३)

परमात्माके सत्स्वरूपका विचार करनेपर यह स्वतः निर्णीत है कि वह रूप और रेखा, आकारसे परे अथवा विलक्षण किंवा अतीत है। गोरखबानीमें संकलित ग्यानतिलकमें उनकी द्वैताद्वैत विलक्षणीय विज्ञप्ति है—

अंजन माहि निरंजन भेट्या, तिल मुष भेट्या तेलं।
मूरति मांहि अमूरति परस्यां, भरा निरंतरि षैलं॥

(गोरखबानी, ग्यांन तिलक पद ४१)

मूर्त-साकारमें निराकारका स्वरूपानुभव करते हुए महायोगी गोरखनाथने मूर्त-अमूर्तसे परे परमतत्त्व, स्वसंवेद्य रामका साक्षात्कार किया। सिद्धसिद्धान्तपद्धति (१।४) में गोरखनाथजीने नाम-रूप-आकारसे परे परब्रह्मके अव्यक्त रूपके निर्वचनमें कहा है कि स्वसंवेद्य सत्स्वरूपमें निरन्तर रमणशील राम अव्यक्त है, अनाम है, परब्रह्म है।

'अव्यक्तं च परं ब्रह्म अनाम विद्यते तदा।' उन्होंने मनको सम्बोधित किया है कि हे मन ! राजा राममें निरन्तर अधिष्ठित होकर प्रापञ्चिक द्वन्द्वसे परे हो जाना चाहिये। हे मन ! राग-द्वेष, दुःख-सुख, लोभ-मोह आदिमें आसक्तिका सर्वथा त्याग कर देना ही स्वरूपसाक्षात्कार है। मूलाधारसे आज्ञाचक्रपर्यन्त समस्त चक्रवेधनपूर्वक सहस्रार अथवा महा-आकाशचक्रमें रामके स्वरूपमें रमण करना ही उनकी भक्ति है। गोरखनाथजीकी वाणी है—

मन रे राजा राम हौइलै नृदंद,
मूलै कमलै साजिलै रविचंद।
× × ×
पीयलै महारस फाटिलै कपाट॥
× × ×
बदंत गोरषनाथ अवधू इम उतरिबौ पार॥

(गोरखबानी, पद ५९)

गोरखनाथजीने जगदीश, स्वसंवेद्य परब्रह्म परमेश्वरके ध्यान और भजनपर अत्यधिक बल दिया—

सकल बिधि ध्यावो जगदीश।

(गोरखबानी, नरवै बोध—६)

गोरखनाथजीने सर्व अङ्ग-व्यापक परब्रह्म राम और जीवात्माके सामरस्य स्वरूपबोधके सम्बन्धमें अपना अनुभव व्यक्त किया है कि मूलाधारस्थ, अमृतशोषक सूर्य बारह कलाओंवाला है और सहस्रारमें स्थित अमृतस्रावक चन्द्रमा सोलह कलाओंका है। विपरीतकरणी मुद्राके अभ्याससे बारह कलाके सूर्यको ऊपर और तालुमूलमें स्थित चन्द्रमाको नीचे कर शेष चार कलाओंसे योगसाधक अमृतपान कर शरीरमें व्याप्त परब्रह्म राजा रामके सहज स्वरूपका बोध प्राप्त करता है। इस तरह हरिपदका ज्ञान सहज सुलभ है—

सक्ति रूपी रज आछै सिव रूपी ब्यंद।
बारह कला रवि आछै सोलह कला चंद॥
चारि कला रवि की जे ससि धरि आवै।
तौ सिव सक्ती सम होवै, अन्त कोई न पावै॥
एही राजा राम आछै सर्वे अंगे बासा।
× × ×
बदंत गोरष इम हरिपद जांनां॥

(गोरखबानी, पद १२)

महायोगी गोरखनाथजी रामतत्त्व, अलख निरंजन, सच्चिदानन्द-स्वरूप, द्वैताद्वैत-विलक्षण-स्वसंवेद्य परमात्म-तत्त्वके परम मर्मज्ञके रूपमें भारतीय संत-साहित्य और अध्यात्मयोगमें सम्मानित हैं। संत कबीरकी विज्ञप्ति है—

रांम गुन बेलड़ी रे, अवधू गोरषनाथि जांणीं।
कहै कबीर ते बिरला जोगी, सहज निरंतर जाणीं॥

(कबीर-ग्रन्थावली पद १६३)

राम लोक-लोकान्तरमें विश्वव्यापक विष्णु हैं। साक्षात् विष्णु ही द्वैताद्वैतसे परे परब्रह्म परमेश्वर ही साधु पुरुषोंकी रक्षा, सनातन (परमात्म-) धर्मके संरक्षण, पृथिवीको अभय प्रदान करनेके लिये ही युग-युगमें अवतार लेते हैं—

अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः॥

(वा० रा० २। १। ७)

श्रीमद्भागवत (५। १९। ५) की विज्ञप्ति है कि सर्वव्यापक परमात्मा रामका अवतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं होता, मनुष्योंको सत्कर्म-सम्पादनके मार्गपर शिक्षित करनेके लिये होता है—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।

परमात्मा सगुण-निर्गुणसे अतीत हैं, उनका भजन करनेवाला भी निर्गुण मोक्षपद—महानिर्वाणमें स्वस्थ होता है—

हरिर्हि निर्गुणः साक्षात् पुरुषः प्रकृतेः परः।
स सर्वदृगुपद्रष्टा तं भजन् निर्गुणो भवेत्॥

(श्रीमद्भा० १०। ८८। ५)

द्वैताद्वैत-विलक्षण राम—साक्षात् विष्णु अथवा उन महान् परमेश्वरका भजन—भक्ति ही जीवमात्रके लिये श्रेयस्कर है। वेदोंकी विज्ञप्ति है—

महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे।

(ऋग्वेद १। १५६। ३)

भगवान् परब्रह्म रामका स्वरूप दुर्ज्ञेय है। उनकी उक्ति है—

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः।

राम बुद्धिसे परे, वाणीसे अवर्णनीय हैं, उनका स्वरूप उन्हींकी कृपासे भजनीय, सेवनीय, चिन्तनीय होता है—

ब्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत बिनोद।
सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या कें गोद॥

उनकी कीर्ति परम पवित्र लोकमलघ्न है अर्थात् समस्त लोकोंके मलको नष्ट करनेवाली है। सीतापति भगवान् राम सदा-सर्वदा, सर्वत्र विजयी ही विजयी हैं—

सीतापतिर्जयति लोकमलघ्नकीर्तिः॥

(श्रीमद्भा० ११। ४। २१)

तत्त्वतः परमात्मा रामका स्वरूप साक्षात् राम है।

भगवान् श्रीसीतारामजीकी युगल उपासना

(स्वामी श्रीसीतारामशरणजी महाराज, लक्ष्मण-किलाधीश)

कलिपावनावतार श्रीगोस्वामीजीने नानापुराणनिगमागम-सम्मत श्रीरामचरितमानसमें श्रीसीताराम-युगल-तत्त्वका ही विवेचन किया है। उनके मानसमें आदि, मध्य और अन्तमें भगवान् श्रीरामका ही प्रतिपादन है—

जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना॥

—इस चौपाईमें ***'राम भगवाना'*** का अर्थ है श्रीसीता-विशिष्ट श्रीराम। नाम-वन्दनाके प्रारम्भमें ही गोस्वामीजीने श्रीसीता-रामजीके अभेद-सम्बन्धका जैसा विवेचन किया है, वह अनुपम है—

गिरा अरथ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न।
बंदउँ सीता राम पद जिन्हहि परम प्रिय खिन्न॥

शब्द और अर्थ एवं जल तथा तरंगकी भाँति कहनेके लिये भिन्न हैं, किंतु वस्तुतः श्रीसीतारामजी अभिन्न हैं, जिन्हें दीन अत्यन्त प्रिय लगते हैं। ऐसे श्रीसीतारामजीके श्रीचरणोंकी हम वन्दना करते हैं। यहाँ शब्दार्थ और जलतरंगका अभेद सम्बन्ध युगल-स्वरूपका अवबोधक है। इस दोहेके पश्चात् गोस्वामीजीने नौ दोहोंमें श्रीराम-नाम-वन्दना की है। इससे स्पष्ट है कि यह वन्दना केवल श्रीराम-नामकी नहीं है, अपितु 'श्रीसीताराम'-नामकी है।

बालकाण्डमें गोस्वामीजीने मनु-शतरूपा-प्रसंगसे युगल-उपासनाकी प्रबल पुष्टि की है। जिस प्रकार वेद, पुराण, इतिहास, रामायण आदिमें सर्वत्र श्रीविशिष्ट भगवान्‌की उपासनाका विधान है, उसी प्रकार श्रीतुलसी-साहित्यमें भी सर्वत्र युगलोपासनाका ही वर्णन है। जहाँ कहीं केवल प्रभुके दर्शनोंकी कामना भक्तोंने की है, वहाँ भी श्रीयुगल-रूपका ही प्राकट्य है। मनुजी तप करते समय ***'अगुन अखंड अनंत अनादी'*** ब्रह्मका दर्शन चाहते थे; किंतु अखण्ड ब्रह्मके रूपमें उन्हें श्रीसीतारामजीका ही दर्शन मिला—

नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर स्याम।
लाजहिं तन सोभा निरखि कोटि कोटि सतकाम॥

× × ×

बाम भाग सोभति अनुकूला। आदिसक्ति छबिनिधि जगमूला॥
जासु अंस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई॥

इसका तात्पर्य यही है कि श्रीसीता-विशिष्ट श्रीराम ही अखण्ड ब्रह्म हैं। मनुजीने श्रीसीतारामजीके दर्शनके पश्चात् प्रभुसे वरदान माँगा कि जिस प्रकार मणियोंके बिना सर्प तथा जलके बिना मछलीकी दशा होती है, उसी प्रकार मेरा जीवन भी आपके अधीन हो—

मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुम्हहि अधीना॥

वनगमनके समय श्रीदशरथजीने श्रीसुमन्तजीसे कहा कि यदि सत्यप्रतिज्ञ श्रीराम-लक्ष्मण दोनों भाई अयोध्या नहीं लौटे तो किसी भी प्रकार श्रीजनकनन्दिनीको लौटा लाना। यदि श्रीमिथिलेश-राजकिशोरी लौट आती हैं तो मेरे प्राणोंका अवलम्ब हो जायगा—

जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥

× × ×

एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥

वरदानसे स्पष्ट है कि श्रीरामजीके अधीन चक्रवर्तीजीका जीवन है, किंतु श्रीमिथिलेश-किशोरीके लौटनेसे उनके प्राण बच जाते हैं, तो सुस्पष्ट है कि श्रीजानकीजी भी श्रीरामजीके समान परब्रह्मस्वरूपिणी हैं। अतः श्रीरामजी दशरथजीके संनिकट रहें या श्रीजानकीजी, तब उनके जीवनकी रक्षा होगी। इस प्रसंगमें युगल-स्वरूपकी अभिन्नताका प्रतिपादन है। गोस्वामीजीने गुरु-वन्दना-प्रसंगमें कहा है कि श्रीरामचरित दो प्रकारका है—एक गुप्त और एक प्रकट—

सूझहिं राम चरित मनि मानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥

श्रीशिव-काकभुशुण्डिके प्रसंगमें श्रीशिवजी तथा काक-भुशुण्डिजी बालरूप श्रीरामजीके उपासक प्रतीत होते हैं। कथाके आरम्भमें श्रीशिवजीने बालरूप श्रीरामकी ही वन्दना की है—

बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥

—काकभुशुण्डिजीके भी इष्ट देवता बालरूप श्रीराम ही हैं—

बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना॥

किंतु मनु-शतरूपा-प्रसंगसे स्पष्ट प्रतीत होता है कि गुप्तरूपसे श्रीशिवजी तथा काकभुशुण्डिजीकी युगल-उपासना ही है। क्योंकि मनुजीने प्रभुसे प्रार्थना की थी कि—

जो सरूप बस सिव मन माहीं। जेहि कारन मुनि जतन कराहीं॥
जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रसंसा॥
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥

इसके पश्चात् प्रभु युगलरूपमें ही प्रकट हुए। इस प्रकार

प्रकट-रूपमें श्रीशिवजी तथा काकभुशुण्डिजी बालक-रूप श्रीरामके उपासक हैं, किंतु गुप्तरूपसे युगलोपासक हैं, इसीलिये मनु-शतरूपाजीके समक्ष श्रीसीतारामजी युगल-रूपसे प्रकट हुए। अतः उपासनाके प्रवेश-मार्गमें वात्सल्यादि-रसका उपयोग हो सकता है, इसलिये दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर और शान्त—ये पाँच रस उपासनामें वर्णित हैं, किंतु प्राप्ति केवल युगल-स्वरूप ही है। सर्वत्र अखण्ड ब्रह्मकी ही उपासना होती है, खण्ड ब्रह्मकी नहीं। यहाँ श्रीसीता-विशिष्ट श्रीराम ही अखण्ड ब्रह्म हैं। इस विषयमें ऊपर प्रभूत प्रमाण दिये जा चुके हैं। मनु महाराजने केवल श्रीरामकी ही पुत्ररूपमें याचना की थी, किंतु श्रीरामजी स्वयं ही बोले कि मेरी कृपारूपिणी आदिशक्ति श्रीसीताजी भी अवतीर्ण होंगी तथा श्रीसीताजीके वैभवका वर्णन भी श्रीरामजीने किया—

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

यहाँ श्रीसीताजी श्रीरामचन्द्रजीकी आदिशक्ति तथा जगत्‌की उत्पादिका हैं 'माया' शब्दका अर्थ यहाँ कृपा है।

मानसमें जहाँ-तहाँ श्रीसीताजीके लिये 'माया' शब्दका प्रयोग हुआ है। वहाँ मायाका अर्थ 'कृपा' है। गोस्वामीजीने कवितावलीमें कहा है—***'कुमयाँ कछु हानि न औरनकी', जो पै जानकी-नाथु मया करिहै'***।—यदि श्रीजानकीनाथ कृपा करें तो अन्यकी अकृपा कोई हानि नहीं कर सकती। वरदानके अनुसार भगवान् श्रीराम पुत्ररूपमें श्रीदशरथजीके गृहमें अवतीर्ण हुए। किंतु श्रीजनकनन्दिनीके अवतारकी सूचना भी दे दी। अतः श्रीमिथिलामें श्रीजानकीजीका भी प्राकट्य हुआ। इससे स्पष्ट है कि अवतार-कालमें भी उनके बिना लीला सरस नहीं होती। विष्णुपुराणमें कहा है—यदि प्रभु देवरूप धारण करते हैं तो श्रीजी देवी, यदि मनुष्य-रूपमें अवतीर्ण होते हैं तो श्री मानुषी, श्रीराघव-रूपमें प्रकट होते हैं तो ये श्रीसीताजी तथा कृष्णावतारमें श्रीजी श्रीरुक्मिणीके रूपमें अवतीर्ण होती हैं और अन्य अवतारोंमें भी सदा प्रभुके साथ विराजमान रहती हैं—'**देवत्वे देवदेहेयं मानुषत्वे च मानुषी।....विष्णोरेषानपायिनी॥**'

स्वामी श्रीयामुनाचार्यजी कहते हैं—परव्यूह, विभव, अन्तर्यामी, अर्चावतारके भेदसे भगवान्‌के पाँच स्वरूपका वर्णन श्रुति-स्मृतियोंमें मिलता है। इन सभी रूपोंके साथ श्रीजीका नित्य योग स्वीकार किया गया है। किसी भी अवस्थामें श्रीजीका प्रभुसे वियोग नहीं होता। इसलिये श्रीजीको नित्य अनपायिनी कहा गया है तथा भगवान्‌की भाँति जीवोंके द्वारा एकमात्र प्राप्य भी कहा गया है।

पूर्वोक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि श्रीसीताराम-युगलोपासनामें ही समस्त शास्त्रोंका महातात्पर्य है। युगलोपासनाका पूर्ण विकास मिथिलामें हुआ है। नगरदर्शन-प्रसंगमें मिथिलाकी सखियोंने जो भाव प्रकट किये, वह युगलोपासनाकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण एवं अनुपम है।

नगर-दर्शनके समय सखियाँ श्रीरामजीके असाधारण रूप-माधुर्यको देखकर कहने लगीं—सुर, असुर, नाग, नर, किसीमें भी ऐसी शोभा देखी नहीं गयी। सुषमा-निधान भगवान् श्रीविष्णुमें सौन्दर्य तो है, किंतु, उनकी चार भुजाएँ सौन्दर्यमें प्रतिबन्धक हैं। वास्तवमें श्रीविष्णुभगवान्‌का स्वरूप अनन्त ऐश्वर्यका बोधक है, जो माधुर्य द्विभुजमें है वह चतुर्भुजमें नहीं। अतः श्रीरामको दूलह-रूपमें देखकर वे लक्ष्मीसहित विमोहित हो गयीं—

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥

सखियाँ कहती हैं—श्रीविष्णुभगवान्‌की चार भुजाएँ हैं, ब्रह्माके मुख चार हैं तथा शिवजीका विकट वेष है, इनके अतिरिक्त ऐसा कोई देव नहीं है, जिससे श्रीरघुनन्दनके सौन्दर्यकी उपमा दी जाय। इनके तो प्रत्येक अङ्गपर कोटि-कोटि कामदेव न्यौछावर हैं—

सुर नर असुर नाग मुनि माहीं। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाहीं॥
बिष्नु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी॥
अपर देउ अस कोउ न आही। यह छबि सखी पटतरिअ जाही॥
बय किसोर सुषमा सदन स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहिं कोटि कोटि सत काम॥

इस प्रसंगमें सखियोंने श्रीरामजीके रूपको त्रिदेवों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) से भी अनन्तगुणित श्रेष्ठ कहा। जब प्रभुके एक अङ्गपर शतकोटि काम न्यौछावर किये जा सकते हैं, तब सर्वाङ्ग-सौन्दर्यका वर्णन कौन कर सकता है। सखियोंने आगे कहा कि सखि! ऐसा कौन शरीरधारी है जो श्रीरामभद्रके रूपको देखकर विमोहित न हो जाय—

कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी॥

मिथिलावासिनी सखीका यह सिद्धान्त-सूत्र मानससहित समस्त गोस्वामीजीके साहित्यका एक स्वच्छ दर्पण है। सखियोंकी यह उद्घोषणा वास्तवमें माननीय है। नगर-दर्शनसे पूर्व तथा पश्चात्‌के समान श्रीरामचरितमें इस उद्घोषणाका सम्यक् निर्वाह ग्रन्थकारने किया है। श्रीराम-शिशुका दर्शनकर श्रीवसिष्ठजी चकित रह गये। श्रीरामललाके अनुपम रूप-गुणोंके सर्वज्ञ गुरुदेव भी वर्णन नहीं कर सके—

अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥

बालक श्रीराम जब-जब धनुष-बाण धारणकर श्रीअवधकी

गलियोंमें विचरण करते हैं, तब चर-अचरसहित सम्पूर्ण प्राणी उन्हें देखकर मोहित हो जाते हैं—

करतल बान धनुष अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥

ज्ञानिशिरोमणि महामुनि विश्वामित्रजी भी श्रीरघुनन्दनका दर्शनकर अपने शरीरकी सुधि भूल गये—

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी॥
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा॥

इसी मिथिला-भूमिमें स्वयं मिथिलाधिपति, वेदान्त-निष्णात ब्रह्मपरायण श्रीविदेहराज श्रीजनक भी श्रीराम-रूपका दर्शनकर ब्रह्मानन्दको भूल गये।

मूरति मधुर मनोहर देखी। भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥

× × ×

इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

ब्रह्मसुखको वेदान्तने भूमा—पूर्ण सुख स्वीकार किया है। जिसको प्राप्तकर पुनः कोई प्राप्तव्य शेष नहीं रह जाय, उसीको भूमा कहा गया है—'**यत्र नान्यत् पश्यति.....स भूमा**।' श्रीविदेहराज संसारसे विरक्त तो पहलेसे ही थे, किंतु अब ब्रह्मानन्दसे भी विरक्त हो गये। इसीलिये विशेष विदेह कहा गया—'***भयउ बिदेहु बिदेहु बिसेषी॥***'

नगर-दर्शनके इसी प्रसंगमें गोस्वामीजीने वर्णन किया है कि श्रीराम नगरदर्शनके लिये श्रीजनकपुर पधारे तो उनके आगमनका समाचार प्राप्त करते ही समस्त मिथिलावासी स्त्री-पुरुष अपने-अपने गृहों एवं कार्योंको छोड़कर इस प्रकार प्रभुके दर्शनार्थ दौड़े जैसे रंक निधि लूटनेके लिये दौड़ पड़ा हो—

धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी॥

धाम-कामकी व्याख्या श्रीमद्भागवत (१०। २९। ५—७) में इस प्रकार की गयी है—

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिद् दोहं हित्वा समुत्सुकाः।
पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः॥
परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा पाययन्त्यः शिशून् पयः।
शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्॥
लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥

वंशीध्वनि सुनकर जो गोपियाँ दूध दुह रही थीं वे अत्यन्त उत्सुकतावश दूध छोड़कर चल पड़ीं। जो चूल्हेपर दूध औटा रही थीं वे उफनता हुआ दूध छोड़कर और जो लपसी पका रही थीं वे पकी हुई लपसी बिना उतारे ही ज्यों-की-त्यों छोड़कर चल दीं। जो भोजन परस रही थीं, वे परसना छोड़कर, जो छोटे-छोटे बच्चोंको दूध पिला रही थीं, वे दूध पिलाना छोड़कर, जो पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थीं वे सेवा-शुश्रूषा छोड़कर और जो स्वयं भोजन कर रही थीं, वे भोजन छोड़कर अपने कृष्ण प्यारेके पास चल पड़ीं। कोई-कोई गोपी अपने शरीरमें अङ्गराग-चन्दन और उबटन लगा रही थीं और कुछ आँखोंमें अंजन लगा रही थीं, वे उन्हें छोड़कर तथा उलटे-पलटे वस्त्र धारणकर श्रीकृष्णके पास पहुँचनेके लिये चल पड़ीं। इसी प्रकार सम्पूर्ण कार्य छोड़कर मिथिलावासिनी सखियाँ और पुरुषवर्ग भी प्रभुके दर्शनके लिये दौड़ पड़े।

गोस्वामीजीने मानसमें बालकाण्डमें ही विवाह-प्रसंगमें युगलोपासनाका विशद वर्णन किया है। नगर-दर्शनमें ही सखियोंके अलौकिक भावका मधुर संकेत कर दिया है। चराचर जीवको मोहित करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके रूपको देखकर भी वे स्वयं क्या मोहित नहीं हुईं? यदि मोहित होतीं तो अवश्य इनकी प्राप्तिकी लालसा प्रकट करतीं, किंतु कहती हैं—'***जोगु जानकिहि यह बरु अहई॥***' यह वर जानकीजीके योग्य है। यदि श्रीजानकीजीके सम्बन्धमें उनकी प्राप्ति हो तो हम इनकी सेवाका सौभाग्य प्राप्त कर सकती हैं। तत्सुख-सुखित्वकी इस अलौकिक परम उज्ज्वल भावनाका दर्शन अन्यत्र दुर्लभ है। अपने सुखका सर्वथा परित्याग-कर स्वामिनी श्रीमिथिलेशराज-किशोरीके सुखमें सुखी रहनेका व्रत इन्होंने धारण कर रखा है। सर्वसम्मतिसे इस निर्णयपर दृढ़ हैं कि यदि ब्रह्मा सभीको शुभाशुभ-कर्मोंका उचित फल देते हैं तो श्रीजानकीजीको नवनील-नीरद-श्याम श्रीराम अवश्य मिलेंगे। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। यदि विधिवश ऐसा संयोग बनता है तो सभी लोग कृतकृत्य हो जायँगे—

कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फलदाता॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू। नाहिन आलि इहाँ संदेहू॥
जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू॥

इन सखियोंके निष्काम-भावकी समता अन्यत्र सर्वथा असम्भव है। इनका सम्बन्ध प्रभु श्रीरामसे होगा, किंतु अभी नहीं, जब श्रीरघुनन्दन श्रीजानकीवल्लभ होंगे, तब इन सभीका उनसे सम्बन्ध होगा। श्रीजनकनन्दिनी राजकुमारीके साथ जब इनका विवाह होगा तब इनका सम्बन्ध प्रभुके साथ होगा। यदि श्रीमहाराजकुमारीके साथ इनका विवाह नहीं हुआ तो इनका दर्शन हमारे लिये असम्भव है—

नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि इन्ह कर दरसनु दूरि।

सखियोंने अहल्योद्धारकी कथाका स्मरणकर यह निश्चय कर लिया कि श्रीराघवेन्द्र केवल एक महाराजकुमार मात्र नहीं, किंतु एक असाधारण ऐश्वर्य-सम्पन्न चराचरनायक हैं, क्योंकि किसी अलौकिक राजकुमारके पदरजसे अहल्याका उद्धार सम्भव नहीं है। इस महान् कार्यको साक्षात् सर्वेश्वर ही कर सकते हैं। यदि शिव-धनुर्भङ्गमें ऐश्वर्यकी आवश्यकता है तो इनमें अनन्त ऐश्वर्य निहित है—

परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी॥
सो कि रहिहि बिनु सिव धनु तोरें। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरें॥

अन्तमें सखियाँ कहती हैं कि जिस ब्रह्माने मिथिलेश-राजनन्दिनीको सर्वाङ्गसुन्दर विधिपूर्वक सँवारा है, उसीने श्रीरघुनन्दनको भी वरके रूपमें प्रकट किया है। ब्रह्माके द्वारा यह युगल-संयोग निश्चित किया गया है, अतः इसमें संदेह नहीं है। अवश्य श्रीसीता-रामजीका मधुर समागम होगा—

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी॥
तासु बचन सुनि सब हरषानीं। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानीं॥

मानसमें नगर-दर्शनके प्रसंगसे स्पष्ट है कि मिथिलाकी सखियोंकी उपासना श्रीसीताराम-युगल-रूपकी है। इस युगल-उपासनाके अलौकिक स्वरूपका प्राकट्य श्रीसीता-राम-विवाह-प्रसंगमें हुआ है—इसका संकेत पूर्वमें ही किया जा चुका है। विवाहके पूर्व पुष्पवाटिका-लीला-प्रसंगमें युगल-किशोरका परस्पर-दर्शन इस युगलोपासनाका पोषक है, साथ ही मधुर रसकी दृष्टिसे श्रीसीताराम-प्रेमका एक अनुपम उदाहरण है। पूर्वराग विप्रलम्भका एक मधुर प्रसंग है। प्रथम मिलनकी लालसामें जो भावकी प्रगाढता है वह इस प्रसंगमें दर्शनीय है—

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।

अवधसे चलते समय हर्षका एकमात्र कारण है कि मैथिलीजीका समागम—

धनुष जग्य सुनि रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिबर के साथा॥

राजकुँवर जब विदेह-नगरके समीप पहुँचे तब नगरकी बाह्य शोभाको देखकर विशेष आनन्द हुआ—

पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेषी॥

जब जनकपुर पधारे तो मर्यादापुरुषोत्तम रामके पूर्वरागकी लालसाने गुरुदेवको चकित कर दिया। महर्षि विश्वामित्रसे श्रीराघवेन्द्रने कहा कि श्रीलक्ष्मणकुमार जनकपुर देखना चाहते हैं, यदि आपकी आज्ञा हो तो मैं इनको शीघ्र दर्शन कराकर लौटा लाऊँ—

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥

× × ×

जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥

यहाँ लालसा नगर दिखलानेमात्रके लिये नहीं, किंतु नगरकी अधिष्ठात्री देवता श्रीमिथिलेशराजकिशोरीजीके दर्शनकी है। यद्यपि नगर-दर्शन कराकर शीघ्र लौट आनेकी प्रतिज्ञा प्रभुने की, किंतु बाल-सखाओंके प्रेम-परवश होकर अमित रूपसे घर-घर जाकर उनका आतिथ्य स्वीकार करना पड़ा—

निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

जब समस्त सखाओंकी इच्छा-पूर्त्यर्थ उनके घरोंमें गये तो विलम्ब होना स्वाभाविक था, साथ ही इस विलम्बके लिये गुरुदेव-का भय और संकोच भी स्वाभाविक था—

कौतुक देखि चले गुरु पाहीं।

× ×

सहित सनेह जाहिं दोउ भाई॥

गोस्वामीजीने इस माधुर्य-लीलाको ऐश्वर्यलीलामें परिवर्तित कर इसकी दिव्यताकी ओर साधकोंको मोड़ दिया तथा कह दिया कि जिनके भयसे साक्षात् कालको भी भय होता है, वे चराचर-जगत् एवं कालके नियन्ता परमप्रभु भजनका प्रभाव दिखा रहे हैं—

जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई॥

जो भक्त प्रभुका भजन करता है वे उससे भी डरते हैं। महर्षि विश्वामित्रने सर्व-समर्पण-भावसे प्रभुका भजन किया है, अतः उनसे प्रभु डरते भी हैं, यही बात बाललीलामें स्थल-स्थलपर वर्णित है। जब कौसल्या अम्बा श्रीरामललाको हाथ पकड़कर चलना सिखाती हैं, तब प्रभु भयभीत होते हैं। गीतावलीमें गोस्वामीजी लिखते हैं—

ललित सुतहि लालति सचु पाये।
कौसल्या कल-कनक अजिर महँ सिखवति चलन अँगुरियाँ लाये॥

× × ×

किलकि किलकि नाचत चुटकी सुनि, डरपति जननि पानि छुटकाये॥

इस कृत्रिम भयमें संतोंने प्रभुकी भक्तवश्यताका ही दर्शन किया है। श्रीमद्भागवतमें जब श्रीयशोदाजीने श्रीकृष्णको रस्सीसे बाँधा, तब श्रीशुकदेवजीने कहा कि ईश्वरसहित समस्त चराचर जिनके वशमें हों, उस सर्वकारण प्रभुके बन्धनसे भक्तवश्यताका ही प्रकाशन हुआ है। जो प्रभुकी कृपाका प्रसाद ब्रह्मा, शिव तथा नित्य अङ्गसंगिनी श्रीलक्ष्मीजीको भी नहीं प्राप्त हुआ, वही

यशोदाजीको प्राप्त हुआ। इससे स्पष्ट है कि भगवान् कर्म-मार्गियोंको एवं ज्ञानियोंको इस प्रकार सुलभ नहीं हैं, जिस प्रकार भक्तको सुलभ हैं—

एवं संदर्शिता ह्यङ्ग हरिणा भृत्यवश्यता।
स्ववशेनापि कृष्णेन यस्येदं सेश्वरं वशे॥
नेमं विरिञ्चो न भवो न श्रीरप्यङ्गसंश्रया।
प्रसादं लेभिरे गोपी यत्तत् प्राप विमुक्तिदात्॥
नायं सुखापो भगवान् देहिनां गोपिकासुतः।
ज्ञानिनां चात्मभूतानां यथा भक्तिमतामिह॥

(श्रीमद्भा० १०। ९। १९—२१)

श्रीराघवेन्द्रका भय भी परवशताका ही एकमात्र द्योतक है। प्रभुने समस्त नगरवासियोंको अपनी रूप-माधुरीमें आकृष्ट कर लिया। अपनी रूपमोहिनीके जालमें सभीको फँसा लिया—

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥

किंतु जिनके दर्शनकी लालसामें वे श्रीअवधसे चले थे, उन श्रीराजकिशोरीजीका दर्शन नहीं हुआ। बालकोंसे उनके रूप-गुणोंकी गाथा-श्रवणसे लालसामें और भी तीव्रता आ गयी है। नगरवासी श्रीरघुनन्दनकी रूप-माधुरीमें फँसे थे। इस प्रकारसे नगरवासियोंपर श्रीराघवेन्द्रके असाधारण रूप-माधुर्यकी विजय थी। विदेहराजसे लेकर समस्त प्रजाको अपनी रूप-माधुरीसे वश करनेके पश्चात् भी प्रभुको इस प्रथम विजयसे आन्तरिक हर्ष नहीं हुआ, क्योंकि जिनके दर्शनकी लालसामें अनाहूत यहाँतक पधारे, उनका दर्शन नहीं हुआ। अन्तरङ्ग-सखियोंने श्रीरघुनन्दनकी मानसिक वेदनाको भलीभाँति समझ लिया। आपसमें कहने लगीं—सखि! राजकुमार बार-बार इधर-उधर दृष्टिपात क्यों कर रहे हैं? अन्य सखियोंने उत्तर दिया कि हम-सखियोंपर कृपा-वर्षा कर रहे हैं, क्योंकि राजकुमार जानते हैं कि सखियोंके मध्य ही कहीं श्रीराजकिशोरीजी होंगी—

जुबतीं भवन झरोखन्हि लागीं। निरखहिं राम रूप अनुरागीं॥

आज तो इन्हें स्वामिनीजीका दर्शन सम्भव नहीं क्योंकि वे हमारे बीच नहीं हैं, किंतु प्रातः दर्शन हो सकता है। माताजीकी आज्ञासे श्रीस्वामिनीजू श्रीगिरिजापूजनके लिये प्रातः वाटिकामें पधारेंगी, वहीं दर्शन कराना चाहिये। अतः राजकुमारको पुष्पवर्षासे संकेत करना चाहिये कि प्रातः पुष्पवाटिकामें पधारें। वहीं राजकिशोरीजीका दर्शन होगा। दर्शनीय देवताकी जैसे-जैसे दुर्लभता बढ़ती है वैसे-वैसे लालसा भी उत्कट होती जाती है, यदि श्रीराजकिशोरीका दर्शन आज होता तो राजकुमारको वह सुख नहीं प्राप्त होता जो पुष्पवाटिकामें दर्शनकी प्रतीक्षामें प्राप्त हुआ।

नगर-दर्शनमें महर्षिने एक अद्भुत संकेत दिया—जब श्रीरघुनन्दनने मुनिसे दर्शन करानेकी आज्ञा माँगी, तब महर्षिको ज्ञात हो गया कि प्रभु लक्ष्मणकुमारको आगे रखकर श्रीमैथिली-दर्शनकी लालसा गुप्त-रूपसे प्रकट कर रहे हैं। इस प्रसंगमें रसगोपनकी प्रक्रिया भी नितान्त रमणीय है। महर्षि जिस कार्यके लिये प्रभुको महाराजसे याचना करके लाये थे, उस कार्यकी पूर्ति होने जा रही है। अतः रामायणके अनुसार श्रीशिवजीकी प्रेरणासे महर्षि प्रभुको लेने श्रीअवध पधारे हैं तथा यज्ञ-रक्षा तो केवल बहाना मात्र है। वास्तवमें तो श्रीसीताराम-समागम ही मुनिका उद्देश्य है, अवतारका प्रयोजन भी श्रीजीके संयोगसे ही सफल होगा। श्रीरामचरित स्वयं निर्मल है, किंतु श्रीसीताचरितसे उसमें विशेष निर्मलता आयी है। पूर्वाचार्य कहते हैं—

श्रीमद्रामायणमपि परं प्राणिति त्वच्चरित्रे।

श्रीमद्रामायणका उत्कर्ष श्रीसीता-चरितसे ही है। श्रीस्तवकार भी कहते हैं कि भगवान्की लीला रसमयी तभी हुई जब श्रीजीका संयोग हुआ—

क्रीडेयं खलु नान्यथास्य रसदा स्यादैकरस्यात्तया।

मुनिने कहा—श्रीरामभद्र! आप प्रीति-रसके मर्मज्ञ हैं, यद्यपि आप सेतुके रक्षक हैं, किंतु प्रेमके विवश सेवकोंको विशेष सुख प्रदान करते हैं। तात्पर्य यह है कि धर्मशास्त्रके अनुसार भक्तको भगवान्के समीप जाना चाहिये।

इस दृष्टिसे मिथिलावासियोंको श्रीअवध जाना चाहिये, किंतु स्वयं श्रीरामभद्र बिना आमन्त्रणके मिथला पधारे तथा नगर-दर्शनके बहाने मिथिलाकी गली-गलीमें जाकर सभीको अपनी रूप-माधुरीका पान कराया। जब सखियोंने प्रभुके ऊपर पुष्प-वर्षा की तब वे समझ गये कि यह पुष्प-वर्षा श्रीराजकुमारीसे मिलनेका संकेत है। इसीलिये प्रातः नित्य-नियमका निर्वाह कर गुरुदेवसे आज्ञा पाकर पुष्प-चयनके लिये पुष्पवाटिकाकी ओर श्रीलक्ष्मण-कुमारके साथ श्रीरघुनन्दनने प्रस्थान किया—

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

वाटिका-दर्शनकर श्रीराघवेन्द्रको असीम सुख प्राप्त हुआ—

परम रम्य आराम यह जो रामहि सुख देत।

माताजीकी आज्ञासे गिरिजा-पूजनके लिये सखियोंके साथ श्रीजनकराजकिशोरी भी पधारीं—

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई॥

संग सखीं सब सुभग सयानीं। गावहिं गीत मनोहर बानीं॥

श्रीजानकीजीने सरोवरमें स्नानकर गिरिजाजीका पूजन किया, तब अपने अनुरूप सुन्दर वरकी याचना की, उसी समय एक सखी राजकुमारके दर्शनार्थ वाटिकामें भ्रमण करने लगी। श्रीरामभद्रका दर्शन कर वह अपनी सुध-बुध खो बैठी। उसका रोम-रोम श्रीरामरूपमें रम गया। उसकी दशाको देखकर सखियोंने पूछा कि तुम्हारी ऐसी दशा क्यों हुई? तब उसने कहा—दो राजकुमार वाटिका-दर्शनार्थ यहाँ पधारे हैं। एक श्याम हैं और दूसरे गौर। इनका वर्णन सम्भव नहीं है, क्योंकि वाणीको नेत्र नहीं तथा नेत्रको वाणी नहीं है। एक सखी कहती है कि ये वही राजकुमार हैं जो मुनिके साथ कल आये हैं। जिन्होंने अपनी रूपमोहिनी डालकर समस्त पुरवासियोंको अपने वशमें कर लिया है—

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी॥

सखियोंका मुख्य उद्देश्य यही है कि श्रीराजकिशोरी राजकुमारके दर्शनार्थ चलें, अतः राजकुमारकी रूपमाधुरीका वर्णन कर श्रीराजकुमारीको उनके दर्शनार्थ प्रेरित कर रही हैं। सखीके प्रेरणादायक वचन सुनकर श्रीराजकिशोरीको उनके दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठा जाग्रत् हुई तथा नेत्र उनके दर्शनके लिये ललचाने लगे। जिस सखीने राजकुमारका दर्शनकर उनके रूप-माधुर्यकी प्रशंसा की थी, उसीको आगे कर श्रीराजकुमारी श्रीराजकुमारके दर्शनार्थ चलीं। गोस्वामीजीने मर्यादाकी रक्षाके लिये यह कह दिया कि श्रीराजकिशोरीकी प्रीति श्रीराजकुमारसे पुरातन है—इस रहस्यको कोई नहीं जानता—

चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥

देवर्षि नारदजीने कहा था कि पुष्प-वाटिकामें जिनके दर्शनसे राजकिशोरीका चित्त आकृष्ट होगा, उन्हींके साथ इनका विवाह होगा। देवर्षिके वचनका स्मरणकर राजकिशोरीजीकी पुरातन एवं पुनीत प्रीति चरमोत्कर्षपर पहुँच गयी। दर्शनके पूर्व ही दोनों युगल-किशोर-किशोरीकी उत्कण्ठा दर्शनीय है। प्रेमराज्यमें मिलनेसे भी अधिक उत्कण्ठाका महत्त्व स्वीकार किया गया है।

पुष्प-वाटिकामें श्रीराजकिशोरीकी विजय हुई, ऐसा गोस्वामीजीने गीतावलीमें स्पष्ट लिखा है—***'गवनी भवन तुलसीस-हियो हरिकैं॥'*** तुलसीदासके स्वामी श्रीराघवेन्द्रके हृदयका हरण कर श्रीजानकीजी अपने भवनकी ओर गयीं।

प्रभु श्रीदशरथनन्दन हैं, लीला-क्षेत्रमें देह-कुमार हैं, किंतु श्रीमिथिलेशनन्दिनी लीलामें भी विदेहकुमारी हैं— अयोनिजा हैं।

इस प्रकार श्रीविदेहकुमारीकी शोभाका हृदयमें प्रभु वर्णन कर रहे हैं तथा अपनी प्रेम-दशाका वर्णन श्रीलक्ष्मणकुमारसे करते हैं—तात! यह वही श्रीजनकनन्दिनी हैं जिनके लिये धनुष-यज्ञ सम्पन्न हो रहा है। जिनकी अलौकिक शोभा देखकर स्वाभाविक मेरे पुनीत मनमें क्षोभ हो रहा है। क्षोभ दूषित मनमें होना स्वाभाविक है, किंतु सहज पुनीत मनमें क्षोभ होना अत्यन्त आश्चर्य है। यहाँ अलौकिक शोभाको देखकर मनका क्षुभित होना कहा गया है। लौकिक शोभाको देखकर श्रीराघवेन्द्रका मन क्षुभित नहीं हो सकता है। जिनके अंशसे अगणित उमा, रमा, ब्रह्माणी प्रकट होती हैं, ऐसी अयोनिजा श्रीमिथिलेशराजनन्दिनी सर्वथा अलौकिक हैं। अतः उनकी शोभा भी अलौकिक है। प्रभु कहते हैं—इसका कारण तो विधाता ही जानता है, किंतु मेरे शुभदायक दक्षिण अङ्ग फड़क रहे हैं—शुभ सूचना दे रहे हैं। मर्यादा तथा प्रेम—दोनों दृष्टियोंसे यह आकर्षण अत्यन्त पुनीत है। श्रीराघवेन्द्र स्वयं कहते हैं कि रघुवंशियोंका सहज स्वभाव है कि उनका मन कभी भी कुमार्गपर पाँव नहीं रखता। मुझे तो अपने मनपर पूर्ण भरोसा है कि स्वप्नमें भी परस्त्रीका दर्शन उन्होंने नहीं किया, जाग्रत्-अवस्थाका तो प्रश्न ही नहीं है। यद्यपि ऐसे महापुरुष थोड़े ही हैं जो रणमें पीठ नहीं दिखाते, परस्त्रीकी ओर दृष्टि नहीं करते, याचक जिसके समीपसे विमुख नहीं लौटता। इस प्रकार श्रीलक्ष्मणकुमारसे अपनी मनोदशाका वर्णन कराते हैं, पर मन श्रीराजकिशोरीकी रूपमाधुरीमें निमग्न है, श्रीसीताके मुख-कमल-मकरन्दका मनसे पान कर रहे हैं।

मानसका शृंगार विलक्षण है। गोस्वामीजीने मानसके प्रारम्भमें कहा है कि मेरे मानसमें अक्षर, अर्थ, अलंकार, भाव, रस आदि एक भी काव्योचित गुण नहीं हैं, किंतु एक विश्वविदित गुण श्रीरामनाम है—***'एहि महँ रघुपति नाम उदारा।'*** वास्तवमें गोस्वामीजीके काव्यमें जितने काव्यके गुण हैं शायद ही किसी ग्रन्थमें होंगे। यह चमत्कार श्रीरामनामके चमत्कारसे सम्भव हुआ है, क्योंकि श्रीरामनाम असम्भवको भी सम्भव बनानेमें परम समर्थ है। मधुर रसको गोस्वामीजीने रसराज कहा है, किंतु इस रसके अधिकारी महापुरुष अत्यन्त दुर्लभ होते हैं। रसिकाचार्य श्रीअग्रस्वामीजीने लिखा है—शृंगार रस अनुपम है। इसकी तुलना असम्भव है, किंतु जो कंचन-कामिनीको हलाहल-विषके तुल्य समझते हैं वे ही इसके अधिकारी हैं। भोगका परित्याग कर जो निरन्तर श्रीप्रिया-प्रियतमके रसमें निमग्न रहते हैं, ऐसे ही महापुरुष इस रसके अधिकारी हैं—

रस शृंगार अनूप है तुलबे को कोउ नाहिं।
तुलबे को कोउ नाहिं सोइ अधिकारी जगमें।

कंचन कामिनि जानि हलाहल जानत तनमें ॥
जावत जगके भोग रोग सम त्यागो द्वंदा।
पिय प्यारी रस सिन्धु मगन नित रहत अनंदा ॥
नहीं अग्र अरु संतके सुर लायक जग माहिं।
रस शृंगार अनूप है तुलबे को कोउ नाहिं ॥

स्वामी युगलानन्यशरणजी महाराज कहते हैं कि जबतक पुरुष-भावका अभाव नहीं होता, तबतक इस रसका अधिकारी कोई नहीं हो सकता। पुरुष-भावसे नित्य-निकुंजमें प्रवेश असम्भव है।—

रिषि मुनि सिद्ध सुरेस ईस ब्रह्मादि अलष गति।
पुरुषावेस समेत जीव गत होत न तहँ रति ॥
जो लौं रंचक गंध पुरुष पन चित्त विराजैं।
तौ लौ रहस सुधाम मांझ संबंध न भ्राजैं ॥

इसीलिये स्वामी श्रीयुगलानन्यशरणजीने अपने चौरासी ग्रन्थोंमें नामकी महिमा तथा वैराग्य, ज्ञान, भक्तिकी महिमाका विशद रूपसे प्रतिपादन किया तथा मधुर-रस एवं रहस्योंका संक्षिप्त रूपसे प्रतिपादन किया है। रसोपासनाके पूर्व छः मासपर्यन्त कम-से-कम पचीस हजार नामका जप प्रतिदिन तथा अधिक-से-अधिक एक लाख नामजप प्रतिदिन करना चाहिये। आज भी इस नियमका निर्वाह उस परम्पराके साधक करते हैं। अतः मधुररस अत्यन्त गूढ़ एवं गोपनीय है तथा इसके अधिकारी दुर्लभ हैं।

पूर्वोक्त प्रसंगमें राघवेन्द्र श्रीसीता-मुखचन्द्र-चकोर बनकर उनकी छबि-सुधाका पान करने लगे। अब श्रीजनकनन्दिनी श्रीरामचन्द्र-मुखचन्द्र-चकोरी किशोरी किस प्रकार बनीं इसका रसास्वादन किया जाता है—***'चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी सभीत ॥'*** इस दोहेमें श्रीजानकीजीका चकित होकर प्रभुके दर्शनकी उत्कण्ठा कही गयी। अब इसी प्रसंगको—***'चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता ॥'*** से समन्वय कर रहे हैं। राजकुमारके दर्शनके लिये ही सखियाँ श्रीराजकिशोरीजीको यहाँ लायी हैं। चकित होकर उनको ढूँढ़ रही हैं, न मिलनेपर मनमें चिन्ता भी हो रही है। यह चिन्ता दर्शनकी प्रबल उत्कण्ठाका द्योतक है—

जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें ॥
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥

पूर्वमें कहा गया—***'सिय मुख ससि भए नयन चकोरा।'*** यहाँ—***'सरद ससिहि जनु चितव चकोरी'*** कहकर दोनोंकी समान प्रीति एवं आकर्षणका मधुर संकेत है। श्रीकिशोरीजीके मुखका केवल चन्द्रकी भाँति प्रभुने दर्शन किया, किंतु यहाँ श्रीराजकिशोरीजीने शरद्‌के चन्द्रकी भाँति अवलोकन किया। इससे स्पष्ट है कि प्रीति-रसके रसास्वादनमें श्रीजानकीजीका विशिष्ट स्थान है—

लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥

नेत्र समस्त अङ्गोंमें कोमल होता है। राजकुमार भी अत्यन्त सुकुमार हैं। अतः कोमल मार्गसे ही राजकुमारको हृदयमें प्रतिष्ठापित किया तथा पलकरूपी किवाड़ लगाकर उन्हें बंद कर लिया, जिससे वे भाग न जायँ। द्वार खुला रहनेपर भागनेका भय रहता है। अभी तो लताकी ओटमें दर्शन हुआ। जब प्रभु सम्मुख प्रकट होंगे तब उनके नख-शिख-शोभाका दर्शन कर परमानन्दमें निमग्न हो जायँगी।

श्रीराजकिशोरीके प्रेम-परवश श्रीराघवेन्द्र लता-भवनसे प्रकट हो गये। जब सखियोंने श्रीजानकीजीको प्रेमवश जाना तब वे मनमें बहुत संकुचित हुईं, किंतु कुछ कह न सकीं—

जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानी। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानी ॥

इससे स्पष्ट है कि प्रेम-परवश प्रभु प्रकट हो गये—

'प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना ॥'

इस प्रसंगमें गोस्वामीजीने श्रीरघुनन्दनकी अलौकिक शोभाका विशद वर्णन किया है—

लताभवन तें प्रगट भे तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु जलद पटल बिलगाइ ॥
सोभा सीवँ सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा ॥
मोर पंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ॥

दोनों वीर शोभाकी सीमा हैं तथा अत्यन्त सुन्दर हैं। दोनोंके श्रीविग्रह नीले तथा पीले कमलकी आभाके समान हैं। गीतावलीमें गोस्वामीजी कहते हैं—

सुखमा सील-सनेह सानि मनो रूप बिरंचि सँवारे।
रोम-रोमपर सोम-काम सत कोटि बारि फेरि डारे ॥

परम शोभा, शील और स्नेहको मिलाकर मानो ब्रह्माजीने इनके रूपको सँवारा है। इनके रोम-रोमपर अरबों-खरबों चन्द्रमा और कामदेव निछावर करके फेंक दिये हैं। मोर-पंख सिरपर भलीभाँति शोभित है, बीच-बीचमें पुष्पोंकी कलियोंके गुच्छे लगे हैं। मोर-पंखका अर्थ संतोंने मोरपंखी टोपी किया है। गीतावलीमें

पुष्पवाटिकामें जाते समय राजकुमारोंके सिरपर मोरपंखी टोपीका ही वर्णन है—

भोर फूल बीनबेको गये फुलवाई हैं।
सीसनि टिपारे, उपबीत, पीत पट कटि,
दोना बाम करनि सलोने भे सवाई हैं॥

यहाँ टिपारेका अर्थ मोरपंखी टोपी है। *'केहरि कटि पट पीत धर सुषमा सील निधान।'* इसमें रूपका विशद वर्णन किया गया है। इस प्रसंगमें मिथिलाकी सखियोंका अभिनय अत्यन्त सराहनीय है। जब श्रीराघवेन्द्र श्रीमैथिलीके सम्मुख प्रकट हुए तब वे नेत्र बंदकर ध्यानमग्न थीं। सखियोंने जान लिया कि श्रीकिशोरीजी प्रियतमका ही ध्यान कर रही हैं, किंतु उनसे कहती हैं कि श्रीगिरिजाजीका ध्यान पुनः कर लेना राजकिशोरको क्यों नहीं देख लेती ? स्वामिनीको संकोच न हो इसलिये राजकुमारका ध्यान न कहकर गिरिजाजीका ध्यान कहा। श्रीकिशोरीजीने नेत्र खोलकर देखा तो सामने दोनों राजकुमार दीख पड़े। नखसे शिखा-पर्यन्त प्रभुकी शोभाका दर्शन कर पिताकी प्रतिज्ञाका स्मरण करके मन क्षुभित हो गया। प्रभुकी सुकुमारता तथा धनुषकी कठोरता ही मनमें क्षोभका कारण बनी।—

नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु मनु अति छोभा॥

जब श्रीकिशोरीजी श्रीराम-प्रेमपरवश हो गयीं, तब सखियोंको विलम्बका भय उत्पन्न हो गया। 'इसी समय कल फिर आयेंगी'— ऐसा कहकर एक सखी मनमें मुसकायी। गूढ वाणी सुनकर किशोरीजी सकुचा गयीं—

पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली॥

वे मृग-पक्षी तथा वृक्षोंको देखनेके बहाने बारम्बार लौट पड़ती हैं। श्रीरघुनन्दनकी छबिको देखकर बहुत अधिक प्रीति बढ़ जाती है—

देखन मिस मृग बिहग तरु फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि बाढ़इ प्रीति न थोरि॥

प्रभुकी साँवली मूर्ति हृदयमें धारणकर किसी प्रकार महलकी ओर लौट गयीं। सुख-स्नेह-शोभा तथा गुणोंकी खानि श्रीजानकी-जीको प्रभुने जाते हुए जाना, तब परम प्रेमकी कोमल स्याही बनाकर सुन्दर चित्तरूपी भित्ति (दीवार) पर उनका चित्र खींच लिया—

प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी॥
परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीतीं लिखि लीन्ही॥

श्रीकिशोरीजीने प्रभुको हृदयमें रखकर पलकके दरवाजे लगा दिये तो प्रभुने उनका चित्त ही हृदयमें चित्रित कर लिया। श्रीमिथिलेशकुमारीने माता पार्वतीसे अपने मनोरथकी पूर्तिका वरदान माँगा, तब उन्हें मनोऽभिलषित वर प्राप्त भी हो गया। संध्या-वन्दनके समय भी प्रभुने श्रीकिशोरीजीका ही ध्यान किया—

प्राची दिसि ससि उयउ सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुखु पावा॥
सिय मुख छबि बिधु ब्याज बखानी॥

युगल प्रेमका मधुर चित्रण जिस प्रकार पुष्पवाटिकामें हुआ है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। रंगभूमिमें प्रभुका आगमन तथा माधुर्य दोनों दृष्टियोंसे लोकोत्तर है—

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

श्रीराजकिशोरीजी जब रंगभूमिमें पधारीं तो उनका वर्णन गोस्वामीजी नहीं कर सके—

सिय सोभा नहिं जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी॥
रंगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी॥

धनुर्भङ्गके पूर्व श्रीविदेहकुमारीका अनुराग दर्शनीय है—

मनहीं मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

धनुर्भङ्गके पश्चात् जयमाल-प्रसंगमें युगल-प्रेमकी पराकाष्ठा-का दर्शन होता है—

सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥

× × ×

गौतम तिय गति सुरति करि नहिं परसति पग पानि।
मन बिहसे रघुबंसमनि प्रीति अलौकिक जानि॥

× × ×

रामु सुभायँ चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥

मिथिलाकी सखियाँ चारों राजकुमारोंका दर्शनकर विधातासे प्रार्थना करती हैं कि इन चारों सुन्दर राजकुमारोंका विवाह हमारी चारों राजकुमारियोंसे हो—

पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं।
ब्याहिअहुँ चारिउ भाइ एहिं पुर हम सुमंगल गावहीं॥

इससे युगल-उपासनाकी प्रबल पुष्टि होती है। जब वर-वधूकी हथेलियोंको मिलाकर अर्थात् दक्षिण हथेलीपर वधूकी दक्षिण हथेलीको रखवाकर दोनों कुलगुरु शाखोच्चार करने लगे तब विवाह-विधि सम्पन्न हुई। इस प्रकार पाणिग्रहण हुआ। श्रीजनकराजने विधिपूर्वक कन्यादान किया। पुनः विधिपूर्वक होम करके गठबन्धन किया और भाँवर होने लगी। मुनियोंने आनन्द-पूर्वक भाँवरें फेरवायीं। श्रीरामचन्द्रजी श्रीसीताजीके सिरमें सिन्दूर दे रहे हैं वह शोभा अकथनीय है। मानो कमलमें भली प्रकार लाल

पराग भरकर सर्प अमृतके लोभसे चन्द्रमाको भूषित कर रहा है। पुनः वसिष्ठजीकी आज्ञासे दुल्हा-दुलहिन एक आसनपर विराजमान हो गये, इसी प्रकार श्रीमाण्डवीजीका श्रीभरतलालके साथ, श्रीउर्मिलाजीका श्रीलक्ष्मणकुमारके साथ तथा श्रीश्रुतिकीर्तिजीका श्रीशत्रुघ्नकुमारके साथ विधिपूर्वक विवाह सम्पन्न हुआ। सब सुन्दरी दुलहिनें सुन्दर दुल्होंके साथ एक ही मण्डपमें ऐसी शोभा पा रही हैं, मानो जीवके हृदयमें चारों अवस्थाएँ अपने स्वामियोंके साथ विराजमान हों—

सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

जब चारों दुलहिनोंके साथ चारों दुल्हे श्रीअवध पधारे तो माता कौसल्याको ब्रह्मानन्दसे भी कोटि-कोटि गुणित अधिक आनन्द प्राप्त हुआ—

एहि सुख ते सत कोटि गुन पावहिं मातु अनंदु।
भाइन्ह सहित बिआहि घर आए रघुकुलचंदु॥

बालकाण्डकी समाप्तिपर फलश्रुतिका वर्णन करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि जो श्रीसीताराम-विवाहका प्रेमपूर्वक गान एवं श्रवण करते हैं, उन्हें सदा प्रसन्नता एवं नित्य नवीन उत्सवकी प्राप्ति होगी; क्योंकि श्रीसीतारामजीका यश सदा मङ्गलका धाम ही है—युगल-उपासनामें ही बालकाण्डका तात्पर्य निहित है—

सिय रघुबीर बिबाहु जे सप्रेम गावहिं सुनहिं।
तिन्ह कहुँ सदा उछाहु मंगलायतन राम जसु॥

(क्रमशः)

श्रीमद्भागवतमें रामकथाका स्वरूप

(स्वामी श्रीओंकारानन्दजी महाराज, सदस्य बदरी-केदार-मन्दिर-समिति)

यदनुध्यासिना युक्ताः कर्मग्रन्थिनिबन्धनम्।
छिन्दन्ति कोविदास्तस्य को न कुर्यात् कथारतिम्॥

(श्रीमद्भा० १।२।१५)

कर्मोंकी ग्रन्थि बड़ी कठोर है। विचारवान् पुरुष भगवच्चिन्तनरूपी खड्गसे उस गाँठको काट डालते हैं, तब भला कौन ऐसा दुर्बुद्धि होगा जो भगवान्‌की लीला-कथासे प्रेम न करे?

भारतीय संस्कृतिका लक्ष्य भोग नहीं त्याग है, संघर्ष नहीं शान्ति है, विषमता नहीं समता है। हम इसे चिन्तनकी अल्पज्ञता ही मानेंगे कि मोक्षकी प्राप्ति मरणके पश्चात् मिलती है। इसका तो अर्थ यह हुआ कि सुख और पवित्रता जीवनकी वस्तु नहीं रही। जीवन-शुद्धि एक नकद धर्म है। भागवत-शास्त्रका सिद्धान्त है कि मानव अपने जीवनके प्रत्येक श्वासमें स्वर्ग और मोक्षका आनन्द ले सकता है। अहंता और ममताके बन्धनोंसे परे रहना ही वस्तुतः जीवनका परमानन्द है। जीते-जी मुक्त-जीवन, विदेह-स्थिति यही भागवत-दर्शनकी विशेषता है। यही अध्यात्मजीवनकी साधना है। जीते-जी अनासक्ति मोक्ष और आसक्ति बन्धन है।

यह शरीर एक वृक्ष है। इसमें नीड बनाकर जीवनरूपी पक्षी निवास करता है। इसे यमराजके दूत प्रतिक्षण काट रहे हैं। जैसे पक्षी कटते हुए वृक्षको देखकर उड़ जाते हैं वैसे ही अनासक्त जीव भी इस शरीरको छोड़कर मोक्षका भागी बन जाता है, परंतु आसक्त जीव दुःख ही भोगता रहता है—

छिद्यमानं यमैरेतैः कृतनीडं वनस्पतिम्।
खगः स्वकेतमुत्सृज्य क्षेमं याति ह्यलम्पटः॥

(श्रीमद्भा० ११।२०।१५)

जिस रामकथाके वर्णनमें कवि-कुलगुरु वाल्मीकिने चौबीस हजार श्लोकोंकी रचना की तथा अन्यान्य अनेक विद्वज्जनोंने विस्तारपूर्वक विवेचन किया; वहीं **'वेदोपनिषदां साराज्जाता भागवती कथा'**-जैसे वेद-महोदधि-पीयूष श्रीमद्भागवतमहापुराणमें रामकथाका चित्रण लघुरूपमें हुआ है, यह शंका निराधार है। साक्षात् भगवान्‌के कलावतार श्रीवेदव्यास-जैसे अद्वितीय महापुरुषको जिस रचनासे परमशान्ति मिली हो, उसमें वे शान्तिके स्वरूप रामका चित्रण करनेमें कृपणता करें यह असम्भव है। वास्तवकिता तो यह है कि यदि भागवतके गहन अध्ययनका निष्कर्ष निकाला जाय तो रामके जिस पक्षसे मानवका चतुर्मुखी विकास अनुस्यूत है उसे प्रतिभासित कर उन्होंने 'गागरमें सागर'की युक्तिको चरितार्थ कर दिया है।

भगवान् वेदव्यास प्रथम स्कन्धमें ही अवतार-वर्णन-शृंखलामें लिखते हैं—देवताओंके कार्य-सम्पादन-हेतु उन्होंने राजाके रूपमें रामावतार ग्रहण किया और सेतुबन्धन,

रावण-वध आदि वीरतापूर्ण बहुत-सी लीलाएँ कीं—

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्रे वीर्याण्यतः परम्॥

(श्रीमद्भा० १। ३। २२)

यहाँ यह बात स्मरणीय है कि भगवान् वेदव्यासको शौर्यतापूर्ण कार्योंमें सेतुबन्धन और रावण-वधका प्रथम उल्लेख ही क्यों अभीष्ट हुआ।

न्याय-पक्ष यदि संगठित हो जाय तो साधन और सामर्थ्यकी मात्रा स्वल्प रहनेपर भी विशालकाय विभीषिकाओं-पर विजय प्राप्त की जा सकती है। महान् प्रयोजन पूरा कर सकनेमें अकेला व्यक्ति सफल नहीं हो सकता, उसके पीछे संगठित जनशक्ति होनी ही चाहिये। श्रीरामद्वारा ऋक्ष-वानरोंको सेतु-बन्धन-हेतु भावभरा योगदान करनेके लिये प्रेरित करना संगठन-शक्तिके सारभूत प्रकरणका प्रयोजन निष्कर्ष है।

पुनः इसी प्रकरणको आगे बढ़ाते हुए द्वितीय स्कन्धमें लीलावतारोंकी कथाके अन्तर्गत भगवान् वेदव्यास जिस अधूरी बातको पूर्ण करना चाहते थे, उसका संकेत देते हुए कहते हैं—मर्यादापुरुषोत्तम रामकी आँखें सीता-वियोगके कारण बढ़ी क्रोधाग्निसे इतनी लाल हो जाती हैं कि उनकी दृष्टिसे ही समुद्रके जन्तु जलने लगते हैं। और सागर भयातुर होकर उन्हें मार्ग दे देता है। इसी संदर्भमें वे रामकी तुलना त्रिपुर-विनाशक शंकरसे करते हैं—

यस्मा अदादुदधिरूढभयाङ्गवेपो
मार्गं सपद्यरिपुरं हरवद्दिधक्षोः।
दूरेसुहृन्मथितरोषसुशोणदृष्ट्या
तातप्यमानमकरोरगनक्रचक्रः॥

(श्रीमद्भा० २। ७। २४)

रावणके घमंडका जितना सटीक उदाहरण श्रीमद्भागवतमें देखनेको मिलता है उतना अन्यत्र किसी ग्रन्थमें नहीं—

वक्षःस्थलस्पर्शरुग्णमहेन्द्रवाह-
दन्तैर्विडम्बितककुब्जुष ऊढहासम्।
सद्योऽसुभिः सह विनेष्यति दारहर्तु-
र्विस्फूर्जितैर्धनुष उच्चरतोऽधिसैन्ये॥

(श्रीमद्भा० २। ७। २५)

जब रावणकी कठोर छातीसे टकराकर इन्द्रके वाहन ऐरावतके दाँत चूर-चूर होकर चारों ओर फैल गये थे, जिससे दिशाएँ सफेद हो गयी थीं, तब दिग्विजयी रावण अहंमें मदोन्मत्त अट्टहास कर उठा था। उसी रावणका घमंड श्रीरामके धनुषकी टंकारसे प्राणोंके साथ तत्क्षण विलीन हो जाता है।

भागवतमें भगवान् व्यासका यह वर्णन पढ़कर श्रीरामके अद्वितीय शौर्य और पराक्रमका सहज परिचय हो जाता है, पर नवम स्कन्धमें जब वे भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका वर्णन करते हैं, तब रामकी सुकुमारताके विषयमें लिखते हैं—

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः।
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।

(श्रीमद्भा० ९। १०। ४)

अपने पिताके सत्यकी रक्षाके लिये राज्यका परित्याग कर वन-वनमें विचरण करनेवाले रामके चरण-कमल इतने सुकुमार थे कि भुवनसुन्दरी सीताके करकमलोंका स्पर्श भी उन्हें सहन नहीं होता था। इन्हीं '**वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि**' चरण-कमलोंको धर्मनिष्ठता एवं प्रेमकी सीमाका माध्यम बताना, कैसा मर्मस्पर्शी समन्वय है।

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

(श्रीमद्भा० ११। ५। ३४)

भगवन्! आपके पादारविन्दोंका ऐश्वर्य अवर्णनीय है। देवताओंके लिये स्पृहा-योग्य राज्यलक्ष्मीको छोड़कर आपके चरण वन-वन भटके। आप धर्म-निष्ठताकी पराकाष्ठा हैं। महापुरुष! मैं आपके उन चरणोंकी वन्दना करता हूँ, जो अपनी प्रेयसी सीताके चाहनेपर जान-बूझकर मायामृगके पीछे दौड़ते रहे। सचमुच आप प्रेमकी सीमा हैं।

नीच राक्षसने जब विदेहनन्दिनी सुकुमारी श्रीसीताजीको हर लिया और वे अनुज सौमित्रके साथ वन-वनमें दीनकी भाँति घूमने लगे, तब रामकथाके आदिकवि वाल्मीकिने रामके विलापका चित्रण कई सर्गोंमें किया है। तुलसीने भी रामकी विरह-व्यथाका वर्णन बहुत मार्मिक रूपमें विस्तारसे प्रस्तुत किया है, परंतु ऐसे करुण-रससे ओतप्रोत वातावरणके समय भागवतकार कितना सजग है यह देखते ही बनता है—

भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः
स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार ॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।११)

अपनी प्राणप्रिया सीतासे बिछुड़कर श्रीराम दीनकी भाँति अपने भ्राता लक्ष्मणके साथ वन-वन घूमने लगे और इस प्रकार उन्होंने यह शिक्षा दी कि जो स्त्रियोंमें विशेष आसक्ति रखते हैं, उनकी यही गति होती है।

राम कथा-साहित्यके एक अद्वितीय अनुपम आदर्श पात्र हैं श्रीभरतलाल। भारतीय जनमानसको भ्रातृप्रेम, विनम्रता, निष्कपट व्यवहार, उदारता, गम्भीरता और त्याग-जैसे गुणोंसे मण्डित करने-हेतु इस पात्रने जो अपनी अमिट छाप अङ्कित की, उसका वर्णन मुक्तकण्ठसे सभी रामकथा-मर्मज्ञोंने किया है, परंतु बहुत सीमित शब्दोंमें जो सारगर्भित चित्रण श्रीमद्भागवतमहापुराणमें आया है, वह उच्चतम भावोंका परिचायक है। जब श्रीरामको यह ज्ञात होता है कि भरत चौदह वर्षोंसे वल्कल धारण किये, जटाजूट रखे गोमूत्रमें पकाये जौके दलियेका ही सेवन कर रहे हैं—**'गोमूत्रयावकं वल्कलाम्बरं महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम्'** तब श्रीराम चल पड़े। उधर भरतजीने जैसे ही प्रभु रामको आते देखा, तब—

पादुके न्यस्य पुरतः प्राञ्जलिर्बाष्पलोचनः।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैर्जलैः ॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।४०)

उन्होंने प्रभुके सामने उनकी पादुकाएँ रख दीं और करबद्ध खड़े हो गये। नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहती जा रही थी। भगवान्ने अपने हाथोंसे भरतको पकड़कर बहुत देरतक हृदयसे लगाये रखा। भगवान्के नेत्र-जलसे भरतजीका स्नान हो गया।

हिमालयकी एकान्त उपत्यकामें कोलाहलसे दूर प्रकृतिके सुरम्य वातावरणमें बैठकर मानव-कल्याणकी भावनाओंसे लिखे गये पुराणोंका मूल उद्देश्य तो चातुर्वर्ण्यको सन्मार्ग प्रदर्शित करना ही है। चारों वर्णों और चारों आश्रमोंके लिये साधारण धर्म तो मन-वचन-कर्मसे अहिंसा-पालन, सत्यपर दृढ़ता, चोरीका परित्याग, काम, क्रोध, लोभसे परे रहना और उन कार्योंको करना जिससे समस्त प्राणियोंका भला हो और वे प्रसन्न रहें, यही है।

अहिंसासत्यमस्तेयमकामक्रोधलोभता ।
भूतप्रियहितेहा च धर्मोऽयं सार्ववर्णिकः ॥

(श्रीमद्भा० ११।१७।२१)

विशेष रूपसे गार्हस्थ्य धर्मकी श्रेष्ठताको प्रतिपादित करनेमें सजग श्रीरामके चरित्र-चित्रणमें भागवतकारने जिस जागरूकताका परिचय दिया है, वह स्तुत्य है—

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः।
स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत् ॥

(श्रीमद्भा० ९।१०।५५)

श्रीराम एकपत्नीव्रतधारक थे। उनके चरित्र अत्यन्त पवित्र एवं राजर्षियों-जैसे थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्मकी शिक्षा देनेके लिये स्वयं उस धर्मका आचरण करते थे।

भगवान् वेदव्यासके शब्दोंमें 'मैं भी उन्हीं रघुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी शरण ग्रहण करता हूँ, जिनका निर्मल यश समस्त पापोंका विनाश कर देनेवाला है। वह इतना व्यापक है कि दिग्गजोंका श्यामल शरीर भी उनकी उज्ज्वलतासे चमक उठता है। आज भी बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि राजाओंकी सभामें उनका गान करते रहते हैं। स्वर्गके देवता और पृथिवीके नरपति अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरण-कमलोंकी सेवा करते रहते हैं।'

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये ॥

(श्रीमद्भा० ९।११।२१)

जग जाचिअ कोउ न, जाचिअ जौं जियँ जाचिअ जानकी जानहि रे।
जेहि जाचत जाचकता जरि जाइ, जो जारति जोर जहानहि रे॥
गति देखु बिचारि बिभीषनकी, अरु आनु हिएँ हनुमानहि रे।
तुलसी! भजु दारिद-दोष-दवानल संकट-कोटि-कृपानहि रे॥

सीतारामका औपनिषदिक स्वरूप

(पद्मभूषण आचार्य श्रीबलदेवजी उपाध्याय)

भगवती सीता तथा भगवान् रामके विमल जीवनका चित्रण कहाँ नहीं उपलब्ध होता। यह विश्वभरमें अपनी दिव्यता तथा मनोहरताके कारण नितान्त प्रख्यात है। पौराणिक साहित्यका तो यह सर्वस्व ही है। ऐसा कौन-सा पुराण होगा जिसमें इस युगल सरकारके अभिराम रूपका चित्रण नहीं उपलब्ध होता।

उपनिषदोंमें भी इसका गम्भीर चिन्तन भक्तोंको अपनी ओर सदैव आकृष्ट करता है। उपनिषदोंमें अथर्ववेदीय रामतापनीयकी मुख्यता है। इसके दो रूप उपलब्ध हैं— पूर्वतापनीय तथा उत्तरतापनीय। इसीके आधारपर यहाँ सीतारामके चरित्रका प्रतिपादन किया जा रहा है।

रामोत्तरतापनीयकी दृष्टिमें प्रणव—ॐकारके छः भाग होते हैं और इन भागोंमें सीतारामके स्वरूपका क्रमशः चिन्तन तथा मनन किया गया है। उपनिषद्के मूल श्लोक इस प्रकार हैं—

अकाराक्षरसम्भूतः सौमित्रिर्विश्वभावनः।
उकाराक्षरसम्भूतः शत्रुघ्नस्तैजसात्मकः॥
प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भवः।
अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रहः॥
श्रीरामसांनिध्यवशाज्जगदाधारकारिणी।
उत्पत्तिस्थितिसंहारकारिणी सर्वदेहिनाम्॥
सा सीता भवति ज्ञेया मूलप्रकृतिसंज्ञिका।
प्रणवत्वात् प्रकृतिरिति वदन्ति ब्रह्मवादिनः॥

(१) सुमित्रानन्दन लक्ष्मण प्रणवके 'अ'कारसे उत्पन्न हैं। ये जाग्रत्के अभिमानी 'विश्व' नामसे परिचित हैं। चतुर्व्यूहमें ये 'संकर्षण' रूपसे विराजमान हैं।

(२) 'उ' से उत्पन्न शत्रुघ्न स्वप्नके अभिमानी देवता 'तैजस' नामसे परिचित हैं। चतुर्व्यूहमें 'प्रद्युम्न' नामसे विराजमान हैं।

(३) 'म' से प्रादुर्भूत 'भरत' का सम्बन्ध है। ये सुषुप्तिके अभिमानी 'प्राज्ञ' नामसे परिचित हैं। चतुर्व्यूहमें 'अनिरुद्ध' नामसे इन्हींका निर्देश किया जाता है।

(४) प्रणवके चतुर्थ अंश अर्धमात्रारूप भगवान् राम ही हैं। ये ही तुरीय पुरुषोत्तम हैं। ब्रह्मानन्द ही इनका एकमात्र विग्रह है। चतुर्व्यूहोंमें ये वासुदेव नामसे प्रसिद्ध हैं।

(५) श्रीरामके सामीप्यमात्रसे जो सम्पूर्ण देहधारियोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवाली हैं, ये जगदाधारिणी विदेहनन्दिनी सीता 'नादविन्दु' स्वरूपा हैं। ये ही मूल प्रकृतिके नामसे जानी जाती हैं। प्रणवसे अभिन्न होनेके कारण ब्रह्मवादी जन इन्हें 'प्रकृति' नामसे पुकारते हैं।

यद्यपि परमात्मा एक तथा अखण्ड है, तथापि उसके समग्र स्वरूपका बोध करानेके लिये उसमें चार अंशों या पादोंकी कल्पना की गयी है। जाग्रत् यानी स्थूल जगत्, स्वप्न अर्थात् सूक्ष्म जगत्, सुषुप्ति अर्थात् प्रलयावस्थामें लीन जगत् तथा इन सबसे विशुद्ध ब्रह्म—ये ही परमेश्वरके चार पाद अथवा अवयव हैं। रामतत्त्वके वर्णनमें 'रां' यह बीज ही प्रणव है तथा पुरुषोत्तम राम सम्पूर्ण परमेश्वर हैं। इनके चार पाद—लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत तथा कौसल्यानन्दन श्रीराम हैं। इन्हीं चारोंको मिलाकर सम्पूर्ण राम हैं। जैसे सब कुछ 'ॐ' है, वैसे ही सब 'रां' है। 'रां' और 'ॐ' में माहात्म्य तथा महिमाकी दृष्टिसे कोई अन्तर नहीं है। अतएव यह सम्पूर्ण जगत् श्रीरामकी ही महत्ताका प्रकाशन कर रहा है। इसी मूलतत्त्वपर ध्यान देना आवश्यक है।

सीताका वैदिक रूप

भगवती सीताके वैदिक तात्त्विक स्वरूपका वर्णन सीतोपनिषद्में उपलब्ध होता है। यह उपनिषद् अथर्ववेदसे सम्बन्ध रखता है। इसी वैदिक स्वरूपसे मिलते-जुलते स्वरूप-का वर्णन शौनकीय तन्त्रमें भी उपलब्ध होता है। सीतोपनिषद्के वर्णनकी ओर ध्यान देनेपर भगवती सीताका रूप भगवान् रामके साथ साक्षात् सम्बन्ध रखनेवाला माना गया है। प्रथमतः 'सीता'-अभिधानपर दृष्टिपात कीजिये। सीताजी शक्तिरूपा हैं। प्रणवकी प्रकृतिस्वरूपा होनेसे वे मूलप्रकृति अर्थको द्योतित करती हैं। 'सीता'-अभिधानमें तीन अक्षरोंका योग उपलब्ध है, जिनके पृथक् अर्थ बताये जाते हैं—स+ई+ता।

यह उपनिषद् 'स' अक्षरके अनेक अर्थ बतलाता है।

(१) 'स' का अर्थ है—सत्य, अमृत, प्राप्ति (सर्वत्र

गमनकी शक्ति-वाचक ऐश्वर्य अथवा सिद्धि) तथा चन्द्रमा।

(२)ई—उपनिषद् विष्णुको समस्त जगत्-प्रपञ्चका बीज बतलाता है। इसी बीजका ईकार योगमायास्वरूपा माना जाता है।

(३)ता—इस अक्षरका तात्पर्य है महालक्ष्मीका स्वरूप, जो प्रकाशमय एवं विस्तारकारी (अर्थात् जगत्-स्रष्टा) बतलाया गया है।

सीताके तीन स्वरूप बतलाये गये हैं। प्रथम स्वरूपसे वे ब्रह्ममयी हैं। वे बुद्धिरूपा हैं जो स्वाध्यायकालमें प्रसन्न होनेपर बोधको प्रकट करती हैं। अपने दूसरे रूपमें वे पृथ्वीपर उत्पन्न बतायी जाती हैं जो सीरध्वज जनकराजकी यज्ञभूमिमें हलके अग्रभागसे उत्पन्न हुई थीं। वे अपने तृतीय ईकाररूपिणी अव्यक्तस्वरूपा हैं। इन तीनों रूपोंको मिलाकर 'सीता' नामसे व्यवहृत की जाती हैं।

वे श्रीसीताजी शक्त्यासना हैं—शक्तिस्वरूपा होकर इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति एवं साक्षात्शक्ति—इन तीन रूपोंमें प्रकट होती हैं। इच्छाशक्तिमय उनका स्वरूप भी त्रिविध होता है—श्रीदेवी, भूदेवी तथा नीलादेवीके रूपमें कल्याणरूपा, प्रभावरूपा तथा चन्द्र, सूर्य एवं अग्निरूपा वे ही होती हैं। श्रीसीताजी अपने श्रीदेवीरूपमें तीन प्रकारका रूप धारणकर भगवान्के संकल्पानुसार सम्पूर्ण लोकोंकी रक्षाके लिये सर्वदा व्यक्त होती हैं। वे लोककल्याणार्थ श्री तथा लक्ष्मी-रूपमें लक्षित होती हैं। भूदेवी सम्पूर्ण जलमय समुद्रोंके संग सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीके रूपमें चौदहों भुवनोंका आधार प्रणव-स्वरूपा होकर व्यक्त होती हैं। नीलादेवी सम्पूर्ण ओषधियों एवं समग्र प्राणियोंके पोषण-निमित्त सर्वरूपा हो जाती हैं। इस प्रकार नाना शक्तियोंके रूपमें अभिव्यक्त होकर भगवती सीता भगवान् रामचन्द्रको इस भूमण्डलके रक्षण तथा कल्याणके लिये नाना प्रकारकी सहायता प्रदानकर इस विश्व-ब्रह्माण्डका विधिवत् संचालन करती हैं।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने बालकाण्डमें चारों भाइयोंके नामकरणके अवसरपर ऊपर दिये गये तथ्यका प्रतिपादन किया है। मिथिलामें विवाहके अवसरपर भी इन तथ्योंका प्रतिपादन उपलब्ध होता है।

राजा दशरथके आग्रहपर गुरु वसिष्ठजीने चारों भाइयोंका नामकरण इस प्रकार किया—आनन्दसिन्धु तथा सुखराशि होनेसे ज्येष्ठ पुत्रका नाम 'राम' रखा। विश्वका भरण तथा पोषण करनेके कारण दूसरे पुत्रका नाम 'भरत' रखा। जिसके स्मरणसे शत्रुओंका नाश होता है उसका नाम 'शत्रुघ्न' रखा और सकल जगत्के आधार होनेके कारण तथा शुभ लक्षणोंके धाम होनेसे सुमित्रानन्दनका नाम 'लक्ष्मण' रखा। इस तथ्यके विषयमें संक्षेपमें तुलसीदासका कहना है—

धरे नाम गुर हृदयँ बिचारी। बेद तत्व नृप तव सुत चारी॥

यहाँ 'वेदतत्त्व' का तात्पर्य ॐकारसे है। लेखके आरम्भमें दिखलाया गया है कि ॐकारके चार अंश होते हैं और इन्हीं अंशोंसे चारों भ्राताओंका नामकरण किया गया है। राम-विवाहके प्रसंगमें भी इसी महनीय वैदिक तत्त्वकी सूचना इन पंक्तियोंमें दी गयी है—

सुंदरीं सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

जैसे जीवके उरमें चारों अवस्थाएँ विभुओंके साथ विराजमान हैं, उसी प्रकार सुन्दर तथा सुन्दरीका संयोग प्रतीत होता है। इसका संक्षेपमें दिग्दर्शन इस प्रकार होगा—

विभु— सर्वज्ञ, प्राज्ञ, हिरण्यगर्भ और विश्व (विराट)।
सुन्दर— राम, भरत, शत्रुघ्न और लक्ष्मण।
सुन्दरी— सीता, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति और उर्मिला।
अवस्था— तुरीय, सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत्।

गोस्वामी तुलसीदासने उपनिषद्के इस तत्त्वको रामायणमें निगमागमके प्रति अपने प्रेमभावका परिचय दिया है। संक्षेपमें सीताराम युगल सरकारके उपनिषद्-प्रतिपाद्य-स्वरूपका वर्णन इस लेखमें किया गया है। सीताराममें भगवती सीताका प्राधान्य माना गया है। इसलिये उन्हींकी स्तुतिमें लेख समाप्त किया जाता है—

शौरिश्चकास्ति हृदयेषु शरीरभाजां
तस्यापि देवि हृदये त्वमनुप्रविष्टा।
पद्मे तवापि हृदये प्रथते दयेयं
त्वामेव जाग्रदखिलातिशयां श्रयामः॥

श्लोकका आशय यह है कि शरीरधारी समस्त प्राणियोंके हृदयमें भगवान् विष्णु (श्रीराम) विराजमान रहते हैं। उनके हृदयमें भगवती लक्ष्मी (देवी सीता) निवास करती हैं और उनके हृदयमें दया ही दया है अतः हम उन देवीका ही आश्रय ग्रहण करते हैं।

पराभक्तिके परम धाम—श्रीराम

(श्रीजगन्नाथजी वेदालंकार)

हिन्दूमात्रके लिये श्रीराम और श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् ही हैं। युग-युगसे वे सम्पूर्ण भारतमें साक्षात् भगवान् माने जाते हैं और उसी रूपमें पूजे जाते रहे हैं। 'राम' शब्दकी व्युत्पत्ति भी इसी तथ्यको प्रमाणित करती है—

रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(श्रीरामपूर्वतापिन्युपनिषद् १।६)

'जिन नित्यानन्द-स्वरूप, अनन्त चिन्मात्र परमात्मामें योगी लोग अपना मन लगाते और रमण करते हैं, वे भगवान् परब्रह्म 'राम' पदसे अभिहित होते हैं।'

भगवान् श्रीरामने लीला-शरीर धारणकर अनेकानेक अतिमानवीय पराक्रमके कार्य किये और चराचर जगत्का कल्याण किया। आनन्दरामायणमें यही तथ्य श्रीरामके एक सुन्दर स्तोत्रके रूपमें प्रकट किया गया है—

लीलाशरीरं रणरङ्गधीरं विश्वैकसारं रघुवंशहारम्।
गम्भीरनादं जितसर्ववादं श्रीरामचन्द्रं सततं नमामि॥

(सारकाण्ड १२।१२२)

—इस श्लोकमें श्रीरामचन्द्रजीको लीला-शरीर कहा गया है, अर्थात् वे अपनी अलौकिक लीलाएँ करनेके लिये ही मानव-शरीरमें अवतीर्ण हुए थे। उन भगवान् श्रीरामके प्रति परा भक्तिका क्या स्वरूप है, इसे संक्षेपमें यहाँ बताया गया है—

'भक्ति' शब्द **'भज सेवायाम्'** इस धातुसे क्तिन् प्रत्यय करनेसे बना है। **'भजनम् एव भक्तिः, भज्यते अनया इति भक्तिः, यद्वा भजन्ति अनया इति भक्तिः'** इत्यादि व्युत्पत्तियाँ 'भक्ति' शब्दकी हो सकती हैं। अर्थात् इसका अर्थ है आराध्यदेवका भजन-पूजन, उनकी एकनिष्ठ सेवा। अथवा वह साधना या क्रिया जिससे आराध्यका भजन किया जाता है या जिससे भक्तजन भजनीयका भजन-पूजन करते हैं।

देवर्षि नारदके अनुसार सर्वाङ्गपूर्ण भक्तिका लक्षण है—

तदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलतेति।

(नारदभक्तिसूत्र १९)

अर्थात् अपनी सभी क्रियाओं और चेष्टाओंको भगवान्के अर्पित कर देना तथा उनका विस्मरण होनेपर अत्यन्त व्याकुल हो जाना।

तत्प्राप्य तदेवावलोकयति तदेव शृणोति तदेव भावयति तदेव चिन्तयति। (नारदभक्तिसूत्र ५५)

भगवान्के प्राप्त हो जानेपर भक्त उन्हींको देखता है, उन्हींको सुनता है, उन्हींकी भावना और उन्हींका चिन्तन करता है।

भक्तिरिह भजनम्, तदिहामुत्र नैराश्येन परस्मिन् मनःकल्पनम्। (गौडीयवैष्णवाः)

यहाँ भक्तिका अर्थ है भजन करना, इहलोक और परलोकसे विरक्त होकर परात्परमें मन लगाना। भक्तिका मूल्य है प्रगाढ़ अभीप्सा—

रामभक्तिरसभाविता मतिः
क्रीयतां यदि कुतोऽपि लभ्यते।
तस्य मूल्यमिह लौल्यमेकलं
काम्यकोटिसुकृतैरवाप्यते॥

—रामके प्रति भक्तिके रससे परिप्लावित मति यदि कहींसे मिलती हो तो खरीद लो। यहाँ उसका मूल्य है केवल लौल्य, श्रीरामके लिये ही लालायित होना और यह स्थिति प्राप्त होती है जन्म-जन्मान्तरोंमें अर्जित कोटि-कोटि पुण्योंसे।

यही भाव शाण्डिल्य मुनिने अपने भक्तिसूत्रमें अत्यन्त संक्षिप्त वाक्यमें व्यक्त किया है—

सा (भक्तिः) परानुरक्तिरीश्वरे। (१।१।२)

—'ईश्वरमें परम अनुरक्ति ही भक्ति है।' क्योंकि 'ईश्वरमें' जिसकी सम्यक् निष्ठा है वह अमृतत्वको प्राप्त होता है। (१।१।३)।

भक्तिमें उच्च जातिसे लेकर चाण्डाल आदितकके मनुष्यों-को समानरूपसे अधिकार है। किंतु पराभक्तिका आशय है भगवान्के प्रति एकान्तभाव (अनन्य प्रेम)। वह भक्तिकी पराकाष्ठा है। भक्तोंने अपने आराध्यके प्रति निगूढ़ प्रेमको नाना

भावोंसे जताया है। श्रवण, कीर्तन, वन्दन, स्मरण, पादसेवन, दास्य, सख्य आदि नवविध भक्ति-भावोंके परीक्षित्, पृथु, उद्धव, जनमेजय, नारद, शारदा, शंकर, शेष, ध्रुव, प्रह्लाद, हनुमान्, विदुर तथा गोपिकाएँ आदि अनेकानेक भक्त हुए हैं।

पूर्वोक्त भगवद्भावोंके अतिरिक्त अन्य भी बहुतसे भक्तिसूचक भाव हैं। जैसे अर्जुनकी भाँति भगवान्के प्रति सम्मानबुद्धि; इक्ष्वाकुकी भाँति भगवत्सदृश नाम या वर्णके प्रति अतिशय आदर; उनके दर्शनसे भगवत्प्रेमका उदय होना; विदुर आदिके समान भगवान् या भगवद्भक्तके दर्शनसे प्रीति; गोपीजनोंकी भाँति भगवान्के विरहकी अनुभूति; उपमन्यु तथा श्वेतद्वीपवासियोंके सदृश भगवद्भिन्न वस्तुओंसे स्वभावतः अरुचि होना; भीष्म एवं व्यास आदिकी भाँति निरन्तर भगवान्की महिमाका वर्णन; व्रजवासियों तथा हनुमान्जीके समान भगवान्के लिये जीवन धारण करना; बलि आदिकी भाँति यह भाव रखना कि मैं तथा मेरा सब कुछ भगवान्का ही है; प्रह्लादजीकी तरह सबमें भगवद्भाव होना; भीष्म, युधिष्ठिर आदिकी भाँति कभी भगवान्के प्रतिकूल आचरण न करना। हमें चाहिये कि हम इन भावोंका अथवा इनमेंसे किसी एकका भी अनुकरण कर भगवान्में अनन्य निष्ठा रखकर अपने जीवनको सफल बनायें।

भक्तप्रवर यामुनाचार्यने तो भगवान्के सामने अपना हृदय खोलकर रख दिया। विनय और दीनताकी सीमा ही दिखला दी। वे प्रार्थना करते हुए कहते हैं—

हे नाथ! मेरी विनती सुनिये। वह मिथ्या नहीं है, सच्ची है। यदि आप मुझपर दया नहीं करेंगे तो मुझ-जैसा दयाका पात्र आपको नहीं मिलेगा। आपके बिना मेरा कोई नाथ नहीं और मेरे बिना आपके लिये कोई दयाका पात्र नहीं है। हे भगवन्! कृपा करके मुझे अपनी अनन्य भक्तिका दान दीजिये, जिससे मैं केवल आपका ही भोग्य रहूँ। आपके दास्यका सुख ही जिनका एकमात्र संगी है ऐसे भक्तोंके घरोंमें कीटके रूपमें मेरा जन्म भले ही हो, किंतु अन्य घरोंमें ब्रह्माके रूपमें जन्म कभी भी न हो। एक बार आपके दर्शन करनेकी आशासे जो महात्मा श्रेष्ठ भुक्ति और मुक्ति आदिको भी तृणवत् समझते हैं, उनके दर्शन मुझे सदा होते रहें, क्योंकि क्षणभरके लिये भी आपका वियोग अतिदुःसह है। मैं हीन आचारवाला हूँ, अनादिकालसे चले आ रहे अवारणीय, बड़े भारी, दुष्परिणामवाले अशुभका भण्डार हूँ, नरपशु हूँ फिर भी निरतिशय वात्सल्यके सागर हे दयासिन्धु बन्धो! आपके गुणगणका पुनः-पुनः स्मरण करता हुआ मैं निर्भय होकर इस अशुभको चाहता और सहता हूँ। आप मेरे पिता हैं, मेरी माता हैं, प्रिय पुत्र हैं, प्रिय सुहृद् भी आप ही हैं, आप ही मित्र हैं, गुरु भी हैं, सब लोकोंकी गति भी हैं। मैं आपका हूँ, आपका दास हूँ, आपका बन्धुजन हूँ। मेरी गति आप ही हैं, अब आपके शरणागत हूँ, ऐसी दशामें मैं भी आपका ही हूँ, मेरा सब भार आपपर ही है। जिनका यश जगत्भरमें विख्यात है, जो पवित्र और योगयुक्त हैं, त्रिगुणात्मक पदार्थों और आत्मतत्त्वकी यथार्थ स्थितिको जानते हैं, जिनका मन स्वभावतः ही आपके चरण-कमलोंमें एकान्तभावसे लगा हुआ है, ऐसे लोगोंके महान् वंशमें जन्म लेकर भी मैं नीचे-ही-नीचे गिरता हुआ पापी बनकर हे शरणदाता! मैं अन्धकारमें डूबा हुआ हूँ। मर्यादासे रहित क्षुद्र तथा चञ्चलमति, ईर्ष्या-असूयाकी जन्मभूमि, कृतघ्न, महाभिमानी, कामवासनाका दास, छल-कपटपरायण, निष्ठुर और महापापी मैं कैसे इस अपार दुःखसागरसे पार होकर आपके चरण-कमलोंकी सेवा करूँ? हे रघुवर श्रीराम! आप काकभुशुण्डिपर दयासे द्रवीभूत हो उठे थे, श्रीकृष्णजीने शिशुपालके साथ अत्यन्त दयामय व्यवहार किया था। प्रत्येक जन्ममें अपराध करनेवालेको आपने मोहक सायुज्य प्रदान किया। कहिये आपकी उस अतिक्षमाका अवसर आया है या नहीं? हे नाथ! जो आपकी शरणमें आकर एक बार भी यह कहता है कि 'मैं आपका हूँ' और अभयकी याचना करता है, आप उसपर अनुकम्पा ही करते हैं। आप अपनी उस प्रतिज्ञाको याद कीजिये। क्या आपकी वह प्रतिज्ञा, वह व्रत मुझे छोड़कर औरोंके लिये ही है?

इसी प्रकार प्रह्लादजीकी निष्काम भक्तिका भी अनूठा ही भाव है, वे कहते हैं—

हे स्वामिन्! जो सेवक आपसे कामनापूर्तिकी इच्छा करता है, वह तो सेवक नहीं कोरा व्यापारी है। स्वामीसे कामनापूर्तिकी इच्छा रखनेवाला सेवक सेवक नहीं है और सेवकसे स्वामित्वकी इच्छा रखकर उसे धन या भोगादि

देनेवाला स्वामी स्वामी नहीं है। प्रभो ! मैं आपका निष्काम भक्त हूँ और आप हैं मेरे निरपेक्ष स्वामी, इसके सिवा राजा और सेवककी भाँति आपका और हमारा कोई पृथक् प्रयोजन नहीं है। हे वरदानियोंमें श्रेष्ठ ! यदि आप मुझे काम्य वरदान देना चाहते हैं तो मैं आपसे यही वरदान माँगता हूँ कि मेरे हृदयमें कामनाएँ पैदा ही न हों।

भगवान्‌के अनन्य भक्त वृत्रासुर भगवान्‌से कहते हैं—

हे सर्वसौभाग्यनिधे ! मुझे आपको छोड़कर स्वर्ग, ब्रह्मपद, सार्वभौम साम्राज्य, रसातलका आधिपत्य, योगसिद्धि अथवा अपुनर्भव (मोक्ष) आदि किसी भी पदार्थकी इच्छा नहीं है। हे कमलनयन ! प्रभो ! जिन पक्षिशावकोंके पंख नहीं जमे हैं, वे जैसे माताकी प्रतीक्षा करते हैं, भूखसे पीड़ित बछड़े जैसे माताका दूध पीनेके लिये उत्सुक रहते हैं और जैसे विरहातुर कामिनी अपने प्रवासी प्रियतमकी बाट जोहती है, वैसे मेरा मन आपकी झाँकी लेना चाहता है।

(श्रीमद्भा० ६। ११। २५-२६)

कलियुगके कष्टोंसे छुटकारा पानेकी कुंजी भक्तिके हाथमें है

भागवतके आरम्भमें ही भक्तिके महत्त्वके विषयमें एक कथा दी हुई है। तदनुसार एक दिन नारदजी यात्रा करते हुए यमुनाके किनारे पहुँचे जो भगवान् श्रीकृष्णके आमोद-प्रमोदका स्थल था। एक युवती स्त्री अति दुखित और विषण्ण-अवस्थामें वहाँ बैठी थी। दो मनुष्य जो वृद्ध दिखायी देते थे उस स्त्रीके पुत्र थे और पास ही अचेत पड़े हुए थे। स्त्री भक्तिका प्रतीक थी और दो वृद्ध आध्यात्मिक ज्ञान और वैराग्यके। कलियुगके आविर्भावके साथ भक्ति अति दुर्बल हो गयी, परंतु उसे वृन्दावनमें अपना पुराना रूप फिरसे प्राप्त हो गया, किंतु दो वृद्ध जन क्लान्तिवश वृद्धताका दुःख भोगते रहे। नारदजीने भक्तिसे कहा कि जब श्रीकृष्णने अपने धाम जानेके लिये इहलोकका त्याग किया तभी कलियुग जो समस्त आध्यात्मिक प्रयासोंमें बाधा डालता है आरम्भ हो गया था। इस कलियुगमें तो केवल भक्तिसे ही भगवान्‌की प्राप्ति हो सकती है। भक्ति ही परमोच्च साधन है, नारदने भक्तिदेवीके सम्मुख भक्तिकी जो व्याख्या की थी उसका सार यही था। भक्तिका परिणाम यह होता है कि भगवान् हमारे घरके द्वारपर आ उपस्थित होते हैं। जो भक्तिसे द्वेष करते हैं वे दुःखके भागी होते हैं। भक्तिके पास सोये पड़े दो लोगों (ज्ञान-वैराग्य) को जगानेके लिये नारदने सुझाव दिया था कि उनके पास कोई भक्त भक्तिरससे परिपूर्ण भागवतका पाठ करे; क्योंकि भागवतका पाठ दुःख और विषादको दूर कर सकता है। भक्ति मनुष्यको केवल पवित्र ही नहीं करती, अपितु वह अपने-आपमें सर्वोच्च लक्ष्य साक्षात् भगवान्‌की प्राप्ति करा देती है।

ब्रह्मका रुदन

(पं० श्रीरामकिंकरजी उपाध्याय)

कौसल्या अम्बाके समक्ष प्राकट्यके अवसरपर ब्रह्म मुस्कुरा रहा था, किंतु कौसल्या अम्बाद्वारा 'शिशु-लीला' किये जानेकी प्रार्थनाको स्वीकार कर श्रीराम नन्हें शिशुके रूपमें परिवर्तित होकर रुदन करने लगे। उनका यह रुदन अयोध्यावासियोंके उल्लासका कारण बन गया। मुस्कुराते हुए ईश्वरको केवल अम्बा ही देख रही थीं, पर रुदनकी ध्वनिने तो सारे राजभवनको गुँजा दिया। व्यग्रतासे प्रतीक्षा करती हुई दासियाँ आनन्दसे थिरक उठीं। सर्वत्र समाचार पहुँचानेकी होड़ लग गयी। महाराज श्रीदशरथको भी यह समाचार ज्ञात हो गया। उल्लासकी अधिकतासे उनके लिये उठ पाना भी कठिन हो रहा था। एक क्षणके लिये उनके अन्तःकरणमें सत्यका प्रकाश कौंध गया। उन्हें लगा, जिन प्रभुका नाम समस्त अमङ्गलोंको नष्ट करनेवाला है, मेरे गृहमें आज उनका शुभागमन हुआ। आज मैं धन्य और कृतकृत्य हो गया। उत्फुल्लताके अतिरेकमें वे उठ भी न पाये। उन्होंने सेवकोंको बुलाकर आज्ञा दी, माङ्गलिक वाद्य बजाये जायँ। गुरु वसिष्ठको भी सानन्द सूचना दी गयी और वे आनन्दसे उमड़ता हृदय लेकर राजभवनमें पधारे। विप्रमण्डली उनके साथ थी। शास्त्रीय विधिसे नान्दीमुख श्राद्ध किया गया। ब्राह्मणोंको विविध वस्तुएँ अर्पित की गयीं—

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी॥

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानंद समाना॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥
जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरें गृह आवा प्रभु सोई॥
परमानंद पूरि मन राजा। कहा बोलाइ बजावहु बाजा॥
गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृप द्वारा॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥
नंदीमुख सराध करि जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥

उल्लसित ब्रह्मको आँसू बहानेकी आज्ञा देकर कौसल्या अम्बाने सारी सृष्टिके सुखका मार्ग प्रशस्त कर दिया। इसे हम भक्ति-दर्शनके रूपमें देख सकते हैं। ब्रह्म सच्चिदानन्दघन हैं, किंतु दुर्भाग्यवश उनकी सृष्टिमें बहुधा दुःख और नैराश्यके ही दर्शन होते हैं। जीवको उस सम्बन्धकी रञ्चमात्र स्मृति नहीं है। जिसका *'ईस्वर अंस जीव अबिनासी।'* के रूपमें उल्लेख किया गया है, यथार्थ जीवनमें वह मिथ्या पदार्थोंके पीछे सुखकी आशासे भाग रहा है, क्षणिक आनन्दकी अनुभूतिके लिये वह जड़ विषयोंका क्रीतदास बन चुका है, जीवको इस दयनीय स्थितिसे उबारनेका क्या उपाय है? ज्ञानियोंने समस्याका समाधान देते हुए कहा—इसका एकमात्र उपाय है जीवको उसके स्वरूपकी स्मृति दिला देना। वह भ्रान्तिके कारण ही स्वयंको जड़, बद्ध और दुःखरूप मान बैठा है। वह उस राजकुमारकी भाँति है जो कोमल शय्यापर शयन करता हुआ, स्वप्नमें स्वयंको कारागारमें कैदीके रूपमें देखता है। उस कारागारसे मुक्त करनेके लिये उसे जगा देना ही यथेष्ट है। विनय-पत्रिकामें इसे बड़ी सुन्दर रीतिसे प्रस्तुत किया गया है—

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो। तबतें देह गेह निज जान्यो॥
मायाबस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रमतें दारुन दुख पायो॥
पायो जो दारुन दुसह दुख, सुख-लेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो।
भव-सूल, सोक अनेक जेहि, तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो॥
बहु जोनि जनम, जरा, बिपति, मतिमंद! हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ़! बिचारु लखि पायो कहीं॥

× × ×

आनँद-सिंधु मध्य तव बासा। बिनु जाने कस मरसि पियासा॥
मृग-भ्रम-बारि सत्य जिय जानी। तहँ तू मगन भयो सुख मानी॥
तहँ मगन मज्जसि, पान करि, त्रयकाल जल नाहीं जहाँ।
निज सहज अनुभव रूप तव खल! भूलि अब आयो तहाँ॥
निरमल, निरंजन, निरबिकार, उदार सुख तैं परिहर्‌यो।
निःकाज राज बिहाय नृप इव सपन कारागृह पर्‌यो॥

वाणीके द्वारा इस सिद्धान्तका प्रतिपादन जितना सरल है, व्यवहारमें यह उतना ही कठिन है। जन्म-जन्मान्तरसे व्यक्तिके संस्कार उसके अन्तःकरणमें इतने बद्धमूल हो गये हैं कि उनके विरुद्ध किया जानेवाला कोई भी उपदेश स्वीकार कर पाना उसके लिये सम्भव नहीं होता। इसीलिये स्वरूप-ज्ञानकी स्मृतिके पूर्व साधकके अन्तःकरणमें मुमुक्षा और वैराग्यकी आवश्यकताका वर्णन किया जाता है। मुमुक्षा और वैराग्यकी उत्पत्तिके लिये किये जानेवाले साधनोंकी सूची इतनी विस्तृत है, जिसे जानकर सरलतासे स्वरूप-ज्ञानका नारा व्यर्थ प्रतीत होने लगता है। यह मार्ग विरले अधिकारियोंके लिये ही उपयुक्त सिद्ध हो सकता है।

भक्ति-सिद्धान्त इससे भिन्न समाधान प्रस्तुत करता है। वह ईश्वरको ही अपने बीच आनेके लिये आमन्त्रित करता है। व्यक्ति ब्रह्मतक उठनेका प्रयास करे, इसके स्थानपर वह ईश्वरसे अनुरोध करता है कि वही उतरकर नीचे आ जाय। वह नीचे आकर हमारे सुख-दुःखकी समस्याका स्वयं अनुभव करे। वह वेदान्तका द्रष्टा ब्रह्म बनकर इस विश्वको उदासीन-भावसे देखता ही न रहे, अपितु जीवके आनन्दके मार्गमें जो बाधक तत्त्व हैं, उनके विरुद्ध जीवके सक्रिय संघर्षमें वह नेतृत्व करे।

दुःखकी परिस्थितियोंमें भी व्यक्तिको यह बात आश्वस्त बनाती है कि दुःखके विरुद्ध उसके संघर्षमें वह अकेला नहीं है। कोई ऐसा अपना भी है जो दुःखमें उसका भागीदार बननेको प्रस्तुत है। भक्तोंने ईश्वरको इसी रूपमें देखना चाहा। इसीलिये ईश्वरसे शिशु-लीलाके संकेतसे आँसू बहानेकी प्रार्थना की गयी। सच्चिदानन्दकी अपेक्षा जीवके प्रति संवेदनासे भरा हुआ वह ईश्वर जिसकी आँखें अश्रुसिक्त हैं, कहीं अधिक आकर्षक लगता है। यह केवल रुदन ही नहीं; अपितु ईश्वरकी ओरसे दिया गया जीवको आश्वासन भी है कि वह दुःख-सुखके संगीके रूपमें निरन्तर जीवके साथ है। इसीलिये मुस्कुराता हुआ ब्रह्म केवल कौसल्या अम्बाके लिये

सुखद सिद्ध हुआ, पर उसके रुदनने लक्ष-लक्ष जीवोंको उमंग और उल्लाससे भर दिया। उसके अधरोंका मंद या स्मित हास किसी प्रयासका परिणाम नहीं है। हँसी तो उसके होठोंपर सहज ही खेलती रहती है। किंतु रुदनके लिये तो उसे प्रयास करना पड़ा। जीवके प्रति कृपा करनेके इस प्रयासमें उसके नेत्र, अधर, कण्ठ सभीको श्रम करना पड़ा। वेदान्तका ब्रह्म श्रममुक्त है; क्योंकि उसमें किसी प्रकारका कर्तृत्व और आयास नहीं है। किंतु भक्तोंके भगवान् इससे भिन्न हैं। वे तो जीवके श्रमका अपहरण करनेके लिये ही आते हैं। अतः उन्हें तो श्रम करना ही होगा। ***'सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना'*** में उनके इसी व्रतकी सूचना मिलती है। ***'रोदन ठाना'*** शब्द लंबे रुदनकी सूचना देता है। जब रोना ही है तो उसमें कृपणता कैसी? ऐसा लगता है जैसे वह अपने रुदनकी ध्वनिको अयोध्याके घर-घरतक पहुँचा देना चाहता है। वह आमन्त्रित कर रहा है—आओ और इस अभूतपूर्व दृश्यको देखो। सच्चिदानन्दका यह रुदन सृष्टिकी अभूतपूर्व घटना थी।

यह वह रुदन था जिसने चारों ओर संगीतकी सृष्टि कर दी। भगवान् रामके समग्र चरित्रका दर्शन भी यही था। दूसरोंकी आँखका आँसू लेकर, दूसरोंकी पीड़ा भोगकर आनन्दका वितरण करना। दूसरोंका श्रम, पीड़ाका भार स्वयं ढोकर उन्हें विश्राम देना। वनके कण्टकाकीर्ण पथपर चलते हुए उनके सुकुमार श्रीचरण काँटोंसे बिंध जाते हैं। किंतु वे अपने पीछे अनुगमन करनेवालोंके चरणोंको काँटोंसे सुरक्षित रखते हैं। इसीलिये श्रीराघवेन्द्रके कंटकविद्ध श्रीचरणोंकी चर्चा रामचरितमानस, गीतावली और कवितावली आदिमें सर्वत्र उपलब्ध है। महात्मा शुकदेवको तो दण्डकवनके कंटकविद्ध श्रीरामभद्रके श्रीचरण भूलते ही नहीं। उन्हें तो ऐसा प्रतीत होता है कि स्वलोकको प्रस्थान करते हुए श्रीराघवेन्द्र दण्डक वनके काँटोंसे बिंधे हुए श्रीचरणोंको भक्तोंके हृदयमें स्थापित कर जाते हैं—

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः॥

(श्रीमद्भा० ९। ११। १९)

श्रीराघवेन्द्रके राज्याभिषेकके पश्चात् ब्राह्मण-रूपधारी वेदोंने श्रीरामभद्रके पादपद्मके तलवोंपर दृष्टि डाली। चकित दृष्टिसे उन्होंने देखा, उन चरणोंमें आज भी काँटे लगे हुए थे। करुणा-विकसित हृदयसे वेदोंने उन श्रीचरणोंकी वन्दना की—

ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

भावुक भक्त कंटकविद्ध श्रीचरणोंको देखकर सोचता है कि क्या संदेश छिपा हुआ है इन श्रीचरणोंमें! एक भक्तके अन्तःकरणमें भाव उदित हुआ, चरणोंमें अर्पित किये हुए श्रद्धा-सुमनको स्वीकार करनेके लिये तो संसारमें सभी प्रस्तुत हो जाते हैं; किंतु श्रीचरणोंमें बिंधे हुए, पीड़ा पहुँचानेवाले काँटोंको भी जो स्वयंसे पृथक् नहीं करता, उन मङ्गलमय भगवान्के पादपद्मोंको छोड़कर किसका आश्रय लिया जाय—

नाहिन भजिबे जोग बियो!
श्रीरघुनाथ समान आन को पूरन कृपा हियो।

दूसरे भक्तने पृथिवीको उलाहना देते हुए कहा—'तुम्हारा हृदय कितना निष्ठुर है। तुम्हारे ही भारका अपहरण करनेके लिये जो श्रीचरण वनपथपर चल रहे थे, उन्हींके प्रति तुम्हारा यह व्यवहार क्या कृतघ्नताकी पराकाष्ठा नहीं है? क्या तुम काँटोंको समेटकर कोमल नहीं बन सकती थीं। इन पादपल्लवोंकी कोमलताको थोड़ा स्मरण भी क्या तुम्हारे हृदयमें नहीं आया?'

पृथिवीकी आँखोंमें आँसू झलक पड़े और उसने कहा—'इन सुकुमार श्रीचरणोंको कष्ट न हो इस प्रश्नपर बहुत विचार करनेके बाद भी मुझे कोई उपाय न सूझा। मेरे पास जो सुकोमल सुमन थे, उसे मैंने बिछा देना चाहा; किंतु मृदुल चरणोंकी तुलनामें वे इतने कठोर थे कि मुझे प्रतीत हुआ कि उनसे भी इन्हें कष्ट ही होगा। तब मुझे लगा कि मिथ्या स्वागतका दर्प लेकर कष्ट पहुँचानेके स्थानपर अपने कंटकाकीर्ण हृदयको ही इनके सामने खोलकर रख दूँ। वस्तुतः मेरा अन्तर्हृदय तो काँटोंसे ही भरा हुआ है। यदि मैं उन्हें अन्तर्यामीसे ही छिपा लेती तो यह मेरी मूढ़ता ही होती! उन्होंने उन काँटोंको भी अपने श्रीचरणोंमें समा लिया। यह उनकी अकारण-करुणाका प्रत्यक्ष दर्शन था। प्यारे भक्त! मेरी कठोरताने यदि तुम्हें उन मङ्गलमय श्रीचरणोंकी कोमलता और करुणाका स्मरण कराया, तो मेरी दृष्टिमें काँटे भी सार्थक हो

गये। उनकी सुकुमारताकी तुलनामें जीवके पास है ही क्या जिन्हें वह अर्पित करता। किंतु युगोंतक कंटकविद्ध श्रीचरण जीवको आश्वस्त करते हैं—पुष्प न सही काँटोंको ही मुझे अर्पित कर दो। उन्हें भी मैं सहर्ष स्वीकार करूँगा। वीतराग शुकदेवको भी सम्भवतः श्रीचरणोंके काँटे यही संदेश सुना रहे थे और उन्होंने इसी झाँकीको हृदयमें बसा लिया।

प्रभुका यह रुदन भविष्यकी सारी लीलाका परिचायक था। उन्हें संसारकी पाठशालामें प्रथम पाठ रुदनका ही मिला। कौसल्या अम्बासे जिज्ञासा की—माँ ! तुम्हारी कौन-सी सेवा करूँ, जिससे तुम्हें सुख प्राप्त हो। तुमने शतरूपाके रूपमें विवेकके साथ सुखकी भी याचना की थी। तुम बताओ, तुम्हारे सुखकी क्या परिभाषा है ? यद्यपि तुमने कहा था कि आपके भक्तोंको जो सुख, विवेक और गति प्राप्त होती है, वही मुझे प्रदान कीजिये—

जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं॥
सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहिं कृपा करि देहु॥

किंतु प्रत्येक भक्तकी अपनी भावना होती है। उनके सुखकी परिभाषाएँ पृथक्-पृथक् होती हैं। अतः यह तो तुम्हें ही बताना होगा कि तुम्हें कैसे सुखी किया जा सकता है, माँने उनके रुदनमें सुखकी अनुभूति की।

विश्वामित्रने कहा—मेरी यज्ञ-रक्षाके लिये समस्त राज्यसुखोंका परित्याग कर पैदल प्रस्थान करना होगा। और उन्हें सुखी करनेके लिये श्रीराघवेन्द्र लक्ष्मणके साथ सहर्ष चल पड़े। कैकेयी अम्बाको लगा कि उन्हें सुखी करनेका एकमात्र यही मार्ग है कि श्रीराघवेन्द्र उदासीन तपस्वीका वेष धारण कर वनमें निवास करें—

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनबासी॥

और उनकी प्रसन्नताके लिये प्रभु तत्काल वल्कल-वस्त्र धारण कर लेते हैं। समस्त राजकीय वैभवको छोड़कर क्षणभरमें वे वन-पथपर चल पड़े—

रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननिहि सिरु नाई॥

दूसरोंको सुखी बनाना ही उनके जीवनका व्रत है। उसके लिये वे बड़ा-से-बड़ा बलिदान करनेके लिये सदा प्रस्तुत रहते हैं। इसीलिये प्रभुकी रुदन-वेलामें तुलसी आनन्दमग्न होकर गाने बैठ गये—पुकार उठे—

सुनि बचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुरभूपा।
यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥

ज्ञानी कहता है, रुदन भी उनके आनन्दकी अभिव्यक्ति है। यद्यपि सृष्टिमें रुदन दुःखकी ही अभिव्यक्ति माना जाता है। किंतु वह रुदन दुःखका प्रतीक तब है, जब उसके पीछे कामना, अभाव, ममत्व अथवा अज्ञान हो। सच्चिदानन्द ब्रह्ममें इसका प्रश्न ही नहीं उठता। उसमें दुःख-सुखकी मान्यताओंका सर्वथा अभाव है। आनन्द उसका सहज स्वभाव है। सामनेवालेकी आकांक्षाको पूर्ण करनेके लिये स्वीकार किया गया रुदन अभिनय मात्र ही है। इस रुदनके पीछे भी उसकी मुस्कुराहट छिपी हुई है। श्रीसीताजीके वियोगमें रुदन करते हुए श्रीराघवेन्द्रको देखकर भगवान् शिव पुलकित हो उठे थे और जय सच्चिदानन्द कहकर उन्होंने दूरसे ही ब्रह्मके चरणोंमें नमन किया था—

जय सच्चिदानंद जग पावन। अस कहि चले मनोज नसावन॥

दक्षपुत्री सती नमनके साथ 'सच्चिदानन्द' शब्द सुनकर स्तब्ध रह गयीं। उनके अन्तःकरणमें प्रश्न मुखरित हुआ—'यह कैसा सच्चिदानन्द है जो प्रियाके वियोगमें व्याकुल होकर विलाप कर रहा है, जो अपनी पत्नीको ही खोज नहीं पा रहा है।' सर्वज्ञता और आनन्दसे शून्य एक साधारण राजकुमारको भगवान् भूतभावन शिवने गद्गद होकर क्यों प्रणाम किया। किसी भी तर्कसे उनका अन्तःकरण संतुष्ट नहीं होता। वस्तुतः यह शिव और सतीकी दृष्टिका पार्थक्य था। इसी अन्तरकी ओर इंगित करनेके लिये गोस्वामीजीने भगवान् शिवके लिये उपर्युक्त पंक्तिमें ***'मनोज नसावन'*** शब्दका प्रयोग किया है। शिवकी तृतीय दृष्टिके समक्ष काम क्षणभरमें जलकर भस्म हो गया था। शिवकी यह तृतीय दृष्टि वस्तुतः ज्ञानदृष्टि है, जिसके समक्ष मिथ्या टिक ही नहीं सकता है। वे इस रुदनकी लीलाको न केवल दो नेत्रोंसे अपितु तृतीय दृष्टिसे भी देखते हैं। सतीके पास उस दृष्टिका सर्वथा अभाव है। उनके पास व्यावहारिक विश्वको देखनेके लिये जो दो नेत्र उपलब्ध हैं, उन्हीं नेत्रोंसे वे सच्चिदानन्दकी प्रामाणिकताको परखना चाहती हैं। व्यावहारिक विश्वमें उन्होंने आँसूको सर्वथा दुःखकी अभिव्यक्तिके रूपमें देखा है। इसलिये श्रीरामभद्रके आँसुओंमें

भी उन्हें दुःखका दर्शन हो रहा है। कामारिकी तृतीय दृष्टि सारी लीलाको एक भिन्न-रूपमें ग्रहण करती है। ब्रह्ममें संयोग और वियोग कैसे सम्भव है ? उससे पृथक् कुछ है ही नहीं। वहाँ खोने और पानेका प्रश्न ही नहीं है। सर्वज्ञताकी अपेक्षा भी यहाँ नहीं है क्योंकि वह स्वयं 'सर्व' है। ज्ञाता और ज्ञेयकी सत्ता वहाँ पृथक् है ही नहीं। आँसू और हास्य दुःख और सुखके अभिव्यंजक हैं। इस मिथ्या मान्यताका खण्डन करनेके लिये ही आज ब्रह्म हास्यके स्थानपर रुदनको अभिव्यक्त करता है। मानो आँसुओंसे यह प्रश्न उच्चरित हो रहा है कि जब सर्वके रूपमें हास्य और रुदन दोनों वही है, तब उन्हें पृथक्-पृथक् दुःख और सुखके रूपमें देखना कहाँतक उपयुक्त है ? दूसरे रूपमें इसे यों कह सकते हैं यदि यह लीला है तब तो रुदनमें दुःखकी अभिव्यक्ति अभिनयमात्र है। और वह आँखोंसे आँसू बहाता हुआ भीतर-ही-भीतर सतीका संशय देखकर मुस्कुरा रहा है। इसे वह अपने नाट्यकी सफलताका प्रमाण मानकर आनन्दित हो रहा है। ऐसे कौतुकी ब्रह्मकी लीला देखकर शिवका आनन्दित होना स्वाभाविक था। ठीक इसी तरह शिशु राघवेन्द्रका रुदन भी ज्ञानियोंके अन्तःकरणमें कौतूहल और आनन्दकी सृष्टि करता है।

वैराग्यनिष्ठ साधकोंने इन आँसुओंसे वैराग्यनिष्ठाकी शिक्षा प्राप्त की। उपनिषदोंने कहा **'प्रियं त्वा रोत्स्यति'**—प्रिय ही तुम्हें रुलायेगा। आज इस रुदनमें यह सत्य साकार हो उठा। माँसे अधिक प्रिय कौन होगा ! पर वह भी रुदनमें आनन्दका अनुभव करती है। व्यक्ति बहुधा सोचता है कि प्रिय हमें सुख देगा, इसलिये वह अधिक लोगोंसे रागका सम्बन्ध जोड़ लेता है। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि उससे द्वेष करनेवाले उसे दुःख देना चाहते हैं। पर जीवनका कटु यथार्थ यही है कि विरोधियोंकी अपेक्षा प्रियजन ही हमें अधिक पीड़ा पहुँचाते हैं। और यह स्वाभाविक ही है। प्रियजन हमारे समीप होते हैं और विरोधी हमसे दूर। अतः प्रियजनोंकी चेष्टासे हम प्रतिक्षण प्रभावित होते रहते हैं। यह ठीक है कि विरोधी हमें दुःख देना चाहता है, पर उसे लेने-न-लेनेमें हम स्वतन्त्र हैं। किंतु प्रियसे हम रागबन्धनमें बँधे होते हैं। इसलिये वहाँ लेन-देनमें पूरी स्वतन्त्रता नहीं है। प्रिय हमें सुख पहुँचाना चाहता है यह यथार्थ सत्य नहीं है। यदि वह सुख देता है तो इस आशासे कि बदलेमें हम उसे और भी अधिक सुख देंगे। और दोनों ओर सुखके प्यासकी यह प्रवृत्ति धीरे-धीरे छीना-झपटीमें बदल जाती है। हमारा प्रिय ही हमसे अधिकाधिक सुख छीन लेना चाहता है। अपनत्वकी अनुभूतिके कारण इस लूटको डाकेका नाम भी नहीं दे पाते। आन्तरिक पीड़ाको किसीसे कहनेमें भी हमें संकोचका अनुभव होता है। अतः दुःख-सुखसे मुक्त होनेके लिये केवल द्वेषका ही नहीं, रागका भी परित्याग करना होगा।

ब्रह्मके इस रुदनमें ज्ञान, वैराग्य, भक्ति और मर्यादाके सभी संकेत छिपे हुए हैं। गोस्वामीजीने इन आँसुओंमें अपनी दीनताके ही अनुरूप संदेश पा लिया। मुस्कुराते हुए बालकको गोदमें लेनेकी आवश्यकताका अनुभव माँको नहीं होता है, किंतु रुदन माँको गोदीमें लेनेके लिये बाध्य कर देता है। बालकके रुदनकी ध्वनि दूरसे भी माँको शीघ्रतासे आनेके लिये बाध्य कर देती है। यहाँ भी तो यही हुआ। मुस्कुराते हुए श्रीहरि सामने खड़े रहनेके लिये बाध्य थे, किंतु रुदन करता हुआ 'शिशु ब्रह्म' कौसल्या अम्बाकी गोदमें था। कौसल्या अम्बा ही नहीं, अन्य माताएँ तो अपने-अपने भवनोंसे रुदनकी ध्वनि सुनकर शीघ्र-से-शीघ्र राघवेन्द्रके संनिकट पहुँच गयीं। अपनी-अपनी गोदमें बालकको ले लेनेके लिये व्यग्र हो गयीं।

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। संभ्रम चलि आई सब रानी॥

(रा० च० मा० १। १९३। १)

गोस्वामीजीने सोचा—'यदि जीवको भी अनन्त-वात्सल्यमयी माँकी गोदी प्राप्त करना है तो उसे आँसुओंका आश्रय लेना होगा।'

आपु आपने तें अधिक जेहि प्रिय सीताराम।
तेहि के पगकी पानहीं तुलसी तनु को चाम॥
तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥

मंगल भवन अमंगल हारी

(डॉ॰ श्रीविन्ध्येश्वरीप्रसादजी मिश्र 'विनय')

सगुण-साकार ब्रह्मकी उपासनामें भगवान्‌के नाम, रूप, लीला तथा धाम—इन चारोंको तात्त्विकदृष्टिसे परस्पर अभिन्न तथा पृथक्-पृथक् रूपसे भी पूर्ण सच्चिदानन्द ही माना जाता है।

रामस्य नाम रूपं च लीला धाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं सर्वं सच्चिदानन्दविग्रहम्॥

(वसिष्ठसंहिता)

इसलिये इनमेंसे किसी भी एककी शरण ले लेनेसे ही उपासकका कल्याण हो जाता है तथा उसी एककी डोरीसे शेष तीनों भी खिंचकर चले आते हैं—यह बात सम्पूर्ण भक्ति-साहित्य—श्रीरामायणादि इतिहास, श्रीमद्भागवतादि पुराण, वसिष्ठ-गर्गादिकृत संहिता-ग्रन्थ, नारदादिकृत पञ्चरात्र तथा भक्तिसूत्रोंके साथ श्रीभगवन्नाम-कौमुदी, भक्तिरसायन, भक्तिरसामृतसिन्धु-सदृश प्रबन्धों एवं प्राचीन-अर्वाचीन संतोंके द्वारा लिखे गये साहित्यसे तथा भक्तोंके स्वानुभवसे पूर्णतया सिद्ध और प्रसिद्ध है।

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भी अपने श्रीरामचरितमानस तथा अन्य ग्रन्थोंमें इस सिद्धान्तको जनकल्याण-हेतु अनेक बार प्रतिपादित किया है।

उपासक एवं उपासनाकी दृष्टिसे सभी साधनोंमें सर्वसुलभ एवं सरल साधन श्रीभगवन्नाम ही है। भगवान्‌के नामका जप तथा संकीर्तन साधकको क्रमशः भगवद्रूप तथा लीलाके रसका आस्वादन कराते हुए शरीर रहते ही भगवद्धाममें प्रतिष्ठित कर देता है—यही भक्तकी जीवन्मुक्ति है। इसका आधार श्रीहरिका पावन नाम है। इसीलिये महानुभावोंने इसे जगन्मङ्गल कहकर सम्पूर्ण साधनोंसे उत्कर्षशील सिद्ध किया है—

अंहः संहरदखिलं सकृदुदयायैव सकललोकस्य।
तरणिरिव तिमिरजलधिं जयति जगन्मङ्गलं हरेर्नाम॥

(भगवन्नामकौमुदी)

अर्थात् 'सूर्यके समान एक बार उदित होते ही जो अन्धकारके सदृश फैले संसारके अपार पाप-पारावारको नष्ट कर देता है, वह समग्र विश्वका कल्याण करनेवाला श्रीभगवन्नाम सर्वोत्कर्षशाली है।'

कलि-पावनावतार श्रीगोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें प्रभुके नाम, रूप, लीला और धाम—इन चारों विग्रहोंको समानरूपसे कलि-कल्मषजन्य अमङ्गलके विनाशक और भगवत्प्रीतिरूप परम माङ्गल्यके सम्पादककी संज्ञा प्रदान की है, यथा—

नामके लिये—

मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

रूपके लिये—

मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

लीलाके लिये—

राम कथा जग मंगल करनी॥

तथा—

मंगल करनि कलि मल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की।

धामके लिये—

सकल सिद्धिप्रद मंगल खानी॥

× × ×

मम धामदा पुरी सुख रासी॥

फिर भी नामके प्रति उनका अधिक अभिनिवेश व्यक्त हुआ है। इसका प्रमाण 'मानस'के बालकाण्डमें १८वें दोहेसे लेकर २७ वें दोहेके बादकी दो चौपाइयोंतक विस्तृत—'श्रीरामनाममाहात्म्य' तथा अन्य अनेक प्रसंग हैं।

पूर्वोक्त 'चतुष्टय'के अन्तर्गत नाम और रूप—ये दो ईश्वरकी मुख्य उपाधियाँ हैं। गोस्वामीजीके अनुसार इनमें 'कौन छोटी या बड़ी है'—इसका निर्णय तो नहीं किया जा सकता, तथापि रूपका ग्रहण नामके बिना सम्भव नहीं है। इसलिये साधककी दृष्टिसे प्रमुख साधन भगवन्नाम ही है—

नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी॥
को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेदु समुझिहहिं साधू॥
देखिअहिं रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना॥
रूप बिसेष नाम बिनु जानें। करतल गत न परहिं पहिचानें॥

(रा॰ च॰ मा॰ १।२१।२—५)

मानसमें ***'मंगल भवन अमंगल हारी'*** इस अर्धालीको

अलग-अलग प्रसंगोंमें ज्यों-का-त्यों दो बार पढ़ा गया है। पहला प्रसंग है श्रीराम-नामके वैशिष्ट्यका—

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा॥
मंगल भवन अमंगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी॥

(रा० च० मा० १। १०। १-२)

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरे काव्यमें अन्य कोई गुण हो या न हो, किंतु जगत्प्रसिद्ध एक महान् गुण यह है कि इसमें श्रीरघुवीरका अत्यन्त उदार, पवित्र तथा वेद-पुराणादिका सार-सर्वस्व नाम बार-बार कीर्तित हुआ है। यह श्रीरामनाम समस्त मङ्गल अर्थात् कल्याणोंका आलय तथा अमङ्गलोंका हरणकर्ता है, 'त्रिपुर' को जीतनेवाले भगवान् शिव अपनी प्रिया उमाके साथ इसका जप किया करते हैं।

दूसरा संदर्भ है भगवान् शिवके द्वारा अपने इष्टदेव बालक रामकी वन्दनाका—

झूठेउ सत्य जाहि बिनु जानें। जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचानें॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई। जागें जथा सपन भ्रम जाई॥
बंदउँ बालरूप सोइ रामू। सब सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मंगल भवन अमंगल हारी। द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी॥

(रा० च० मा० १। ११२। १—४)

शब्दार्थ-संनिवेश-प्रवीण तथा रससिद्ध महाकवि श्रीगोस्वामीजीकी दो भिन्न प्रसंगोंमें एक ही अर्धालीकी यह आवृति अशक्ति या अनवधानताजन्य नहीं मानी जा सकती, उनका यह प्रयोग निश्चय ही तात्त्विक-विशेषतासे मण्डित है। हमारे विचारसे श्रीगोस्वामिपाद इसके द्वारा 'शब्दब्रह्म' तथा 'अर्थब्रह्म'की तात्त्विक एकताको सम्यक्तया प्रतिपादित करते हुए भक्तोंके हृदयमें नामात्मक शब्दब्रह्मको सुप्रतिष्ठित करना चाहते हैं। अर्थात् उमाके साथ भगवान् त्रिपुरारि जिसका जप करते हैं, वह रेफ, अकार, मकारादि वर्णघटित 'राम'-नाम तथा अयोध्याधीश महाराज श्रीदशरथके प्राङ्गणमें विहरणशील लोकाभिराम पाणिपादादिसंवलित श्रीरामरूप किंचिन्मात्र भी भिन्न नहीं हैं, इसलिये एक ही विशेषण-पद्धति ***'मंगल भवन अमंगल हारी'*** के द्वारा इनका निरूपण किया गया है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि यदि किसी साधकने वाचिक, उपांशु या मानस किसी भी पद्धतिसे श्रीरामनामका जप किया तो उसी क्षण परममङ्गलालय तथा निखिलजगदघध्वंसी श्रीहरि उसे प्राप्त हो गये। तत्त्वदृष्टिसे भगवन्नाम-जपकर्ता तथा भगवद्रूपके प्रत्यक्ष द्रष्टामें कोई अन्तर नहीं है। नामजपमें साधकोंको जो एक प्रकारकी परोक्षता अनुभूत होती है, उसका कारण है उनका सत्त्व, रजस् और तमस्—इन तीन गुणोंके अधीन रहते हुए संदेह-वृत्तिसे घिरा रहना। भगवान् शंकर त्रिपुरारि हैं—'मयदानव' द्वारा रचे हुए असुरोंके तीन पुरोंको दग्ध करनेवाले हैं—यह आधिदैविक तथ्य तो है ही, किंतु आध्यात्मिक दृष्टिसे वे प्रकृतिके इन गुणोंपर विजय प्राप्त करनेवाले सिद्ध उपासकके भी प्रतीक हैं। संस्कृतका 'उ'-निपात 'संदेह-अर्थ'का व्यञ्जक है और 'मा'-यह अव्यय निषेधार्थक है, अतः 'उमा'का आध्यात्मिक अर्थ हुआ, ऐसी विशुद्ध चित्तवृत्ति, जिसमें भगवान्‌के प्रति किसी भी प्रकारका संदेह शेष नहीं रह गया। रामचरितमानसमें दक्षकुमारीकी[1] 'उमा' के रूपमें स्वरूप-परिवर्तनकी कथा इसी तथ्यको स्पष्ट करती है। गोस्वामीजीके यहाँ 'उमा' शब्द बुद्धिकी परम श्रद्धामयता तथा निःसंदिग्धताका प्रतीक[2] है, अतः यदि कोई साधक तीनों गुणोंको जीतकर (अर्थात् सत्त्वगुणकी वृत्ति-प्रसन्नता,

---

१-मानसमें 'दक्ष' भौतिक चातुर्य या 'तर्क' के प्रतीक हैं तथा 'दक्षसुता या दक्षकुमारी' आदि शब्द बुद्धिके संशय-तर्कादि-संवलित-स्वरूपकी व्यञ्जना कराते हैं। जैसे—

इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छसुता कहुँ नहिं कल्याना॥
मोरेहु कहें न संसय जाहीं। बिधि बिपरीत भलाई नाहीं॥ (मानस १। ५२। ५-६)

२-कुछ उदाहरण, यथा—

होइ न मृषा देवरिषि भाषा। उमा सो बचनु हृदयँ धरि राखा॥ (१। ६८। ४)
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं। मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥ (१। ६९। २)
मातु पितहि बहुबिधि समुझाई। चलीं उमा तप हित हरषाई॥ (१। ७३। ७)
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई॥ (१। १११। ६)
उमा प्रस्न तव सहज सुहाई। सुखद संतसंमत मोहि भाई॥ (१। ११४। ६)

रजोगुणकी वृत्ति-कर्मप्रवृत्ति तथा तमोगुणकी प्रमादालस्य-निद्रादि वृत्तियोंसे ऊपर उठकर) निःसंदिग्ध-चित्तवृत्तिसे श्रीरामनामका जप करे तो शब्दब्रह्मकी रूप-लीलात्मिका अर्थपरिणति उसे अप्राप्त नहीं रह सकती—

हर हियँ राम चरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए॥
श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानंद अमित सुख पावा॥

(रा० च० मा० १। १११। ७-८)

दूसरे संदर्भमें मानसकार बालरूप श्रीरामको ***'दसरथ अजिर बिहारी'*** कहकर आध्यात्मिक दृष्टिसे अर्थब्रह्मके अनुभवके लिये सर्वेन्द्रियवृत्तिसमर्पणका संकेत करते हैं। 'रथ' शब्द विषय-प्रापक या उनकी साधनरूपा इन्द्रियोंको लक्षित करता है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ—ये दस साधन या 'रथ' जिसके पास हों वह जीव ही दशरथ है—**'दशसंख्याका इन्द्रियरथा यस्यासौ दशरथो जीवः'**। यही अयोध्याका अधिपति है। आध्यात्मिक अयोध्या—**'अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या'** (श्रुति) अर्थात् यह शरीर ही है। 'अजिर' शब्द बाह्यरूपसे तो गृहाङ्गणका वाचक है, किंतु यहाँ जीवके अन्तःकरणको उपलक्षित करता है। सारांश यह है कि जीवकी दसों इन्द्रियाँ जब भगवत्सम्पर्क प्राप्त कर लेंगी तब वह अर्थब्रह्म उसके हृदयमें क्रीड़ा करने लग जायगा। किंतु जबतक वह ***'दसरथ अजिर बिहारी'*** अर्थात् वृत्त्यारूढ नहीं होगा, तबतक कृपा या अनुकम्पा-तत्त्वका भी उदय नहीं हो सकता, इसलिये कृपाकी प्रार्थना प्रभुके इसी रूपसे की जा सकती है—

'द्रवउ सो दसरथ अजिर बिहारी।'

आशय यह है कि शब्दब्रह्म 'राम'-नाम ही अनवरत साधनाके फलस्वरूप ललितलीलाविग्रहकृपामय प्रभुरूपताको प्राप्त करता है। आपाततः अन्तर दिखलायी पड़ते हुए भी तत्त्वतः इन दोनोंमें कोई भेद नहीं है, इसीलिये दोनोंके लिये एक-जैसा बल्कि केवल एक यही विशेषण समीचीन हो सकता है, और वह है मानसका यह सिद्ध मन्त्र—

'मंगल भवन अमंगल हारी।'

धर्मके परम आदर्शस्वरूप भगवान् श्रीराम और उनकी दिनचर्या

भगवान् श्रीराम अनन्त-कोटि-ब्रह्माण्ड-नायक परम पिता परमेश्वरके अवतार थे और उन्होंने धर्मकी मर्यादा रखनेके लिये भारतभूमि अयोध्यामें राजा दशरथके यहाँ पुत्ररूपमें अवतार लिया था। उस समय राक्षसोंका नग्न बीभत्स रूप इतना प्रचण्ड हो गया कि ऋषि-मुनियों, गौ एवं ब्राह्मणोंका जीवन खतरेमें पड़ गया था। जहाँ-जहाँ कोई शास्त्र-विहित यज्ञ-कर्म आदि किये जाते थे, राक्षसगण उन्हें विध्वंस करनेके लिये सदा तत्पर रहते थे। राक्षसोंका राजा रावण भारत-भूमिपर अपना एकच्छत्र राज्य स्थापित करनेके लिये चारों ओर जाल फैला रहा था ऐसी स्थितिमें देवताओंके आग्रह एवं अनुनय-विनयके फलस्वरूप भगवान् स्वयं अपने अंशोंसहित राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्नके रूपमें अवतीर्ण हुए।

भगवान् श्रीरामके आदर्श चरित्रका विवरण हम भिन्न-भिन्न रामायणोंमें पाते हैं, जिनमें वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण तथा परम भक्त गोस्वामी तुलसीदासरचित रामचरितमानस प्रमुख हैं। इस निबन्धका आधार जिसमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दिनचर्याका दिग्दर्शन कराया गया है, गोस्वामी तुलसीदासकृत रामचरितमानस है।

साधारण बालकोंकी तरह बालकपनमें अपने छोटे भाइयों एवं बाल-सखाओंके साथ भगवान् श्रीराम सरयूके तटपर कन्दुकक्रीडा एवं अन्य खेलोंमें ऐसे मस्त हो जाते थे कि उन्हें अपने खाने-पीनेकी भी सुध नहीं रहती थी—

भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा॥
कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुकु ठुमुकु प्रभु चलहिं पराई॥

(रा० च० मा० १। २०३। ६-७)

अपने भाइयोंके साथ वेद-पुराणकी चर्चा करना, माता-पिता, गुरुके आज्ञानुसार प्रतिदिन दैनिक कार्यमें लग जाना उनका नित्यका कार्यक्रम था—

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई॥
प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषइ मन राजा॥

(रा० च० मा० १। २०५। ५—८)

विश्वामित्र मुनिके यज्ञकी रक्षा भगवान् श्रीरामने किस

तत्परतासे की तथा राक्षसोंके भयसे उन्हें कैसे निर्भय किया जब हम उसकी झाँकी रामचरितमानसमें पाते हैं तो उनकी वीरता, धीरता एवं कार्य-तत्परताकी ओर हमारा ध्यान बरबस आकृष्ट हो जाता है और उन्हें हम धर्मके परम आदर्शके रूपमें पाते हैं।

प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निर्भय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि झारी। आपु रहे मख कीं रखवारी॥
सुनि मारीच निसाचर क्रोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा॥
पावक सर सुबाहु पुनिं मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देव मुनि झारी॥
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि बिप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे बिप्र जद्यपि प्रभु जाना॥

(रा० च० मा० १। २१०। १—८)

विश्वामित्र मुनिके यज्ञकी पूर्णाहुतिके पश्चात् भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणजी दोनों भाई मुनिके साथ धनुषयज्ञ देखनेके लिये जनकपुर जाते हैं। रास्तेमें गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याका, जो शापवश पत्थर हो गयी थी, उद्धार प्रभुने अपने चरणकमलकी धूलिके स्पर्शसे किया। भगवान् श्रीराम आखिर पतितपावन ही तो थे।

जनकपुरमें गुरुकी सेवा करना भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणजीका दैनिक कार्यक्रम था। उनकी दिनचर्यामें भक्त-वत्सलता, नम्रता एवं संकोचको भी स्थान रहता था। नगर-दर्शनके लिये जब लक्ष्मणजीके हृदयमें विशेष लालसा जाग्रत् हो गयी, तब भगवान् श्रीराम गुरु विश्वामित्र मुनिसे किस संकोच एवं विनयके साथ आज्ञा मागते हैं, देखिये—

लखन हृदयँ लालसा बिसेषी। जाइ जनकपुर आइअ देखी॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाहीं। प्रगट न कहहिं मनहिं मुसुकाहीं॥
राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हियँ हुलसानी॥
परम बिनीत सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई॥
नाथ लखनु पुरु देखन चहहीं। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहहीं॥
जौं राउर आयसु मैं पावौं। नगर देखाइ तुरत लै आवौं॥
सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥

(रा० च० मा० १। २१८। १—८)

नगर तथा धनुषयज्ञशाला देखते-देखते जब देर हो गयी तो भगवान् श्रीरामके मनमें भय हो गया कि उधर गुरुजी कहीं अप्रसन्न न हो जायँ। दोनों भाई शीघ्र ही गुरुजीके पास वापस आ गये।

संध्याके समय संध्यावन्दन और वेद, पुराण, इतिहासकी चर्चा उनका दैनिक कार्यक्रम था। किस श्रद्धा, निष्ठा एवं भक्तिसे वे गुरुजीकी सेवा करते थे, उसकी झाँकी गोस्वामीजीके ही शब्दोंमें—

मुनिबर सयन कीन्हि तब जाई। लगे चरन चापन दोउ भाई॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी॥
तेइ दोउ बंधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥

(रा० च० मा० १। २२६। ३-६)

प्रातःकाल गुरुजीके जागनेके पहले ही भगवान् श्रीराम जाग जाते थे तथा गुरुजीकी सेवामें लग जाते थे—

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥

(रा० च० मा० १। २२७। १-२)

भगवान् श्रीराम धर्मके परम आदर्शस्वरूप थे और उनके मनमें एक सुन्दर प्रेमपूर्ण पछतावा तब हुआ जब कि उन्हें पता चला कि उनके राज्याभिषेककी तैयारी हो रही है। विश्व-इतिहासमें यह एक बेजोड़ उदाहरण है। उन्होंने अपने हृदयका उद्गार प्रकट किया—

जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनबेध उपबीत बिआहा। संग संग सब भए उछाहा॥
बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू॥

(रा० च० मा० २। १०। ५—७)

पर जब दूसरे दिन वनवासकी सूचना मिली तब उनको तनिक भी ग्लानि न हुई, बल्कि परम प्रसन्नता हुई कि पिताके वचनकी रक्षाके लिये वे चौदह वर्षके लिये वन जा रहे हैं। कालिदासने रघुवंशमें यहाँतक लिखा है कि वनवासकी सूचना पानेपर जब लोगोंने देखा कि भगवान् श्रीरामके चेहरेपर किसी भी तरहकी म्लानता न आयी तो वे लोग आश्चर्यचकित हो उनका दिव्य सुन्दर मुखमण्डल देखते ही रह गये।

भगवान् श्रीरामने अपनेको बड़ा ही भाग्यशाली समझा

और उस अवसरपर कहा—

सुनु जननी सोइ सुतु बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

(रा० च० मा० २।४१।७-८)

चित्रकूटमें वासके समय भगवान् श्रीरामकी दिनचर्यामें ऋषि-मुनियोंके साथ धर्म-चर्चा एवं सत्संगका कार्यक्रम रहता था। पत्नी और भ्राताको भी सुखी रखनेकी चेष्टा करते रहते थे—

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहहीं। सोइ रघुनाथ करहिं सोइ कहहीं॥
कहहिं पुरातन कथा कहानी। सुनहिं लखनु सिय अति सुखु मानी॥

(रा० च० मा० २।१४१।१-२)

वनवासकालमें ऋषि-मुनियोंसे मिलना-जुलना तथा राक्षसोंका संहार प्रभु श्रीरामकी दिनचर्याका प्रधान अङ्ग था। पृथ्वीको राक्षसोंसे रहित करनेके लिये उन्होंने मुनियोंके समक्ष प्रतिज्ञा की और उसका पालन अन्ततक किया—

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥

(रा० च० मा० ३।९)

भगवान् श्रीरामके वन-गमनकालमें अनेक प्रसंग—जैसे वाल्मीकिजीसे भेंट, अत्रिसे मिलन, शरभङ्ग तथा सुतीक्ष्णजीसे मुलाकात, अगस्त्यजीके आश्रममें प्रभुका पदार्पण, जटायुका उद्धार, शबरीजीसे नवधा भक्तिका वर्णन, सुग्रीवसे मित्रता, बालिवध, लक्ष्मणजीके साथ सत्संग तथा नारद-राम-संवाद आदि आते हैं, जिनके माध्यमसे हमें भगवान् श्रीरामकी दिनचर्या-सम्बन्धी अनेक बातें मालूम होती हैं और वे हमारे जीवनको धर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा भगवद्भक्तिकी ओर अग्रसर करती हैं।

सीताहरणके पश्चात् प्रभु श्रीरामने किष्किन्धामें पर्वतके शिखरपर वास किया और वहाँ उनकी दिनचर्याकी प्रधानता रही लक्ष्मणजीके साथ सत्संग—

फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥
कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृपनीति बिबेका॥

(रा० च० मा० ४।१३।६-७)

रावणका वध कर सीतासहित प्रभु लंकासे अयोध्या लौटते हैं। अयोध्यामें दिनचर्याकी झाँकी गोस्वामीके शब्दोंमें—

प्रातकाल सरऊ करि मज्जन। बैठहिं सभाँ संग द्विज सज्जन॥
बेद पुरान बसिष्ट बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं॥
अनुजन्ह संजुत भोजन करहीं। देखि सकल जननीं सुख भरहीं॥

(रा० च० मा० ७।२६।१-३)

प्रजापालनके लिये भगवान् विशेष सचेष्ट एवं सतर्क रहते हैं। राजसभामें सनकादि तथा नारद आदि ऋषि प्रतिदिन आते हैं और उनसे वेद-पुराण तथा इतिहासकी चर्चा करते हैं। भगवान् श्रीरामकी दिनचर्याकी अन्तिम झाँकी हम अयोध्याकी अमराईमें पाते हैं—

हरन सकल श्रम प्रभु श्रम पाई। गए जहाँ सीतल अवँराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥
मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल भरई॥

(रा० च० मा० ७।५०।५—७)

धर्मके परम आदर्शस्वरूप भगवान् श्रीरामकी दिनचर्यासे हमें प्रेरणा मिलती है, जो जीवनको श्रद्धा, भक्ति एवं पवित्र प्रेमकी भावनासे ओतप्रोत कर देती है।

भगवान् श्रीराम धर्मावतार हैं। उनके पावन चरितसे शिक्षा ग्रहण कर हमको तदनुरूप व्यवहार करना चाहिये। अच्छा हो यदि हम उनकी दिनचर्यानुकूल अपनी दिनचर्या बनावें।

भगवान् श्रीरामजीकी दिनचर्याका आनन्दरामायणके राज्यकाण्डके १९वें सर्गमें भी बड़े विस्तारसे वर्णन है। श्रीरामदासके द्वारा महर्षि वाल्मीकिजी अपने शिष्यको उपदेश करते हैं—

शृणु शिष्य वदाम्यद्य रामराज्ञः शुभावहा।
दिनचर्या राज्यकाले कृता लोकान् हि शिक्षितुम्॥
प्रभाते गायकैर्गीतैर्बोधितो रघुनन्दनः।
नववाद्यनिनादांश्च सुखं शुश्राव सीतया॥
ततो ध्यात्वा शिवं देवीं गुरुं दशरथं सुरान्।
पुण्यतीर्थानि मातॄश्च देवतायतनानि च॥

(आ० रा०, राज्यकाण्ड १९।१—३)

भगवान् श्रीरामजी नित्य प्रातःकाल चार घड़ी रात्रि शेष रहते मङ्गलगीत आदिको श्रवणकर जागते थे। फिर शिव, देवी, गुरु, देवता, पिता, तीर्थ, माता, देव-मन्दिर तथा

पुण्यक्षेत्रों एवं नदियोंका स्मरण करते थे, फिर शौचादिके पश्चात् दन्त-शुद्धि करते थे। इसके अनन्तर कभी घरपर और कभी सरयूमें जाकर स्नान करते थे।

स्नात्वा यथाविधानेन ब्रह्मघोषपुरःसरम्॥
प्रातःसंध्यां ततः कृत्वा ब्रह्मयज्ञं विधाय च।

(आ० रा०, राज्यकाण्ड १९। १०-११)

ब्राह्मणोंके वेदघोषके साथ विधिवत् स्नान करते थे। तदनन्तर प्रातःसंध्या तथा ब्रह्मयज्ञ करके ब्राह्मणोंको दान देकर महलमें आकर हवन करके शिवपूजन करते थे और इसके बाद कौसल्या आदि तीनों माताओंका पूजन करते थे। फिर गौ, तुलसी, पीपल आदि एवं सूर्यनारायणका पूजन करते थे। इसके पश्चात् सद्ग्रन्थों तथा गुरुदेवका पूजन करके उनके मुखसे पुराण-कथा श्रवण करते थे और तब भ्राता एवं ब्राह्मणोंके साथ कामधेनु-प्रदत्त दुग्धसे अग्निपर बना हुआ उपहार ग्रहण करते थे।

तदनन्तर वस्त्रादि तथा अस्त्र-शस्त्र धारणकर वैद्य तथा ज्योतिषियोंका स्वागत कर वैद्यसे नाड़ी-परीक्षण कराते तथा ज्योतिषियोंसे नित्य पञ्चाङ्ग श्रवण करते थे, क्योंकि—

'लक्ष्मीः स्यादचला तिथिश्रवणतो वारात् तदाऽयुश्चिरम्...'

—के अनुसार तिथिके श्रवणसे लक्ष्मी, वारसे आयु-वृद्धि, नक्षत्रसे पापनाश, योगसे प्रियजन-वियोगनाश तथा करण-श्रवणसे सब प्रकारकी मनःकामना पूर्ण होती है।

पञ्चाङ्ग-श्रवणके अनन्तर श्रीरामजी पुष्पमाला धारणकर तथा दर्पण देखकर महलसे बाहर आकर अपनी प्रजाके लोगोंसे, मित्रोंसे तथा आगन्तुकोंसे भेंट करते थे।

इसके अनन्तर उद्यानमेंसे निकलकर सेनाका निरीक्षण करते थे, फिर राजसभामें जाकर राज्य-कार्योंपर अपने भाइयों, पुत्रों तथा अधिकारियोंसे विचार करके आवश्यक व्यवस्था करते थे। तब श्रीरामजी पुनः महलमें पधारते थे।

यहाँ आकर मध्याह्नमें स्नान करके पितरोंका तर्पण, देवताओंको नैवेद्य तथा बलिवैश्वदेव, काक-बलि आदि देकर भूत-बलि देते थे। फिर अतिथियोंको भोजन कराकर ब्राह्मणों तथा यतियोंके भोजन कर लेनेके पश्चात् स्वयं भोजन करते थे। भोजनके अनन्तर ब्राह्मणोंको दक्षिणा देकर सौ पद चलकर विश्राम करते थे।

विश्रामके पश्चात् क्षणिक मनोरञ्जन करके पिंजरोंमें पाले गये महलके पक्षियोंका निरीक्षण करके महलकी छतपर चढ़कर अयोध्या-नगरीका निरीक्षण करते। फिर गोशालामें जाकर गायोंकी देख-रेख करते। इसके पश्चात् अश्वशाला, गजशाला, उष्ट्रशाला तथा अस्त्रशाला आदिका निरीक्षण करते।

इन सब कार्योंके बाद वे दूतावास एवं तृण-काष्ठागारोंका निरीक्षण करते हुए दुर्गके रक्षार्थ बनी खाईकी देख-भाल करते और रथारूढ़ हो अवधपुरीके राजमार्गसे दुर्गके द्वार तथा द्वाररक्षकोंका निरीक्षण करते थे। फिर बन्धुओंके साथ सरयूके तटपर भ्रमण कर सैनिक शिविरोंका निरीक्षण कर महलोंमें लौटकर राज्य-कार्यकी व्यवस्था करके सायंकालके समय सायंसंध्या तथा पूजनादिके पश्चात् भोजन करते थे। फिर देव-मन्दिरोंमें जाकर देवदर्शन तथा कीर्तन-श्रवण करके महलमें लौट आते थे।

यहाँ बन्धुओंसे पारिवारिक विषयोंपर चर्चा करके भगवान् **(सार्धयामां निशां नीत्वा)** डेढ़ पहर रात्रिके व्यतीत हो जानेपर शयनकक्षमें प्रवेश करके विश्राम करते थे।

भगवान्‌की यह नियमित दिनचर्या हम सभीके लिये एक आदर्श दिनचर्या है। यदि हम इसके अनुरूप व्यवहार करें तो हमारा इहलोक तथा परलोक दोनोंमें ही कल्याण हो सकता है। यह दिनचर्या जहाँ एक सद्-नागरिकके लिये आदर्श दिनचर्या है, वहाँ यह शासकोंको भी कुशल प्रशासक बनानेवाली है।

रामराज्यका पहला आदेश

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

प्रजाजनको मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका यह पहला आदेश था कि 'यदि भूलसे मैं कुछ अनीतिपूर्ण वचन कहूँ—जो शास्त्रविरुद्ध, न्यायविरुद्ध या द्वेषयुक्त हो—तो भय छोड़कर मुझे यह कहकर तुरंत रोक देना कि 'राम! तुम्हारा यह कार्य अनुचित है।'

(पं० सूरजचन्द्र 'डाँगीजी' सत्यप्रेमी)

भगवान् श्रीरामके चरणचिह्नोंका चिन्तन

(श्रीरामलालजी)

भगवान् श्रीरामके चरण और उनके चिह्नोंके रूप तथा महत्त्वका वर्णन वे ही कर सकते हैं, जो श्रीरामके चरणारविन्द-मकरन्द-रससे अपने मनको सिक्तकर उनकी भक्तिमें लगे रहते हैं। ब्रह्मा और शंकर श्रीरामके चरणोंकी वन्दना करते हैं—

……अजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥

(श्रीमद्भा० ९। १०। १२)

श्रीरामके चरण और उनके चिह्नोंकी महिमाका वर्णन वे ही कर सकते हैं, जिनके हृदयमें भगवान् श्रीरामकी कृपासे सद्विद्या स्फुरित होती है। इस तरहकी विद्या उनमें होती है जो रामकी भक्तिमें तत्पर रहकर उनके मन्त्रकी उपासना करते हैं। श्रीरामके प्रति महर्षि अगस्त्यका कथन है—

लोके त्वद्भक्तिनिरतास्त्वन्मन्त्रोपासकाश्च ये।
विद्या प्रादुर्भवेत् तेषां नेतरेषां कदाचन ॥

(अध्यात्मरा० ३। ३। ३४)

आशय यह है कि श्रीरामकी भक्तिसे अर्जित विद्याके द्वारा उनके स्वरूप और तत्त्व आदिका वर्णन प्राणी कर सकता है। श्रीरामके पद-पङ्कज-दर्शनसे कुशल-ही-कुशल है। श्रीरामने निषादसे कुशल-समाचार पूछा तो उसने कहा—

नाथ कुसल पद पंकज देखें। भयउँ भागभाजन जन लेखें ॥

(रा० च० मा० २। ८८। ५)

भक्तराज सुतीक्ष्ण भगवान्के चरणोंमें दृढ़ आस्था प्राप्त करके यों कहते हैं—'अनन्तगुण! अप्रमेय! सीतापते! मैं आपका ही मन्त्र जपता हूँ। राम! शिव और ब्रह्मा आपके चरणोंके आश्रित हैं। आपके चरण संसार-सागरको पार करनेके लिये सुदृढ़ जहाज हैं। नाथ! मैं आपके दासोंका दास हूँ।'

त्वन्मन्त्रजाप्यहमनन्तगुणाप्रमेय
सीतापते शिवविरिञ्चिसमाश्रिताङ्घ्रे।
संसारसिन्धुतरणामलपोतपाद
रामाभिराम सततं तव दासदासः ॥

(अध्यात्मरा० ३। २। २७)

भगवान्के चरणारविन्दकी महिमा उनके चिह्नोंकी कल्याणकारी विशिष्ट गरिमासे समन्वित है। ये चरण-चिह्न संत-महात्माओं तथा भक्तोंके सदा सहायक हैं, रक्षक हैं। भक्तमालमें महात्मा नाभादासकी स्वीकृति है—

सीतापति पद नित बसत, एते मंगलदायका।
चरण-चिह्न रघुबीर के संतन सदा सहायका ॥

भगवान् श्रीरामके चरण-चिह्नोंका वर्णन 'महारामायण' के ४८वें अध्यायमें महर्षि अगस्त्यकृत 'श्रीरघुनाथचरणचिह्न-स्तोत्र'में, आचार्य यामुनकृत 'आलवन्दारस्तोत्र'में, नाभाजीकृत 'भक्तमाल'में, श्रीरामचरितमानसके उत्तरकाण्डमें, गोस्वामी तुलसीदासजीकृत 'गीतावली'के उत्तरकाण्डके पंद्रहवें पदमें और 'रामचरणचिह्नावली' नामक पुस्तकमें मिलता है। 'महारामायण'में श्रीरामके चरणचिह्नोंकी संख्या ४८ बतायी गयी है—२४ चिह्न दक्षिणपदमें और २४ चिह्न वामपदमें है। जो चिह्न श्रीरामके दक्षिणपदमें हैं, वे भगवती सीताके वामपदमें हैं और जो उनके वामपदमें हैं, वे ही श्रीजानकीके दक्षिणपदमें हैं। श्रीशंकरजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

यानि चिह्नानि रामस्य चरणे दक्षिणे प्रिये।
तानि सर्वाणि जानक्याः पादे तिष्ठन्ति वामके ॥
यानि चिह्नानि जानक्या दक्षिणे चरणे शिवे।
तानि सर्वाणि रामस्य पादे तिष्ठन्ति वामके ॥

(महारामायण ४८। १३-१४)

महर्षि अगस्त्यके 'श्रीरघुनाथचरणचिह्नस्तोत्र'में ४८ चिह्नोंमेंसे केवल १८ चिह्नोंका ही वर्णन मिलता है। वे अम्बुज, अङ्कुश, यव, ध्वजा, चक्र, ऊर्ध्वरेखा, स्वस्तिक, अष्टकोण, वज्र, बिन्दु, त्रिकोण, धनुष, अंशुक—वस्त्र, मत्स्य, शंख, अर्धचन्द्र, गोपद और घट हैं।

श्रीयामुनाचार्यने शंख, चक्र, कल्पवृक्ष, ध्वजा, कमल, अंकुश और वज्र—इन सात चरण-चिह्नोंका ही वर्णन किया है—

कदा पुनः शंखरथाङ्गकल्पक-
ध्वजारविन्दाङ्कुशवज्रलाञ्छनम् ।
त्रिविक्रम त्वच्चरणाम्बुजद्वयं

मदीयमूर्द्धानमलंकरिष्यति ॥

(आलवन्दारस्तोत्र ३४)

गोस्वामी तुलसीदासजीने रामचरितमानसमें चार चरण-चिह्नोंका उल्लेख किया है। वे ध्वजा, कुलिश, अङ्कुश और कंज हैं—

जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बंदिता त्रैलोक पावनि सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुंद राम रमेस नित्य भजामहे॥

(उत्तर० १२। छं० ४)

अपनी 'गीतावली'के उत्तरकाण्डके पंद्रहवें पदमें गोस्वामी तुलसीदासने श्रीरामके चरण और उनके उपर्युक्त चार चिह्न—अङ्कुश, कुलिश, कमल और ध्वजाका मौलिक तथा अमित भक्तिपूर्ण वर्णन किया है—

रामचरन अभिराम कामप्रद तीरथ-राज बिराजै।
संकर-हृदय-भगति-भूतलपर प्रेम-अछयबट भ्राजै॥
स्यामबरन पद-पीठ अरुन तल, लसति बिसद नखस्त्रेनी।
जनु रबि-सुता-सारदा-सुरसरि मिलि चलीं ललित त्रिबेनी॥
अंकुस-कुलिस-कमल-धुज सुंदर भँवर तरंग-बिलासा।
मज्जहिं सुर-सज्जन, मुनिजन-मन मुदित मनोहर बासा॥
बिनु बिराग-जप-जाग-जोग-ब्रत, बिनु तप, बिनु तनु त्यागे।
सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभु-पद-प्रयाग अनुरागे॥

आशय यह है कि सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले भगवान् रामके मनोहर चरण-कमल मानो साक्षात् तीर्थराज होकर विराजमान हैं। श्रीशंकरके हृदयकी भक्तिरूप भूमिपर प्रेममय अक्षयवट सुशोभित है। चरणोंका पृष्ठभाग श्यामवर्ण है, तलवे अरुण हैं तथा उनमें शुक्लवर्ण नखावली शोभित है, मानो यमुना, सरस्वती और गङ्गाजी—तीनों मिलकर सुन्दर त्रिवेणीके रूपमें बह चली हों। तलवोंमें अङ्कुश, वज्र, कमल और ध्वजाके चिह्न ही सुन्दर भँवर और तरंगें हैं, उनमें देवता और साधु-संत स्नान करते हैं तथा वे मुनियोंके प्रसन्न मनके मनोहर निवास-स्थान हैं। तुलसीदासजीका कथन है कि प्रभुके चरणरूप प्रयागमें प्रेम करनेसे वैराग्य, जप, यज्ञ, योग, व्रत, तप और शरीर-त्यागके बिना ही समस्त सुख तत्काल सुलभ हो जाते हैं।

महात्मा नाभादासजीने 'भक्तमाल'में भगवान् राघवेन्द्रके केवल बाईस पदचिह्नोंका उल्लेख किया है—

अंकुस अंबर कुलिस कमल जव धुजा धेनुपद।
संख चक्र स्वस्तिक जंबूफल कलस सुधाहृद॥
अर्धचंद्र षटकोन मीन बिंदु ऊरधरेखा।
अष्टकोन त्रयकोन इंद्रधनु पुरुषविशेषा॥
सीतापति-पद नित बसत एते मंगलदायका।
चरन-चिह्न रघुबीर के संतन सदा सहायका॥

(भक्तमाल)

'रामचरणचिह्नावली'में 'महारामायण'की ही तरह ४८ चिह्नोंका उल्लेख है। 'महारामायण'में तथा 'भक्तमाल' की 'वार्तिकप्रकाश' टीकामें इन चिह्नोंके रूप, रंग, कार्य तथा महत्त्वका विशद विवेचन मिलता है। अपनी-अपनी उपासना-पद्धतिके अनुसार लोग भगवान्के चरणारविन्दोंके चिह्नोंका ध्यान कर श्रीरामकी भक्तिका रसास्वादन करते हैं। इन चिह्नोंके ध्यानसे मन और हृदय पवित्र होते हैं तथा संसारजनित क्लेश, पीड़ा और भयका नाश होता है। भगवच्चरणारविन्दके समस्त चिह्न मङ्गलदायक हैं।

भगवान् श्रीरामके दक्षिण चरणारविन्दमें ऊर्ध्वरेखा है। इसका रंग अरुण—गुलाबी है। इसके अवतार सनक, सनन्दन, सनत्कुमार और सनातन हैं। इस चिह्नके ध्यानसे महायोगकी सिद्धि होती है। ध्यानी भवसागरसे पार हो जाता है। दूसरा चिह्न स्वस्तिक है, इसका रंग पीला है। इसके अवतार श्रीनारदजी हैं। यह मङ्गलकारक है, कल्याणप्रद है। श्रीशंकरका पार्वतीजीसे कथन है—

'स्वस्तिकादेव संजातं कल्याणं सर्वतः प्रिये।'

(महारामायण ४८। ४०)

तीसरा चिह्न अष्टकोण है। यह लाल और सफेद रंगका है। यह यन्त्र है। इसके अवतार श्रीकपिलदेवजी हैं। इसके ध्यानसे अष्टसिद्धियोंकी प्राप्ति होती है। चौथा चिह्न श्रीलक्ष्मीजी हैं। इनका रंग अरुणोदयकालकी लालिमाके सदृश है। बड़ी ही मनोहर हैं। अवतार साक्षात् लक्ष्मीजी ही हैं। इनके ध्यानसे ऐश्वर्य और समृद्धि मिलती है। पाँचवाँ चिह्न हल है, इसका रंग श्वेत है। इसका अवतार बलरामजीका हल है। यह विजयप्रद है। इससे विमल विज्ञानकी उपलब्धि होती

है। छठा चिह्न मूसल है, यह धूम्र रंगका है। अवतार मूसल है। इसके ध्यानसे शत्रुका नाश होता है। सातवाँ चिह्न सर्प—शेष है, इसका रंग श्वेत है। अवतार शेषनाग हैं। इस चिह्नका ध्यान करनेवालेको भगवद्भक्ति और शान्तिकी प्राप्ति होती है। आठवाँ चिह्न शर—बाण है, इसका रंग श्वेत, पीत, अरुण—गुलाबी और हरा है। इसका अवतार बाण है। इसका ध्यान करनेवालेके शत्रु नष्ट होते हैं। नवाँ चिह्न अम्बर—वस्त्र है। इसका रंग आसमानी अथवा नीला और बिजलीके रंगके समान है। अवतार श्रीवराहभगवान् हैं। इस चिह्नके ध्यानसे भयका नाश होता है। यह भक्तोंको दुःख देनेवाली जडतारूपी शीतका हरण करता है। दसवाँ चिह्न कमल है, यह लाल—गुलाबी रंगका है। इसका अवतार विष्णु—कमल है। इसका ध्यान करनेसे ध्यानी भगवद्भक्ति पाता है, उसका यश बढ़ता है और मन प्रसन्न रहता है। ग्यारहवाँ चिह्न रथ है। यह चार घोड़ोंका है। अवतार पुष्पक विमान है। इसका रंग विचित्र—अनेक तरहका है तथा घोड़े सफेद रंगके हैं। इसका ध्यान करनेवाला विशेष पराक्रमसे सम्पन्न होता है। बारहवाँ चिह्न वज्र है। इसका रंग बिजलीके रंगके समान है। इसका अवतार इन्द्रका वज्र है। यह पापोंका नाशक तथा बलदायक है। तेरहवाँ चिह्न यव है। इसके अवतार कुबेर हैं। इससे समस्त यज्ञोंकी उत्पत्ति होती है। इसका रंग श्वेत है। यवके ध्यानसे मोक्ष मिलता है, पापका नाश होता है। यह सिद्धि, विद्या, सुमति, सुगति और सम्पत्तिका निवासस्थान है। चौदहवाँ चिह्न कल्पवृक्ष है। अवतार कल्पवृक्ष है। इसका रंग हरा है। इससे अर्थ, धर्म, काम और मोक्षकी प्राप्ति होती है, समस्त मनोरथ पूरे होते हैं। पंद्रहवाँ चिह्न अङ्कुश है। इसका रंग श्याम है। इससे समस्त लोकोंके मलका नाश करनेवाला ज्ञान उत्पन्न होता है। इसके ध्यानका फल मनोनिग्रह है। सोलहवाँ चिह्न ध्वजा है। इसका रंग लाल है। यह विचित्र वर्णका भी कहा जाता है। इससे विजय—कीर्तिकी प्राप्ति होती है। सत्रहवाँ चिह्न मुकुट है। इसका अवतार दिव्यभूषण है। इसका रंग सुनहला है। इसके ध्यानसे परमपद मिलता है। अठारहवाँ चिह्न चक्र है। अवतार सुदर्शनचक्र है। इसका रंग तपाये हुए सोनेकी तरह है। यह शत्रुका नाश करता है। उन्नीसवाँ चिह्न सिंहासन है। अवतार श्रीरामका सिंहासन है। रंग सुनहला है—

'सिंहासनेन सम्भूतं रामसिंहासनं परम्॥'

(महारामायण ४८। ४९)

—यह विजयप्रद है, सम्मान प्रदान करता है। बीसवाँ चिह्न यमदण्ड है, इसके अवतार धर्मराज हैं। यह काँसेके रंगका है। इसके ध्यानसे यमयातनाका नाश होता है, ध्यानी निर्भयता प्राप्त करता है। इक्कीसवाँ चिह्न चामर है। इसका रंग सफेद है। अवतार श्रीहयग्रीव हैं। यह राज्य एवं ऐश्वर्य प्रदान करता है। इसके ध्यानसे हृदयमें निर्मलता आती है, विकार नष्ट होते हैं, चन्द्रमाकी चन्द्रिकाके समान प्रकाशका उदय होता है। बाईसवाँ चिह्न छत्र है। अवतार कल्कि है। इसका रंग शुक्ल है। इसका ध्यान करनेवाला राज्य तथा ऐश्वर्य पाता है। यह तीनों (दैहिक, दैविक, भौतिक) तापोंसे रक्षा करता है, मनमें दयाभाव लाता है। तेईसवाँ चिह्न नर—पुरुष है। अवतार दत्तात्रेय हैं। पुरुष परमेश्वर अथवा ब्रह्मका वाचक है। रंग उज्ज्वल—गौर है। इस चिह्नके ध्यानसे भक्ति, शान्ति और सत्त्वगुणकी प्राप्ति होती है। इस चिह्नका रंग सित-लोहित भी कहा जाता है। चौबीसवाँ चिह्न जयमाला है। यह बिजलीके रंगका है, अथवा इसका चित्र-विचित्र रंग भी कहा जाता है। इसके ध्यानसे भगवद्विग्रहके शृंगार तथा उत्सव आदिमें प्रीति बढ़ती है।

श्रीरामके दक्षिण चरणारविन्दके चिह्नोंकी तरह वामपदकमलमें भी चौबीस चिह्न हैं। पहला चिह्न सरयू है। अवतार विरजा—गङ्गा आदि हैं। इसका रंग श्वेत है, इसके ध्यानसे भगवान् रामकी भक्ति मिलती है, कलिमूलका नाश होता है। दूसरा चिह्न गोपद है। अवतार कामधेनु है। इसका रंग सफेद और लाल है। इसके ध्यानसे प्राणी भवसागरके पार हो जाता है। यह पुण्यप्रद है। इससे भगवद्भक्ति मिलती है। तीसरा चिह्न भूमि—पृथिवी है, अवतार कमठ है। इसका रंग पीला और लाल है, इसका ध्यान करनेसे मनमें क्षमाभाव बढ़ता है। चौथा चिह्न कलश है। यह सुनहरा और श्याम है, श्वेत भी कहा जाता है। अवतार अमृत है। इसका ध्यान भक्ति, जीवन्मुक्ति तथा अमरता प्रदान करता है। पाँचवाँ चिह्न पताका है। इसका रंग विचित्र है। इसके ध्यानसे मन पवित्र होता है। इस ध्वजा-चिह्नसे कलिका भय नष्ट होता है। छठा चिह्न

जम्बूफल है। इसके अवतार गरुड हैं। इसका रंग श्याम है। यह मङ्गलकारक है। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इस चिह्नके ध्यानके फल हैं। इससे मनःकामना पूरी होती है। सातवाँ चिह्न अर्धचन्द्र है, इसका रंग उज्ज्वल है। इसके अवतार वामन-भगवान् हैं। इसके ध्यानसे भक्ति, शान्ति और प्रकाशकी प्राप्ति होती है। मनके दोष नष्ट होते हैं। तापत्रयका नाश होता है और प्रेमाभक्ति बढ़ती है। आठवाँ चिह्न शंख है। इसके अवतार वेद, हंस, शङ्ख आदि हैं। इसका रंग अरुण और श्वेत है। इसका ध्यान करनेवाला दम्भ-कपटके मायाजालसे छूट जाता है। उसे विजय प्राप्त होती है तथा उसकी बुद्धि बढ़ती है। यह अनाहत—अनहद नादका कारण है। नवाँ चिह्न षट्कोण है। अवतार श्रीकार्तिकेय हैं। इसका रंग श्वेत है, लाल भी कहा जाता है। इसका ध्यान करनेसे षड्विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सरका नाश होता है। यह यन्त्ररूप है। इसके ध्यानसे षट्सम्पत्ति—शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधानकी प्राप्ति होती है। दसवाँ चिह्न त्रिकोण है। इसके अवतार परशुरामजी और श्रीहयग्रीव हैं। इसका रंग लाल होता है। यह यन्त्ररूप है। इसके ध्यानसे योगकी प्राप्ति होती है। ग्यारहवाँ चिह्न गदा है। अवतार महाकाली और गदा हैं। इसका रंग श्याम है। यह दुष्टोंका नाश करके ध्यान करनेवालेको जय देता है। बारहवाँ चिह्न जीवात्मा है। अवतार जीव है। इसका रंग प्रकाशमय है। इसके ध्यानसे शुद्धता बढ़ती है। तेरहवाँ चिह्न बिन्दु है, अवतार सूर्य और माया हैं। इसका रंग पीला है। यह वशीकरणतिलकरूप है। इसके ध्यानसे भगवान् भक्तके वशमें हो जाते हैं। उसके समस्त पुरुषार्थोंकी सिद्धि होती है। इसका स्थान अँगूठा है। इससे पाप नष्ट होता है। चौदहवाँ चिह्न शक्ति है, अवतार मूलप्रकृति, शारदा, महामाया हैं। इस चिह्नका रंग लाल—गुलाबी और पीला है। रक्त-श्याम-सित वर्णका भी कहा जाता है। इससे श्री—शोभा और सम्पत्तिकी उपलब्धि होती है। पंद्रहवाँ चिह्न सुधाकुण्ड है। यह सफेद और लाल है। इसके ध्यानसे अमृत—अमरताकी प्राप्ति होती है। सोलहवाँ चिह्न त्रिवली है। इसके अवतार श्रीवामन हैं, इसका रंग हरा, लाल और धवल है—त्रिवेणीका रंग है। इसका यह चिह्न वेदरूप है। इसका ध्यान करनेवाला कर्म, उपासना और ज्ञानसे सम्पन्न होता है। उसे भक्तिरसका आस्वादन सुलभ हो जाता है। सत्रहवाँ चिह्न मीन है, इसका रंग रुपहला है, उज्ज्वल है। यह जगत्को वशमें करनेवाले कामदेवकी ध्वजा है। यह वशीकरण है, इसके ध्यानका फल श्रीभगवान्के प्रेमकी प्राप्ति है। अठारहवाँ चिह्न पूर्णचन्द्र है। अवतार चन्द्रमा है। इसका रंग पूर्ण धवल है। यह मोहरूपी तमको हरकर तीनों तापोंका नाश करता है। ध्यान करनेवालेके मनमें सरलता, शान्ति और प्रकाशकी वृद्धि होती है। उन्नीसवाँ चिह्न वीणा है। इसके अवतार श्रीनारदजी हैं। इसका रंग पीला, लाल और उज्ज्वल है। ध्यान करनेवालेको राग-रागिनीमें निपुणता मिलती है। वह भगवान्का यशोगान करता है। बीसवाँ चिह्न वंशी—वेणु है। अवतार महानाद है। इसका रंग चित्र-विचित्र है। इसके ध्यानसे मधुर शब्दसे मन मोहित हो जाता है। मुनियोंका मन भी वशमें नहीं रहता। इक्कीसवाँ चिह्न धनुष है। अवतार पिनाक और शार्ङ्ग हैं। इसका रंग हरा, पीला और लाल है। इसके ध्यानसे शत्रुका नाश होता है, मृत्युभयका निवारण होता है। बाईसवाँ चिह्न तूणीर है। अवतार परशुरामजी हैं। इसका रंग चित्र-विचित्र है। इसके ध्यानसे भगवान्के प्रति सख्यरस बढ़ता है। ध्यानका फल सप्तभूमि-ज्ञान है। तेईसवाँ चिह्न हंस है। अवतार हंसावतार है। इसका रंग सफेद और गुलाबी है। इसके ध्यानका फल विवेक और ज्ञानकी प्राप्ति है। हंसका ध्यान संत-महात्माओंके लिये सुखद है। चौबीसवाँ चिह्न चन्द्रिका है। इसका रंग सफेद, पीला और लाल है। यह सर्वरंगमय कहा जाता है। इसके ध्यानसे कीर्ति मिलती है।

भगवान् श्रीरामके चरण-चिह्न-चिन्तनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके चरण समस्त विभूतियों, ऐश्वर्यों तथा भक्ति-मुक्ति और भुक्तिकी अक्षय निधि हैं। भगवद्भक्तिमें मग्न भक्त जन्म-जन्मतक श्रीरामपदकी ही रति—भक्ति चाहते हैं। श्रीरामके चरणारविन्दमें भक्तका मन-मधुप निरन्तर संलग्न रहता है।

जिन प्राणियोंको श्रीरामके चरणपङ्कज-चिह्नोंका ध्यान और चिन्तन प्रिय है, उनका जीवन सफल और पुण्यमय है।
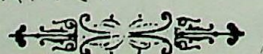
श्रीरामभक्तिमें मनोजय एवं मोक्षका वैशिष्ट्य

(दंडीस्वामी श्रीमद् दत्तयोगेश्वरदेवतीर्थजी महाराज)

श्रीरामभक्तिमें सहायक कतिपय प्रसिद्ध धर्मग्रन्थोंमें 'योगवासिष्ठ' का वैशिष्ट्य अध्यात्मप्रेमियोंको विदित ही है। श्रीमदाद्यशंकराचार्य इसका गौरवगान करते हुए कहते हैं—**'ऋषिभिर्वसिष्ठादिभिर्बहुधा—बहुप्रकारं गीतं कथितम्।'** श्रीविद्यारण्यस्वामीने स्वरचित 'जीवन्मुक्तिविवेक' ग्रन्थमें योगवासिष्ठका महत्त्व कहा है। इस ग्रन्थके विषयमें कहा गया है—

श्रीरामसदृशः शिष्यो वसिष्ठसदृशो गुरुः।
वासिष्ठसदृशं शास्त्रं न भूतो न भविष्यति॥

अर्थात् श्रीरामचन्द्रजी-जैसे शिष्य, महर्षि वसिष्ठ-जैसे गुरु, योगवासिष्ठ-जैसा शास्त्र न हुए हैं और न होंगे।

योगवासिष्ठमें भगवत्स्मरण एवं ध्यानकी प्रशंसा कई स्थानोंपर वर्णित है। इस ग्रन्थमें मोक्षके चार द्वारोंके चार द्वारपाल इस प्रकार बताये गये हैं—**'शमो विचारः संतोषश्चतुर्थः साधुसंगमः'** (२।११।६०)। आगे भी ऐसा ही कहा गया है—**'संतोषः साधुसंगश्च विचारोऽथ शमस्तथा'** (२।१६।१८)। अर्थात् सत्संग, विचार, शम और संतोष—इन चारोंसे साधक अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है। महर्षि वसिष्ठने श्रीरामचन्द्रजीको इनका विस्तृत उपदेश दिया था।

महर्षि वसिष्ठका उपदेश सुनकर श्रीरामचन्द्रजी कहते हैं कि 'जैसे वायुके वेगसे मोरपंखका अग्रभाग हिलता है, वैसे ही यह चञ्चल चित्त अत्यन्त व्यग्र होकर जहाँ-तहाँ भटकता रहता है। जैसे क्षुधापीड़ित श्वान (कुत्ता) उदरपूर्ति-हेतु व्याकुल होकर घर-घर चक्कर लगाता रहता है, वही दशा इस चञ्चल चित्तकी है। विषयोंके चिन्तनसे क्षुब्ध हुआ यह चित्त दसों दिशाओंमें भटकता फिरता है, किंतु कहीं भी शान्तिको प्राप्त नहीं होता। ब्रह्मन्! चित्त (मन)-रूपी ग्रह अग्निसे भी अधिक उष्ण है। उसके ऊपर चढ़ना पर्वतपर चढ़नेसे भी अधिक दुर्गम है। वह वज्रसे भी कठोरतम है। उसे वशमें करना अत्यन्त ही कठिन है। इन्द्रियोंद्वारा प्राप्त होनेवाले विषयोंकी ओर यह चञ्चल मन दौड़ पड़ता है।

ब्रह्मन्! समुद्रको पी जाना, सुमेरु पर्वतको जड़से उखाड़ फेंकना तथा अग्निको खा जाना—ये महान् एवं दुःसाध्य कार्य हैं, किंतु इस चञ्चल चित्तको वशमें कर लेना इनसे भी महान् और कठिन कार्य है।

श्रीरामचन्द्रजी आगे कहते हैं—

शूरास्त एवेह मनस्तरंगं देहेन्द्रियाम्भोधिमिमं तरन्ति।

(वैराग्य० २७।८९)

अर्थात् शूरवीर तो वे हैं जो मनरूपी तरंगोंसे पूर्ण इस देह और इन्द्रियरूपी समुद्रको पार कर जाते हैं।

मुने! जबतक चित्त है, तभीतक तीनों लोकोंकी सत्ता है, उसके क्षीण होते ही जगत् क्षीण हो जाता है। इसलिये इस चञ्चल चित्तरूपी रोगकी यत्नपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये। किंतु इस चञ्चल चित्तको वशमें करना अत्यन्त कठिन है, अतः इसे वशमें करनेका उपाय क्या है, उसे बतानेकी कृपा करें।'

भगवान् श्रीरामचन्द्रके प्रश्नके उत्तरमें गुरु महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—'हे राम! मनुष्यका चित्त शिशुकी भाँति चञ्चल होता है, उसे अशुभ मार्ग (अशुभ-चिन्तन) से हटा दिया जाय तो शुभमार्ग (पुण्य) में जाता है, और यदि उसे शुभमार्गसे हटाया जाय तो अशुभमार्गमें चला जाता है। इसलिये उस मनको बलपूर्वक अशुभमार्ग (अशुभ-चिन्तन) से हटाकर पुण्यके मार्ग अर्थात् शुभमार्गमें लगाना चाहिये। इस प्रकार साधक (मनुष्य) के लिये उचित है कि वह पूर्वोक्त क्रमसे चित्तरूपी बालकको शीघ्र ही समतारूप सान्त्वना देकर पुरुषोचित प्रयत्नके द्वारा शनैः-शनैः आत्मस्वरूपमें लगाये, हठपूर्वक सहसा उसका निरोध न करे। साधक (मनुष्य) जिस-जिस विषयका अभ्यास करता है, उसीमें अवश्य तन्मय हो जाता है। अतः श्रीराम! उत्तम विवेकका आश्रय लेकर अभ्यास और वैराग्यके सहयोगसे दुःखस्वरूपिणी इस भयंकर संसार-सरिताको पार करना चाहिये। जिसे प्राप्त कर लेनेपर 'पुनर्जन्म' नहीं होता और जहाँ पहुँच जानेपर शोकका अस्तित्व मिट जाता है, वही परमपद (परमधाम) है।'

श्रीमद्भगवद्गीता (१५।६) में भगवान्ने कहा है—

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

अर्थात् जिस पदको प्राप्त होकर (मेरा भक्त) वापस नहीं लौटता, वह मेरा परमधाम है।

महर्षि वसिष्ठ कहते हैं—'हे श्रीराम ! कल्याणकामी पुरुष अशुभकर्मोंमें लगे हुए चित्तको वहाँसे हटाकर प्रयत्नपूर्वक शुभकर्मोंमें ही लगाये। यही सम्पूर्ण शास्त्रोंके सारांशका संग्रह है।'

श्रीमद्भगवद्गीता (६।३४) में अर्जुन भी भगवान् श्रीकृष्णसे कहते हैं—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

अर्थात् 'हे कृष्ण ! निश्चय ही यह मन बड़ा चञ्चल है, शरीर एवं इन्द्रियोंको मथ डालनेवाला है, बड़ा बलवान् है, बड़ा दृढ़ है, उस मनको वशमें करना मैं वायु (हवा) को वशमें करने-जैसा अति दुष्कर मानता हूँ।'

अर्जुनके विनीत भावसे किये गये इस प्रश्नका उत्तर भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार देते हैं—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥

अर्थात् हे बलशाली अर्जुन ! निःसंदेह यह 'मन' बड़े कष्टसे वशमें किया जा सकता है, क्योंकि यह चलवृत्तिवाला है, हे कौन्तेय ! (फिर भी) अभ्यास और वैराग्यसे यह (मन) वशमें किया जा सकता है।

अवधूत-गीता (१।१८) में चञ्चल चित्तको उपदेश दिया गया है—

अहो चित्त कथं भ्रान्तं प्रधावसि पिशाचवत्।
अभिन्नं पश्य चात्मानं रागत्यागात् सुखीभव॥

'हे चित्त ! भ्रमित होकर पिशाचकी तरह तुम इधर-उधर क्यों व्यर्थ भटकते रहते हो ? तुम 'आत्माराम' को अभेद-स्वरूपमें देखो और अनासक्त होकर परमपदको प्राप्त हो जाओ (सच्ची शान्तिकी उपलब्धि करो)।'

'चित्त' की स्थिरताके विषयमें 'अवधूतगीता' (८।२७) अतीव महत्त्वपूर्ण उपदेशका कथन करती है—

चित्ताक्रान्तं धातुबद्धं शरीरं
नष्टे चित्ते धातवो यान्ति नाशम्।
तस्माच्चित्तं सर्वतो रक्षणीयं
स्वस्थे चित्ते बुद्धयः सम्भवन्ति॥

अर्थात् धातुओंसे बँधा हुआ शरीर चित्तद्वारा व्याप्त है। अतः चित्तके चाञ्चल्यसे धातुओंका क्षय (पात) होता है, इसलिये चित्तकी सर्व ओरसे (सर्व प्रकारसे) रक्षा करनी चाहिये—उसे अशुभमार्गसे हटाकर शुभमार्गपर लगाना चाहिये; क्योंकि चित्त स्वस्थ होनेपर प्रज्ञाका प्राकट्य होता है (चित्तकी आत्मस्वरूपमें स्थिति होनेपर सम्पूर्ण ज्ञानका आविर्भाव होता है)।

चित्तकी चञ्चलता होनेपर देहादिमें आत्मबुद्धि होती है, जिसे बन्ध कहते हैं। जब चित्तकी निश्चञ्चलता हो जाती है तब देहादिमें अनात्मबुद्धि होती है (मैं देहादि नहीं हूँ, वे मुझसे भिन्न हैं, असत्य हैं, मैं तो उसका प्रकाशक, असंग आत्मा हूँ, ऐसा दृढ़ बोध होता है) जिसे 'मोक्ष' कहते हैं।

महर्षि वसिष्ठजी कहते हैं—श्रीराम ! 'बन्ध' एवं 'मोक्ष' के विषयमें इस प्रकार समझो—

मन एवोल्लसन्मात्रं बद्धतामगमद्यतः।
मनःप्रशमनो राम मोक्ष एवावशिष्यते॥

अर्थात् मनका उल्लास या वृद्धि ही 'बन्ध' है और हे राम ! मनका प्रशमन या स्थिरता ही 'मोक्ष' है।'

सर्वाशासंक्षये चेतःक्षयो मोक्ष इतीर्यते।

अर्थात् जब चित्तकी सभी आशा-तृष्णाओंका अन्त हो जाता है तब चित्त भी क्षीण हो जाता है, तभी 'मोक्ष' होता है।

महर्षि वसिष्ठ श्रीरामचन्द्रजीको आगे उपदेश करते हैं—

राम वासनया बद्धं मुक्तं निर्वासनं मनः।
तस्मान्निर्वासनीभावमाहराऽऽशु विवेकतः॥

अर्थात् हे राम ! वासना रहनेसे बन्धन और वासनारहित मन रहनेसे मोक्ष है। इसलिये विवेक (सार-असारका विचार करना) सार (सत्य ग्राह्य) असार (असत्य त्याज्य करना) द्वारा वासनारहित हो।

मनको जय करनेके उपाय बतलाते हुए वसिष्ठजी कहते हैं—

सत्संगो वासनात्यागोऽध्यात्मशास्त्रविचारणम्।
प्राणस्पन्दनिरोधश्चेत्युपाया मनसो जये॥

हे राम ! (१) सत्संग, (२) वासना (तृष्णा)-त्याग, (३) भक्ति-ज्ञान-विषयक धर्मग्रन्थोंका पठन एवं उनके तत्त्वपर विचार करना (मनन एवं निदिध्यासनादि करना) तथा (४) प्राणायाम (**हंसः सोऽहमिति**—अर्थात् मैं वह (प्रभु)

अथवा वह मैं हूँ)—ये मनको वशमें करनेके चार उपाय हैं। इनका आश्रयणकर मनको उन्मनीभावयुक्त बनाना चाहिये और आत्मामें रमण करना चाहिये।

श्रीमज्जगद्गुरु आद्यशंकराचार्यजीने 'आत्माराम' का निरूपण स्वरचित 'आत्मबोध' में इस प्रकारसे किया है—

तीर्त्वा मोहार्णवं हत्वा रागद्वेषादिराक्षसान्।
योगी शान्तिसमायुक्तो ह्यात्मारामो विराजते॥

अर्थात् 'मोहरूपी समुद्रको पार करके और राग-द्वेषादि (रावण-कुम्भकर्णादि) राक्षसोंका वध करके, शान्तिरूपी सीतासे युक्त हुए आत्माराम योगी सुशोभित होते हैं। मनोजय होनेपर आत्मारामका साक्षात्कार होता है। एवं परमशान्तिकी प्राप्ति होती है, जीवन सफल हो जाता है। यही है श्रीरामभक्तिकी सार्थकता।

इस प्रकार चित्तके समस्त दोषोंके लय हो जानेपर राग, द्वेष, भय आदिके निर्मूल हो जानेपर शुद्ध चित्तमें भक्तिका उदय होता है और यह भक्ति साधन-भक्ति आदिकी अपेक्षा उज्ज्वल होती है; क्योंकि इसमें कोई कामना नहीं रहती। इसलिये इसे परा भक्ति या विशुद्ध भक्ति या सिद्धि भक्ति कहते हैं—'**मद्भक्तिं लभते पराम्**।' और फिर यह भक्ति बाधित भी नहीं होती तथा भक्त सदा रामभक्तिमें लीन हो जाता है और सर्वथा कृतार्थ हो जाता है। ऐसी स्थितिमें सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य, सायुज्य आदि सभी मुक्तिपद उसके किंकरके समान हो जाते हैं, ऐसी भक्तिकी मुक्ति अनुचरी-सी बन जाती है और वह मुक्ति ऐसी भक्तिको छोड़कर भला क्षणभर भी कहाँ रह सकती है?

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥
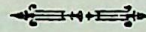
भारतीय लोकमर्यादाके परम आदर्श भगवान् श्रीराम

(डॉ॰ श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰, डी॰ लिट्॰, डी॰ एस्-सी॰)

भारतीय जीवनमें 'राम' नाम उसी प्रकार अनुस्यूत है जिस प्रकार दुग्धमें धवलता। संत-हृदय सदासे धर्म, आदर्श और चरित्रकी त्रिपथगाका मूलोत्सव भगवान् श्रीरामको स्वीकार करता चला आया है। श्रीरामके आदर्श चरित्रद्वारा ही उक्त तीनों विशेषताओंकी उपलब्धि सम्भव होती है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्तने 'यशोधरा' के मङ्गलाचरणमें लिखा है—

राम! तुम्हारे इसी धाममें, नाम-रूप-गुण-लीला-लाभ।
इसी देशमें हमें जन्म दो, लो प्रणाम हे नीरज-नाभ॥

रामका जीवन कितना महान्, कितना आदर्श है, इस सम्बन्धमें राष्ट्रकवि कहते हैं—

राम! तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय, सहज संभाव्य है॥

भारतीय आर्ष-मेधाने 'अमूर्त धर्मका मूर्त रूप' भगवान् श्रीरामको प्रतिपादित करते हुए कहा है—'**रामो विग्रहवान् धर्मः**'। उनका चरित नरत्वके लिये तेजोमय दीप-स्तम्भ है। वस्तुतः भगवान् श्रीराम भारतीय संस्कृतिमें मर्यादाके परम आदर्शके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। मानव-जीवनको सुख, शान्ति एवं समृद्धिका आगार बनानेके लिये जिन शाश्वत मर्यादाओं (नियामक-नियमों) के पालन तथा अङ्गीकरणकी आवश्यकता है, भगवान् श्रीराम उनके समष्टिगत मूर्तरूप हैं। अपने मर्यादित आदर्शरूपमें वे एक ऐसे प्रकाश-स्तम्भके रूपमें हमारे सामने आते हैं जो बीहड़ भवाटवीमें न केवल हमारा मार्ग प्रशस्त करते हैं, बल्कि गन्तव्यको सुगम तथा सरस भी बनाते हैं।

भगवान् श्रीरामका सारा जीवन मर्यादाओंके प्रति सतत जागरूकता और निष्ठाका प्रतीक है। वे कर्तव्यबुद्धिसे सर्वदा मर्यादाका निर्वाह करते थे। भगवान् श्रीराम-जैसे आदर्श चरित्रोंके आचरणद्वारा ही मानवताका मार्ग प्रशस्त होता है। श्रीमद्भगवद्गीता (३।२१) में भगवान् श्रीकृष्णने कहा भी है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते॥

श्रेष्ठ व्यक्ति जो आचरण करते हैं समाजमें अन्य लोग उसीका अनुकरण करते हैं।

जीवनमें कई अवसर आते हैं जब व्यक्ति अपना विवेक खोकर लोकमर्यादाका उल्लंघन करनेके लिये तत्पर हो जाता है अथवा कभी-कभी अपनी दुर्बलता छिपानेके लिये लोक-

मर्यादाको, शास्त्रमर्यादाको ही छिन्न-भिन्न करनेका उपक्रम करने लगता है, परंतु भगवान् श्रीराम कर्तव्यनिष्ठाके प्रति सदैव आस्थावान् रहे हैं, उन्होंने कभी भी लोकमर्यादाके प्रति दौर्बल्य प्रकट नहीं होने दिया। वन-गमनके पूर्वका समय उनकी मर्यादानिष्ठाका सबसे कठिन परीक्षा-स्थल था। यदि श्रीराम चाहते तो पुरवासियों और मन्त्रियोंके समर्थित सहयोगसे सहज ही इसे प्राप्त कर सकते थे, परंतु ऐसा करनेपर क्या वे मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते? माता कैकेयीने जब भरतके लिये राज्य तथा रामके लिये चौदह वर्षके वनवासकी बात श्रीरामको सुनायी तब श्रीरामने मा कैकेयीको आश्वस्त करते हुए कहा था—

अहं हि सीतां राज्यं च प्राणानिष्टान् धनानि च।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः॥

(वा० रा०, अयो० १९।७)

अर्थात् 'मैं सीताको, अपने इस सुविस्तृत समृद्ध राज्यको तथा अपने प्राणों एवं अपने समग्र ऐश्वर्यको प्रसन्नतापूर्वक भरतको दे सकता हूँ।'

भरत ही नहीं अपने तीनों भाइयोंके प्रति उनका ऐसा ही उत्कट प्रेम था। मेघनादकी शक्तिसे जब लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं, तब उन्हें अपनी गोदमें लिटाकर श्रीराम कहते हैं—

परित्यक्ष्याम्यहं प्राणान् वानराणां तु पश्यताम्।
यदि पञ्चत्वमापन्नः सुमित्रानन्दवर्धनः॥

(वा० रा०, युद्ध० ४९।७)

अर्थात् 'यदि लक्ष्मणका प्राणान्त हुआ तो मैं उपस्थित वानर-समुदायके देखते-देखते अपने प्राण त्याग दूँगा।'

उनका अनुराग अपने प्रजाजनोंके प्रति भी था और तभी वे **'राजा प्रकृतिरञ्जनात्'** सूक्तिको अन्वर्थक बनाते हुए प्रजाराधनका आदर्श इस रूपमें प्रस्तुत कर सके थे—

स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकानां मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा॥

अर्थात् 'मैं अपने प्रजाजनोंको प्रसन्न और संतुष्ट रखनेके लिये स्नेह, दया, सौख्य अथवा प्राणाधिका जानकीका भी परित्याग कर सकता हूँ और यह सब करते हुए मुझे तनिक भी पीड़ा नहीं होगी।'

बालिवधके पश्चात् सुग्रीवका, रावणवधके पश्चात् विभीषणका राज्याभिषेक उनकी लोकमर्यादाके प्रति आस्थाका प्रमाण है। रावणके वधके पश्चात् अपने अपमानका स्मरण कर विभीषण रावणका दाह-संस्कारतक करनेसे पराङ्मुख होना चाहते थे। श्रीराम किसी अन्यके द्वारा भी यह कार्य सम्पादित करा सकते थे, परंतु इससे लोकमर्यादा-भंग होती, अतः श्रीरामने विभीषणसे कहा—

मरणान्तानि वैराणि निर्वृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव॥

(वा० रा०, युद्ध० १०९।२५)

अर्थात् 'विभीषण! वैर मरणपर्यन्त ही चलता है और जब कि हमारा उद्देश्य पूर्ण हो चुका है, तुम्हें किसी प्रकारका अन्यथाभाव इसके प्रति मनमें न रखते हुए इसका अन्तिम संस्कार करना चाहिये, क्योंकि अब तो यह हम दोनोंके लिये समान ही प्रिय है।'

लोक और शास्त्रकी मर्यादा है कि प्रत्येक व्यक्तिको प्रातःकाल निज गुरुजनोंको प्रणाम करना चाहिये, क्योंकि—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥

भगवान् राम इस मर्यादाका पूर्णतः पालन करते थे—जैसा कि गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने लिखा है—

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥

(मानस १।२०५।७)

अपनेसे बड़े व्यक्तिके क्रुद्ध हो जानेपर उसे शमित करनेके लिये किस प्रकारका व्यवहार करना चाहिये, इसका निदर्शन, धनुर्भङ्ग-प्रसंगमें राम-परशुराम-संवादमें मिलता है। श्रीराम-जैसी अलौकिक बन्धु-प्रियता, मातृ-पितृ-सेवा-परायणता, आज्ञाकारिता अन्यत्र देखी तो क्या सुनी भी नहीं जाती। शास्त्राज्ञा है—'प्रत्येक कार्य बड़ोंकी आज्ञासे ही करना उचित है।' इस शास्त्रीय मर्यादाका पालन भगवान् श्रीरामने जीवन भर किया—

'आयसु मागि करहिं पुर काजा।'

(मानस १।२०५।८)

गृध्रराज जटायुद्वारा सीताकी रक्षा करते हुए मरणासन्न हो जानेपर श्रीरामद्वारा उन्हें 'तात!' कहकर बुलाना तथा मृत्यूपरान्त अपने हाथसे उनकी और्ध्वदैहिक क्रिया करना,

श्रीरामद्वारा उपकारीके प्रति मानवीय मर्यादाका परिचायक सूत्र है। शबरीका आतिथ्य ग्रहण करना धर्मानुयायीकी मर्यादाका दिग्दर्शक है। अपने अधीनस्थ सामान्य कर्मचारियोंसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करना उदात्त मनका परिचायक तो है ही मानवताकी मर्यादाका भी निदर्शक है।

यही स्थिति उनकी अपने प्रजाजनोंके साथ थी। वे अपने समस्त प्रजाजनोंको अपने परिवारके सदस्यकी भाँति ही मानते थे। सदैव उनसे उनकी कुशलता पूछते रहते थे—

पौरान् स्वजनवन्नित्यं कुशलं परिपृच्छति।

(वा॰ रा॰, अयो॰ २। ३८)

श्रीरामकी इसी विशेषतासे प्रभावित होकर सारी प्रजा ईश्वरसे उनके कल्याणकी कामना करती थी—

स्त्रियो वृद्धास्तरुण्यश्च सायं प्रातः समाहिताः।
सर्वा देवान् नमस्यन्ति रामस्यार्थे मनस्विनः॥

(वा॰ रा॰, अयो॰ २। ५२)

भगवान् श्रीरामके अवतारका उद्देश्य ही मर्यादाकी स्थापना और रक्षा था, अतः अपने चरित्रद्वारा उन्होंने माता-पिताके प्रति कर्तव्य, पतिका पत्नीके प्रति कर्तव्य, पत्नीका पतिके प्रति कर्तव्य, भाईका भाईके प्रति, मित्रका मित्रके प्रति, ज्येष्ठका कनिष्ठके प्रति, स्वामीका सेवकके प्रति, सेवकका स्वामीके प्रति, आराध्यका आराधकके प्रति, शरण्यका शरणागतके प्रति, राजाका प्रजाके प्रति जो मर्यादित कर्तव्य है, उसकी शिक्षा संसारको दी और अपना मर्यादापुरुषोत्तम-विशेषण अन्वर्थक बनाया।

आज मानव-जीवन विभित्र समस्याओंके जालमें फँसा हुआ है। यदि इसका कारण खोजा जाय तो विदित होगा कि इन समस्याओंका एकमात्र कारण मर्यादाओंका अतिक्रमण ही है। इसी मर्यादातिक्रमणके कारण जीवनमें अशान्तिका साम्राज्य व्याप्त है। समाजके ज्येष्ठ-श्रेष्ठ मूर्धन्य व्यक्ति, जिन्हें समाजको मर्यादाकी शिक्षा अपने चरित्रद्वारा देनी चाहिये वे आज सभी मर्यादाओं, नैतिकताओंको भंगकर भोगमें लिप्त हो कनिष्ठोंको भी अपनी तरहका आचरण अपनानेकी प्रेरणा दे रहे हैं। ऐसी भयानक दशामें भगवान् श्रीरामका मर्यादा-रक्षक व्यक्तित्व और उनके प्रति अनन्य भक्ति-निष्ठा ही हमें पथभ्रष्ट होनेसे बचा सकती है।

रामचरितमानसमें 'रामराज्य'का स्वरूप

(डॉ॰ श्रीबुद्धसेनजी चतुर्वेदी)

रामचरितमानसमें एक आदर्श राज्यका दिग्दर्शन होता है। रामराज्य एक आदर्श प्रजातन्त्रवादी व्यवस्था है, जिसमें किसी प्रकारका शोषण और अत्याचार नहीं है। सभी लोग एक-दूसरेसे स्नेह रखते हैं। रामराज्यमें कोई किसीका शत्रु नहीं है। रामचन्द्रजीके राज्य-सिंहासनपर बैठते ही तीनों लोकोंमें हर्ष छा गया और सारे शोक समाप्त हो गये—

राम राज बैठें त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥

(मानस ७। २०। ७-८)

राम-प्रतापरूपी सूर्यके उदित होनेसे तीनों लोकोंमें आनन्दका प्रकाश भर गया। इसके साथ ही अविद्या, पाप, काम, क्रोध आदिका भी नाश हो गया—

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँ लोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन मन सोका॥

श्रीरामचन्द्रजी निष्काम और अनासक्त-भावसे राज्य करते थे। उनमें कर्तव्यपरायणता थी और वे मर्यादाके अनुरूप आचरण करते थे। जहाँ स्वयं रामचन्द्रजी शासन करते थे, उस नगरके वैभवका वर्णन नहीं किया जा सकता है—

रमानाथ जहँ राजा सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा रहीं अवध सब छाइ॥

(मानस ७। २९)

अयोध्यामें सर्वत्र प्रसन्नता थी। वहाँ दुःख और दरिद्रताका नामतक नहीं था। न कोई अकाल-मृत्युको प्राप्त होता था और न किसीको कोई पीड़ा थी। कोई मूर्ख और लक्षणहीन नहीं था। सभीके शरीर सुन्दर और नीरोग थे—

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥

(मानस ७। २१। ५-६)

सभी लोग अपने वर्ण और आश्रमके अनुरूप धर्ममें तत्पर होकर वेदमार्गपर चलते थे और आनन्द प्राप्त करते थे। वे निर्भय, शोकमुक्त और रोगरहित थे—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥

(मानस ७।२०)

रामराज्यमें दैहिक, दैविक और भौतिक ताप किसीको नहीं सताते थे। सभी लोग वेदोंमें वर्णित अपनी मर्यादाके अनुसार धर्मका अनुसरण करते थे—

दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

(मानस ७।२१।१-२)

धर्म अपने चारों चरणों (सत्य, शौच, दया और दान) से जगत्‌में व्याप्त था, स्वप्नमें भी पापका नाम नहीं था, सभी नर-नारी रामकी भक्तिमें पगे हुए थे और सभी परमगति (मोक्ष) के अधिकारी थे—

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥

(मानस ७।२१।३-४)

राम-राज्यमें सभी लोग सरल स्वभाववाले, धर्मपरायण और पुण्यात्मा थे। सभी चतुर और गुणी थे। सभी गुणोंका सम्मान करनेवाले, पण्डित तथा ज्ञानी थे। सभी एक-दूसरेके उपकारको माननेवाले थे, धूर्तता या कपट किसीमें नहीं था—

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

(मानस ७।२१।७-८)

सभी पुरुष एकपत्नीव्रती थे तथा स्त्रियाँ भी मन, वचन और कर्मसे पतिका हित करनेवाली थीं—

एक नारि ब्रत रत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी॥

(मानस ७।२२।८)

अयोध्यामें श्रीरामचन्द्रजी सात समुद्रोंकी मेखला (करधनी) वाली पृथिवीके एकमात्र शासक थे। उनके प्रत्येक रोममें अनेकों ब्रह्माण्ड थे, उनके लिये सात द्वीपोंकी यह प्रभुता कुछ अधिक नहीं थी—

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥

(मानस ७।२२।१-२)

नगरके स्त्री-पुरुष श्रीरामचन्द्रजीका गुणगान करते थे और श्रीरामचन्द्रजी सदा सबपर अत्यन्त प्रसन्न रहते थे।

रामके राज्यमें राजनीति स्वार्थसे प्रेरित न होकर प्रजाकी भलाईके लिये थी। इसमें अधिनायकवादकी छायामात्र भी नहीं थी। रामका राज्य मानव-कल्याणके आदर्शोंसे युक्त एक ऐसा राज्य था, जिसमें निःस्वार्थ प्रजाकी सेवा, निष्पक्ष आदर्श न्याय-व्यवस्था, सुखी तथा समृद्धिशाली समाज-व्यवस्था पायी जाती थी। श्रीरामचन्द्रजीने नगरवासियोंकी सभामें यह स्पष्ट घोषणा की कि 'भाइयो ! यदि मैं कोई अनीतिकी बात कहूँ तो तुमलोग निःसंकोच मुझे रोक देना'—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

(मानस ७।४३।६)

वनगमनसे पूर्व भी राम भरतको आदेश देते हैं कि वे उनकी अनुपस्थितिमें प्रजाको हर प्रकारसे सुखी रखें—

सो बिचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी॥

(मानस २।३०६।५)

श्रीराम सत्य, प्रेम और दयाकी मूर्ति थे। वे अपनी प्रजाको अपने माता-पिता और भाइयोंके समान प्यार करते थे। वे अपनी पत्नीसे बहुत स्नेह करते थे, लेकिन प्रजाके हितके लिये उसका परित्याग करनेमें भी उन्होंने संकोच नहीं किया है।

रामके राज्यमें प्रकृतिकी छटा भी देखने योग्य थी। वनोंमें वृक्ष सदैव फूल और फलोंसे लदे रहते थे। हाथी और सिंह वैर-भाव भूलकर एक साथ रहते थे। पशु-पक्षी अपनी स्वाभाविक शत्रुताको त्यागकर आपसमें प्रेमसे रहते थे—

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सँग गज पंचानन॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परस्पर प्रीति बढ़ाई॥

(मानस ७।२३।१-२)

पक्षी मधुर बोली बोलते थे। भाँति-भाँतिके पशुओंके समूह वनमें निर्भय विचरण करते थे और आनन्दित होते थे। शीतल मन्द सुगन्ध पवन प्रवाहित होता रहता था तथा भौंरे पुष्पोंका रस चूस कर गुंजार करते थे—

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनंदा॥

सीतल सुरभि पवन बह मंदा। गुंजत अलि लै चलि मकरंदा॥

(मानस ७। २३। ३-४)

माँगनेसे ही बेलें और वृक्ष मकरंदको टपका देते थे। गौएँ मनचाहा दूध दे देती थीं। पृथिवी सदैव खेतीसे सम्पन्न रहती थी। उस समय त्रेतामें ही सत्ययुगकी स्थिति उत्पन्न हो गयी थी—

लता बिटप माँगें मधु चवहीं। मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेताँ भइ कृतजुग कै करनी॥

(मानस ७। २३। ५-६)

सम्पूर्ण जगत्के स्वामीको राजा जानकर पर्वतोंने अनेक प्रकारकी मणियोंकी खानें प्रकट कर दी थीं। समस्त नदियोंमें श्रेष्ठ, शीतल, निर्मल और सुख देनेवाला स्वादिष्ट जल प्रवाहित होता था—

प्रगटीं गिरिन्ह बिबिधि मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी॥
सरिता सकल बहहिं बर बारी। सीतल अमल स्वाद सुखकारी॥

(मानस ७। २३। ७-८)

श्रीरामचन्द्रजीके राज्यमें चन्द्रमा अपनी अमृतमयी किरणोंसे पृथिवीको भर देते थे। सूर्य उतना ही ताप देते थे, जितनी आवश्यकता हो। मेघ भी आवश्यकतानुसार जल प्रदान करते थे—

बिधु महि पूर मयूखन्हि रबि तप जेतनेहि काज।
मागें बारिद देहिं जल रामचंद्र कें राज॥

(मानस ७। २३)

सभी लोगोंने नाना प्रकारकी पुष्पवाटिकाएँ यत्न करके लगा रखी थीं, जिनमें विभिन्न जातियोंकी सुन्दर लताएँ सदैव वसन्तकी तरह फूलती रहती थीं—

सुमन बाटिका सबहिं लगाईं। बिबिध भाँति करि जतन बनाईं॥
लता ललित बहु जाति सुहाईं। फूलहिं सदा बसंत कि नाईं॥

(मानस ७। २८। १)

भौंरे मनोहर स्वरसे गुंजार करते थे। सदा तीनों प्रकारकी सुन्दर वायु प्रवाहित होती रहती थी। बालकोंने अनेक प्रकारके पक्षी पाल रखे थे जो मधुर वाणी बोलते और उड़नेमें सुन्दर लगते थे—

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिधि सदा बह सुंदर॥
नाना खग बालकन्हि जिआए। बोलत मधुर उड़ात सुहाए॥

मोर, हंस, सारस और कबूतर भवनोंपर अत्यन्त शोभा पाते थे। ये पक्षी मणियोंकी दीवारों और छतोंमें जहाँ-तहाँ अपनी परछाईं देखकर (दूसरा पक्षी समझकर) अनेक प्रकार-से मधुर बोली बोलते और नृत्य करते थे—

मोर हंस सारस पारावत। भवननि पर सोभा अति पावत॥
जहँ तहँ देखहिं निज परिछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं॥

(मानस ७। २८। ५-६)

बाजार इतने सुन्दर थे कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। वहाँ वस्तुएँ बिना मूल्यके मिलती थीं। जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हों वहाँकी सम्पत्तिका वर्णन कैसे किया जा सकता है? वस्त्र-विक्रेता (बजाज), धनका लेन-देन करनेवाले (सराफ) तथा व्यापार करनेवाले (वणिक्) बैठे हुए स्वयं कुबेरके समान लगते थे। सभी लोग सुखी-सदाचारी और सुन्दर थे—

बाजार रुचिर न बनइ बरनत बस्तु बिनु गथ पाइए।
जहँ भूप रमानिवास तहँ की संपदा किमि गाइए॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहुँ कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुंदर नारि नर सिसु जरठ जे॥

(मानस ७। २८। छं०)

उत्तर दिशामें बहनेवाली सुन्दर सरयूका जल निर्मल और गहरा था। मनोहर घाट थे तथा किनारेपर जरा भी कीचड़ नहीं था। कुछ दूरपर वह सुन्दर घाट था जहाँ घोड़े और हाथियोंके समूह जल पिया करते थे। पानी भरनेके लिये बहुत-से मनोहर घाट (केवल स्त्रियोंके लिये) बने हुए थे। उन घाटोंपर पुरुष स्नान नहीं करते थे—

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहिं बाजि गज ठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहिं अस्नाना॥

(मानस ७। २९। १-२)

चारों वर्णोंके पुरुषोंके स्नान करनेके लिये राजघाट बना हुआ था, जो अत्यन्त सुन्दर और श्रेष्ठ था। सरयूके किनारे-किनारे देवताओंके मन्दिर थे, जिनके चारों ओर सुन्दर उपवन (बगीचे) थे—

राजघाट सब बिधि सुंदर बर। मज्जहिं जहाँ बरन चारिउ नर॥
तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर॥

(मानस ७। २९। ३-४)

नगरकी शोभा अवर्णनीय थी। नगरके बाहर भी परम सुन्दरता थी। अयोध्यापुरीके दर्शनमात्रसे सम्पूर्ण पापोंका नाश हो जाता था। वहाँ वन, उपवन, बावलियाँ और तालाब सुशोभित थे। सुन्दर बावलियों, तालाबों तथा मनोहर विशाल कुँओंकी शोभा अनुपम थी, उनकी रत्नजटित सीढ़ियों और निर्मल जलको देखकर देवता और मुनितक मोहित हो जाते थे। तालाबोंमें अनेक रंगके कमल खिले रहते थे, अनेकों पक्षी कलरव करते रहते थे और भौंरे गुंजार करते रहते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि सुंदर बगीचे, कोयल आदि पक्षी सुन्दर बोलीसे राहगीरोंको वहाँ आराम करनेके लिये बुला रहे हों—

बापीं तड़ाग अनूप कूप मनोहरायत सोहहीं।
सोपान सुंदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहहीं॥
बहु रंग कंज अनेक खग कूजहिं मधुप गुंजारहीं।
आराम रम्य पिकादि खग रव जनु पथिक हंकारहीं॥

(मानस ७। २९। छं०)

सुन्दर घर ऊपर आकाशको चूमते थे। घरोंके ऊपर जो कलश रखे थे उनका प्रकाश इतना दिव्य था कि ऐसा लगता था मानो वे सूर्य, चन्द्रमाके प्रकाशकी भी निन्दा कर रहे हों। घरोंमें अनेक मणियोंसे युक्त झरोखे शोभायमान थे तथा प्रत्येक घरमें मणियोंके दीपक प्रकाशमान थे—

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहुँ रबि ससि दुति निंदत॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं॥

(मानस ७। २७। ७-८)

घरोंमें मणियोंके दीपक और मूँगोंकी देहलियाँ चमकती थीं। मणियों (रत्नों) के खंभे और मरकतमणियों (पन्नों) से जटित स्वर्णकी दीवारें इतनी आकर्षक थीं मानो उन्हें स्वयं ब्रह्माने विशेष रूपसे बनाया हो। घर भव्य, मनोहर और विशाल थे, उनमें स्फटिकके आँगन बने थे। प्रत्येक द्वारपर बहुत-से खरादे हुए हीरोंसे जड़े सोनेके किवाड़ थे—

मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहरीं बिद्रुम रची।
मनि खंभ भीति बिरंचि बिरची कनक मनि मरकत खची॥
सुंदर मनोहर मंदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खचे॥

(मानस ७। २७। छं०)

इस प्रकार मानसमें वर्णित रामराज्यमें चारों ओर समता, शान्ति और सम्पन्नता है। इस राज्यमें राजा प्रजाका सेवक है, उसका सम्पूर्ण जीवन प्रजाके कल्याणके लिये समर्पित है। प्रजा भी राजासे इतना प्यार करती है कि राजाके आदेशोंका उल्लंघन नहीं करती। वह राजाके लिये अपना सर्वस्व अर्पित कर देनेमें तनिक भी संकोच नहीं करती। सभी प्रजाजन एक-दूसरेसे निःस्वार्थ प्रेम करते हैं। वे एक-दूसरेका उपकार करके अपने जीवनको सार्थक बनाते हैं। सभी लोग अपने अधिकारोंकी अपेक्षा अपने कर्तव्योंको अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इस समाज-व्यवस्थामें कपटकी छायामात्र भी नहीं है। इसमें किसी प्रकारका अहंकार, क्रोध, लोभ, शोषण, अत्याचार, अनाचार आदि नहीं है। श्रीरामचन्द्रजीका सम्पूर्ण जीवन प्राणिमात्रके कल्याणके लिये समर्पित रहा, वे अनासक्त-भावसे शासन करते थे तथा सभीको दैहिक, दैविक और भौतिक तापोंसे मुक्त करते थे। आज भी वे सभीके कल्याणके लिये अपनी कृपादृष्टि बिखेर रहे हैं। भक्तों, साधकों तथा संत-महात्माओं आदिपर तो उनका विशेष अनुग्रह रहता ही आया है।

राघव मायापति भगवान।
मायामें हम रुचि रचि बैठे, जीवन लहू-लुहान।
महिमासाली बिस्वरूप हे, सब बिधि कर कल्यान॥
मैं पामर क्रोधी-कामी हूँ, कैसे सरन गहूँ तजि मान।
मनके तेवर दूर करो हरि! हरो सकल अग्यान॥
प्रभुको छाँड़ि और को पूछै, करुनासागर रूपनिधान।
एक आस बिस्वास अटल हो, प्रभु-पद-प्रीति महान॥

—सुभाषचन्द्र पाण्डेय

राम-नामकी महिमापर महात्मा गाँधीके विचार

राम-नाम कैसे लें

अपने एक भाषणमें गाँधीजीने बताया कि किस तरह इंसानको सतानेवाली तीनों तरहकी बीमारियोंके लिये अकेले राम-नामको ही रामबाण इलाज बनाया जा सकता है। उन्होंने कहा—'इसकी पहली शर्त तो यह है कि राम-नाम दिलके अंदरसे निकलना चाहिये। लेकिन इसका मतलब क्या? लोग अपनी शारीरिक बीमारियोंका इलाज खोजनेके लिये दुनियाके आखिरी छोरतक जानेसे भी नहीं थकते, जब कि मन और आत्माकी बीमारियोंके सामने ये शारीरिक बीमारियाँ बहुत कम महत्त्व रखती हैं। मनुष्यका भौतिक शरीर तो आखिर एक दिन मिटनेहीवाला है। उसका स्वभाव ही है कि वह हमेशाके लिये रह ही नहीं सकता। और तिसपर भी लोग अपने अंदर रहनेवाली अमर आत्माको भुलाकर उसीका ज्यादा प्यार-दुलार करते हैं। राम-नाममें श्रद्धा रखनेवाला आदमी अपने शरीरको ऐसे झूठे लाड़ नहीं लड़ायेगा, बल्कि उसे ईश्वरकी सेवा करनेका एक जरिया-भर समझेगा। उसको इस तरहका माकूल जरिया बनानेके लिये राम-नामसे बढ़कर दूसरी कोई चीज नहीं।

राम-नामको हृदयमें अङ्कित करनेके लिये अनन्त धीरजकी जरूरत है। इसमें युग-के-युग लग सकते हैं, लेकिन यह कोशिश करने जैसी है। इसमें कामयाबी भी भगवान्‌की कृपासे ही मिल सकती है।

जबतक आदमी अपने अंदर और बाहर सचाई, ईमानदारी और पवित्रताके गुणोंको नहीं बढ़ाता, तबतक उसके दिलसे राम-नाम नहीं निकल सकता। हमलोग रोज शामकी प्रार्थनामें स्थितप्रज्ञका वर्णन करनेवाले श्लोक पढ़ते हैं। हममेंसे हरएक आदमी स्थितप्रज्ञ बन सकता है, बशर्ते कि वह अपनी इन्द्रियोंको अपने काबूमें रखे और जीवनको सेवामय बनानेके लिये ही खाये, पीये और मौज-शौक या हँसी-विनोद करे। मसलन्, अगर अपने विचारोंपर आपका कोई काबू नहीं है और अगर आप एक तंग अँधेरी कोठरीमें उसकी तमाम खिड़कियाँ और दरवाजे बंद करके सोनेमें कोई हर्ज नहीं समझते और गंदी हवा लेते हैं या गंदा पानी पीते हैं, तो मैं कहूँगा कि आपका राम-नाम लेना बेकार है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि चूँकि आप जितने चाहिये उतने पवित्र नहीं हैं, इसलिये आपको राम-नाम लेना छोड़ देना चाहिये। क्योंकि पवित्र बननेके लिये भी राम-नाम लेना लाभकारी है। जो आदमी दिलसे राम-नाम लेता है, वह आसानीसे अपने-आपपर काबू रख सकता है और अनुशासनमें रह सकता है। उसके लिये तन्दुरुस्ती और सफाईके नियमोंका पालन करना सरल हो जायगा। उसकी जिंदगी सहज भावसे बीत सकेगी—उसमें कोई विषमता नहीं होगी। वह किसीको सताना या दुःख पहुँचाना पसंद नहीं करेगा। दूसरोंके दुःखोंको मिटानेके लिये, उन्हें राहत पहुँचानेके लिये खुद तकलीफ उठा लेना उसकी आदतमें आ जायगा और उसको हमेशाके लिये एक अमिट सुखका लाभ मिलेगा—उसका मन एक शाश्वत और अमर सुखसे भर जायगा। इसलिये मैं कहता हूँ कि आप इस कोशिशमें लगे रहिये और जबतक काम करते हैं, तबतक सारा समय मन-ही-मन राम-नाम लेते रहिये। इस तरह करनेसे एक दिन ऐसा भी आयेगा, जब राम-नाम आपका सोते-जागतेका साथी बन जायगा और उस हालतमें आप ईश्वरकी कृपासे तन, मन और आत्मासे पूरे-पूरे स्वस्थ और तन्दुरुस्त बन जायँगे।

× × ×

राम-नाम-जैसा कोई जादू नहीं

एक प्रार्थना-सभामें गाँधीजीने कहा था—राम-नाम सिर्फ कुछ खास आदमियोंके लिये ही नहीं है, वह सबके लिये है। जो रामका नाम लेता है, वह अपने लिये एक भारी खजाना जमा करता जाता है। और यह तो एक ऐसा खजाना है, जो कभी खूटता (घटता) ही नहीं। जितना इसमेंसे निकालो, उतना बढ़ता ही जाता है। इसका अन्त ही नहीं है। और जैसा कि उपनिषद् कहता है—'पूर्णमेंसे पूर्ण निकालो तो पूर्ण ही बाकी रहता है', वैसे ही राम-नाम तमाम बीमारियोंका एक शर्तिया इलाज है; फिर चाहे वे शारीरिक हों, मानसिक हों या आध्यात्मिक हों।

लेकिन शर्त यह है कि राम-नाम दिलसे निकले। क्या बुरे विचार आपके मनमें आते हैं? क्या काम या लोभ आपको सताते हैं? अगर ऐसा है तो राम-नाम-जैसा कोई

जादू नहीं। फर्ज कीजिये कि आपके मनमें यह लालच पैदा होता है कि बगैर मेहनत किये, बेईमानीके तरीकेसे, आप लाखों रुपये कमा लें। लेकिन अगर आपको राम-नामपर श्रद्धा है, तो आप सोचेंगे कि अपने बीबी-बच्चोंके लिये आप ऐसी दौलत क्यों इकट्ठी करें जिसे वे शायद उड़ा दें ? अच्छे चाल-चलन और अच्छी तालीम और ट्रेनिंगके रूपमें उनके लिये ऐसी विरासत क्यों न छोड़ जायँ, जिससे वे ईमानदारी और मेहनतके साथ अपनी रोटी कमा सकें ? आप यह सब सोचते तो हैं, लेकिन कर नहीं पाते। मगर राम-नामका निरन्तर जप चलता रहे, तो एक दिन वह आपके कण्ठसे हृदयतक उतर जायगा और रामबाण उपाय साबित होगा। वह आपके सब भ्रम मिटा देगा; आपके झूठे मोह और अज्ञानको छुड़ा देगा। तब आप समझ जायँगे कि आप कितने पागल थे, अपने बाल-बच्चोंके लिये करोड़ोंकी इच्छा करते थे, बजाय इसके कि उन्हें राम-नामका वह खजाना देते, जिसकी कीमत कोई पा नहीं सकता, जो हमें भटकने नहीं देता, जो मुक्तिदाता है। और आप खुशीसे फूले नहीं समायेंगे। आप अपने बाल-बच्चोंसे और अपनी पत्नीसे कहेंगे 'मैं करोड़ों कमाने गया था, मगर वह कमाना तो भूल गया। दूसरे करोड़ लाया हूँ। वे पूछेंगे—'कहाँ है वह हीरा, जरा देखें तो !' जवाबमें आपकी आँखें हँसेंगी, मुँह हँसेगा और धीरेसे आप जवाब देंगे—'जो करोड़ोंका पति है, उसे (उस राम-नामको) मैं हृदयमें रखकर लाया हूँ। तुम भी चैनसे रहोगे, मैं भी चैनसे रहूँगा।'

× × ×

कुदरती इलाजमें राम-नाम

प्राकृतिक उपचारके इलाजोंमें सबसे समर्थ इलाज राम-नाम है। इसमें अचंभेकी कोई बात नहीं। एक मशहूर वैद्यने मुझसे कहा था—मैंने अपनी सारी जिंदगी मेरे पास आनेवाले बीमारोंको तरह-तरहकी दवाकी पुड़िया देनेमें बितायी है, लेकिन जब आपने शरीरके रोगोंको मिटानेके लिये राम-नामकी दवा बतायी, तब मुझे याद पड़ा कि चरक और वाग्भट-जैसे हमारे पुराने धन्वन्तरियोंके वचनोंसे भी आपकी बातको पुष्टि मिलती है। आध्यात्मिक रोगोंको (आधियोंको) मिटानेके लिये राम-नामके जपका इलाज बहुत पुराने जमानेसे हमारे यहाँ होता आया है। लेकिन चूँकि बड़ी चीजमें छोटी चीज भी समा जाती है, इसलिये मेरा यह दावा है कि हमारे शरीरकी बीमारियोंको दूर करनेके लिये भी राम-नामका जप सब इलाजोंका इलाज है। प्राकृतिक उपचारक अपने बीमारसे यह नहीं कहेगा कि 'तुम मुझे बुलाओ तो मैं तुम्हारी सारी बीमारी दूर कर दूँ।' वह तो बीमारको सिर्फ यह बतायेगा कि प्राणीमात्रमें रहनेवाला और सब बीमारियोंको मिटानेवाला तत्त्व कौन-सा है। किस तरह उस तत्त्वको जाग्रत् किया जा सकता है, और कैसे उसको अपने जीवनकी प्रेरक शक्ति बनाकर उसकी मददसे अपनी बीमारियोंको दूर किया जा सकता है। अगर हिन्दुस्तान इस तत्त्वकी ताकतको समझ जाय, तो आज हमारा जो देश बीमारियों और कमजोर तबीयतवालोंका घर बन बैठा है, वह तन्दुरुस्त और ताकतवर शरीरवाले लोगोंका देश बन जाय।

राम-नामकी शक्तिकी अपनी कुछ मर्यादा है और उसके कारगर होनेके लिये कुछ शर्तोंका पूरा होना जरूरी है। राम-नाम कोई जंतर-मंतर या जादू-टोना नहीं। जो लोग खा-खाकर खूब मोटे हो गये हैं, और जो अपने मुटापेकी और उसके साथ बढ़नेवाली बादीकी आफतसे बच जानेके बाद फिर तरह-तरहके पकवानोंका मजा चखनेके लिये इलाजकी तलाशमें रहते हैं, उनके लिये राम-नाम किसी कामका नहीं। राम-नामका उपयोग तो अच्छे कामके लिये होता है। बुरे कामके लिये हो सकता होता तो चोर और डाकू सबसे बड़े भक्त बन जाते। राम-नाम उनके लिये है, जो दिलके साफ हैं और जो दिलकी सफाई करके हमेशा साफ-पाक रहना चाहते हैं। भोग-विलासकी शक्ति या सुविधा पानेके लिये राम-नाम कभी साधन नहीं बन सकता। ×××× अपने शरीरको अपने सिरजनहारकी पूजाके लिये मिला हुआ एक साधन समझनेके बदले उसीकी पूजा करने और उसको किसी भी तरह बनाये रखनेके लिये पानीकी तरह पैसा बहानेसे बढ़कर बुरी गत और क्या हो सकती है ? इसके खिलाफ राम-नाम रोगको मिटानेके साथ-ही-साथ आदमीको भी शुद्ध बनाता है और इस तरह उसको ऊँचा उठाता है। यही राम-नामका उपयोग है, और यही उसकी मर्यादा।

(प्रेषक—श्रीविश्वनाथजी जालान)

मेरे राम

(श्रीपरिपूर्णानन्दजी वर्मा)

मेरे राम केवल 'रमते राम' वाले नहीं हैं। प्रत्युत वाल्मीकिके मर्यादापुरुषोत्तम या गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीकी अमर महान् रचना रामचरितमानसके परम पुरुषसे भी वे अधिक बोधगम्य हैं जो वर्णन तथा शब्दकी मायासे भी ऊपर, अमर अलग प्रभु हैं; जो प्रत्येक प्राणीके अन्तरमें, आत्मामें बैठे हैं और जो उनका दर्शन करना चाहे—'जब जरा गर्दन झुकायी देख ले।' तुलसीके रामचरितमानसकी रचना ई० सन् १५७६ में वाराणसीमें हुई थी। उसका कुछ अंश उन्होंने अयोध्याके वर्तमान हनुमान-टीलापर भी लिखा था। पर उनसे भी पहले ई० सन् १३९८ में जन्म लेनेवाले कबीरने उन्हें जन-मानसके सामने अखण्ड, अनन्त विभूतिके रूपमें प्रस्तुत कर दिया था। कबीरसे भी और पहले ही उनके गुरु रामानन्दने १४ वीं शताब्दीमें 'रामावत' सम्प्रदायकी स्थापना कर दी थी। इससे भी पूर्व कालिदासके रघुवंश तथा भास एवं भवभूतिके नाटकोंके राम हमें मिल जाते हैं और वे इतने व्यापक हैं कि सन् १०१४ ई०के जैन संत अमितगतिने रामको चतुर्दिक् व्याप्त, मानवका रक्षक तथा सब कुछ जाननेवाला स्वीकार किया है। रामका यह महत्त्व है कि निरीश्वरवादी जैन विद्वान् भी उनकी महत्ताको स्वीकार करते हैं।

आदिशंकराचार्यने, जो परम शैव थे, बदरिकाश्रममें भी भगवान् श्रीरामकी मूर्तिकी स्थापना की थी, जिसे मध्वाचार्य वहाँसे ले आये थे। १६ वीं सदीके महाराष्ट्र संत एकनाथ-का 'भावार्थरामायण' असाधारण भक्ति-रसका ग्रन्थ है। वाल्मीकिके मर्यादापुरुषोत्तम उस समयकी देश तथा समाजकी परिस्थितिमें भक्ति, श्रद्धा, देशकी रक्षा, आर्यसभ्यताके प्रचारके प्रतीक बन गये, हिन्दू ही नहीं, समूचे भारतीय समाजने उन्हें अपना लिया और वे सब धर्म तथा मजहबोंकी एकताके प्रतीक बन गये।

तात्पर्य यह कि राम इतने लोकप्रिय हो गये कि लोग उनके जीवनके हर पहलूपर विचार करने लगे थे। महाभारतमें उद्योगपर्वमें विदुरने युधिष्ठिरसे कहा था कि 'कुलकी रक्षाके लिये ग्राम त्याग दे, देशकी रक्षामें ग्रामको त्याग दे और आत्माकी रक्षामें संसार त्याग दे।' रामचरित इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। देशके लिये उन्होंने राज्य तकको ठुकरा कर वनवास स्वीकार किया, राज्य-तिलकके बाद जब आत्मतत्त्वमें विलीन होनेका समय आ गया तो वे सरयू नदीमें विलीन हो गये। उनके चरित्रमें जन-मानसको अपने जीवनकी हर पहेलीका उत्तर मिलता गया। पर हमारे पूर्वके संतोंने उनके उस तत्त्वको पकड़ा जो सर्वधर्मकी एकता तथा अखण्डता, ऐक्य तथा असम्प्रदायवादका प्रत्यक्ष उदाहरण था। राम-तत्त्वके विषयमें कबीर ठीक कहते हैं—

भारी कहौं तो बहु डरौं, हल्का कहूँ तो झूठ।
मैं क्या जानूँ रामको, नैनन कबहूँ न दीठ॥

वही कबीर पुनः कहते हैं—

मैं गुलाम मोहि बेच गुसाई।
तन मन धन मेरा रामजीके तांई॥

कबीर तो इतने राम-भक्त थे कि उनका कहना है—

र रा कहि टोप म मा करि बख्तर॥

जितना मैंने पढ़ा है, मैं दावेके साथ कह सकता हूँ कि भगवती सीताके सम्बन्धमें जितनी महान् उपमा औरंगजेबद्वारा मारे जानेवाले शाहजहाँके ज्येष्ठ पुत्र तथा उपनिषदोंके विद्वान् दाराशिकोहने दी है, वहाँतक कोई पहुँच नहीं पाया है। वे लिखते हैं कि 'ऐ सीता ! तू इतनी पाक और साफ है कि तूने जो वस्त्र पहन रखा है, वह भी तेरे शरीरको नहीं देख सकता, जैसे शरीरके भीतर आत्मा है, पर वह शरीर आत्माको नहीं देख पाता।' फारसीमें वे लिखते हैं—

तनेश रा पेरेहन उरियाँ न दीदम
चूँ ज़न अंदर तनरा तन जाय न दीदा।

सन् १६८३ ई०के आस-पास जन्म लेनेवाले नरसी मेहताने कहा था—

राम नाम धन हमारे, न बाजे न गाजे।

गुरु नानक जिनकी मृत्यु सन् १५३८ में हुई थी, जन्म १४६८ में, उनका उपदेश है—

नाम न जपिया रामका
मूड़े फिर पाछे पछिताय।

मुसलिम संत दादू जिनका जन्म सन् १५४४ में हुआ था,

कट्टर रामभक्त थे। वे रामपर आसक्त थे और चाहते थे कि राम उनपर आसक्त हो जायँ। इसीलिये उन्होंने लिखा था—

आसिक माशूक ह्वै गया, इसक कहावै सोय।

दादू उस मासूक का, रामहि आसिक होय॥

मीरा बाईका जन्म लगभग सन् १५१२ में हुआ था। वे रामपर निछावर थीं। वे कहती थीं—

देखे बिन रघुनाथ के, जिय की जरनि न जाय।

वे पुनः कहती हैं—

राम नाम रस पीजै मनुआ, राम नाम रस पीजै॥

मुसलिम संत रज्जबका जन्म सन् १५६३ में हुआ था तथा उनकी मृत्यु ११६ वर्षकी अवस्थामें हुई थी। वे कट्टर राम-भक्त थे। उनकी उक्ति है—

रज्जब रचिये राम सूँ तौ तजिये संसार।

दरिया साहब नामके दो मुसलिम संत हुए हैं—एक मारवाड़के तथा दूसरे उत्तरप्रदेश फैजाबाद जिलेके। मारवाड़ी दरिया साहब कहते हैं—

दरिया आतम मल भरा कैसे निर्मल होय।

साबुन लागे प्रेमका, राम नाम जल धोय॥

× × ×

दरिया सुमरे एकहि राम

एकै राम सारे सब काम।

१९वीं सदीके प्रारम्भमें उत्तरप्रदेशमें जन्म लेनेवाले पलटूदासको कबीरका अवतार मानते हैं। पलटूका वचन है—

रामके दरकी बात कसौटी खरी है।

झूठा टिका न कोय, आज की घरी लौ॥

पलटू इतने उदार विचारके थे कि उनका कहना है—

सुनके निन्दक मर गया, पलटू दिया है रोय।

निन्दक जीवे जुगन जुग काम हमारा होय॥

किंतु सुन्दरदासने उपदेश दिया था—

हिन्दू की हद छाँडि के तजौ तुरुक की राह।

सुन्दर सहजै चीन्हिये एकै राम अल्लाह॥

मेरे राम वही हैं जो भारतके प्रत्येक निवासी, हर धर्मको माननेवालेके पूज्य हैं, आराध्य हैं; संस्कृति, एकता, सभ्यता तथा धर्मके प्रतीक हैं; संतोष, उद्यम, क्षमा, बल तथा जप आदि धर्मके अनेक भेदोपभेद हैं। श्रीरामका चरित्र इन गुणोंका प्रत्यक्ष उदाहरण है। उनमें महानता इतनी है कि उन्होंने अपने परम शत्रु रावणको महात्मा तक कहा है। मेरे राम किसीके निन्दक नहीं थे। वे भगवान् व्यासके इस वचनके साक्षात् स्वरूप थे—**'धर्मं यो बाधते धर्मः, न स धर्मः कुवर्त्म तत्।'** जो धर्म दूसरोंकी निन्दा करता है वह धर्म नहीं असत्मार्ग अथवा अधर्म है। श्रीराम हमारे जीवनके पग-पगपर इतने निकट हैं कि न जाने कितने अतीत कालसे वे हमपर छाये हुए हैं, आदर्श बन गये हैं।

सिंधके सूफी शाह लतीफ़ (जन्म १५८९) माला लेकर रामका नाम अल्लाहके साथ जपते थे। एक दिन सफरमें एक गाँव पहुँचे। कूएँपर पानी पीने गये। दो युवतियाँ पानी भरकर आपसमें बातें कर रही थीं। एकने कहा कि मुझे अपने प्रेमीसे सप्ताहमें चार बार मिलना होता है। दूसरीने कहा—'छिः, क्या प्रेममें मिलनेका हिसाब रखा जाता है?' शाह लतीफ़को ज्ञान हो गया कि भगवत्प्रेममें गिनकर माला जपनेसे क्या लाभ? उसी दिनसे उन्होंने दिन-रात मनमें अपना जप शुरू कर दिया। मेरे राम ऐसे ही जापके लिये हैं।

सुषुम्ना नाड़ीके ६७ वें अंशमें तन्त्री नाडी है, जिससे निरन्तर 'ॐ'से 'क्ष' तक ५१ स्वर-वर्णोंका नाद हो रहा है। ध्यानसे एकाग्र होकर सुनिये तो आपके अन्तरमें 'राम'की ध्वनि इसी नाडीमें हो रही है। उसे सुनिये—बड़ा आनन्द आयेगा, मस्त हो जायँगे। यह तो वैज्ञानिक रूपसे सिद्ध है कि शक्तिका विकास नादके रूपमें होता है और नादसे ही विन्दुका। यह नाद राम है, विन्दु 'ॐ' है। अतः मेरे 'ॐ' राम ही हैं।

सखा परम परमारथु एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥

× × ×

स्वारथ साँच जीव कहुँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥

सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ॥

(डॉ॰ श्रीराजदेवजी शर्मा, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

विशुद्ध संत नित्यमुक्त श्रीकाकभुशुण्डिजीके द्वारा उद्भावित—***'सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा ॥'***—इस कथनका तात्पर्य है कि वही शरीर पवित्र एवं सुन्दर है, जिसे पाकर प्रभु श्रीरामके चरणोंमें स्नेह किया जाय और उनकी सेवा (भक्ति) की जाय। जिस तनसे श्रीराघवेन्द्रकी पद-पङ्कज-सेवा नहीं होती, वह अस्वच्छ और असुन्दर है। भक्तिहीन शरीर मलिन एवं कुरूप है। यहाँ दो विवेच्य विन्दुओंकी ओर निर्देश किया गया है—(१) देहकी अपवित्रता या मलिनता और (२) उसकी सौन्दर्यहीनता या कुरूपता।

१-शरीरकी अपवित्रता या मलिनता

वस्तुतः यह शरीर मूलतः मलिन है। इसकी मलिनताके तीन कारण माने गये हैं—(१) उत्पत्तिजन्य मल, (२) इन्द्रियजन्य मल और (३) आभ्यन्तरिक मल। प्रथम मलका सम्बन्ध शरीर-रचनासे है। यह तो निर्विवाद सत्य है कि यह देह मल (रज-वीर्य) से संजनित होकर नौ मासतक मल-मूत्रके महापङ्कमें पड़ा रहता है और गर्भसे बाहर आकर भी मलोत्पादनके गर्तमें डूबा रहता है।

दूसरे प्रकारके मलोंका सम्बन्ध इन्द्रियोंसे है। सांसारिक विषय-भोगोंके सेवनसे पञ्चकर्मेन्द्रियाँ तथा पञ्चज्ञानेन्द्रियाँ कलुषित होती हैं। कविकुलशेखर महामना गोस्वामीजीने विनय-पत्रिका (पद ८२) में इसका स्पष्ट चित्रण प्रस्तुत किया है। पर-स्त्रीकी ओर देखनेसे नेत्र, पर-निन्दा सुननेसे श्रवण और परदोष-कथनसे वचन मलिन होते हैं—

नयन मलिन परनारि निरखि,……।
परनिंदा सुनि श्रवन मलिन भे, बचन दोष पर गाये ॥

महाभारतमें आया है कि होता-रूपी दस इन्द्रियाँ दस देवतारूप अग्निमें दस विषयरूपी हविष्य एवं समिधाओंका हवन करती रहती हैं। इस प्रकार इन्द्रियाँ सतत विषयोंका सेवन करती रहती हैं।[१]

तीसरे प्रकारके मलोंका सम्बन्ध अन्तःकरण-चतुष्टय (मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार) से है। काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि छः विकार जीवके आन्तर-मल माने गये हैं। विषयोंके संग (चिन्तन) से मन मलिन होता है—***'मन मलिन बिषय सँग लागे।'*** (विनय-पत्रिका, पद ८२)। आत्मतत्त्वको न स्वीकार कर मायिक भोगों एवं जागतिक सुखोंको सर्वस्व मानना बुद्धिका मल है। जन्म-जन्मान्तरोंसे कर्म-कीचमें सने रहनेके अभ्यासको चित्तका अशौच कहा जाता है—

जनम अनेक किये नाना बिधि करम-कीच चित सान्यो।

(वि॰ प॰, पद ८८)

वस्तुतः अनेक जन्मोंके शुभाशुभ कर्म भव-बन्धनके हेतु हैं—

एवं नृणां क्रियायोगाः सर्वे संसृतिहेतवः।

(श्रीमद्भा॰ १।५।३४)

सूरदासजी कहते हैं कि जन्म-जन्मान्तरोंके कर्मोंसे जीव अपने-आपको बाँध लेता है—

जनम जनम बहु करम किए हैं तिनमें आपुन आपु बँधायो।

(सूरसागर)

विडम्बना तो यह है कि जीव शुभकर्मोंके मलसे अशुभ कर्मोंके मलको धोना चाहता है। यही मलसे मलको धोना है—

करम-कीच जिय जानि, सानि चित, चाहत कुटिल मलहि मल धोयो।

(विनय-पत्रिका, पद २४५)

किंतु जैसे पानीके मथनेसे घीकी प्राप्ति नहीं होती, वैसे ही मलसे मलका प्रक्षालन नहीं होता—

छूटइ मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ ॥

(रा॰ च॰ मा॰ ७।४९।५)

सच तो यह है कि मलसे धोनेकी क्रिया जीवको और अधिक मलाविष्ट कर देती है। सुकृतोंके सम्पादनसे भी अहंभावका संजनन होता है और अहंकार पुनः संसृतिमूल एवं

१-दशेन्द्रियाणि होतॄणि हवींषि दशभाविनी। विषया नाम समिधो हूयन्ते तु दशाग्निषु॥

(महा॰, आश्व॰, अनुगीतापर्व २१।५)

शूलप्रद है। अतएव पुण्यकर्मोंसे भी, प्रकारान्तरसे पाप-वृत्तिका जन्म होता रहता है। इसीको गोस्वामीजीने इस रूपमें कहा है—

करतहुँ सुकृत न पाप सिराहीं। रकतबीज जिमि बाढ़त जाहीं॥

(विनय०, पद १२८)

मल-नाशके साधन—शास्त्रोंमें उपर्युक्त तीनों मलोंको धोनेके उपाय बतलाये गये हैं। शरीरके सर्जनजन्य मलोंके प्रक्षालनके लिये योगदर्शनमें प्राणायामका विधान है—'**प्राणायामादशुद्धिक्षयः।**' इन्द्रियजन्य मलोंका नाश इन्द्रियों-को विषय-भोगसे मोड़कर उन्हें भगवदर्पित करनेसे होता है।[१]

श्रवन कथा, मुख नाम, हृदय हरि, सिर प्रनाम, सेवा कर अनुसरु।
नयननि निरखि कृपा-समुद्र हरि अग-जग-रूप भूप सीताबरु॥

(विनय०, पद २०५)

परमभागवत श्रीअम्बरीषजीका कर्मकलाप इसका श्रेष्ठ दृष्टान्त है। उन्होंने अपने मनको श्रीकृष्णके चरणोंमें, वाणीको भगवद्गुण-कथनमें, हाथोंको मन्दिर-मार्जनमें, नेत्रोंको श्रीविग्रह-के दर्शनमें, अङ्गोंको भगवद्भक्तोंके स्पर्शमें, नासिकाको तुलसीके दिव्य गंधमें और रसनाको नैवेद्यके आस्वादनमें संलग्न कर दिया था। इसी प्रकार वे अन्य इन्द्रियोंको भी सर्वात्मा श्रीकृष्णको अर्पित कर निर्मल हो गये थे। सुग्रीवको भी भगवद्दर्शनके पश्चात् ऐसी ही निर्मल बुद्धि प्राप्त हुई थी। उनकी भी कामना थी कि उनकी समस्त इन्द्रियाँ ईश्वरार्पित हो जायँ। वस्तुतः इन्द्रियोंकी सार्थकता भगवत्सेवामें है। भगवान्को समर्पित की हुई वस्तु कल्याणदायिनी होती है तथा अन्यको दी हुई वस्तु केवल दुःखावह होती है—

कृष्णार्पितं कुशलदमन्यार्पितमसौख्यदम्।

(पद्मपु०, स्वर्ग० ६। १६)

तीसरी आभ्यन्तरिक अशुद्धिका विनाश प्रेमा-भक्ति-जलसे ही सम्भव है—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(रा० च० मा० ७। ४९। ६)

राम-चरन-अनुराग-नीर बिनु मल अति नास न पावै॥

(विनय०, पद ८२)

पृथुजी कहते हैं कि भगवान्के चरण-कमलोंकी सेवाके लिये निरन्तर बढ़नेवाली अभिलाषा उन्हींके चरणनखसे निकली हुई गङ्गाजीके समान संसार-तापसे संतप्त जीवोंके समस्त जन्मोंके संचित मनोमलको तत्काल नष्ट कर देती है। जिनके पादपद्मोंका आश्रय लेनेवाला पुरुष सब प्रकारके मानसिक दोषोंको धो डालता है तथा वैराग्य और तत्त्व-साक्षात्काररूप बल पाकर फिर इस दुःखमय संसारचक्रमें नहीं पड़ता—

यत्पादसेवाभिरुचिस्तपस्विना-
मशेषजन्मोपचितं मलं धियः।
सद्यः क्षिणोत्यन्वहमेधती सती
यथा पदाङ्गुष्ठविनिःसृता सरित्॥
विनिर्धुताशेषमनोमलः पुमा-
नसङ्गविज्ञानविशेषवीर्यवान्।
यदंघ्रिमूले कृतकेतनः पुन-
र्न संसृतिं क्लेशवहां प्रपद्यते॥

(श्रीमद्भा० ४। २१। ३१-३२)

अतः आन्तर-मलोंका विनाश श्रीरामके चरणोंमें प्रेम करनेसे ही सम्भव है। भगवान्का तो उद्घोष है कि भक्तियुक्त प्राणी न केवल अपनेको प्रत्युत समस्त भुवनको पावन कर देता है—'**मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति।**' (श्रीमद्भा० ११। १४। २४)

(२) शरीरकी कुरूपता और उसे मिटानेका उपाय

स्वस्थता सुन्दरताकी पीठिका है। स्वस्थ एवं रोगमुक्त शरीर ही सुन्दर हो सकता है। रोग या व्याधियाँ हमें तेजोहीन कर देती हैं। तेजोहीन शरीरमें सौन्दर्य कहाँ? अतएव हमें रोग-मुक्तिका उपाय ढूँढ़ना होगा। वस्तुतः यह शरीर व्याधियों-का मन्दिर है। इन व्याधियोंमें मानस-रोग अधिक जटिल है। शारीरिक एवं मानसिक—दोनों रोगोंका मूल मोह (अज्ञान)

१-चक्षुर्भ्यां श्रीहरिरेव प्रतिमादिनिरूपणम्। श्रोत्राभ्यां कलयेत् कृष्णगुणनामान्यहर्निशम्॥
जिह्वया हरिपादाम्बु स्वादितव्यं विचक्षणैः। घ्राणेनाघ्राय गोविन्दपादाब्जतुलसीदलम्॥
त्वचाऽऽस्पृश्य हरेर्भक्तं मनसाऽऽध्याय तत्पदम्। कृतार्थो जायते जन्तुर्नात्र कार्या विचारणा॥
(पद्मपु०, स्वर्गखण्ड ६१। ९७—९९)

है। इस मोहसे पुनः काम, क्रोध, लोभ, मनोरथ, ममता, अहंकारादि अनेक व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं। इन व्याधियोंसे जीव सतत संतप्त है। इनमेंसे किसी एक रोगके भी वह वशीभूत हो गया तो मृत्यु निश्चित है, फिर एकत्र होनेपर तो ये असाध्य-से हो जाते हैं, ऐसी दशामें शान्ति प्राप्त करना बहुत कठिन है। यद्यपि इन रोगोंको दूर करनेके लिये शास्त्रोंमें जप, तप, दान, धर्म, आचारादि अनेक उपचार बतलाये गये हैं, किंतु इनसे रोगमुक्ति नहीं होती है।[१] तो फिर इन कष्टप्रद रोगोंको निर्मूल करनेकी ओषधि क्या है? पूज्यपाद गोस्वामीजी कहते हैं कि श्रीरघुनाथजीकी भक्ति ही संजीवनी बूटी है, जिसे श्रद्धापूर्वक अनुपानके साथ सेवन करनेसे सभी रोग समूल नष्ट हो जाते हैं। इस बूटीके साथ विषयोंमें असंग एवं सद्गुरुमें विश्वास भी आवश्यक है। रोगमुक्तिका एकमात्र उपाय श्रीरघुनाथजीकी कृपा ही है।—

राम कृपाँ नासहिं सब रोगा। जौं एहि भाँति बनै संयोगा॥
सदगुर बैद बचन बिस्वासा। संजम यह न बिषय कै आसा॥
रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा मति पूरी॥
एहि बिधि भलेहिं सो रोग नसाहीं। नाहिं त जतन कोटि नहिं जाहीं॥

(रा० च० मा० ७। १२२। ५—८)

इस प्रकार विमल ज्ञान-जलसे शुद्ध होकर जब प्राणी श्रीराम-भक्तिसे युक्त होता है तब जाकर शरीर स्वच्छ और सुन्दर बनता है। अतएव भक्तियुक्त शरीर ही सुन्दर है।

भगवान्‌के नित्य पार्षद महाज्ञानी गरुडजीको यह संदेह था कि काक-तनमें भुशुण्डिजीको भक्ति कैसे मिल गयी। अर्थात् अपवित्र, असुन्दर तथा नीच योनिका यह काक-तन भक्तिका अधिकारी कैसे? इसी संदेहके निवारणमें श्रीभुशुण्डिजीकी यह श्रुतिसम्मत स्थापना है कि जिस तनसे भगवत्प्रेम हो वही स्वच्छ, सुन्दर एवं श्रेष्ठ है। और चाहे जो कोई भी प्राणी हो उसमें यदि श्रीरघुनाथजीकी भक्ति नहीं है तो सुख भी नहीं है—

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥
श्रुति पुरान सब ग्रंथ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥

(रा० च० मा० ७। १२२। १३-१४)

वस्तुतः भक्तिमें स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, ब्राह्मण-शूद्र, वर्ण-योनि आदि सम्बन्धी कोई भेद नहीं रहता। भगवान् श्रीकृष्णकी उद्घोषणा है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम्॥

(गीता ९। ३२)

'पापयोनि' शब्दसे असुर, राक्षस, पशु, पक्षी आदि सभीका अनुमान कर लेना चाहिये। ये सभी भगवद्भक्तिके अधिकारी हैं। भगवद्वचन है—

केवलेन हि भावेन गोप्यो गावो नगा मृगाः।
येऽन्ये मूढधियो नागाः सिद्धा मामीयुरञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११। १२। ८)

'गोपियाँ, गायें, वृक्ष, पशु, नाग और अन्य भी मूढबुद्धि प्राणियोंने अनन्य भावके द्वारा सिद्ध होकर अनायास ही मेरी प्राप्ति कर ली है।'

महर्षि शाण्डिल्यने कहा है—**'आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत्।'** (शाण्डिल्य-भक्तिसूत्र ७८)। अर्थात् जैसे दया, क्षमा, उदारता आदि सामान्य धर्मोंके मात्र मनुष्य ही अधिकारी हैं, वैसे ही भगवद्भक्तिके अधम-से-अधम योनिसे लेकर ऊँची-से-ऊँची योनितकके सभी प्राणी अधिकारी हैं।

भक्तियुक्त चाण्डाल भी पवित्र है। इसके विपरीत भक्तिहीन व्यक्तिको सत्य और दयासे युक्त धर्म तथा तपस्यासे युक्त विद्या भी भलीभाँति पवित्र करनेमें असमर्थ हैं—

भक्तिः पुनाति मन्निष्ठा श्वपाकानपि सम्भवात्॥
धर्मः सत्यदयोपेतो विद्या वा तपसान्विता।
मद्भक्त्यापेतमात्मानं न सम्यक् प्रपुनाति हि॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २१-२२)

अतएव जिस शरीरसे प्रभुके पादपद्मोंमें प्रीति होती है, उसे ही चतुर लोग आदर देते हैं—

जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस संकर भे हनुमान॥

(दोहावली १४२)

१-नेम धर्म आचार तप ग्यान जग्य जप दान। भेषज पुनि कोटिन्ह नहिं रोग जाहिं हरिजान॥
(रा० च० मा० ७। १२१ (ख))

इसलिये हमें यह चाहिये कि हम मानसके इस मुख्य संदेशको अपने जीवनमें उतारकर अपनी मानव-देहको सफल बनायें और श्रीरामकी भक्ति प्राप्तकर निरन्तर उनके चरणकमलोंमें प्रीति बनाये रखें—

'करिअ राम पद पंकज नेहा ॥'

(रा० च० मा० ७ । १२२ । १३)

राष्ट्रिय स्वाभिमानके प्रतीक भगवान् श्रीराम

(श्रीवीर विनायक दामोदरजी सावरकर)

भगवान् श्रीराम हिन्दू-स्वाभिमानके सबसे बड़े प्रतीक हैं। इसीलिये मैंने इंग्लैंडमें आयोजित श्रीराम-जन्मोत्सव-समारोहमें कहा था—'अगर मैं इस देशका अंग्रेज डिक्टेटर होता तो सबसे पहला काम यह करता कि महर्षि वाल्मीकिद्वारा लिखित 'रामायण' को जब्त करनेका आदेश जारी करता।'

क्यों ? इसलिये कि जबतक यह महान् क्रान्तिकारी ग्रन्थ भारतवासी हिन्दुओंके हाथोंमें रहेगा, तबतक हिन्दू न तो किसी दूसरे ईश्वर या सम्राट्के आगे सिर झुका सकते हैं और न उनकी नस्लका ही अन्त हो सकता है।

'आखिर रामायणके अंदर ऐसा क्या है कि वह गङ्गाकी तरह भारतवासियोंके अन्तःकरणमें आजतक बहती ही चली आ रही है ? मेरी सम्मतिमें रामायण लोकतन्त्रका आदि शास्त्र है—ऐसा शास्त्र जो लोकतन्त्रकी कहानी ही नहीं सुनाता, लोकतन्त्रका प्रहरी, प्रेरक और निर्माता भी है। इसलिये तो मैं कहता हूँ कि अगर मैं इस देशका डिक्टेटर (तानाशाह) होता तो सबसे पहले रामायणपर प्रतिबन्ध लगाता, जबतक रामायण यहाँ है, तबतक इस देशमें कोई भी डिक्टेटर पनप नहीं सकता। स्वाधीनताकी भावनाको कोई भी नहीं कुचल सकता।'

रामायणकी शक्तिकी कौन कहे, क्या कहीं नजर आता है ऐसा सम्राट्, साम्राज्य, अवतार या पैगम्बर जो भगवान् श्रीरामकी तुलनामें ठहर सके ? सबके खण्डहर आर्तनाद कर रहे हैं, किंतु रामायणका राजा, उसकी मर्यादा, उसका धर्म, उसके द्वारा स्थापित रामराज्य भारतवासियोंके मानसको आज भी ज्यों-का-त्यों प्रेरित-प्रभावित कर रहा है।

'चक्रवर्ती राज्यको त्यागकर वल्कलवेशमें भी प्रसन्न-वदन रहनेवाले, राजपुत्र, किंतु अयोध्यासे रामेश्वरम्‌तक लोक-जीवनके बीच एक सामान्य जनकी भाँति विचरण करनेवाले शबरीकी भक्तिके वशीभूत हो उसके जूठे बेर खानेवाले और अहल्याका उद्धार करनेवाले श्रीरामने रावणकी लंका जीती, किंतु फूलकी तरह उसे अर्पण कर दिया उस विभीषणको जिसने डिक्टेटर तथा धर्मद्रोही भाई (रावण) का विरोधकर प्रजातन्त्रका ध्वज फहराया था।'

ऐसे थे रामायणके श्रीराम, जिनकी जीवन-गाथा रामायण-में अजर-अमर है। इस देशको मिटानेके लिये बड़ी-बड़ी ताकतें आयीं—मुगल, शक, हूण आये; किंतु वे इसे मिटा न सके। कैसे मिटाते ? रामायण जन-जनको प्रेरणा जो दे रही थी, स्वधर्म तथा स्वदेशकी रक्षाकी।

यह बिनती रघुबीर गुसाईं।
और आस-बिस्वास-भरोसो, हरौ जीव-जड़ताई ॥
चहौं न सुगति, सुमति, संपति कछु, रिधि-सिधि, बिपुल बड़ाई।
हेतु-रहित अनुराग राम-पद बढ़ै अनुदिन अधिकाई ॥
कुटिल करम लै जाहिं मोहि जहँ जहँ अपनी बरिआई।
तहँ तहँ जनि छिन छोह छाँड़ियो, कमठ-अंडकी नाईं ॥
या जगमें जहँ लगि या तनुकी प्रीति प्रतीति सगाई।
ते सब तुलसिदास प्रभु ही सों होहिं सिमिटि इक ठाईं ॥

(विनय-पत्रिका १०३)

श्रीराम-तत्त्व-विमर्श

(श्रीअनुरागजी 'कपिध्वज')

अधिष्ठानके चिन्तनसे अध्यस्तकी शक्ति क्षीण हो जाती है। सर्वत्र व्यापक सत्यकी सत्ता ही विभिन्न रूपोंमें प्रतीत होती है। इस प्रतीतिका कारण अद्वितीय आत्मतत्त्वमें अर्थहीन नामोंके द्वारा विविधता मान लेना है। यह मनका भ्रम है और यही अज्ञान है, पर आत्माके अतिरिक्त इस भ्रमका भी और कोई अधिष्ठान नहीं है।

अधिष्ठानकी सत्तामें अध्यस्तकी सत्ता है ही नहीं। सब कुछ आत्मा ही है। देह, इन्द्रिय और प्राणोंके साथ आत्माका सम्बन्ध मानना भ्रान्ति है। अविवेकी पुरुषको शरीर और संसार सत्य-सा प्रतीत होता है। जैसे स्वप्नमें अनेकों विपत्तियाँ आती हैं, पर वास्तवमें वे हैं नहीं, फिर भी स्वप्न टूटनेतक उनका अस्तित्व नहीं मिटता। ठीक वैसे ही संसारके न होनेपर भी जो उसमें प्रतीत होनेवाले विषयोंका चिन्तन करते रहते हैं, उनके जन्म-मृत्युरूप संसारकी निवृत्ति नहीं होती।

देह, इन्द्रिय, प्राण और मनमें स्थित आत्माका इनमें अधिष्ठानको भूलकर अहंका अभिमान कर लेना जीवत्व है और अधिष्ठानका सतत स्मरण करना ही स्वरूप-स्थिति है।

सोनेसे आभूषण बनते हैं, पर स्वर्णकार आभूषणों या स्वर्णकी उपाधियोंपर ध्यान न देकर जिस तरह स्वर्णपर ही ध्यान रखता है, उसी तरह सदा-सर्वदा समस्त नाम-रूपोंमें अधिष्ठानको देखना ही 'राम-तत्त्व' है। राम-तत्त्वके ज्ञाता भक्तप्रवर श्रीप्रह्लादजीने पिताके यह पूछनेपर कि 'तेरा राम कहाँ है ?' ठीक ही कहा था—

'अरे पिता ! तुम बावरे मैं कहाँ बताऊँ राम।
मोमें तोमें खडग-खंभमें जहँ देखो तहँ राम॥'

—यह है राम-तत्त्वके सच्चे उपासकको सत्य भावना। अनन्यभावसे श्रीरामोपासना करनेपर राम-तत्त्वका बोध होता है, और अनन्यताकी परिभाषा बतलाते हुए गोस्वामीजी कहते हैं—

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(रा० च० मा० ४। ३)

राम-तत्त्वका पुजारी अधिष्ठानकी विस्मृतिको दुःख मानता है। तभी तो श्रीहनुमान्‌जी कहते हैं—

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजन न होई॥

(रा० च० मा० ५। ३२। ३)

पद्मपुराण, पातालखण्डमें योगिराज परमात्मा शिव पार्वतीजीसे यही तो कहते हैं कि 'मैं सदा राम-तत्त्वका स्मरण कर उसमें ही रमण करता हूँ।' स्कन्दपुराणमें महादेवजीने पार्वतीजीको ध्यानयोगमें सर्वत्र व्यापक अधिष्ठान श्रीराम-तत्त्वका ही प्रकाश-रूपमें ध्यान करनेका उपदेश दिया था। सेतुखण्डमें स्वयं रामचन्द्रजी हनुमान्‌जीको अधिष्ठानस्वरूप तत्त्वमें स्थित रहनेका आदेश देते हैं। तात्पर्य यह कि स्वरूप-स्थिति ही श्रीराम-तत्त्वका पर्याय है।

साधक जब शारीरिक-वाचिक जपको करते-करते मानसिक जपकी स्थितिमें आता है, उस समय उसके मुखसे सोते-जागते भगवन्नाम-स्मरण होने लगता है। मानसिक जपका दृढ़ अभ्यास तथा आत्माको आकाशके समान अपरिमित देखनेकी अवस्थामें उसे नाम-रूपकी स्थिति दिखायी नहीं पड़ती। हृदयमें स्थित आत्मरूप और परमात्मरूपमें भिन्नता दृष्टिगोचर नहीं होती। वह अपनी समस्त इन्द्रियोंको अपने हाथमें लेकर चित्तकी समस्त वृत्तियोंको रोककर ऐसा अनुभव करता है कि यह सारा जगत् अपनी आत्मामें फैला हुआ है और आत्मा-सर्वात्मा इन्द्रियातीत ब्रह्मसे एक है, अभिन्न है।

साधकको सदा, सर्वत्र राम-तत्त्वका ही दर्शन होने लगता है। राम-तत्त्वकी विस्मृति एक क्षणको भी नहीं होती। आत्मा और परमात्माके मिलनकी भावनासे उसका अन्तःकरण ओतप्रोत हो जाता है। आत्मरूप प्रकाश परमात्मरूप प्रकाशमें समाहित हो जाता है। साधककी इस अवस्थाको प्राप्त करनेकी लालसा, उत्कण्ठा उसे अनुपम, अद्वितीय, अकथनीय सुख प्रदान करती है। ऐसी स्थितिमें उसे श्रीजनकजीके द्वारा श्रीशुकदेवजीको बताये हुए ये शब्द कि 'इस ब्रह्माण्डमें चिन्मय परम पुरुष परमात्माके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है'—सत्य प्रतीत होने लगते हैं।

शरणागतिकी अपूर्व महिमा

(पद्मश्री डॉ॰ श्रीकृष्णदत्तजी भारद्वाज)

उपासना या भक्तिकी परम महिमा है। भक्तिके द्वारा जीवका उद्धार हो जाता है; किंतु भक्तिका भी बड़ा विस्तार है। श्रीमद्भागवतका श्रवण, रामायणका पाठ, मन्दिर-निर्माण, मूर्ति-पूजन, तीर्थयात्रा आदि सभी भक्तिके अङ्ग हैं। ये सभी कार्य परम धैर्य, द्रव्य-व्यय, संयम और श्रमसे सम्पन्न हो सकते हैं। जब जीव भगवत्प्राप्तिके लिये भक्तिका भी अवलम्बन नहीं ले पाता, तब वह निरुपाय होकर अपनेको सब प्रकारसे अशक्त समझकर भगवान्‌को ही उपायरूपसे वरण करता है। जीवकी इस प्रवृत्तिको 'प्रपत्ति' कहते हैं। इसमें उपेय ही उपाय होता है। यही साधनोंका सार है—

आत्मात्मीयं परं सर्वं निक्षिप्य श्रीपतेः पदे।
उपायं वृणु लक्ष्मीशं तमुपेयं विचिन्तय।
इति ते सकलं भद्रे शास्त्रशास्त्रार्थतत्फलम्॥

(लक्ष्मीतन्त्र ५७।४४।४५)

प्रपत्तिका दूसरा नाम शरणागति है। शरणागतिका अर्थ है—शरणमें आना। सब कुछ छोड़कर श्रीभगवान्‌के चरण-कमलोंका आश्रय करना शरणागति है। समस्त वेदोंका सार उपनिषद् (उप+नि+षद्=उपासना-प्रतिपादक ग्रन्थविशेष) हैं और सारे उपनिषदोंका सार गीता है तथा गीताका सार शरणागति है। सर्वधर्मपरित्यागपूर्वक, भगवच्छरणागति ही अर्जुनके लक्ष्यसे मानवमात्रके लिये गीताका सर्वगुह्यतम उपदेश है।

जीवके पास पूर्वजन्मविहित अनन्त पापराशिका संस्कार संचित है। कुत्सित संस्कारोंसे उत्तम भावनाएँ अभिभूत रहती हैं। अतएव यह आवश्यक है कि पापराशिका शमन करनेके लिये कृच्छ्रचान्द्रायण, अग्निष्टोम आदिका अनुष्ठान करके प्रायश्चित्त किया जाय। मनुष्यजीवन स्वल्प है और प्रायश्चित्त हैं अनेकानेक। कैसे काम चलेगा? मानवजीवन समाप्त हो जायगा और प्रायश्चित्त पूरे नहीं होंगे। अतः निरुपाय जीव प्रायश्चित्तरूप धर्मोंको छोड़कर उस दीनबन्धुकी शरण ग्रहण कर लेता है।

ज्ञानयोगमें साधक प्रत्यगात्माको प्रकृतिवियुक्त, अपरिणामी और ज्ञानमय देखनेका अभ्यास करता है, किंतु इस स्थितिका लाभ देहधारियोंको दुःसाध्य है, अतएव जीव ज्ञानयोगरूपी धर्मको छोड़कर शरणागतिका अवलम्बन करता है।

साधक जीवका जबतक देहसे सम्बन्ध है, तबतक वह प्राकृत गुण और कर्मोंका स्वरूपतः परित्याग नहीं कर सकता; अतः उसे देहधारणावधि यज्ञ-दान-तपमें निरत रहना चाहिये। किंतु यह स्मरण रहे कि यज्ञादि करते समय यदि उनमें फलासक्ति बनी रहेगी तो परम कल्याण नहीं होगा। आसक्तिका त्याग ही वास्तविक त्याग है। शरणागतिके सम्बन्धमें लौकिक धर्मोंके त्यागकी जो चर्चा है वह उनके फलोंमें आसक्तिका ही परित्याग है।

भक्तियोगके इतने अङ्ग और उपाङ्ग हैं कि भगवद्विरह-व्याकुल भक्त भक्तियोगके लिये अपेक्षित दीर्घकालीन साधनाको दुरूह समझता है। जीवोंके लिये इस दुरूहताकी आशंकाको दूर करते हुए श्रीभगवान्‌ने आदेश दिया—'शोक मत करो कि मैं कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोगमेंसे एक भी योगका अवलम्बन न कर सका, मेरी शरण ग्रहण कर लोगे तो मैं तुम्हें समस्त माया-प्रपञ्चसे छुड़ा दूँगा।'

शरणागतिकी महिमासे मुग्ध होकर सभी धर्मात्माओंने—कर्ममार्गियोंने, ज्ञानमार्गियोंने, भक्तिमार्गियोंने उसे अपना लिया। कर्मवादियोंने कर्मका त्याग स्वरूपतः नहीं किया, किंतु उसको यज्ञार्थ—भगवत्प्रीत्यर्थ किया और उसका फल भगवान्‌को ही अर्पण कर दिया। ज्ञानवादियोंने ज्ञान-चर्चा नहीं छोड़ी, किंतु उन्होंने शरणागतिको सर्वोत्तम ज्ञान समझा। भक्तिवादियोंने भक्तिको बनाये रखा, किंतु शरणागतिको भक्तिका सर्वोच्च अङ्ग माना।

जो जीव एक बार भी भगवान्‌के श्रीचरणोंमें प्रपन्न होता है और कहता है कि 'हे नाथ! मैं आपका ही हूँ' उस जीवको भगवान् समस्त भयोंसे मुक्त कर देते हैं। जब-जब भक्तोंने भगवान्‌की शरणमें आकर उनसे रक्षाकी याचना की है, तब-तब भगवान्‌ने भक्तोंकी रक्षा अवश्य की है। गीताके—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

—आदि वचनोंमें प्रपत्ति अथवा शरणागतिका ही प्रतिपादन है। शरणागति छः प्रकारकी मानी गयी है—

षोढा हि वेदविदुषो वदन्त्येनं महामुने।
आनुकूल्यस्य संकल्पः प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्॥
रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा।
आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः॥

(अहिर्बुध्न्यसंहिता)

वे छः प्रकार ये हैं—

(१) अनुकूलताका संकल्प—श्रीभगवान्‌के अनुकूल रहनेका विचार। भगवान्‌के विधानमें अपना हित मानना। वे जैसे रखें उसीमें प्रसन्नताका अनुभव।

(२) प्रतिकूलताका त्याग—भगवान्‌के प्रतिकूल होनेके विचारको छोड़ना। उनके कठोर विधानोंमें भी उनके प्रति दुर्भाव न लाना। शास्त्रविरुद्ध कर्म न करना।

(३) भगवान् मेरी रक्षा करेंगे ही—इस प्रकारका दृढ़ विश्वास। रक्षा करेंगे या नहीं? इस प्रकारके संशयात्मक विचार सच्चे भक्तके हृदयमें उठते ही नहीं। सब कालोंमें और सब देशोंमें उनकी रक्षामें विश्वास।

(४) केवल विश्वास ही नहीं, अपितु भगवान्‌को रक्षक बना लेना। जिस प्रकार वधू वरको पतिके रूपमें वरण करती है, उसी प्रकार भक्तका भगवान्‌को गोप्ताके रूपमें वरण करना।

(५) अकिञ्चनताका भाव—मनमें दीनता और नम्रताका भाव। अपने कर्म-कर्तृत्वाभिमानका परित्याग। भगवान्‌की ही सर्वस्वतामें निष्ठा। सब कुछ भगवान्‌का ही है, मेरा कुछ नहीं ऐसी दृढ़ धारणा। भगवान् ही मेरे परम धन हैं—ऐसी बुद्धि।

(६) आत्मनिक्षेप अथवा आत्मसमर्पण अथवा आत्मनिवेदन—अपना कहलाने योग्य जो कुछ भी है—देह, इन्द्रिय, चैतन्य आदि उसे भगवान्‌को पूर्णतया अर्पण कर देना जैसा कि श्रीयामुनाचार्यने किया था—

वपुरादिषु योऽपि कोऽपि वा
गुणतोऽसानि यथातथाविधः।
तदहं तव पादपद्मयो-
रहमद्यैव मया समर्पितः॥

'हे रघुनन्दन! काल, कर्म और गुण आदिके प्रभावसे मैं जब जहाँ जिन योनियोंमें भी रहूँ, वह सब-की-सब आगे होनेवाली स्थिति मैं अपने आत्मस्वरूपसे सदाके लिये आज ही आपके चरणकमलोंमें समर्पित कर देता हूँ।'

प्रपत्ति-मन्दाकिनीका अजस्र प्रवाह वैदिक युगसे ही विश्वको आप्लावित करता रहा है। श्वेताश्वतरोपनिषद्‌का **'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै। तँ ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये॥** (६। १८)—यह मन्त्र साधकके हृदय-मन्दिरको आलोकित करता रहता है, एवं वाल्मीकीय श्रीरामायणका **'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।'** यह पद्य-पीयूष उसे आनन्द-रस-परिप्लुत करता रहता है।

आचार्य श्रीरामानुजका यह वचन स्मरणीय है कि **'शारीरकेऽपि भाष्ये या गोपिता शरणागतिः। अत्र गद्यत्रये व्यक्तां तां विद्यां प्रणतोऽस्म्यहम्॥'** अर्थात् मैं उस शरणागति-विद्याके सम्मुख सिर झुका रहा हूँ, जिसे मैंने वेदान्तसूत्रपर अपने श्रीभाष्यमें भी छिपाये रखा था, किंतु जो अब मेरे इस गद्यत्रय-ग्रन्थमें परिस्फुट हो गयी है।

सकृत्-प्रपन्न-परित्राणके व्रतको निभाये रखनेवाले करुणा-वरुणालय श्रीमन्नारायण भगवान् श्रीरामके चरणारविन्दोंमें अनेकानेक प्रणामाञ्जलियाँ।

श्रीरामके अनुकरणसे रामराज्य

रामायण और महाभारत हिंदुओंकी अतुल सम्पत्ति है। मुझे इनके अध्ययनसे बहुत सुख मिलता है। रामायणमें हिंदू-सभ्यताके जिस ऊँचे आदर्शका इतिहास है, वह सदा पढ़ने और मनन करने योग्य है। रामायणको काव्य कहना उसका अपमान करना है। उसमें तो भक्तिरसका प्रवाह बहता है, जो जीवनको पवित्र कर देता है। रामायणमें हिंदू-गृहस्थ-जीवनका आदर्श बतलाया गया है। मैं चाहता हूँ सब लोग प्रतिदिन नियमपूर्वक रामायणका पाठ करें और उसमें बतलाये हुए मार्गपर चलकर हिंदू-जातिको पुनः रामराज्यके सुख भोगनेवाली बना दें। —महामना श्रीमदनमोहनजी मालवीय

एकमात्र भजनीय तत्त्व—भगवान् श्रीराम

(मानसप्राज्ञ पं० श्रीरामराघवदासजी रामायणी)

भगवान् श्रीरामजी ही सब अवतारोंके मूल कारण हैं। श्रीरामजीके ही अंशसे अनेकों रूपोंमें कलांशावतार होता रहता है। परंतु जब पूर्ण ब्रह्म—परब्रह्म आविर्भूत होता है, तब वेदविदित ब्रह्मके स्वरूप द्विभुजधारी श्रीरामजी ही आते हैं। अपने उसी नामसे यहाँ भी विभूषित होते हैं। याज्ञवल्क्यीय-संहिता एवं सामवेदीय भरद्वाजसंहिताके अनुसार—

पूर्णः पूर्णावतारश्च श्यामो रामो रघूद्वहः।
अंशाः नृसिंहकृष्णाद्या राघवो भगवान् स्वयम्॥

(याज्ञ० सं०)

अवतारा बहवः सन्ति कलांशाश्चांशविभूतयः।
राम एव परब्रह्म सच्चिदानन्दमव्ययम्॥

× × ×

सर्वेषामवताराणामवतारी रघूत्तमः॥

(सा० भ० सं०)

अतः स्पष्ट होता है कि श्रीरामजी ही परब्रह्म, अनन्त कलाओंके भी ईश हैं। वे ही अनन्त कलाओंके ईश—प्रभु श्रीरामजी रघुवंशमें अवतीर्ण हुए और उन्होंने वनगमन तथा दशकन्धर रावण आदिका वध किया। यथा—

अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेश
इक्ष्वाकुवंश अवतीर्य गुरोर्निदेशे।
तिष्ठन् वनं सदयितानुज आविवेश
यस्मिन् विरुध्य दशकन्धर आर्तिमार्च्छत्॥

(श्रीमद्भा० २।७।२३)

कलांशोंके बारेमें आया है—

वैकुण्ठेशस्तु भरतः क्षीराब्धीशस्तु लक्ष्मणः।
शत्रुघ्नस्तु स्वयं भूमा रामसेवार्थमागताः॥

(बृहद्ब्रह्मसंहिता)

श्रीमद्भागवतके प्रवक्ता शुकादिका कहना है कि आदिपुरुष भगवान् श्रीरामजी ही हैं। उन्हींकी सेवा श्रीहनुमान्‌जी करते हैं—

'किंपुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैरविरतभक्तिरुपास्ते॥' (श्रीमद्भा० ५।१९।१)

अर्थात् किम्पुरुषवर्षमें श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भाई आदिपुरुष, सीताहृदयाभिराम भगवान् श्रीरामके चरणोंकी संनिधिके रसिक परमभागवत हनुमान्‌जी अन्य किन्नरोंके सहित अविचल भक्तिभावसे उनकी उपासना करते हैं।

आगे वर्णनमें भगवान् श्रीरामजीको परब्रह्म और सबसे परे मानते हुए छः बार 'नमः' शब्द एवं नौ विशेषणोंका प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि भगवान् श्रीराम ही पूर्ण ब्रह्म हैं। यथा—

'ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति।' (श्रीमद्भा० ५।१९।३)

'हम ॐकारस्वरूप, पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं, आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं, आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधन-तत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं, ऐसे महापुरुष महाराज रामको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है।'

इस कलिकालमें तो मात्र राघवजीकी ही शरण लेनी चाहिये। भगवान् श्रीरामजी ही एकमात्र अर्चनीय, पूजनीय, वन्दनीय एवं सेवनीय हैं; क्योंकि भगवान्‌के अन्य अवतारोंमें अपनी राजधानीके समस्त जीवोंको सशरीर मोक्ष—अपने धामको देनेकी सामर्थ्य नहीं है। वह भी इस घनघोर कलिकालमें तो और असम्भव है। परंतु श्रीराम अपनी राजधानी (उत्तर कोसल) अयोध्याके जीव, कीट, पतंग, मनुष्यादिको सशरीर अपने धाममें ले गये। विरजा पार करते ही जीवोंका शरीर दिव्य हो गया। यथा—

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत् कोसलान् दिवमिति॥

(श्रीमद्भा० ५।१९।८)

'प्रभो! देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी

हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिये, क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवल्लभ हैं कि जब स्वयं दिव्यधामको सिधारे थे, तब समस्त उत्तर कोसलवासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे।'

अतः एकमात्र परमशरण्य भक्तवत्सल भगवान् श्रीराम ही भजनीय हैं। उन्हींका भजन, स्मरण, कीर्तनादि करनेसे कल्याणकी प्राप्ति होगी।

ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी

(आचार्य श्रीकृपाशंकरजी रामायणी)

छान्दोग्योपनिषद्‌में इतिहास-पुराणको पञ्चम वेदके नामसे उल्लिखित किया गया है—**'इतिहासपुराणं च पञ्चमं वेदानां वेदम्।'** **'इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्'** (बार्हस्पत्य-स्मृति)। तुलनात्मक दृष्टिसे इतिहास और पुराण—इन दोनोंमें भी इतिहास अधिक महत्त्वपूर्ण है। भारतीय इतिहास-ग्रन्थोंमें रामायण और महाभारत—ये दो ग्रन्थ सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। इन दोनोंमें भी श्रीरामायणजीका स्थान विशेष महत्त्वपूर्ण है। महर्षि श्रीवाल्मीकिका तपःप्रभाव विश्वविश्रुत है। वे आदिकवि-शब्दवाच्य हैं। उन्हें भगवान् ब्रह्माजीका यह वरदान भी प्राप्त है कि वे जो भी लिपिबद्ध करेंगे, उसमें एक शब्द भी अर्थरहित नहीं होगा—मिथ्या नहीं होगा—**'न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति।'** एतावता यह सिद्ध है कि श्रीमद्रामायण ऋतप्रतिपादक इतिहास-ग्रन्थ है।

आइये हमलोग भी उसी लोकमङ्गल, वेदावतार श्री-रामायणजीके अनुसार भगवान् आदिकवि महर्षि श्रीवाल्मीकि-जीकी ऋतम्भरा-प्रज्ञासे अनुप्राणित मधुमयी वाणीमें ही निखिल ब्रह्माण्डाधिनायक, भक्तजनजीवनसारसर्वस्व, लोकनायक श्री-रामचन्द्रजीकी मङ्गलमयी लोकप्रियताकी अनोखी झाँकियोंमेंसे एक बाँकी-झाँकीको झाँकनेका—देखनेका—मनन करने-का—चित्तमें धारण करनेका प्रयास करें।

करुणावारिधि, अनुग्रहविग्रह, अकारणकरुण, सकल-जनरंजन, कौसल्यानन्दसंवर्धन, दशरथनन्दन, भक्त-उरचन्दन, रघुनन्दन, मर्यादापुरुषोत्तम, भगवान् श्रीरामभद्र अपने पिता चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीकी आज्ञाका पालन करनेके लिये, वात्सल्यमयी जननी श्रीकौसल्याजीसे अश्रुपरिपूरित बिदाई लेकर निखिल-सौन्दर्याधिष्ठात्री, परमसुकुमारी श्रीसीताजीका प्रेमाग्रह अङ्गीकार करते हुए उन्हें कानन-यात्राकी सहगामिनी बनाकर, अनन्यसेवाव्रती, वैराग्यमूर्ति, सुमित्रानन्दसंवर्धन, श्रीलक्ष्मणजीका परमभावुक हृदय एवं अनुपम त्याग तथा परमोज्ज्वल वैराग्य अनुभव करके उन्हें भी अनुगमन करनेकी आज्ञा प्रदान करके, चतुर्दशवर्षीय कठोर वनवासकी वरयाचना करनेवाली विमाता श्रीकैकेयीजीका वात्सल्यमयी जननी श्रीकौसल्याजीसे अधिक सम्मान करते हुए उनके संनिकट समुपस्थित हुए और उन्होंने उनके श्रीचरणोंमें सादर अभिवादन किया। मातासे चतुर्दशवर्षीय कानन-यात्राकी आज्ञा माँगी। कठोरताकी प्रतिमूर्ति माता कैकेयीने पुरस्तात् नमन करते हुए श्रीराम, श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मणको धारण करनेके लिये रूक्ष वल्कल वस्त्र दिये। श्रीरामभद्रने सद्यः उन रूक्ष वल्कलाम्बरों-को सुकोमल कौशेय वस्त्रोंके स्थानपर धारण कर लिया। श्रीसुमित्रानन्दन तो सच्चे अनुचर हैं, उन महाभागने अपने आदर्श पूज्यचरण श्रीरघुनन्दनके इस करुण कार्यका अविलम्ब अनुकरण किया। श्वश्रू कैकेयीके हाथोंसे प्राप्त किये हुए युगल वल्कल-वसनोंको अपने सुकोमल हस्तारविन्दोंसे ग्रहण करके भावप्रवणा सौन्दर्याधिष्ठात्री सुकुमार-स्वभावा श्रीमैथिली दुःख-सागरमें निमग्न हो गयीं।

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रकी प्राणप्रिया प्रियतमा श्रीजनककिशोरी इस कारणसे दुःखी नहीं हुई कि हमें अपने कौशेय नीली साटिकाका प्रिय परिधान परित्याग करना होगा, अपितु भारतीय संस्कृतिकी सारसर्वस्वा वे मैथिली इस कारण दुःखी हुई कि 'हा हन्त! हमें तो इसके धारण करनेकी प्रक्रिया-का भी ज्ञान नहीं है। पुरुषके वस्त्र-परिधानकी प्रक्रियासे धारण सम्भव नहीं है। एतावता लक्ष्मणकी तरह जीवनाराध्यका अनुकरण भी तो मैं नहीं कर सकती। हा हन्त! मैं क्या करूँ! कैसे इन वस्त्रोंका उपयोग करूँ!' इस विचित्र ऊहापोहमें कमलोपम विशाल नेत्र छलछला आये सुकुमारी श्रीमैथिलीके। भारतीय संस्कृतिकी आराध्याने अश्रुपरिपूर्ण नयनोंसे निहारा

अपने प्राणप्रियतम वल्कल-वसनधारी परम प्रेमास्पदकी ओर। अत्यन्त धीमी, परंतु सुस्पष्ट तथा सुकोमल वाणीमें पृच्छा की नित्यकिशोरी श्रीजानकीजीने अपने जीवनसार सर्वस्वसे। मेरे स्वामी ! वनवासी मुनिलोग वल्कल-वस्त्र कैसे धारण करते हैं ? **'कथं नु चीरं बध्नन्ति मुनयो वनवासिनः'** वल्कल-वस्त्र-धारणकी प्रक्रियाका परिज्ञान न होनेके कारण श्रीसीता विलज्जित हो गयीं, एक वल्कल-वस्त्र कण्ठमें डालकर दूसरा हस्तारविन्दमें ग्रहण करके वे निःशब्द खड़ी रहीं—

कृत्वा कण्ठे स्म सा चीरमेकमादाय पाणिना।
तस्थौ ह्यकुशला तत्र व्रीडिता जनकात्मजा॥

अश्रुपरिपूरित-नेत्रा, सत्रपा, अधोमुखी, आकण्ठ-संकोचनिमग्ना श्रीसीताजीके निकट करुणामय, श्रीसीताभाव-भावित धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सद्यः आ गये और उनके कौशेय वस्त्रोंके ऊपर वल्कल-वस्त्र धारण कराने लगे अपने हस्तकमलोंसे—

तस्यास्तत् क्षिप्रमागत्य रामो धर्मभृतां वरः।
चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम्॥

समस्त विश्वकी संस्कृतिमें, सभ्यतामें इस करुण झाँकीकी तरह अन्य झाँकी मिलना दुर्लभ है। श्रीसीतारामके इस युगल स्वरूपको देखकर, इस अनोखे, अथ च करुण-प्रसंगको निहारकर अन्तःपुरकी समस्त नारियाँ करुण-क्रन्दित हो उठीं। स्त्रियाँ ही क्यों, मेरी दृष्टिमें तो मूर्तिमती करुणा भी चीत्कार कर उठी। रुदन तथा सिसकियोंसे समस्त वातावरण व्याप्त हो गया, लोगोंके नेत्रोंसे निर्झर निर्झरित हो चले—

'मुमुचुर्वारि नेत्रजम्॥'

चक्रवर्ती नरेन्द्र श्रीदशरथजीकी पुत्रवधूको, महारानी श्रीकौसल्याजीके नेत्रोंकी पुत्तलिकाको एवं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्रिया प्रियतमा प्राणवल्लभा श्रीसीताको वल्कलवसना देखकर महात्मा श्रीवसिष्ठजीका धैर्य भी डगमगा गया। उनका भावप्रवण हृदय चीत्कार कर उठा। उनकी आँखोंसे अश्रुधार बह चली। उस समय वेदवेदान्तविचार-दक्ष आथर्वणि ऋषि श्रीवसिष्ठजीने जो विचार, वाष्पविगलित नेत्रोंका परिमार्जन करते हुए व्यक्त किये हैं, वे विचार उनके हार्दिक रामप्रेमके द्योतक ही नहीं हैं, अपितु श्रीराम रघुनन्दनकी गरिमामयी लोकप्रियताके भी प्रकाशक हैं तथा श्रीराम-भक्तोंके लिये विशेषरूपेण मननीय हैं।

महात्मा श्रीवसिष्ठजी कहते हैं—यदि श्रीसीताराम कानन-यात्रा करेंगे तो हमलोग इनका साथ नहीं छोड़ेंगे, अयोध्याके समस्त नागरिक भी वन चले जायँगे। अन्तःपुरके समस्त रक्षक भी अयोध्यामें नहीं रहेंगे। भगवती श्रीसीताके साथ लोकाभिराम श्रीराम जहाँ निवास करेंगे, वही स्थान अभिराम है। उसी लोकाभिराम स्थानपर इस राज्य और नगरके लोग भी धन-सम्पत्ति और सामग्री लेकर चले जायँगे। श्रीभरत-शत्रुघ्न भी मुनि-वस्त्र धारण करके वनमें ही निवास करेंगे और श्रीलक्ष्मणजीकी तरह अपने परम प्रेमास्पद प्राण-प्रिय अग्रज श्रीरामचन्द्र एवं भगवती मैथिलीका पादसेवन करके कृतार्थताका अनुभव करेंगे—

अथ यास्यति वैदेही वनं रामेण संगता।
वयमत्रानुयास्यामः पुरं चेदं गमिष्यति॥
अन्तःपालाश्च यास्यन्ति सदारो यत्र राघवः।
सहोपजीव्यं राष्ट्रं च पुरं च सपरिच्छदम्॥
भरतश्च स शत्रुघ्नश्च चीरवासा वनेचरः।
वने वसन्तं काकुत्स्थमनुवत्स्यति पूर्वजम्॥

आगे गुरुदेवने जो वाक्य कहे हैं, वे प्रभुकी महिमामयी, लोकप्रियताके सम्बन्धमें अत्यन्त मननीय हैं। स्मरण रहे, यह आथर्वणि महात्मा श्रीवसिष्ठकी वाणी है, परम-सिद्ध संतकी वाणी है, लोकपितामह ब्रह्माके पुत्रकी वाणी है, श्रीविश्वामित्रके द्वारा १०० पुत्रोंके विनाशके बाद भी धीरता-गम्भीरता नष्ट न करनेवाले धैर्यशाली आत्मसंयमी मुनिकी वाणी है, पूर्णब्रह्म-परमात्मा श्रीरामचन्द्रके गुरुपदको सुशोभित करनेवाले श्रीगुरुदेवकी महिमामयी वाणी है, किसी चाटुकारकी वाणी नहीं है।

वह राष्ट्र राष्ट्र नहीं रहेगा, अपितु वीरान भयावह जंगल हो जायगा, जिस राष्ट्रके राष्ट्राध्यक्ष भगवान् श्रीराम न होंगे। इसके विपरीत श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मणके साथ श्रीरघुनन्दन जहाँ निवास करेंगे, वह कठोर कानन सर्वसाधन-सम्पन्न मङ्गलमय स्वतन्त्र राष्ट्रके रूपमें परिणत हो जायगा।

न हि तद् भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद् वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामो निवत्स्यति॥

महात्मा वसिष्ठ कहते हैं कि हे कैकेयी ! तुमने लाड़ले

भरतका हित चाहकर भी अहित ही किया है, क्योंकि इस विश्वमें कोई ऐसा प्राणी नहीं है, जो श्रीरामचन्द्रके मङ्गलमय पावन पाद-पद्मोंमें स्नेह-समुच्छलित हृदयसे भक्तिपूर्ण भाव न रखता हो, अर्थात् संसारमें सभी रामभक्त हैं।

तत् त्वया पुत्रगर्धिन्या पुत्रस्य कृतमप्रियम्।
लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रतः॥

हे कैकेयी ! तुम आज ही देखोगी कि भयंकर जातिवाले सर्पादि, पशु और मृगादि किंबहुना पक्षी आदि भी श्रीरामके साथ वनका पथ प्रशस्त करेंगे—ये सब श्रीरामके साथ वन-गमन करेंगे।

द्रक्ष्यस्यद्यैव कैकेयि पशुव्यालमृगद्विजान्।
गच्छतः सह रामेण पादपांश्च तदुन्मुखान्॥

चेतनकी तो बात ही क्या ? जड़ वृक्ष भी श्रीरामके साथ जानेके लिये समुत्सुक हैं—'**पादपांश्च तदुन्मुखान्**'—धन्य है ! धन्य है।

यह श्रीरामकी सर्वप्रियताकी एक मङ्गलमयी करुण झाँकी है। आइये, हमलोग भी महर्षिकी वाणीमें स्वर मिलाकर गान करें— '**ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी**'।

'राम'-नाम दवा है

(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

डॉ० मरीजोंको देखकर नुस्खे लिखता जा रहा था। कई ऐसे मरीज थे जिन्हें चिकित्सासे कोई लाभ नहीं हो रहा था, डॉक्टर उनकी नब्ज देख, हृदयका परीक्षण कर सावधानीसे भोजन, पथ्य सही करनेकी बात बता रहा था। उधर मरीज स्वास्थ्यमें कोई लाभ न होनेकी शिकायतें लगातार कर रहे थे।

एक संत उस डॉक्टरकी चिकित्सा-पद्धति देख-देखकर मुसकरा रहे थे।

क्या इन्हें इन जीर्ण रोगोंसे ग्रसित मरीजोंसे कोई सहानुभूति नहीं है ? क्या डॉक्टरकी चिकित्सापर शक है ? क्या पाश्चात्त्य चिकित्सा-पद्धतिपर संदेह है ? क्या चिकित्सककी योग्यतापर संदेह है ? आखिर इन मरीजोंकी चिकित्सापर संत महाराजके मुसकरानेकी क्या बात है ? असंख्य सवाल उभर रहे थे चिकित्सकके मनमें।

चिकित्सक उनके मुसकरानेका कोई अर्थ समझ न सका। पूछ ही बैठा—महाराज ! आपकी हँसीमें क्या रहस्य है ? आप मेरी चिकित्सा करनेकी पद्धतिपर क्यों मुसकराये ? मेरी दवाइयोंपर क्यों हँसे ? कृपया कुछ तो कहिये।

संत कुछ देर चुप रहे।

'कृपया स्पष्टीकरण कीजिये।' डॉक्टर बार-बार आग्रह करने लगा। वह हैरान था।

संत बोले—मानो ईश्वर ही उनके मुँहसे बोल रहे थे ! 'तीनोंको देखकर हँसा हूँ।'

क्या मतलब ? महाराजजी ! मैं कुछ समझा नहीं। वह असमंजसमें पड़ गया।

'कुछ तो स्पष्टीकरण कीजिये। आपका अभिप्राय समझ नहीं पा रहा हूँ।'

संतने कहा—'डॉक्टरसाहब ! आपने तरह-तरहके रोगियोंकी नब्ज देखी; पेट, हृदय आदिका परीक्षण किया, जबान देखी; रक्त-चाप देखा। शरीरको हर तरह परखा, किंतु मुझे दुःखके साथ कहना पड़ता है कि आपको मनुष्यके मूल रोगका अभीतक पता नहीं ! कमजोरी कहाँ छिपी है, यह नजर नहीं आया।'

'फिर रोगियोंको देखकर हँसे क्यों ?'

'उन्हें देखकर इसलिये हँसा कि ये उस चिकित्सकसे इलाज कराने आये हैं, जिसे स्वयं समस्त रोगोंकी जड़ (मूल केन्द्र) तथा उसकी दवाईका ज्ञानतक नहीं।'

'ओषधियोंको देखकर क्यों हँसे गुरुजी ?'

ओषधियोंको देखकर इसलिये हँसा कि ये आधुनिक दवाइयाँ रोगियोंके मूल रोगको चंगा नहीं कर सकतीं। सब अपूर्ण हैं।

कुछ और स्पष्ट कीजिये महाराज ! 'डॉक्टरने उत्सुकतापूर्वक फिर पूछा।'

'अरे भाई ! बात सीधी-साधी है। आप मरीजकी नब्ज या हृदयका परीक्षण कर शरीरमात्र देख रहे हैं। अंदरके मस्तिष्ककी उपेक्षा कर रहे हैं। शरीर तो एक बक्स या खोल है, असली चीज तो मनुष्यका मस्तिष्क और उसकी आत्मा है।

ये जो अधिकतर मरीज बैठे हैं, इन्हें आध्यात्मिक चिकित्साकी जरूरत है।'

'फिर दुःख, व्याधि, मर्ज आदिका कारण क्या है?' मुझे विस्तारसे समझाइये। जिससे मैं भविष्यमें सावधान रहूँ!'

संत बोले—देखो भाई! 'रोगका मूल कारण तो 'राम'-से बिछोह है, आत्माका परमात्मासे अलग हो जाना है; सांसारिकता, माया, मोह, लोभ, लालच, ममता आदि विकारोंमें फँसना है। ज्यों-ज्यों मनुष्य 'राम'को भूलेगा, त्यों-त्यों रोग-व्याधि, चिन्ताएँ, भय आदि विकार मानव-शरीरमें आयेंगे, किंतु ईश्वरसे अपना रिश्ता तोड़नेसे, स्वयं ही शक्तिके केन्द्र आत्मासे दूर होते जायँगे। 'राम'से जुड़नेसे रोग-शोक स्वयं दूर होने लगते हैं। आत्मा तो निर्विकार है। रोग-शोकसे मुक्त है। 'राम'के शरीरमें आ जानेसे, आत्मबलसे स्वयं ही रोगोंका अन्त हो जाता है, क्योंकि 'राम' नाम सब प्रकारके विकारोंको दूर करनेवाला है।'

डॉक्टरके ज्ञानके नेत्र खुल गये। आध्यात्मिक चिकित्साकी ओर उनका ध्यान गया और उन्होंने मानव-मनको ईश्वरसे जोड़नेकी बात समझी।

× × ×

एक बार गुरु अर्जुनदेवजीसे भी जब पूछा गया कि बीमारी क्यों होती है, तो उन्होंने कहा—

'परमेश्वर ते भुल्लियाँ व्यापन सब्बे रोग'

'गुरुजी! इसका क्या अर्थ है?' प्रश्न हुआ।

'ईश्वरको भूलना ऐसी गलती है, जिससे सब रोग पैदा होते हैं। ईश्वर शरीरमें रहता है। उसके अस्तित्वको भूलना ऐसा रोग है, जो सब रोगोंको पैदा करता है। आजके रोगी इसलिये परेशान हैं, क्योंकि वे 'राम'को भूले हुए हैं। उन्हें अपने शरीरमें विराजमान रामको जगाना चाहिये।'

× × ×

शरीरमें ईश्वरत्वको जगाकर अपनेको निर्विकार मानना और हमारी आत्मा शुद्ध निर्विकार है, निर्मल है—यह भाव समस्त रोगोंको दूर करनेवाला है। भगवान्‌को भूलना एक ऐसा रोग है, जो अनन्त शारीरिक रोगोंको जन्म देता है।

अपने पूरे विश्वासके साथ अपनी समस्त शक्तिके केन्द्र 'राम'को शरीरके रुग्ण-भागमें प्रविष्ट कीजिये। शारीरिक रोग स्वतः दूर हो जायँगे।

'हे राम! हमारे शरीरमें प्रकट होइये। हम आपके पुत्र हैं। आपके पवित्र अंश हैं। आप जहाँ हैं, वहाँ रोग-शोक-चिन्ता-भय-क्लेशका जन्म नहीं हो सकता।'

प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा सायंकाल शान्तचित्त होकर एकान्तमें बैठ जाइये। शरीर और मनको अपने भीतरके 'राम'-पर एकाग्र कीजिये। सब ओरसे विचार हटाकर अपने मनको ईश्वर-तत्त्वपर केन्द्रित कीजिये और नीचे लिखी 'राम'-भावनाको बार-बार पूरे विश्वाससे दुहराइये। ऐसा संकेत देनेसे आत्मशक्ति बढ़ेगी और शरीर स्वस्थ हो जायगा।

मैं ईश्वरका अंश हूँ! मेरा शरीर, हृदय और मन सब पवित्र है। मैं हर प्रकारसे निर्विकार हूँ। हर दृष्टिसे निर्मल हूँ। ईश्वरने मेरी रचना ही इस दृष्टिसे की है कि कोई रोग-शोक, व्याधि, चिन्ता, बुराई शरीरमें नहीं ठहर सकती।

मेरे पवित्र हृदयमें सदैव शुभ (Positive) विचार ही आते हैं। अशुभ—नकारात्मक (Negative) विचारोंसे मैं सर्वथा मुक्त हूँ। मुझे किसीमें बुराई नहीं दिखायी देती। मैंने दोष-दर्शनकी आदत त्याग दी है। मैं सदैव शुभ-चिन्तनसे परिपूर्ण रहता हूँ। मैं किसीके साथ शत्रुता, निन्दा, आलोचना, द्वेष, विद्रोह नहीं करता। मेरी यदि कोई कटु आलोचना भी करता है तो भी मैं क्षुब्ध नहीं होता।

मैं लाभ, हानि, प्रशंसा, निन्दा आदि सब भावोंमें संतुलित बना रहता हूँ। मेरे पास फालतू चिन्ता या उन समस्याओंके लिये सोचनेका समय नहीं है जो हल नहीं हो सकती।

व्यर्थ दूसरोंकी कमजोरियोंपर ही दृष्टि रखनेसे मेरी आत्मशक्ति क्षीण होती है। निर्दोष निर्विकार परम आत्मा ईश्वरका मैं महान् पुत्र हूँ। कोई रोग मुझमें रह ही नहीं सकता। मेरे शरीरके रोम-रोममें निर्दोषताका संचार हो रहा है। जब आत्मशक्तिके कारण मेरे समस्त रोग-शोक, समस्याएँ स्वयं दूर होती जा रही हैं, उनका कोई दूषित प्रभाव मुझमें नहीं है।

जिसका 'राम' जाग गया है, उसके शरीरमें कोई रोग नहीं ठहर सकता। 'राम' हमारे मनके भीतर सदा जाग्रत् रहे। 'हे राम! हमें वह शक्ति दो, जिससे हम सदा निर्विकार और नीरोग बने रहें। रोग-शोक हमारे समीप न आयें। **'आ नो भद्राः**

क्रतवो यन्तु विश्वतः' (ऋ० १। ८९। १) अर्थात् हमें सब ओरसे भले उपयोगी विचार ही प्राप्त हों। **'मा च नः किंचनाममत्'** (अथर्व० ६। ५७। ३) अर्थात् हे परमेश्वर! हमें कोई रोग न हो। **'व्यशेम देवहितं यदायुः'** (ऋ० १। ८९। ८) मेरा तन देवप्रदत्त आयुभर ठीक चले। रोग-विकारसे मुक्त रहे।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

तात्पर्य यह कि जितेन्द्रिय, साधन-परायण और भगवान्‌में श्रद्धा रखनेवाला मनुष्य ही आत्मज्ञानको प्राप्त होकर, फिर भगवत्प्राप्ति-रूप परमशक्तिको प्राप्त होता है।

मनको 'राम'-मय बनाइये। शरीरके सब रोग स्वतः दूर हो जायँगे। प्रभु-चिन्तनसे मन और शरीर निर्मल होते हैं। स्कन्दपुराणमें कहा गया है—

अशने शयने पाने गमने चोपवेशने।
सुखे वाप्यथवा दुःखे राममन्त्रं समुच्चरेत्॥
न तस्य दुःखदौर्भाग्यं नाधिव्याधिभयं भवेत्।
आयुः श्रियं बलं तस्य वर्धयन्ति दिने दिने॥
रामेति नाम्ना मुच्येत पापाद्वै दारुणादपि।
नरकं नहि गच्छेत गतिं प्राप्नोति शाश्वतीम्॥

(धर्मारण्यमाहा० ३४। ४८—५०)

अर्थात् खाते-पीते, सोते, चलते और बैठते समय सुख या दुःखमें जो प्राणी राममन्त्रका उच्चारण करता रहता है, उसे दुःख-दौर्भाग्य और आधि-व्याधिका भय नहीं रहता, उसकी आयु, सम्पत्ति और बल प्रतिदिन बढ़ते ही रहते हैं। 'राम' नामसे मनुष्य भयंकर पापसे छूट जाता है। नरकमें नहीं पड़ता और अक्षयगतिको प्राप्त होता है।

श्रीरामकी गोभक्ति

(श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी, एम्० ए० (द्वय))

भारतीय संस्कृति-सभ्यताके आधारस्तम्भ गौकी गरिमा-महिमाका विस्तृत विवेचन वेदोंसे लेकर अर्वाचीन ग्रन्थोंतकमें पाया जाता है। श्रीकृष्णकी गोभक्तिसे तो लोग परिचित हैं; किंतु श्रीरामकी अद्वितीय गोभक्तिका रहस्योद्घाटन सभीके लिये अपेक्षित और अत्यावश्यक है।

दैत्यों और दानवोंके अनाचार-अत्याचारसे समस्त सुर-नर-मुनि-समाज संत्रस्त था, पीड़ित था। अनेकों बार ऋषि-मुनियों और देवताओंने एक साथ संयुक्त होकर समवेत-स्वरमें श्रीरामजीसे भूभार उतारनेकी, अवतार लेनेकी प्रार्थना की, किंतु कोई सुनवाई नहीं हुई। अन्तमें—

'सँग गोतनुधारी भूमि बिचारी परम बिकल भय सोका॥'

(रा० च० मा० १। १८४। छन्द)

जब पृथ्वीने गोमाताका रूप धारणकर उस समुदायमें सम्मिलित होकर आर्तस्वरसे—करुणस्वरसे पुकार की, प्रार्थना की, तब तो गो-द्विज-हितकारी भगवान्‌का करुण कोमल हृदय पिघल उठा; अब तो उन्हें रामरूपमें अवतरित होना स्वीकार करना पड़ा और कहना पड़ा—

'तुम्हहि लागि धरिहउँ नरबेषा॥'

(रा० च० मा० १। १८७। १)

सभी लोग बड़ी उत्कण्ठासे, बड़ी उत्सुकतासे श्रीराम-जन्मकी प्रतीक्षा कर रहे थे, मार्ग देख रहे थे; किंतु फिर भी राम-जन्म होनेमें विलम्ब हो रहा था। धीरे-धीरे महाराज दशरथकी पुत्रप्राप्ति-आशा निराशामें ही बदलने लगी। अब तो ऋषियोंको पुनः श्रीरामकी गोभक्तिका ध्यान आया और उन्होंने शृङ्गी ऋषिको बुलाकर पुत्रकाम-यज्ञ प्रारम्भ करा दिया। यज्ञमें विभिन्न प्रकारके मिष्टान्नोंकी आहुतियाँ दी जा रही थीं, किंतु अग्निदेव फिर भी प्रसन्न नहीं हो रहे थे। जैसे ही गोघृत और गोदुग्धसे बने हुए हविष्यान्नकी आहुतियाँ दी जाने लगीं, अग्नि देवता प्रसन्न होकर उसी हविष्यान्नको लेकर तुरंत प्रकट हो गये—

'प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हें॥'

(रा० च० मा० १। १८९। ५)

और आशीर्वाद देते हुए राजासे कहने लगे—

यह हबि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥

(रा० च० मा० १। १८९। ८)

इस प्रकार वह निराकार-निर्विकार व्यापक ब्रह्म गोभक्तिके वशीभूत होकर, नारायणसे नर बनकर, भूभार-निवारण करनेके लिये, गोसंरक्षण और गोसंवर्धन करनेके

लिये श्रीरामरूपमें अवतरित हो गया—

'बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।'

(रा० च० मा० १। १९२)

श्रीरामजीके जन्म लेते ही गो-सेवाके कार्य प्रारम्भ होने लगे, गोदान किये जाने लगे—

'हाटक धेनु बसन मनि नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥'

(रा० च० मा० १। १९३)

श्रीरामजीकी बालक्रीडाओं, शिशुलीलाओंमें भी गोभक्ति सर्वत्र झलकती है। गोदुग्ध और गोदधि भारतीय भोजनमें सदैवसे प्रमुख अङ्ग रहे हैं। गोदुग्धकी महिमाको भोजनके लिये सांकेतिक ढंगसे बतानेवाले श्रीरामजी इसीलिये भोजन करते समय मुखमें दही-भात लगाकर, किलकारी मारकर बाहर भाग जाते हैं—

भोजन करत चपल चित इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख दधि ओदन लपटाइ॥

(रा० च० मा० १। २०३)

समस्त भूमण्डलके विजेताओंको पराजित करनेवाले उस शिवधनुषको तोड़नेके पश्चात् भी श्रीरामजीके विवाहका मुहूर्त निश्चित नहीं हो पा रहा था। वर-कन्या दोनों पक्षोंके बड़े-बड़े ज्योतिर्विज्ञान-विशारद—विश्वामित्र, वसिष्ठ और शतानन्द आदि विवाहके लग्नमुहूर्तका संशोधन कर रहे थे; किंतु उपयुक्त लग्न नहीं मिल रहा था। जैसे ही ऋषियोंको श्रीरामकी गोभक्तिका स्मरण आया, उसी क्षण सारी समस्या सुलझ गयी, लग्न-मुहूर्त मिल गया। गोभक्ति-भावनासे अवतरित होनेवाले श्रीरामके विवाहका समय गोधूलि-वेला ही सबसे उत्तम हो सकता है, यह सोचकर सभी ऋषि-महर्षि एक स्वरसे कह उठे—

धेनुधूरि बेला बिमल सकल सुमंगल मूल।
बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनुकूल॥

(रा० च० मा० १। ३१२)

श्रीरामजीके राज्य-सिंहासनारूढ होनेपर गौओंका लालन-पालन, गोसंरक्षण और गोसंवर्धन इतना अधिक हुआ कि सम्पूर्ण देशमें घी और दूधकी नदियाँ बहने लगीं, मनचाहा घी-दूध लोगोंको प्राप्त होने लगा—

'मनभावतो धेनु पय स्रवहीं॥'

(रा० च० मा० ७। २३। ५)

परिणामस्वरूप रामराज्यमें सभी देशवासी रोगों-दोषोंसे मुक्त होकर, सुन्दर, स्वस्थ, सशक्त, बलवान्, चरित्रवान्, दीर्घजीवी जीवन व्यतीत कर रहे थे—

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥

(रा० च० मा० ७। २१। ५)

उपरिवर्णित श्रीरामकी गोभक्ति हम सभी लोगोंके लिये अनुकरणीय और अनुसरणीय है।
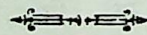
चरित्रकी चारुता

(श्रीरामप्रसादजी अवस्थी, एम्० ए०, शास्त्री, साहित्यरत्न, मानस-तत्त्वान्वेषक, भागवतरत्न)

चरित्र ही व्यक्ति या समाजका अमर इतिहास है। उसकी अक्षय कीर्ति है। चरित्र ही शरीरका, प्राणोंका, मन-बुद्धिका नवनीत है। श्रीरामकथामें एक ओर श्रीरामका मङ्गलमय चरित्र है और एक ओर है रावणका आसुरी चरित्र। एक मानवरूपमें देव है तो दूसरा मानवरूपमें राक्षस या दानव। श्रीरामचरितमानसमें गोस्वामीजी श्रीरामके पिता महाराज दशरथजीके उदात्त चरित्रके विषयमें कहते हैं—

अवधपुरीं रघुकुलमनि राऊ। बेद बिदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम धुरंधर गुननिधि ग्यानी। हृदयँ भगति मति सारँगपानी॥

चक्रवर्ती राजा दशरथके इस परिचयमें उनके गुणोंका उल्लेख है। सूक्ष्मका चित्रण है, स्थूलका नहीं। दूसरी ओर दशमुखके स्वरूपके विषयमें कहा—

दस सिर ताहि बीस भुजदंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा॥

× × ×

भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता जनु नाना॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कंदरा खोह अनुमाना॥

यह है दशमुखकी सर्वभक्षी भोगवादी भावनाके अनुरूप विभ्राट् देहका भयावह वर्णन। चक्रवर्ती राजा दशरथ अपने वचनोंके पोषणमें अपने प्राणोंको अर्पित करते हैं तथा रावण अपने प्राणोंके पोषणमें अगणित प्राणियोंके प्राणोंको ले लेता

है। उसकी दृष्टिमें अपनी सत्ता, अपना शरीर ही देवता है, आराध्य है, इसीलिये वह सबको अपना दास बनाकर दासत्वके चिह्नोंकी स्थापना एवं रक्षण-पोषणमें ही अपना गौरव समझता है। यथा—

ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्ती नर नारी॥

सर्वत्र देवगण तथा संत सिंहासनपर बिठाये जाते हैं, षोडशोपचारसे पूजन होता है, पर रावणके राज्यमें देवता, संत कारागारमें डाले जाते हैं। यथा—

रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाकें बंदीखाना॥

लोकमें मानव डरता है देवगण रुष्ट न हों। देव रूठें तो जलवृष्टि नहीं होगी, अन्न पैदा न होगा। रावणको इसका भय नहीं, अन्न न पैदा हो इसकी चिन्ता नहीं, क्योंकि वहाँका खास खाद्य अन्न नहीं, मांस है—

कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छहीं॥

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना॥

वहाँ पानी पीनेका प्रचलन नहीं है, वहाँकी पिपासाकी तृप्ति करता है मदिरा-कलश।

करसि पान सोवसि दिनु राती।

× × ×

रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिष अनेक॥

एक श्रेष्ठ शासक योजना बनाता है जन-जनको भोजन देनेकी, पर वहीं रावण योजना बनाता है सबको भूखों मारनेकी—

छुधा छीन बलहीन सुर सहजेहिं मिलिहहिं आइ।
तब मारिहउँ कि छाड़िहउँ भली भाँति अपनाइ॥

रावण एक ऐसा शासक है जो स्वयं निर्भय बना रहना चाहता है और चाहता है अन्य सभी मुझसे भयभीत रहें। मैं केवल शासक रहूँ और अन्य सब शासित रहें, मेरा स्वयं-निर्मित न्याय मुझपर नहीं वरन् अन्य लोगोंपर लागू रहे। सभी मेरी प्रशंसा करते रहें। पवनकुमारने रावणकी सभामें यही सब देखा था—

कर जोरें सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता॥

श्रीहनुमान्‌जीपर रावण केवल इसी कारण क्रुद्ध हुआ था कि यह निर्भय क्यों है—

'देखउँ अति असंक सठ तोही॥'

रावण मानता है कि जो मेरे द्वारा किये गये अपमानको अपना राज-सम्मान समझे, वही लंका-दरबारका एक आदर्श-पूर्ण शिष्ट सेवक है। इसके विपरीत जो मेरे साथ अपमानजनक व्यवहार करता है, मेरा साथ नहीं देता है, उसका एकमात्र दण्ड है—प्राणहरण—

'बेगि न हरहु मूढ़ कर प्राना॥'

पराम्बा माता जानकीजीसे रावणने यही कहा था—

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥

रावणके सैनिक जब रणस्थलसे भाग खड़े होते हैं तो कहता है—

जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना॥
सर्बसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भए बल्लभ प्राना॥

वहीं दूसरी ओर हैं श्रीराम! यदि कभी वानर-सेना भाग खड़ी होती है तो श्रीराम कहते हैं, हमसे भूल हो गयी। सेनानायक आरामसे बैठा रहे, अकेले सैनिक लड़ते रहें, यह उचित नहीं। श्रीरामने युद्धका क्रम बदल दिया। सेना पीछे और श्रीराम आगे—

राम सेन निज पाछें घाली। चले सकोप महा बलसाली॥

श्रीरामकी नीति है कि भयके बलपर किसीको कर्तव्यपरायण नहीं बनाया जा सकता। आश्रितका उचित सत्कार ही उसे कर्तव्यारूढ़ कर सकता है।

न्यायपूर्ण पथपर चलनेवाले पुरुषकी सहायता पशु-पक्षी भी करते हैं, किंतु कुमार्गगामीका साथ सगा भाई भी छोड़कर चला जाता है। वानर, जटायु—ऐसे पशु-पक्षियोंने भी श्रीरामका साथ दिया और अन्यायी रावणका साथ उसके भाई विभीषणने भी छोड़ दिया।

माल्यवान् रावणका नाना था। मन्दोदरी पत्नी थी। विभीषण और कुम्भकर्ण भाई थे। प्रहस्त मन्त्री था और इसी नामवाला रावणका एक पुत्र भी था। सभीने अपने-अपने ढंगसे सीताहरणका विरोध किया। रावणने इनका अपमान किया और शत्रु रामसे मिल जानेका मिथ्यारोप लगाया। जिस शासकको अपने स्वजनोंपर ही अविश्वास होगा उसे विनाशसे कौन बचा सकता है?

इधर थे दशरथनन्दन राम, जिन्होंने किसीको अपना गुलाम नहीं बनाया। गुलामीके चिह्नोंको मिटा देनेमें ही

मानवताका गौरव माना और पशुको भी मानव बनाया—

हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥

वहीं रावणने अपने मामा मारीचको पशु बनाया—

'होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी।'

श्रीरामने अयोध्याके विराट् दरबारमें वानरोंको अपने 'सखा' शब्दके द्वारा सम्बोधित किया—उन्हें स्वबन्धु भरतसे अधिक सम्मान दिया। सुग्रीवको दशरथके राजकीय भव्य भवनमें निवास दिया और स्वयं साधारण निवासमें रहे। वानरोंकी बिदाईके समय दैवी सम्पत्तिके प्रथम गुण—'अभय' होनेका वरदान दिया—

सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू॥

सत्तासीन सिंहासनपर भगवान् श्रीरामका एक महत्त्वपूर्ण वैधानिक भाषण होता है। भाषणके पूर्व अपनी प्रजाको वे एक विशेष महत्त्वपूर्ण अधिकार देते हैं। कहते हैं—

जौं अनीति कछु भाषौं भाई। तौ मोहि बरजहु भय बिसराई॥

प्रभु श्रीराम जन-जनको, सारे विश्वको रावणके कु-शासनसे मुक्त कर चुके हैं। अब वे अपने-आपसे भी स्वयं लोगोंको निर्भय रहनेको कहते हैं। श्रीरामके पावन चरित्रका प्रयोजन भी यही था—

'मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा॥'

भयातुर प्राणियोंने प्रार्थना की। श्रीरामने अभय वचन दिया—

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहउँ नरबेषा॥

आदिकाव्यमें श्रीरामका जीवनादर्शका मेरुदण्डतुल्य एक वाक्य है—**'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।'** रावणके अत्याचार हुए, मानवता पीड़ित हुई, पर पीड़ित मानवलोकके व्यथित हृदयने रावणके चरणोंमें आत्मसमर्पण नहीं किया। उन्होंने यही कहा—

'मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंजा।'

—ऐसे आत्मबलको उठानेके लिये विश्वम्भर धरापर उतरते हैं। जिस राष्ट्रमें यह आत्मबल जीवित है, वह राष्ट्र अमर है। गीतावलीमें इस प्रकारका सूक्ष्म वर्णन है कि लंकाके सिंहासनपर दोनों बैठते हैं, एकको क्या मिला और श्रीराम-भक्तको क्या प्राप्त हुआ। दोनों ही भाई हैं—

सब भाँति बिभीषनकी बनी।

कियो कृपालु अभय कालहुतें, गइ संसृति-साँसति घनी॥

× × ×

कलुष-कलंक-कलेस-कोस भयो जो पद पाय रावन रनी।

सोइ पद पाय बिभीषण भो भव-भूषन दलि दूषन-अनी॥

× × ×

होय भलो ऐसे ही अजहूँ गये राम-सरन परिहरि मनी।

भुजा उठाइ, साखि संकर करि, कसम खाई तुलसी भनी॥

श्रीरामका शासन जहाँ धर्ममय होनेसे सर्वजनप्रिय है, वहीं रावणका शासन अधर्मका आश्रय ग्रहण करनेसे भयाक्रान्त, भौतिकवादपर संचालित एवं आधारित है।

धर्म वह है जिससे सभीका कल्याण हो एवं साधनामें सिद्धि प्राप्त हो—**'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।'** शरीरमें प्राण धर्म है, उसके निकल जानेपर वही शरीर अग्नि या पृथिवीको भेंट चढ़ा दिया जाता है। निष्प्राण होनेपर भी धर्म लागू रहता है। धर्मको निकालकर कोई भी समुदाय, संस्था या समाज जीवित नहीं रह सकता। जिन धर्मविग्रहके लिये रावणके मामा मारीचको भी कहना पड़ा था—

'रामो विग्रहवान् धर्मः।'

—उसी धर्मकी महिमामें और संसारकी अनित्यता, क्षणभङ्गुरता तथा विषयोंकी दुःखदातृताके विषयमें कितनी महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है—

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-
मापातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां
धर्मः सदा सुहददो न विरोधनीयः॥

अर्थात् यह पृथिवीका आधिपत्य (सम्पत्ति-अधिकारादि) हवामें उड़नेवाले बादलके समान है, विषय-भोग केवल आरम्भमें ही मधुर लगनेवाले हैं। (उनका अन्त दुःखद है), प्राण तिनकेके अग्रभागपर स्थित जल-बिन्दुके समान नश्वर हैं, एकमात्र धर्म ही मनुष्यका सनातन एवं स्थायी कल्याण-कारक मित्र है, अतः उसका (कभी) विरोध (तिरस्कार) नहीं करना चाहिये।

श्रीरामका शासन सत्य-सापेक्ष, न्याय-सापेक्ष तथा धर्म-सापेक्ष था। कहा गया है—

सखा धर्ममय अस रथ जाकें।

चारिउ चरन धर्म जग माहीं। पूरि रहा सपनेहुँ अघ नाहीं॥

वहीं दूसरी ओर रावणके शासनमें—

जप जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनइ दससीसा।
आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालइ खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहुबिधि त्रासइ देस निकासइ जो कह बेद पुराना॥
बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥

रावणके ऐसे कु-शासनपर भी तबतक कोई आँच नहीं आयी जबतक कि भक्त विभीषण लंकामें बने रहे और उसी समय रावणके शासनके अन्तका श्रीगणेश आरम्भ हो गया जब विभीषणको घोर अपमानित कर निष्कासित कर दिया गया। गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी ऐसे शासकोंको अपने भविष्यकी चेतावनी देते हुए सावधान करते हैं—

सचिव जो रहा धरमरुचि जासू। भयउ बिमात्र बंधु लघु तासू॥
× × ×
रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा॥
× × ×
रामु सत्यसंकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि।
मैं रघुबीर सरन अब जाउँ देहु जनि खोरि॥
अस कहि चला बिभीषनु जबहीं। आयूहीन भए सब तबहीं॥

और तब उस राज्यमें क्या हुआ—

करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया॥
जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला॥

और समाजमें साधु, संत, सज्जन नहीं रहे। वह स्वार्थ-परायण व्यक्तियोंसे आपूरित हो गया—

बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लंपट परधन परदारा॥

श्रीरामकी राजनीतिमें शास्त्रकी प्रतिष्ठा है और रावणकी राजनीतिमें शस्त्रकी। जहाँ श्रीरामके राज्यमें आराधना-स्थलोंमें देवोंका, संतोंका निवास है—

तीर तीर देवन्ह के मंदिर। चहुँ दिसि तिन्ह के उपबन सुंदर॥
कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहिं ग्यानरत मुनि संन्यासी॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई॥
पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहेर नगर परम रुचिराई॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपबन बापिका तड़ागा॥

—वहीं रावणकी लंकापुरीके आराधना-स्थलोंमें श्रीहनुमान्‌ने जो देखा वह इस प्रकार है—

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा॥

वहाँके आराधना-स्थलोंमें युद्धकी प्रवृत्तिके व्यक्ति और उनकी युद्धकी सामग्री आदिका संग्रह रहता है।

उभयपक्षोंकी राजनीतिका विवेचन इस उद्देश्यसे किया गया है कि दिग्भ्रान्त महानुभाव धर्म-स्वरूप भगवान् श्रीरामकी राजनीतिका अनुकरण कर अपना दुराग्रह त्यागकर सद्‌बुद्धि और विवेकपूर्ण आचरणसे स्वनामधन्य राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीके उस प्रेरणासूत्र—

'राम नाम सो ताली लागी सकल तीरथ तोरे तन मा रे।
वाच काच मन निश्चल राखे धन धन जननी तोरी रे॥'

—से प्रेरणा प्राप्तकर राम-राज्यकी नीतिका अनुसरणकर राष्ट्रको उन्नतशील बनायें। और गोस्वामी तुलसीदासके आराध्य सर-चापधर श्रीरामके चरित्रसे प्रेरणा ग्रहण करें—

राजिवनयन धरें धनु सायक। भगत बिपति भंजन सुख दायक॥
× × ×
मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन॥
× × ×
जातुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन॥
× × ×
रावनारि सुखरूप भूपबर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर॥

श्रीरामः शरणं समस्तजगतां रामं विना का गतिः रामेण प्रतिहन्यते कलिमलं रामाय कार्यं नमः।
रामात् त्रस्यति कालभीमभुजगो रामस्य सर्वं वशे रामे भक्तिरखण्डिता भवतु मे राम त्वमेवाश्रयः॥

श्रीरामचन्द्रजी समस्त संसारको शरण देनेवाले हैं। श्रीरामके बिना दूसरी गति कौन-सी है। श्रीराम कलियुगके समस्त दोषोंको नष्ट कर देते हैं, अतः श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार करना चाहिये। श्रीरामसे कालरूपी भयंकर सर्प भी डरता है। जगत्‌का सब कुछ भगवान् श्रीरामके वशमें है। श्रीराममें मेरी अखण्ड भक्ति बनी रहे। हे राम! आप ही मेरे आधार हैं।

माता सीताका दिव्य एवं विश्ववन्द्य पातिव्रत्य

(श्रीशिवनाथजी दुबे, एम्० कॉम्०, एम्० ए०, साहित्यरत्न, धर्मरत्न)

सकलकुशलदात्रीं भक्तिमुक्तिप्रदात्रीं
त्रिभुवनजनयित्रीं दुष्टधीनाशयित्रीम्।
जनकधरणिपुत्रीं दर्पिदर्पप्रहर्त्रीं
हरिहरविधिकर्त्रीं नौमि सद्भक्तभर्त्रीम्॥

'मैं उन भगवती सीताजीकी स्तुति करता हूँ, जो सर्वमङ्गलदायिनी हैं—यहाँतक कि भक्ति और मुक्तिका भी दान करती हैं, जो त्रिभुवनकी जननी हैं तथा दुर्बुद्धिका नाश करनेवाली हैं, जो राजा जनककी यज्ञभूमिसे प्रकट हुई थीं तथा जो अभिमानियोंके गर्वको चूर्ण-विचूर्ण कर देनेवाली हैं, ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी भी जननी हैं एवं श्रेष्ठ भक्तोंका पोषण करनेवाली हैं।'

श्रीमज्जगज्जननी भगवती श्रीसीताजीकी महिमा अपार है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास तथा धर्म-ग्रन्थोंमें इनकी अनन्त लीलाओंका शुभ वर्णन पाया जाता है। ये भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्रिया आद्याशक्ति हैं।

आदिकवि महर्षि वाल्मीकिने माता सीताके पातिव्रत्यका बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया है। सीताके आचरण एवं कथनने ही उनकी पतिभक्तिको प्रकट कर दिया है। अपने पतिदेव श्रीरामको वनगमनके लिये प्रस्तुत देखकर माता सीताने तत्क्षण अपने कर्तव्यका निर्णय कर लिया। वे श्रीरामसे कहती हैं—

आर्यपुत्र पिता माता भ्राता पुत्रस्तथा स्नुषा।
स्वानि पुण्यानि भुञ्जानाः स्वं स्वं भाग्यमुपासते॥
भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि॥

(वा० रा० २।२७।४-५)

'हे आर्यपुत्र! पिता, माता, भाई, पुत्र तथा पुत्रवधू—ये सब-के-सब अपने-अपने कर्मके अनुसार सुख-दुःखका भोग करते हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! एकमात्र पत्नी ही पतिके कर्म-फलोंकी भागिनी होती है। अतएव आपके लिये वनवासकी जो आज्ञा हुई है, वह मेरे लिये भी हुई है। इसलिये मैं भी (आपके साथ) वनवास करूँगी।'

माता सीताने भगवान् श्रीरामसे यह भी स्पष्ट रूपसे कह दिया—

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम्।
नास्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया॥

(वा० रा० २।२७।१०)

'अपने माता-पिताके द्वारा मुझे अनेक बार शिक्षा प्राप्त हो चुकी है। इसलिये इस विषयमें अब आप मुझे कुछ न कहें। इस समय मुझे जो करना चाहिये, वह मुझे मालूम है।'

माता सीताकी इस उक्तिमें कितनी कर्तव्यनिष्ठा एवं कितना आत्मविश्वास है। जिन राजर्षि मिथिलेशसे ज्ञान प्राप्त करने-हेतु ब्रह्मर्षियोंकी महामण्डली निरन्तर आया करती थी, जिन परमज्ञानी मिथिलेश्वरके ज्ञानका लोहा अखिल विश्व मानता था, उनके द्वारा बार-बार दिये गये उपदेशोंका प्रभाव ऐसा क्यों न हो? सीताने पिता जनक, माता सुनयना एवं सास कौसल्याद्वारा प्रदत्त शिक्षाओंका सदैव ध्यान रखा एवं बड़ी ही तत्परताके साथ उनका परिपालन भी किया।

पति-परायणा पत्नी अपने पूज्य पतिके कर्तव्यको जानती है एवं उस पति-कर्मके सहायक-रूप अपने कर्तव्यको भी समझती है। इसीलिये आदर्श पतिव्रता पत्नी अपने पतिके अनुचित आदेशको परिवर्तन करानेका भी प्रेमाग्रह करती है और ऐसा करना अपना अधिकार मानती है। ऐसे प्रेमाग्रहका लक्ष्य आदर्श पत्नीका स्थूल स्वार्थ नहीं होता, पति-हित तथा पति-प्रेम ही उसका मूल उद्देश्य होता है। माता सीताने श्रीरामसे स्पष्ट कहा—

फलमूलाशना नित्यं भविष्यामि न संशयः।
न ते दुःखं करिष्यामि निवसन्ती त्वया सदा॥

(वा० रा० २।२७।१६)

'मैं सदा फल-मूल खाकर रहूँगी। आपके साथ वनमें रहकर आपको किसी भी बातके लिये दुःखी न करूँगी।'

माता सीता फिर श्रीरामको आश्वस्त करनेकी इच्छासे कहती हैं—'आपमें ही मेरा हृदय अनन्य-भावसे अनुरक्त है—आपके अतिरिक्त और कहीं भी मेरा चित्त आसक्त नहीं है। आपके वियोगमें मेरी मृत्यु निश्चित है, इसलिये आप मुझे अपने साथ ले चलिये, मेरी प्रार्थना सफल कीजिये।

मुझे ले चलनेसे आपको कोई भार न होगा।' (वा० रा० २।२७।२३)। वनगमनके समय ही सीताने श्रीरामसे यह भी प्रतिज्ञा की थी—

'शुश्रूषमाणा ते नित्यं नियता ब्रह्मचारिणी।'

(वा० रा० २।२७।१३)

'मैं नियमपूर्वक ब्रह्मचारिणी रहकर आपकी सेवा करूँगी।'

अपने पतिसे निवेदन करती-करती सीता प्रेम-विह्वल हो गयीं। उनकी आँखोंसे स्फटिकके समान स्वच्छ आँसू बहने लगे। वे संज्ञाहीन-सी होने लगीं। तब श्रीरामने उन्हें आश्वस्त करके वनयात्राकी अनुमति प्रदान करते हुए कहा—'हे देवि! मैं उस स्वर्गको भी नहीं चाहता, जहाँ तुम्हारे वियोगका दुःख हो। जैसे स्वयम्भू ब्रह्माको किसीका भी भय नहीं रहता, उसी प्रकार मुझे किसीका भय नहीं है। हे शुभानने! तुम्हारी रक्षाके लिये मैं समर्थ हूँ, किंतु ठीक-ठीक अभिप्राय जाने बिना तुम्हारा वनवास मैं उचित नहीं समझता था। तुम मेरे साथ वनवासके लिये चलो।' (वा० रा० २।३०।२७-२८)

अपने पुनीत प्रेमसे पतिके हृदयको जीतकर सीता वनमें गयीं। वहाँ निरन्तर पति-सेवामें संलग्न रहनेसे जनकपुर एवं अयोध्याके राजोचित भोग तथा ऐश्वर्य उन्हें विस्मृत हो गये। उन्होंने ऋषि-पत्नी अनसूयासे कहा भी—

'यदि मेरे पति अनार्य और जीविकारहित होते तो भी मैं बिना किसी दुविधाके इनकी सेवामें लगी रहती। फिर जब ये अपने गुणोंके कारण ही सभीके प्रशंसा-पात्र बने हुए हैं तथा दयालु, जितेन्द्रिय, धर्मात्मा, स्थायी प्रेम करनेवाले और माता-पिताकी भाँति हितैषी हैं, तब इनकी सेवाके विषयमें कहना ही क्या है?' (वा० रा० २।११८।३-४)

माता सीताको यह पूर्ण विश्वास था कि—

न पिता नात्मजो वात्मा न माता न सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा॥

(वा० रा० २।२७।६)

अर्थात् 'स्त्रीके लिये इस लोकमें और परलोकमें पति ही गति है। पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा अपनी देह भी सच्ची गति नहीं है।'

माता सीता तो अपने सतीत्वके परम तेजसे ही लंकेशको भस्म कर सकती थीं, किंतु पतिकी आज्ञावर्तिनी पत्नी भला पतिकी आज्ञाके बिना कुछ करे तो कैसे? पापात्मा रावणकी कुत्सित मनोवृत्तिकी धज्जियाँ उड़ाती हुई पतिव्रता सीता कहती हैं—'हे रावण! तुम्हें जलाकर भस्म कर देनेका तेज रखती हुई भी मैं श्रीरामचन्द्रजीका आदेश नहीं होनेके कारण एवं तपोभङ्गके भयसे तुम्हें जलाकर भस्म नहीं कर रही हूँ।' (वा० रा० ५।२२।२०)

श्रीहनुमान्‌जीकी पूँछमें आग लगानेकी बात जब माता सीताको विदित हुई तब उन्होंने अग्निदेवसे प्रार्थना की—

यद्यस्ति पतिशुश्रूषा यद्यस्ति चरितं तपः।
यदि वा त्वेकपत्नीत्वं शीतो भव हनूमतः॥

'हे अग्निदेव! यदि मैंने पतिकी सेवा की है, यदि मैंने तपस्या की है, यदि मैं एक रामकी ही पत्नी रही हूँ तो तुम हनुमान्‌के लिये शीतल हो जाओ।'

अपनी अग्नि-परीक्षाके समय भी उन्होंने प्रज्वलित अग्निसे प्रार्थना की थी—'हे लोकसाक्षी पावक! यदि पति रामसे मेरा मन कभी पृथक् न हुआ हो तो आप सब प्रकारसे मेरी रक्षा करें'—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः॥

(वा० रा० ६।११६।२५)

महासती सीताकी प्रार्थनासे हनुमान्‌जीके लिये अग्निदेव सुखद शीतल हो गये और लंकाके लिये दाहक बन गये। सीताके सच्चे पातिव्रत्यकी गवाही अग्नि-परीक्षाके पश्चात् स्वयं अग्निदेवने भी दी थी—'हे राम! सीताके भाव शुद्ध हैं। यह निष्पाप है, तुम इसे स्वीकार करो। अब इससे कुछ न कहना—यह मेरी आज्ञा है।' (वा० रा० ६।११८।१०)

सीताके जिस पातिव्रत्यने धधकती हुई अग्निको भी चन्दन-सा शीतल बना दिया, जिस पातिव्रत्यके साक्ष्यके लिये स्वयं अग्निदेवको प्रकट होकर अपना मन्तव्य प्रकट करना पड़ा, उस पातिव्रत्यकी तुलना विश्वकी किस पतिव्रतासे की जाय और कैसे की जाय? इसीलिये तो यह कहना पड़ता है कि 'माता सीताका पातिव्रत्य दिव्य एवं विश्ववन्द्य है।' ऐसी जगद्वन्द्य, अपार करुणामयी जगन्माता देवी भगवती सीता माताको बार-बार प्रणाम है।

भगवती सीताकी शक्ति तथा पराक्रम

एक बार भगवान् श्रीराम जब सपरिकर सभामें विराज रहे थे, विभीषण बड़ी विकलतापूर्वक अपनी स्त्री तथा चार मन्त्रियोंके साथ दौड़े आये और बार-बार उसाँस लेते हुए कहने लगे—'राजीवनयन राम! मुझे बचाइये, बचाइये। कुम्भकर्णके पुत्र मूलकासुर नामक राक्षसने, जिसे मूल नक्षत्रमें उत्पन्न होनेके कारण कुम्भकर्णने वनमें छुड़वा दिया था, पर मधुमक्खियोंने जिसे पाल लिया था, तरुण होकर तपस्याके द्वारा ब्रह्माजीको प्रसन्न कर उनके बलसे गर्वित हो बड़ा भारी ऊधम मचा रखा है। उसे आपके द्वारा लंका-विजय तथा मुझे राज्य-प्रदानकी बात मालूम हुई तो पातालवासियोंके साथ दौड़ा हुआ लंका पहुँचा और मुझपर धावा बोल दिया। जैसे-तैसे मैं उसके साथ छः महीनेतक युद्ध करता रहा। गत रात्रिमें मैं अपने पुत्र, मन्त्रियों तथा स्त्रीके साथ किसी प्रकार सुरंगसे भागकर यहाँ पहुँचा हूँ। उसने कहा है कि 'पहले भेदिया विभीषणको मारकर फिर पितृहन्ता रामको भी मार डालूँगा। सो राघव! वह आपके पास भी आता ही होगा; इसलिये ऐसी स्थितिमें आप जो उचित समझते हों; वह तुरंत कीजिये।'

भक्तवत्सल भगवान् श्रीरामके पास उस समय यद्यपि बहुत-से अन्य आवश्यक कार्य भी थे, तथापि भक्तकी करुण कथा सुनकर उन्होंने अपने पुत्र लव, कुश तथा लक्ष्मण आदि भाइयों एवं सारी वानरी सेनाको तुरंत तैयार किया और पुष्पकयानपर चढ़कर झट लंकाकी ओर चल पड़े। मूलकासुरको राघवेन्द्रके आनेकी बात मालूम हुई तो वह भी अपनी सेना लेकर लड़नेके लिये लंकाके बाहर आया। बड़ा भारी तुमुल युद्ध छिड़ गया। सात दिनोंतक घोर युद्ध होता रहा। बड़ी कठिन समस्या उत्पन्न हो गयी। अयोध्यासे सुमन्त्र आदि सभी मन्त्री भी आ पहुँचे। हनुमान्‌जी बराबर संजीवनी लाकर वानरों, भालुओं तथा मानुषी सेनाको जिलाते ही रहे; पर युद्धका परिणाम उलटा ही दीखता रहा। भगवान् चिन्तामें कल्पवृक्षके नीचे बैठे थे। मूलकासुर अभिचार-होमके लिये गुप्तगुहामें गया था। विभीषण भगवान्‌से उसकी गुप्त चेष्टा बतला रहे थे। तबतक ब्रह्माजी वहाँ आये और कहने लगे—'रघुनन्दन! इसे मैंने स्त्रीके हाथ मरनेका वरदान दिया है। इसके साथ ही एक बात और है, उसे भी सुन लीजिये। एक दिन इसने मुनियोंके बीच शोकसे व्याकुल होकर 'चण्डी सीताके कारण मेरा कुल नष्ट हुआ' ऐसा वाक्य कहा। इसपर एक मुनिने क्रुद्ध होकर उसे शाप दे दिया—'दुष्ट! तूने जिसे चण्डी कहा है, वही सीता तुझे जानसे मार डालेंगी।' मुनिका इतना कहना था कि वह दुष्टात्मा उन्हें खा गया। अब क्या था, शेष सब मुनिलोग चुपचाप उसके डरके मारे धीरेसे वहाँसे खिसक गये। इसलिये अब उसकी कोई औषध नहीं है। अब तो केवल सीता ही इसके वधमें समर्थ हो सकती हैं। ऐसी दशामें रघुनन्दन! आप उन्हें ही यहाँ बुलाकर इसका तुरंत वध करानेकी चेष्टा करें। यही इसके वधका एकमात्र उपाय है।'

इतना कहकर ब्रह्माजी चले गये। भगवान् श्रीरामने भी तुरंत हनुमान्‌जी और विनतानन्दन गरुडको सीताको पुष्पकयानसे सुरक्षित ले आनेके लिये भेजा। इधर पराम्बा भगवती जनकनन्दिनी सीताकी बड़ी विचित्र दशा थी। उन्हें श्रीराघवेन्द्र रामचन्द्रके विरहमें एक क्षणभर भी चैन नहीं था। वे बार-बार प्रासाद-शिखरपर चढ़कर देखतीं कि कहीं दक्षिणसे पुष्पकपर प्रभु तो नहीं पधार रहे हैं। वहाँसे निराश होकर वे पुनः द्राक्षामण्डपके नीचे शीतलताकी आशामें चली जातीं। कभी वे प्रभुकी विजयके लिये तुलसी, शिवप्रतिमा, पीपल आदिकी प्रदक्षिणा करतीं और कभी ब्राह्मणोंसे मन्युसूक्तका पाठ करातीं। कभी वे दुर्गाकी पूजा करके यह माँगतीं कि विजयी श्रीराम शीघ्र लौटें और कभी ब्राह्मणोंसे शतरुद्रियका जप करातीं। नींद तो उन्हें कभी आती ही न था। वे दुनियाभरके देवी-देवताओंकी मनौती मनातीं तथा सारे भोगों और शृंगारोंसे विरत रहतीं। इसी प्रकार युगके समान उनके दिन जा रहे थे कि गरुड और हनुमान्‌जी उनके पास पहुँचे। पतिके संदेशको सुनकर सीता तुरंत चल दीं। और लंकामें पहुँचकर उन्होंने कल्पवृक्षके नीचे प्रभुका दर्शन किया। प्रभुने उनके दौर्बल्यका कारण पूछा। पराम्बाने लजाते हुए हँसकर कहा— 'स्वामिन्! यह केवल आपके अभावमें हुआ है। आपके बिना न नींद आती है न भूख लगती है। मैं आपकी वियोगिनी, बस, योगिनीकी तरह रात-दिन बलात् आपके ध्यानमें पड़ी रही। बाह्य शरीरमें क्या हुआ है, इसका

मुझे कोई ज्ञान नहीं।'

तत्पश्चात् प्रभुने मूलकासुरके पराक्रमादिकी बात कही। फिर तो क्या था, भगवतीको क्रोध आ गया। उनके शरीरसे एक दूसरी तामसी शक्ति निकल पड़ी, उसका स्वर बड़ा भयानक था। वह लंकाकी ओर चली। तबतक वानरोंने भगवान्‌के संकेतसे गुहामें पहुँचकर मूलकासुरको अभिचारसे उपरत किया। वह दौड़ता हुआ इनके पीछे चला तो उसका मुकुट गिर पड़ा। तथापि वह रणक्षेत्रमें आ गया। छायासीताको देखकर उसने कहा—'तू भाग जा। मैं स्त्रियोंपर पुरुषार्थ नहीं दिखाता।' पर छायाने कहा—'मैं तुम्हारी मृत्यु-चण्डी हूँ। तूने मेरे पक्षपाती ब्राह्मणको मार डाला था, अब मैं तुम्हें मारकर उसका ऋण चुकाऊँगी', इतना कहकर उसने मूलकपर पाँच बाण चलाये। मूलकने भी बाण चलाना शुरू किया। अन्तमें चण्डिकास्त्र चलाकर छायाने मूलकासुरका सिर उड़ा दिया। वह लंकाके दरवाजेपर जा गिरा। राक्षस हाहाकार करते हुए भाग खड़े हुए। छाया लौटकर सीताके शरीरमें प्रवेश कर गयी। तत्पश्चात् विभीषणने प्रभुको पूरी लंका दिखायी; क्योंकि पिताके वचनके कारण पहली बार वे लंकामें न जा सके थे। सीताजीने उन्हें अपना वासस्थल अशोकवन दिखाया। कुछ देरतक वे प्रभुका हाथ पकड़कर उस वाटिकामें घूमीं भी। फिर कुछ दिनोंतक लंकामें रहकर वे सीता तथा लव-कुशादिके साथ पुष्पकयानसे अयोध्या लौट आये।

(आनन्दरामायण, राज्यकाण्ड; पूर्वार्ध, अध्याय ५-६)

अद्भुतरामायण (१६—२१) में ऐसी ही एक दूसरी कथा भगवती सीताद्वारा शतमुख रावणके वधकी आती है।

श्रीरामभक्तिमें भगवन्नाम तथा प्रार्थनाका महत्त्व

(श्रीआनन्दबिहारीजी पाठक 'श्रीसत्कृपैषी', एम्० ए०, साहित्यरत्न, साहित्यालंकार, वैद्यविशारद)

ईश-भक्ति अथवा भगवान्‌की शरणागतवत्सलतापूर्ण कृपा पानेके लिये विभिन्न मार्गोंमें भक्तिमार्गको ही सबसे सुलभ साधन बताया गया है। भगवद्भक्तिमें हृदयकी परिशुद्धता, मनकी एकाग्रताके साथ पूर्ण समर्पणमय भक्ति-भावनासे लीन हो जानेपर भगवद्दर्शन और परमपद पाना आसान हो जाता है। इसीलिये इस कलिकालमें श्रीरामकी कृपा अर्थात् भगवत्प्राप्तिके लिये भगवन्नामोंके स्मरण-कीर्तनके साथ ही परम प्रभुकी प्रार्थनामें लीन हो जाना मुख्य एवं सर्वसुलभ साधन बताया गया है, जिसका अवलम्बन कर कोई भी प्राणी अपने आत्मोद्धारसहित महाप्रभुकी शरण प्राप्त कर सकता है।

यह सर्वविदित है कि परब्रह्म महाप्रभु 'राम' ने त्रेतायुगमें पृथिवीपर रावण आदि प्रबल राक्षसोंके द्वारा ऋषि-मुनियों एवं लोगोंपर अत्यधिक अत्याचारका बढ़ जाना देखकर लोक-कल्याण एवं संरक्षणके लिये रघुकुलभूषण दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रके रूपमें अवतार ग्रहण किया था। ये नर-तन-लीलाधारी परब्रह्मस्वरूप श्रीराम मर्यादापुरुषोत्तमके रूपमें विश्वमें प्रतिष्ठित हुए और अपनी नर-लीलाके द्वारा उन्होंने अत्याचार-पीड़ित ऋषि-मुनियों और समस्त मानवोंकी पीड़ा हरकर उनका कल्याण किया और दैविक, दैहिक तथा भौतिक तापोंसे रहित रामराज्यकी स्थापना कर संसारमें आनन्दमय सुख-शान्तिका प्रकाश फैला दिया था।

पुराणोंमें वर्णित गाथाके अनुसार परब्रह्म रामने स्वायम्भुव मनु और महारानी शतरूपाकी घोर तपस्यासे प्रसन्न होकर मनु और शतरूपाकी लालसा पूरी करनेके लिये उनका पुत्र बनना स्वीकार कर लिया था। इसी प्रदत्त वरदानके अनुसार मनुने अयोध्यामें राजा दशरथके रूपमें तथा महारानी शतरूपाने कौसल्याके रूपमें जन्म ग्रहण किया था और साक्षात् नारायणने मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामके रूपमें भव-भय-भञ्जक और लोकरञ्जक कार्योंके सम्पादनार्थ अवतार लिया था।

ये श्रीराम साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हैं, जो धर्मकी रक्षा, अत्याचारके दमन और लोकोद्धारके लिये अवतीर्ण हुए थे। अतः यह निर्विवाद है कि भगवान् रामके समान सहज कृपालु, भक्तजन-आर्तहारी, मर्यादारक्षक एवं शरणागतवत्सल आजतक दूसरा कोई नहीं हुआ। नर-तन धारण कर लीला करनेवाले श्रीराम सद्गुणोंके समुद्र हैं।

ऐसे भक्तवत्सल एवं परम उदार श्रीरामका नाम-स्मरण-कीर्तन करनेसे, उनकी भक्तिमें लीन होनेसे, उनके लीला-चरित्रोंके पढ़ने-लिखने अथवा सुननेसे सभी पाप-ताप जलकर

नष्ट हो जाते हैं। उनके गुणोंका गान करनेसे, उनकी प्रार्थनासे, इनके भक्तोंमें भी उनके गुण समाहित हो जाते हैं और अत्यन्त सुगमतासे उन्हें इनकी कृपा प्राप्त हो जाती है और अन्ततः श्रीरामके दिव्य-दर्शनसहित परमधाम मिल जाता है।

उल्टा नामु जपत जगु जाना। बालमीकि भए ब्रह्म समाना॥

शास्त्रोंमें भगवान्से भी अधिक उनके राम-नामकी अपार महिमा प्रदर्शित की गयी है। वैष्णवाग्रणी भूतभावन भगवान् शंकर देवी पार्वतीको राम-नामकी महिमा बताते हुए कहते हैं—

रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापापनोदकः।
गच्छन् तिष्ठञ्शयानो वा मनुजो रामकीर्तनात्॥
इह निर्वर्तितो याति चान्ते हरिगणो भवेत्।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः॥
न रामादधिकं किंचित् पठनं जगतीतले।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना॥
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते॥
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिनिषूदकः।
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः॥
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि।
देवा अपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम्॥
तस्मात् त्वमपि देवेशि रामनाम सदा वद।
रामनाम जपेद् यो वै मुच्यते सर्वकिल्बिषैः॥

(स्कन्दपुराण, नागरखण्ड)

'राम' यह दो अक्षरोंका मन्त्र जपनेपर समस्त पापोंका नाश करता है। चलते, खड़े हुए अथवा सोते (जिस किसी भी समय) जो मनुष्य राम-नामका कीर्तन करता है, वह यहाँ कृतकार्य होकर जाता है और अन्तमें भगवान् हरिका पार्षद बनता है। 'राम'—यह दो अक्षरोंका मन्त्र शतकोटि मन्त्रोंसे भी अधिक महत्त्व रखता है। राम-नामसे बढ़कर जगत्में जप करने योग्य कुछ भी नहीं है। जिन्होंने राम-नामका आश्रय लिया है, उनको यमयातना नहीं भोगनी पड़ती। जो मनुष्य अन्तरात्मस्वरूपसे राम-नामका उच्चारण करता है, वह स्थावर-जङ्गम सभी भूतप्राणियोंगें रमण करता है। 'राम' यह मन्त्रराज है, यह भय तथा व्याधिका विनाश करनेवाला है। 'रामचन्द्र', 'राम', 'राम'—इस प्रकार उच्चारण करनेपर यह दो अक्षरोंका मन्त्रराज पृथ्वीमें समस्त कार्योंको सफल करता है। गुणोंकी खान इस राम-नामका देवतालोग भी भलीभाँति गान करते हैं। अतएव हे देवेश्वरि! तुम भी सदा राम-नामका उच्चारण किया करो। जो राम-नामका जप करता है, वह सारे पापोंसे (पूर्वकृत एवं वर्तमानकृत सूक्ष्म और स्थूल पापोंसे और समस्त पाप-वासनाओंसे सदाके लिये) छूट जाता है।

गोस्वामीजीने राम-नामकी महत्ता दर्शाते हुए कहा है—

कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना॥
नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥

× × ×

नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

उपर्युक्त उद्धरणोंसे भगवन्नामके स्मरण और राम-नामके कीर्तनकी महत्ता सिद्ध होती है। इसलिये यह सत्य है कि राम-नामका सदा स्मरण करते हुए जो शुद्ध-भावसे उनकी प्रार्थनामें लीन रहता है, उसे श्रीरामकी सच्ची भक्ति प्राप्त हो जाती है और अन्ततः परब्रह्म महाप्रभु श्रीरामके दर्शन और उनकी पूर्ण कृपा भी प्राप्त हो जाती है।

श्रीरामकी भक्तिकी प्राप्तिके लिये इस कलियुगमें श्रीरामके नामका सदा स्मरण-कीर्तन करनेके साथ-साथ नाम-गुणकी प्रार्थनामें लीन रहना ही सर्वोपरि साधन है। यह भी देखा जाता है कि जबतक जीव एकदम हताश, निराश और निरुपाय नहीं हो जाता, लौकिक साधनोंका अपनाना भी निष्फल साबित नहीं होता है, तबतक वह शुद्ध और सात्त्विक हृदयसे भगवान्की शरण नहीं ग्रहण कर पाता। किंतु जब वह सभी ओरसे निराश और हताश हो जाता है और उसे कोई दूसरा मार्ग दृष्टिगोचर नहीं होता, तब वह भगवान्की शरण लेता है। उसके हृदयमें आप-से-आप तब अनन्यतापूर्ण भक्तिका भाव जाग जाता है और तब वह राम-नाम, हरि-नाम, भगवन्नामका लेना और उनकी प्रार्थना करना शुरू कर देता है। भगवन्नामका उच्चारण करनेसे और उनकी प्रार्थनामें लीन हो जानेसे उस असहाय और निराश जीव या भक्तकी वाणीमें, स्वरमें तथा आँखोंके आँसुओंमें वह शक्ति आ जाती है, जिससे उसकी पुकार सुनकर भगवान्को बरबस वहाँ आना पड़ता है। द्रौपदी, गजेन्द्र, अजामिल आदि भक्तोंके आर्तनादपूर्ण पुकारपर भगवान्का दौड़े आना और घोर संकटमें पड़े भक्तोंकी रक्षा

करना—इस उपर्युक्त विवेचनके प्रमाण-स्वरूप ज्वलन्त उदाहरण हैं। ध्रुव, प्रह्लाद, राजा रन्तिदेव, स्वयं ईसामसीहने सच्ची प्रार्थनाकी परमोच्चता प्रदर्शित की है।

श्रीतुलसीदासजीने राम-नामकी महिमा बतलाते हुए ठीक ही कहा है कि—

नाम रामको अंक है सब साधन हैं सून।
अंक गएँ कछु हाथ नहिं अंक रहें दस गून॥

अर्थात् राम-नामरूपी 'अङ्क' का अत्यन्त महत्त्व है। जिस प्रकार कोई 'अङ्क' हाथमें रहनेपर भी 'शून्य' की भी सार्थकता सिद्ध होती है। 'अङ्क' के छोड़ देनेपर 'शून्य' बेकार और निष्फल हो जाता है। इसलिये राम-नामरूपी 'अङ्क' को अपनाकर यदि हम उसपर साधनरूपी 'शून्य' को ग्रहण करते हैं तो हमें 'दस गुना, सौ गुना, हजार गुना, लाख गुना' प्राप्तिका लाभ, उसपर शून्योंके रखनेसे मिल जाता है। इसलिये राम-नामके अनुपम महत्त्वको समझकर भक्ति-भावसे इसे ग्रहण किये रहनेपर ही हमें सब प्रकारका लाभ मिलनेके साथ हमारा कल्याण होना सम्भव है। अन्यथा विपरीत आचरणसे नहीं।

कलियुगमें तो रामका नाम लेनेसे ही सारे सांसारिक कष्ट-भय दूर हो जाते हैं, आत्मोद्धार हो जाता है। इसलिये इसका परम महत्त्व है—

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल॥

(रा॰ च॰ मा॰ ७। १२४ क)

प्रभुके नाम-स्मरणके साथ-साथ प्रार्थनाकी भी अनुपम महिमा है। प्रार्थनाका अर्थ है—जीवात्माका परमात्माके साथ, भक्तका भगवान्‌के साथ सक्रिय लगाव—अनन्यभक्ति एवं प्रेममय सम्बन्ध। ईश्वर-प्राप्तिके लिये परम आकुलता या आर्तताकी भावनासे पूर्ण अभिव्यक्ति आदर्श प्रार्थना कहलाती है। क्योंकि सच्चे और शुद्ध हृदयसे निकली हुई प्रार्थना तुरंत फलदायिनी होती है। सच्ची प्रार्थनाके समय दम्भ, मोह, काम, छल, छद्म, दिखावा आदि दोष आप-से-आप दूर होकर हृदय पवित्र और भक्तिमय हो जाता है। इसीलिये कहा गया है कि भक्ति-मार्गमें भगवन्नाम यदि संक्षिप्त-रूप है तो प्रार्थना उसका विस्तार है। इसलिये भगवन्नामका स्मरण-कीर्तन और ईश-प्रार्थना शुद्ध हृदय एवं निष्कामभावसे तन्मय होकर किया जाना श्रेष्ठ उपाय है, ऐसी स्थितिमें साधक किंवा भक्त भगवान्‌की अहैतुकी कृपामयी भक्तिका पूर्ण अवलम्बन प्राप्त कर लेता है और उसका जीवन सफल हो जाता है।

लोभ रावण और शान्ति सीता

त्यागका मार्ग कठिनाईका मार्ग है। इससे घबरानेकी आवश्यकता नहीं। कठिनाईको पार करो। साहससे काम लो। नीतिकारोंने कहा है कि 'भयसे भय बढ़ता है। भयकी छातीको चीरकर चले जाओ, फिर कोई भय नहीं।' ठीक इसी प्रकार कठिनाइयोंसे घबराओगे तो वे बढ़ेंगी। उनका सामना करो, वे मिट जायँगी। यदि राम समुद्रसे घबरा जाते, अपनी थोड़ी-सी सेना देखकर निराश हो जाते तो उन्हें सीता कैसे मिलती ? वे घबराये नहीं। उन्होंने साहससे काम लिया। अपने छोटे साधनोंके उपरान्त भी रावणको समस्त दुराशाओंके साथ जमींका पूत बना दिया। एक कविने कहा है—

विजेतव्या लंका चरणतरणीयो जलनिधि-
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।
तथाप्येको रामः सकलमवधीद्राक्षसकुलं
क्रियासिद्धिः सत्त्वे वसति महतां नोपकरणे॥

महान् पुरुषोंकी क्रिया-सिद्धि उनके सत्त्व (बल), साहस एवं व्यक्तित्वमें रहती है, वह बाहरी उपकरणोंमें नहीं मिलती। आज आपकी प्रियतमा सुदूरवर्ती टापू लंकामें अपहृत हो चुकी है। बीचमें भौतिकताका विशालकाय समुद्र पड़ा है। दुनियाके सबसे बड़े शत्रु लोभ—रावणको मारकर आपको अपनी शान्ति—सीताको लाना है। डरो मत। घबराओ नहीं। हिम्मत रखो। साहस बटोरो। युवक जहाँ गोलियोंकी बौछारमें सीना तानकर खड़े हो जाते हैं, वहाँ इसमें घबराहटकी क्या बात है ?

(आचार्य श्रीतुलसीजी)

साकेत—दिव्य अयोध्या

(मानस-तत्त्वान्वेषी पं० श्रीरामकुमारदासजी रामायणी)

साकेते स्वर्णपीठे मणिगणखचिते कल्पवृक्षस्य मूले
नानारत्नौघपुञ्जे कुसुमितविपिने नेत्रजास्वच्छकूले।
जानक्यङ्के रमन्तं नृपनयविधृतं मन्त्रजाप्यैकनिष्ठं
रामं लोकाभिरामं निजहृदिकमले भासयन्तं भजेऽहम्॥

साकेतरासरसकेलिविधौ विदग्धां
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवसुवृन्दसशक्तिजुष्टाम्।
आनन्दब्रह्मद्रवरूपमतीं नतोऽस्मि
तां रामप्रेमजलपूरणब्रह्मरूपाम्॥

ब्रह्मादिभिः सुखरैः समुपास्यमानां
लक्ष्म्यादिभिश्च सखिभिः परिसेव्यमानाम्।
सर्वेश्वरैः सहगणैः परिगीयमानां
तां राघवेन्द्रनगरीं नितरां नमामि॥

'दिव्यातिदिव्य साकेतलोकमें भगवान्के नेत्र (जल) से उत्पन्न सरयू नदीके निर्मल कूलपर पुष्पित कानन है। उसके अन्तर्गत कल्पवृक्षके मूलमें जो नाना प्रकारकी रत्नराशिका पुञ्जमात्र है, मणिजटित एक स्वर्णमय पीठ है। उसपर जगज्जननी जानकीके साथ दिव्य केलिमें रत, राजनीतिके धुरन्धर, अपनी आराध्या एवं प्रियतमा भगवती जानकीके ही मन्त्रजपमें अनन्यभावसे परायण तथा अपने निजजनोंके हृदयरूपी कमलमें प्रकाश फैलाते हुए लोकसुखदायक भगवान् श्रीरामका मैं भजन करता हूँ।'

'मैं उन नदीश्रेष्ठ भगवती सरयूको प्रणाम करता हूँ, जो साकेतलोकमें निरन्तर होनेवाली रासरूपी सरस केलिके विधानमें परम पटु हैं, जो शक्तिसहित ब्रह्मा, रुद्र, वसु आदि देवगणोंके द्वारा सेवित हैं, जिनके रूपमें स्वयं आनन्दमय ब्रह्म ही द्रवित होकर प्रवहमान है तथा जो भगवान् श्रीरामके नेत्रोंसे निकले हुए प्रेमाश्रुओंसे पूर्ण ब्रह्मस्वरूपा हैं।'

'मैं भगवान् राघवेन्द्रकी राजधानी अयोध्यापुरीकी आदरपूर्वक वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मादि देववरोंके द्वारा उपासित हैं, भगवती लक्ष्मी-प्रभृति अपनी सखियोंद्वारा सुसेवित हैं और जिनका अपने-अपने गणों (पार्षदों) सहित सम्पूर्ण ईश्वरकोटिके देवताओंके द्वारा स्तवन किया जाता है।'

आनन्दाम्बुधि भगवान्के नित्यधामके विषयमें पूर्वकालमें दार्शनिकोंने प्रश्नोत्तररूपमें इस प्रकार समझाया था—

प्रश्न—किमात्मिका भगवद्व्यक्तिः ?

भगवान्का आविर्भाव या प्राकट्य किस रूपमें होता है ?

उत्तर—यदात्मको भगवान् तदात्मिका भगवद्व्यक्तिः।

भगवान्का अपना जो स्वरूप है, उसी रूपमें उनकी अभिव्यक्ति होती है।

प्रश्न—किमात्मको भगवान् ?

भगवान्का क्या स्वरूप है ?

उत्तर—सदात्मको भगवान्, चिदात्मको भगवान्, आनन्दात्मको भगवान्। अतएव सच्चिदानन्दात्मिका भगवद्व्यक्तिः।

भगवान् सत्स्वरूप हैं, चित्स्वरूप हैं, आनन्दस्वरूप हैं। इसीलिये उनका प्राकट्य भी सत्स्वरूप, चित्स्वरूप, आनन्द-स्वरूप ही होता है।

यहाँ चित्का अर्थ स्वयम्प्रकाशात्मकता मात्र है, चैतन्य नहीं। भगवान्के नित्यधामको ही वैदिक भाषामें 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है। परमात्माकी समग्र विभूति दो भागोंमें विभक्त है। एक चतुर्थांशका एक भाग है, जिसे 'एकपाद्विभूति' कहा जाता है। इसीका नाम अविद्यापाद एवं मायापाद भी है और तीन चतुर्थांशोंका एक भाग है, जिसे 'त्रिपाद्विभूति' कहा जाता है और उसीके नाम ब्रह्मपाद, आनन्दपाद एवं शुद्धसत्त्वपादादि भी हैं।

'पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि।'
(ऋग्वेद १०।९०।३, अथर्व० १९।६।३, यजु० ३१।३, तै० आ० ३।१२।१)

'त्रिपादूर्ध्वमुदैत् पुरुषः पादोऽस्येहाभवत् पुनः।'
(ऋग्वेद १०।९०।४, यजु० ३१।४, अथर्व० १९।६।२, तै० आ० ३।१२।२)

दोनों भागोंकी सीमा विरजा है। एकपाद (मायापादविभूति) में ही युगपत् प्रतिपल अनन्तानन्त ब्रह्माण्ड बना-बिगड़ा करते हैं—

सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया॥
× × ×
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥

× × ×

रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥

(रा॰ च॰ मा॰, सुन्दर॰ २१ । ४; अरण्य॰ १३ । ६; बाल॰ २०१)

इस 'एकपाद्विभूति' के लिये कहा गया है—

'इस 'मायापाद' के इर्द-गिर्द तथा नीचेकी ओर कोई सीमा नहीं है। इसके ऊपरकी ओर विरजा नदी है। त्रिपाद्विभूतिके नीचेकी सीमा विरजा नदी ही है, ऊपर तथा दोनों पार्श्वोंमें सीमा नहीं है।'

आज जिस ब्रह्माण्डमें हमलोग रहते हैं—'यह प्रकृतिसे उत्पन्न रमणीय ब्रह्माण्ड (भूः, भुवः आदि सात ऊपरके तथा अतल, वितल आदि सात नीचेके—कुल) चौदह लोकोंसे व्याप्त है। द्वीपोंसे युक्त सागरोंसे, (स्वेदज, अण्डज, जरायुज एवं उद्भिज्ज—इन) चार कोटिके जीवोंसे तथा महान् आनन्ददायक पर्वतोंसे परिपूर्ण है। इतना ही नहीं, वस्त्रोंकी परतोंके समान दस उत्तरोत्तर विशाल आवरणोंसे यह घिरा हुआ है। यह प्राकृत ब्रह्माण्ड साठ करोड़ योजन ऊँचा और पचास करोड़ योजन विस्तारवाला है। यह अण्ड अपने इर्द-गिर्द तथा ऊपर-नीचे कड़ाहेके समान कठोर भागसे उसी प्रकार सब ओर घिरा हुआ है, जैसे अनाजका बीज कड़ी भूसीसे घिरा रहता है। जैसे कैथका फल बीजोंके आधारपर स्थित रहता है, उसी प्रकार जड-चेतनात्मक ब्रह्माण्ड इसी अण्डकटाहके आधारपर स्थित है। पृथिवीका घेरा एक करोड़ योजनका है, जलका घेरा दस करोड़ योजनका कहा गया है, अग्निका घेरा सौ करोड़ (एक अरब) योजनके परिमाणका है, वायुका घेरा हजार करोड़ (दस अरब) योजन परिमाणका है। आकाशका आवरण दस हजार करोड़ (एक खरब) योजनका है, अहंकारका आवरण एक लाख करोड़ (दस खरब) योजनका और प्रकृतिका आवरण असंख्य योजनका कहा गया है। प्रकृतिके अन्तर्गत समस्त लोक कालरूप अग्निके द्वारा (प्रलयकालमें) जला दिये जाते हैं।'

× × ×

'भगवान्का (साकेत) धाम प्रकृतिके परे, सदा रहनेवाला, अपने ही प्रकाशसे प्रकाशित, निर्विकार, मायारूपी मलसे रहित, काल एवं प्रलयके प्रभावसे मुक्त तथा एकमात्र भक्तिसे ही प्राप्त होता है। उसीके सम्बन्धमें गीतावक्ता श्रीकृष्ण कहते हैं—'उसे न तो सूर्य प्रकाशित करता है, न चन्द्रमा और न अग्नि। जहाँ पहुँचकर कोई भी लौटकर इस प्राकृत ब्रह्माण्डमें नहीं आता, ऐसा मेरा सर्वश्रेष्ठ परम धाम है' (गीता १५ । ६)। जिस मायिक प्रपञ्चका मैंने ऊपर उल्लेख किया है, 'वह अविद्यारूप घने अन्धकारसे व्याप्त है, उसके ऊपरी भागमें विरजा नामकी नदी, जिसकी कोई सीमा नहीं है, विश्व-ब्रह्माण्डके उस पार उसका आवरण बनी हुई स्थित है। विरजा नदी प्रकृति एवं परव्योम (भगवद्धाम) के बीचमें विद्यमान है।' (बृहद्ब्रह्मसंहिता, पाद ३, अध्याय १, श्लोक ११ से १९, ४०से ४३)

भूलोक और महर्लोकके बीचमें भुवर्लोक और स्वर्लोक है। कहा गया है—'महर्लोक' पृथिवीके ऊपर (भुवर्लोक एवं स्वर्लोकसे भी आगे) एक करोड़ योजन परिमाणका है। उसके ऊपर दो करोड़ योजन परिमाणका 'जनलोक' है, उसके ऊपर चार करोड़ योजनका 'तपोलोक' और उसके भी ऊपर आठ करोड़ योजनका 'सत्यलोक' है। उसके बाहर 'सप्तावरण' नामका बाहरी घेरा है।'

('उपासनात्रयसिद्धान्त' नामक ग्रन्थमें उद्धृत सदाशिव-संहितासे)

विरजाके उस पार स्थित त्रिपाद्विभूतिको ही उपासकोंकी भाषामें परम धाम, नित्यलोक, साकेत, गोलोक एवं महावैकुण्ठ आदि कहा जाता है और साम्प्रदायिक रहस्यग्रन्थोंमें अलग-अलग इनका विस्तृत वर्णन पाया जाता है।

शिवहर स्टेटसे सं॰ १९९७ वि॰ में प्रकाशित शिव-संहिताके पञ्चम पटलके बीसवें अध्यायमें वर्णन है—

अयोध्या नन्दिनी सत्यनामा साकेत इत्यपि ।
कोसला राजधानी च ब्रह्मपूरपराजिता ॥ १५ ॥
अष्टचक्रा नवद्वारा नगरी धर्मसम्पदाम् ।
दृष्ट्वैवं ज्ञाननेत्रेण ध्यातव्या सरयूस्तथा ॥ १६ ॥

'अयोध्या नगरीके अनेक नाम हैं—जैसे नन्दिनी, सत्या, साकेत, कोसला, राजधानी, ब्रह्मपुरी और अपराजिता। वह अष्टदल पद्मके आकारकी है, नौ द्वारोंसे युक्त है। यह धर्मके धनी लोगोंकी नगरी है। इसे ज्ञानके नेत्रोंसे देखकर इसका तथा (साथ-ही-साथ) सरयू नदीका (भी) ध्यान करना चाहिये।'

'इस ब्रह्मपुरी अष्टचक्रा नवद्वारा 'साकेत' के नाम ही अयोध्या, अपराजिता, सत्यलोक, सत्यधाम आदि भी हैं।

अथर्ववेद-मन्त्रसंहिताके दसवें काण्डके दूसरे सूक्तके २७ १/२ से ३३ तक अन्तिम साढ़े पाँच मन्त्रोंमें अयोध्या (साकेत) का जितना विपुल, विशद, सुस्पष्ट अथ च साम्प्रदायिक वर्णन है, उतना किसी भी पुरीका वर्णन वेद-मन्त्रसंहिताओंमें नहीं है। इसका कारण यही है कि वेद भी तो श्रीरामजीके गुणोंका गान करता है—

'**सगुन जस नित गावहीं ॥**' (रा० च० मा० ७। १३। छं० ६)

उन वेदमन्त्रोंके शब्दार्थमें किसीको कुछ भी अपनी ओरसे (अध्याहार करके) मिलानेकी आवश्यकता नहीं रहती। वे मन्त्र नीचे दिये जाते हैं—

पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥
यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम्।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥

(अथर्व० १०। २। २८-२९)

इस डेढ़ मन्त्रका अन्वय एकमें ही है; अतः साथ ही अर्थ भी दिया जाता है—**(यः)** जो कोई **(ब्रह्मणः)** ब्रह्मके अर्थात् परात्पर परमेश्वर, परमात्मा, जगदादिकारण, अचिन्त्यवैभव श्रीसीतानाथ श्रीरामजीके, **(पुरम् वेद)** पुरको जानता है, (उसे भगवान् तथा भगवान्‌के पार्षद—सब लोग चक्षु, प्राण और प्रजा देते हैं)। किस पुरीको जाननेके लिये कहते हो? **(यस्याः)** जिस पुरीका स्वामी **(पुरुषः उच्यते)** 'पुरुष' कहा जाता है, अर्थात् जिसका प्रतिदिन नाम-स्मरण किया जाता है, उस पुरुषकी पुरीको जाननेके लिये श्रुति कह रही है। **(यः ब्रह्मणः)** जो कोई अनन्तशक्तिसम्पन्न, सर्वव्यापक, सर्वनियन्ता, सर्वशेषी, सर्वाधार श्रीरामजीकी, **(अमृतेन आवृताम्)** अमृत अर्थात् मोक्षानन्दसे परिपूर्ण, **(ताम् पुरम् वेद)** उस अयोध्यापुरीको जानता है, **(तस्मै)** उसके लिये, **(ब्रह्म च ब्राह्माः च)** साक्षात् भगवान् और ब्रह्मके सम्बन्धी अर्थात् भगवान्‌के हनुमान्, सुग्रीव, अङ्गद, मैन्द, सुषेण, द्विविद, दरीमुख, कुमुद, नील, नल, गवाक्ष, पनस, गन्धमादन, विभीषण, जाम्बवान् और दधिमुख—ये प्रधान षोडश पार्षद अथवा नित्य और मुक्त सर्वजीव मिलकर, **(चक्षुः)** उत्तम दर्शन-शक्ति, **(प्राणम् प्रजाम् ददुः)** उत्तम प्राणशक्ति अर्थात् आयुष्य और बल तथा संतान आदि देते हैं।'

वेदोंके संस्कारभाष्यकार पण्डितराज सात्वतसार्वभौम स्वामी श्रीभगवदाचार्यजी लिखते हैं कि 'इस मन्त्रमें '**ददुः**' इस भूतकालिक प्रयोगको देखकर घबराना नहीं चाहिये। वेदकी सब बातें अलौकिक ही होती हैं।'

न वै तं चक्षुर्जहाति न प्राणो जरसः पुरा।
पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते ॥

(अथर्व० १०। २। ३०)

'**(यस्याः पुरुषः)** जिस पुरीका स्वामी परमपुरुष, **(उच्यते)** कहा जाता रहा है, अर्थात् जिसका निरूपण सर्वत्र वेद-शास्त्रोंमें किया जाता है और यहाँ भी २८वें मन्त्रके पूर्वके मन्त्रोंमें जिस पुरुषका निरूपण किया गया है, **(ब्रह्मणः तां पुरम्)** परब्रह्म (श्रीराम) की उस पुरी अयोध्याको, **(यः वेद, तम्)**—जो कोई जानता है, उस प्राणीको **(चक्षुः)** दर्शन-शक्ति—अर्थात् बाह्य और आभ्यन्तरिक नेत्र तथा **(प्राणः)** शारीरिक और आत्मिक बल, **(जरसः पुरा)** मृत्युसे पूर्व, **(न जहाति)** निश्चय ही नहीं छोड़ते।'

तात्पर्य यह है कि भगवान् श्रीरामकी उभयपादस्थित दोनों अयोध्यापुरियाँ पवित्र अथ च दिव्य हैं। त्रिपाद्विभूतिस्थ साकेतके समान ही एकपाद्विभूतिस्थ साकेत अयोध्याका भी माहात्म्य है। इतना ही अन्तर है कि—

भोगस्थानं परायोध्या लीलास्थानं त्वियं भुवि।
भोगलीलापती रामो निरङ्कुशविभूतिकः ॥

(शिवसं०, पटल ५, अ० २, श्लोक ८)

'परव्योमस्थित अयोध्या दिव्य (भगवत्स्वरूप) भोगोंकी भूमि है और पृथिवीगत यह (सबके लिये प्रत्यक्ष) अयोध्या लीलाभूमि है। इन दोनों अयोध्याओंके स्वामी श्रीराम भोग और लीला, दोनोंके मालिक हैं। उनकी विभूति (ऐश्वर्य) अङ्कुशहीन (स्वतन्त्र) है।'

अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषाऽऽवृतः ॥

(अथर्व० १०। २। ३१)

ब्रह्मकी उस पुरी (भोगस्थान पूः अयोध्या) के नाम और रूपको स्पष्टरूपेण यह मन्त्र बताता है—

(पूः अयोध्या) 'वह पुरी अयोध्याजी ऐसी हैं **(अष्टाचक्रा)** जिसमें आठ आवरण हैं, **(नवद्वारा)** जिसमें प्रधान नवद्वार हैं, तथा जो **(देवानाम्)** दिव्यगुणविशिष्ट,

भक्तिप्रपत्तिसम्पन्न, यमनियमादिमान्, परमभागवत चेतनोंसे **'सेव्य इति शेषः'** सेवनीय है। **(तस्यां स्वर्गः)** उस अयोध्यापुरीमें बहुत ऊँचा अथवा बहुत सुन्दर, **(ज्योतिषा आवृतः)** प्रकाशपुञ्जसे आच्छादित, **(हिरण्ययः कोशः)** सुवर्णमय मण्डप है।'

इस मन्त्रमें अयोध्याजीका स्वरूप-वर्णन है। अयोध्यापुरीके चारों ओर कनकोज्ज्वल, दिव्यप्रकाशात्मक आवरण है, जो भीतरसे निकलनेपर अष्टमावरण और बाहरसे प्रवेश करनेपर प्रथमावरण या प्रथम चक्र है—

ब्रह्मज्योतिरयोध्यायाः प्रथमावरणे शुभम्।
यत्र गच्छन्ति कैवल्याः सोऽहमस्मीतिवादिनः॥

(वसिष्ठसंहिता २६। १ 'साकेतसुषमा'में उद्धृत)

'अयोध्याके सर्वप्रथम घेरेमें शुभ्र ब्रह्ममयी ज्योति प्रकाशित है। **'सोऽहम् सोऽहम्'** कहनेवाले कैवल्यकामी पुरुष (मरनेपर) इसी ज्योतिमें प्रवेश करते हैं।'

'सोऽहं' या **'अहं ब्रह्मास्मि'** वादियोंका 'सुरदुर्लभ कैवल्यपरमपद' वही है। उस आवरणमें सर्वत्र दिव्य भव्य प्रकाशमात्र रहता है।

बाहरसे प्रवेश करनेपर द्वितीय, किंतु भीतरसे निकलनेपर सप्तमावरण अर्थात् सप्तम चक्र है, जिसमें प्रवहमाना श्रीसरयूजी हैं—

अयोध्यानगरी नित्या सच्चिदानन्दरूपिणी।
यस्यांशांशेन वैकुण्ठो गोलोकादिः प्रतिष्ठितः॥
यत्र श्रीसरयूर्नित्या प्रेमवारिप्रवाहिणी।
यस्या अंशेन सम्भूता विरजादिसरिद्वराः॥

(सा० सु०, पृ० ७)

'अयोध्या नगरी नित्य है। वह सच्चिदानन्दरूपा है। वैकुण्ठ एवं गोलोक आदि भगवद्धाम अयोध्याके अंशके अंशसे निर्मित हैं। इसी नगरीके बाहर सरयू नदी हैं, जिनमें श्रीरामके प्रेमाश्रुओंका जल ही प्रवाहित हो रहा है। विरजा आदि श्रेष्ठ नदियाँ इन्हीं सरयूके किसी अंशसे उद्भूत हैं।'

'साकेतके पुरद्वारे सरयूः केलिकारिणी॥ ८९॥

(बृहद्ब्रह्मसंहिता, पाद ३, अ० १)

'उस अयोध्या नगरीके द्वारपर सरयू नदी क्रीडा करती रहती है।'

जो बाहरसे तीसरा और भीतरसे निकलनेपर छठा आवरणचक्र है, उसमें महाशिव, महाब्रह्मा, महेन्द्र, वरुण, कुबेर, धर्मराज, महान् दिक्पाल, महासूर्य, महाचण्ड, यक्ष, गन्धर्व, गुह्यक, किंनर, विद्याधर, सिद्ध, चारण, अष्टादश सिद्धियाँ और नवनिधियाँ दिव्यस्वरूपसे निवास करती हैं।

बाहरसे चौथा और भीतरसे निकलनेपर जो पाँचवाँ आवरण है, उसमें दिव्यविग्रहधारी वेद-उपवेद, पुराण-उपपुराण, ज्योतिष, रहस्य, तन्त्र, नाटक, काव्य, कोश, ज्ञान, कर्म, योग, वैराग्य, यम, नियम, काल, कर्म, गुण आदि निवास करते हैं।

जो बाहरसे पाँचवाँ तथा भीतरसे चौथा आवरण है, उसमें भगवान्‌का मानसिक ध्यान करनेवाले योगी और ज्ञानीजन निवास करते हैं।

साकेतपुरीके पाँचवें घेरेमें विद्वान् लोग उस सच्चिन्मय ज्योतिरूप ब्रह्मका निवास बतलाते हैं, जो निष्क्रिय, निर्विकल्प, निर्विशेष, निराकार, ज्ञानाकार, निरंजन (मायाके लेशसे शून्य), वाणीका अविषय, प्रकृतिजन्य (सत्त्व, रज आदि) गुणोंसे रहित, सनातन, अन्तरहित, सर्वसाक्षी, सम्पूर्ण इन्द्रियों एवं उनके विषयोंकी पकड़में न आनेवाला, अपितु उन सबको प्रकाश देनेवाला, संन्यासियों, योगियों तथा ज्ञानियोंका लयस्थान है।

जो बाहरसे पाँचवाँ और भीतरसे निकलनेपर चौथा आवरण है, उसमें महाविष्णुलोक, रमावैकुण्ठ, अष्टभुज भूमा पुरुषका लोक, महाब्रह्मलोक और महाशम्भुलोक हैं।

गर्भोदकशायी एवं क्षीराब्धिशायी भगवान् नारायण तथा श्वेतद्वीपाधिपति एवं रमावैकुण्ठनायक भगवान् विष्णु—ये सभी अयोध्याके चौथे घेरेमें स्थित रहकर उसी नगरीका सेवन करते हैं।

जो बाहरसे जानेपर छठा और भीतरसे निकलनेमें तीसरा आवरण है, उसमें मिथिलापुरी, चित्रकूट, वृन्दावन, महावैकुण्ठ अथवा भूत-वैकुण्ठ आदि विराजमान हैं। कहा गया है—

'अयोध्याका बाहरी स्थान ही 'गोलोक' कहलाता है।'

× × ×

'साकेतके पूर्व दिशावाले भागमें 'मिथिलापुरी' सुशोभित है।

× × ×

'कोसलपुरीकी दक्षिणदिशामें 'चित्रकूट' नामक महान् पर्वत सुशोभित है, जो सच्चिदानन्दमूर्ति है।'

× × ×

'अयोध्याके पश्चिमभागमें परमात्मा श्रीकृष्णका 'वृन्दावन' नामक सनातन धाम है, जो चिदानन्दमय एवं अद्भुत है।'

× × ×

'सत्याके उत्तरभागमें भगवान् महाविष्णुका 'महावैकुण्ठ' नामक सनातन परमधाम है, जिसका वेदोंने बखान किया है।'

जो बाहरसे जानेपर सातवाँ आवरण है और भीतरसे निकलनेमें दूसरा आवरण है, उसमें दिव्य द्वादशोपवन एवं चार क्रीडापर्वत हैं।

'साकेतके अन्तर्गत शोभायुक्त श्रीशृङ्गारवन, अद्भुत विहारवन, दिव्य पारिजातवन, उत्तम अशोकवन, तमालवन, रसाल (आम्र) वन, चम्पकवन, चन्दनवन, रमणीय प्रमोदवन, श्रीनागकेशरवन, अनन्तवन, रम्यकदम्बवन—ये बारह उपवन हैं। (रुद्रयामल० अयो० भाग ३०। ४८—५०)

'उपर्युक्त सभी वनोंमें, जो गहरे नीले रंगकी-सी आभा बिखेर रहे हैं, नाना जातिके नित्य नवीन, चित्र-विचित्र, चिन्मय, कमनीय, सदा किशोर अवस्थासे युक्त, इच्छानुसार रूप धारण करनेवाले, अत्यन्त चिकने, कोमल एवं सूक्ष्म वृक्ष हैं, जो डालियोंसे लटकते हुए अपने नित्य नवीन, चिकने, कोमल, वायुवेगसे चञ्चल, विचित्र, सघन एवं नीले, हरे, पीले तथा गुलाबी रंगके पत्तोंसे अमृतकी बूँदें टपकाते रहते हैं, जो पँचरंगे, दिव्य, सुगन्धित, नित्य, सब ओरसे खिले हुए असंख्य पुष्पोंसे अमृतकी बूँदें टपकाते रहते हैं और जो विशेषकर अपने सुधा-मधुर फलोंके भारी बोझसे अपनी डालियोंके रूपमें भूमिपर लोट रहे हैं। इनमेंसे कइयोंके नीचे दिव्य सुवर्णके गट्टे बने हुए हैं, जिनमें श्रेष्ठ रत्नोंसे पच्चीकारी की गयी है। उन वृक्षोंपर फूले हुए पञ्च प्रकारके पुष्पोंसे सुशोभित वल्लरी-जालका चँदोवा तना है, किन्हीं-किन्हींकी छाल सोनेकी है, मोती-जैसे पुष्पोंको वे मुकुटरूपमें धारण किये हुए हैं। उनपर फलोंके स्थानपर चिन्तामणियाँ लगी हैं और उनके पत्ते नीलमके बने सुशोभित हैं।'

(वसिष्ठसंहिता, 'उपासनात्रयसिद्धान्त'से उद्धृत)

× × ×

'उस वनमें पूर्व आदि चारों दिशाओंमें चार पर्वत हैं, उनके नाम क्रमशः शृङ्गारपर्वत, रत्नपर्वत, लीलापर्वत और मुक्तापर्वत हैं। ये अपनी शोभासे दसों दिशाओंको उद्भासित करते रहते हैं। पूर्व दिशामें नीलमका बना हुआ 'शृङ्गारपर्वत' है, जिसपर दिव्य सूर्य उदित होते हैं और श्रीरामकी प्रिया श्रीआह्लादिनी देवीके चित्तको चुराते रहते हैं। दक्षिण दिशामें पीले रत्नोंका बना हुआ शोभासम्पन्न—'रत्नपर्वत' देदीप्यमान है, जो अपनी कान्तिसे सम्पूर्ण वनको उद्भासित करता रहता है और जो श्रीभूदेवीको प्रिय है। पश्चिम दिशामें लाल रत्नोंका बना हुआ तथा श्रीरामकी प्रसन्नताको बढ़ानेवाला 'नीलपर्वत' विराजमान है, जिसकी प्रभा श्रीलीलादेवीको प्रिय है। उत्तर दिशामें भगवती श्रीदेवीकी लीलामें सहयोग देनेके लिये चन्द्रकान्तमणियोंसे सुशोभित विशाल एवं उज्ज्वल 'मुक्तापर्वत' प्रकट है, जो विचित्र पुष्पपुञ्जोंसे सम्पन्न लतासमूहोंके वितान (चँदोवे) से सुशोभित तथा सुधाको भी मात कर देनेवाले स्वादिष्ट फलोंके बोझसे अत्यधिक झुके हुए वृक्षोंसे मण्डित हैं।

(वसिष्ठ-संहिता, अध्याय २६)

बाहरसे जानेमें आठवाँ और भीतरसे निकलनेमें जो प्रथम आवरण है, उसमें नित्यमुक्त भगवत्पार्षद्गण रहते हैं और भगवान्‌के अनन्तानन्त अवतार भी इसीमें रहते हैं।

'साकेतके दक्षिणद्वारपर श्रीरामके प्रति वात्सल्यभाव रखनेवाले श्रीहनुमान्‌जी (द्वारपालके रूपमें) विराजमान हैं। उसी द्वारदेशमें 'सांतानिक' नामका वन है, जो श्रीहरि (श्रीराम) को प्रिय है।'

× × ×

'मत्स्य, कूर्म, अनेक वराह, अनेक नरसिंह, वैकुण्ठ, हयग्रीव, हरि, वामन, केशव, यज्ञ, धर्मपुत्र, नारायणऋषि तथा उनके छोटे भाई नर, देवकीनन्दन श्रीकृष्ण, वसुदेवनन्दन बलराम, पृश्निगर्भ, मधुसूदन, गोविन्द, माधव, परात्पर वासुदेव, अनन्त, संकर्षण, इलापति, प्रद्युम्न एवं अनिरुद्ध—भगवान्‌के ये सभी व्यूह भी श्रीरामकी आज्ञामें रहकर एक साथ उनकी सेवामें उपस्थित होते हैं। 'श्रीराम' नामसे विख्यात महेश्वर इनके तथा अन्य ईश्वरोंके द्वारा सेव्य हैं,

कारण, ये इन सबको ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले तथा इनके मूल हैं। इनके बिना ये सब ऐश्वर्यहीन हैं।'

(सदाशिवसंहिता ५।२।२४—२८)

विभिन्न साम्प्रदायिक ग्रन्थोंमें आवरणस्थ निवासियोंके स्थानोंमें यत्र-तत्र हेर-फेर भी है, परंतु तत्तन्निवासियोंके नामोंमें हेर-फेर नहीं है।

तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते।
तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः॥

(अथर्व० १०।२।३२)

'**(तस्मिन्)** उस विशाल **(हिरण्यये)** सुवर्णमय, **(कोशे)** मण्डपमें **(तस्मिन्)** उसके अर्थात् उस मण्डपके **(आत्मन्वत्)** आत्माके समान, **(यद् यक्षम्)** जो पूजनीय देव विराजमान है, **(तत्)** उसीको **(ब्रह्मविदः)** ब्रह्मस्वरूप ज्ञानवान् जन **(विदुः)** जानते हैं। अथवा '**ब्रह्मविदः**' में दो पद हैं—'**ब्रह्म**' और '**विदः**'। तब अर्थ हुआ यह कि **(विदः तत्)** विद्वान् जन उसी यक्षको, उसी परमोपास्य देवको, **(ब्रह्म विदुः)** परात्पर सनातन महापुरुष जानते हैं। जिस कोशमें वह यक्ष विराजमान है वह कोश कैसा है? **(त्र्यरे)** उसमें तीन अरे लगे हुए हैं, अर्थात् सत्, चित्, आनन्द—तीन अरोंपर वह मण्डप बना हुआ है तथा **(त्रिप्रतिष्ठिते)** चित्, अचित् एवं ईश्वर, तीनोंसे प्रतिष्ठित—आदृत है।'

इस मन्त्रमें जो '**तस्मिन्**' पद आया है, वह षष्ठीके अर्थमें है। इसीसे उसका अर्थ 'उसके' किया गया है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट ही कहा गया है कि अयोध्याके मध्यमें जो सुवर्णमय मणिमण्डप है, उसमें विराजमान देवको ही विद्वान् लोग 'ब्रह्म' कहते हैं। अयोध्याके मणिमण्डपमें भगवान् श्रीरामके अतिरिक्त अन्य कोई भी विराजमान नहीं है; अतः भगवान् श्रीरामजी ही परब्रह्म हैं। इसी अर्थका पद्मपुराण, उत्तरखण्ड, अध्याय दो सौ अट्ठाईसमें विस्तार किया गया है। उसके कुछ श्लोक नीचे दिये जाते हैं—

तद्विष्णोः परमं धाम यान्ति ब्रह्म सुखप्रदम्॥ १०॥
नानाजनपदाकीर्णं वैकुण्ठं तद्धरेः पदम्।
प्राकारैश्च विमानैश्च सौधै रत्नमयैर्वृतम्॥ ११॥
तन्मध्ये नगरी दिव्या सायोध्येति प्रकीर्तिता।
मणिकाञ्चनचित्राढ्यप्राकारैस्तोरणैर्वृता ॥ १२॥

× × ×

मध्ये तु मण्डपं दिव्यं राजस्थानं महोच्छ्रयम्॥ १९॥
मध्ये सिंहासनं रम्यं सर्ववेदमयं शुभम्।
धर्मादिदैवतैर्नित्यैर्वृतं पादमयात्मकैः॥ २१॥
धर्मज्ञानमहैश्वर्यवैराग्यैः पादविग्रहैः।
ऋग्यजुस्सामाथर्वाख्यरूपैर्नित्यवृतं क्रमात्॥ २२॥
शक्तिराधारशक्तिश्च चिच्छक्तिश्च सदाशिवा।
धर्मादिदैवतानां च शक्तयः परिकीर्तिताः॥ २३॥

× × ×

तन्मध्येऽष्टदलं पद्ममुदयार्कसमप्रभम्।
तन्मध्ये कर्णिकायां तु सावित्र्यां शुभदर्शने॥ २६॥
ईश्वर्या सह देवेशस्तत्रासीनः परः पुमान्।
इन्दीवरदलश्यामः कोटिसूर्यप्रकाशवान्॥ २७॥
युवा कुमारः स्निग्धश्च कोमलावयवैर्वृतः।
फुल्लरक्ताम्बुजनिभः कोमलाङ्घ्रिसरोजवान्॥ २८॥

भक्त लोग (मरकर) भगवान् विष्णुके उस परमधाम वैकुण्ठमें जाते हैं, जो नाना प्रकारके निवासियोंसे पूर्ण है। (परम) आनन्ददायक ब्रह्म वही है। वही भगवान् श्रीहरिका निवासस्थान है। वह परकोटों, सतमंजिले महलों तथा रत्ननिर्मित प्रासादोंसे घिरा हुआ है। उसी वैकुण्ठधाममें बीचमें जो दिव्य नगरी है, वही 'अयोध्या' नामसे विख्यात है। वह नाना प्रकारकी मणियों तथा सोनेके चित्रोंसे सम्पन्न है और परकोटों तथा द्वारोंसे घिरी हुई है।'

'उस अयोध्या नगरीके मध्यमें बहुत ऊँचा एवं दिव्य मण्डप है, जो वहाँके राजाका निवासस्थान है। उसके बीचमें एक आकर्षक एवं चमकीला सिंहासन है, जो अपने पायोंके रूपमें स्थित धर्मादि सनातन देवताओंसे घिरा हुआ है। अथवा धर्म, ज्ञान, महैश्वर्य एवं वैराग्य—इन पायोंके रूपमें स्थित है। अथवा पायोंके रूपमें क्रमशः ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद—इन चारों वेदोंके ही द्वारा वह सिंहासन घिरा है 'शक्ति', 'आधारशक्ति', 'चिच्छक्ति' और 'सदाशिवा'—ये धर्मादि चार देवताओंकी शक्तियाँ कही गयी हैं।'

× × ×

'उक्त सिंहासनके मध्यमें एक अष्टदल (आठ पंखुड़ियोंका) कमल है, जिससे उदयकालीन सूर्यकी-सी

आभा निकलती रहती है। उक्त कमलके बीचके कर्णिकाभागमें जिसे 'सावित्री' कहते हैं, समस्त देवताओंके स्वामी परात्पर पुरुष विराजमान रहते हैं। उनका वर्ण नील कमलकी पंखुड़ियोंकी तरह श्याम है और उनमें करोड़ों सूर्योंका प्रकाश है। वे नित्य युवा होनेके साथ ही कुमार-भावापन्न भी रहते हैं। वे स्नेहयुक्त, सुकुमार अङ्गोंवाले, प्रफुल्ल रक्त कमलकी-सी आभावाले और कोमल चरण-सरोरुहोंसे सम्पन्न हैं।'

इसी तथ्यको सनत्कुमारसंहितोक्त 'श्रीरामस्तवराज'में और भी स्पष्ट किया गया है—

अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे।
स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्॥
तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं नानारत्नैश्च वेष्टितम्।
रामं रघुवरं वीरं धनुर्वेदविशारदम्।
मङ्गलायतनं देवं रामं राजीवलोचनम्॥

'रम्य अयोध्यानगरीमें रत्ननिर्मित मण्डपके मध्यवर्ती कल्पवृक्षके मूलमें चमचमाते हुए रत्नसिंहासनका ध्यान करे। उस सिंहासनके बीचमें अष्टदल कमल है, जो विविध रत्नोंसे घिरा हुआ है। साथ ही उसपर विराजमान रघुश्रेष्ठ, वीर-शिरोमणि, धनुर्वेदमें निष्णात, मङ्गलायतन कमललोचन श्रीरामका भी ध्यान करे।'

'करुणासिन्धु' श्रीरामचरणदासजी महाराजने रामचरित-मानसकी—***'जद्यपि सब बैकुंठ बखाना।'*** (रा० च० मा० ७।४।३) की टीकामें प्रमाण उद्धृत किया है—

वैकुण्ठाः पञ्च विख्याताः क्षीराब्धिश्च रमाख्यकः।
महाकारणवैकुण्ठौ पञ्चमो विरजापरः॥
नित्यादिव्यमनेकभोगविभवं वैकुण्ठरूपोत्तरं
सत्यानन्दचिदात्मकं स्वयमभून्मूलं त्वयोध्यापुरी॥

'साकेत सुषमा' में निम्न श्रुति उद्धृत है—

'यायोध्या पूः सा सर्ववैकुण्ठानामेव मूलाधारा मूलप्रकृतेः परा तत्सद्ब्रह्ममयी विरजोत्तरा दिव्यरत्नकोशाढ्या तस्यां नित्यमेव सीतारामयोर्विहारस्थलमस्ति।'

(सा० सु०, रमावैकुण्ठ, पृ० २)

तात्पर्य यह कि 'क्षीरसागरस्थ वैकुण्ठ, रमावैकुण्ठ, महावैकुण्ठ, कारणवैकुण्ठ और विरजापार (त्रिपाद्विभूतिस्थ) आदि वैकुण्ठ—इन पाँचों वैकुण्ठोंका तथा अन्य अनन्त वैकुण्ठोंका मूलाधार 'अयोध्या—साकेत' ही है। वह साकेत मूल प्रकृतिसे परे, अखण्ड और अपरिवर्तनीय ब्रहममय है, विरजाके दूसरे तीरपर स्थित है, दिव्यरत्नमण्डपवाली है। इसी अयोध्यामें श्रीसीतारामजीकी नित्य विहारभूमि है।'

प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसा सम्परीवृताम्।
पुरं हिरण्ययीं ब्रह्मा विवेशापराजिताम्॥

(अथर्व० १०।२।३३)

'**(ब्रह्म)** सर्वान्तर्यामी श्रीरामजी **(प्रभ्राजमानाम्)** अत्यन्त प्रकाशमयी, **(हरिणीम्)** मनको हरण करनेवाली अथवा सर्वपापोंका नाश करनेवाली तथा **(यशसा सम्परीवृताम्)** अनन्तकीर्तिसे युक्त और **(अपराजिताम्)** सर्वपुरियोंमें अजेय **(पुरम्)** उस अयोध्यापुरीमें **(आविवेश)** प्रविष्ट हैं, अर्थात् विराजमान हैं।'

प्राप्य वेदोंमें तो उपर्युक्त साढ़े पाँच मन्त्र ही हैं, परंतु पुराणोंमें, पाञ्चरात्रीय संहिताओंमें, यामलोंमें, रामायणोंमें एवं साम्प्रदायिक रहस्य-ग्रन्थोंमें अयोध्या-साकेतका इतना विस्तृत वर्णन है कि उनका संक्षिप्त संकलन भी बड़ा पोथा हो सकता है। यह लघु लेख तो स्थालीपुलाकन्यायसे संकेतमात्र है।
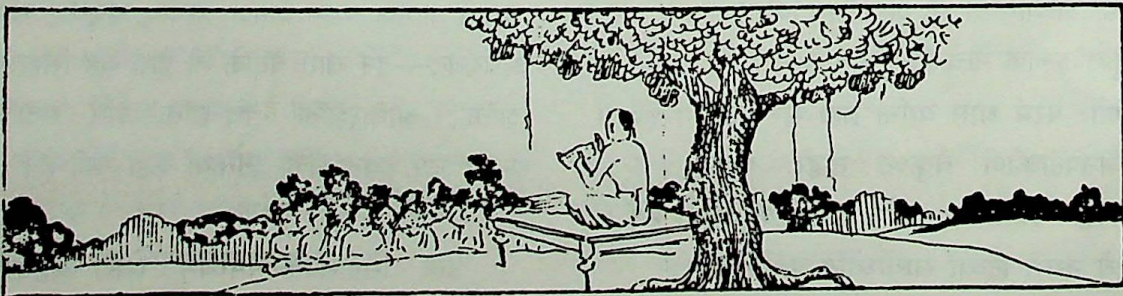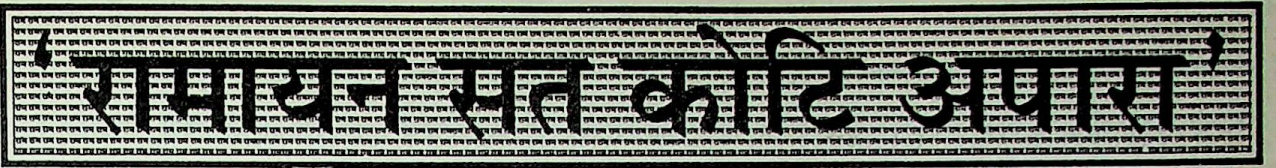
'रामायन सत कोटि अपारा'

[भगवान् श्रीराम जैसे स्थावर-जंगमात्मक जगत्में सर्वत्र व्याप्त हैं, वैसे ही रामचरित्र भी किसी-न-किसी रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। रामचरित्रके विषयमें आर्ष ग्रन्थके रूपमें श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण, आनन्दरामायण, अद्भुत-रामायण, भुशुण्डिरामायण, श्रीरामचरितमानस आदि कतिपय ग्रन्थ सर्वाधिक मान्य हैं। इसके साथ ही विभिन्न पुराणोंमें, विभिन्न सम्प्रदायोंमें तथा विभिन्न भाषाओंमें रामकथाका निरूपण बड़े समारोहसे हुआ है।

*वास्तवमें रामकथा और रामायण—ये दोनों असीम हैं, इसीलिये यह कहा गया है—**'राम चरित अति अमित मुनीसा।'** (रा० च० मा० १। १०५। ३) तथा **'रामायन सत कोटि अपारा'** (रा० च० मा० १। ३३। ६)। अपौरुषेय वेदों, नित्य-नूतन पुराणों एवं कृत ग्रन्थोंमें रामकथा-मन्दाकिनी आकर्षण और सरसताके साथ अनन्तकालसे पूरे ब्रह्माण्डको आप्लावित करती आ रही है। वस्तुतः केवल भारतमें ही नहीं, अपितु वैदेशिक संस्कृतिमें भी भगवान् श्रीरामके मङ्गलमय पावन चरित्रके अनेक आयाम भरे पड़े हैं।*

रामकथाकी यह अनन्तता उचित ही है; क्योंकि रामायण वेदका ही अवतार है, जब वेद अनन्त हैं तो उनकी कथा और उनका वर्णन करनेवाले रामायणोंकी भी अनन्तता होनी ही चाहिये।

रामायणकी इन कथाओंमें कुछ वैभिन्न्य भी मिलता है, जिससे कभी-कभी कुछ लोग रामकी इन कथाओंपर शंका भी करने लगते हैं; परंतु अपने शास्त्रोंके अनुसार कथाओंकी यह भिन्नता कल्पभेदके कारण कही गयी है। वास्तवमें श्रुति और स्मृति नित्य नूतन हैं और इनमें आयी रामकथा भी नित्य नवीन है। प्रत्येक कल्पमें भगवान्का अवतार होता है और उनकी लीलाओंके घटना-क्रमोंमें कुछ बदलाव भी आता है। इसलिये कल्पभेदसे कथाओंका भेद भी माना जाता है। वैसे इस कल्पमें जो रामका अवतार हुआ, उसकी कथा वाल्मीकीय रामायणमें वर्णित है। इसी कारण भक्त कवियोंने और साहित्यकारोंने वाल्मीकीय रामायणको ही आधार माना है। इसके साथ ही आर्ष ग्रन्थके रूपमें अन्य रामायण और पुराण-उपपुराणोंकी रामकथाएँ हमें प्राप्त होती हैं तथा कुछ प्राचीन भक्त कवियोंने इन आर्ष ग्रन्थोंके अनुसार अपनी कल्पनाओंको समन्वित करते हुए रामचरित्रका गान किया है। यहाँ यथासम्भव उपलब्ध विभिन्न रामायणों, विभिन्न सम्प्रदायों, पुराण-उपपुराणों और साहित्य तथा विभिन्न भाषाओंमें उपनिबद्ध रामकथाओंको प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है।—सम्पादक]

वेदोंमें रामकथा

(पं० श्रीलालबिहारीजी मिश्र)

मन्त्ररामायण—'मन्त्ररामायण' नामक ग्रन्थको पं०-नीलकण्ठने लगभग चार सौ वर्ष पूर्व लिखा है। इसमें इन्होंने ऋग्वेदके मन्त्रोंसे रामायणकी कथा निकाली है। सायण आदि भाष्योंमें यह अर्थ उपलब्ध नहीं है। इसका कारण यह है कि इन भाष्यकारोंने मन्त्रोंका भाष्य यज्ञ-परक किया है। वेदोंके अनेक अर्थ होते हैं। अतः इतिहासपरक नीलकण्ठका भाष्य भी उपयुक्त है। जब रामायणको वेदका अवतार माना जाता है, तब मन्त्रोंका रामपरक भाष्य निर्मूल नहीं है। महामुनि वाल्मीकिका उद्घोष है कि 'जब वेदवेद्य ब्रह्म दशरथसे पुत्रके रूपमें अवतीर्ण हुए, तब वेद भी वाल्मीकिसे रामायणके रूपमें अवतीर्ण हुआ—

वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे।
वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षाद्रामायणात्मना॥

(वा० रा०, तिलक-टीका)

स्वयं वेदने कहा है कि रामकथा-सम्बन्धी ऋचाओंके पाठसे मुक्ति मिलती है—**'इमा ऋचः सर्वकामार्थदाश्च ये ते पठन्त्यमला यान्ति मोक्षं ये ते पठन्त्यमला यान्ति मोक्षमिति।'** (रा० पूर्वता० १०। १०)

रामायणका कथाभाग

राक्षसोंका महान् अत्याचार चल रहा था। प्रजाएँ बहुत

नष्ट हो चुकी थीं। जो बची थीं, वे भी भयभीत थीं। कोई बचानेवाला न था। विवश होकर सबने भगवान्‌की पुकार की। उन्होंने माँग की कि 'भगवन्! आप रघुके वंशमें अवतार धारणकर हमारी रक्षा करें।' सच्ची पुकार भगवान् तुरंत सुन लेते हैं। चरुके प्राशनके माध्यमसे वे माता कौसल्याके गर्भसे प्रकट हुए। राजा दशरथने चरुके दो भाग किये थे। एक भाग कौसल्याको और दूसरे भागका आधा कैकेयीको दिया था। शेष भागका आधा-आधा कौसल्या और कैकेयीने सुमित्राको दे दिया। इससे सुमित्रासे दो पुत्र हुए—लक्ष्मण और शत्रुघ्न। कौसल्यासे राम और कैकेयीसे भरत उत्पन्न हुए।

चारों भाई चन्द्रकलाकी तरह दिन-दिन बढ़ने लगे। जब कुमारोंने काकपक्ष धारण कर लिया, तब महामुनि विश्वामित्र राजा दशरथके पास पहुँचे, उन्होंने अपने यज्ञकी रक्षाके लिये राजा दशरथसे राम और लक्ष्मणको माँगा। महर्षि वसिष्ठके समझाने-बुझानेपर राजाने राम और लक्ष्मणको विश्वामित्रजीको सौंप दिया। मार्गमें विश्वामित्रजीने बला तथा अतिबला नामक दो विद्याएँ उन्हें प्रदान कीं। रास्तेमें ताड़का आ धमकी। विश्वामित्रने रामको आदेश दिया कि 'इस राक्षसीको दूरसे ही मार गिराओ।' रामने आदेशका पालन किया। एक ही बाणमें वह ढेर हो गयी। ताड़का-वधसे महामुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने अनेक दिव्यास्त्र तथा उनके संधान आदिकी विधि भी उन्हें बतला दी।

यज्ञ-स्थलपर पहुँचनेपर रामने ऋषियोंसे प्रार्थना की कि आपलोग यज्ञ करें। विघ्न करनेवालोंको हम दोनों मार भगायेंगे। यज्ञ प्रारम्भ हुआ और निर्विघ्न समाप्त भी हो गया। सभी अत्यन्त प्रसन्न हो गये। इसके बाद विश्वामित्र श्रीराम और लक्ष्मणको गौतम मुनिके आश्रमपर ले गये। रामने अहल्याका उद्धार कर दिया। वह पत्थरका शरीर छोड़कर अपने स्वरूपमें आ गयी। गौतम ऋषिने श्रीरामकी स्तुति की।

अब महामुनि विश्वामित्रजीका एक लक्ष्य बाकी बच गया था, वह था सीता-स्वयंवरमें रामका पहुँचाना। तीनों उस ओर बढ़ चले। मिथिला पहुँचनेपर महाराज जनकने तीनोंका सत्कार किया और अपने यहाँ रखे हुए धनुषका परिचय दिया तथा धनुर्भङ्गको सीताके विवाहमें हेतु बतलाया। श्रीरामने विश्वामित्रजीकी आज्ञासे धनुष तोड़ डाला और सीताका विवाह रामसे हो गया। सब ओर प्रसन्नता छा गयी। सीताके साथ राम जब अयोध्या लौट रहे थे तो रास्तेमें परशुराम मिले। परशुरामने श्रीरामको जब भलीभाँति पहचान लिया तो वे बहुत संतुष्ट हुए और अपने आश्रम लौट आये। भगवान् राम जब अयोध्या पहुँचे, तब वहाँ प्रसन्नता लहराने लगी।

कुछ दिनोंके पश्चात् रामके अभिषेककी तैयारी हुई। किंतु कैकेयीके दिये गये वरदानके कारण रामको वन जाना पड़ा। सीता और लक्ष्मणने इनका साथ दिया। ठीक अवसरपर विश्वामित्र मुनिने भी रामका साथ दिया। रामके रास्तेमें अथाह नदी बह रही थी। विश्वामित्र मुनिने नदीसे प्रार्थना की कि वे अपने उत्ताल तरङ्गोंको इतना कम कर दें कि भगवान् रामको नदी पार करनेमें कोई कठिनाई न हो। नदीने पूरा सहयोग किया। नदी पार कर राम चित्रकूट पहुँचे।

इधर भरतलाल अपनी माताके कृत्यपर बहुत क्षुब्ध हो गये। उन्होंने अपना अभिषेक कराना ठुकरा दिया और दलबलके साथ रामको अयोध्या लौटानेके लिये वे चल पड़े। रास्तेमें भरद्वाज मुनिने भरतका दिव्य आतिथ्य किया। रामने भरतको समझाया कि पिताके वचनका पालन करना हम दोनोंका ही कर्तव्य है। विवश होकर भरत रामकी पादुका लेकर लौट आये और नन्दिग्राममें कठोर व्रतका पालन करते हुए पादुकाकी आज्ञासे राज्यका कार्य-संचालन करने लगे।

इधर राम चित्रकूट छोड़कर घोर जंगलमें चले गये। वहाँ शूर्पणखा मिली। वह वासनासे अभिभूत हो गयी और उसकी पूर्तिके लिये उग्र कर्मपर उतर आयी। तब रामका संकेत पाकर लक्ष्मणने उसके नाक-कान काट दिये। उसी दशामें रोती—विलाप करती हुई वह अपने भाई खरके पास पहुँची। बहनकी यह दुर्दशा देखकर खर बौखला उठा। वह दलबलके साथ रामपर चढ़ आया, किंतु रामके सामने उसकी एक न चली। वह दलबलके साथ मारा गया। उस अवसरपर देवतागण उपस्थित हुए और उन्होंने रामकी स्तुति की।

शूर्पणखा प्रतिशोधकी आगसे जल उठी थी। अपने शक्तिशाली बड़े भाई रावणके पास पहुँची। इधर सीता अग्निमें प्रविष्ट हो गयीं और अपने स्थानपर छाया सीताको रख दिया। रावण बहनकी दुर्दशा देख बौखला गया। वह मारीचके साथ सीताको चुरानेके लिये रामकी अग्निशालामें आ पहुँचा।

मायामृग बनकर मारीच रामको दूर ले गया। मरते समय उसने रामकी आवाजमें लक्ष्मणको पुकारा। सीताके आग्रहसे जब लक्ष्मण रामके पास पहुँचे, तब रावणने सीताका हरण कर लिया। यह अत्याचार जटायुसे न देखा गया। वृद्ध होते हुए भी उसने रावणको दबोच लिया, किंतु विश्वविजेता रावणके सामने उसकी कुछ न चली। उसके दोनों पंख काट दिये गये। वह आकाशसे पृथिवीपर आ गया। उसके प्राण निकलनेही-वाले थे, किंतु रामकी प्रतीक्षामें वह उन्हें रोके रखा। रामके आनेपर उसने सारी बातें कह सुनायीं। जटायुके कहनेपर राम दक्षिण दिशाकी ओर बढ़े। रास्तेमें कबन्ध राक्षस मिला, उसका उद्धार कर भगवान् सीताकी खोजमें आगे बढ़े।

ऋष्यमूक पर्वतपर सुग्रीवसे उनकी भेंट हुई। हनुमान्जी-के माध्यमसे श्रीराम और सुग्रीवमें मैत्रीका कार्य सम्पन्न हुआ। रामने बालिको मारकर सुग्रीवको राजा बना दिया। सुग्रीवने हनुमान्को अगुआ बनाकर सीताकी खोजमें अपनी सेना भेजी। खोजते-खोजते वे समुद्र-तटपर पहुँच गये। लंका जानेके लिये हनुमान्जी समुद्रको लाँघ गये। उस समय लोगोंने उनका महत्त्व आँका। वे विश्वका संहार करनेमें सक्षम लग रहे थे। लोग हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे। हनुमान् बाणकी तरह वेगसे उड़ रहे थे। जब वे सीताके पास पहुँचे, तब उन्होंने अपनी आकृति और गति दोनोंको कम कर दिया। हनुमान्को पाकर सीता बहुत ही आश्वस्त हो गयीं। अपनी ममता-सनी वाणीसे उन्होंने हनुमान्को आप्यायित कर दिया। इसके बाद हनुमान्ने रावणकी पुष्पवाटिकाको तहस-नहस कर दिया। यह सुनकर रावणने हनुमान्को बँधवा लिया और हनुमान्की पूँछमें आग लगवा दी। सीताने जब यह समाचार सुना तो उन्होंने अग्निसे प्रार्थना की कि वे हनुमान्का बाल भी बाँका न करें। हनुमान्ने सारी लंका जला दी; किंतु उनका बाल भी बाँका न हुआ। वे समुद्र लाँघकर अपने साथियोंसे जा मिले। वानर प्रसन्नतासे कूदने लगे, सबने हनुमान्जीको छू-छू कर अपनी-अपनी प्रसन्नता व्यक्त की। सीताकी प्रसन्नताकी तो कोई सीमा ही न थी। क्योंकि उन्होंने हनुमान्को सकुशल लौटते देखा था। सुग्रीवकी सहायतासे रामने लंकापर चढ़ाई की। बीचमें समुद्र पड़ा। नल-नीलने शिलाओंको गढ़-गढ़कर पुल तैयार कर दिया। रामकी सेना समुद्र-पार लंका पहुँच गयी।

उधर हनुमान्ने जो लंकामें उथल-पुथल मचायी थी, उससे वहाँके राक्षस डर गये थे। अपने पुत्र अक्षके मारे जानेसे मन्दोदरी प्रायः रोती बिलखती थी। उसने रावणको समझाया कि आप रामको सीता लौटा दें, किंतु प्रहस्त आदि मदान्ध राक्षसोंने रावणको युद्धके लिये तैयार कर दिया। विभीषणने रावणको तरह-तरहसे समझाया कि सीताको लौटा देनेमें ही कल्याण है। किंतु रावणने विभीषणको लात मारकर लंकासे निकाल दिया। विवश होकर विभीषणने रामकी शरण ग्रहण की। रामने रावणके पास शान्तिका प्रस्ताव भेजा। किंतु घमंडी रावणने इस प्रस्तावको ठुकरा दिया। युद्ध प्रारम्भ हुआ और रावण मारा गया।

सीताजीको सम्मानके साथ रामके पास लाया गया। अग्निपरीक्षाके बाद रामने सीताको प्रेमसे अपनाया। उस समय रुद्र आदि देवताओंने राम और सीताकी लम्बी स्तुति की। अयोध्यामें लौटकर रामने प्रजाका भलीभाँति मनोरञ्जन किया। वहाँ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न सबको दो-दो पुत्र हुए।

इस तरह पृथिवीका भार हलका कर भगवान् राम अपने परम धाम पधार गये। अपने साथ पुरजनोंको भी अपने लोक ले गये।

एक ऋचामें रामायण

भद्रो भद्रया सचमान आगात् स्वसारं जारो अभ्येति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्निर्वितिष्ठन् रुशद्भिर्वर्णैरभि राममस्थात्॥

(ऋक्० १० । ३ । ३)

इस मन्त्रके चार चरणोंमें रामकथाके मुख्य चार अंश आ गये हैं। पहले चरणमें बताया गया है कि भगवान् राम सीताके साथ तपोवनमें आये। दूसरे चरणमें बताया गया है कि राम और लक्ष्मणके पीछे रावण छिपकर सीताके पास आया और उसने उनका हरण कर लिया। तीसरे चरणमें यह बताया गया है कि हनुमान्जीने लंकामें आग लगा दी और चौथे चरणमें कहा गया है कि रावण युद्धके लिये रामके सम्मुख आ गया।

अर्थ—(**भद्रः**) भजनीय रामभद्रने (**भद्रया**) भजनीय सीताके द्वारा (**सचमानः**) सेवित होते हुए (**आगात्**) वनमें आये। (**स्वसारम्**) सीताको चुरानेके लिये (**जारः**) रावण (**पश्चात्**) राम और लक्ष्मणके परोक्षमें (**अभ्येति**) आया।

रावणके मारे जानेपर **(अग्निः)** अग्निदेवता **(सुप्रकेतैः द्युभिः)** रामकी दारा सीताके साथ **(रामम् अभि)** रामके सामने **(रुशद्भिर्वर्णैः)** उद्दीप्त तेजके साथ **(अस्थात्)** उपस्थित हुए (और असली सीताको उन्हें सौंप दिया)।

वैखानस राम—वनवास-व्रती राम

वेदने भगवान् रामके वैखानस (वनवास-व्रती) रूपको सराहा है—**'ओङ्कारात् परतो राम वैखानसपर्वतः।'** (सीता० उ०) वैखानस राम वेद-स्वरूप हैं। वे ही लोकमें वेदोंके रूपमें अभिव्यक्त हैं। इसलिये इस वैखानस स्वरूपको ऋषि, मुनि सतत स्मरण करते हैं—

स्मर्यते मुनिभिर्नित्यं वैखानसमतः परम् (सीता० उ०)

एक श्रुतिने वनवास-व्रतसे ही रामकथाका प्रारम्भ किया है, जो इस प्रकार है—

जब दुर्धर्ष राक्षस खरका वध किया जा रहा था, तब देवता आदि रामके समीप आये। रामका सामीप्य पाकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने रामकी भावभीनी स्तुति की। इस घटनासे रावण आगबबूला हो गया। उसने सीताका अपहरण कर लिया। इस अपहरणके कारण भी उसका रावण नाम सार्थक हुआ। राम शब्दसे 'रा' और 'वन' शब्दसे 'वन' लेकर रावण शब्द बना। इधर आश्रममें सीताको न पाकर राम और लक्ष्मणने उनकी खोजमें वनका चप्पा-चप्पा छान डाला। इसी बीच कबन्ध नामका दुर्धर्ष राक्षस आ उपस्थित हुआ। मरनेके साथ-साथ उसकी आसुरी वृत्ति भी मर गयी। वह सौम्य भावमें आ गया। उसका उद्धार कर राम-लक्ष्मण शबरीके आश्रममें गये। शबरी प्रेमकी मूर्ति थी। उसने बड़े भक्तिभावसे भगवान्‌की पूजा की। आगे बढ़नेपर भक्तराज हनुमान्‌से उनकी भेंट हुई। हनुमान्‌ने सुग्रीवकी रामसे मैत्री करा दी। समझाया कि रामके द्वारा आपका छीना हुआ राज्य प्राप्त हो सकता है, किंतु सुग्रीव बालिसे इतना डरा हुआ था कि रामके बलपर उसे भरोसा नहीं हो रहा था। उसने रामके बलकी परीक्षा ली। उसने रामसे कहा—'बालिके द्वारा मारे गये दुंदुभि राक्षसके इस विशाल शरीरको आप फेंक दीजिये।' रामने अनायास ही उसे बहुत दूर फेंक दिया। साथ ही रामने एक ही बाण मारकर तालके विशाल सात वृक्षोंको भेद दिया। अब रामके बलपर सुग्रीवको पूरा भरोसा हो गया। वह बालिके घर पहुँचकर युद्धके लिये ललकारने लगा। बालि इस ललकारको सह न सका। सुग्रीवसे भिड़ गया। रामने बालिको मारकर राजगद्दीपर सुग्रीवको बैठा दिया।

सुग्रीवने वानरोंको बुलाकर आज्ञा दी कि तुमलोग सीताको खोजकर आज ही रामको अर्पित करो। उनमें हनुमान् समुद्र लाँघकर लंका पहुँचे। सीतासे भेंट की, फिर कुछ राक्षसोंका संहार कर लंका भी जला दी। इसके बाद सफल-मनोरथ होकर रामसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राम वानरी सेनाके साथ लंकापर चढ़ आये। रामके तेजको भला कौन सह सकता था। कुम्भकर्ण और मेघनादके साथ रावण मारा गया। लंकाकी गद्दीपर विभीषण बैठे। उसके बाद राम सीताको बायें अङ्गमें बैठाकर अयोध्या लौट आये।

(रामपूर्वता० उ०)

जब लीला-संवरणका अवसर आया, तब भगवान् रामने शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर लिया। इसके बाद सीता तथा सभी भाइयों एवं सभी प्रजाओंके साथ अपने धाम पधारे—

विश्वव्यापी राघवो यस्तदानीमन्तर्दधे शङ्खचक्रे गदाब्जे।
धृत्वा रमासहितः सानुजश्च सपत्तनः सानुजः सर्वलोकी॥

(रामपूर्व० उप०)

भगवान् रामका स्वरूप

भगवान् राम अयोध्याके रत्नमण्डपके बीचमें विराजमान थे। सीता, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न उनकी सेवामें संलग्न थे। सनक, सनन्दन आदि मुनिगण तथा वसिष्ठ और शुकदेव आदि उनकी स्तुति कर रहे थे। उस समय भगवान् अपने स्वरूपके चिन्तनमें ध्यानस्थ थे। जब उनकी समाधि टूटी तब हनुमान्‌ने प्रेमसे हाथ जोड़कर उनसे पूछा—'भगवन्! आप परमात्मा हैं, आपका शरीर हाड़-मांस-चामका नहीं है, अपितु सत्स्वरूप, चित्स्वरूप और आनन्द-स्वरूप है। मैं आपका वह रूप देखना चाहता हूँ, जिससे मैं अनायास मुक्त हो सकूँ।'

भगवान् रामने इसके लिये हनुमान्‌को साधुवाद दिया और कहा—'हे हनुमन्! मेरा स्वरूप वेदान्तमें भलीभाँति कहा गया है। तुम वेदान्तका अनुशीलन करो।'

हनुमान्‌जीने पूछा—'हे रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ! कृपा करके उपनिषद्‌का स्वरूप और उसकी स्थिति समझायें।'

रामने कहा—'जैसे तिलमें तैल स्थित है, वैसे वेदान्त भी वेदमें स्थित है। यह वेद विष्णुके निःश्वाससे उत्पन्न हुआ है। वेदके चार प्रकार हैं। चारों वेदोंकी एक हजार एक सौ अस्सी शाखाएँ हैं। एक-एक शाखाके एक-एक उपनिषद् होती है।'

जो व्यक्ति इन उपनिषदोंकी एक ऋचाका भी पाठ करता है, वह मेरी सायुज्य-मुक्ति प्राप्त करता है—

तासामेकामृचं यश्च पठ्यते भक्तितो मयि ॥
स मत्सायुज्यपदवीं प्राप्नोति मुनिदुर्लभाम्।
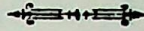
वैदिक साहित्यमें श्रीराम

(राष्ट्रपतिसम्मानित डॉ० श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामी)

रामचरित्र विश्वसंस्कृतिमें एक उज्ज्वल एवं सर्वत्र परिव्याप्त वर्णनातीत सत्-तत्त्व है। मानवहृदयमें रामचरित्रके प्रति कितनी श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा है, यह तो सोते-जागते राम-नामके उच्चारणसे ही लोकविदित है। जीवनान्तमें भी मानव 'राम'-नामको ही एकमात्र सत्य मानता है। यह चरित्र सामाजिक उदात्त भावनाका आश्रयभूत है, इसमें कर्तव्य-मार्गकी दीक्षा देनेकी शक्ति है। रामनाम-श्रवणसे मनोमयी मूर्ति अपने आदर्श गुणोंसे चित्त-वृत्तिपर छा जाती है। जनकतनया जानकीका स्मरण होते ही भारतीय नारियोंके हृदयपटलपर अप्रतिम पातिव्रत्यका प्रकाश प्रस्तुत हो जाता है। वाल्मीकीय रामायणसे आकृष्ट हो कवीन्द्र रवीन्द्रने इसके वैशिष्ट्यका प्रतिपादन करते हुए कहा है कि 'इसमें आदर्श गृहस्थ-जीवन व्यतीत करनेके मार्गका विस्तृत वर्णन है। पिता-पुत्र, भाई-भाई, पति-पत्नी, देवर-भाभी और धर्म एवं समाजके प्रति कर्तव्य, प्रेम, भक्ति, श्रद्धा, स्नेह, वात्सल्य आदि इसके द्वारा प्रकाशित होते हैं। हिमगिरिके समान उदात्त व्यापक आदर्शों एवं सागरके समान गम्भीर विचारोंका समन्वय यदि एक साथ कहीं मिलता है तो वह रामायणमें है, जिसका नामोच्चारण जीवनको आदिसे अन्ततक पूर्णता प्रदान करता है। वस्तुतः वह विश्वके सभी उदात्त जीवनमें एकाकार होकर विद्यमान है।'

वैदिक साहित्यमें अनेक व्यक्ति, जिनका चरित्र रामायणमें वर्णित है, उनका निर्देश उपलब्ध होता है।

इक्ष्वाकुका निर्देश ऋग्वेदसंहितामें मिलता है—**'यस्येक्ष्वाकुरुप व्रते रेवान् मराय्येधते'** (ऋ० १०। ६०। ४)। जिस जनपदके इक्ष्वाकु राजा हैं, उनके रक्षा-स्वरूप कर्ममें वह प्रदेश बढ़ता है।

अथर्ववेदमें भी इक्ष्वाकुके नामका उल्लेख मिलता है—**'त्वा वेद पूर्व इक्ष्वाको यम्'** (अथर्व० १९। ३९। ९)। हे ओषधे! जिस प्रसिद्ध प्राचीन इक्ष्वाकु राजाने तुम्हें सभी व्याधियोंके नाशकके रूपमें जाना।

दशरथका उल्लेख ऋग्वेदमें मिलता है—**'चत्वारिंशद् दशरथस्य शोणाः सहस्रस्याग्रे श्रेणिं नयन्ति'** (ऋ० १। १२६ ४)। लाल रंग और भूरे रंगके दशरथके चालीस घोड़े एक हजार घोड़ोंके दलका नेतृत्व करते हैं।

शतपथब्राह्मणमें कैकेयका इस रूपमें उल्लेख मिलता है। **'ते होचुः अश्वपतिर्वा अयम् कैकेयः सम्प्रति वैश्वानरं वेद'** (श० ब्रा० १०। ६। १-२)। उन्होंने कहा कि ये अश्वपति कैकेय इस समय वैश्वानरको जानते हैं।

शतपथ-ब्राह्मणमें जनकका बहुधा उल्लेख मिलता है। ऋग्वेदमें ही रामका उल्लेख मिलता है। राजाओंमें अत्यन्त बलशाली दुःशीम, पृथवान्, वेन और रामके लिये मैं यह स्तुति करता हूँ—**'प्र तद् दुःशीमे पृथवाने वेने प्र रामे वोचमसुरे'** (ऋ० १०। ९३। १४)।

इसी प्रकार छान्दोग्योपनिषद् आदिमें दशरथ, कैकेय आदिका उल्लेख मिलता है। इससे यह स्पष्ट है कि संहिताके पूर्व इक्ष्वाकु नामका राजा प्रसिद्ध था। उसी वैदिक साहित्यका विस्तार वाल्मीकीय रामायण है।

भारतीय वैदिक परम्परा अनन्तकालसे आर्यधारणाके लौकिक एवं अलौकिक इतिहासके रूपमें ध्रुवपदके समान स्वतःप्रमाण हो हमलोगोंको आलोक प्रदान कर रही है। वस्तुतः यह दीर्घ युगसे प्रवाहित सुनियन्त्रित भावना और साधनाका एक परिनिष्ठित रूप है। इस साहित्यका प्रधान उपजीव्य देववाद है; यजन और उपासना—ये दो उसके अङ्ग हैं। अन्तर इतना ही है कि देवताके यागमें क्रियाकी प्रधानता

है और उपासनामें भावकी प्रधानता है। किंतु क्रियामें भी भावकी ही अभिव्यक्ति है। ध्यान और चित्त दोनों एक साथ रहते हैं। ध्यान ही देवताका प्राण है, ध्यानमें ही वह यजमान और उपासकको प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं। देवता साध्य है और उपासक साधक। साध्य और साधकके मध्यमें ध्यान सेतु-स्वरूप है। निदिध्यासन और ध्यानकी तन्मयताके फलमें देववाद उपसंहत होता है। देवताके स्वरूप एवं विभूतिका हमलोगोंके ध्यानसे सम्बन्ध है। यही देववाद क्रमशः बढ़ता हुआ ध्याताके रूपमें प्रतिष्ठित वाल्मीकिके ध्यानका विषय बनता है और परात्पर साकेतनिवासी अपने स्वरूपका न केवल साक्षात्कार ही कराता है, वरन् अपने आर्यलोककी विभूतिके रूपमें जो उसकी चिन्मय मायाके आधारपर लोकयात्राका स्वरूप है, उसे भी दृष्टिगोचर करा देता है। रामपूर्वतापिनी-उपनिषद्में कहा गया है—

'सच्चिदानन्दमय महाविष्णु श्रीहरि जब रघुकुलमें दशरथजीके यहाँ अवतीर्ण हुए, उस समय उनका नाम 'राम' हुआ। इस नामकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है—'जो महीतलपर स्थित होकर भक्तजनोंका सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण करते और राजाके रूपमें सुशोभित होते हैं, वे राम हैं'—ऐसा विद्वानोंने लोकमें 'राम' शब्दका अर्थ व्यक्त किया है। (**'राति राजते वा महीस्थितः सन् इति रामः'**—इस विग्रहके अनुसार **'राति'** या **'राजते'** का प्रथम अक्षर **'रा'** और **'महीस्थितः'** का आदि अक्षर **'म'** लेकर **'राम'** बनता है; इसी प्रकार अन्यत्र भी समझना चाहिये।) राक्षस जिनके द्वारा मरणको प्राप्त होते हैं, वे राम हैं। अथवा अपने ही उत्कर्षसे इस भूतलपर उनका 'राम' नाम विख्यात हो गया (उसकी प्रसिद्धिमें कोई व्युत्पत्ति-जनित अर्थ ही कारण है, ऐसा नहीं मानना चाहिये)। अथवा वे अभिराम (सबके मनको रमानेवाले) होनेसे राम हैं। अथवा जैसे राहु मनसिज (चन्द्रमा) को हतप्रभ कर देता है, उसी प्रकार जो राक्षसोंको मनुष्यरूपसे प्रभाहीन (निष्प्रभ) कर देते हैं, वे राम हैं। अथवा वे राज्य पानेके अधिकारी महीपालोंको अपने आदर्श चरित्रके द्वारा धर्ममार्गका उपदेश देते हैं, नामोच्चारण करनेपर ज्ञानमार्गकी प्राप्ति कराते हैं, ध्यान करनेपर वैराग्य देते हैं और अपने विग्रहकी पूजा करनेपर ऐश्वर्य प्रदान करते हैं, इसलिये इस भूतलपर उनका 'राम' नाम पड़ा होगा। परंतु यथार्थ बात तो यह है कि उस अनन्त, नित्यानन्द-स्वरूप, चिन्मय ब्रह्ममें योगीजन रमण करते हैं; इसलिये वह परब्रह्म परमात्मा ही 'राम' पदके द्वारा प्रतिपादित होता है—

चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ।
रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः॥
स राम इति लोकेषु विद्वद्भिः प्रकटीकृतः।
राक्षसा येन मरणं यान्ति स्वोद्रेकतोऽथवा॥
रामनाम भुवि ख्यातमभिरामेण वा पुनः।
राक्षसान् मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिजं यथा॥
प्रभाहीनांस्तथा कृत्वा राज्यार्हाणां महीभृताम्।
धर्ममार्गं चरित्रेण ज्ञानमार्गं च नामतः॥
तथा ध्यानेन वैराग्यमैश्वर्यं स्वस्य पूजनात्।
तथा रात्यस्य रामाख्या भुवि स्यादथ तत्त्वतः॥
रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनासौ परं ब्रह्माभिधीयते॥

(रामपूर्वतापिन्युपनिषत् १—६)

वाल्मीकिरामायणके वर्णनसे पूर्व उपनिषद्में वर्णित रामका वर्णन प्रस्थापित किया जा रहा है। निर्विशेष अद्वितीय चिन्मय ब्रह्म ही भक्तोंको अपने पदकी प्राप्तिके साधनके लिये रूप-विशेषकी परिकल्पना करते हैं। स्वतः या अदृष्टिवशात् उनकी मूर्ति या उनका स्वरूप उपस्थित नहीं होता। स्वरूपवान् विष्णुकी ही पुंलिङ्ग-स्त्री आदि कल्पना होती है। अर्थात् भेदाभेदरूपसे अवस्थित राम ही सीताके साथ द्वैत, लक्ष्मण आदिके साथ चार संख्यावाले, सुग्रीव-विभीषणके साथ छः संख्यावाले, सचिवोंके कारण आठ संख्यावाले और सीतारामके द्वारा विकल्पित नर-वानर-राक्षस आदिके भेदसे अनन्त विभूति धारण करते हैं। अद्वितीय राममें बहुदेवता-कल्पना, वर्ण-कल्पना, वाहन-कल्पना, शक्ति-कल्पना होती है अर्थात् निर्विशेषमें ही भेद-कल्पना की जाती है। वस्तुतः वह उपाधिरहित-निर्विकल्प स्वरूप है—

चिन्मयस्याद्वितीयस्य निष्कलस्याशरीरिणः।
उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना॥

(रामपूर्व० उप० १।७)

इस प्रपञ्चातीत अनन्तानन्त चिद्रूप रामकी प्रसन्नताका साधन है—एकमात्र राममन्त्रका जप। सर्वदेवमय 'राम' शब्द

सभी देवताओंकी प्रसन्नताका साधन होता है, क्योंकि मन्त्रके अनुष्ठानके बिना देवताकी प्रसन्नताका साधन और कोई नहीं होता, अतः मन्त्रैकशरण होकर इसका जप करना चाहिये। क्रिया, कर्म इत्यादिका अनुष्ठान करनेवाले जो साधक हैं, उनके अर्थ (अभीष्ट प्रयोजन) को मन्त्र बता देता है—उसकी सिद्धिका निश्चय करा देता है, अतः मनन (निश्चय) और त्राणन (रक्षा) करनेके कारण वह मन्त्र कहलाता है। वह सम्पूर्ण अभिधेयोंका वाचक होता है। स्त्री-पुरुष उभयरूपमें विराजमान जो भगवान् हैं, उनके लिये प्रतीकरूप विग्रह यन्त्रका निर्माण है।

इस प्रकार राममन्त्र और रामयन्त्रकी पूजासे सकल विश्वमें चिद्रूपसे स्थित प्रकाशशक्तिकी आराधना सम्पन्न हो जाती है। कितना अपूर्व है यह रामनाम, जिसके उच्चारण-मात्रसे सम्पूर्ण विश्वसे तादात्म्य हो जाता है और मानव-मात्रके कल्याणकी भावना अनायास प्रदीप्त हो जाती है। श्रीरामचरित इसीलिये तो मानवमात्रके कल्याणकी साधिका मन्त्रमयी मूर्ति है।

राम् ही रामबीज है, राम्का अक्षर-विभाग इस प्रकार है—र्, आ, अ, म्। इनमें रकार तो साक्षात् श्रीरामका वाचक है तथा उसपर आरूढ जो 'आ'कार है वह ब्रह्माका वाचक, 'अ'कार विष्णुका वाचक और 'म'कार शिवका वाचक है। इसलिये राम् यह त्रिमूर्तिका बोधक है अथवा क्रिया-ज्ञान और इच्छाके भेदसे त्रिशक्तिका बोधक है। वस्तुतः यह बीज बिना किसी हेतुके ही स्वयंप्रकाश होनेके कारण सभीका कारण है। सर्वात्मक होनेके कारण एकमात्र ही सभीका प्रकाशात्मक है। इसीलिये बीजमें वटके समान यह सम्पूर्ण जगत्-वृक्षका अहिकुण्डलिनी-न्याससे प्रकाशक है। जैसे प्राकृत वटका महान् वृक्ष वटके छोटेसे बीजमें स्थित रहता है, उसी प्रकार यह चराचर जगत् रामबीजमें स्थित है—

यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महान् द्रुमः॥
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।
रेफारूढा मूर्तयः स्युः शक्तयस्तिस्र एव च॥

(रामपूर्व० उप० २। २-३)

इन्हीं मन्त्र-यन्त्रादिसे पूज्य सीताराम अनन्त कोटिके ब्रह्माण्डके जन्म-स्थिति-भङ्गसे उपादान और आधार हैं और वे ही आत्ममायाके द्वारा मानव होकर सम्पूर्ण जगत्का परिपालन करते हैं। '**रामाय नमः**' इस मन्त्रमें 'नमः' जीववाची है, आत्मावाची 'राम' है, चतुर्थी तदात्मक है, यह मन्त्र रामवाचक है। वाच्य सम्पूर्ण विश्व है और यह मन्त्र सम्पूर्ण विश्वका कल्याणकारी है। इसलिये इसके द्वारा रामकी उपासना करनी चाहिये अथवा अनन्तरूप राम तेजःस्वरूप हैं। वैश्वानर बीज 'रा' जब चन्द्रबीज 'म्' से व्याप्त होता है, तब अग्नीषोमात्मक जगत्का वाचक राम् यह मन्त्र बनता है। वे श्रीराम जब शीतल किरणोंवाली अर्थात् सौम्य कान्तिमती श्रीसीताजीके साथ संयुक्त होते हैं, तब उनसे अग्नीषोमात्मक (पुरुष और स्त्रीरूप) जगत्की उत्पत्ति होती है। श्रीराम सीताके साथ उसी प्रकार शोभा पाते हैं जैसे चन्द्रमा चन्द्रिकाके साथ सुशोभित होते हैं।

श्रीरामोत्तरतापिनी-उपनिषद्में अविमुक्तोपासनाका प्रदर्शन करते हुए महर्षि याज्ञवल्क्यने बृहस्पतिजीको रामके षडक्षर मन्त्र '**रां रामाय नमः**' को तारकमन्त्रके रूपमें वर्णित किया है। षडक्षर मन्त्रके विविध रूप भी बतलाये गये हैं। तारक मन्त्रके जपका फल, तारकमन्त्रका अर्थ, रामतारककी प्रणवरूपता और अविमुक्त नगरी काशीमें मुमूर्षु व्यक्तिको शिवके द्वारा रामतारक मन्त्रका उपदेश आदि बातोंको इसमें बतलाया गया है। तारकमन्त्र श्रीरामका साक्षात्कार कराता है और इससे मुक्ति मिलती है।

आगे इस रामषडक्षर मन्त्रका विस्तृत वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि प्रसन्नवदन, शान्त, क्रोधरहित, भक्तवत्सल श्रीरामके समान ही यह तारक मन्त्र है और इसके द्वारा आराधना करनेसे विष्णुके परमपदकी प्राप्ति होती है।

इसी प्रकार रामरहस्योपनिषद्में रामके मन्त्रोंका विशेष वर्णन है। उपसंहारमें कहा गया है—'**राममन्त्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न संशयः**' अर्थात् राममन्त्रका अर्थ जाननेवाला जीवन्मुक्त है, इसमें संदेह नहीं। जो सत्यसंकल्प हो 'मैं राम हूँ' ऐसा निरन्तर तात्त्विक दृष्टिसे कहता है वह संसारी पुरुष नहीं है, बल्कि वह तो निश्चित राम ही है—

सदा रामोऽहमस्मीति तत्त्वतः प्रवदन्ति ये।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः॥

वाल्मीकिरामायणकी कथा

वाल्मीकिरामायण 'स्मृत' ग्रन्थ है। इसके शब्द तो महर्षि वाल्मीकिद्वारा निर्मित हैं, किंतु इसका एक-एक अर्थ आदिकविद्वारा कल्पित नहीं है। राम, सीता आदि पात्र जो कुछ कहते हैं वे सभी अर्थ वस्तुतः वही हैं जो वस्तुतः इन पात्रोंने कहे हैं। कवि केशवकी 'रामचन्द्रिका'में राम-लक्ष्मण आदि पात्र जो कुछ कहते हैं वे कविकी कल्पनासे प्रसूत हैं, किंतु वाल्मीकिरामायणमें यह बात नहीं है। इस ग्रन्थमें प्रत्येक पात्रने जो कुछ कहा है वह वस्तुतः यथार्थ है। इस बातका प्रमाण स्वयं वाल्मीकिरामायणमें ही मिल जाता है।

क्रौंचका वध देखकर वाल्मीकिका हृदय करुणासे आर्द्र हो उठा था और उससे एक छन्दोबद्ध कविता फूट पड़ी। अबतक लौकिक भाषामें छन्दोबद्ध रचनाका प्रारम्भ नहीं हुआ था। वाल्मीकिके शोकसे उपजे इस पद्यमें छन्दकी सारी योजनाएँ अनायास ही हो गयी थीं। वाल्मीकि इस योजनापर विचार कर ही रहे थे कि पितामह ब्रह्मा आ पधारे। उन्होंने आज्ञा दी कि तुम रामके सम्पूर्ण चरित्रका छन्दोबद्ध वर्णन करो। श्रीराम आदि पात्रोंके जो भी गुप्त या प्रकट वृत्तान्त हैं वे तुम्हें सब-के-सब ज्ञात हो जायँगे। तुम्हारे रामायणकी एक बात भी झूठी नहीं होगी—

रामस्य चरितं कृत्स्नं कुरु त्वमृषिसत्तम।

× × ×

रहस्यं च प्रकाशं च यद् वृत्तं तस्य धीमतः॥
रामस्य सह सौमित्रे राक्षसानां च सर्वशः।
वैदेह्याश्चैव यद् वृत्तं प्रकाशं यदि वा रहः॥
तच्चाप्यविदितं सर्वं विदितं ते भविष्यति।
न ते वागनृता काव्ये काचिदत्र भविष्यति॥

(वा० रा० १।२।३२, ३३—३५)

इस तरह वाल्मीकिरामायण 'स्मृत' ग्रन्थकी कोटिमें आता है। ऐसा ग्रन्थ ऋतम्भराप्रज्ञाकी देन होती है। साधारण कविकी पहुँचके परेकी यह वस्तु है।

कथाभाग

अयोध्याका शासन उन दिनों राजा दशरथके हाथमें था, वे दूरदर्शी, वेदोंके विद्वान् और महान् तेजस्वी थे। नगर और जनपदकी प्रजा उनसे बहुत प्रेम करती थी। उनके शासनकालमें जनता सभी तरहसे प्रसन्न थी। कहीं कुछ अभाव नहीं रह गया था। राजा दशरथके आठ मन्त्री थे जो बाहरी चेष्टा देखकर ही मनके भावको समझ लेते थे। वसिष्ठ और वामदेव—ये दो महर्षि इनके पुरोहित थे। उनका गुप्तचर-तन्त्र बहुत ही सक्षम था।

प्रभावशाली होते हुए भी राजाको पुत्रका अभाव खटकता रहता था। सुमन्त्रकी सहमतिसे पुत्रेष्टि-यज्ञ किया गया। उस यज्ञमें फलस्वरूप अग्निकुण्डसे एक विशालकाय प्राजापत्य पुरुष प्रकट हुआ। उसके प्रकाशसे सूर्यका प्रकाश भी धीमा पड़ गया। उसके हाथमें एक सोनेका बना हुआ एक पात्र था, जो चाँदीके ढक्कनसे ढका हुआ था। उसमें दिव्य खीर भरी हुई थी। उसने वह पात्र बड़े आदरके साथ राजाको देते हुए कहा कि 'यह खीर अपनी पत्नियोंको दो, इससे तम्हें पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी।' राजाने उस पात्रको अपने मस्तकपर धारण किया और उस महान् पुरुषको प्रणाम कर उसकी प्रदक्षिणा की।

राजा दशरथने अन्तःपुरमें जाकर उस खीरका आधा भाग कौसल्याको दिया, फिर बचे हुए आधेका आधा भाग सुमित्राको दिया। बची हुई खीरका आधा भाग कैकेयीको दिया। इसके बाद उस खीरका जो भाग बच गया था, उसे फिर सुमित्राको दे दिया। उस खीरके प्रभावसे कौसल्याके गर्भसे विष्णुस्वरूप राम प्रकट हुए। कैकेयीसे भरत और सुमित्रासे लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न प्रकट हुए। इनके जन्मके समय बहुत उत्सव मनाया गया। धीरे-धीरे चारों बालक चन्द्रमाकी कलाकी तरह बढ़ने लगे। चारों ही घोड़े और हाथीके पीठपर बैठने और रथ हाँकनेकी कलामें पूर्ण पारंगत हो गये। धनुर्वेदके तो वे स्वरूप ही थे। चारों भाई माता-पिताकी सेवामें बहुत रस लेते थे। लक्ष्मणका रामचन्द्रमें गहरा अनुराग था। वे दिन-रात रामके प्रिय कार्यमें जुटे रहते थे। उधर रामचन्द्र भी लक्ष्मणको अपना प्राण मानते थे। लक्ष्मणके बिना उन्हें नींद तक नहीं आती थी। शत्रुघ्न भरतजीको प्राणोंसे अधिक प्रिय मानते थे और भरतजी भी उनको प्राणोंसे अधिक प्रिय मानते थे।

एक बार राजा दशरथ पुत्रोंके विवाहके विषयमें विचार कर रहे थे। इसी बीच महर्षि विश्वामित्र पधारे। राजाने विधिके अनुसार विश्वामित्रकी पूजा की और प्रार्थना की कि आपका जो मनोरथ हो उसे मैं निःसंदेह पूरा करूँगा। राजाके वचनसे विश्वामित्र पुलकित हो गये। उन्होंने अपनी यज्ञरक्षाके लिये रामको माँगा। विश्वामित्र मुनिके वचनसे राजा मर्माहत हो गये। वे रामके वियोगकी कल्पनासे इतने व्यथित हुए कि मूर्छित हो गये। चेत होनेपर उन्होंने विश्वामित्रसे प्रार्थना की कि 'मेरा राम अभी निरा बालक है, न वह अस्त्र-शस्त्र ज्ञानता है न युद्धकी कला ही। आपकी सेवामें चतुरंगिणी सेनाके साथ मैं ही चलूँगा।'

यह सुनकर महर्षि विश्वामित्र क्रोधसे जल उठे। बोले—'पहले तो तुमने मुझे मनचाही वस्तु देनेकी प्रतिज्ञा की और अब तुम उसे तोड़ना चाह रहे हो ? यह रघुवंशियोंके अनुरूप नहीं है। इसका परिणाम बुरा होगा।'

महर्षिके कोपसे सारी पृथिवी डगमगा गयी। देवता भयभीत हो गये। सारा विश्व ही त्रस्त हो उठा। महर्षि वसिष्ठने बीच-बचाव किया और कहा—'राजन्! अपनी प्रतिज्ञाका पालन करो, राम चाहे अस्त्र-शस्त्र जानते हों या न जानते हों, राक्षस इनका बाल-बाँका नहीं कर सकते। महर्षि विश्वामित्र इनके साथ हैं। ये रामका कल्याण करना चाहते हैं।'

महर्षि विश्वामित्रने तो अकेले रामको माँगा था, परंतु पिताने रामके साथ लक्ष्मणको भी विश्वामित्रको सौंप दिया। वे जानते थे कि बिना लक्ष्मणके राम बेचैन रहेंगे और बिना रामके लक्ष्मणकी बेचैनीकी सीमा नहीं रहेगी।

विश्वामित्र दोनों कुमारोंके साथ अयोध्यासे जब डेढ़ योजन दूर पहुँचे, तब उन्होंने सरयू-जलसे आचमन कराकर रामको 'बला' और 'अतिबला' नामकी दो विद्याएँ दीं। उस दिन सरयूके तटपर ही रात बितायी। महर्षि प्यारभरे वचनोंसे दोनों कुमारोंको आह्लादित करते रहे। दूसरी रात सरयू और गङ्गाके संगमपर एक पवित्र आश्रममें बितायी। तीसरे दिन मलद और करूष जनपदमें पहुँचे। पूर्वकालमें ये दोनों देश बिलकुल हरे-भरे थे; परंतु सुन्दपत्नी एवं मारीचकी माता ताटका नामकी यक्षिणीने उसे उजाड़ दिया था। विश्वामित्रने रामको आदेश दिया कि इस दुराचारिणीको मार गिराओ। यह इतनी बलवान् है कि तुम्हारे सिवा इसे कोई मार नहीं सकता। श्रीरामने हाथ जोड़कर कहा—'भगवन्! मेरे पिताने आज्ञा दे रखी है कि मैं आपके प्रत्येक आदेशका पालन करूँ। अतः आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।' ऐसा कहकर रामने धनुषकी टंकार की। इसे सुनकर ताटका आगबबूली हो गयी। एक बाहु ऊपर उठाकर रामपर झपटी। मायासे पत्थरोंकी झड़ी लगा दी। रामने अपने बाणोंसे उसकी शिलावृष्टिको व्यर्थ कर दिया और एक बाण मारकर ताटकाको मार गिराया। देवता बहुत प्रसन्न हुए। इन्द्रने विश्वामित्रसे अपना आभार प्रकट किया और विश्वामित्रसे कहा—आप अपने अस्त्र-शस्त्र रामको प्रदान करें। तीसरी रात ताटका-वनमें सुखपूर्वक बीती। सबेरे उठकर विश्वामित्रने रामको अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये।

चलते-चलते सिद्धाश्रम आ गया। महर्षि विश्वामित्र प्यारसे राम और लक्ष्मणके हाथोंको अपने हाथमें लेकर बोले कि 'यह आश्रम जैसे मेरा है वैसे ही तुम्हारा भी है। यहाँ मेरे यज्ञमें अनेक राक्षस विघ्न डालते रहते हैं। अतः उनसे यज्ञकी रक्षा करो।' श्रीरामजीके कहनेपर महर्षि विश्वामित्रने वहाँ यज्ञकी दीक्षा ले ली। दोनों भाई छः दिनतक लगातार बिना सोये यज्ञकी रक्षा करते रहे। छठे दिन आकाशमें बड़े जोरका शब्द हुआ। रामने देखा कि मारीच और सुबाहु अपनी सेनाके साथ आ पहुँचे हैं। क्षणभरमें ही वे रक्तकी वृष्टि करने लगे। श्रीरामने 'शीतेषु' नामक मानवास्त्रका मारीचपर प्रयोग किया। उससे मारीच चक्कर काटता हुआ सौ योजनकी दूरीपर जा गिरा। इसके पश्चात् श्रीरामने आग्नेयास्त्रसे सुबाहुका और वायव्यास्त्रसे समस्त सेनाका संहार कर डाला।

महर्षिके यज्ञका समापन

यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हुआ। ऋषियोंने श्रीरामको बहुत-बहुत सम्मान दिया। श्रीरामने वह रात यज्ञशालामें बितायी।

प्रातःकाल दोनों भाइयोंने हाथ जोड़कर मीठे शब्दोंमें विश्वामित्रसे कहा—'ब्रह्मन्! आज्ञा दें, हम क्या सेवा करें ?' महर्षिने कहा—'श्रीराम! मिथिलानरेशके यज्ञमें तुम्हें हमारे साथ चलना है। वहाँ एक अद्भुत धनुष है। देवता, दानव, गन्धर्व आदिमेंसे कोई भी उसकी प्रत्यञ्चा नहीं चढ़ा सका है। तुम्हें उसे अवश्य देखना चाहिये। हम सबलोग वहाँ चल रहे हैं, साथ चलो।'

अहल्याका उद्धार

मिथिलाकी यात्रा प्रारम्भ हो गयी। सोनभद्र पारकर गङ्गाके तटपर पहली रात बितायी। दूसरे दिन रास्तेमें रामने अहल्याको शापसे मुक्त किया। अब अहल्या सबको दिखायी देने लगी थी। इसके पहले अहल्याको कोई देख नहीं पाता था। अहल्याका हृदय हर्षसे भर गया। उन्होंने रामका हार्दिक आतिथ्य किया। चारों ओरसे साधुवादकी ध्वनि सुनायी देने लगी। गौतम ऋषि अपनी पत्नीको पाकर बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने रामका आभार माना।

राजा जनकके यज्ञ-मण्डपमें

इसके पश्चात् विश्वामित्र दोनों कुमारोंके साथ ईशानकोणकी ओर बढ़कर राजा जनकके यज्ञ-मण्डपमें जा पहुँचे। समाचार मिलते ही राजा जनक अपने पुरोहित शतानन्दको आगे कर महर्षि विश्वामित्रकी सेवामें उपस्थित हुए। राम और लक्ष्मणको देखकर वे बहुत ही प्रभावित हुए। महर्षि विश्वामित्रने दोनोंका परिचय दिया और सिद्धाश्रमसे लेकर अहल्योद्धारतककी सारी घटना सुना दी। पुरोहित शतानन्द महर्षि गौतमके ज्येष्ठ पुत्र थे। अपनी माताकी उद्धारकी बात सुनकर वे प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्होंने रामका हार्दिक अभिनन्दन किया।

धनुर्भङ्ग

दूसरे दिन राजा जनकने राम-लक्ष्मणके साथ महर्षि विश्वामित्रको बुलाया और उनका पूजन किया। बातचीतके सिलसिलेमें महर्षि विश्वामित्रने राजा जनकसे कहा—'आपके यहाँ जो धनुष रखा है, उसे इन्हें दिखा दें।' राजा जनकने कहा—'यदि राम धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दें तो अपनी प्रिय पुत्री सीताको इन्हें सौंप दूँ।' इसके बाद राजाने सेवकोंको आज्ञा दी कि 'धनुष यहाँ लाया जाय।' वह धनुष दिव्य था, आठ पहियोंवाली लोहेकी संदूकमें रखा हुआ था। फिर भी उस संदूकको खींचना बहुत कठिन था। उसमें पाँच हजार वीर लगे, जो किसी तरह नगरसे वहाँ ला सके। विश्वामित्रकी आज्ञा पाकर श्रीरामने धनुषको खेल-खेलमें उठा लिया और उसपर प्रत्यञ्चा भी चढ़ा दी। हजारों आँखें बड़ी उत्सुकताके साथ यह दृश्य देख रही थीं। ज्यों ही भगवान्ने धनुषको कानतक खींचा, त्यों ही वह टूट गया। घोर आवाज हुई। दिग्-दिगन्त गूँज उठा। भूचाल आ गया। महर्षि विश्वामित्र, राजा जनक, राम और लक्ष्मणको छोड़कर जो जहाँ था, वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा। मूर्छा टूटनेपर वे प्रसन्नतासे भर गये। वे तो चाह ही रहे थे कि रामका विवाह किसी तरह सीतासे हो जाय। राजा जनकको बहुत हर्ष हुआ। साथ ही उनको विस्मय भी हुआ। बोले—'महादेवजीके धनुषको चढ़ाना अचिन्त्य और अतर्क्य है।' उन्होंने राजा दशरथको दल-बलके साथ आनेको आमन्त्रित किया। अपने भाई कुशध्वजको भी सांकाश्या नगरीसे बुला लिया।

चारों भाइयोंका विवाह

जब राजा दशरथ जनकपुर पधारे तो उनका उत्साहके साथ स्वागत हुआ। शुभ मुहूर्तमें श्रीरामका सीताके साथ, लक्ष्मणका उर्मिलाके साथ, भरतका माण्डवीके साथ, शत्रुघ्न-का श्रुतकीर्तिके साथ विवाह सम्पन्न हुआ। उस समय जनकपुरमें सब तरफ आनन्द-ही-आनन्द हिलोरें मार रहा था।

रामका कार्य सम्पादनकर महर्षि विश्वामित्र उत्तर पर्वत (हिमालयकी शाखाभूत पर्वत) अपने आश्रमपर चले गये। उनके जानेके बाद राजा दशरथने भी मिथिलानरेशसे बिदाई लेकर अयोध्याके लिये प्रस्थान किया।

मार्गमें महर्षि परशुरामका आगमन

मार्गमें घोर अन्धकार और धूलभरी आँधीके साथ महर्षि परशुराम वहाँ उपस्थित हुए। वे बहुत भयंकर दीख रहे थे। वे सीधे रामके पास जा पहुँचे। बोले—'राम! मैं रास्तेभर सुनता आ रहा हूँ कि धनुषको तुमने तोड़ा है। यह काम सचमुच अद्भुत और अचिन्त्य है। उसके टूटनेकी बात सुनकर मैं यह दूसरा धनुष लाया हूँ। तुम इसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाओ। यदि तुम ऐसा कर सकोगे, तब मैं तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूँगा।' यह बात सुनते ही सभी किंकर्तव्यविमूढ़—स्तब्ध हो खड़े रह गये। राजा दशरथ दीन-भावसे हाथ जोड़कर बोले—'ब्रह्मन्! आप महान् हैं। मेरे पुत्रको अभयदान दीजिये।' किंतु परशुराम दशरथकी बात अनसुनीकर रामसे उलझते गये।

परशुरामका पराभव

पिताकी दीनता रामसे देखी नहीं गयी। उन्होंने तत्काल

धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। उसपर बाण रखा और कहा—'आप ब्राह्मण हैं, इस नाते मेरे पूज्य हैं। आपपर इसे नहीं छोड़ सकता। अब इस वैष्णव बाणको कहाँ छोड़ूँ ? आपको एक क्षणमें सब जगह आने-जानेकी जो शक्ति प्राप्त है, क्या उसे नष्ट कर दूँ ? अथवा तपोबलसे जो आपको पुण्यलोक प्राप्त हैं, उन्हें नष्ट कर दूँ ?'

रामचन्द्रजीने जब परशुरामजीसे धनु लिया था, तभी उनका वैष्णव तेज उनसे निकलकर श्रीराममें मिल गया था। इस समय परशुराम पराक्रमहीन हो गये थे। उस बाणसे उन्होंने अपने पुण्यलोकोंका नाश कराया। जब उन्होंने भगवान् रामको विष्णुरूपमें पहचान लिया, तब उनका बहुत सम्मान किया और अपने आश्रमपर लौट गये।

अयोध्यामें आनन्द-ही-आनन्द

जबसे राम विवाहकर अयोध्या आये, तबसे वहाँ आनन्दकी जो लहरियाँ उठीं, वे बारह वर्षतक उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गयीं। सभी लोग अलौकिक सुखमें डूबते-उतराते रहे। कुछ कालके बाद माता-पिताकी आज्ञा लेकर भरत शत्रुघ्नके साथ अपने मामाके यहाँ चले गये।

मन्थराका षड्यन्त्र

एक दिन राजा दशरथने भरी सभामें रामके राज्याभिषेक-का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हो गया। यह सुनकर जनता हर्षसे पुलकित हो उठी। जो जहाँ था वहीं नगरकी सजावटमें जुट गया। जब मन्थराने यह सजावट देखी तो विस्मयसे उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। जब उसे यह पता चला कि यह सब रामके राज्याभिषेककी तैयारी है, तब उसके हृदयमें बहुत चोट लगी। वह भागती हुई कैकेयीके पास जा पहुँची। बोली—'देवि ! आज कैसे बेखबर सो रही हैं।' मन्थराका रंग-ढंग देखकर कैकेयीने पूछा—'मन्थरे ! क्या कोई अमङ्गलका समाचार लायी हो ?' मन्थराने बताया कि 'कल रामका राज्याभिषेक होने जा रहा है अर्थात् तुम्हारे लिये बड़ी विपत्तिका समय आ रहा है।'

कैकेयी रामसे बहुत प्यार करती थी। रामके राज्याभिषेक-की बात सुनकर वह प्रसन्नतासे इतनी बावली हो गयी कि आगेकी बात ही नहीं सुन सकी। हृदयमें इतना हर्ष उमड़ा कि शय्यापर लेटी न रह सकी। तुरंत उठकर बैठ गयी। खुशखबरी सुनानेवालेपर रीझ गयी। झट बहुमूल्य आभूषण उतारकर उसे दे दिया और बोली—'मैं राम और भरतमें कोई भेद नहीं मानती। मन्थरे ! रामके अभिषेकसे बढ़कर और कोई प्रिय वचन मेरे लिये नहीं हो सकता। तुम और कोई वरदान माँगो[1] !' किंतु मन्थरा कैकेयीकी शुद्ध बुद्धिको पलटनेमें सफल हो गयी। वह रामके प्रति कैकेयीके हृदयमें कूट-कूटकर घृणाके भाव भरने लगी। कुछ ही क्षणोंमें कैकेयी बदल गयी। परिणाम यह हुआ कि रामको वनवासी होना पड़ा, दशरथकी मृत्यु हो गयी और कौसल्याको पुत्रका वनवास देखना पड़ा।

रामके वनवाससे प्रजाकी छटपटाहट

रामके वनवाससे जनताके प्राणोंपर आ बीता। वह रामसे प्यार करती थी। उनके भावी विरहसे छटपटाने लगी। सब लोग रथके पीछे हो लिये। बहुत समझानेपर भी कोई लौट नहीं रहा था। बड़े-बूढ़े घोड़ोंसे कह रहे थे—'घोड़ो ! तुम्हारे कान बड़े-बड़े हैं। हमारी बात सुनो। रामको मत ले जाओ। लौटो।' रामसे यह आर्तनाद सुना नहीं गया। वे रथसे उतरकर पैदल ही चलने लगे। सीता और लक्ष्मणने भी उनका साथ दिया। अयोध्यावासी रामके भावी वियोगसे इतने कातर हो गये थे कि लौटनेकी बात सुनते ही नहीं थे। इस समय रामके सामने एक बड़ी समस्या खड़ी हो गयी थी। तमसा नदीने इसका समाधान कर दिया। नदीके तटपर सब लोग रुक गये। रात यहीं बितायी।

सबको सोते छोड़कर रामका आगे बढ़ना

तड़के जागकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'भाई ! इन पुरवासियोंकी ओर तो देखो। ये थके सो रहे हैं। ये केवल मुझे चाह रहे हैं। अपने लोगोंसे नाता तोड़ चुके हैं। लगता है ये अपने प्राण छोड़ देंगे। एक ही उपाय है कि इन्हें यों ही सोते

१-रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये। तस्मात् तुष्टास्मि यद् राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥
न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु॥ (वा॰ रा॰, अयोध्या॰ ७।३५-३६)

अहल्याका उद्धार

मिथिलाकी यात्रा प्रारम्भ हो गयी। सोनभद्र पारकर गङ्गाके तटपर पहली रात बितायी। दूसरे दिन रास्तेमें रामने अहल्याको शापसे मुक्त किया। अब अहल्या सबको दिखायी देने लगी थी। इसके पहले अहल्याको कोई देख नहीं पाता था। अहल्याका हृदय हर्षसे भर गया। उन्होंने रामका हार्दिक आतिथ्य किया। चारों ओरसे साधुवादकी ध्वनि सुनायी देने लगी। गौतम ऋषि अपनी पत्नीको पाकर बहुत संतुष्ट हुए। उन्होंने रामका आभार माना।

राजा जनकके यज्ञ-मण्डपमें

इसके पश्चात् विश्वामित्र दोनों कुमारोंके साथ ईशानकोणकी ओर बढ़कर राजा जनकके यज्ञ-मण्डपमें जा पहुँचे। समाचार मिलते ही राजा जनक अपने पुरोहित शतानन्दको आगे कर महर्षि विश्वामित्रकी सेवामें उपस्थित हुए। राम और लक्ष्मणको देखकर वे बहुत ही प्रभावित हुए। महर्षि विश्वामित्रने दोनोंका परिचय दिया और सिद्धाश्रमसे लेकर अहल्योद्धारतककी सारी घटना सुना दी। पुरोहित शतानन्द महर्षि गौतमके ज्येष्ठ पुत्र थे। अपनी माताकी उद्धारकी बात सुनकर वे प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्होंने रामका हार्दिक अभिनन्दन किया।

धनुर्भङ्ग

दूसरे दिन राजा जनकने राम-लक्ष्मणके साथ महर्षि विश्वामित्रको बुलाया और उनका पूजन किया। बातचीतके सिलसिलेमें महर्षि विश्वामित्रने राजा जनकसे कहा—'आपके यहाँ जो धनुष रखा है, उसे इन्हें दिखा दें।' राजा जनकने कहा—'यदि राम धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दें तो अपनी प्रिय पुत्री सीताको इन्हें सौंप दूँ।' इसके बाद राजाने सेवकोंको आज्ञा दी कि 'धनुष यहाँ लाया जाय।' वह धनुष दिव्य था, आठ पहियोंवाली लोहेकी संदूकमें रखा हुआ था। फिर भी उस संदूकको खींचना बहुत कठिन था। उसमें पाँच हजार वीर लगे, जो किसी तरह नगरसे वहाँ ला सके। विश्वामित्रकी आज्ञा पाकर श्रीरामने धनुषको खेल-खेलमें उठा लिया और उसपर प्रत्यञ्चा भी चढ़ा दी। हजारों आँखें बड़ी उत्सुकताके साथ यह दृश्य देख रही थीं। ज्यों ही भगवान्ने धनुषको कानतक खींचा, त्यों ही वह टूट गया। घोर आवाज हुई। दिग्-दिगन्त गूँज उठा। भूचाल आ गया। महर्षि विश्वामित्र, राजा जनक, राम और लक्ष्मणको छोड़कर जो जहाँ था, वहीं बेहोश होकर गिर पड़ा। मूर्छा टूटनेपर वे प्रसन्नतासे भर गये। वे तो चाह ही रहे थे कि रामका विवाह किसी तरह सीतासे हो जाय। राजा जनकको बहुत हर्ष हुआ। साथ ही उनको विस्मय भी हुआ। बोले—'महादेवजीके धनुषको चढ़ाना अचिन्त्य और अतर्क्य है।' उन्होंने राजा दशरथको दल-बलके साथ आनेको आमन्त्रित किया। अपने भाई कुशध्वजको भी सांकाश्या नगरीसे बुला लिया।

चारों भाइयोंका विवाह

जब राजा दशरथ जनकपुर पधारे तो उनका उत्साहके साथ स्वागत हुआ। शुभ मुहूर्तमें श्रीरामका सीताके साथ, लक्ष्मणका उर्मिलाके साथ, भरतका माण्डवीके साथ, शत्रुघ्न-का श्रुतकीर्तिके साथ विवाह सम्पन्न हुआ। उस समय जनकपुरमें सब तरफ आनन्द-ही-आनन्द हिलोरें मार रहा था।

रामका कार्य सम्पादनकर महर्षि विश्वामित्र उत्तर पर्वत (हिमालयकी शाखाभूत पर्वत) अपने आश्रमपर चले गये। उनके जानेके बाद राजा दशरथने भी मिथिलानरेशसे बिदाई लेकर अयोध्याके लिये प्रस्थान किया।

मार्गमें महर्षि परशुरामका आगमन

मार्गमें घोर अन्धकार और धूलभरी आँधीके साथ महर्षि परशुराम वहाँ उपस्थित हुए। वे बहुत भयंकर दीख रहे थे। वे सीधे रामके पास जा पहुँचे। बोले—'राम! मैं रास्तेभर सुनता आ रहा हूँ कि धनुषको तुमने तोड़ा है। यह काम सचमुच अद्भुत और अचिन्त्य है। उसके टूटनेकी बात सुनकर मैं यह दूसरा धनुष लाया हूँ। तुम इसपर प्रत्यञ्चा चढ़ाओ। यदि तुम ऐसा कर सकोगे, तब मैं तुमसे द्वन्द्व युद्ध करूँगा।' यह बात सुनते ही सभी किंकर्तव्यविमूढ़—स्तब्ध हो खड़े रह गये। राजा दशरथ दीन-भावसे हाथ जोड़कर बोले—'ब्रह्मन्! आप महान् हैं। मेरे पुत्रको अभयदान दीजिये।' किंतु परशुराम दशरथकी बात अनसुनीकर रामसे उलझते गये।

परशुरामका पराभव

पिताकी दीनता रामसे देखी नहीं गयी। उन्होंने तत्काल

धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी। उसपर बाण रखा और कहा—'आप ब्राह्मण हैं, इस नाते मेरे पूज्य हैं। आपपर इसे नहीं छोड़ सकता। अब इस वैष्णव बाणको कहाँ छोड़ूँ? आपको एक क्षणमें सब जगह आने-जानेकी जो शक्ति प्राप्त है, क्या उसे नष्ट कर दूँ? अथवा तपोबलसे जो आपको पुण्यलोक प्राप्त हैं, उन्हें नष्ट कर दूँ?'

रामचन्द्रजीने जब परशुरामजीसे धनु लिया था, तभी उनका वैष्णव तेज उनसे निकलकर श्रीराममें मिल गया था। इस समय परशुराम पराक्रमहीन हो गये थे। उस बाणसे उन्होंने अपने पुण्यलोकोंका नाश कराया। जब उन्होंने भगवान् रामको विष्णुरूपमें पहचान लिया, तब उनका बहुत सम्मान किया और अपने आश्रमपर लौट गये।

अयोध्यामें आनन्द-ही-आनन्द

जबसे राम विवाहकर अयोध्या आये, तबसे वहाँ आनन्दकी जो लहरियाँ उठीं, वे बारह वर्षतक उत्तरोत्तर बढ़ती ही चली गयीं। सभी लोग अलौकिक सुखमें डूबते-उतराते रहे। कुछ कालके बाद माता-पिताकी आज्ञा लेकर भरत शत्रुघ्नके साथ अपने मामाके यहाँ चले गये।

मन्थराका षड्यन्त्र

एक दिन राजा दशरथने भरी सभामें रामके राज्याभिषेक-का प्रस्ताव रखा। यह प्रस्ताव सर्वसम्मतिसे पास हो गया। यह सुनकर जनता हर्षसे पुलकित हो उठी। जो जहाँ था वहीं नगरकी सजावटमें जुट गया। जब मन्थराने यह सजावट देखी तो विस्मयसे उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गयीं। जब उसे यह पता चला कि यह सब रामके राज्याभिषेककी तैयारी है, तब उसके हृदयमें बहुत चोट लगी। वह भागती हुई कैकेयीके पास जा पहुँची। बोली—'देवि! आज कैसे बेखबर सो रही हैं।' मन्थराका रंग-ढंग देखकर कैकेयीने पूछा—'मन्थरे! क्या कोई अमङ्गलका समाचार लायी हो?' मन्थराने बताया कि 'कल रामका राज्याभिषेक होने जा रहा है अर्थात् तुम्हारे लिये बड़ी विपत्तिका समय आ रहा है।'

कैकेयी रामसे बहुत प्यार करती थी। रामके राज्याभिषेक-की बात सुनकर वह प्रसन्नतासे इतनी बावली हो गयी कि आगेकी बात ही नहीं सुन सकी। हृदयमें इतना हर्ष उमड़ा कि शय्यापर लेटी न रह सकी। तुरंत उठकर बैठ गयी। खुशखबरी सुनानेवालेपर रीझ गयी। झट बहुमूल्य आभूषण उतारकर उसे दे दिया और बोली—'मैं राम और भरतमें कोई भेद नहीं मानती। मन्थरे! रामके अभिषेकसे बढ़कर और कोई प्रिय वचन मेरे लिये नहीं हो सकता। तुम और कोई वरदान माँगो[1]!' किंतु मन्थरा कैकेयीकी शुद्ध बुद्धिको पलटनेमें सफल हो गयी। वह रामके प्रति कैकेयीके हृदयमें कूट-कूटकर घृणाके भाव भरने लगी। कुछ ही क्षणोंमें कैकेयी बदल गयी। परिणाम यह हुआ कि रामको वनवासी होना पड़ा, दशरथकी मृत्यु हो गयी और कौसल्याको पुत्रका वनवास देखना पड़ा।

रामके वनवाससे प्रजाकी छटपटाहट

रामके वनवाससे जनताके प्राणोंपर आ बीता। वह रामसे प्यार करती थी। उनके भावी विरहसे छटपटाने लगी। सब लोग रथके पीछे हो लिये। बहुत समझानेपर भी कोई लौट नहीं रहा था। बड़े-बूढ़े घोड़ोंसे कह रहे थे—'घोड़ो! तुम्हारे कान बड़े-बड़े हैं। हमारी बात सुनो। रामको मत ले जाओ। लौटो।' रामसे यह आर्तनाद सुना नहीं गया। वे रथसे उतरकर पैदल ही चलने लगे। सीता और लक्ष्मणने भी उनका साथ दिया। अयोध्यावासी रामके भावी वियोगसे इतने कातर हो गये थे कि लौटनेकी बात सुनते ही नहीं थे। इस समय रामके सामने एक बड़ी समस्या खड़ी हो गयी थी। तमसा नदीने इसका समाधान कर दिया। नदीके तटपर सब लोग रुक गये। रात यहीं बितायी।

सबको सोते छोड़कर रामका आगे बढ़ना

तड़के जागकर उन्होंने लक्ष्मणसे कहा—'भाई! इन पुरवासियोंकी ओर तो देखो। ये थके सो रहे हैं। ये केवल मुझे चाह रहे हैं। अपने लोगोंसे नाता तोड़ चुके हैं। लगता है ये अपने प्राण छोड़ देंगे। एक ही उपाय है कि इन्हें यों ही सोते

१-रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये। तस्मात् तुष्टास्मि यद् राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥
न मे परं किंचिदितो वरं पुनः प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं वरं परं ते प्रददामि तं वृणु॥ (वा० रा०, अयोध्या० ७। ३५-३६)

छोड़कर हमलोग वन चल दें।' सुमन्त्रने रथको इस प्रकार इधर-उधर घुमाया कि कोई जान न सका कि राम वन किस ओरसे गये ?

प्रजाका अयोध्या लौट आना

प्रातःकाल पुरवासी रामको न देखकर अचेत हो गये। वे रोने लगे और अपनी नींदको कोसने लगे। रथकी लकीरके भूल-भूलैयाने उन्हें अयोध्या लौटनेके लिये विवश कर दिया। वहाँ तो सारी अयोध्या ही रो रही थी !

निषादराजका आतिथ्य

इधर राम सायंकाल शृंगवेरपुरमें गङ्गातटपर पहुँचे। निषादराजने श्रीरामका हार्दिक आतिथ्य किया। अपना समूचा राज्य श्रीरामके चरणोंमें न्यौछावर कर दिया। रामने प्यारसे उसे लौटा दिया। आतिथ्य स्वीकार किया। तृणकी शय्यापर सोये। लक्ष्मणजी चारों ओर घूम-घूमकर पहरा देते रहे।

भरद्वाज मुनिके आश्रममें

सबेरे श्रीरामने अपना संदेश देकर सुमन्त्रको किसी तरह लौटाया। उसके बाद नावसे गङ्गा पारकर आगे बढ़े। सायंकाल होते-होते वत्सदेश पहुँचे। एक वृक्षके नीचे वह रात बितायी। अब प्रयाग लक्ष्यमें था। वनकी शोभा देखते हुए सायंकाल भरद्वाज मुनिके आश्रमपर पहुँचे। मुनि अन्तर्यामी थे। वे प्रिय अतिथिकी प्रतीक्षा बड़ी आतुरतासे कर रहे थे। मुनि चाहते थे कि राम उनके आश्रममें ही वनवासके सारे दिन बितायें। किंतु रामने कहा कि यहाँ मिलनेवाले आते-जाते रहेंगे। इसलिये तपस्वियोंकी तपस्यामें विघ्न होगा। रामने किसी एकान्त प्रदेशका पता पूछा। मुनिने चित्रकूटका निर्देश किया और स्वस्तिवाचनपूर्वक उनको बिदा किया।

चित्रकूटमें वास

यमुनाका रेतीला तट और सघन वन उन्हें बहुत रुचिकर लगा। रात वहीं बितायी। सबेरे चित्रकूट पहुँचे। चित्रकूटकी रमणीयताने इनकी थकान मिटा दी। महर्षि वाल्मीकिका आतिथ्य पाकर वे प्रसन्न हुए। वहाँ लक्ष्मणने सुन्दर पर्णशाला तैयार कर दी। श्रीरामने मन्त्रोंका पाठ और जपकर वास्तुयज्ञकी पूर्ति की। फिर देवताओंकी पूजाकर पर्णकुटीमें प्रवेश किया। इसके बाद बलिवैश्वदेव, रुद्रयाग और वैष्णवयाग कर वास्तुशान्तिके लिये मङ्गल-पाठ किया।

सुमन्त्रका अयोध्या लौटना

इधर रामसे बिछुड़नेपर सुमन्त्रकी दशा अत्यन्त शोचनीय हो गयी थी। रामका संदेश तो पहुँचाना ही था। इसीलिये किसी तरह वे अयोध्या पहुँचे। वहाँ उनकी स्थिति और शोचनीय हो गयी; क्योंकि वहाँ तो एक-एक कणसे आर्तनाद उभड़ रहा था। पेड़ झर-झर रो रहे थे। जलमें उष्णता आ गयी थी। पशुओंने खाना छोड़ दिया था। खोजनेपर एक पक्षी भी कहीं नहीं दिखायी देता था। पता नहीं सब कहाँ छिप गये थे ? अयोध्या अयोध्या नहीं रह गयी थी !

चक्रवर्तीजीकी मृत्यु

सुमन्त्रको खाली हाथ लौटते देखकर वहाँका शोक और गहरा गया। सुमन्त्रके संवादने तो राजा दशरथको मूर्च्छित ही कर दिया। कौसल्याकी भी यही दशा हुई। आधी रात होते-होते राजा दशरथके जीवनका अन्त हो गया। आर्तनाद और भी बढ़ गया।

भरतका अयोध्या आगमन

गुरु वसिष्ठने भरतको केकयदेशसे बुला लिया। जबसे भरतने दुःस्वप्न देखा था, तबसे वे दैन्यसे घिरे रहते थे। रास्तेभर वे बेचैन-ही-बेचैन रहे। अयोध्या पहुँचनेपर उनकी बेचैनी और बढ़ गयी। क्योंकि अयोध्या उजड़ी दिखायी देती थी। पूछनेपर कोई कुछ बताता ही न था। धड़कते दिलसे भरत पिताके घरमें गये। उन्हें न पाकर अपनी माता कैकेयीके महलमें गये।

दुष्प्रचारसे प्रभावित कैकेयी

कैकेयी तो दुष्प्रचारसे बिलकुल बदल चुकी थी। भरतजीको अयोध्या भरमें केवल वही प्रसन्न दिखायी पड़ी। भरतने पूछा—'माँ ! आज पिताजी यहाँ उपस्थित क्यों नहीं हैं ? कोई परिजन प्रसन्न क्यों नहीं दीखता ?' कैकेयीकी बुद्धि तो मारी गयी थी। अप्रिय घटना ही उसे प्रिय लग रही थी।

उसने दशरथकी मौतकी बात सुना दी। भरतजीका हृदय तो शुद्ध था। वे इस अप्रिय समाचारको सह न सके, मूर्च्छित हो पृथिवीपर गिर पड़े। होश आनेपर कहा—'माँ ! भैया रामको बुला दो, उनको देखकर कुछ धीरज होगा।' पर

कैकेयीने दो वरदानोंकी बात बताकर सिद्ध करना चाहा कि किस तरह उसने अपनी सूझ-बूझसे गयी हुई राजगद्दीको भरतके लिये प्राप्त कर लिया है तथा रामको किस तरह चौदह वर्षके लिये वनमें भेज दिया है। अन्तमें कहा—'बेटा ! मैंने सूझ-बूझसे तेरा पथ निष्कंटक कर दिया है। अब तुम खुशीसे राज्य करो।'

शोकसे घायल भरतजी

भरतजी यह दोहरी चोट सह न सके। फिर मूर्च्छित होकर पृथिवीपर गिर पड़े। होश आनेपर माताको बहुत धिक्कारा। फिर माता कौसल्यासे मिलने चल दिये। भरतजीकी आवाज सुनकर माता कौसल्या सुमित्राके साथ स्वयं इनसे मिलने आ रही थीं। किंतु उनका शोक इतना गहरा गया था कि रास्तेमें ही अचेत होकर गिर पड़ीं। इस दृश्यको भरतने देख लिया। उनका दुःख और गहरा गया।

भरतजी दौड़कर माताकी गोदमें जा लगे और लगे फूट-फूटकर रोने। कौसल्या भी भरतजीको गले लगाकर खूब रोयीं। वह रात रोनेमें ही बीत गयी।

और्ध्वदैहिक कृत्य सम्पन्न

महर्षि वसिष्ठने अपने ज्ञानके प्रकाशसे भरतके कर्म-पथको आलोकित किया। विधि-विधानसे भरतजीने पिताका और्ध्वदैहिक कृत्य सम्पन्न किया।

भरतजीकी उदात्तता

चौदहवें दिन अमात्योंने अभिषेककी सामग्री प्रस्तुतकर भरतजीको राजा बननेके लिये प्रार्थना की। यह सुनकर भरतने सबसे पहले अभिषेककी सामग्रीकी परिक्रमा की। इसके बाद कहा—'सज्जनो ! हमारे कुलका धर्म है कि राज्य ज्येष्ठ पुत्रको ही दिया जाता है। अतः राम ही राजा होंगे। रामके बदले मैं ही चौदह वर्ष वनमें निवास करूँगा। इस जुटाई हुई सामग्रीको आगेकर मैं श्रीरामके पास चल रहा हूँ। इससे उन्हींका अभिषेक होगा। आप भी हमारा साथ दें।'

भरतजीकी यात्रा

भरतजीकी इस घोषणाने मूर्च्छित अयोध्याको अमृतकी तरह जिला दिया। सब जगह प्रसन्नताकी लहर दौड़ गयी। यह देख भरतकी आँखोंमें हर्षके आँसू छलकने लगे। महात्मा भरतकी यह यात्रा उत्साहके साथ आरम्भ हो गयी। शृंगवेरपुरमें पहला पड़ाव पड़ा। इस विशाल सेनाको देखकर रामभक्त निषादराजको पहले तो भरतजीकी नीयतपर संदेह हुआ। परंतु परीक्षा करनेपर वे भरतकी उदारतापर रीझ गये। बात-चीतमें निषादराजने राम और लक्ष्मणके केशोंको जब जटाके रूपमें परिणत होनेकी बात सुनायी, तब वह बर्छी-सी भरतजीके हृदयको बेध गयी। वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। शत्रुघ्न घबरा गये। भरतजीको हृदयसे लगाकर जोर-जोरसे रोने लगे। माताएँ दौड़ी हुई आयीं। भरतको घेरकर सब-के-सब रोने लगीं। कौसल्या बहुत कातर हो उठी थीं। भरतको उन्होंने गोदमें चिपका लिया।

महर्षि भरद्वाजके आश्रममें

दूसरे दिन भरत सेनाके साथ भरद्वाज मुनिके आश्रममें पहुँचे। मुनिने अपनी तपस्याके बलपर भरतकी सेनाका दिव्य आतिथ्य किया। सबेरे मुनिने चित्रकूटका रास्ता बताया। अब सबका एकमात्र लक्ष्य चित्रकूट था।

चित्रकूटके पास

बहुत आगे बढ़नेपर भरतजीको धुआँ उठता हुआ दीख पड़ा। उनके हृदयमें हर्षका संचार हो गया। उन्होंने सब लोगोंको वहीं रुकनेका आदेश दिया। सबके हृदयमें गहरा आनन्द भर गया था; क्योंकि वे समझ गये थे कि अब रामका दर्शन होनेहीवाला है। भरतजी अपने साथ सुमन्त्र और निषादराजको लेकर आगे बढ़े।

लक्ष्मणजीको भरतजीकी नीयतपर संदेह

इधर रामजीने पशुओंको घबराकर भागते देखा। उन्होंने लक्ष्मणसे इसका कारण जाननेके लिये कहा। लक्ष्मण झट एक शालके वृक्षपर चढ़ गये। उन्होंने चतुरङ्गिणी सेनाको पहचान लिया। अनुरागके आधिक्यमें अपने प्रियके अनिष्टकी सम्भावना अधिक दिखायी देती है। उन्होंने रामसे कहा—'यह कैकेयी-पुत्र भरत अपने राज्यको निष्कण्टक बनानेके लिये आपको मारने आ रहा है। आज मैं अपने रोषका बदला चुकाऊँगा।' लक्ष्मणजी रोषसे जल रहे थे।

संदेहका निराकरण

रामने लक्ष्मणजीको समझा-बुझाकर शान्त किया। कहा—'लक्ष्मण ! ऐसी बात नहीं है। भरत महान् हैं। वे माता कैकेयीको फटकारकर और पिताको प्रसन्नकर मुझे राज्य

देनेके लिये आ रहे हैं।' लक्ष्मण यह बात सुनकर उन्हींके अनुकूल हो गये।

श्रीराम-भरत-मिलन

श्रीरामपर दृष्टि पड़ते ही भरतजी आर्तभावसे श्रीरामके चरणोंमें लोट गये। शत्रुघ्न भी चरणोंमें लग गये। श्रीरामने उन्हें अपने हृदयसे लगाकर आँसुओंसे नहला दिया। इसके बाद राम और लक्ष्मण सुमन्त्र तथा निषाद आदिसे मिले।

भरतजीका राज्य ग्रहण करनेके लिये आग्रह

अवसर पाकर भरतजीने रामको अयोध्याका राज्य ग्रहण करनेका आग्रह किया। रामने समझाया कि 'पिताकी आज्ञाका पालन करना ही हम दोनोंका कर्तव्य है। अतः मैं वनमें निवास करूँ और तुम राजा बनो।' भरतने बड़ी विनम्रतासे अपना आग्रह बार-बार प्रस्तुत किया। गुरु वसिष्ठने भी भरतके पक्षका समर्थन किया, कहा—'कुल-धर्मके अनुसार ज्येष्ठ पुत्रको ही राजा बननेका अधिकार है। दूसरी बात यह है कि मैं भी पिताकी तरह तुम्हारा गुरुजन हूँ। मैं आदेश देता हूँ कि 'तुम राज्य ग्रहण कर लो।'

रामने नम्रतासे पिताकी आज्ञाका पालन करना ही अपना कर्तव्य बताया। रामके इस निर्णयसे भरतजी बहुत उदास हो गये। उन्होंने कहा—'लगता है भाई राम मुझपर प्रसन्न नहीं हैं। जबतक ये प्रसन्न नहीं होंगे, तबतक मैं खाना-पीना छोड़कर यों ही पड़ा रहूँगा।' और हाथ जोड़कर सबके सामने कहने लगे—'सज्जनो ! यदि पिताकी आज्ञाका पालन करना अनिवार्य है तो रामके बदले मैं ही चौदह वर्ष वनमें वास करूँगा, राम अयोध्या लौट जायँ।'

प्रतिनिधित्व अनुचित

यह बहुत विलक्षण बात थी। जन-समूहके साथ-साथ राम भी विस्मित हो गये। उन्होंने भरतजीका सम्मान करते हुए कहा—'तात ! सामर्थ्य रहते हुए प्रतिनिधि बनाना निन्दित कर्म है। इसलिये मुझे वनवासमें रहने दो। अवधि समाप्त होनेपर तुम्हारी इच्छा अवश्य पूरी करूँगा।'

महर्षियोंद्वारा रामके पक्षका समर्थन

विश्वके इतिहासमें यह अद्भुत घटना थी। दोनों भाइयोंका यह प्रेम-भक्तिपूर्ण त्याग-तपस्यामय संगम देखकर सब लोग चकित हो गये। कुछ महर्षि अदृश्यरूपसे अन्तरिक्षमें विद्यमान थे। वे प्रकट हो गये। उन्होंने भरतजीको समझाया कि 'हमलोग रामको पिताके ऋणसे उऋण देखना चाहते हैं। कैकेयीका ऋण चुका देनेके कारण ही दशरथको स्वर्ग मिला है।' ऐसा कहकर गन्धर्व, राजर्षि, महर्षि सब लोग चले गये।

चरण-पादुका-प्रदान

इस निर्णयसे भरत काँप उठे। उनका कण्ठ रुँध गया। हाथ जोड़कर बोले—'आप इस राज्यको स्वीकार कर लें।' भरतकी दीनता रामसे देखी नहीं गयी। झट उन्होंने भरतको अपनी गोदमें खींच लिया और अपनी चरणपादुका देकर उनकी अभिलाषा पूर्ण कर दी। भरतजीने चरण-पादुकाको सिरपर धारण कर लिया और घर जाकर राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। वे चरण-पादुकासे निवेदन करके ही सब कार्य करने लगे। इस तरह रामकी चरण-पादुकाका राज्य हो गया। प्रेमी भरतजी नन्दिग्राममें रहकर रामजीके दर्शनोंकी प्रतीक्षा करने लगे। (क्रमशः) (ला० बि० मि०)
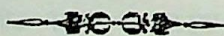
कल्याणका सुगम उपाय

निज दूषन गुन राम के समुझें तुलसीदास।
होइ भलो कलिकालहूँ उभय लोक अनयास ॥

(दोहावली ७७)

तुलसीदासजी कहते हैं—अपने दोषों (अपराधों) तथा श्रीरामके [क्षमा, दया आदि] गुणोंको समझ लेनेपर अथवा दोषोंको अपना किया और गुण भगवान् श्रीरामके दिये हुए मान लेनेसे इस कलिकालमें भी मनुष्यका इस लोक और परलोक—दोनोंमें सहज ही कल्याण हो जाता है।

अध्यात्मरामायणके श्रीराम

(कविराज पं॰ श्रीनन्दकिशोरजी गौतम 'निर्मल', एम्॰ ए॰)

अखिललोकनायक त्रयतापहारी मर्यादापुरुषोत्तम आनन्द-कन्द दशरथनन्दन श्रीरामचन्द्रके चरित्रको प्रकाशित करनेवाले प्रधानभूत तीन ग्रन्थरत्नोंमें पहला है—आदिकाव्य 'वाल्मीकि-रामायण', दूसरा है—'अध्यात्मरामायण' तथा तीसरा 'राम-चरितमानस'। महर्षि वाल्मीकिने भगवान् रामका अपने काव्यमें जो चरित्र-चित्रण किया है, उसके अनुशीलनसे ज्ञात होता है कि उनका आदर्श चरित्र लोकके लिये परम अनुकरणीय था।

अध्यात्मरामायणके कतिपय स्थलोंपर राम हमें अति-मानुष कर्म करते हुए दिखायी देते हैं। इनसे उनके ईश्वर होनेका स्पष्ट संकेत मिलता है। यथा—अर्धमुहूर्तमें एकाकी श्रीराम-द्वारा चौदह हजार राक्षसोंका नाश कर दिया जाना—

खरश्च निहतः संख्ये दूषणस्त्रिशिरास्तथा।
चतुर्दश सहस्त्राणि राक्षसानां महात्मनाम्॥
निहतानि क्षणेनैव रामेणासुरशत्रुणा।

(अध्या॰ ३। ५। ४३-४४)

जगज्जननी माता सीताके शब्दोंमें भी वे लोकनाथ प्रदर्शित किये गये हैं—

'कौसल्या लोकभर्तारं सुषुवे यं मनस्विनी।'

तथा—

कथानककी घटनाओंको लेकर वाल्मीकि और अध्यात्म-रामायणमें भिन्नता है। रामचरितमानस और अध्यात्मरामायणके घटनाक्रममें कुछ परिवर्तनके साथ अत्यन्त साम्य दिखायी देता है। ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि गोस्वामी तुलसीदासने अपने 'रामचरितमानस'का मुख्य आधार 'अध्यात्मरामायण'को ही बनाया है।

'अध्यात्मरामायण' एक आख्यानके रूपमें 'ब्रह्माण्ड-पुराण'के उत्तरखण्डके अन्तर्गत माना जाता है। अतः इसके रचयिता महामुनि वेदव्यास ही हैं। इस परम पवित्र गाथाको साक्षात् भगवान् विश्वनाथने अपनी प्रिया आदिशक्ति पार्वतीको सुनाया है। इसमें परम रसायन रामचरितका वर्णन करते-करते पद-पदपर प्रसङ्गानुसार भक्ति, ज्ञान, उपासना, नीति और सदाचारके दिव्य उपदेश दिये गये हैं। विविध विषयोंका वर्णन होते हुए भी इसमें प्रधानता 'अध्यात्मतत्त्व'के विवेचनकी ही है और इसीलिये इसका 'अध्यात्मरामायण'—यह नाम सर्वथा सार्थक है। प्रस्तुत ग्रन्थमें भगवान् श्रीराम मूर्तिमान् 'अध्यात्म-तत्त्व' हैं। शायद ही किसी काण्डका कोई सर्ग हो, जिसमें श्रीरामको अनन्तकोटि-ब्रह्माण्डनायक विष्णुका स्वरूप न बताया गया हो।

ग्रन्थके प्रारम्भमें ही माता पार्वती भगवान् शंकरसे श्रीपुरुषोत्तम भगवान्‌के सनातन तत्त्वको पूछती हैं—

'पृच्छामि तत्त्वं पुरुषोत्तमस्य
सनातनं त्वं च सनातनोऽसि॥'

(१।१।७)

क्योंकि वे भगवान् राम सिद्धगणोंके द्वारा परम अद्वितीय, आदिकारण, प्रकृतिके गुण-प्रवाहसे परे बताये जाते हैं; किंतु कोई-कोई कहते हैं कि श्रीराम परब्रह्म होनेपर भी अपनी मायासे आवृत होनेके कारण अपने आत्मस्वरूपको नहीं जानते थे। अतः वसिष्ठादिके उपदेशसे उन्होंने अध्यात्मतत्त्वको जाना—

वदन्ति रामं परमेकमाद्यं
निरस्तमायागुणसम्प्रवाहम्।
भजन्ति चाहर्निशमप्रमत्ताः
परं पदं यान्ति तथैव सिद्धाः॥
वदन्ति केचित् परमोऽपि रामः
स्वाविद्यया संवृतमात्मसंज्ञम्।
जानाति नात्मानमतः परेण
सम्बोधितो वेद परात्मतत्त्वम्॥

(१।१।१२-१३)

माता पार्वती भी यही शंका करती हुई भगवान् भूतनाथसे प्रश्न करती हैं—

यदि स्म जानाति कुतो विलापः
सीताकृतेऽनेन कृतः परेण।
जानाति नैवं यदि केन सेव्यः
समो हि सर्वैरपि जीवजातैः॥
अत्रोत्तरं किं विदितं भवद्भि-
स्तद् ब्रूत मे संशयभेदि वाक्यम्।

अर्थात् यदि वे आत्मतत्त्वको जानते थे तो उन परमात्माने सीताके लिये इतना विलाप क्यों किया और यदि उन्हें आत्मज्ञान नहीं था तो वे अन्य सामान्य जीवोंके समान ही हुए, फिर उनका भजन क्यों किया जाना चाहिये ? इस विषयको आप ऐसे वाक्योंसे समझाइये कि मेरा संदेह निवृत्त हो जाय।

तब देवादिदेव भगवान् नीलकण्ठ शिवने माँ अम्बिकाको रामका स्वरूप समझाते हुए इस प्रकार बताया—श्रीरामचन्द्रजी निस्संदेह प्रकृतिसे परे, परमात्मा, अनादि, आनन्दघन और अद्वितीय पुरुषोत्तम हैं, जो अपनी मायासे ही इस सम्पूर्ण जगत्को रचकर इसके बाहर-भीतर सब ओर आकाशके समान व्याप्त हैं तथा जो आत्मरूपसे सबके अन्तःकरणमें स्थित हुए अपनी मायासे इस विश्वको परिचालित करते हैं—

रामः परात्मा प्रकृतेरनादि-
रानन्द एकः पुरुषोत्तमो हि॥
स्वमायया कृत्स्नमिदं हि सृष्ट्वा
नभोवदन्तर्बहिरास्थितो यः।
सर्वान्तरस्थोऽपि निगूढ आत्मा
स्वमायया सृष्टमिदं विचष्टे॥

(१।१।१७-१८)

भगवान् श्रीराम जब समस्त विघ्न-बाधाओंको पारकर राजसिंहासनपर आरूढ हुए, तब भक्तवर हनुमान्को रामतत्त्वज्ञानकी अभिलाषा जाग्रत् हुई। अन्तर्यामी श्रीरामने श्रीहनुमान्के प्रति अपने तत्त्वका उपदेश देनेकी जगज्जननी सीताको आज्ञा दी। माता सीताने भी शरणागत हनुमान्को रामका निश्चित तत्त्व बताते हुए कहा था—

रामं विद्धि परं ब्रह्म सच्चिदानन्दमद्वयम्।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तं सत्तामात्रमगोचरम्॥
आनन्दं निर्मलं शान्तं निर्विकारं निरञ्जनम्।
सर्वव्यापिनमात्मानं स्वप्रकाशमकल्मषम्॥

(१।१।३२-३३)

अर्थात् वत्स हनुमान्! तुम श्रीरामको साक्षात् अद्वितीय सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमेश्वर समझो। ये निर्विकार, निरञ्जन, सर्वव्यापक, स्वयं प्रकाशमान और पापहीन परमात्मा ही हैं।

तदनन्तर स्वयं भगवान् राम भी **'तत्त्वमसि'**—वेदान्तके इस महावाक्यके आधारपर अपना अध्यात्मस्वरूप प्रियभक्त हनुमान्को ऐसा ही बताते हैं।

विश्रवाके पुत्र रावणके अत्याचारसे संतप्त होकर समस्त देवगण ब्रह्मासहित जब श्रीहरिसे अवतार-हेतु प्रार्थना करते हैं, तब शेषशायी परात्पर भगवान् नारायण उन्हें राजा दशरथके यहाँ कौसल्या आदि तीन रानियोंके द्वारा पुत्ररूपसे चार अंशोंमें प्रकट होनेका आश्वासन देते हैं—

तस्याहं पुत्रतामेत्य कौसल्यायां शुभे दिने।
चतुर्धाऽऽत्मानमेवाहं सृजामीतरयोः पृथक्॥

(१।२।२७)

अपने चरणोंकी रजके स्पर्शसे जब श्रीराम अहल्याका उद्धार कर देते हैं, तब उनका परमात्मत्व सिद्ध हो जाता है और अहल्या भी उन्हें पुराणपुरुष परमात्मा बताती हुई गुणगान करती है—

'सोऽयं परात्मा पुरुषः पुराण
एकः स्वयंज्योतिरनन्त आद्यः।'

(१।५।४९)

शिवधनुष-भङ्गके पश्चात् जानकीका परिणय कर जब राम अयोध्या लौटते हैं, तब भृगुनन्दन परशुराम उनसे अपना विष्णुधनुष चढ़वाकर उन्हें परमेश्वरके रूपमें स्वीकार करते हैं—

'राम राम महाबाहो जाने त्वां परमेश्वरम्॥'

(१।७।२०)

मुनिवर वामदेव भी भगवान् रामको 'नारायण' और सीताको 'लक्ष्मी' बताते हैं—

एष रामः परो विष्णुरादिनारायणः स्मृतः।
एषा सा जानकी लक्ष्मीर्योगमायेति विश्रुता॥

(२।५।११)

स्नेह और सेवाकी मूर्ति भरत भी अपनेको धिक्कारते हुए रामको 'परमात्मा' बताते हैं—

धिङ्मां जातोऽस्मि कैकेय्यां पापराशिसमानतः।
मन्निमित्तमिदं क्लेशं रामस्य परमात्मनः॥

(२।८।३१)

यहाँतक कि श्रीरामको वनवास देनेवाली माता कैकेयी भी आगे चलकर उन्हें विष्णुभगवान् बताती है—

'त्वं साक्षाद्विष्णुरव्यक्तः परमात्मा सनातनः।'

(२।९।५७)

और तो और, राक्षसराज रावण भी उनका परम शत्रु होते हुए उन्हें 'परमात्मा' बताता है और उनके हाथसे मरकर परमपद प्राप्त करनेके लिये ही उनसे वैर ठानता है—

यद्वा न रामो मनुजः परेशो
मां हन्तुकामः सबलं बलौघैः।
सम्प्रार्थितोऽयं द्रुहिणेन पूर्वं
मनुष्यरूपोऽद्य रघोः कुलेऽभूत्॥
वध्यो यदि स्यां परमात्मनाहं
वैकुण्ठराज्यं परिपालयेऽहम्।
नो चेदिदं राक्षसराज्यमेव
भोक्ष्ये चिरं राममतो व्रजामि॥
इत्थं विचिन्त्याखिलराक्षसेन्द्रो
रामं विदित्वा परमेश्वरं हरिम्।
विरोधबुद्ध्यैव हरिं प्रयामि
द्रुतं न भक्त्या भगवान् प्रसीदेत्॥

(३।५।५९—६१)

'अथवा यह राम मनुष्य नहीं है, साक्षात् परमात्माने ही पूर्वकालमें की हुई ब्रह्माकी प्रार्थनासे मेरी सेनाके सहित मुझे वानरसेनाओंसे मारनेके लिये इस समय रघुवंशमें मनुष्यरूपमें अवतार लिया है। यदि परमात्माद्वारा मैं मारा गया, तब तो मैं वैकुण्ठका राज्य भोगूँगा, नहीं तो चिरकालपर्यन्त राक्षसोंका राज्य तो भोगूँगा ही। इसलिये मैं (अवश्य) रामके पास चलूँगा। सम्पूर्ण राक्षसोंके स्वामी रावणने इस प्रकार विचारकर भगवान् रामको साक्षात् परमात्मा हरि जानकर (यह निश्चय किया कि) मैं विरोधबुद्धिसे ही भगवान्‌के पास जाऊँगा, (क्योंकि) भक्तिके द्वारा भगवान् शीघ्र प्रसन्न नहीं हो सकते।'

यहाँ आकर तो यह प्रसंग और भी स्पष्ट हो जाता है कि राम साक्षात् श्रीहरि थे, क्योंकि रावणकी मृत्युके बाद उसके शरीरसे निकला हुआ तेज श्रीराममें आकर समा जाता है—

रावणस्य च देहोत्थं ज्योतिरादित्यवत्स्फुरत्॥
प्रविवेश रघुश्रेष्ठं देवानां पश्यतां सताम्।

(६।११।७८-७९)

इस रामायणके राम वस्तुतः अध्यात्मतत्त्व होनेके बाद भी अपने लौकिक चरित्रद्वारा आदर्श प्रस्तुत करते हैं कि कुलीन बालकको किस प्रकार माता-पिताको नित्य प्रणाम करना चाहिये। इसका उदाहरण श्रीराम अपने चरित्रद्वारा इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—

प्रातरुत्थाय सुस्नातः पितरावभिवाद्य च।
पौरकार्याणि सर्वाणि करोति विनयान्वितः॥

(१।३।६४)

पुत्रको माता-पिताका कैसा आज्ञाकारी होना चाहिये, इस बातका तो श्रीरामने अपने आचरणद्वारा ऐसा अनूठा प्रमाण दिया है, जिसे विश्व जानता है। जहाँ उन्हें राजसिंहासन मिलनेवाला था, वहाँ उन्होंने वनवासको उससे भी अधिक हर्षके साथ स्वीकार कर पिताके सत्यकी रक्षा की—

राज्यात् कोटिगुणं सौख्यं मम राजन् वने सतः॥
त्वत्सत्यपालनं देवकार्यं चापि भविष्यति।
कैकेय्याश्च प्रियो राजन् वनवासो महागुणः॥

(२।३।७४-७५)

पुत्र पिताका इससे बढ़कर भक्त क्या हो सकता है कि वह उनके लिये अपना जीवन भी त्यागने और हलाहलतक पीनेको प्रस्तुत हो जाय—

'पित्रर्थे जीवितं दास्ये पिबेयं विषमुल्बणम्॥'

(२।३।५९)

राम कितने धनुर्विद्या-विशारद और पराक्रमी थे, इस बातकी पुष्टि खर, दूषण और त्रिशिरासहित चौदह हजार राक्षसोंको आधे पहरमें मार देनेसे होती है—

तानि चिच्छेद रामोऽपि लीलया तिलशः क्षणात्।
ततो बाणसहस्रेण हत्वा तान् सर्वराक्षसान्॥

(३।५।३४)

संसारको रुलानेके कारण जिसका नाम ही 'रावण' पड़ा था, उस भयंकर राक्षसके हृदयको भी पराक्रमी रामने अपने तीक्ष्ण बाणद्वारा छेद डाला—

'बिभेद हृदयं तूर्णं रावणस्य महात्मनः॥'

(६।११।७१)

प्रजापालक श्रीरामने स्वर्णके समान शुद्ध अग्निपूता सीताको भी लोकनिन्दाके कारण त्याग दिया। भले ही स्वर्णमयी सीता बनवाकर ही अपने यज्ञकार्योंको उन्होंने पूर्ण किया, किंतु महान् एवं समर्थ राजा होते हुए भी दूसरे विवाहका नामतक नहीं लिया और अपने एकपत्नीव्रतके

आदर्शको संसारमें प्रस्तुत किया—

'यज्ञान् स्वर्णमयीं सीतां विधाय विपुलद्युतिः ॥'

(७।६।३४)

राम अपनी प्रजाको कितने प्रिय थे, इस बातका प्रमाण उनके वनगमनके समय प्रजाकी विह्वलतासे और उनके महाप्रयाणके समय उन्हींके साथ सबोंके प्रयाण करनेसे स्पष्ट होता है—

पौराः सर्वे समागत्य स्थितास्तस्याविदूरतः ।
शक्ता रामं पुरं नेतुं नो चेद्गच्छामहे वनम् ॥

(२।५।५३)

एवं—

तवानुगमनं राम हृद्गता नो दृढा मतिः ।
पुत्रदारादिभिः सार्धमनुयामोऽद्य सर्वथा ॥
तपोवनं वा स्वर्गं वा पुरं वा रघुनन्दन ।

(७।९।१३-१४)

'हे राम ! हमारे हृदयमें आपका अनुगमन करनेका ही दृढ़ विचार है। अतः हे रघुनन्दन ! आप तपोवन, नगर, स्वर्ग आदि कहीं भी जायँ, अब हम स्त्री-पुत्रादिके सहित सर्वथा आपका ही अनुसरण करेंगे।'

रामके आदर्श राज्यको बार-बार स्मरणकर उसकी कल्पनाको साकार करनेमें हम भारतवासी ही नहीं, अपितु समग्र विश्वका जन-जन ही आज भी प्राणपणसे सचेष्ट है। श्रीरामके राज्यमें विधवाका क्रन्दन सुनायी नहीं देता था, सर्प और लुटेरोंका भय न था, मेघ समयपर वर्षा करते थे, प्रजा वर्णाश्रमधर्मोंसे युक्त थी एवं रामजी अपनी प्रजाका पुत्रवत् पालन करते थे। इस प्रकार राज्य करते हुए मर्यादा-पुरुषोत्तम श्रीरामने इस धराधामपर ग्यारह सहस्र वर्षोंतक निवास किया—

'न पर्यदेवन् विधवा न च व्यालकृतं भयम् ॥'

(६।१६।२९)

योगिनी स्वयंप्रभापर रामकी कृपा

(श्रीगौरीदत्तजी गहतोड़ी आचार्य)

भगवती श्रीसीता माताकी खोज करते हुए हनुमान् आदि वानरगण विन्ध्यवनमें पहुँचे और वहाँ उन्हें एक विशाल गुफा दिखलायी दी। उत्सुकतावश वे सभी उसमें प्रवेश कर गये। बहुत दूरतक अन्धकारयुक्त मार्गको पार करनेपर उन्हें एक दिव्य स्थान मिला, जहाँ फल-फूल, अमृतरूपी जल एवं अनेक सुन्दर वृक्ष-लतासे घिरा एक स्वर्ण-सिंहासन था, जिसमें एक सुन्दरी बैठी थी जो योगाभ्यासमें तत्पर थी, उसके तेजसे वहाँका सम्पूर्ण मण्डल दिव्य प्रकाशसे उद्भासित हो रहा था।

उस महाभागाको देखकर वानरोंने भय एवं प्रीतिसे उसे प्रणाम किया। तब उस देवीने पूछा—'तुम किसलिये और कहाँसे आये हो? किसके दूत हो?' तब हनुमान्जीने कहा—'देवि! परम ऐश्वर्यसम्पन्न महाराज दशरथके महाभाग्यशाली ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम अपने पिताकी आज्ञासे वनमें आये हैं, उनकी साध्वी पत्नीको दुरात्मा रावण हर ले गया। रामजीने सुग्रीवसे मित्रता जोड़ी, सुग्रीवकी आज्ञासे हम सीताजीकी खोज करते हुए इस स्थानमें पहुँचे हैं। हे देवि! आप कौन हैं? यहाँ किसलिये रहती हैं?' तब योगिनीने कहा—'मैं विश्वकर्माकी पुत्री हेमाकी सखी एवं दिव्य नामक गन्धर्वकी कन्या हूँ, मेरा नाम स्वयंप्रभा है। भगवान् शंकरकी कृपासे मेरी सखी हेमाको यह अद्भुत प्रभाववाला दिव्य स्थान प्राप्त हुआ। मैं भी अपनी सखीके साथ बहुत समयसे यहाँ रह रही हूँ, मेरी सखी तो अब ब्रह्मलोक चली गयी है, किंतु मैं अपने आराध्य भगवान् श्रीरामके दर्शनके लिये यहाँ नित्य ध्यान-समाधिमें रहते हुए तपस्या करती रहती हूँ। मेरी सखी जब ब्रह्मलोकको जाने लगी, तब उसने मुझसे कहा कि 'सखी! तू इसी स्थानमें रहकर तपस्या कर, जब त्रेतायुगमें साक्षात् नारायण राजा दशरथके घर जन्म लेकर पृथिवीका भार उतारनेके लिये वनमें आयेंगे, उस समय उनके साथ वानरगण भी होंगे, जो उनकी प्रिय भार्याकी खोज करते हुए इस स्थानपर आयेंगे, उनका सत्कार करना, फिर रामके पास जाकर स्तुति करना। तब श्रीरामके दर्शनसे तू उस शाश्वत अव्यय धामको प्राप्त करोगी।'

आज तुम सबके यहाँ आनेसे मुझे अपनी सखीकी बातें सत्य हुई लगती हैं। अतः अब मैं अपने आराध्य भगवान्

रामके दर्शनके लिये जाती हूँ। तुमलोग आँखें मूँद लो, तुरंत गुफासे बाहर पहुँच जाओगे। उन्होंने ऐसा ही किया। योगिनी स्वयंप्रभाने अपनी योगशक्तिके प्रभावसे हनुमान् आदि सभी वानरगणोंको क्षणभरमें पहलेवाले स्थानमें पहुँचा दिया।

इधर योगिनी भी गुफाको छोड़कर श्रीरामजीके पास पहुँची। वहाँ सुग्रीव एवं लक्ष्मणके साथ उनका दर्शन किया। स्वयंप्रभाने उनकी प्रदक्षिणाकर उन्हें बार-बार प्रणाम किया और गद्गदवाणीसे स्तुति करते हुए वह इस प्रकार कहने लगी—

'हे राजाधिराज ! मैं आपकी दासी, आपके दर्शनोंके लिये यहाँ आयी हूँ। मैंने आपके दर्शनोंके लिये ही गुफामें रहकर सहस्रों वर्षोंसे कठोर तपस्या की है। आज मेरा यह तप सफल हो गया। अहो ! आज कैसा शुभ दिन है, जो मैं साक्षात् मायातीत तथा समस्त भूतोंमें अलक्षित-भावसे बाहर-भीतर विराजमान आप परमेश्वरको प्रणाम कर रही हूँ। जैसे मायारूपको साधारण पुरुष नहीं देखते, वैसे ही आपके शुद्ध स्वरूपको अज्ञानी नहीं देख सकते। हे भगवन् ! आपने महान् भगवद्भक्तोंके भक्तियोगका विधान करनेके लिये ही अवतार लिया है, मैं तमोगुणी बुद्धिवाली आपको कैसे जान सकती हूँ। हे राम ! आज मुझे आपके मोक्षदायक चरण-कमलोंका दर्शन हुआ है। हे आदि-मध्य-अन्त-हीन ! सर्वव्यापक ! आप जो लीलाएँ करते हैं, उन्हें कोई नहीं जान सकता। आप समदर्शी, अजन्मा, अकर्ता और ईश्वर हैं। आपके जो देव-तिर्यक् तथा मनुष्य-योनियोंमें जन्म होते हैं वह आपकी महान् लीला है। कोई कहते हैं—आपने कथा-श्रवणकी सिद्धिके लिये अवतार लिया, कोई कहतें हैं—राजा दशरथकी तपस्याका फल देनेके लिये तो कोई कौसल्याकी प्रार्थनासे प्रकट हुए और कोई ब्रह्माकी प्रार्थनासे भूभार हरनेके लिये अवतरित मानते हैं। प्रभो ! जो लोग आपकी कथाको कहेंगे-सुनेंगे वे अवश्य आपके मोक्षदायक चरणकमलोंका दर्शन करेंगे। हे प्रभो ! आप मायासे परे हैं। मैं आपको कैसे जान सकती हूँ। अतः भाई लक्ष्मण और सुग्रीवादि पार्षदोंसहित मैं आपको प्रणाम करती हूँ[१]।'

योगिनी स्वयंप्रभाकी अनन्य भक्ति-निष्ठा एवं स्तुतिके भावोंसे करुणावरुणालय भगवान् श्रीराम अत्यन्त प्रसन्न होकर योगिनीसे बोले—'देवि ! तुम्हारी हार्दिक इच्छा क्या है ?' इसपर योगिनीने भक्तिपूर्वक कहा—

सा प्राह राघवं भक्त्या भक्तिं ते भक्तवत्सल।
यत्र कुत्रापि जाताया निश्चलां देहि मे प्रभो॥
त्वद्भक्तेषु सदा सङ्गो भूयान्मे प्राकृतेषु न।
जिह्वा मे राम रामेति भक्त्या वदतु सर्वदा॥
मानसं श्यामलं रूपं सीतालक्ष्मणसंयुतम्।
धनुर्बाणधरं पीतवाससं मुकुटोज्ज्वलम्॥
अङ्गदैर्नूपुरैर्मुक्ताहारैः कौस्तुभकुण्डलैः।
भान्तं स्मरतु मे राम वरं नान्यं वृणे प्रभो॥

(अध्यात्म०, किष्कि० ६। ७९—८२)

'हे भक्तवत्सल प्रभो ! मैं जहाँ कहीं भी जन्म लूँ, आप मुझे अपनी अविचल भक्ति दीजिये। प्रत्येक जन्ममें मेरा संग आपके भक्तोंसे ही हो, संसारी लोगोंसे न हो और मेरी जिह्वा सदा भक्तिपूर्वक 'राम-राम' ऐसा रटा करे और हे राम ! मेरा मन आपकी उस शोभायमान श्यामल मूर्तिका श्रीसीताजी और लक्ष्मणके सहित सदा चिन्तन करता रहे, जो धनुष-बाण धारण किये हुए हैं तथा जो पीताम्बरधारी, मुकुट-विभूषित एवं भुजबंद, नूपुर, मोतियोंकी माला, कौस्तुभमणि और कुण्डलोंसे सुशोभित हैं। हे प्रभो ! इसके सिवा मैं कोई वर नहीं माँगती।'

श्रीरामचन्द्रजीने कहा—'हे महाभागे ! ऐसा ही होगा ! तू बदरिकाश्रमको जा, वहाँ मेरा स्मरण करती हुई तू शीघ्र ही इस पाञ्चभौतिक शरीरको छोड़कर मुझ परमात्माको प्राप्त हो जायगी।'

स्वयंप्रभा श्रीरामकी मधुर वाणी सुनकर पुण्यक्षेत्र बदरिकाश्रमको गयी और वहाँ रघुनाथजीका स्मरण करती हुई शरीरान्त होनेपर वह परमपदको प्राप्त हुई। रामकी कृपाको प्राप्त कर स्वयंप्रभाने अपने प्रभुके लोकको प्राप्त कर लिया।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

१-अध्यात्मरामायण, किष्किन्धा० ६। ६१—७७।

आनन्दरामायणकी रामकथा और रामोपासना

(डॉ॰ श्रीरामपालजी शुक्ल, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यतामें रामकथाका विशिष्ट स्थान है। रामके बिना भारतीयताका अस्तित्व एवं उसकी पहचान भी सम्भव नहीं है। अनादिकालसे ही ऋषि-महर्षियों, भक्तों और कवियोंने रामगाथाका गान कर और उसे अपनी वाणीका विषय बनाकर अपनेको धन्य बनाया है। महर्षि वाल्मीकिप्रणीत श्रीमद्रामायण आर्षकाव्य एवं सभी कवियोंका उपजीव्य रहा है। शतकोटिप्रविस्तर रामायणकी बात प्रसिद्ध है। विभिन्न रामायणोंमें आनन्दरामायणका महनीय स्थान है। इसके प्रत्येक सर्गकी पुष्पिकाके **'इति श्रीशतकोटिरामचरितान्तर्गतश्रीमदानन्दरामायणे वाल्मीकीये**……।'—इस कथनसे यह सूचित होता है कि आनन्दरामायण महर्षि वाल्मीकिकी रचना है। इसमें भगवान् रामभद्रकी विविध लीलाओं, उपासनाओं-सम्बन्धी अनुष्ठानों तथा रामलिङ्गतोभद्रोंकी रचना-प्रकार आदि अनमोल निधियोंका दिग्दर्शन है। जिसे पढ़कर नीरस मानवमें भी भक्तिमयी त्रिपथगाधारा प्रवाहित होने लगती है।

अन्य रामायणोंमें प्रायः भगवान् श्रीरामके आविर्भावसे उनके राज्याधिरोहणतककी लीलाएँ उपलब्ध होती हैं, किंतु आनन्दरामायणमें इस पूरी कथाको 'सारकाण्ड' नामक एक काण्डमें समाहित कर अवशिष्ट काण्डोंमें भगवान्‌की अन्यान्य लीला-कथाओंका बड़े ही सुन्दर ढंगसे प्रतिपादन किया गया है, जो अन्यत्र प्रायः उपलब्ध नहीं होता।

आनन्दरामायणके आख्यान बड़े ही रोचक, नवीन और मधुरशैलीमें वर्णित हैं तथा भगवान् सीता-रामकी प्रेमा-भक्तिसे परिपूर्ण हैं।

आनन्दरामायणके जन्मकाण्डके आठवें सर्गमें एक विचित्र कथा आती है, जिसमें यह दिखलाया गया है कि जब सीता माता पृथिवीकी गोदमें समाने लगीं, उस समय श्रीरामने अपने पराक्रमका प्रदर्शन कर धरतीमातासे सीताको वापस माँगा और उन्होंने बड़े ही आदरपूर्वक सीताको उन्हें सौंप दिया और फिर राम-सीताका बिछोह नहीं हुआ, वे सदाके लिये एक हो गये। कथा इस प्रकार है—

भगवान् श्रीरामने जब लोकापवादके भयसे सीता माताका परित्याग कर दिया था, तब बहुत कालके अनन्तर महर्षि वाल्मीकि सीताके दोनों पुत्र लव और कुशको लेकर श्रीरामके पास आये और सीताकी परम पवित्रताके विषयमें बतलाया। जिसे सुनकर स्वयं श्रीराम, सारा जनसमुदाय और राजसभाके सभासद् अत्यन्त प्रसन्न हो गये। श्रीराम तो सीताके पवित्र हृदयको समझते ही थे, सारे संसारको पवित्र करनेवाली माता सीताके विषयमें अपवित्रताकी शंका कैसी? फिर भी रामने प्रकट-रूपमें वाल्मीकिसे कहा—'भगवन्! संसारवालोंको विश्वास हो जाय, इसलिये सीता इस सभाके सामने शपथ ले।' उसी समय सीता माताने शपथ लेते हुए धरती माताका आह्वान किया। सीताजीने जो शपथ ली थी उससे उनसे चरित्र-शुद्धिमें किसीको कोई भी संदेह नहीं रह गया था। इस दृष्टिसे शपथने सबको आनन्दविभोर कर दिया था। दूसरी ओर इसी शपथसे शोकका सागर भी उमड़ पड़ा था; क्योंकि इस शपथसे सीताजी धरणीदेवीकी गोदमें समाती चली जा रही थीं। इससे श्रद्धालुओंको सीताके पवित्र दर्शनसे सदाके लिये वञ्चित होना पड़ रहा था तथा श्रीराम भी सीताके बिछोहसे विक्षिप्त हो उठे, वे दौड़कर पृथिवी माताके पास जा पहुँचे और प्रार्थना करने लगे—'देवि! आप समस्त संसारकी माता हैं और आप मेरी सास भी हैं, क्योंकि सीताजी आपसे ही उत्पन्न हुई हैं। पहले आप कन्यादानमें सम्मिलित नहीं हुई थीं। इस बार आप हमें अपने हाथों सीताको दे दें। हे देवि! आप मुझपर प्रसन्न हो जायँ।' किंतु पृथिवीदेवीने श्रीरामकी प्रार्थनापर तनिक भी ध्यान न दिया। वे केवल सीतापर ध्यान दे रही थीं। उन्हींको दुलारती-पुचकारती अन्तर्हित हो रही थीं। श्रीराम अब क्रुद्ध हो उठे। उस समय उन्होंने लक्ष्मणसे धनुष मँगाकर सहसा बाण चढ़ा दिया। इससे भयानक आँधी चलने लगी, समुद्रमें ऊँची-ऊँची तरंगें उठने लगीं। तारे टूट-टूटकर बिखरने लगे। पृथिवी देवी डर गयीं। वे एकाएक प्रकट हो गयीं और अपने हाथोंसे सीताको उठाकर उन्होंने श्रीरामको समर्पित कर दिया और स्वयं श्रीरामके चरणोंमें झुक गयीं। श्रीरामका क्रोध शान्त हो गया। उन्होंने पृथिवी माँको उठाकर आश्वस्त कर दिया। देवता दुन्दुभि बजाने लगे और फूलोंकी

वर्षा करने लगे। फिर पृथिवीने सीताकी स्तुति की और उधर सीताजीने भी पृथिवीकी पूजा की। अन्तमें श्रीरामसे आदेश लेकर पृथिवीदेवी देखते-देखते अन्तर्हित हो गयीं।

जब रामके साथ लोगोंने सीताजीको बैठा देखा, तब सभी प्रसन्नतासे भर गये। और जय-जयकार करने लगे। इस प्रकारकी अनेकों नवीन रोचक आख्यानोंसे आनन्दरामायण भरा हुआ है। इसमें अन्य रामायणोंसे अनेक नवीन विषय जैसे—भगवान् श्रीरामकी तीर्थयात्रा, अनेकानेक अश्वमेधोंका सम्पादन, राम-लक्ष्मणादिके वंशका वर्णन तथा उनके स्वयंवरोंका वृत्तान्त, भगवान् रामकी दिग्विजय-यात्रा, भूगोल-वर्णन आदि उपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त भगवान्‌की स्तुतियाँ, विविध अनुष्ठान, लिंगतोभद्रोंका वर्णन, उनमें देवताओंकी स्थापनाका क्रम, श्रीरामसे सम्बन्धित व्रतोपवासोंका विस्तारसे वर्णन, राम-नामकी महिमा, राम-लक्ष्मण-भरत और शत्रुघ्न तथा सीता आदिके कवच, पूजन-विधि आदि अनेकों बातें इसमें निर्दिष्ट हैं।

रामके लौकिक-अलौकिक एवं दिव्यातिदिव्य लीलाओंका काव्यीकरण करते हुए इसमें रामभक्तिकी सुरसरिता प्रवाहित की गयी है।

आनन्दरामायणका राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक महत्त्व तो है ही, साथ ही इसमें लोकमर्यादाओंके महत्त्व तथा रामभक्तिके अनुपम प्रसंग समाहित कर रामके मर्यादापुरुषत्वकी नींवको सुदृढ़ बनाया है।

रामके चरितको इसमें दो प्रकारसे वर्णित किया गया है—(१) लौकिक, (२) अलौकिक। लौकिक रूपमें वे दाशरथि राजकुमार हैं तो अलौकिक रूपमें वे निर्गुण ब्रह्म एवं सगुण विष्णु हैं। अलौकिक चरित्रका वर्णन काव्यमें अनेक स्थलोंमें किया गया है। यथा— मनोहरकाण्डमें—

तद्रामेति परं ब्रह्म सृष्टिस्थित्यन्तहेतुकम्।

× × ×

प्रज्ञानं ब्रह्म श्रुत्यान्ते त्रिकालेष्विति दर्शितम्॥

तद्राम सच्चिदानन्दघनानन्तं न संशयः।

× × ×

एकोऽद्वितीयः परमो नान्तः प्रज्ञादिलक्षणः।

निर्विकारो निराकारो निरामय उदीरितः॥

वही राम परब्रह्म सृष्टि, स्थिति और लयका हेतु है। जो सत्, चित् और आनन्द-स्वरूप है। वह इस जगत्‌में प्रविष्ट होकर समग्र विश्वको चैतन्य करता है, स्वयं रामको चैतन्य करनेवाला कोई नहीं है।

सगुण ब्रह्मके रूपमें रामको दो रूपोंसे चित्रित किया है। एक साकार ब्रह्म, दूसरा विष्णुरूप। सगुण-साकार ब्रह्म ही देवोंका नियामक तथा विश्वसम्राट् है, जिसके अंशसे सारे देव, स्थावर-जंगमकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके लिये मायासे नानारूप धारण करते हैं—

स ब्रह्मा स शिवश्चाथ स हरिः स सुरेश्वरः।

(आ० रा० मनो० ४। १७८)

वही ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं तथापि रामके ब्रह्म और विष्णुरूपकी अभिन्नताका दर्शनीय वर्णन प्रस्तुत किया है—

अथ विष्णुश्चैत्रमासि नवम्यां मध्यगे रवौ।

(आ० रा० सार० २। ४)

अपि च—रामो विष्णुश्च मा सीता जानामि प्राणवल्लभे॥

(आ० रा० सार० ११। २४३)

इस प्रकार अलौकिक रामका लौकिक चरित्र भी आदर्श और महनीय है। लौकिक परिवेशमें राम आकृति-प्रकृति और परिस्थितिकी दृष्टियोंसे आदर्श पुरुष हैं। इस झाँकीमें रामका पुत्र, शिष्य, बन्धु, पति, मित्र, शत्रु और राजा आदिके रूपमें लौकिक चरित्र हमें आदर्शकी प्रेरणा देता है। राम आदर्श पितृभक्त तथा आदर्श शिष्यके रूपमें जाने जाते हैं। गुरुसे मार्गदर्शन तथा उनका पूजन गुरुभक्तिका प्रमाण है।

भरत आदि रामके अत्यन्त प्रिय थे, यह भ्रातृहृदयका श्रेष्ठ स्निग्ध परिचय है। साथ ही दाम्पत्य-जीवनके प्रत्येक प्रसंग (रामकी दिनचर्यादि) से उनके सफल पतित्वका रूप द्योतित होता है। आनन्दरामायणके राम प्रजावत्सल, लोकपालक, न्यायप्रिय और एक कुशल चक्रवर्ती सम्राट् हैं। इसका उदाहरण हमें रामराज्यके वर्णनसे प्राप्त होता है—

न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति।

औरसानिव रामोऽपि जुगोप पितृवत् प्रजाः॥

(आ० रा० सार० १२। २००)

रामराज्यमें सभी जन व्याधि-त्रयसे मुक्त तथा निर्भय थे। राम अपनी प्रजाका पालन औरस (सगे पुत्र) पुत्रकी तरह

करते थे।

सीतानाथ सर्वलोकेश्वर श्रीरामके पृथ्वीका शासक होनेपर पृथ्वी अन्नसे पूर्ण रहती थी। सभी वृक्ष भरपूर फलते थे, सभी मनुष्य धर्माचरणमें लगे रहते। सब स्त्रियाँ पतिभक्ता थीं। श्रीरामके राजा रहते किसीको अपने पुत्रकी मृत्यु नहीं देखनी पड़ती थी अर्थात् अकाल मृत्यु नहीं होती थी। रामचन्द्रजीके राज्यमें संसारके सब लोगोंको सदा आनन्द रहता था—

राघवे शासति भुवं लोकनाथे रमापतौ।
वसुधा सस्यसम्पन्ना फलवन्तश्च भूरुहाः॥
जनाः स्वधर्मनिरताः पतिभक्तिपराः स्त्रियः।
नापश्यत् पुत्रमरणं कश्चिद्राजनि राघवे॥

× × ×

रामराज्ये सदानन्दः सर्वानासीज्जनान् भुवि।

(आ० रा० सार० १३।१९६-१९७, राज्यकाण्ड १५।१)

अतः राम अनन्त सद्गुणोंसे सम्पन्न, सौभाग्य, रूप, शौर्य, औदार्य और कारुण्यकी प्रतिमूर्ति हैं। आनन्दरामायणमें रामचरितको महान् अनुपमेय चित्रित करनेके साथ-ही-साथ इसमें उनकी उपासनाका भी बहुविध वर्णन किया गया है।

रामोपासना कब और कैसे करनी चाहिये? इसका विस्तृत वर्णन इसमें किया गया है, यहाँ उसका संक्षिप्त रूपमें कुछ वर्णन किया गया है।—

उपासना सात्त्विकी, राजसी तथा तामसी इस प्रकारसे तीन प्रकारकी कही गयी है—

उपासनास्त्रयः सन्ति सात्त्विकी राजसी तथा।
तामसी च तृतीया च सा गर्हिताऽत्र निगद्यते॥

(आ० रा० मनोहर० ३।१८)

देवोपासनाको सात्त्विकी, राक्षसोपासनाको राजसी और भूत-प्रेतादिकी उपासनाको तामसी कहते हैं। तामसी उपासना गर्हित है, अतः सात्त्विकी उपासना ही श्रेष्ठ मानी गयी है।

रामकी उपासनाके दो प्रकार बताये गये हैं—(१) मानसी पूजा और (२) बाह्य-पूजा—

कार्या वै मानसी पूजा बहिःपूजा तथा शुभा॥

(आ० रा० मनो० ३।१)

जब उपासक अपने इष्टदेव रामका मनमें ध्यान करते हुए मनसे पूजा करते हैं, तब उसे मानसी पूजा कहते हैं—

शुद्धेन मनसा रामं पूजयेत् सततं हृदि॥

(आ० रा० मनो० ३।७०)

—और बाह्य-पूजामें भक्त रामको द्रव्य, जल, अक्षत, चन्दन आदि विविध उपचार अपने हाथोंसे भगवान्‌को समर्पित करता है। उपासकको सर्वप्रथम गुरूपदिष्ट मन्त्र ग्रहण करना चाहिये। इसके बाद नवायतन-पूजा करनी चाहिये, क्योंकि उसे ही श्रेष्ठ माना गया है—

नवायतनपूजा सा श्रेष्ठा ज्ञेया शुभप्रदा।

(आ० रा० मनो० ३।१४९)

नवायतनमें सीतासहित चारों भाई, हनुमान्, सुग्रीव, विभीषण और अंगद ग्राह्य हैं।

पूजाका क्रम षोडशोपचार ही है, पश्चात् रामको नव पुष्पोंसे मन्त्र-पुष्पाञ्जलि देनी चाहिये। नवायतनकी प्रतिष्ठा भद्रासन बनाकर करनी चाहिये। इसमें अनेक लिङ्गतोभद्रोंकी विधि बतायी है, उनमेंसे किसी एक भद्रका निर्माण अवश्य करना चाहिये। इस प्रकारके आराधनसे मनुष्य निरामय होता है।

इस प्रकार रामोपासनाके विधानके साथ ही अनेक पूजन-विधान जैसे राम-नाम-जप, पुरश्चरण, राम-नवमी-पूजा, राम-नाम-लेखन और अनेक कवच आदिका विधान भी इसमें बताया गया है।

सारांशरूपमें कहा जा सकता है कि आनन्दरामायणमें रामके विविध चरित्रोंको संनिविष्ट करते हुए रामनाम-माहात्म्य तथा उनकी भक्तिकी श्रेष्ठताको प्रतिपादित किया गया है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह शुद्ध मनसे रामकी भक्ति करे, जिससे उसका अनात्मवस्तुसे वैराग्य हो तथा वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मामें लीन होकर अपने मानव-जन्मको सार्थक बना सके।

तुलसी दुइ महँ एक ही खेल छाँड़ि छल खेलु।
कै करु ममता राम सों कै ममता परहेलु॥ (दोहावली ७९)

तुलसीदासजी कहते हैं कि सब छोड़कर तू दोनोंमेंसे एक ही खेल—या तो केवल रामसे ही ममता कर या ममताका सर्वथा त्याग कर दे।

माता सीताका लोकोपकारी अनुग्रह

[आनन्दरामायणका एक आख्यान]

एक बारकी बात है। माता सीताके मनमें अयोध्याके बाजारको देखनेकी इच्छा उत्पन्न हुई। माता सीताने भगवान् श्रीरामके सामने अपनी इच्छा प्रकट की। त्रिकालदर्शी भगवान् राम समझ गये कि देवीके मनमें आज बाजार देखनेकी जो इच्छा उत्पन्न हुई है वह अवश्य ही प्रजाके कल्याणका कारण बनेगी। मुसकुराते भगवान् श्रीराम देवी सीताको लेकर एक ऊँचे प्रासादपर गये, जहाँसे अयोध्याकी वीथियोंका दृश्य साफ-साफ दिखलायी देता था। माता सीता और भगवान् राम एक रत्नजटित सुन्दर सिंहासनपर बैठ गये तथा गवाक्ष-मार्गोंसे अयोध्याका रमणीय दृश्य देखने लगे। वहाँ अनेक जनसमुदाय इधर-उधर आ-जा रहे थे। भगवान् श्रीराम अँगुली-निर्देश करते हुए अयोध्याके राजमार्गोंका परिचय बतलाने लगे। इसी बीच सीतामाताकी दृष्टि एक ऐसी ब्राह्मणीपर पड़ी जो कृशकाय और अत्यन्त ही दीन-हीन अवस्थामें थी। वस्त्र अत्यन्त मलिन और फटे-पुराने थे। उसने किसी तरह एक ही वस्त्रसे अपने शरीरको ढक रखा था। वह अपनी गोदमें एक नन्हे बालकको लिये हुए थी। उसे देखनेसे ही यह लग रहा था कि वह अत्यन्त अभावकी स्थितिमें है और न जाने उसने कितने दिनोंसे भोजन नहीं किया है। लगता है शायद वह भिक्षा माँगने बाजारमें आयी है।

उसकी वैसी दशा देखकर करुणामयी माता सीताको अत्यन्त दुःख हुआ, उनकी करुणा उमड़ पड़ी। उन्होंने शीघ्र ही एक दासीको भेजकर उसे अपने पास बुलवाया और बड़े ही आदर-सत्कारपूर्वक उसे आसनपर बिठाकर पूछा—'भद्रे ! तुम कौन हो और इस तरह बिना वस्त्र और आभूषणके बाजारमें किस लिये घूम रही हो ?' इसपर उस ब्राह्मणीने कहा—'देवि ! मैं एक अभागिनी ब्राह्मणपत्नी हूँ। मेरा कोई सहायक नहीं है। मेरे पतिदेव बहुत समय हुआ तीर्थयात्राके लिये गये थे, किंतु अभीतक आये नहीं। लोगोंका कहना है कि उनका शरीर शान्त हो गया है। मैं अपने पिताकी अति प्रिय थी, अतः मैंने पिताकी शरणमें रहना ठीक समझा, किंतु कुछ समय बाद उनका भी देहान्त हो गया तो फिर मैं यहीं चली आयी। अब यहाँ मेरे तथा मेरे इस बच्चेका पालन-पोषण करनेवाला इस संसारमें कोई भी नहीं है। आभूषणोंकी तो अब बात ही नहीं रही, किंतु वस्त्र भी अब कहाँसे पहनूँ, जब कि ठीकसे भोजन भी मिलना सम्भव नहीं है, किसी तरह भिक्षा माँग-माँगकर अपने इस बालकका तथा अपना पेट भरती हूँ।' यह कहकर वह रोने लगी।'

उसकी करुण गाथा सुनकर माताकी आँखोंमें आँसू छलक आये। भगवान् पास ही बैठे सब सुन रहे थे। सीतामाताने एक बार रामकी ओर देखा और उनकी मूक अनुमति पाकर तुरंत ही अपने वस्त्राभूषण उतारकर उस विप्रपत्नीको दे दिये और कहा—'देवि ! अब तुम लक्ष्मणके पास जाओ और मेरी आज्ञानुसार वे तुम्हें एक लाख स्वर्णमुद्राएँ देंगे, उन्हें तुम ग्रहण कर लेना और सुखपूर्वक रहना।'

ब्राह्मणी माताके चरणोंमें गिर पड़ी और माताकी करुणाका ध्यान करते हुए लक्ष्मणके पास गयी और सीतामाताकी बात बतायी। लक्ष्मणजीने बड़े ही आदरपूर्वक उस ब्राह्मणीको एक लाख स्वर्णमुद्राएँ दे दीं। वह ब्राह्मणी अत्यन्त प्रसन्न होती हुई तथा सीता-रामका गुणगान करती हुई अपने घर चली आयी और सुखपूर्वक रहने लगी। भला जिसपर माताका कृपाकटाक्ष हो जाय फिर उसके आनन्दका क्या ठिकाना ?

इसके पश्चात् सीताने सप्तद्वीपा वसुमतीमें यह घोषणा करवा दी कि 'आजसे कोई भी स्त्री-पुरुष ऐसा न दिखायी दे, जो कि सुन्दर वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित न हो अर्थात् राज्यमें कोई भी किंचित् भी अभावमें न रहे, सब सुख-शान्ति और सुसम्पत्तिसे सम्पन्न रहें। यदि कहीं, किसी देशमें या किसी राष्ट्रमें कोई ऐसा अभावग्रस्त दिखलायी देगा तो इसके लिये उस देशका राष्ट्राध्यक्ष अथवा राजा उत्तरदायी होगा। अतः राजा लोग अपनी प्रजामें अपने धनका समुचित बँटवारा कर दें। अन्यथा वह राजा श्रीरामद्वारा दण्ड प्राप्त करेगा।'—

अयोध्यायां तथा राष्ट्रे घोषयामास दुन्दुभिम्॥
सप्तद्वीपेषु सर्वत्र पृथग्वर्षेषु सादरम्।
काचिन्नारी पुमान् वापि विना सद्वस्त्रभूषणैः॥
दृष्टश्चारैर्मया ज्ञातो यद्देशे यत्पुरे कदा।

तद्राज्ञश्शास्तु मे दण्डो रामस्यापि विशेषतः ॥
इति मच्छिक्षितं ज्ञात्वा स्वकोशैः स्वीयराष्ट्रके ।
वस्त्रालंकारभूषाभिर्भूषणीया द्विजादयः ॥

(आनन्दरामा०, विलास० ६ । ३१—३४)

उस घोषणाको सुनकर सभीने उसका पालन किया। यह माता सीताकी अद्भुत दयालुता और मातृहृदयकी स्नेह एवं वात्सल्यमयी ममताका एक दृष्टान्तमात्र है। भगवान् सीता-रामकी अनन्त कृपाका वर्णन कौन कर सकता है ?

(पं० श्रीजोषणरामजी पाण्डेय)

अद्भुतरामायण

संस्कृत भाषामें प्रणीत अद्भुतरामायण न केवल अपने नामसे वरन् कथा-प्रसंगों एवं वर्णन-शैली आदि दृष्टियोंसे भी अद्भुत है। इसमें आद्यशक्ति श्रीजानकीजीको सर्वोपरि शक्ति बतलाते हुए ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश आदिको उन्हींसे शक्तिसम्पन्न बताया गया है तथा श्रीरामको परब्रह्म और सीताजीको आदिमाया और आदिशक्तिके रूपमें प्रतिष्ठित किया गया है। जानकीजीकी महत्ता प्रतिपादित करते हुए श्रीरामद्वारा सहस्रनाम-स्तोत्रसे उनकी स्तुति करायी गयी है। स्वयं भगवान् राम सीताकी सर्वोच्चता स्वीकारकर उनकी भक्तिका मार्ग प्रशस्त करते हैं। शक्तिकी महत्ताका प्रतिपादन जिस रूपमें अद्भुत-रामायणमें हुआ है वैसा अन्य किसी रामायणमें उपलब्ध नहीं है। यही अद्भुतरामायणकी विशेषता है।

इस रामायणमें २७ सर्ग और लगभग १४ हजार श्लोक हैं। इसकी कथा महर्षि वाल्मीकि और भरद्वाजके संवादके रूपमें उपनिबद्ध है। ओज एवं माधुर्यगुणोंके साथ ही प्रसाद गुणोंसे भी यह भरपूर है। यह रामायण देवी जानकीको सर्वव्यापी बतलाकर धर्मके उद्धारके लिये उनका उद्भव होना लेखाङ्कित करती है।

रामायणके आरम्भमें ही महर्षि भरद्वाज वाल्मीकिजीसे आदरपूर्वक पूछते हैं—'भगवन्! आपकी रामायणका सौ करोड़ श्लोकोंमें विस्तार कहा जाता है जिसे देवता, पितृगण आदि श्रवण करते हैं और पृथिवीपर भी अनेकों रामायण हैं; पर इन रामायणोंमें जो बात गुप्त हो उसे आप बतलानेकी कृपा करें।' इसपर वाल्मीकिने कहा—'मुने! इन रामायणोंमें भगवती सीताका माहात्म्य विशेष रूपसे नहीं कहा गया है, अतः मैं देवीके माहात्म्यको प्रदर्शित करनेवाली अद्भुत-रामायणका आख्यान तुम्हें सुनाता हूँ; क्योंकि श्रीजानकीजी सृष्टिकी आदिशक्ति और स्वर्गकी सिद्धिरूपी मूर्तिमान् सती हैं। इन्हींको ब्रह्मवादी सर्वकारणोंका कारण, चिन्मयी और चिद्विलासिनी कहते हैं। श्रीराम साक्षात् परमज्योति, परमधाम, पर-पुरुष हैं। वे साक्षीके रूपमें सबके अन्तःकरणमें विद्यमान रहते हैं और उनका चिन्तन भगवती सीताके योगसे होता है। वे लोक-कल्याणके लिये देह धारण करते हैं।

अद्भुतरामायणके अनुसार देवर्षि नारद और पर्वत ऋषिका शाप भगवान् विष्णुका रामरूपमें अवतार लेनेका हेतु बना। संक्षिप्त कथा यह है कि राजा त्रिशंकुकी भार्याकी आराधनासे एक विष्णुभक्त पुत्र उन्हें प्राप्त हुआ जो अम्बरीष कहलाया और वह विष्णुकी आज्ञासे अयोध्यामें आकर शासन करने लगा। कुछ कालके अनन्तर अम्बरीषको लक्ष्मीके अंशसे श्रीमती नामक एक सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई। एक बार देवर्षि नारद और पर्वत मुनि अम्बरीषके यहाँ पहुँचे और उन्होंने वह कन्या प्राप्त करनेकी इच्छा प्रकट की। राजाने किसी एकको ही कन्या देनेका अपना निश्चय बताया। नारद और पर्वत भगवान् विष्णुके पास अलग-अलग गये और सारा वृत्तान्त बतलाकर सुन्दर रूपका वरदान माँगा। भगवान् सब समझ गये। उनका हित करनेकी दृष्टिसे उन्होंने दोनोंका ही बंदर-सा मुँह बना दिया और कन्याके अतिरिक्त और किसीको दिखलायी न देगा ऐसा मनमें संकल्प कर लिया। दोनों ऋषि इस बातको न जान सके और मन-ही-मन प्रसन्न थे कि स्वयंवरमें कन्या मेरा ही वरण करेगी।

फिर क्या था, वे दोनों अलग-अलग समयोंमें कन्याके स्वयंवरमें जा पहुँचे। ज्यों ही कन्या जयमाल लेकर उन दोनोंके पास पहुँची, उन दोनोंका विकृत मुख देखकर आगे बढ़ गयी। भगवान् विष्णु मायारूपसे उन दोनोंके बीचमें बैठ गये। कन्याने विष्णुका अद्भुत रूप देखकर उन्हें जयमाला पहना दी। विष्णु उस कन्या श्रीमतीको लेकर अदृश्य हो गये। जब

मुनियोंके समक्ष भेद खुला तो वे विष्णुलोकमें पहुँच गये और उन्होंने शाप देते हुए विष्णुसे कहा—'तुमने हमारे साथ छल किया है, अतः अब तुम्हें अम्बरीषके कुलमें दशरथके यहाँ जन्म लेना पड़ेगा और श्रीमतीको धरणीकी पुत्रीके रूपमें विदेहराजके यहाँ उत्पन्न होना पड़ेगा। राक्षसराज रावण उसका छलसे हरण करेगा और तुम्हें वनमें दुःखी होकर भटकना पड़ेगा।' मुसकराते हुए भगवान् विष्णु बोले—अब आपके शापके अनुसार ही होगा। दोनों ऋषि कन्याका विचार छोड़कर शुद्ध भजन—ध्यानमें लग गये। इस प्रकार दोनों ऋषियोंके शापसे भगवान्का अवतार हुआ।

इस प्रकारकी अनेकों अद्भुत कथाएँ अद्भुतरामायणमें आयी हैं। यहाँ संक्षेपमें दो-एक आख्यान दिये जाते हैं—

सीताके आविर्भावकी कथा

दण्डकारण्यमें 'गृत्समद' नामके एक तेजस्वी ब्राह्मण रहते थे। उनकी पत्नीकी अभिलाषा थी कि देवी लक्ष्मीको वे अपनी पुत्री बनायें। पत्नीकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये ब्राह्मण देवता 'लक्ष्मी मेरी पुत्री बनें'—इस कामनासे प्रतिदिन एक कलशमें मन्त्रोच्चारणके साथ कुशाके अग्रभागसे दूध डाला करते थे। एक दिन वे कहीं बाहर गये हुए थे। उसी दिन रावण दण्डकारण्यमें आया। वहाँ अग्निके समान तेजस्वी ऋषियोंको देखकर सोचने लगा कि यदि मैं इन्हें न जीतूँगा तो त्रैलोक्य-विजयी कैसे कहाऊँगा? यह सोचकर वह ऋषियोंको बलपूर्वक घायल कर उनके अङ्गोंसे रक्त निकालकर उसी कलशमें इकट्ठा करता गया। कलश भर जानेपर वह लंका ले गया और उसे मन्दोदरीके संरक्षणमें रख दिया। रावणने चेतावनी दी—'प्रिये! इस कलशमें विषसे भी अधिक तीक्ष्णता है, अतः इसे न तो ग्रहण करना चाहिये और न किसीको देना चाहिये।'

—इतना कहकर रावण सह्याद्रि पर्वतपर चला गया। वहाँ बलपूर्वक लायी गयी देव-दानव-यक्ष आदि कन्याओंके साथ विहार करने लगा। पतिकी उपेक्षासे मन्दोदरीको विशेष कष्ट हुआ और वह अपने जीवनको भार समझने लगी। उसने मृत्युका वरण करना ही ठीक समझा, अतः एक दिन विषसे भी तीक्ष्ण उसी कलशके रुधिरको तीक्ष्ण विष समझकर पी गयी। लक्ष्मीके आश्रयभूत दूधसे मिश्रित होनेके कारण उस रुधिरसे मन्दोदरीको गर्भ रह गया। इस स्थितिसे वह अत्यन्त घबरा गयी। उसे भय लगा कि मेरे पति न जाने क्या समझेंगे।

मन्दोदरी डर गयी और विमानसे कुरुक्षेत्र चली गयी। वहाँ उसने भ्रूणको पृथिवीमें गाड़ दिया। फिर सरस्वती नदीमें नहाकर लंका लौट आयी। उसने किसीसे इस बातकी चर्चा नहीं की। फलतः यह बात छिपी-की-छिपी रह गयी।

कुछ दिनों बाद महाराज जनक यज्ञके लिये कुरुक्षेत्र गये। सोनेके हलसे जब उन्होंने भूमिका कर्षण किया, तब एक दिव्य कन्या प्रकट हो गयी और उसपर आकाशसे दिव्य फूलोंकी वर्षा होने लगी। यह अनहोनी घटना थी। महाराज जनक आश्चर्यचकित रह गये। इसी बीच आकाशवाणी हुई—'राजन्! आप इस कन्याका लालन-पालन करें, इस कन्यासे विश्वका कल्याण होगा। यह कन्या हलके अग्रभागसे उत्पन्न हुई है, अतः इसका नाम सीता होगा। इसे आप अपनी पुत्री बना लें।'

उस अद्भुत शोभा-सम्पन्न कन्याको पाकर जनक फूले न समाये, उनका पितृत्व जग गया। वात्सल्यसे उनका हृदय ओतप्रोत हो गया। यज्ञ सम्पन्न कर राजा जनक घर लौटे और कन्याको सुनयनाको दे दिया। उसे गले लगाकर सुनयना भी अलौकिक आनन्दसे विभोर हो उठीं। यही दिव्य कन्या सीता कहलायीं और लोकके कल्याणका कारण बनीं।

सहस्रमुख-रावणकी कथा

लंका-विजयके बाद श्रीरामका राज्याभिषेक हो गया था। इस अवसरपर इनके अभिनन्दनके लिये सभी ऋषि-मुनि राजदरबारमें उपस्थित हए। उन्होंने एक स्वरसे कहा—'रावणके मारे जानेसे अब विश्वमें शान्ति स्थापित हो गयी है। सब लोग सुख और शान्तिकी श्वास ले रहे हैं।' उस समय मुनियोंद्वारा श्रीरामके पराक्रम और रावणके विनाशकी बात सुनकर देवी सीताको हँसी आ गयी। इस असमयमें उनकी हँसी देखकर सबका ध्यान उनकी तरफ गया और मुनियोंने देवी सीतासे हँसीका कारण पूछा। इसपर सीताने रामजीकी तथा मुनियोंकी आज्ञा लेकर एक अद्भुत वृत्तान्त बतलाते हुए कहा—

जब मैं छोटी थी, तब मेरे पिता महाराज जनकने अपने घरमें एक ब्राह्मणको आदरपूर्वक चातुर्मास्य-व्रत करवाया। मैं भलीभाँति ब्राह्मण-देवताकी सेवा करती थी। अवकाशके

समय ब्राह्मण देवता तरह-तरहकी कथा मुझे सुनाया करते थे। एक दिन उन्होंने सहस्रमुख रावणका वृत्तान्त सुनाया, जो इस प्रकार है—

विश्रवा मुनिकी पत्नीका नाम कैकसी था। कैकसीने दो पुत्रोंको जन्म दिया। बड़ेका नाम सहस्रमुख रावण था और छोटेका नाम दशमुख रावण। दशमुख रावण ब्रह्माके वरदानसे तीनों लोकोंको जीतकर लंकामें निवास करता है और बड़ा पुत्र पुष्करद्वीपमें अपने नाना सुमालिके पास रहता है। वह बड़ा बलवान् है। मेरुको सरसोंके समान, समुद्रको गायके खुर और तीनों लोकोंको तृणके समान समझता है। सबको सताना उसका काम है। जब सारा संसार उससे त्रस्त हो गया, तब ब्रह्माने उसे 'वत्स ! पुत्र !' आदि प्यारभरे सम्बोधनोंसे प्रसन्न किया और किसी तरह इस कुकृत्यसे रोका। उसका उत्पात तो कम हो गया, परंतु समूल गया नहीं।

उस सहस्रमुख रावणकी कथा सुनाकर वे ब्राह्मण यथासमय वापस लौट गये किंतु आज भी वह घटना वैसी ही याद है। आज आपलोग दशमुख रावणके मारे जानेसे ही सर्वत्र सुख-शान्तिकी बात कैसे कर रहे हैं, जबकि पुष्करद्वीपमें सहस्रमुख रावणका अत्याचार अभी भी कम नहीं हुआ है, यही सुनकर मुझे हँसी आ गयी, इसके लिये आप सभी मुझे क्षमा करें। मेरे स्वामीने दशमुख रावणका विनाशकर महान् पराक्रमका परिचय अवश्य दिया है; किंतु जबतक वह सहस्रमुख रावण नहीं मारा जाता, जगत्‌में पूर्ण आनन्द कैसे हो सकता है ?

इस हितकारिणी और प्रेरणादायक वाणीको सुनकर श्रीरामने उसी क्षण पुष्पक विमानका स्मरण किया और इस शुभकार्यको शीघ्र सम्पन्न करना चाहा। वानरराज सुग्रीव और राक्षसराज विभीषणको दलबलके साथ बुला लिया गया। इसके बाद बड़ी सेनाके साथ श्रीरामने पुष्पकविमानसे पुष्कर क्षेत्रके लिये प्रस्थान किया। देवी सीता, सभी भाई और मन्त्रिगण साथ थे।

पुष्पककी तो अबाध गति थी, वह शीघ्र पुष्कर पहुँच गया। जब सहस्रमुख रावणने सुना कि उससे युद्ध करनेके लिये कोई आया है तो उसके गर्वको बहुत ठेस पहुँची। वह तुरंत संग्राममें आ पहुँचा। वहाँ मनुष्यों, वानरों और भालुओंकी लंबी कतार देखकर वह हँस पड़ा। सोचा, इन क्षुद्र जन्तुओंसे क्या लड़ना है। क्यों न इनको इनके देश भेज दिया जाय। ऐसा सोचकर उसने वायव्यास्त्रका प्रयोग किया। जैसे कोई बलवान् व्यक्ति बच्चोंको गलबहियाँ देकर बाहर निकाल देता है, वैसे वायव्यास्त्रने सभी प्राणियोंको बाहर निकाल दिया। केवल चारों भाई, सीताजी, हनुमान्, नल, नील, जाम्बवान्, विभीषणपर इसका प्रभाव नहीं पड़ा। अपनी सेनाकी यह स्थिति देखकर श्रीराम सहस्रमुखपर टूट पड़े। रामके अमोघ बाणोंसे राक्षस तिल-तिल कटने लगे। यह देख सहस्रमुख रावण क्षुब्ध हो गया। वह गरजकर बोला—'आज मैं अकेले ही सारे संसारको मनुष्यों और देवताओंसे रहित कर दूँगा।' यह कहकर वह जोरशोरसे रामपर बाण चलाने लगा। श्रीरामने भी इसका जबरदस्त जवाब दिया। धीरे-धीरे युद्धने लोमहर्षक रूप धारण कर लिया। सहस्रमुखने पन्नगास्त्रका प्रयोग किया। फलतः विषधर सर्पोंसे समस्त दिशाएँ एवं विदिशाएँ व्याप्त हो गयीं। श्रीरामने सौपर्णेयास्त्रसे उसे काट दिया। इसके बाद श्रीरामने उस बाणका संधान किया जिससे इन्होंने रावणको मारा था, किंतु सहस्रमुख रावणने इसे हाथसे पकड़कर तोड़ दिया और एक बाण मारकर श्रीरामको मूर्छित कर दिया। श्रीरामको मूर्छित देखकर सहस्रमुख अतीव प्रसन्न हुआ। वह दो हजार हाथोंको उठाकर नाचने लगा।

सती-स्वरूपिणी सीता यह सब सह न सकीं। उन्होंने महाकालीका विकराल रूप धारण कर लिया और एक ही निमेषमें सहस्रमुख रावणका सिर काट लिया। सेनाको तहस-नहस कर दिया। यह सब क्षणभरमें हो गया। सहस्रमुख रावण ससैन्य मारा गया, किंतु महाकालीका क्रोध शान्त नहीं हुआ। उनके रोम-रोमसे सहस्रों मातृकाएँ उत्पन्न हो गयीं, जो घोर रूप धारण किये हुए थीं। महाकालीके रोषसे सारा ब्रह्माण्ड भयभीत हो गया। पृथिवी काँपने लगी। देवता भयभीत हो गये। तब ब्रह्मादि देवगण उनके क्रोधको शान्त करनेके लिये उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुतियोंसे किसी तरह देवीका क्रोध शान्त हुआ। श्रीराम भी चैतन्यताको प्राप्त हो गये। देवीने अपना विराट् रूप दिखाकर सभीको आश्वस्त कर दिया। सभीने मिलकर उस आदिशक्तिकी आराधना की। स्वयं भगवान् श्रीरामने सहस्रनाम स्तोत्रसे देवीकी आराधना

की। अन्तमें देवीने अपना सौम्य मनोहर रूप दिखाकर सभीको आनन्दित किया। जानकीजीके प्रभावसे श्रीरामजीकी सेनाके मारे गये वीर जीवित हो उठे। सभी देवता बिदा हो गये और श्रीराम भी सीतासहित अपनी सेनाको लेकर अयोध्या वापस लौट आये। सीता-रामकी जय-जयकार होने लगी। इस प्रकार श्रीराम ग्यारह सहस्र वर्षतक पृथिवीपर शासन करते रहे।

श्रीमद्भागवतमें श्रीरामावतार-चरित्र

(श्रीचतुर्भुजजी तोषणीवाल)

श्रीमद्भागवतमें श्रीरामावतारचरित्र संक्षेपमें वर्णित होते हुए भी मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके पूर्ण भगवत्त्व एवं पूर्णावतारकी सम्पूर्ण विशेषताओंका इतनी लालित्यपूर्ण भाषामें वर्णन हुआ है कि मर्मज्ञ पाठक आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

सर्वप्रथम श्रीसूतजी भगवान् नारायणके विभिन्न अवतारोंका वर्णन करते हुए एक ही श्लोकमें देवकार्य-सम्पादन-हेतु श्रीरामके 'नरदेव'-रूपसे अवतार लेकर उनकी लीलाओंका इङ्गितमात्र करते हैं (१।३।२२)। द्वितीय बार ब्रह्माजी देवर्षि नारदको अवतारोंकी कथा सुनाते हुए तीन अत्यन्त गूढार्थक श्लोकोंमें श्रीरामावतारको पूर्णावतार एवं सच्चिदानन्दस्वरूप बताते हुए उनकी लीलाओंका संक्षिप्त किंतु सुन्दर वर्णन करते हैं (२।७।२३—२५)।

इनमेंसे प्रथम श्लोकके **'अस्मत्प्रसादसुमुखः कलया कलेशः अवतीर्य'** का विभिन्न टीकाकारोंने अपूर्व रसास्वादन करते हुए इनका गूढार्थ निम्न प्रकारसे प्रकट किया है—

(१) श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती महोदयके अनुसार ब्रह्मादिसे लेकर तृणपर्यन्त सम्पूर्ण सृष्टिपर कृपा करने-हेतु इस अवतारकी कृपातिशयता ज्ञापित हुई है। (सनकादि ऋषियोंद्वारा जय-विजयको शाप देनेपर जब भगवान् वैकुण्ठनाथ उनके पास आये हैं, तब भगवान्‌के स्वरूप-वर्णनमें **'कृत्स्नप्रसादसुमुखम्'** शब्द व्यवहृत हुआ है (३।१५।३९)। सभी टीकाकारोंने वहाँ भी इसका उपर्युक्त अर्थ ही किया है।) **'कलया'**का अर्थ 'लक्ष्मण' आदि रूपोंसहित है एवं स्वयं श्रीराम तो **'कलेशः'**—समस्त कलाओंके ईश होनेके कारण पूर्णावतार हैं ही।

(२) श्रीविजयध्वजतीर्थ महोदयने **'अस्मत्'**के स्थानपर **'कृत्स्न'** पाठ मानकर इसका अर्थ किया है—**'कृत्स्नः'** यानी पूर्ण एवं प्रसाद यानी आनन्द अर्थात् पूर्णानन्द जिनमें है एवं जिनका मुखकमल अत्यन्त कमनीय है, ऐसे भगवान् श्रीराम 'कलेश' यानी प्राण, श्रद्धा, वायु इत्यादि सम्पूर्ण कलाओंके अधीश्वर हैं, इसलिये सर्वकार्य करनेमें सुसमर्थ हैं।

(३) महाप्रभु वल्लभाचार्यजीकी विस्तृत व्याख्याका सार है—सर्वकलानिधि वैकुण्ठवासी विष्णु अपनी कला 'परमकान्ति सीतासहित' ब्रह्माजीकी प्रार्थनापर उनके सहित सम्पूर्ण सृष्टिपर कृपा करने-हेतु अवतीर्ण हुए हैं। पूर्णता सूचित करनेके लिये तीन श्लोकोंमें क्रमशः भगवान्‌के सात्त्विक, राजस एवं तामस चरित्रोंका वर्णन किया गया है। भक्त इक्ष्वाकुके वंशमें अवतीर्ण होकर देवकार्य-सम्पादन, गुरु-आज्ञासे वनगमन इत्यादि सात्त्विक चरित्र हैं। सीताके वियोगमें सीताके उद्धार-हेतु लंकापर चढ़ाई करनेके मार्गमें बाधारूप जडबुद्धि समुद्र जब विनयकी महत्ता नहीं समझा तब भगवान्‌की रोष-दृष्टिसे ही समुद्रवासी समस्त जीव व्याकुल हो गये और भयसे काँपता हुआ समुद्र भी शरणमें आया। यही भगवान् श्रीरामका राजस चरित्र है। आततायी महापराक्रमी रावणका उसके प्राणोंसहित अत्यन्त वृद्धि-प्राप्त उसके गर्वका हरण करने-हेतु भगवान् श्रीरामने जो धनुषकी घोर टंकार की, वही उनका तामस चरित्र है।

आदिपुरुष लक्ष्मणाग्रज सीता-हृदयाभिराम भगवान् श्रीरामकी परम भागवत श्रीहनुमान्‌जीद्वारा सतत सेवा, श्रवण-कीर्तनादिद्वारा जो 'अहैतुकी, अव्यवहिता, अविच्छिन्ना भक्ति' (३।२९।११-१२) किम्पुरुषवर्षमें की जाती है, उसका अत्यद्भुत मार्मिक वर्णन पञ्चम स्कन्धके १९वें अध्यायके प्रथम आठ श्लोकोंमें किया गया है। इस स्तुतिमें भगवान् श्रीरामके विशिष्ट गुणों, उनके निर्गुण-निराकार-स्वरूप, उनके नरावतारके उद्देश्य, उनके निरासक्त स्वभाव, उनकी सर्व-सुलभ भक्ति, भक्त-वत्सलता आदिका बड़ा ही सुन्दर चित्रण किया गया है। यथा—

'हे भगवन्! क्योंकि आपका शीलव्रत आर्यपुरुषोचित है,

अतः आपके चरित्रका वर्णन वाल्मीकि, अगस्त्य आदि महान् उत्तम पुरुषोंने विस्तारसे किया है। आपने अपने मनको शिक्षा दे-देकर वशमें किया है **(उपशिक्षितात्मने)**। आप जीवनभर लोकरूप ईश्वरकी आराधना ही करते रहे हैं **(उपासित-लोकाय)**। जैसे सोनेकी परीक्षा कसौटीपर कसकर की जाती है, उसी प्रकार संसारी मनुष्योंके लिये आपका चरित्र ही कसौटी-स्वरूप है अर्थात् साधुत्वका मानदण्ड है **(साधुवाद-निकषणाय)**। आप ब्रह्मनिष्ठ भी हैं अथवा लोकसंग्रहार्थ परम ब्राह्मणभक्त भी हैं **(ब्रह्मण्यदेवाय)**। आप पुरुषोत्तम हैं एवं राजाओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं **(महापुरुषाय महाराजाय)**। आपको नमस्कार है (५।१९।३)।'

'आप विशुद्ध अनुभवमात्र परमतत्त्व हैं, अतः प्रशान्त, अनामरूप हैं और अहं-रहित हैं अर्थात् प्रत्यक् चैतन्याभिन्न हैं। किंतु वेदवाक्यजनित प्रज्ञा अर्थात् सुधीसे आपकी उपलब्धि होती है (५।१९।४)। आपका मर्त्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये नहीं है, किंतु मर्त्योंको शिक्षा देनेके लिये है **(मर्त्यशिक्षणम्)**। आप आत्माराम होते हुए भी नरलीला करते हैं, अन्यथा सीता-वियोगसे आपको दुःख कैसे हो सकता था? (५।१९।५)। (इस विषयमें अत्यन्त शिक्षाप्रद बात नवम स्कन्धमें कही गयी है—'**भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः स्त्रीसङ्गिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार**।।' प्रिया सीताके विरहमें भगवान् श्रीराम अनुज लक्ष्मणके साथ अत्यन्त दुःखी होकर दीनकी भाँति वन-वन भटकते रहे (९।१०।११)। पुनः '**स्त्रीपुंप्रसङ्ग एतादृक् सर्वत्र त्रासमावहः**।' (९।११।१७)—स्त्री-पुरुषका प्रसंग सर्वत्र दुःखद ही है। यह लीला तो उन्होंने लोगोंको यह शिक्षा देने-हेतु ही की थी कि स्त्रीमें आसक्ति रखनेवालोंकी ऐसी ही दुर्गति होती है।) अन्यथा श्रीराम तो 'मुक्तसङ्ग' (आसक्ति-रहित) थे—'**त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसङ्गः**' (९।१०।८)। न राज्याभिषेक-संवादसे उन्हें प्रसन्नता हुई और न वनवास-आज्ञासे उनका मन खिन्न हुआ। वे तो वनके लिये इस प्रकार चल पड़े जैसे मुक्तसंग योगी प्राण त्याग कर देते हैं। इसी प्रकार जब भ्राता लक्ष्मणका त्याग भी अपनी प्रतिज्ञा-रक्षा-हेतु करना पड़ा तो भी वे 'निःस्पृह' रहे (५।१९।६)।'

'हे भगवन्! आपका स्वभाव ऐसा है कि आपकी प्रसन्नता प्राप्त करनेके लिये उच्चकुलमें जन्म, सौन्दर्य, वाक्-चातुर्य, बुद्धि योनि इत्यादिका कोई मूल्य नहीं है, अन्यथा आप हम-जैसे अयोग्य वानरोंको कैसे अपनाते? आपकी शरणमें तो जो भी आ जाता है, आप उसे तत्क्षण अभयदान दे देते हैं, कारण आप 'सुकृतज्ञ' हैं, सेवकद्वारा थोड़े किये गये कर्मको भी आप बहुत अधिक मानते हैं और उसके दोषोंको तो देखते ही नहीं। आप ऐसे आश्रित-वत्सल हैं कि जब आप स्वयं दिव्यधामको सिधारे तो समस्त उत्तर-कोसलवासियोंको भी अपने साथ ही दिव्यधाम ले गये (५।१९।७-८)।'

प्रसंगवश इस विषयमें नवम स्कन्धका यह श्लोक विशेषरूपसे मननीय है—

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥

(९।११।२२)

'जिन्होंने भगवान् श्रीरामका दर्शन और स्पर्श किया, उनका सहवास अथवा अनुगमन किया—वे सब-के-सब तथा कोसलदेशके निवासी भी उसी लोकमें गये, जहाँ बड़े-बड़े योगी योगसाधनाके द्वारा जाते हैं।'

ईशानुकथा-संज्ञक नवम स्कन्धमें सूर्य-वंशके वर्णनक्रममें भगवान् श्रीरामका चरित्र दो अध्यायोंमें वर्णित हुआ है। प्रारम्भमें ही भागवतकार पुनः स्मरण करा देते हैं कि '**भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः**' (९।१०।२)। भगवान् श्रीरामने कैशोरावस्थामें ही ब्रह्मर्षि विश्वामित्रजीके यज्ञकी रक्षा करते हुए राक्षसोंका वध करके अपने अद्भुत पराक्रमका परिचय दिया। फिर धनुष-यज्ञमें खेल-खेलमें ही कठोरतम शिवधनु-भङ्ग करके सीताजीका पाणिग्रहण किया एवं परशुरामजीके प्रवृद्ध गर्वका हरण किया। पितृ-आज्ञासे राज्यश्री त्यागकर पत्नी सीता एवं अनुज लक्ष्मणसहित वनगमन किया। अशुद्धबुद्धि शूर्पणखाको विरूप करके चौदह हजार राक्षसोंका विनाश किया। इधर मायामृगरूपी मारीचका वध किया, उधर उनकी अनुपस्थितिमें जब राक्षसराज रावणने छलसे सीताहरण कर लिया तब सीताकी खोजमें वनमें भटकते हुए बालीका वध करके उन्होंने वानरराज सुग्रीवसे मैत्री-सम्पादन की। हनुमान्‌जीद्वारा लंकामें सीताका पता लगनेपर वानर-सैन्यसहित समुद्र-तटपर पहुँचे और समुद्रपर

सेतु बाँधकर लंकापुरीपर चढ़ाई की। भक्त विभीषणको शरण देकर 'साध्वी सीताके स्पर्शमात्रसे जिसके सारे मंगल नष्ट हो गये थे' उस रावणको उसके अनुचरोंसमेत (९। १०। २०) अपने अद्भुत पराक्रमसे यमलोक पहुँचाया। इन सारी लीलाओंमें भगवान् श्रीरामके पराक्रम, पितृभक्ति, साधुरक्षण-तत्परता, शौर्य, अनासक्ति, एकपत्नीव्रत, राक्षसकुल-विनाश-प्रतिज्ञा, शरणागत-वत्सलता, भक्त-वात्सल्य, अखण्डमैत्री-निर्वाह, हृदयकी वज्रवत् कठोरता एवं मृदुता आदि सात्त्विक गुणोंका प्रकाश स्पष्ट है।

भगवान् श्रीरामकी मान्यता थी कि '**मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्**' (वा० रा०, युद्ध० १०९। २५)—वैर तो मृत्युतक ही होता है। अतः उन्होंने विभीषणको समझाकर रावणकी अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न करायी। श्रीराम अपने शत्रुका भी अनभल नहीं करते। रावणका भी परलोक सुधरे, ऐसी व्यवस्था की। तत्पश्चात् भगवान् श्रीरामने अपनी विरह-व्याधिसे दुर्बल एवं दीनावस्था-प्राप्त भगवती सीताको देखा, जिनका मुखकमल पतिके दर्शनमात्रसे खिल उठा था। श्रीरामके हृदयमें भी श्रीसीताके प्रति प्रेम-समुद्र हिलोरें लेने लगा। भगवान् श्रीरामने सबको साथ लेकर पुष्पक-विमानसे अयोध्याके लिये प्रस्थान किया। उधर भरतजीद्वारा '**गोमूत्र-यावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम्॥**' '**महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम्।**' (श्रीमद्भा० ९। १०। ३४-३५)— गोमूत्रमें पकाया यवान्नमात्रका भोजन, चीरवस्त्रधारण एवं भूमिशयनके बारेमें सुनकर श्रीराम अत्यन्त द्रवित हो गये। अयोध्या पहुँचनेपर सबका परस्पर यथायोग्य स्नेह-मिलनका अत्यन्त करुण एवं भावुक दृश्य अवर्णनीय है।

यहाँतककी लीलाओंसे भगवान् श्रीरामका मर्यादा-पुरुषोत्तम-स्वरूप तो सुस्थापित हो गया। अब श्रीमद्भागवतमें सर्वप्रथम सूचित '**नरदेवत्वमापन्नः**' (१। ३। २२)—राजाके आदर्श चरित्रका कुछ श्लोकोंमें (९। १०। ५१—५५) जो अत्यन्त सुन्दर वर्णन हुआ है, वह आजके परिप्रेक्ष्यमें भी विशेषरूपसे मननीय है—

'समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाले धर्मज्ञ भगवान् श्रीरामके राज्यमें सारी प्रजा वर्णाश्रम-आचारपर आश्रित स्वधर्ममें प्रतिष्ठित थी। राजा श्रीराम प्रजाका पितृतुल्य पालन करने लगे। त्रेतायुग भी मानो सत्ययुग ही हो गया। उस समय वन, नदियाँ, पहाड़, द्वीप, समुद्र इत्यादि सभी कामधेनुके समान सबकी कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हो गये। आधि, व्याधि, बुढ़ापा, ग्लानि, शोक, दुःख, भय—सब विलीन हो गये। यहाँतक कि रामराज्यमें जो मरना नहीं चाहता था उसकी मृत्यु भी नहीं होती थी। राजर्षि राम एकपत्नीव्रत-धर्मका पालन करनेवाले थे। अपने स्वयंके आचरणसे उन्होंने प्रजाको शिक्षा दी कि गृहस्थ-धर्मका पालन किस प्रकार करना चाहिये।' इसीलिये आज भी सब राम-राज्य चाहते हैं। महाभारतमें युधिष्ठिरके प्रति कथित भीष्मपितामहका वचन '**राजा कालस्य कारणम्**' यहीं चरितार्थ हुआ है।

भगवान् श्रीराम इतने निःस्पृह थे कि उन्होंने सम्पूर्ण भूमि यज्ञमें आचार्योंको दानमें दे दी (९। ११। ३)। जब ब्राह्मणोंने धरोहररूपमें सारी भूमि उन्हें प्रत्यर्पित की तो श्रीरामने प्रतिनिधिरूपसे शासन किया। यही परम्परा भारतमें क्षत्रपति शिवाजीतक चलती रही। राज्यकी सम्पत्ति राजाद्वारा व्यक्तिगत उपभोगहेतु प्रयोगमें लेनेकी प्रथा रही ही नहीं। ब्राह्मणोंने अपनी स्तुतिमें श्रीरामके लिये एक सुन्दर विशेषण '**न्यस्त-दण्डार्पिताङ्घ्रये**' (९। ११। ७) का उपयोग किया है जिसका अर्थ होता है कि आपके चरणारविन्द तो ऐसे महापुरुषोंके हृदयमें रहते हैं जो संसारके किसी भी प्राणीको भय न पहुँचायें, दण्ड न दें। दण्डकारण्यमें मुनियों एवं धर्मकी रक्षा-हेतु नंगे पाँव भटकते हुए श्रीरामके कण्टक-विद्ध चरणकमलोंको श्रीभगवान् अपने भक्तोंके हृदयमें स्थापित करके स्वधाम सिधार गये।

भगवान् श्रीरामका निर्मल यशोगान समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। वह इतना व्यापक है कि दिग्गजोंका श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलतासे चमक उठता है (**दिग्गिभेन्द्र-पट्टम्**)। उस यशका गान करते हुए बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, स्वर्गके देवता एवं पृथिवीके नृपतिगण अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरणकमलोंकी सेवा करते रहते हैं। मैं उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामकी शरण ग्रहण करता हूँ (९। ११। २१)। आइये, श्रीमद्भागवतीय एक श्लोकी रामायण (९। १०। ४) का भी पारायण करें—

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद्मपद्भ्यां प्रियायाः

पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषाऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥

'भगवान् श्रीराम अपने पिताके सत्यकी रक्षाके लिये राज्यका त्याग करके वन-वन भटकते फिरे। उनके चरणकमल इतने सुकोमल थे कि पहले प्राणप्रिया श्रीजानकीजीके करकमलोंका स्पर्श भी उन्हें सहन नहीं होता था। अब वे ही चरण जब वनमें विचरण करते-करते थक जाते, तब हनुमान् एवं लक्ष्मण पाद-संवाहनद्वारा उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखाके नाक-कान काटकर विरूप करने-हेतु उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीसीताका वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोग-जन्य रोषवश उनकी भृकुटियाँ तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्र भी भयभीत हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने समुद्रपर सेतु बाँधकर, लंकाके दुष्ट राक्षसोंके जंगलको दावाग्निके समान दग्ध कर दिया। वे कोसलनरेश श्रीराघवेन्द्र हमारी रक्षा करें।'

आठवें योगीश्वर करभाजनजीने राजा निमिको कलियुगमें बुद्धिमान् व्यक्ति किस प्रकार संकीर्तन-प्रधान भक्ति करते हैं, यह बताते हुए दो श्लोक कहे हैं। उनमें श्रीराम-भक्ति-परक निम्न प्रसिद्ध श्लोक नित्य मननीय है—

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम्।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्॥

(११।५।३४)

'अपने पिता दशरथजीके वचनोंसे देवताओंके लिये भी वाञ्छनीय और दुस्त्यज राज्यलक्ष्मीको ठुकराकर आपके चरणकमल वन-वन घूमते फिरे। आप धर्मनिष्ठताकी सीमा हैं। प्रियतमा श्रीसीताजीकी इच्छापूर्ति-हेतु आप जान-बूझकर मायामृगके पीछे दौड़े। यह प्रेमकी पराकाष्ठा है। हे प्रभो! हे महापुरुष! मैं आपके उन्हीं चरणारविन्दोंकी वन्दना करता हूँ।'

इसी वन्दनाके साथ हम भगवान् श्रीरामके चरित्र-गानको विश्राम देते हैं।

श्रीमद्भागवतमें श्रीराम-चरित्र

(श्रीकृष्णचन्द्रजी शास्त्री 'श्रीठाकुरजी')

प्रसन्नतां या न गताभिषेकत-
स्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दस्य मे
सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

(रा० च० मा० अयोध्याकाण्ड)

'रघुकुलको आनन्द देनेवाले श्रीरामचन्द्रजीके मुखारविन्दकी जो शोभा राज्याभिषेकसे (राज्याभिषेककी बात सुनकर) न तो प्रसन्नताको प्राप्त हुई और न वनवासके दुःखसे मलिन ही हुई, वह (मुखकमलकी छवि) मेरे लिये सदा सुन्दर मङ्गलोंकी देनेवाली हो।'

श्रीमद्भागवतमहापुराणमें मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका चरित्र नवम स्कन्धके दसवें और ग्यारहवें—दो अध्यायोंमें वर्णित है। इन दो अध्यायोंमें अति संक्षिप्तमें केवल कथासारको दिखाया गया है। भगवान् श्रीरामकी मर्यादामयी लीलाओंका वर्णन करके अन्तमें व्यासनन्दन भगवान् शुकदेव राजा परीक्षित्से कहते हैं—

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः॥

(९।११।१९)

अर्थात् भगवान् श्रीरामने, अपने स्मरण करनेवाले भक्तोंके हृदयमें दण्डकारण्यके अंदर विचरण करते हुए कंकड़-पत्थर तथा कुश-काँटोंसे क्षत-विक्षत, जो पल्लवकी तरह अत्यन्त कोमल चरण हैं, उनको स्थापित करके अपने प्रकाशमय स्वरूपको प्राप्त किया। धर्म, सत्य तथा सदाचारकी रक्षाके लिये दुःखपूर्ण जो जीवन है वही जीवन महत्त्वपूर्ण होता है। सुखमय जीवनका वैसा महत्त्व नहीं है जैसा सत्य, धर्म, सदाचार एवं सम्पूर्ण विश्वमें सुख-शान्तिकी स्थापनाके लिये दुःखमय जीवनका महत्त्व होता है। इसलिये भगवान् श्रीरामने अपने भक्तोंके हृदयमें उन्हीं चरणोंको प्रकाशित किया।

भगवान् श्रीरामका अभिप्राय यही है कि इन चरणोंका स्मरण करते हुए मेरे भक्तजन भी विलासिताकी ओर न जाकर मेरे द्वारा प्रवर्तित मर्यादाकी रक्षा करते हुए स्वयं कष्ट सहन करके भी

मानवमात्रके ऐहलौकिक-पारलौकिक कल्याणके लिये सत्य, धर्म, न्याय, सदाचार, शिष्टाचारकी स्थापना करते रहें।

भगवान् श्रीरामका अवतार ही हुआ है मानवमात्रको कर्तव्यकी शिक्षा देनेके लिये, न कि केवल राक्षसोंका वध करनेके लिये। यदि मानव-जातिको शिक्षा नहीं देनी होती तो वे स्वयं आत्माराम होते हुए अपनी प्रिया भार्या श्रीजानकीजीके वियोगसे दुःखी होकर वन-वनमें क्यों भटकते। इससे भगवान्ने शिक्षा दी है कि धर्मपूर्वक विवाहिता, विशुद्ध चरित्रसम्पन्ना, पतिव्रत-धर्मपरायणा, सती-साध्वी अपनी अर्धाङ्गिनीकी उपेक्षा न करके सब प्रकारसे उसकी रक्षा करनी चाहिये। यथा—

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥

(श्रीमद्भा० ५।१९।५)

भगवान् श्रीराम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा ही हैं। जिनमें सत्य, धर्म, न्याय, दया, दम, सौन्दर्य, सौलभ्य, सौशील्य, शिष्टाचार, सदाचार, अहिंसा, संतोष, शौर्य, वीर्य, प्रभाव, क्षमा, माधुर्य, परोपकारिता आदि मानवताके सारे सद्गुण सम्यक् रूपसे प्रतिष्ठित हैं। साक्षात् भगवान् श्रीनारायणके अवताररूप भगवान् श्रीरामके परम पावन चरित्रके विषयमें अल्पबुद्धि मनुष्य क्या लिख सकता है। भगवान् श्रीरामके चरित्रको देखनेके लिये वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण आदि प्रसिद्ध हैं। परम पूजनीय प्रातःस्मरणीय गोस्वामी तुलसीदासके द्वारा लिखित रामचरितमानस इत्यादि अनेकों ग्रन्थ हैं, जो मानव-जीवनको दिव्य उपदेश देकर ऐहलौकिक तथा पारलौकिक परम कल्याणको प्राप्त कराते हुए अक्षय अविनाशी तथा अखण्ड आनन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त करा देनेवाले हैं।

मानवको अपने स्वरूप, अपने कर्तव्य-अकर्तव्य तथा मानवताके स्वरूपका पूर्ण ज्ञान रामजीके चरित्रसे ही होता है।

भगवान् श्रीरामके परत्वका निरूपण वेद-शास्त्र, रामपूर्वतापिनी, रामोत्तरतापिनी तथा मुक्तिकोपनिषद्, इतिहास, पुराण, काव्य इत्यादिमें भी प्रतिपादित है।

भगवान् श्रीरामके नामकी महिमाका भी पद-पदपर वर्णन आता है। राम साक्षात् परब्रह्म परमात्मा हैं, यथा—

रमन्ते योगिनो यस्मिन् सच्चिदानन्दविग्रहे।
अतः रामपदेनासौ परं ब्रह्मेति कथ्यते॥

भगवान् श्रीरामके सद्गुणोंके, उनकी महिमाके, उनके नामकी महिमाके, उनके परम पावन चरित्रके विषयमें कहाँतक लिखा जा सकता है? उनका अपार चरित्र है और उनके अनन्त चरित्र हैं। यहाँ तो थोड़ा-सा लिखकर इस लेखको समाप्त किया जा रहा है—

चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तरम्।
एकैकमक्षरं पुंसां महापातकनाशनम्॥
रामो राजमणिः सदा विजयते रामं रमेशं भजे
रामेणाभिहता निशाचरचमू रामाय तस्मै नमः।
रामान्नास्ति परायणं परतरं रामस्य दासोऽस्म्यहं
रामे चित्तलयः सदा भवतु मे भो राम मामुद्धर॥

ब्रह्मपुराणकी रामकथा

अठारह महापुराणोंके गणनाक्रममें ब्रह्मपुराणकी गणना सबसे पहले होती है, इसलिये इसे 'आदिपुराण' भी कहा जाता है। ब्रह्मपुराणमें दो सौ छियालीस अध्याय हैं और लगभग चौदह हजार श्लोक हैं। सर्ग-प्रतिसर्ग आदि पुराणोंके तत्त्वोंके वर्णनके साथ इसमें माता गङ्गाकी महिमा विस्तारसे कही गयी है। महर्षि गौतम और राजर्षि भगीरथकी कठोर तपस्याके फलस्वरूप माता गङ्गा विन्ध्यपर्वतके दक्षिण अञ्चलमें गौतमी गङ्गा (गोदावरी) और उत्तराञ्चलमें भागीरथी गङ्गाके नामसे भारतभूमिको आप्यायित करती रहती हैं। गोदावरी गङ्गाका ७०वें अध्यायसे १७५वें अध्यायतक विशद वर्णन हुआ है। इसी प्रसंगमें रामकथाका निरूपण हुआ है। वैसे ब्रह्मपुराणमें रामकथाके अंश सर्वत्र बिखरे पड़े हैं। यहाँ कतिपय प्रसंग दिये जा रहे हैं—

कैकेयीकी अद्भुत पतिसेवा

राजा दशरथ बलवान्, बुद्धिमान् और शूरवीर थे। उनकी ख्याति विश्वभरमें फैली हुई थी। उन्होंने प्रजाको सब तरहसे

सुखी और सम्पन्न बना रखा था।

एक बार देवताओं और दानवोंमें भयंकर युद्ध छिड़ गया। दोनों ओरके लोग जानकी बाजी लगाकर लड़ रहे थे। इसलिये किसी पक्षकी जीत नहीं हो रही थी। इसी बीच आकाशवाणी हुई कि 'राजा दशरथ जिस पक्षसे लड़ेंगे उसी पक्षकी विजय होगी।'

येषां दशरथो राजा ते जेतारो न चेतरे ॥

(ब्र॰ पु॰ १२३। १५)

वायु तो क्षिप्रकारी देवता हैं। वे तत्काल राजा दशरथके पास पहुँच गये और उन्हें देवताओंकी ओरसे लड़नेका आमन्त्रण दे दिया। राजाने स्वीकार भी कर लिया। इसके पश्चात् जब दानव आये तब उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ा।

राजा दशरथ स्वर्गमें जाकर देवताओंकी ओरसे लड़ने लगे। इनके तेजको जब दानव सहन न कर सके तब नमुचिके भाइयोंने एक साथ इनपर आक्रमण कर दिया। वे राजाके रथकी धुरी तोड़नेमें सफल हो गये। धुरी टूटी जानकर सहसा महारानी कैकेयीने धुरीमें अपना हाथ लगा दिया—'**भग्नमक्षं समालक्ष्य चक्रे हस्तं तदा स्वकम्।**' (१२३। २६)। इससे दशरथके पराक्रम-कर्ममें कोई रुकावट नहीं आयी। राजा विजयी हुए।

महाराज दशरथको इस साहसपूर्ण कार्यका पता पीछे चला। वे आश्चर्यचकित रह गये। उन्होंने कैकेयीसे वर माँगनेको कहा। कैकेयीने कहा कि आवश्यकता पड़नेपर फिर माँग लूँगी।

सीता-विवाहका हेतु—शस्त्र-संचालनका वैचित्र्य

विश्वामित्र मुनि राम और लक्ष्मणको यज्ञकी रक्षाके लिये ले गये थे। उन्होंने दोनों भाइयोंको धनुर्वेद, शस्त्र-विद्या, अस्त्र-विद्या आदि बहुत-सी विद्याएँ सिखायीं। आयुधोंके आवाहन और विसर्जनकी भी शिक्षा दी। इसके बाद दोनों भाइयोंने पूर्ण सफलताके साथ महायज्ञकी रक्षा की। श्रीरामने ताड़काका उद्धार किया और अहल्याको भी शापसे मुक्त कर दिया।

इसके बाद महर्षि विश्वामित्र दोनों भाइयोंको जनकजीके पास ले गये। वहाँ देश-विदेशके राजा आये थे। गुरुकी आज्ञा पाकर श्रीराम और लक्ष्मणने धनुर्विद्याका अद्भुत प्रदर्शन किया। लोग विस्मयसे विमूढ़ हो गये। जनककी तो प्रसन्नताकी सीमा न रही। उन्होंने अपनी अयोनिजा कन्या सीताजीका विवाह श्रीरामके साथ कर दिया। भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्नका विवाह भी जनकपुरमें सम्पन्न हुआ।

राम-तीर्थ, सीता-तीर्थ और लक्ष्मण-तीर्थ

वनवासके प्रारम्भमें श्रीराम चित्रकूटमें तीन वर्ष रहे, फिर वे दक्षिण दिशाकी ओर बढ़ते हुए गौतमी गङ्गा (गोदावरी) के तटपर जा पहुँचे। माता गङ्गाके दर्शनसे तीनों बहुत प्रसन्न हुए। श्रीरामने कहा—आज हमलोगोंका भाग्योदय हो गया है कि माता गङ्गाजीका दर्शन हुआ। उन्होंने शिवजीकी पूजा कर लंबी स्तुति की। भगवान् आशुतोष प्रकट हो गये। उन्होंने श्रीराम और लक्ष्मणजीसे वरदान माँगनेको कहा। श्रीरामने वरदानमें माँगा कि जिनके पितर नरकमें हों वे यहाँके पिण्डदानसे स्वर्गलोकमें चले जायँ, यहाँ स्नान कर लेनेसे जन्मभरका पाप नष्ट हो जाय और यहाँ जो कुछ दान दिया जाय वह अक्षय हो जाय। 'ऐसा ही होगा' कहकर शिव अन्तर्धान हो गये।

येषां च पितरः शम्भो पतिता नरकार्णवे।
तेषां पिण्डादिदानेन पूता यान्तु त्रिविष्टपम्॥
जन्मप्रभृति पापानि मनोवाक्कायिकं त्वघम्।
अत्र तु स्नानमात्रेण तत्सद्यो नाशमाप्नुयात्॥

(ब्रह्म॰ पु॰ १२३। २०९-२१०)

तभीसे वह स्थल 'राम-तीर्थ' नामसे विख्यात है। सीताजीने जहाँ स्नान किया वह 'सीता-तीर्थ' और लक्ष्मणजीने जहाँ स्नान किया वह 'लक्ष्मण-तीर्थ' के नामसे विख्यात हो गया।

किष्किन्धा-तीर्थ

लंका-युद्धके पश्चात् श्रीराम पुष्पकविमानसे अयोध्या लौट रहे थे। रास्तेमें गौतमी गङ्गा (गोदावरी) मिलीं, पुष्पक-विमान गङ्गा-तटपर उतर गया। सबने गङ्गामें अवगाहन किया और इनकी पूजा की। वहाँके वातावरणने इन्हें प्रफुल्लित कर दिया। एक रात वहीं बितायी। सबेरे लंकापति विभीषणने भी श्रीरामसे प्रार्थना की कि—'भगवन्! यहाँ बहुत आनन्द मिल रहा है। इस तीर्थसे अभी हम तृप्त नहीं हुए हैं। चार रात और यहाँ ठहरा जाय।' विभीषणकी रायसे सभी चार दिन वहीं रहे। तभीसे वह स्थल 'किष्किन्धातीर्थ'के नामसे विख्यात हुआ।

(ब्रह्मपु॰ अ॰ १५७) (ला॰ बि॰ मि॰)

पद्मपुराणकी रामकथा

पद्मपुराणमें रामकथा बार-बार आयी है। इसके सृष्टि-खण्डमें भगवान्‌की वनयात्रा, तीर्थयात्रा तथा पुष्करमें श्राद्धादि-का वर्णन है। उत्तरखण्डमें २४२ अध्यायसे २४६ अध्यायतक रामकथा पूरी-की-पूरी कह दी गयी है। वैसे पातालखण्डमें रामाश्वमेधका बहुत विस्तारसे वर्णन हुआ है। साथ ही जाम्बवान्‌द्वारा किसी पूर्वकल्पके अद्भुत रामचरित्रका वर्णन भी इसमें मिलता है। वह भी अन्यत्र सुलभ नहीं है। यहाँ सृष्टि-खण्डसे रामकथाके कुछ अंश दिये जा रहे हैं।

श्रीराम भी अपने जनके लिये तड़पते हैं

भगवान्‌का कथन है कि 'जो जिस भावसे मेरी ओर उन्मुख होता है, मैं भी उसी भावसे उसे अपनाता हूँ।' वनवास हो जानेपर जैसे प्रियजन, पुरजन, परिजन रामके लिये तड़प रहे थे, दुःखी हो रहे थे, उनकी आँखोंमें आँसू भरे रहते, उन्हें चैन नहीं मिल रहा था, उसी प्रकार इधर श्रीराम भी उनके लिये तड़पते थे, रोते थे।

जब जब रामु अवध सुधि करहीं। तब तब बारि बिलोचन भरहीं॥
सुमिरि मातु पितु परिजन भाई।

(रा० च० मा० २। १४१। ३-४)

इस सम्बन्धमें पद्मपुराणकी एक रोचक घटना है। भरत आदि श्रीरामके लिये जितने उत्कण्ठित थे, उनसे अधिक उनसे मिलनेके लिये श्रीराम उत्कण्ठित थे। वनवासकी लंबी अवधि उन्हें अपने प्रियजनोंसे मिलने नहीं दे रही थी। श्रीराम ऐसा उपाय ढूँढ़ रहे थे कि वे इस बीचमें भी किसी तरह अपने जनोंसे मिल लें। जब वे अत्रिके आश्रममें गये, तब श्रीरामने उनसे वह उपाय पूछ ही लिया। अत्रिजीने बताया कि 'आप पुष्कर क्षेत्रमें जाइये। वहाँ अवियोगा नामकी एक वापी (बावली) है। उसके प्रभावसे आप अपने सभी प्रियजनोंसे मिल सकेंगे। उस वापीका यह प्रभाव है कि परलोकमें स्थित प्रियजनसे भी मिलन हो जाता है।'

श्रीरामको बहुत सान्त्वना मिली। सीता और लक्ष्मणको भी कम संतोष न हुआ। तीनों सरकार अवियोगाकी ओर बढ़ चले। उन्हें दूरीका ध्यान ही न आया। पुष्कर पहुँचकर देवताओं, ऋषियों और पितरोंका तर्पण किया। वहाँ मार्कण्डेयजी भी अपने शिष्योंके साथ आ पहुँचे थे। मुनिवरने इन्हें अवियोगातक पहुँचाया। सायंकालिक कृत्य कर सब लोग वहीं सो गये।

रातके अन्तिम प्रहरमें श्रीरामने देखा कि वे अयोध्यामें विराजमान हैं। पिता-माता आदि सभी सम्बन्धी वहाँ उपस्थित हैं। वे वैवाहिक मङ्गल-कृत्य समाप्त कर सीताके साथ वहाँ बैठे हैं। यह स्वप्न बिलकुल प्रत्यक्ष-सा अनुभूत हो रहा था। सब सुखी और आनन्दसे भरे हुए थे। सीताजी और लक्ष्मणजीने भी यह स्वप्न उसी प्रकार देखा। (पद्मपुराण, सृष्टि० अ० ३३)

सीताजीको पितरोंके प्रत्यक्ष दर्शन

प्रातःकाल ऋषियोंने श्रीरामसे कहा कि आप अपने पिताका श्राद्ध अवश्य करें; क्योंकि मृत व्यक्तिका स्वप्न दीख जानेपर उसका श्राद्ध करना आवश्यक हो जाता है—

मृतस्य दर्शने श्राद्धं कार्यमावश्यकं स्मृतम्॥

(पद्म० सृष्टि० ३३। ७४)

ऋषियोंसे अनुज्ञा प्राप्तकर श्रीरामने विधि-विधानसे श्राद्ध किया। श्राद्धमें मार्कण्डेय, भारद्वाज, लोमश, देवराज, शमीक-जैसे महान् महर्षियोंने सहयोग दिया था।

श्राद्धमें एक विशेष घटना घटी। भगवान् रामने ज्यों ही पिता, पितामह, प्रपितामहका ध्यान किया, त्यों ही उनके पिता

श्रीदशरथ आदि तीनों पुरुष वहाँ उपस्थित हो गये। तीनों ही

ब्राह्मणोंके शरीरसे सटकर बैठ गये। यह देख सीताजी वहाँसे हट गयीं। इधर श्रीरामने श्राद्ध-कर्म सम्पन्न कर दिया। इन्हें आश्चर्य हो रहा था कि श्राद्धसे अचानक सीताजी हट क्यों गयीं ! इन्होंने सीतासे इसका कारण पूछा। सीताजीने बताया कि आपके ध्यान करते ही आपके पिताजी और उन्हींके समान अन्य दो पुरुष वहाँ आकर बैठ गये। पिताजीको देखकर मैं इसलिये हट गयी कि मेरा वल्कलवस्त्र देखकर उन्हें बहुत दुःख होगा। मैं यह भी सोच रही थी कि जिस अन्नको हमारे सामान्य सेवक भी ग्रहण नहीं करते थे, उसे मैं किस हाथसे उनके सामने रखूँ और पितृगणोंको मेरी वनवासकी स्थिति देखकर दुःख होगा, इसलिये मैं सामनेसे हट गयी।

सीताजीके इस उदात्त भावने श्रीरामको अश्रुसिक्त कर दिया। वे अवियोगा वापीके प्रभावपर भी विस्मित हुए। (पद्म० पु० सृष्टि० अ० ३३)

अपने जनोंके हितकी चिन्ता

भगवान् श्रीराम अपने जनोंके कल्याणके लिये उपाय सोचा करते थे। एक दिन उन्हें विभीषणकी चिन्ता सता रही थी। वे सोच रहे थे कि विभीषणका राज्य किस तरह सदा स्थिर रह सकता है ! इसी बीच वहाँ भरत आ गये। श्रीरामको विचारमग्न देखकर उन्होंने पूछा—'देव ! आप क्या सोच रहे हैं ? यदि कोई गुप्त बात न हो तो मुझे भी बतायें।' भगवान्ने कहा—'भरत ! तुम और लक्ष्मण तो मेरे बाहरी प्राण हो। तुमसे कोई बात छिपायी नहीं जा सकती। इस समय मैं सोच रहा हूँ कि विभीषण देवताओंके साथ कैसा व्यवहार कर रहा है। सुग्रीवसे भी भेंट करना चाहता हूँ। शत्रुघ्न और अपने भाईके पुत्रोंसे भी भेंट करना चाहता हूँ।'

भरतलालजीने प्रार्थना की—भगवन् ! इस यात्रामें मुझे भी साथ ले लें। लक्ष्मण राज्यकी देख-रेख करेंगे। श्रीरामने उनकी बात मान ली।

सबसे पहले श्रीराम पुष्पक विमानसे गान्धार गये। वहाँ भरतके दोनों पुत्रोंकी राजनीतिक गतिविधि देखी। फिर पूर्वमें जाकर लक्ष्मणके दोनों पुत्रोंसे मिले। उनकी गतिविधियाँ देखीं। छः रात वहाँ ठहरकर दक्षिणकी ओर बढ़े। प्रयागमें भरद्वाज मुनिको प्रणाम कर अत्रि मुनिके आश्रममें गये। उनसे वार्ताकर जनस्थानकी ओर बढ़े। वहाँके स्थल देखकर बीती घटनाएँ उनके मस्तिष्कमें उभरने लगीं। कौन घटना कहाँ घटी, यह भरतको दिखाने लगे। इसी बीच पुष्पक विमान किष्किन्धा आ पहुँचा। भगवान्को आया देखकर सुग्रीव भावविभोर हो गया। रामको सिंहासनपर बिठाकर उसने अर्घ्य निवेदन किया और इसके पश्चात् अपने-आपको भी भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर दिया। अङ्गद, हनुमान्, नल, नील, पाटल और ऋक्षराज जाम्बवान् आये। रुमा, तारा आदि अन्तःपुरकी स्त्रियाँ भी आयीं। श्रीरामका दर्शन पाकर सब आनन्दसे मुग्ध हो गयीं। सबकी आँखें प्रेमाश्रुओंसे भरी हुई थीं।

सुग्रीवको पता चला कि श्रीराम विभीषणके पास जा रहे हैं तो उन्होंने भी प्रार्थना की कि आपके साथ राक्षसराजसे मिलने मैं भी चलूँगा। रामने स्वीकृति दे दी। फिर वे पुष्पकविमानपर आरूढ़ हो गये और कुछ समय बाद लंकाके निकट पहुँच गये। वहाँके उपस्थित राक्षसोंने बड़ी प्रसन्नतासे श्रीरामके पधारनेकी सूचना विभीषणको दी। विभीषण लंकापुरीको सजानेकी आज्ञा देकर श्रीरामके पास पहुँचे।

उन्होंने श्रीरामको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और फिर भरत तथा सुग्रीवसे गले लगकर मिले। श्रीरामको रावणके सुन्दर भवनमें ठहराया। जब भगवान् बैठ गये, तब विभीषणने अपना समूचा राज्य, सारा परिवार एवं स्वयंको भी भगवान्को अर्पित

कर दिया।

विभीषणकी माता कैकसीने भी भगवान्से मिलना चाहा। जब श्रीरामको पता चला कि कैकसी उनसे मिलना चाहती हैं, तब श्रीरामने विभीषणसे कहा—मैं स्वयं माताजीके पास चलूँगा। तुम आगे चलकर मुझे रास्ता बताओ। कैकसीको श्रीरामके सम्बन्धमें अपने पतिदेवसे सब कुछ मालूम था। कैकसीने बताया कि अपने पतिदेवके कथनके अनुसार मैंने तुम्हें पहचान लिया है। तुम भगवान् विष्णु हो, सीता लक्ष्मी और वानर देवता हैं। मेरा आशीर्वाद है कि तुम्हें अमर यश प्राप्त हो—

सीता लक्ष्मीर्भवान् विष्णुर्देवा वै वानरास्तथा।
गृहं पुत्र गमिष्यामि स्थिरकीर्तिमवाप्नुहि॥

(पद्म० पु० सृष्टि० ४०। १११)

श्रीरामने कुछ दिन रहकर विभीषणके कार्यकलापोंको देखा। फिर विभीषणसे कहा—तुम्हें इन्द्रकी आज्ञाके अनुसार चलना चाहिये और देवताओंका कार्य करना चाहिये। यदि लंकामें कोई मनुष्य आ जाय तो राक्षस उसका वध न करें। मेरी ही तरह उनका सत्कार करें। विभीषणने इसे स्वीकार किया। इसके पश्चात् भगवान् राम वामनमूर्तिकी स्थापनाके लिये कान्यकुब्ज देश गये। (ला० बि० मि०)

पद्मपुराणके आख्यान

(१)

सुआ पढ़ावत गणिका तारी

मृत्युकाले द्विजश्रेष्ठ रामेति नाम यः स्मरेत्।
स पापात्मापि परमं मोक्षमाप्नोति जैमिने॥

(भगवान् वेदव्यासजी)

प्राचीन कालकी कथा है, एक नगरमें जीवन्ती नामकी एक वेश्या रहती थी। लोक-परलोकके भयसे रहित होकर वह वेश्या व्यभिचारवृत्तिसे उदर-पोषण किया करती। एक दिन एक तोता बेचनेवालेसे उसने सुन्दर देखकर एक छोटा-सा सुग्गेका बच्चा खरीद लिया। वेश्याके कोई संतान नहीं थी, इसलिये वह उस पक्षिशावकका पुत्रवत् पालन करने लगी। प्रातःकाल उठते ही उसके पास बैठकर उसे 'राम-राम' पढ़ाती। जब वह नहीं बोलता, तब उसे अच्छे-अच्छे रसभरे फल खानेको देती। सुआ 'राम-राम' सीख गया और अभ्यासवश बड़े सुन्दर स्वरोंसे वह रात-दिन 'राम-राम' बोलने लगा। वेश्या छुट्टी पाते ही उसके पास आकर बैठ जाती और उसीके साथ वह भी 'राम-राम' का उच्चारण किया करती। एक दिन एक ही समय दोनोंका मृत्युकाल आ गया। 'राम' उच्चारण करते-करते दोनोंने प्राण त्याग दिये। सुआ भी पहलेका पापी था। अतएव दोनों पापियोंको लेनेके लिये चण्ड आदि यमराजके कई दूत हाथोंमें फाँस और अनेक प्रकारके शस्त्र लिये वहाँ पहुँचे। इधर विष्णुतुल्य-पराक्रमी शङ्ख-चक्र-गदाधारी भगवान् विष्णुके दूत भी आ उपस्थित हुए। उन्होंने यमदूतोंसे कहा—'तुमलोग इन दोनों निष्पाप जीवोंको क्यों फाँसमें बाँध रहे हो, तुम किसके दूत हो?'

यमदूत—हम महाराज सूर्यपुत्र यमराजके किङ्कर हैं। इन दोनों पापात्माओंको यमपुरीमें ले जाते हैं।

विष्णुदूत—(क्रोधसे हँसकर) इन यमदूतोंकी बात तो सुनो! क्या भगवन्नाम लेनेवाले हरिभक्त भी यमराजसे दण्ड पाने योग्य हैं? दुष्टोंका चरित्र कभी उत्तम नहीं होता, वे सर्वदा ही साधुओंसे द्वेष रखते हैं। पापी मनुष्य अपने ही समान सबको पापी समझा करते हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंको सारा जगत् निष्पाप दीखता है। धार्मिक पुरुष पुण्यात्माओंके पुण्यचरित सुनकर प्रसन्न होते हैं और पापियोंको पापकथासे प्रसन्नता होती है। भगवान्की कैसी माया है! पापसे महान् पीड़ा होती है, यह समझते हुए भी लोग पाप करनेसे नहीं चूकते।

विष्णुदूतोंने इतना कहकर चक्रसे दोनोंके बन्धन काट दिये। इसपर यमदूतोंको बहुत क्रोध आया और वे विष्णुदूतोंको ललकारकर बोले—'तुमलोग पापियोंको लेने आये हो, यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है। यदि तुमलोग बलपूर्वक उन्हें ले जाना चाहते हो तो पहले हमसे युद्ध करो।'

दोनों पक्षके दूतोंमें घोर युद्ध होने लगा। अन्तमें विष्णुदूतोंसे पराजित होकर अपने मूर्च्छित सेनापति चण्डको उठाकर हाहाकार करते हुए यमदूत यमपुरी भाग गये। इधर

विष्णुदूतोंने हर्षके साथ जयध्वनि करके दोनोंको विमानमें बैठाया और विष्णुलोकको ले गये।

रक्ताक्त-कलेवर यमदूत यमराजके सामने जाकर रोने लगे और बोले—'सुर्यपुत्र महाबाहो ! हम आपके आज्ञाकारी सेवकोंकी विष्णुदूतोंने बहुत ही दुर्गति की है। आपका प्रभुत्व अब कौन मानेगा। यह पराभव हमारा नहीं, परंतु आपका है।'

यमराजने कहा—'दूतो ! यदि उन्होंने मरते समय 'राम' इन दो अक्षरोंका स्मरण किया है तो वे मुझसे कभी दण्डनीय नहीं हैं। उस 'राम'नामके प्रतापसे भगवान् नारायण उनके प्रभु हो गये—

दूता यदि स्मरन्तौ तौ रामनामाक्षरद्वयम्।
तदा न मे दण्डनीयौ तयोर्नारायणः प्रभुः ॥

संसारमें ऐसा कोई पाप नहीं है, जिसका 'राम'नाम-स्मरणसे नाश न हो जाय। किङ्करगण ! सुनो, जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक मधुसूदनका नाम लेते हैं, जो गोविन्द, केशव, हरे, जगदीश, विष्णु, नारायण, प्रणतवत्सल और माधव—इन नामोंका भक्तिपूर्वक सतत उच्चारण करते हैं, जो सदा इस प्रकार कहते हैं—'हे लक्ष्मीपते ! हे सकलपाप-विनाशकारी श्रीकृष्ण ! हे केशिनिषूदन ! आप हमलोगोंको अपना दास बनायें।' वे लोग मुझसे दण्ड पानेके योग्य नहीं हैं। जिनकी जीभपर दामोदर, ईश्वर, अमरवृन्दसेव्य, श्रीवासुदेव, पुरुषोत्तम और यादव आदि नाम विराजमान रहते हैं, मैं उन लोगोंको प्रतिदिन प्रणाम करता हूँ। जगत्के एकमात्र स्वामी नारायण मुरारिका माहात्म्य कीर्तन करनेमें जिन लोगोंका अनुराग है, हे वीरो ! मैं उनके अधीन हूँ।

'जो भक्त भगवान् विष्णुकी पूजामें लगे रहते हैं, जो कपटरहित हो एकादशीका व्रत करते हैं, जो विष्णुचरणामृतको मस्तकपर धारण करते हैं, जो भोग लगानेके बाद प्रसाद ग्रहण करते हैं, जो तुलसी-सेवी हैं, जो अपने माता-पिताके चरणोंकी पूजा करते हैं, जो ब्राह्मणोंकी पूजा और गुरुकी सेवा करते हैं, जो दीन-दुःखियोंके हृदयको सुख पहुँचाते हैं, जो सत्यवादी, लोकप्रिय और शरणागतपालक हैं, जो दूसरोंके धनको विषके समान समझते हैं, जो अन्न, जल, भूमिका दान करते हैं, जो प्राणिमात्रके हितैषी हैं, जो बेकारोंको आजीविका देते हैं, जो शान्तचित्त हैं, जो जातिके सेवक हैं, जो दम्भ-क्रोध-मद-मत्सरसे रहित हैं, जो पापदृष्टिसे बचे हुए हैं और जो जितेन्द्रिय हैं, उनको मैं प्रणाम करता हूँ, मैं उनके अधीन हूँ, ऐसे लोगोंकी मैं कभी नरकके लिये चर्चा भी नहीं करता।'

इस प्रकार यमराजके द्वारा समझाये जानेपर यमदूत भगवान्का माहात्म्य जान गये।

(२)

राजा सुरथकी कथा

देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई ॥

कुण्डलपुरके राजा सुरथ परम धार्मिक एवं भगवद्भक्त थे। जब उनके पास कोई मनुष्य किसी कामसे जाता, तब वे उससे पूछते—'भाई ! तुम्हें अपनें वर्णाश्रमधर्मका ज्ञान तो है ? तुम एकपत्नीव्रतका पालन तो करते हो ? दूसरेके धनको लेने और दूसरेकी निन्दा करनेमें तो तुम्हारा मन नहीं जाता ? वेदके विरुद्ध तो तुम कोई आचरण नहीं करते ? भगवान् श्रीरामका तुम सदा स्मरण तो करते हो ? जो धर्मविरुद्ध चलनेवाले पापी हैं, वे तो मेरे राज्यमें थोड़ी देर भी नहीं रह सकते।'

उनके राज्यमें कोई मनसे भी पाप करनेवाला नहीं था। पर-धन तथा पर-स्त्रीकी ओर किसीका चित्त भूलकर भी नहीं जाता था। सब निष्पाप थे। सब भगवान् श्रीरामके नाम और गुणोंकी चर्चा छोड़कर उससे विपरीत बातें या कठोर शब्द बोलना नहीं जानते थे। फलतः उस राज्यमें यमदूतोंका प्रवेश ही नहीं था। वहाँ सब जीवन्मुक्त थे।

एक समय स्वयं यम जटाधारी मुनिका वेष बनाकर राजाकी भक्तिको परखने वहाँ आये। उन्होंने देखा कि वहाँकी राजसभा साक्षात् सत्संग-मन्दिर है। सबके मस्तकोंपर तुलसीदल रखा है। बात-बातमें सब भगवान्का नाम लेते हैं। भगवान्की चर्चा छोड़कर दूसरी बात ही वहाँ नहीं उठती। राजाने तपस्वीको देखा तो आदरपूर्वक उठ खड़े हुए। ऊँचे आसनपर बैठाकर उनका पूजन किया और कहने लगे—'आज मेरा जीवन धन्य हो गया। आप-जैसे सत्पुरुषोंका दर्शन बड़ा ही दुर्लभ है। अब मुझपर कृपा करके भुवनपावनी हरि-कथा सुनाइये।'

राजाकी बात सुनकर बड़े जोरसे हँसते हुए मुनि बोले—'कौन हरि ? किसकी कथा ? यह तुम क्या मूर्खों-जैसी बात

करते हो ? संसारमें कर्म ही प्रधान है। जो जैसा कर्म करता है, वैसा ही फल पाता है। तुम भी सत्कर्म किया करो। व्यर्थ हरि-हरि नाम क्यों जपते हो ?'

भगवद्भक्त राजाको मुनिकी बातसे बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने नम्रतासे कहा—'आप भगवान्‌की निन्दा क्यों करते हैं ? आपको स्मरण रखना चाहिये कि कर्मोंका सर्वोत्तम फल भोगनेवाले देवराज इन्द्रको तथा ब्रह्माजीको भी भोग समाप्त होनेपर गिरना पड़ता है, किंतु श्रीरामके सेवकोंका पतन नहीं होता। ध्रुव, प्रह्लाद आदिका चरित आप जानते ही हैं। भगवान्‌की निन्दा करनेवालोंको यमराजके दूत घोर नरकोंमें पटक देते हैं। आप तो ब्राह्मण हैं, फिर आप भगवान्‌की निन्दा करें, यह तो उचित नहीं है।'

राजाकी भक्तिसे प्रसन्न होकर यमराज अपने रूपमें प्रकट हो गये और उन्होंने राजासे वरदान माँगनेको कहा। राजा सुरथ उन भागवताचार्यके चरणोंमें गिर पड़े। उन्होंने वरदान माँगा—'जबतक भगवान् श्रीरामावतार लेकर यहाँ न पधारें, तबतक मेरी मृत्यु न हो।' यमराज 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये।

राजा सुरथ बड़ी उत्कण्ठासे अपने आराध्यके पधारनेकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्हें भगवान्‌के अयोध्यामें अवतार ग्रहणका समाचार मिला, मिथिलामें श्रीरामके द्वारा धनुष तोड़नेका समाचार मिला, वनवासका समाचार मिला और रावण-वध आदिका भी समाचार मिला। उनकी उत्कण्ठा बढ़ती ही जाती थी। भगवान् श्रीराम जब अश्वमेधयज्ञ करने लगे, तब राजाने अपने दूत राज्यके चारों ओर सावधानीसे नियुक्त कर दिये। एक दिन कुछ दूतोंने आकर समाचार दिया—'अयोध्याधिपति महाराज श्रीरामके अश्वमेधयज्ञका अश्व राज्यसीमाके पाससे जा रहा है। उसके भालपर विजयपट्ट लगा हुआ है।'

राजा इस संवादसे बड़े ही प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा कि 'अब मुझे अवश्य अपने आराध्यके दर्शन होंगे।' सेवकोंको उन्होंने यज्ञिय अश्व पकड़ लेनेकी आज्ञा दी। राजाज्ञासे घोड़ा पकड़ लिया गया। युद्धकी तैयारी होने लगी। राजा सुरथ अपने दस पुत्रोंके साथ युद्ध-क्षेत्रमें आ डटे। शत्रुघ्नजी अश्वकी रक्षा सेनाके साथ कर रहे थे। उनको घोड़ेके पीछे-पीछे चलना था। घोड़ा पकड़ा गया, यह समाचार पाकर उन्होंने अङ्गदको दूत बनाकर सुरथके पास भेजा। अङ्गदजीने बल-प्रतापका वर्णन करके घोड़ा छोड़ देनेके लिये राजासे कहा। राजाने

कहा—'आप जो भी कह रहे हैं, सब सत्य है। अयोध्याके प्रतापको मैं जानता हूँ। अपने आराध्यके छोटे भाई शत्रुघ्नजीकी शूरताका मुझे ज्ञान है। मेरा राज्य छोटा है, मेरी शक्ति अल्प है—यह भी मैं जानता हूँ, किंतु शत्रुघ्नजीके भयसे मैं अश्व नहीं छोड़ूँगा। मैं उन दयामय श्रीरामके भरोसे ही धर्मयुद्ध करनेको तैयार हुआ हूँ। श्रीरामके तेज-बल-प्रतापसे मैं शत्रुघ्नजीसहित सबको जीतकर बंदी कर लूँगा, यह मुझे पूरा विश्वास है। मैं तो श्रीरामका दास हूँ। उनके चरणोंमें मुझे पुत्रोंसहित पूरा राज्य, सब कोष, परिवारादि, समस्त सेना और अपनेको भी चढ़ा देना है, किंतु जबतक मेरे प्रभु स्वयं यहाँ न पधारें, मैं युद्धसे पीछे नहीं हटूँगा।'

अङ्गद लौट गये। युद्ध प्रारम्भ हो गया। भयंकर संग्राम हुआ। राजा सुरथने रामास्त्रका प्रयोग करके शत्रुघ्नजीके साथ पुष्कल, अङ्गद, हनुमान् आदि सबको बाँध लिया। बंदी हुए हनुमान्‌जीने राजाके कहनेपर श्रीरामका स्मरण किया। हनुमान्‌जीके स्मरण करते ही पुष्पकविमानपर बैठकर भरत तथा लक्ष्मणसे सेवित भगवान् श्रीरघुनाथजी ऋषि-मुनियोंके

साथ वहाँ आ पहुँचे। भगवान्को पधारे देख राजा सुरथ प्रेमसे उन्मत्त हो गये। वे बार-बार भगवान्के चरणोंमें नमस्कार करने लगे। उनका यह अनवरत प्रणिपात रुकता ही नहीं था। श्रीरामने उनका प्रेम देखकर चतुर्भुज-रूपसे उन्हें दर्शन दिया और हृदयसे लगा लिया।

राजा सुरथ भगवान्के चरणोंमें गिरकर अपने अपराधकी क्षमा माँगने लगे। श्रीराघवेन्द्रकी कृपा-दृष्टि पड़ते ही सबके बन्धन छूट गये और सब घाव भर गये। मर्यादापुरुषोत्तमने राजाके शौर्यकी प्रशंसा की। उन्हें आश्वासन दिया—'राजन्! क्षत्रियोंका धर्म ही ऐसा है कि कर्तव्यवश स्वामीसे भी युद्ध करना पड़ता है। इसमें कोई दोष नहीं है। तुमने तो मेरे लिये, मेरी प्रीतिके लिये, मुझे पानेके लिये ही युद्ध किया। तुम्हारी इस 'समरपूजा'से मैं बहुत संतुष्ट हुआ हूँ।'

भगवान् चार दिन वहाँ राजाके आग्रहसे रहे। पुत्रोंसहित राजाने भगवान् तथा उनके पूरे परिकरकी बड़ी ही भक्तिसे सेवा की। चौथे दिन मुनिमण्डलीके साथ श्रीराघवेन्द्र अयोध्या पधारे। राजा सुरथने अपने पुत्र चम्पकको राज्य सौंप दिया और वे स्वयं सेना लेकर शत्रुघ्नजीके साथ घोड़ेके पीछे भगवान्की सेवाके निमित्त चल दिये। पूरा जीवन उन्होंने श्रीरामसेवामें ही बिताया और अन्तमें दिव्य साकेत-धामको पधारे।

शिवपुराणकी रामकथा

महापुराणोंके गणना-क्रमें शिवपुराण चौथे स्थानपर परिपठित है। इसका कलेवर बहुत विशाल है। यह बारह संहिताओंमें विभक्त है। शिवपुराणमें श्रीरामकी कथा कई स्थलोंपर आयी है। यहाँ मुख्य रूपसे सतीखण्डकी संक्षिप्त कथा दी जा रही है—

श्रीसीताके द्वारा मानसकी अवतारणा

रावणने सीताका हरण कर लिया था। भगवान् राम शोकका सजीव अभिनय कर रहे थे। वे पेड़ों और पत्तोंसे सीताका पता पूछ रहे थे। ठीक इसी अवसरपर भगवान् सदाशिव सतीजीके साथ वहाँ पधारे। वे भू-भ्रमण कर रहे थे। इसी प्रसंगमें वे दण्डकारण्य आ पहुँचे थे। अपने परमाराध्य श्रीरामको देखते ही श्रीशंकर आनन्दविभोर हो उठे। रोमाञ्च-पर-रोमाञ्च होने लगा और नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह चली। भगवती सती तो शिवस्वरूपा ही हैं। भगवती सतीने इस अवसरसे लाभ उठाना चाहा। वे चाहती थीं कि भगवान् शंकरने जो रामचरितमानसकी रचना कर अपने मनमें छिपा रखा है, उसे जनताके सम्मुख लाया जाय। इसलिये उन्होंने अज्ञानका सफल अभिनय किया। उधर भगवान् राम शोकका अभिनय कर रहे थे। इधर सतीने अज्ञानका अभिनय करना प्रारम्भ किया।

सतीने कहा—'आप सर्वेश्वर हैं, फिर आपने इन दो क्षत्रिय-कुमारोंको नमस्कार कैसे किया? उन्हें देखकर आनन्दसे इतने विह्वल कैसे हो गये? उमड़ा हुआ आनन्द तो इस समय भी आपके रोम-रोमसे छलकता जा रहा है। वे दोनों इतने अज्ञानी हैं कि वृक्षोंसे सीताका पता पूछ रहे हैं।'

भगवान् शंकरने बताया कि 'ये मनुष्य नहीं हैं। साधुओंकी रक्षा तथा हमारे कल्याणके लिये स्वयं परब्रह्म ही रामके रूपमें अवतरित हुए हैं, छोटे भाई लक्ष्मण शेषावतार हैं।'[१] सतीने अविश्वासका अभिनय किया। वे शंकरजीकी बात माननेको तैयार न हुईं। विवश होकर भगवान् शंकरको कहना पड़ा कि 'तुम जाकर इस बातकी परीक्षा ही क्यों नहीं कर लेती हो।' सतीजी सीताका रूप धारण कर श्रीरामके सामने पहुँचीं। उन्हें देखते ही श्रीरामने 'शिव-शिव' जपते हुए श्रीसतीजीको प्रणाम किया और कहा—'सतीजी! भगवान् शंकर कहाँ हैं? उनके बिना आप अकेली कैसे आयीं? अपना रूप त्याग कर यह नया रूप क्यों धारण कर लिया?' सतीजी लजा गयीं, बोलीं—'रघुनन्दन! आपकी सामान्य मनुष्यों-जैसी क्रियाएँ देखकर मुझे भ्रम उत्पन्न हो गया था,

---

१-रामलक्ष्मणनामानौ भ्रातरौ वीरसम्मतौ। सूर्यवंशोद्भवौ देवि प्राज्ञौ दशरथात्मजौ॥
गौरवर्णो लघुर्बन्धुः शेषांशो लक्ष्मणाभिधः। ज्येष्ठो रामाभिधो विष्णुः पूर्णांशो निरुपद्रवः॥
अवतीर्णः क्षितौ साधुरक्षणाय भवाय नः। (शिवपु० सती० २४। ३८—४०)

अतः मैंने इस रूपसे आपकी परीक्षा ली है।'

श्रीरामकी अनुमति लेकर सतीजी लौट आयीं। उनका मन खिन्न था। इधर भगवान् शंकरने ध्यान लगाकर जान लिया कि सतीने मेरी उपास्या सीताका रूप धारण किया है। इसलिये अब सतीके साथ पत्नीका व्यवहार उचित नहीं। अतः शंकरने अपने मनसे उन्हें त्याग दिया। सतीको कष्ट न हो इसलिये इस रहस्यको उन्हें बताया नहीं। उनसे बाहरी व्यवहार बहुत ही मधुर करते थे। पहलेसे कुछ भी अन्तर नहीं आने दिया।

किंतु भगवतीसे भला यह बात कैसे छिपी रह सकती थी। ध्यानसे जब जान गयीं कि उनके पतिदेवने सीताका रूप धारण करनेके कारण मुझसे पत्नीभावका त्याग कर दिया है तो वे शोक-सागरमें डूब गयीं। इन्हें प्रसन्न करनेके लिये दयालु शंकरने बहुत-सी कथाएँ सुनायीं, पर त्यागकी बातको प्रकट नहीं होने दिया। धीरे-धीरे वे अन्तर्लीन होते गये, जब ध्यान लग जाता तो वर्षोंके बाद टूटता।

इसी बीच दक्ष प्रजापतिने एक विशाल यज्ञका आयोजन किया। उस समय अज्ञानवश दक्ष प्रजापति शंकरसे द्रोह करने लगे और यज्ञमें उनका कोई भाग नहीं रखा। जब सतीने पिताके यज्ञकी बात सुनी तो वे वहाँ जानेके लिये आतुर हो गयीं। भगवान् शंकरकी सहमति न होनेपर भी वे पिताके घर पहुँच गयीं। वहाँ अपने पिताके द्वारा पतिका तिरस्कार देखकर सती सहन न कर सकीं। उन्होंने योगाग्निसे अपने शरीरका उत्सर्ग कर दिया। फिर वे ही पार्वतीके रूपमें हिमाचलके यहाँ मैनासे उत्पन्न हुईं। उन्होंने कठोर तप कर फिर अपने पतिदेवको पतिरूपमें प्राप्त कर लिया।

अज्ञानका वह अभिनय अभी पूरा नहीं हुआ था। अभी रामचरितमानसकी अवतारणा बाकी थी। उन्होंने फिर वे ही प्रश्न पूछे जो सती-जन्ममें किये थे। इसीका परिणाम हुआ कि भगवान् शंकरने उनको समझानेके लिये स्वरचित मानस उन्हें सुनाया, वही मानस आज जनताके बीचमें है। पार्थक्य इतना ही है कि पहले वह देववाणीमें निबद्ध था, आज लोक-भाषामें।

इस तरह अज्ञानका अभिनय कर भगवती सतीने भगवान् शंकरके हृदयमें छिपी हुई अनमोल वस्तु रामचरितमानसको हमारे हाथोंमें दे दिया। (ला० बि० मि०)

ब्रह्माण्डपुराणमें श्रीरामके आविर्भावकी कथा

(श्रीसुरेशचन्द्रजी शर्मा 'कुन्नो' पंडित)

भगवान् श्रीरामके आविर्भाव और अवतार धारण करनेकी भिन्न-भिन्न कथाएँ विभिन्न रामायणों तथा पुराणोंमें भिन्न-भिन्न रूपमें प्राप्त होती हैं। कल्पभेदसे वे सभी कथाएँ सत्य ही रहती हैं। ब्रह्माण्डपुराणके ललितोपाख्यानमें भगवती त्रिपुरसुन्दरी ललितादेवीका विशिष्ट माहात्म्य प्रतिपादित है। वहाँ दशरथजीको भगवती त्रिपुराकी उपासनाद्वारा पुत्र प्राप्त करनेकी कथा है, जो संक्षेपमें इस प्रकार है—

देवीकी करुणा और उनके उपासकोंकी कथा बताते हुए भगवान् श्रीहयग्रीवने महर्षि अगस्त्यजीसे कहा—मुने! अयोध्यानरेश श्रीदशरथजीको जब बहुत समयतक संतान उत्पन्न न हुई तो वे चिन्तित हो व्यथित-भावसे अपने कुलगुरु श्रीवसिष्ठजीके पास गये। श्रीदशरथजीकी व्यथा-कथा सुनकर गुरुदेवने राजाकी हस्तरेखाओंका निरीक्षण किया और कहा—'राजन्! श्रीश्रीजीकी कृपासे आपके हाथमें संतानकी रेखा तो है, परंतु पूर्वजन्मोंके दुष्कर्मोंके फलस्वरूप बाधा आ रही है। आप यहाँ अयोध्यामें प्रतिष्ठित श्रीत्रिपुरसुन्दरीजीकी उपासना करते ही हैं, परंतु मेरा आपसे अनुरोध है कि शीघ्र अभीष्ट-सिद्धिके लिये आप अपनी रानियोंके साथ काञ्चीपुरम्में प्रतिष्ठित श्रीललिताम्बादेवीकी उपासना करें।'

श्रीगुरुदेवकी आज्ञा शिरोधार्य करते हुए श्रीदशरथजी अपनी रानियोंको साथ लेकर काञ्चीपुरम्में आ गये तथा वहाँ सात दिन-रात रहकर प्रतिदिन और प्रतिरात्रि श्रीललिताम्बा-देवीका चौंसठ उपचारोंसे पूजन और विविध स्तोत्रोंसे स्तवन करने लगे। श्रीश्रीजीके चरणोंमें विनीत दशरथजी आर्तस्वरमें बोले—

कांक्षानुरूपवरदे करुणार्द्रचित्ते

साम्राज्यसम्पदभिमानिनि चक्रनाथे।
इन्द्रादिदेवपरिसेवितपादपद्मे
सिंहासनेश्वरि परे मयि संनिदध्याः॥

(ब्रह्मा० पु० ललि० ४०। १२९)

'हे मनोवाञ्छित फल प्रदान करनेवाली करुणामूर्ति, राजाओंके वैभवके दर्पको दलन करनेवाली, इन्द्रादि देवोंसे सदा पूजित चरणोंवाली, सिंहपर विराजमान ललिताम्बादेवि! आप मुझ शरणागतपर कृपा करें और मेरा मनोरथ पूर्ण करके मुझे कृतार्थ करें।'

राजा दशरथकी स्तुति और विह्वलतापर द्रवित होकर श्रीललिताम्बाजीने प्रकट होकर दर्शन दिया और आकाशवाणीसे उन्हें चार पुत्रोंके पिता बननेका वर देकर कृतकृत्य कर दिया।

सुप्रसन्ना च कामाक्षी सान्तरिक्षगिरावदत्।
भविष्यन्ति मदंशास्ते चत्वारस्तनया नृप॥

काञ्चीपुरम्में प्रतिष्ठित श्रीललिताम्बासे अपना मनोरथ प्राप्तकर राजा दशरथ अपनी रानियोंसहित श्रीभगवती ललिताम्बाको प्रणामकर अपनी राजधानी अयोध्याको लौट आये—'**अयोध्यां नगरीं प्रापदिन्दुमत्यास्तु नन्दनः॥**' और गुरुदेव श्रीवसिष्ठजीको प्रणामकर श्रीश्रीजीका आशीर्वाद सुनाया। जिसे सुनकर सभीको महान् हर्ष हुआ।

श्रीश्रीजीकी कृपासे समयानुसार राजा दशरथकी पत्नियोंने तीनों लोकोंको हर्षित करनेवाले श्रीराम, श्रीलक्ष्मण, श्रीभरत तथा श्रीशत्रुघ्न नामवाले चार परमतेजस्वी पुत्रोंको जन्म दिया। इन्हीं पुत्रोंने समयानुसार पापियों एवं राक्षसोंको विनष्ट कर पृथिवीका भार उतार दिया, धर्म-राज्यकी स्थापना की और भक्तों, संतों, महात्माओं तथा चराचर-जगत्को आनन्दित किया। (ललितोपाख्यान, अ० ४०। ८८—१३७)

योगवासिष्ठ रामायण

वाल्मीकीय योगवासिष्ठ एक विशाल ग्रन्थ है। इसे योगवासिष्ठ महारामायण, आर्षरामायण, वासिष्ठरामायण, ज्ञानवासिष्ठ और वासिष्ठ नामसे कहा जाता है। यह ग्रन्थ छः प्रकरणोंमें विभक्त है। वैराग्य-प्रकरण, मुमुक्षु-व्यवहार-प्रकरण, उत्पत्ति-प्रकरण, स्थिति-प्रकरण, उपशम-प्रकरण और निर्वाण-प्रकरण (पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध)।

भगवान् श्रीरामचन्द्र जब तीर्थयात्रा पूर्ण कर चुके और उन्हें शान्ति प्राप्त नहीं हुई, तब उन्होंने कुलगुरु वसिष्ठजीसे मोक्षके साधनके विषयमें जिज्ञासा की। इसपर वसिष्ठजीने कहा—जीवतत्त्व अर्थात् जो प्राणशक्ति है और जिसके विकसित होनेपर मानव मानवताको प्राप्त करता है, पशु-पक्षी आदि भी इस प्राणशक्तिसे सम्पन्न हैं, किंतु जिनमें समीचीन मननशक्ति है वही वस्तुतः मानव है। महर्षि वसिष्ठजीने रामजीको एक पद्यमें योगवासिष्ठका सार बताते हुए कहा है—

तरवोऽपि हि जीवन्ति जीवन्ति मृगपक्षिणः।
स जीवति मनो यस्य मननेनोपजीवति॥

मनुष्यको मृगादि पशु-पक्षियोंसे विभक्तकर उच्च श्रेणीमें समासीन करनेवाली मननशक्ति ही है, जिसके विकसित होनेपर ही प्राणी 'मानव' कहला सकता है। अतः योगवासिष्ठके मतसे मानवतापूर्वक जीवन-यापन करनेवाला ही मानव है। इसी विशिष्ट उपदेशको आत्मसात् करानेके उच्च उद्देश्यसे समग्र योगवासिष्ठ प्रवृत्त हुआ है।

योगवासिष्ठमें पारमार्थिक दृष्टिसे सभी तत्त्वोंको अनन्तानन्त चैतन्य एकरसात्मा-स्वरूपपर प्रतिष्ठित माना गया है। उसीकी सत्यतासे सभी वस्तुओंकी सत्यता सिद्ध होती है।

आत्मतत्त्व या भगवत्तत्त्व—ये दोनों ही व्यापक अद्वय-तत्त्वके बोधक हैं। भगवत्तत्त्वके साक्षात्कारके बिना प्राणी वास्तविक भक्त नहीं हो सकता। इसीलिये कहा गया है कि सभी प्राणियोंमें जिसे भगवत्स्वरूपका पूर्ण दर्शन होता है, और प्राणिमात्रको जो भगवत्स्वरूपमें प्रतिष्ठित पाता है, वही भगवान्‌का परम प्रेमी उत्तम भागवत है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ४५)

इस प्रकार योगवासिष्ठ मुख्यरूपसे तात्त्विक मनन-प्रधान ग्रन्थ है। योगवासिष्ठके अधिकारी विशुद्धान्तःकरण-सम्पन्न

प्राणी हैं। जबतक साधक अन्तःकरणको निर्मल नहीं कर लेता, तबतक वह योगवासिष्ठके अध्ययनका अधिकारी नहीं होता। योगवासिष्ठमें वस्तुतः रामको परात्पर परमात्मा स्वीकार किया गया है और एक विशिष्ट ज्ञानीके रूपमें उनका निरूपण किया गया है। वसिष्ठ भी महातेजस्वी और तत्त्वद्रष्टा महर्षि हैं। वे कहते हैं कि कमललोचन भगवान् रामको मैं भलीभाँति जानता हूँ—

अहं वेद्मि महात्मानं रामं राजीवलोचनम्।

(योगवासिष्ठ १।७।२१)

इतना ही नहीं, उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कहा है कि ब्रह्माण्डमें रामके समान ज्ञानी और उदार व्यक्ति मैंने किसीको नहीं देखा। न तो कोई हुआ है और न कोई होनेवाला है—

न रामेण समोऽस्तीह दृष्टो लोकेषु कश्चन।
विवेकवानुदारात्मा न भावी चेति नो मतिः॥

(योगवासिष्ठ १।३३।४५)

रामके ज्ञानसम्पन्न होनेपर उन्हें नारायणके नामसे अभिहित किया गया है। योगवासिष्ठके अध्ययनसे यह निश्चित होता है कि आत्मज्ञान ही ज्ञान है। इसके अतिरिक्त अन्य ज्ञान मात्र ज्ञानाभास है। प्रवाह-प्राप्त कार्योंमें कामनापूर्वक साधारण जनोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है, किंतु काम और संकल्परहित शुद्ध निर्मल आकाशके समान जो स्थित है, वही पण्डित है।

प्रवाहपतिते कार्ये कामसंकल्पवर्जितः।
तिष्ठत्याकाशहृदयो यः स पण्डित उच्यते॥

(योगवासिष्ठ ६२।२२।५)

योगवासिष्ठमें आर्यकी परिभाषा देते हुए कहा गया है कि कर्तव्यका आचरण करता हुआ और अकर्तव्यका परित्याग करता हुआ जो प्रकृत आचार-विचारमें संलग्न रहता है, वही आर्य पुरुष है—

कर्तव्यमाचरन् काममकर्तव्यमनाचरन्।
तिष्ठति प्राकृताचारो यः स आर्य इति स्मृतः॥

(योगवासिष्ठ ६।१२६।५४)

यह भी कहा गया है कि सदाचारके अनुरूप, शास्त्रके अनुरूप, निर्मल हृदयवाले व्यक्तिके अनुरूप एवं परिस्थितिके अनुकूल जो मानव-व्यवहारसे सम्पन्न है, वही आर्य है—

यथाचारं यथाशास्त्रं यथाचित्तं यथास्थितम्।
व्यवहारमुपादत्ते यः स आर्य इति स्मृतः॥

(योगवासिष्ठ ६।१२६।५५)

योगवासिष्ठमें गुरुके प्रति अतिशय श्रद्धासे ही तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होती है ऐसा कहा गया है। बुद्धिकी निर्मलता ही आत्मारामका साधन है।

इस ग्रन्थमें अद्वयवादका पुनः-पुनः समर्थन किया गया है। सृष्टि न कभी हुई है और न होगी। यह आभासमात्र है। अद्वय ब्रह्म ही एकमात्र ब्रह्मतत्त्व है। वस्तुतः ज्ञानी होना ही मोक्षका परम साधन है। ज्ञानी व्यक्ति कर्मसे विरत नहीं होता, वरन् ज्ञानकी भूमिपर कर्मयोगी होकर मानवताको धारण करता है।

योगवासिष्ठमें सांसारिक वस्तुओंकी निःसारता, क्षण-भङ्गुरता और दुःखरूपताका प्रतिपादन करते हुए सत्पुरुषोंकी शरणागतिको विशेष महत्त्व दिया गया है। राजा पद्म, रानी लीला आदिकी कथाओंके द्वारा संसारकी निःसारता प्रतिपादित करते हुए अनासक्त होनेसे ही सुख-शान्तिकी प्राप्ति सम्भव बतायी गयी है।

ज्ञानप्राप्तिके साधनके रूपमें आत्मचिन्तन, जगत्-चिन्तन, ब्रह्म-भावना आदि आवश्यक हैं। तीनों लोक ब्रह्ममें ही प्रतिष्ठित हैं। ब्रह्म ही जगत्के स्वरूपमें प्रकट होता है। एक ब्रह्म अनेक प्रकारके जगत्स्वरूपमें प्रकट हो रहा है। वह अव्यय होते हुए भी सभी आकारों, शुद्ध और अशुद्ध, शून्य-अशून्यके रूपमें, प्रकाशित-अप्रकाशितके रूपमें, प्रकट-अप्रकट-रूपमें, विकाररहित-विकारवान्के रूपमें संकल्प-नगर दिवा-स्वप्नके समान जगत्में प्रकट होता है—

सत्यं ब्रह्म जगच्चैकं स्थितमेकमनेकवत्।
सर्वं वासर्ववद्भाति शुद्धं चाशुद्धवत् ततम्॥

(योगवासिष्ठ ६।२।३५।६)

विविध प्रकारकी सृष्टियाँ ब्रह्मको वैसे ही स्पर्श नहीं करतीं, जैसे आकाशको मेघमाला आर्द्र नहीं कर सकती। दृश्यमान जगत् न सत् है न असत् है, अपितु मायास्वरूप एक भ्रममात्र है। विषयोंका भोग आपात-मधुर है, वह कभी भी सुखदायी नहीं है। दूरसे देखनेमें वह अच्छा लगता है—

आपातमात्रमधुरमावश्यकपरिक्षयम्।
भोगोपभोगमात्रं मे किं नामेदं सुखावहम्॥

इस ग्रन्थकी शैली सरल और सुबोध है। इसमें

कथाओंका सम्मिश्रण होनेके कारण भावोंको समझनेमें सरलता होती है। योगवासिष्ठमें भगवान् रामके विषयमें कहा गया है कि जो लोग भगवान् रामका दर्शन करेंगे, उनके लीला-चरित्रका स्मरण या श्रवण करेंगे और जो लोग इनके स्वरूप तथा लीला-चरित्रोंका परस्पर बोध करायेंगे, उन सम्पूर्ण अवस्थाओंमें स्थित पुरुषोंको भगवान् राम जीवन्मुक्ति प्रदान करेंगे—

यैर्दृष्टो यैः स्मृतो वापि यैः श्रुतो बोधितस्तु यैः ।
सर्वावस्थागतानां तु जीवन्मुक्तिं प्रदास्यति ॥

(मो० वा० निर्वाण, पूर्वार्ध १२८।७४) (म० प्र० गो०)

गीताके राम

'रामः शस्त्रभृतामहम्'—शस्त्रधारियोंमें मैं राम हूँ—श्रीकृष्ण।

अर्जुन श्रीकृष्णके परम सखा थे। अर्जुन महाभारत-युद्धके पहले स्वजनोंके मरने-मारने और सामाजिक व्यवस्था बिगड़नेकी समस्याके चक्करमें थे। उन्हें सांसारिक मोहने—व्यामोहने आ घेरा था। उनके सामने अँधेरा था। उनकी सूझ-समझ निष्क्रिय थी, कुण्ठित थी। वे सचमुच **'धर्म-सम्मूढचेताः'** बन गये थे, व्यामोहित हो चुके थे। वे धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य नहीं समझ पा रहे थे। क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये—यह उनकी बुद्धि-सीमाके परे हो चुका था। बेचारे बड़े असमंजसमें थे। वे कायरताके कारण अपने-आपको खो चुके थे, पर चाहते थे 'श्रेय' (कल्याण)। उन्होंने श्रीकृष्णकी शरण ली—उन श्रीकृष्णकी जिनकी विभूतिरूपमें श्रीराम और श्रीवासुदेव जाने-माने जा सकते हैं; पर तत्त्वतः परात्पर परमात्मा पुरुषोत्तम हैं—**(उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः)**। आचार्य मधुसूदन सरस्वती तो उनसे परे कोई और तत्त्व ही नहीं स्वीकार करते—**'कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने।'** श्रीकृष्णने मोहमूर्छित अर्जुनको गीताका अमृत पिलाया। उन्हें चेतना मिल गयी। उनका मोह—व्यामोह मिट गया, अँधेरा दूर हो गया। श्रीकृष्ण-ज्योतिके समझ लेनेपर वे बोल पड़े—**'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत'**—'हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह दूर हो गया, अपनी वास्तविक स्मृति हो आयी, स्वरूपकी झलक मिल गयी।' अब वे कर्तव्य-कर्मके लिये 'किंकर्तव्य-विमूढ' नहीं थे, चेत चुके थे। गीताके प्रकरणने जादूका काम किया। अब वे **'करिष्ये वचनं तव'** पर दृढ़ हो गये थे। गीताकी यथा-कथा यही है।

परंतु, गीता विश्वकी 'क्यों' और 'कैसे' की पहेलियोंका समाधान है। यह विश्वके मूलभूत संवाद-प्रश्नोंकी सुदृढ़, स्पष्ट उत्तरावली है।

गीताके प्रत्येक अध्यायमें धर्मके एकतत्त्वकी मीमांसा है, विवेचना है। गीताका प्रत्येक अध्याय तो क्या प्रत्येक वाक्य उपनिषद्-वाक्य है, वेदवाणी है। गीताका दसवाँ अध्याय 'विभूतियोग' है। इसमें विश्वके पदार्थोंमें निहित (छिपी) भगवान्‌की कतिपय उपलक्षक (अपने समान औरोंको भी लखानेवाली) विभूतियोंका परिचय कराया गया है। साथ ही पूर्ण परब्रह्मके रूप श्रीकृष्णभगवान्‌ने यावद्विभूतिमान् पदार्थोंको अपना अंश बतलाया है **'मम तेजोंऽशसम्भवम्'**। गीतामें **'अविभक्तं विभक्तेषु'** के आत्मारामकी चर्चा (तत्त्वतः सर्वत्र) है। श्रीमद्भागवतमें भी 'आत्माराम' के दर्शन होते हैं। श्रीरामकी व्यापकता दार्शनिक है—आध्यात्मिक है। 'राम' घट-घट-व्यापक और ***'सोइ सच्चिदानंद घन रामा'*** है, किंतु गीताने उनके नयनाभिराम रामवाले उस स्वरूपको विभूतियोग-में समेटा है जो **'धनुर्वेदे च निष्ठितः'** से प्रतिष्ठित है और इसलिये शस्त्रधारी हैं कि सारे संसारका संरक्षण करना—मर्यादाका परिपालन करना उन्हीं रामके पल्ले था, इसीलिये उनका अवतार भी हुआ था—

बिप्र धेनु सुर संत हित लीन्ह मनुज अवतार।

भारतीय मान्यतामें श्रीकृष्ण लीला-विग्रहके लिये और श्रीराम मर्यादा-संरक्षणके लिये चर्चित और अर्चित हैं। एक लोक-रञ्जक हैं, दूसरे लोक-रक्षक। गीतामें एकको **'वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि'** से कहा गया है और दूसरेको **'रामः शस्त्रभृतामहम्'** से स्मरण किया गया है। दोनोंके दो रूप हैं, पर स्वरूप **'अहमस्मि'** एक है। दोनों परमात्मस्वरूप हैं।

श्रीकृष्णने अलौकिक लीलाओंसे लोकरञ्जन कर लोकमङ्गल किया और श्रीरामने लोकमर्यादाके रक्षणसे विश्वका कल्याण साधा। यदि एककी लीला श्रवणीय है तो दूसरेका चरित्र स्पृहणीय है। हम दोनोंके नाम लेते हैं। दोनोंके नाम-रूप परम मङ्गलदायक हैं। भक्त भाव-विभोर होकर गाते हैं—*'जगमें सुंदर हैं दो नाम चाहे कृष्ण कहो या राम।'* बात ठीक है, सटीक है। श्रीराम और कृष्णके दो रूप हैं, पर स्वरूप एक ही है। दोनों अव्यक्त परमात्माके व्यक्त रूप हैं।

श्रीराम एक ओर आत्माराम और दूसरी ओर शील-शक्ति और सौन्दर्यके निधान हैं। शीलका उत्कर्ष, शक्तिकी सामर्थ्य और सौन्दर्यका अप्रतिम प्रभाव कहीं भी रामचरित-काव्योंके श्रीराममें भलीभाँति देखा जा सकता है। वस्तुतः यह उक्ति सटीक है कि—

'सकल लोक अभिराम राम हैं, है न राम-सा कोई।'

(वैदेही-वनवास)

किंतु शस्त्रिता उनकी अपनी विशेषता है, जो अनुपम है—सर्वथा अद्वितीय है। महर्षि विश्वामित्र, ब्रह्मर्षि वसिष्ठ और महामुनि अगस्त्यजीने जिन दिव्य अस्त्र-शस्त्रोंको देकर रामकी शस्त्रधारिताको अपूर्व बनाया था, उनकी लंबी सूची महर्षि वाल्मीकिने रामायणमें यथास्थान अनुस्यूत की है। बला एवं अतिबला विद्याएँ अस्त्र-शस्त्रसे सम्बद्ध थीं, जिन्हें उनके गुरुदेवने उन्हें दिया था। वस्तुतः वे शस्त्रास्त्र भगवान्‌की शक्तिके अप्रतिम प्रभाव थे और यह इसलिये कि वे अमोघास्त्र थे—*'जिमि अमोघ रघुपति कर बाना।'* से उनका अस्त्र-शस्त्र-कौशल ही नहीं, साफल्य भी सूचित है।

महर्षि वाल्मीकिने उन्हें **'सत्यः सत्यपराक्रमः'** और **'द्विशरं नाभिसंधत्ते'**कहकर उनके अतुलनीय पराक्रम और अमोघशस्त्रिताका उल्लेख किया है। वास्तवमें 'श्रीराम धनुर्वेदविदोंमें सर्वश्रेष्ठ थे और महारथियोंमें भी उन्हें सर्वश्रेष्ठ स्थान प्राप्त था। वे आक्रमण और भक्तरक्षण करनेमें अत्यन्त कुशल तथा सैन्यसंचालनमें अत्यन्त निपुण थे। युद्धमें क्रुद्ध देव-दानव उन्हें पराजित नहीं कर सकते थे। (फिर भी) वे न तो दूसरोंके गुणोंमें दोषदृष्टि रखते थे और न अनुपयुक्त स्थलपर क्रुद्ध ही होते थे। गर्व और परोत्कर्षकी असहिष्णुता उनमें छूतक नहीं गयी थी।' (वा० रा० २१। २९-३०) वे 'वज्रादपि कठोर' थे और 'कुसुमादपि मृदु।' उनकी अनुपम शक्ति शील और सौन्दर्यसे सम्पुटित थी। शील, शक्ति और सौन्दर्यकी त्रिपुटीका सुन्दर समन्वय श्रीराममें था। शीलसे मर्यादापालन, शक्तिसे संसारका संरक्षण और सौन्दर्यसे लोकरञ्जन हुआ। सर्वशास्त्रमयी गीताने उनमेंसे शक्तिविभूतिके रूपमें श्रीरामका विशेष निर्देश किया—

'रामः शस्त्रभृतामहम्।'

कृत्तिवासरामायण

गोस्वामी तुलसीदासजीके आविर्भावसे प्रायः एक सौ वर्ष पूर्व वंगदेशमें कृत्तिवास नामक एक मनीषी कवि आविर्भूत हुए, जिन्होंने सारे पूर्व भारतमें श्रीरामकी मनोरम लीलाओंका प्रचार किया था। कृत्तिवासका जन्मकाल १४३३ ई० माना जाता है। ये यशस्वी विद्वान् थे। इनके आश्रयदाता गौड़ेश्वरकी प्रार्थनापर इन्होंने भक्तिमयी रामकथाका प्रणयन किया जो 'कृत्तिवासरामायण'के नामसे विख्यात हुई। ये प्रसिद्ध विद्वान् श्रीहर्षके वंशज माने जाते हैं—इन्होंने अपने विषयमें स्वयं ही लिखा है—

आदित्यवार श्रीपञ्चमी पूर्णमाघमास।
ताखि मध्ये जन्म लइलाम कृत्तिवास॥

महाकवि कृत्तिवासने मुख्यतः वाल्मीकीय रामायण, जैमिनीयाश्वमेध, अद्भुतरामायण और अध्यात्मरामायणका अवलम्बनकर अपने रामायणकी रचना की थी। इसके सिवा पुराण, उपपुराण, दन्तकथा और जनश्रुतिसे भी उपादान संग्रह किया था। किष्किन्धाकाण्डमें कविने लिखा है—

वाल्मीकि वन्दिया कृत्तिवास विचक्षण।
शुभक्षणे विरचिल भाषा रामायण॥

अन्यत्र भी उल्लेख है—

ए सब गाइल गीत जैमिनि भारते।
विस्तारित लिखित अद्भुत रामायणे॥
एक रामायण शत सहस्र प्रकार।

के जाने प्रभुर लीला कत अवतार ॥

इतना स्वयंद्वारा कथित होनेपर भी इन्होंने आदर्शरूपमें वाल्मीकिरामायणको ही ग्रहण किया है। कृत्तिवासरामायण सात काण्डोंमें विभक्त है। इसकी भाषा सुबोध और सरल है। यह 'पयार' छन्दोंमें पाञ्चाली गानके रूपमें उपनिबद्ध है। पूर्ण-ब्रह्म श्रीरामचन्द्र ही कवि कृत्तिवासके उपास्य देव थे। वे दसों दिशाओंको राममय देखते थे। कविने रामायणमें लिखा है—

श्रीराम स्मरिया जेवा महारण्ये जाय।
धनुर्बाण लये राम पश्चाते बेड़ाय ॥

अर्थात् श्रीरामका स्मरण करके यदि वीरान जंगलमें भी कोई चला जाय तो भगवान् राम धनुष-बाण लेकर उसकी रक्षाके लिये पीछे-पीछे जायँगे।

श्रीराम सर्वत्र हैं। विपद्-आपद्-सर्व-अवस्थामें श्रीराम सहायक हैं। अतएव प्रभुका भक्त निर्भय और निश्चिन्त होता है। आत्मसमर्पणयोगमें कविने गाया है—

आपनि से भाङ्ग प्रभु आपनि से गड़।
सर्प हइया दंश तुमि ओझा हइया झाड़ ॥

(किष्किन्धाकाण्ड)

'प्रभो! स्वयं ही आप बिगाड़ते हैं और स्वयं ही बनाते हैं, सर्प होकर आप डँसते हैं और ओझाका रूप धारणकर आप उसका विष झाड़ते हैं।'

अनन्य रामभक्त कृत्तिवासके उपास्य देव राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—ये चारों नारायणके अंशसे आविर्भूत हैं। आदिकाण्डके प्रारम्भमें श्रीराम-पञ्चायतनका वर्णन किया गया है और बतलाया गया है कि गोलोकमें लक्ष्मीके साथ विराजमान नारायणकी अपने अखण्ड स्वरूपको चार अंशोंमें व्यक्त करनेकी इच्छा हुई। सीतादेवी नारायणके बायें भागमें विराजमान हैं तथा लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न—ये छत्र, चामर डुला रहे हैं और पवननन्दन हाथ जोड़े स्तवन कर रहे हैं। वैकुण्ठमें विराजमान इस मूर्तिका भक्तराज देवर्षि नारदने दर्शन किया। दर्शन करके नारदजी बहुत आनन्दित हुए। तदनन्तर वहाँसे वापस आनेपर देवर्षि नारदने गोलोककी कथा ब्रह्माजीको सुनायी। तत्पश्चात् दोनों कैलास गये। उन्हें देखकर शिवजीने पूछा—आज आपलोग बहुत आनन्दमग्न दिखलायी दे रहे हैं, क्या बात है? इसपर देवर्षि नारदने बताया—हे भोलेनाथ! आज गोलोकमें मैंने नारायणको चार रूपोंमें देखा है। इसपर शिवजी बोले—देवर्षे! शीघ्र ही रावणके वधके लिये पृथिवीपर इन चार रूपोंका प्रकाश होनेवाला है—

गोलोक वैकुण्ठपुरी सवार उपर।
लक्ष्मी सह तथाय आछेन गदा धर ॥

× × ×

श्रीराम भरत आर शत्रुघ्न लक्ष्मण।
एक अंशे चारि अंश हैला नारायण ॥

अनन्तर ब्रह्माजीद्वारा रत्नाकरको मरा-मरा उपदेश देनेसे ब्रह्मर्षि वाल्मीकि होनेकी कथा वर्णित है और फिर सूर्यवंश एवं चन्द्रवंशका वर्णन है। इसमें राजा रघुकी दानकीर्तिका विस्तारसे वर्णन है। अजके पुत्रके रूपमें दशरथका जन्म होता है और दशरथके पुत्रेष्टि-यज्ञके फलस्वरूप श्रीराम आदि चारों पुत्रोंका प्राकट्य हुआ। और फिर धनुर्भङ्ग आदिकी कथाएँ प्रायः वाल्मीकिके अनुसार ही हैं।

कविवर कृत्तिवासने रामभक्तिका अपूर्व वर्णन किया है। कृत्तिवासमें राम-नामको ही जीवका एकमात्र अवलम्बन बतलाया है। एक स्थलपर कविका कहना है—

राम राम बल भाई! सबे बार-बार।
भेबे देख राम बिना गति नाई आर ॥

(किष्किन्धाकाण्ड)

भाई! मुखसे बार-बार राम-नामका उच्चारण करो। सोचकर देखो, राम-नामके बिना और गति नहीं है।

यहाँ राम-नामकी महिमामें बतलानेवाले दो-एक आख्यान दिये जा रहे हैं—

रामदर्शनकी महिमा

एक बार महाराज दशरथ राम आदिके साथ गङ्गा-स्नानके लिये जा रहे थे। मार्गमें देवर्षि नारदजीसे उनकी भेंट हो गयी। महाराज दशरथ आदि सभीने देवर्षिको प्रणाम किया। तदनन्तर नारदजीने उनसे कहा—'महाराज! अपने पुत्रों तथा सेना आदिके साथ आप कहाँ जा रहे हैं?' इसपर बड़े ही विनम्रभावसे राजा दशरथने बताया—'भगवन्! हम सभी गङ्गा-स्नानकी अभिलाषासे जा रहे हैं।' इसपर मुनिने उनसे कहा—'महाराज! निस्संदेह आप बड़े अज्ञानी प्रतीत होते हैं, क्योंकि पतितपावनी भगवती गङ्गा जिनके चरणकमलोंसे प्रकट

हुई हैं, वे ही नारायण राम आपके पुत्ररूपमें अवतरित होकर आपके साथमें रह रहे हैं, उनके चरणोंकी सेवा और उनका दर्शन ही दान, पुण्य और गङ्गा-स्नान है, फिर हे राजन्! आप उनकी सेवा न करके अन्यत्र कहाँ जा रहे हैं। पुत्र-भावसे अपने भगवान्‌का ही दर्शन करें। श्रीरामके मुखकमलके दर्शनके बाद कौन कर्म करना शेष बच जाता है?

पतितपावनी गङ्गा अवनीमण्डले।
सेइ गङ्गा जन्मिलेन यार पदतले॥
सेइ दान सेइ पुण्य सेइ गङ्गास्नान।
पुत्रभावे देख तुमि प्रभु भगवान्॥

(बालकाण्ड)

तीन बार 'राम'-नाम लेनेका परामर्श देनेपर वामदेवको शाप-प्राप्ति

नारदजीके कहनेपर महाराज दशरथने वापस घर लौटनेका निश्चय किया। किंतु भगवान् श्रीरामने गङ्गाजीकी महिमाका प्रतिपादन करके गङ्गा-स्नानके लिये ही पिताजीको सलाह दी। तदनुसार महाराज दशरथ पुनः गङ्गा-स्नानके लिये आगे बढ़े। मार्गमें तीन करोड़ सैनिकोंके द्वारा गुहराजने उनका मार्ग रोक लिया। गुहराजने कहा—'मेरे मार्गको छोड़कर यात्रा करें। यदि इसी मार्गसे यात्रा करना हो तो आप अपने पुत्रका मुझे दर्शन करायें।' इसपर दशरथकी सेनाका गुहकी सेनाके साथ घनघोर युद्ध प्रारम्भ हो गया। गुह बंदी बना लिये गये। कौतुकी भगवान् राम ज्यों ही युद्ध देखनेकी इच्छासे गुहराजके सामने पड़े, गुहने दण्डवत् प्रणामकर हाथ जोड़ निवेदन किया—'प्रभो! मेरे पूर्वजन्मकी कथा आप सुनें—मैं पूर्व-जन्ममें महर्षि वसिष्ठका पुत्र वामदेव था। एक बार राजा दशरथ अन्धक मुनिके पुत्रकी हत्याका प्रायश्चित्त पूछने हमारे आश्रममें पिता वसिष्ठके पास आये; पर उस समय मेरे पिताजी आश्रममें नहीं थे। तब महाराज दशरथने बड़े ही कातर-स्वरमें हत्याका प्रायश्चित्त बतानेके लिये मुझसे प्रार्थना की। उस समय मैंने राम-नामके प्रतापको समझते हुए तीन बार 'राम-राम-राम' इस प्रकार जपनेसे हत्याका प्रायश्चित्त हो जायगा'—ऐसा परामर्श राजाको बतलाया था। तब प्रसन्न होकर राजा वापस चले गये। पिताजीके आनेपर मैंने सारी घटना उन्हें बतला दी। मैंने सोचा था कि आज पिताजी बड़े प्रसन्न होंगे, किंतु परिणाम बिलकुल ही उलटा हुआ। पिताजी क्रुद्ध होते हुए बोले—'वत्स! तुमने यह क्या किया, लगता है तुम 'राम'-नामकी महिमाको ठीकसे जानते नहीं हो, यदि जानते होते तो ऐसा नहीं कहते, क्योंकि जिस 'राम' इस नामका केवल एक बार नाम लेनेमात्रसे करोड़ों पातक-उपपातकों तथा ब्रह्महत्यादि महापातकोंसे भी मुक्ति हो जाती है फिर तीन बार 'राम-नाम' जपनेका तुमने राजाको उपदेश क्यों दिया? जाओ, तुम नीच योनिमें जन्म ग्रहण करोगे। और जब राजा दशरथके घरमें साक्षात् नारायण 'राम' अवतीर्ण होंगे तब उनके दर्शनसे तुम्हारी मुक्ति होगी।

प्रभो! आज मैं करुणासागर पतितपावन आपका दर्शन पाकर कृतार्थ हुआ।' इतना कहकर गुहराज प्रेम-विह्वल हो रोने लगा। तब दयासागर श्रीरामने उसे बन्धनमुक्त किया और अग्निको साक्षीकर उससे मैत्री कर ली।

हनुमान्‌जीकी नाम-निष्ठा

श्रीरामके राज्याभिषेकके बाद भगवान् श्रीरामने बहुमूल्य मणियोंकी माला महारानी सीताजीको देते हुए कहा—तुम्हें जो विशेष प्रिय लगे तथा जो महान् रामभक्त हो उसे यह माला दे दो। सारा दरबार लगा था। सभी भाई, वानरादि तथा ऋषि-महर्षि यथास्थान विराजमान थे। भगवती सीताजीने एक क्षणके लिये माला हाथमें लेकर विचार किया और फिर उसे बड़े ही स्नेहसे हनुमान्‌जीको प्रदान कर दिया। माताकी भेंट हनुमान्‌जी स्वीकार कैसे न करते। उन्होंने माला हाथमें लेकर उसे ध्यानसे देखा। वह माला बहुमूल्य मणियोंसे जटित थी। हनुमान्‌जी मालाके दानोंमें कुछ खोज रहे थे। फिर अचानक माला उन्होंने तोड़ डाली। सभी लोग हनुमान्‌जीको बड़ा मूर्ख समझने लगे। उन्होंने ऐसे व्यवहारके लिये जब उनसे पूछा गया तो वे बोले—'आपलोग मणियोंके मूल्यको देख रहे हैं, किंतु मैं इनमें राम-नामको खोज रहा हूँ। चूँकि इन मणियोंमें राम-नाम नहीं है, अतः मेरी दृष्टिमें इस मालाका कोई मूल्य नहीं है।' इसपर सभासे आवाज आयी—'क्या तुम्हारे शरीरमें राम-नाम अङ्कित है?' इतना सुनना ही था कि हनुमान्‌जीने नखोंसे अपना वक्षःस्थल चीरकर दिखला दिया, उनके शरीरमें सर्वत्र राम-नाम ही अङ्कित था।

(कृत्तिवास ६। १२८)

सीताजीद्वारा पिण्डदान

अयोध्याकाण्डमें यह कथा आयी है कि महाराज दशरथकी मृत्यु हो जानेपर श्रीराम लक्ष्मण तथा सीताके साथ गया-तीर्थमें पिण्डदान तथा श्राद्ध करनेके लिये गये। श्राद्धकी सामग्री जुटानेके लिये श्रीराम और लक्ष्मण एक माणिक्यकी अँगूठी बेचने बाजारमें चले गये। उस समय अकेली सीताजी फल्गु नदीकी बालूसे क्रीड़ा करने लगीं। उसी समय महाराज दशरथ वहाँ साक्षात् उपस्थित हो गये। महाराजने कहा—'सीते! मैं भूखकी ज्वालासे पीड़ित हो रहा हूँ। तुम मेरी पुत्रवधू हो और मैं तुम्हारा ससुर हूँ। पिण्ड अर्पणकर मेरी क्षुधा शान्त करो।' इसपर सीताने कहा—'महाराज! श्रीरामकी अनुपस्थितिमें किस वस्तुसे मैं आपको पिण्डदान करूँ।' महाराजने बालूका पिण्ड देनेका आदेश दिया और कहा—'रामके समान तुम भी पिण्डदानकी अधिकारिणी हो। किसी प्रकारका संशय न रखकर इस फल्गु नदी, तुलसी आदि किसीको भी साक्षी बनाकर पिण्डदान करो।'

अनन्तर सीताने प्रभुकी प्रिय तुलसी, फल्गु नदी, वटवृक्ष और ब्राह्मणको साक्षी बनाकर पिण्डदान देकर महाराजको संतुष्ट किया। थोड़ी देर बाद श्रीराम और लक्ष्मण श्राद्ध-सामग्री लेकर वहाँ आ पहुँचे। सीताने भगवान्‌से सारा वृत्तान्त निवेदन किया और बताया कि महाराज बालूका पिण्ड ग्रहणकर अक्षय तृप्तिको प्राप्त करके स्वर्गलोक चले गये हैं। इसपर रामने ब्राह्मणसे पूछा—क्या यह बात सत्य है? किंतु ब्राह्मणने मिथ्या साक्ष्य दिया। इसी प्रकार तुलसी तथा फल्गु नदीने भी झूठ कहा। यह सुनकर सीता बहुत दुःखी हो गयीं और उन्होंने तीनोंको शाप दे दिया। अन्तमें वटवृक्षसे पूछा गया तो उसने सभी बातें सत्य-सत्य निवेदित कर दीं। प्रसन्न होकर सीता-रामने वटवृक्षको दीर्घायु होनेका वर प्रदान किया।

अगस्त्यजीद्वारा लक्ष्मणकी वीरताका वर्णन

कृत्तिवासरामायणमें यह प्रसंग आया है कि एक बार अगस्त्यजीने रामजीसे पूछा—प्रभो! आपने इस युद्धमें किस प्रकार विजय पायी? लंकामें सबसे अधिक वीर इन्द्रजित् है उसे लक्ष्मणने कैसे मारा? इसपर श्रीरामने कहा—'भगवन्! लंकामें कुम्भकर्ण, रावण आदि इन्द्रजित्से भी पराक्रमशाली महान् राक्षस वीर थे फिर आप केवल इन्द्रजित्को ही कैसे शक्तिमान् बतला रहे हैं और लक्ष्मणकी शक्तिकी प्रशंसा कर रहे हैं।' इसपर मुनिने रामको स्मरण दिलाया कि वे लक्ष्मण ही एकमात्र ऐसे पुरुष हैं जिन्होंने चौदह वर्षतकके वनवास-कालमें न तो यथोचित भोजन किया न सोये ही और न स्त्रीका मुख ही देखा। इस शक्तिसंचयन एवं महान् साधनाके बलपर ही वे इन्द्रजित्का वध कर पाये। इनके अतिरिक्त आपके पक्षमें और कोई ऐसा वीर योद्धा नहीं था जो इन्द्रजित्को पराजित कर सकता। न कोई इतना संयतेन्द्रिय था और न कोई इन्द्रजित्के वधकी सामर्थ्य रखता था। लक्ष्मणने परनारी तो क्या भगवती सीताके चरणोंके अतिरिक्त और कोई अङ्ग देखातक नहीं था। शपथपूर्वक पूछे जानेपर लक्ष्मणने भी बतलाया था कि मैं सीता माताके हार आदिको नहीं पहचानता केवल नूपुरोंको पहचानता हूँ, वह भी इसी कारण कि जब मैं नित्य उनके चरणोंकी वन्दना करता हूँ तो उस समय चरणमें विराजमान नूपुरोंके भी दर्शन हो जाते हैं।

इस प्रकारके अनेक रोचक एवं नवीन आख्यानोंसे कृत्तिवासरामायण भरा पड़ा है। अरण्यकाण्ड तथा किष्किन्धा-काण्डका वर्णन प्रायः वाल्मीकिरामायणके ही समान है। उत्तरकाण्डमें लक्ष्मणके ब्रह्मचर्य, बल, वीर्य एवं पराक्रमकी अनूठी कथाएँ आयी हैं। किष्किन्धाकाण्डमें राम और सुग्रीव-की मित्रताके प्रसंगमें कविवरने राम-नाम-जपका विशिष्ट महत्त्व प्रतिपादित किया है। वहाँ कहा गया है—

राम-नाम लेनेवाले व्यक्तिका पुनः यमलोकमें गमन नहीं होता। राम-नाम पापका दमन करनेवाला है, पुण्यको उत्पन्न करनेवाला है। राम-नाम जपनेसे नारायण संतुष्ट हो जाते हैं। जो व्यक्ति मृत्युके समय राम-नाम लेता है, वह विमानपर चढ़कर देवलोककी यात्रा करता है। राम-नामकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है; क्योंकि गौतमपत्नी अहल्या राम-नामके महत्त्वका स्वयं प्रमाण है। वाल्मीकि राम-नामके प्रतापसे ही लुटेरे रत्नाकरसे महर्षि वाल्मीकि बन गये और उन्होंने रामायण-जैसे महनीय ग्रन्थका प्रणयन किया। राम-नामसे ही समुद्रमें शिला तैरने लगी थी। श्रीराम अनाथोंके नाथ हैं। अतः उनकी शरण ग्रहण करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

(म० प्र० गो०)

रंगनाथरामायण और राम-कथा

(डॉ० श्री एच० एस० गुगालिया)

द्राविड-भाषा-परिवारकी समृद्ध और लालित्यपूर्ण भाषा तेलुगुमें श्रीराम-कथा एक प्रतिनिधि साहित्य है, जिसमें छोटी-बड़ी लगभग तीन-चार सौ रचनाएँ हैं। तेलुगु भाषामें राम-कथा-साहित्यकी रचना तेरहवीं सदीमें आरम्भ हुई और तबसे उसमें उत्तरोत्तर अभिवृद्धि होती रही है। आज भी तेलुगु-साहित्यमें राम-कथा एक अत्यन्त आकर्षणका विषय है। तेलुगु भाषा-साहित्यका इतिहास ई० सन् १०५० के लगभग आरम्भ होता है। इस भाषाके सभी शब्द स्वरान्त और उकारान्त होनेके कारण यह भाषा विशेष रूपसे संगीतमय है। रंगनाथ-रामायण तेलुगु भाषाका एक अत्यन्त लोकप्रिय महाकाव्य है, जिसे सन् १३८० ई०के आसपास श्रीगोनबुद्धराजने देशज छन्दोंमें लिखा। तेलुगु-साहित्यमें श्रीराम-कथाका यह सबसे प्राचीन काव्य है। लेखकने रामके लोकरञ्जनकारी एवं अलौकिक शक्ति-सम्पन्न रूपको इस रामायणमें उजागर किया है। गोनबुद्धराजके श्रीराम इष्टदेव, अवतारी एवं मर्यादा-पुरुषोत्तमके रूपमें पृथिवीपर अवतरित हुए।

गोनबुद्धराजका संस्कृत एवं तेलुगु भाषापर असामान्य अधिकार था, इस कारण इस रामायणमें उक्ति-वैचित्र्य, अर्थगाम्भीर्यके साथ-साथ भाषाका विलक्षण माधुर्य भरा पड़ा है। मुहावरोंका सम्यक् प्रयोग, अनुप्रासोंकी अनुपम छटा, ओज, माधुर्य एवं प्रसाद गुणोंका अपूर्व मिश्रण इस काव्यकृतिमें हुआ है। लेखकने पाण्डित्यके साथ-साथ लालित्य गुण एवं चातुर्यके साथ-साथ सहजता, रामभक्तिके साथ-साथ वैदिक धर्मकी प्रतिष्ठा बढ़ाना अपना लक्ष्य बनाया था और उसमें कविको पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

इस रामायणमें जहाँ रामको भगवत्स्वरूप, सर्वगुणसम्पन्न एवं धीरोदात्त वीरके रूपमें प्रस्तुत किया गया है, वहीं रावणको परम शिवभक्त, उदार, साहसी, बहादुर, राजनीतिज्ञ एवं स्वाभिमानीके रूपमें अभिलिखित किया गया है। महाकवि गोनबुद्धराजने जहाँ रावणके कुकृत्योंकी भर्त्सना एवं निन्दा की है, वहीं उसके गुणोंका भी मुक्त-कण्ठसे गान किया है। इस रामायणमें रावणके अन्तर्मनमें छिपी भावनाका वर्णन आया है कि यदि उसकी मृत्यु विष्णुरूप रामके द्वारा होगी तो उसे सहज ही मोक्ष-प्राप्ति हो जायगी। इसी कारण वह अपनी वीरताको कलंकित न करते हुए रामको ललकारता है। मन्दोदरी जब रावणको युद्ध न करनेकी सलाह देती है तो वह यही कहता है कि 'रामके बाणोंसे मारे जानेपर उसकी मोक्ष-प्राप्तिकी चिर अभिलाषा पूर्ण हो जायगी। अतः मैं युद्ध अवश्य करूँगा। कविका कहना है—

ये नेल्लभंगुल निंक राघबुल बोनीक चंपुदुः भूमिज नीय
वारूठं बलुडनै, यदु गाक येनु श्रीरामु शरमुलचे जत्तुनेमि
नाकवासुलु मेच्च न कोरुचुन्न वैकुंठ मेदुरागवच्चु निच्चरिटकि
ललन नीवेटिक ? लंक येमिटिकि ? दलकोत्तु मुक्ति सत्पथमु गैकोंदु।

रंगनाथरामायणमें मूलतः श्रीमद्वाल्मीकीय रामायणको ही आधार माना गया है, किंतु लेखकने अपनी कल्पना-शक्तिके साथ-साथ प्रचलित लोककथाओं और अन्य रामकथाओंका भी अनेक स्थलोंपर सुन्दर समावेश किया है। कुछ प्रकरण तो वाल्मीकीय रामायणसे सर्वथा भिन्न है, किंतु काव्यकला, सर्जनात्मक शक्ति एवं रोचकताकी दृष्टिसे इनका विशेष महत्त्व है। यथा—जम्बुमाली तथा कालनेमिका वृत्तान्त, रावणके समक्ष अंगदका मन्दोदरीको लाना, विभीषणका आग्नेयास्त्र-प्रयोग करनेकी सलाह देना, रावणके तिरस्कार करनेपर विभीषणका अपनी माता कैकसीके पास जाना और कैकसीका उसे हितोपदेश देना, रावणद्वारा रामचन्द्रजीकी धनुर्विद्याकी प्रशंसा, मन्दोदरीद्वारा रामके पराक्रमका वर्णन तथा वानरोंद्वारा रावणका यज्ञविध्वंस आदि।

यहाँ इन्हींमेंसे कुछेक प्रसंग संक्षेपमें दिये जा रहे हैं—

(१) विभीषणका अपनी माता कैकसीके पास जाकर रावणके दुर्व्यवहारकी शिकायत करना (युद्ध-काण्ड)—रावणकी सभामें विभीषणने अपने अग्रज रावणको बहुत समझाया कि अवतार-पुरुष रामसे वैर मोल न ले। शत्रुकी प्रशंसा करनेवाले अपने भाईके परामर्शने रावणको पागल बना दिया और उसने पदाघातकर विभीषणको सभामें ही गिरा दिया। भ्राताके दुर्व्यवहारसे दुःखी विभीषण अपनी

मातासे मिलने अन्तःपुरकी ओर गया और वहाँ पहुँचकर उसने माँको प्रणाम किया। अपने पुत्रको दुःखी देखकर माँने उसके कष्टका कारण पूछा तो विभीषणने सभामें अग्रजद्वारा किये गये दुर्व्यवहारकी घटनाको कह सुनाया और कहा कि माँ! अब मैं अपमानित होकर नहीं रहना चाहता, मेरे लिये तो यही अच्छा है कि मैं श्रीरामकी शरण ग्रहण करूँ! पुत्रकी बात सुनकर माँ कैकसीने विभीषणसे कहा कि 'पुत्र! मैं पहलेसे ही यह जानती थी कि भगवान् विष्णु सूर्यवंशमें जन्म लेकर मेरे पुत्र रावण और कुम्भकर्णका नाश करेंगे; क्योंकि इस बातको रावणके पिताने मुझे बता दी थी और उन्होंने यह भी बताया था कि उसके कुलका उद्धारक कनिष्ठ पुत्र होगा।' इसलिये माँने विभीषणको आशीष दिया और रामकी शरणमें जाकर कुलका उद्धार करनेका आदेश दिया। विभीषण माँको प्रणाम कर रामकी शरणमें चला गया।

(२) गिलहरीद्वारा रामकी सहायता (युद्ध-काण्ड)—रामका सेतु-निर्माणका कार्य जोरोंसे चल रहा था। वानर बड़ी-बड़ी चट्टानों और बड़े-बड़े वृक्षोंको लाकर नलके हाथमें दे रहे थे। नलका हाथ लगते ही पत्थर समुद्रपर तैरने लगते थे और पुलका निर्माण शीघ्रतासे आगे बढ़ता जा रहा था। राम एवं लक्ष्मण पुलके पास खड़े निर्माण-कार्यका निरीक्षण कर रहे थे। एक गिलहरीने यह देखकर सोचा कि सेतुका निर्माण अतिशीघ्र होना चाहिये। इसलिये मैं भी सहायता करूँगी। रामका स्मरण करते हुए उस गिलहरीने बड़ी भक्तिसे समुद्रमें गोता लगाया और फिर तटपर आकर बालूपर लेट गयी, फिर वह पुलके पास जाकर अपने शरीरपर लगी रेतको झटका देकर गिराने लगी। बार-बार गिलहरीने ऐसा किया। रामकी जब उसपर दृष्टि गयी तो उन्होंने कहा—'देखो लक्ष्मण! यह नन्ही गिलहरी अपनी शक्तिके अनुकूल पुल-निर्माणमें तटकी रेतको पुलतक पहुँचाकर मेरी सहायता कर रही है। रामने सुग्रीवको बड़े प्रेमसे उस गिलहरीको अपने पास लानेको कहा। सुग्रीव उसे पकड़कर रामके पास ले आये और राघवके हाथमें दे दिया। रामने उसकी प्रशंसा की और अपना मङ्गलमय दाहिना हाथ उसकी पीठपर फेरा, फिर उसे सुन्दर प्रदेशमें जाकर छोड़ आनेको कहा।

(३) माँ कैकसीका रावणको सदुपदेश (युद्ध-काण्ड)—भगवान् रामने सेतुका निर्माण कर लिया और सुवेलाद्रिपर अपना पड़ाव डाल दिया। रावणको जब यह समाचार मिला तो उसने अपने दानवोंको बुलाकर राजसभाकी बैठकका आयोजन किया। रावणकी माँ कैकसी भी उसी समय रावणकी सभामें जा पहुँची। रावणने माँके प्रथम बार राजसभामें आनेका कारण पूछा। इसपर कैकसीने कहा—'बेटा! विष्णुने आर्योंके रक्षार्थ दशरथके यहाँ जन्म लिया है। उन्होंने कई राक्षसोंका संहार किया है। शिव-धनुषको तोड़कर सीतासे विवाह किया, परशुरामके गर्वका मर्दन किया तथा बालि-जैसे महाबलीको मार डाला। उस आदिनारायणकी महिमा अवर्णनीय है, उसीकी पत्नीको तुम धोखेसे हरकर लाये हो और अब वह सुवेलाद्रिपर सेतु बाँधकर आ पहुँचा है और तुम उसे जीतना चाहते हो। तुम्हारे पिताने जो मुझे बताया था, उसे ध्यानसे सुनो। 'विष्णु ही राम हैं, लक्ष्मी ही उनकी पत्नी हैं, और देवता ही वानरका रूप धारण किये हुए हैं। तुम युद्धमें उनसे कभी जीत नहीं सकोगे। इसलिये तुम सीताको उनके समक्ष प्रस्तुत करते हुए रामकी शरण चले जाओ, वे तुम्हारी रक्षा करेंगे। विभीषणका राजतिलक भी कर दो।' कैकसीके हितोपदेशका रावणपर कुछ प्रभाव नहीं पड़ा, उलटे वह अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला—'माँ! इन नर एवं वानरोंकी शक्ति कितनी है? क्या ये देवताओंसे अधिक शक्तिशाली हैं? मैं इन्हें सहज ही जीत लूँगा? यदि मैं जीत नहीं सका, तो रामके बाणोंसे मारा जाऊँगा, किंतु मैं उनके सामने अपना सिर नहीं झुकाऊँगा। मैं सीताको कभी नहीं लौटाऊँगा।' पुत्रकी बात सुनकर दुःखी हो माता कैकसी रनिवासमें चली आयी।

(४) रावणका रामकी धनुर्विद्याकी प्रशंसा करना (युद्धकाण्ड)—एक बार भगवान् रामने रावणका गर्व भंग करनेके उद्देश्यसे लेटे-लेटे ही बाण छोड़ दिया। उस बाणके हजारों रूप हो गये और रावणके सिरोंको काटे बिना ही उसके छत्र, चामर आदि उसने काट डाले। बाण अपना कार्य पूरा करके रामके तूणीरमें प्रविष्ट हो गया। रावण रामचन्द्रजीके धनुर्विद्याके कौशलपर बार-बार विचार करने लगा। उसका सिर काँपने लगा। मन-ही-मन वह रामकी पटुताको मान गया और प्रकटमें बोला—हे श्यामवर्णी राम! तुम वीरावतार हो, शर-संधान-कलामें निपुण हो, तुम्हारे समान और कौन धनुर्धर

हो सकता है ? इस प्रकार रावणके दसों मुखोंसे रामकी प्रशंसा सुनकर उसके मन्त्रियोंने दैत्यनाथ रावणसे कहा—'प्रभो ! यदि आप शत्रुकी इतनी प्रशंसा करेंगे तो लोग यह समझ बैठेंगे कि आप उससे भयभीत हो गये हैं और वे आपको उपेक्षाकी दृष्टिसे देखेंगे।'—

नल्लवो रघुराम नयनाभिराम, विल्लविद्या गुरुव, वीरावतार।

बापुरे, राम भूपाल, लोकमुल नीपाटि विलुकाडु नेर्चुने कलुग ?

इसपर रावणने पुनः कहा—रामके समान पराक्रमी, बाहुबली, धनुर्विद्यामें निपुण तीनों लोकोंमें कोई नहीं है। हरि-हर एवं ब्रह्मा भी उनकी बराबरी नहीं कर सकते हैं।

इतना कहकर दनुजेश्वर रावण वहाँसे चला गया। राक्षस कटकर गिरे छत्र-चामर आदि देख अत्यन्त भयसे व्याकुल होकर रामके शौर्य एवं पराक्रमकी प्रशंसा करते हुए कहने लगे—'राम करुणाके सागर हैं, इसलिये उन्होंने अपने बाणसे केवल छत्रों एवं चामरोंको ही काटा।'

(५) मन्दोदरीका रावणकी सभामें आकर रामकी महिमा एवं शौर्यका बखान करना (युद्ध-काण्ड)—उद्भट रणबाँकुरे प्रहस्तका रणक्षेत्रमें लड़ते-लड़ते निधन हो चुका था। रावण शोकातुर हो स्वयं युद्धमें भाग लेनेका विचार कर रहा था। तभी महारानी मन्दोदरीने रावणकी सभामें प्रवेश किया। दानवेशने रानीको सम्बोधित करते हुए कहा—'हे सुन्दरी ! तुम तो इस प्रकार कभी राजसभामें नहीं आयी, तुम्हारा शरीर क्यों काँप रहा है ? मुझे तुम्हारे इस प्रकार आनेसे आश्चर्य हो रहा है।'

मन्दोदरीने अपने पतिसे कहा—'हे दनुजेश ! आज मुझे यहाँ आनेकी आवश्यकता पड़ी, इसीलिये मैं यहाँ आयी हूँ। आप मेरे आगमनको बुरा न मानते हुए, मेरी बात ध्यानसे सुनें। आपने देखा कि किस प्रकार रामने हमारे सेनापतियोंको युद्धमें मार गिराया है, चौदह सहस्र राक्षसोंका भी संहार हो चुका है और खर एवं त्रिशिराका भी वध कर दिया गया है। मैं कहती हूँ ऐसा वीर साधारण पुरुष नहीं हो सकता। उन्होंने दण्डक वनमें कबन्धका एवं पञ्चवटीमें मारीचका वध किया है। पृथिवीपर ऐसा प्रतापी नर कहाँ मिलेगा ? जिसने शिवके धनुषको कौतुकमें ही भंग कर डाला था। एक ही बाणमें बालिका संहार कर डालनेवाले रामने देवताओंके हितार्थ ही जन्म लिया है। आपने सीताका हरण करके, ऐसे शूर-वीरसे बिना कारण ही दुश्मनी मोल ली है, जबकि उन्होंने आपका कोई अहित नहीं किया है। तीनों लोकोंमें राम-लक्ष्मणसे कौन युद्ध कर सकता है? हे देव! राम परमात्मा हैं, आप नतमस्तक हो उनकी शरणमें चले जायँ, वे शरणागतको अवश्य अपनायेंगे। आप अपना हठ छोड़कर और दर्पका परित्याग कर सीताको लौटा दें, इसीमें आपका, कुलका और लंकाका हित है। आपने कार्तवीर्यसे भी तो संधि की थी तो उस कार्तवीर्यको भी जीतनेवाले रामचन्द्रजी क्या संधि करनेके योग्य नहीं हैं?'

मन्दोदरीके दीन वचनोंको सुनकर रावणकी आँखोंसे क्रोधकी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उसने मन्दोदरीको सम्बोधित कर कहा—'प्रिये ! हित-बुद्धिसे तुमने मुझे उपदेश तो दिया है; किंतु मुझे उनमेंसे एक भी बात उचित नहीं जान पड़ी। तुम मुझे वानरोंके आश्रयमें जीनेवाले नरको प्रणाम करनेका उपदेश दे रही हो। ऐसी बात तुमने इस सभामें कहनेका कैसे साहस किया ? रघुवंशीने पहले हमारा अहित किया था, तभी तो मैं उसकी पत्नीको हरकर लाया हूँ। खर-दूषण आदिका वध और तुम्हारी ननद शूर्पणखाका अपमान भुलाकर मूर्खके समान मैं रामसे कैसे संधि कर लूँ ? यह असम्भव है। मैं तो अपने भयंकर बाणोंसे राम-लक्ष्मणके साथ विभीषण, सुग्रीव आदि सभीको मारकर विजय पाऊँगा। यदि कदाचित् विजय न भी मिली तो युद्ध-भूमिमें ही अपने प्राण दे दूँगा, किंतु उस रामके साथ किसी प्रकारकी संधि नहीं करूँगा, न ही सीताको लौटाऊँगा। मेरे पुत्र वीर इन्द्रजित्के रहते तुम व्यर्थ भयभीत हो रही हो। कौन मेरा सामना कर सकता है ?'

इन बातोंको सुनकर मन्दोदरी चिन्ताग्रस्त होकर सिर झुकाकर राजसभासे चली आयी। तब रावणने अपने गुप्तचरों-से कहा—'चिरकालसे मेरे मनमें जो क्रोध था, उसका आज मैं परिहार करूँगा। मैं रामके लिये कालरुद्र हूँ, मेरे तूणीरोंसे निकलनेवाले अस्त्र उसकी मृत्युका कारण बनेंगे। तुम शीघ्र युद्ध करनेके लिये मेरे रथको ले आओ।' उस रथपर आरूढ़ होकर शक्तिसम्पन्न तथा साहसी योद्धा रावणने दारुण राक्षस सेनाके साथ युद्ध करनेके लिये प्रयाण किया।

(६) कालनेमिकी करतूत (युद्धकाण्ड)—रावणके शक्तिपातसे जब लक्ष्मणजी युद्धभूमिमें मूर्छित होकर गिर जाते हैं, और श्रीराम अत्यन्त अधीर एवं शोकाकुल हो जाते हैं, तब सुषेणने हनुमान्‌जीको बुलाकर कहा—'महाद्रोण पर्वतके दक्षिण शिखरपर जाकर विशल्यकरणी, सौवर्णकरणी, संधानकरणी तथा संजीवनी ओषधियोंको शीघ्र ले आओ।' हनुमान्‌जी भगवान् रामको प्रणाम करके शीघ्रतासे ओषधि लानेके लिये चल पड़ते हैं। जब रावणको इसकी खबर होती है तो वह कालनेमिको किसी भी प्रकारसे हनुमान्‌जीको रोकनेके लिये भेजता है। कालनेमि मायासे एक आश्रमका निर्माण कर उसमें स्वयं एक तपस्वीका वेष बनाकर बैठ जाता है। हनुमान्‌जी आश्रम देख वहाँ आते हैं और पानी पीनेकी इच्छा प्रकट करते हैं। तब कालनेमि उन्हें एक ऐसे सरोवरमें भेजता है, जहाँ एक भयानक मकरी जलमें रहती थी। हनुमान्‌जी उस मकरीका वध कर देते हैं तब वह एक देव-स्त्रीके रूपमें परिवर्तित हो जाती है और अपने शापग्रस्त होनेंकी कथा सुनाती है, साथ ही वह कालनेमिका भेद भी खोल देती है। तब हनुमान्‌जी कालनेमिका वध कर देते हैं और फिर पूरा द्रोणगिरि पर्वत उठाकर लंका ले जाते हैं।

(७) वानरोंद्वारा रावणके यज्ञका विध्वंस (युद्ध-काण्ड)—जब लक्ष्मणजीने रामको दण्डकवनमें मुनियोंको दिये वचनोंकी याद दिलायी तथा उनके द्वारा की गयी प्रतिज्ञाका स्मरण कराया और कहा कि आज सूर्यास्तसे पूर्व रावणका संहार कीजिये और रावणको जब यह समाचार विदित हुआ तो वह चिन्तातुर हो उठा और अपने पराक्रमको भूलकर सीधे शुक्राचार्यके पास जा पहुँचा एवं उनसे अपने बचावका उपाय पूछा। तब शुक्राचार्यने रावणको युद्धमें विजय-प्राप्तिके लिये हवन करनेको कहा और बताया कि हवन करनेसे हवन-कुण्डसे भयंकर संग्रामके योग्य श्रेष्ठ रथ, अश्व, खड्ग, शर, चाप तथा कवच तुम्हें मिल जायँगे। उनकी सहायतासे तुम इन्हें जीत सकोगे। इतना कहकर शुक्राचार्यने आवश्यक मन्त्रोंका उपदेश दिया और हवन-विधि बताकर उसे बिदा किया। शुक्राचार्यकी आज्ञा लेकर रावण अन्तःपुरको लौट आया और उसने अपने राक्षसवीरोंको अत्यन्त सतर्कता बरतने और सिंहद्वारोंको बंद कर उनकी पूरी तरह रक्षा करनेके आदेश दिये और स्वयं हवन करनेके लिये पाताल-गुफामें घुस गया। वहाँ पहुँचकर रावण विधिवत् होम-मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए महादेवीके सामने निश्चल ध्यानमें मग्न हो गया। गुफासे यज्ञका भयंकर धुआँ उठा और सारे आकाशमें व्याप्त हो गया। धुएँको देखकर विभीषणने रामसे कहा—'हे देव! रावण युद्धमें विजय प्राप्त करनेके लिये हवन कर रहा है। यदि यह हवन निर्विघ्न पूरा हो गया तो वह अविजेय हो जायगा, अतः आप वानर वीरोंको भेजकर इसमें विघ्न पैदा करवा दें।'

रामजीके आदेशपर वानरोंने लंकामें घुसकर उथल-पुथल मचा दी, पर उन्हें रावण कहीं भी दिखायी नहीं दिया। वानर सम्भ्रमित हो गये। तब विभीषणकी पत्नीने अपने पतिका हित विचार करके अंगदको इशारेसे रावणका गुप्त स्थान बता दिया। अंगदने क्रुद्ध होकर गुफाद्वारपर रखे पत्थरको चूर-चूर करके अपने पराक्रमका प्रदर्शन करते हुए राक्षसोंको डराकर भगा दिया और गुफामें प्रवेश किया। रावण हवन-कर्ममें निश्चिन्त हो मग्न था। अंगदने जोरसे चिल्लाकर कहा—'मैंने रावणको देख लिया है, जल्दीसे अंदर आ जाओ।' वानर-समूह अंदर आ गया और उसने सारी हवन-सामग्री हवन-कुण्डमें फेंककर सिंहनाद किया और वे रावणके शरीरपर होमकुण्डके अंगारोंकी वर्षा करने लगे और जलते हुए मशाल लेकर राक्षसोंपर फेंकने लगे। किंतु रावण विचलित हुए बिना डटा रहा।

वानर वहाँ उत्पात करते रहे, अंगदने जब देखा कि रावण आसानीसे उठनेवाला नहीं, तो वे सीधे रावणके अन्तःपुरमें पहुँचे और उन्होंने मन्दोदरीको जो शोकसंतप्त एवं व्याकुल होकर रो रही थी, रावणके पास ले गये। मन्दोदरीने रोते हुए रावणको खूब कोसा और वानरोंकी करतूत बतायी। तब रावण क्रोधित होकर हवनवेदीसे उठ खड़ा हुआ और वानर-वीरोंपर प्रहार करते हुए मन्दोदरीको अन्तःपुर ले गया। वानर वीर भागकर अपनी सेनामें जा पहुँचे और रावणके हवनको विध्वंस करनेकी सूचना दी।

(८) विभीषणका रामको आग्नेय अस्त्रके द्वारा अमृत सोख लेनेकी सलाह (युद्धकाण्ड)—राम-रावणके युद्धमें भयंकर मार-काट मची हुई थी। राम रावणके सिरों, हाथों, पैरोंको काटते और वे फिर यथावत् हो जाते।

वक्षःस्थलपर भी बाणोंका कोई प्रभाव नहीं पड़ रहा था। राम इससे चिन्तातुर हुए, इसपर विभीषणने बताया कि ब्रह्माके वरसे इसके कुण्डलाकार नाभिमें अमृत रखा हुआ है, उसीके प्रभावसे उसके शरीरके अङ्गोंका ध्वंस नहीं हो रहा है और उनका तबतक अन्त नहीं होगा, जबतक कि आग्नेय-अस्त्र चलाकर इसे सुखा नहीं दिया जायगा। रामको इस प्रकार विभीषणने आग्नेयास्त्र चलानेकी सलाह दी, रामने आग्नेयास्त्र चलाकर रावणके अमृत-संचयको सुखा दिया और उसकी मृत्यु हो गयी।

इस प्रकार रंगनाथरामायणमें और भी अनेकों रोचक प्रसंग हैं, यहाँपर तो संक्षेपमें ही दिग्दर्शन कराया गया है। रंगनाथरामायणमें उत्तरकाण्ड नहीं है, रामके राज्याभिषेकके बाद रामकथाको विराम दे दिया गया है। वस्तुतः रंगनाथ-रामायण समस्त भारतीय रामकथा-साहित्यका एक गौरव ग्रन्थ है। रंगनाथरामायण तेलुगु भाषामें रामकथात्मक काव्यमें सर्वप्रथम होकर सर्वाधिक लोकप्रिय रचना है। इस कथामें रोचकता, तार्किकता एवं सहजताका भरपूर निर्वाह हुआ है। श्रीरामकी यह कहानी परम पावन है।
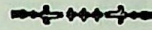
उड़िया विलंकारामायण

उड़िया भाषाके आदिकवि शारलादासकृत 'विलंका-रामायण' अपने-आपमें एक विलक्षण कृति है। विलंका-रामायणकी कथावस्तु वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण तथा रामचरितमानस आदिसे भिन्न है, इससे यह प्रतीत होता है कि यह रामायण शारलादासकी मौलिक कृति है। तथापि अद्भुतरामायणकी कथावस्तुसे इसका अद्भुत साम्य है। उत्कल-क्षेत्रमें यह रामायण अत्यन्त लोकप्रिय है, इसकी भाषा-शैली अत्यन्त सरल और रोचक है। इसका रचनाकाल जगन्नाथपुरीके राजा गजपति गौड़ेश्वर कपिलेन्द्रदेव (१४५२—१४७९ ई०) के समकालीन है। भगवती 'शारला' उनकी इष्टदेवी थीं, इसलिये उन्होंने अपना नाम 'शारलादास' रखा था। विलंकारामायण पूर्वखण्ड और उत्तरखण्ड—इन दो नामोंसे दो खण्डोंमें रचित है और शिव-पार्वती-संवादपरक है। इस रामायणका प्रारम्भ भगवती महिषासुर-मर्दिनीकी वन्दनासे प्रारम्भ होता है—

जय सर्वमंगला मा जय कात्यायिनी।
खण्डा खपरधारिणी महिषामर्दिनी॥

(वि० रामा०, पूर्वखण्ड)

प्रारम्भमें ही भगवती पार्वती जब भगवान् शंकरसे श्रीराम-चरित्र सुननेकी इच्छा प्रकट करती हैं, तब भगवान् शंकर उन्हें रामकथा सुनाते हैं। भगवान् शंकरने इस रामायणकी महिमाके सम्बन्धमें बताया कि यह रामायण सामवेदसे उत्पन्न हुआ है और इसके सुननेसे सभी लोग भवसागरसे पार हो जाते हैं।

मुख्य रूपसे विलंकारामायण शक्तिकी महिमाका ग्रन्थ है। इसमें भगवान् रामकी अपेक्षा भगवती सीताकी पराक्रम-लीलाका विशेष वर्णन हुआ है। सहस्रशिरा नामक जो दूसरा रावण विलंकामें रहता था और दशशिर रावणसे बहुत अधिक बलवान् था, उसे श्रीरामने भगवती सीताकी शक्तिका आश्रय ग्रहण करके ही मारा। भगवती सीता काली आदिका रूप धारण करके श्रीरामकी लीलामें विशेष सहयोग प्रदान करती हैं। सारांशमें इस रामायणकी कथावस्तु विलंकाधिपति सहस्र-शिरा रावणकी विनाश-लीलाके ही चारों ओर घूमती है। इस रामायणके कुछ अंश यहाँपर कथारूपमें दिये जा रहे हैं—

अयोध्यामें श्रीरामके लंका-विजयसे वापस आनेकी तैयारियाँ हो रही हैं। लक्ष्मण-सीता और हनुमान् आदिके साथ श्रीराम सरयू-तटपर आ गये हैं। इधर गुरु वसिष्ठ, कौसल्या आदि माताएँ, भरत-शत्रुघ्न तथा अयोध्याके नर-नारी उत्सव मनाते हुए बड़े ही आनन्दपूर्वक उनकी अगवानीके लिये चल पड़ते हैं। श्रीराम-भरतका मिलन होता है। आज सभीके मनमें बड़ी प्रसन्नता छायी हुई है। पुनः सभी अयोध्यामें आते हैं और श्रीरामके राज्याभिषेकके लिये तैयारी होने लगती है।

इधर देवराज इन्द्रकी सभामें सभी देवता विलंका-रावणके अत्याचारोंसे पीड़ित होकर उसके वधका उपाय सोच रहे हैं। ब्रह्माजी देवताओंसे कहते हैं—सभी देवता, दिक्पाल उसकी सेवामें निरत रहते हैं। उसने महान् तपस्याद्वारा अजेयत्वका वर प्राप्त कर लिया है। उसके हजार सिर हैं,

इसीलिये वह सहस्रशिरा कहलाता है। वह लक्षशिराका पुत्र है, वह दैत्य तीनों लोकोंमें महान् शक्तिशाली है और अभेद्य नगरी विलंकामें अपनी सेनाके साथ रहता है। यद्यपि रामने लंकापति रावणका तो वध कर दिया है, किंतु जबतक सहस्रशिराका वध नहीं हो जाता, तबतक सुख-शान्ति कहाँ? इसपर देवराज इन्द्रने कहा—ब्रह्मन्! अब आप ही कोई उपाय कीजिये, जिससे कि उस विलंकाधिपतिके अत्याचारोंसे हमें मुक्ति मिले। इस समय अयोध्यामें श्रीरामके राज्याभिषेककी बड़े धूम-धामसे तैयारियाँ हो रही हैं। यदि उनका राज्याभिषेक हो जाता है, वे अयोध्याके राजा बन जाते हैं तो फिर वे विलंका क्यों जायँगे? अतः आप कोई उपाय करें, जिससे कि वे हमें इस महान् कष्टसे मुक्ति दिला सकें।

ब्रह्माजी क्षणभरके लिये विचारमें पड़ गये। 'सहस्रशिराका वध किसी भी प्रकार करना ही होगा' ऐसा निश्चय कर उन्होंने एक युक्ति सोच डाली। तदनुसार उन्होंने खल और दुर्बलको बुलाया और देवताओंके समक्ष ही उनसे कहा—'तुम दोनों शीघ्र ही अयोध्या चले जाओ और वहाँ श्रीराम तथा सीताके कण्ठ (वाणी) में निवास करो। इससे सीताजी रामजीका उपहास करने लगेंगी और रामकी वाणीमें भी कुछ समयके लिये आत्मप्रशंसाका भाव आ जायगा। सीताके वचनोंसे प्रेरित होकर श्रीराम विलंका जाकर सहस्रशिराका वध कर डालेंगे और इस कार्यमें उन्हें सीताका सहयोग प्राप्त होगा।' ब्रह्माजीकी इस युक्तिसे सभी देवता प्रसन्न हो गये।

ब्रह्माजीकी आज्ञासे वे दोनों खल और दुर्बल अयोध्या जा पहुँचे। खलने सीताजीके और दुर्बलने रामजीके कण्ठमें निवास किया। उस समय वहाँ सभा लगी हुई थी। सभी वसिष्ठ आदि ऋषि-महर्षि आसनोंपर बैठे थे। खल एवं दुर्बलके प्रभावसे राम और सीता दोनोंकी बुद्धि मोहित-सी हो गयी। फिर क्या था, भरी सभामें श्रीरामने रावणके वध आदि अपने पराक्रमका बखान करना प्रारम्भ कर दिया। इसपर सीताजी हँस पड़ीं और रामजीका उपहास करते हुए कहने लगीं कि—आपने रावणको कहाँ मारा? रावण तो मेरी शक्तिके द्वारा मारा गया। आपमें ऐसा पराक्रम कहाँ है, मैंने ही घोर कष्ट सहन करके रावणको मारा था, आप क्यों व्यर्थमें अपनी प्रशंसा करते हैं?—

तुम्मे किथा कष्ट अह रघुराण।
घोर कष्ट पाइण मुं माइलि रावण॥

(वि॰ रामा॰, पृ॰ ५२, छन्द २२४)

पुनः सीताजीने कहा—हे रघुश्रेष्ठ! यदि ऐसी बात है तो आप जाकर विलंकाके रावण सहस्रशिराका वध करें। इसपर रामने कहा—देवि! तुम तो अन्तःपुरमें रहती हो, फिर तुम्हें विलंकारावणके विषयमें कैसे मालूम हुआ? सीताने बताया कि पिताके घर रहते हुए मुझे एक ऋषिसे यह सब ज्ञात हुआ था।

ब्रह्माजीकी युक्ति सफल हो गयी। सीताजीके वचन रामके लिये प्रेरक बन गये। वे अकेले ही अयोध्यासे चल पड़े। देवताओंने अपने कार्यकी सिद्धि जानकर पुष्पोंकी वर्षा की। ब्रह्माजीके कहनेपर पवनदेव रामकी सहायताके लिये आ पहुँचे। पवनदेव रामजीको आकाशमार्गसे ले जाने लगे। कुछ ही क्षणोंके बाद वे रावणकी लंकासे भी सौ योजन आगे स्थित स्वर्णमयी विलंका नगरीमें जा पहुँचे। चारों ओरसे बड़े-बड़े असुर उस नगरीकी रक्षामें नियुक्त थे। श्रीराम वायुवेगसे सहस्रशिराके पास जा पहुँचे और उसे युद्धके लिये ललकारा। किंतु फिर वे विलंकेश्वरके बल-पराक्रमका प्रभाव देखकर विशेष शक्ति प्राप्त करनेके लिये वहाँसे दूर एक वनमें घोर तपस्या करने लगे।

इधर जब हनुमान्जीको ज्ञात हुआ कि श्रीराम अकेले ही विलंका चले गये हैं तो वे भी शीघ्र ही अयोध्यासे विलंकाकी ओर चल पड़े। मार्गमें विभीषणसे उनकी भेंट हुई और उन्होंने विभीषणको सारा वृत्तान्त बतलाया। विभीषणसे बिदा होकर पुनः वे विलंकाकी ओर उड़ने लगे। रात्रिमें उन्होंने विलंका नगरीमें प्रवेश किया और वहाँ प्रभु श्रीरामको ढूँढ़ने लगे। घूमते-घूमते वे विलंकेश्वरके महलमें जा पहुँचे। वहाँ विलंकेश्वर अपने मन्त्रीसे रामके विषयमें पूछ रहा था। मन्त्रीने बताया कि 'श्रीराम विष्णुके अवतार हैं तथा अयोध्यामें महाराज दशरथके यहाँ अवतार ग्रहणकर पृथिवीके सारे असुरोंका संहार कर चुके हैं, उन्होंने ही बालि तथा लंकाधिपति रावणको मारा है। हे स्वामिन्! आप उनसे वैर न करें।' विलंकेश्वरको मन्त्रीकी बातें अच्छी नहीं लगीं।

इतना सुनकर हनुमान्जी सर्वत्र घूम-घूमकर प्रभु श्रीरामको खोजने लगे। किंतु राम तो वहाँ थे ही नहीं, मिलते

कैसे ! इसी बीच हनुमान्‌जीकी भेंट वहाँकी एक ग्रामदेवीसे हुई, जो विलंका नगरीकी रक्षा करती थी। विलंकेश्वरकी मायासे उस नगरीका यह प्रभाव था कि जो उस नगरीमें मित्रभावसे प्रवेश करता, वह तो विलंकेश्वरका दर्शन कर सकता था, किंतु जो शत्रुभावसे आता उसे ग्रामदेवी विषपान करा देती। हनुमान्‌जी भी ग्रामदेवीकी मायामें आ गये। पुनः इन्द्रके अमृतवर्षासे हनुमान्‌जी चैतन्यताको प्राप्त हुए। उनका शरीर वज्रके समान हो गया। वे प्रभु श्रीरामका स्मरणकर श्रीरामके पास जा पहुँचे और फिर श्रीराम तथा हनुमान् विलंका आये और विलंकेश्वर तथा उसकी सेनासे उनका भयंकर युद्ध छिड़ गया। विलंकेश्वर अजेय बना हुआ था। देवताओंद्वारा यह जान लेनेके बाद कि 'सीताके आगमनपर ही सहस्रशिरा-का वध होगा', श्रीरामने हनुमान्‌जीको अयोध्या भेजकर सीताको वहाँ बुलवाया। देवगण माता सीताकी स्तुति करने लगे। तब प्रसन्न होकर सीताजीने अपनी मोहिनी शक्तिसे सहस्रशिराको मोहित कर दिया और फिर भगवान् श्रीरामने उसका वध कर डाला। विलंकेश्वरका वध करनेके पश्चात् श्रीराम-सीता आदि आनन्दित हो अयोध्या लौट आये। देवलोकमें भी अनेक उत्सव होने लगे।

उड़िया जगमोहनरामायण

ज्ञानमार्गके संत महाकवि बलरामदासजीकी यह रचना लोकनाथ जगन्नाथके मन्दिर (जगमोहन) में बैठकर श्रीजगन्नाथजीकी आज्ञाके अनुसार लिखी गयी है। अतः इसकी 'जगमोहनरामायण'के नामसे लोकमें प्रसिद्धि है।

आचार्योंने उत्कल (उड़िया) भाषामें अनेक रामकथाएँ लिखी हैं, इस परम्परामें 'जगमोहनरामायण' का प्रमुख स्थान है। सरल और सरस भाषामें रामगाथाका चित्रण इसका वैशिष्ट्य है। समग्र उत्कलमें इसका खूब प्रचार है। यह रामायण 'दाण्डिरामायण'के नामसे भी प्रसिद्ध है। इस रामायणके अवलोकनसे बलरामदासजीकी अपने आराध्यदेव श्रीरामके प्रति अनन्य भक्तिका परिचय मिलता है। महाकविका सिद्ध-साधकोंके द्वारा अभिनन्दन तो हुआ ही था, साथ ही प्रेमावतार श्रीगौराङ्गदेवका भी सम्मान इनको प्राप्त था।

भक्तप्रवर श्रीबलरामदासजी श्रीचैतन्यदेवके सम-सामयिक थे। जिस प्रकार भक्त बिल्वमंगलके विषयमें प्रसिद्धि है, वैसे ही इनके विषयमें भी यह कहा जाता है कि ये एक गणिकासे विशेष प्रेम करते थे। एक दिन वे रात्रिमें उसके घरपर ही सो गये और दूसरे दिन महाप्रभु जगन्नाथकी रथयात्राके समय भी सोते ही रहे। परंतु घंटा तथा शंखोंकी ध्वनि सुनकर वे उसी अपवित्र अवस्थामें दौड़े चले आये और रथपर चढ़ गये तथा भगवान् जगन्नाथकी स्तुति करने लगे। सेवकोंने उन्हें अपवित्र समझकर रथसे नीचे गिरा दिया और अपमानित किया। वे रोते हुए समुद्रके तटपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने बालूके तीन रथोंका निर्माणकर महाप्रभु जगन्नाथको उनपर विराजमान होनेकी प्रार्थना की।

भक्तोंके आगे तो भगवान् सब कुछ करनेके लिये तैयार हैं। भगवान् बलरामजीकी प्रेमभक्ति-निष्ठाको खूब समझते थे। इधर लोगोंने जगन्नाथजीके रथको चलानेके लिये बहुत प्रयास किया; किंतु रथ पथपर चला ही नहीं। अब तो सब लोग समझ गये कि हमने जो भक्तका अपमान किया, वह भगवान्-का ही अपमान करना था। इसी कारण भगवान्‌का रथ आगे नहीं बढ़ रहा है। फिर क्या था, भक्त बलरामदासको सम्मानपूर्वक वहाँ लाया गया। सबने बलरामदासजीसे क्षमा-प्रार्थना की और तब रथ आगे बढ़ा। ऐसी ही एक बात और प्रसिद्ध है—एक दिन उनकी रामायणका पाठ हो रहा था, उसमें कविने लिखा था कि रावणने जब लक्ष्मणके वक्षः-स्थलपर प्रहार किया, तब गाड़ीके पहियेके समान उनके वक्षः-स्थलपर छिद्र हो गया। लोगोंने कविका उपहास किया और इस पाठको अशुद्ध बताया; क्योंकि वक्षःस्थलपर इतना स्थान कहाँ होता है जो कि इतना बड़ा छिद्र हो जाय। पण्डितोंने रात्रिमें स्वप्न देखा कि भगवान् रामचन्द्र कह रहे हैं कि त्रेतायुगमें यह बलरामदास 'दशकाल वृद्ध' नामक सेनापति था और वह स्वयं मशाल लेकर लक्ष्मणके घावको दिखा रहा था। अतः इस पाठको अशुद्ध बतानेकी शक्ति तुममें कहाँ ?

बैलगाड़ीकी नाभि तो मात्र चार अंगुलकी ही होती है और तुम उसे भ्रान्तिवश पहियेके आकारका छिद्र समझ रहे हो। सभी पण्डितोंने बलरामदासका सम्मान किया, उसी दिनसे इसका पाठ घर-घरमें होने लगा।

इसमें मूल रामकथाके साथ ही उत्कल प्रदेशकी लोक-प्रचलित कथाओं तथा यहाँके वन, नदी आदिका भी वर्णन किया गया है। 'जगमोहनरामायण'की रामकथा अध्यात्म-रामायण तथा देवीभागवतसे साम्य रखती है। कहा जाता है कि बलरामजीको श्रीरामतारक-मन्त्र सिद्ध था। अतः उनकी रामायणमें रामभक्ति और नामसाधनाका गहरा पुट है। कविने सीता-राम एवं अन्य सभी पात्रोंका चित्रण उड़ीसाकी परम्परामें किया है। 'जगमोहनरामायण' एक गेय काव्य है। रामकथाका यह आञ्चलिक स्वरूप इतना स्वाभाविक और सरस बन पड़ा है कि बादमें असमिया एवं बँगला कवियोंके लिये भी आदर्श हो गया। इसमें पौराणिक शैलीका भी आश्रय लिया गया है। कुछ विद्वानोंकी तो यहाँतक मान्यता है कि रामचरितमानसके रचयिता महाकवि तुलसीदासजी भी 'जगमोहनरामायण'से बहुत अधिक प्रभावित रहे। (म० प्र०गो०)

कश्मीरी रामायण—रामावतारचरित

(श्रीजानकीनाथजी कौल 'कमल')

कश्मीरमें काजीगुंडके आस-पास एक गाँव है—'कुर्यगोम'। यहाँ एक साधारण पण्डितके घरमें १८१९ ई०में एक असाधारण बालकका जन्म हुआ। इस बालककी शब्द-शक्ति आश्चर्यमय पायी गयी और स्मरण-शक्ति बहुत प्रबल। श्रद्धालु माता-पिताने बालकका नाम प्रकाश रखा। पूर्ण वयस्क होनेपर उसे 'प्रकाशराम' नामसे अभिहित किया जाने लगा। महाशय ग्रियर्सनने उनका नाम 'दिवाकर प्रकाश भट्ट' बताया है। प्रकाशरामको भगवती त्रिपुरसुन्दरीकी अलौकिक भक्ति प्राप्त थी। उनमें भक्तिका विकास इतना प्रबल होता था कि भजन गाते-गाते वे नृत्यमें झूम उठते। भक्तजन भी बहुत प्रभावित हो जाते। युवावस्थामें ही प्रकाशरामने कश्मीरी भाषामें 'रामावतारचरित' लिखा। इसमें रामायणकी कथा आद्योपान्त वर्णित है। तुलसीरामायणकी तरह ही यह कश्मीरी समाजमें विशेष लोकप्रिय हो गया। लोग इसे तीज-त्योहार और भजन-कीर्तनपर गाने लगे और इससे भक्ति-चमत्कारका आनन्द लेने लगे। लोग इस रामायणको और इसके अन्तर्गत आकर्षक गीतोंको शादी-व्याहपर गाते थे। कई मुसलमान भाई भी इन पद्यों और गीतोंको गा-सुनाकर रुपया-पैसा प्राप्त करते थे। 'रामावतारचरित'को 'प्रकाशरामायण'के नामसे भी कहा जाने लगा। तदनन्तर प्रकाशरामने 'लव-कुश-चरित', 'शिव-लग्न' आदि और भी काव्य लिखे और कश्मीरी समाजमें ख्याति प्राप्त की।

'रामावतारचरित'में प्रकृति-वर्णन तथा काव्य-प्रतिभा ऋषि वाल्मीकिप्रणीत रामायणके अनुसार ही है। भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके स्रोत जो इसमें बहते हैं, वे अध्यात्मरामायणके अनुरूप हैं। फिर भी इसमें अन्य रामायणोंकी अपेक्षा जो विशेषताएँ हैं वे इस प्रकार हैं—

(१) कश्मीरके विशेष तपोवन, सरोवर और सरिताएँ ही रामके जीवनके यात्रा-स्थलमें वर्णन किये गये हैं।

(२) धर्म, मर्यादा, करुणा, परमार्थ-ज्ञान तथा भक्तिकी चर्चा कश्मीरी समाजके अनुरूप ही वर्णित है। यद्यपि उनका आधार-सम्बन्ध अध्यात्मरामायणसे ही है।

(३) भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी त्रिवेणी रामचरित-मानसके अनुरूप प्रभावशाली और भक्तिवर्धक है।

(४) कहीं-कहीं कविने मौलिक परिवर्तन भी किये हैं।

दिवाकर प्रकाश भट्टका यह 'रामावतारचरित' प्रथम बार फारसी लिपिमें १९१० ई०में छपा था। तदनन्तर ग्रियर्सन महोदयने इसे १९३० ई०में रोमन लिपिमें छपाया। फिर जम्मू-कश्मीर अकादमीने इसे फारसी लिपिमें छपवाया।

रामभक्तिरससे परिपूर्ण यह 'रामावतारचरित' अब 'काशुर रामायण'के नामसे हिन्दी-रूपान्तरके साथ प्रकाशित हो गया है।

कश्मीरी भाषामें अन्य कवियों-संतोंने भी रामभक्तिपरक साहित्यकी रचना की है, परंतु वह अभीतक प्रकाशमें नहीं आया है। उसका संक्षिप्तमें विवरण इस प्रकार है—

(१) विष्णुप्रताप रामायण—पं० विश्वम्बर नाथ कौल, व्योसग्राम, अनन्तनाग, कश्मीर—१९१३ ई०।

(२) शंकर रामायण—पं० शंकर कौल, १८७० ई०।

(३) आनन्द रामावतारचरित—पं० आनन्दराम राजदान, १८८० ई०।

(४) शर्मा रामायण—पं० नीलकण्ठ शर्मा, डब ग्राम, गान्धरबल, कश्मीर, १९१९—१९२६ ई०।

(५) ताराचन्द रामायण—पं० ताराचन्द, १९२६ ई०।

(६) अमर रामायण—पं० अमरनाथ 'अमर', १९४० ई०।

(७) रामगीता—पं० लक्ष्मण जू 'बुलबुल' (१८१२—१८८४ ई०)—(कश्मीरके विख्यात संत कवि स्वामी परमानन्दके शिष्य)

मानसकी प्राचीनतम संस्कृत-टीका—प्रेमरामायण

(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूडामणि)

गोस्वामी संत श्रीतुलसीदासजीकी अमरकृति रामचरितमानस भक्तिका एक प्रधान ग्रन्थ है। रामचरितमानसकी महनीयता निर्विवाद है। प्रस्तुत 'प्रेमरामायण' जो कि गोस्वामीजीके पट्टशिष्य श्रीरामू द्विवेदद्वारा उनके ही जीवनकालमें लिखित है, अभी भी अप्रकाशित है। श्रीरामू द्विवेदने मानसके गूढ रहस्योंका प्रतिपादन इस संस्कृत-टीका—प्रेमरामायणमें किया है, जो पद्यबद्ध है, इसकी रचना विक्रम-सं० १६६२के पूर्व हुई, किंतु संयोगवश इसके तीन काण्ड मात्र ही उपलब्ध होते हैं—अयोध्याकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड और सुन्दरकाण्ड। साथ ही इसकी तीन प्रतियाँ ही प्राप्त हैं। प्रथम प्रति काशिराज पूर्व महाराज डॉ० विभूतिनारायणजी महोदयके सरस्वती-भण्डारमें सुरक्षित है। द्वितीय प्रति (अयोध्याकाण्डकी) रायल एशियाटिक सोसायटी कलकत्तामें है और तीसरी प्रति दि ब्रिटिश म्यूजियम लन्दनके पुस्तकालयमें है।

यह प्रेमरामायण परम रामभक्त भरत और हनुमान्के मानसमें चर्चित चरित्र-विषयक और प्रमुख अंशोंका सुन्दर संस्कृत भावानुवाद है। भगवत्प्रेम और भक्तिके स्वरूपका चरम उत्कर्ष इन महान् द्वयके चरित्रोंमें स्पष्ट-रूपसे दिखायी देता है। अतः ऐसा जान पड़ता है कि रामभक्ति और रामभक्तके स्वरूप तथा तुलसीकी प्रेमाभक्तिका उद्घाटन प्रेमरामायणकारको अभिप्रेत था। श्रीरामू द्विवेदने इस संस्कृत-टीकाका नाम 'बुधबोधिनी' रखा है। 'प्रेमरामायण' नाम भी साभिप्राय है। इसके नामकरणमें प्राचीन रामायण एवं मानसकी पद्धतिका सुन्दरतापूर्वक निर्वाह किया गया है। संस्कृत तथा इतर भाषाओंमें रचित रामचरित्र-विषयक ग्रन्थ प्रायः रामायण नामसे अभिहित हैं। अतः द्विवेदजीने भी रामायणपरक नामकरण किया है। उसके साथ 'प्रेम' शब्द संयुक्त करनेका भी कारण है। इसके लिये मानसके द्वितीय सोपानकी फलश्रुति महत्त्वपूर्ण है—

सिय राम प्रेम पियूष पूरन होत जनमु न भरत को।
भरत चरित करि नेमु तुलसी जो सादर सुनहिं।
सीय राम पद पेमु अवसि होइ भव रस बिरति॥

(रा० च० मा० २। ३२६। छं०, ३२६)

उपर्युक्त उद्धरणोंसे यह ज्ञात होता है कि प्राचीन एवं तत्कालीन विषयोंमें सामञ्जस्य स्थापित करनेकी दृष्टिसे कवि-द्वारा 'प्रेमरामायण' नामकरण किया गया।

कै तोहि लागहिं राम प्रिय कै तू प्रभु प्रिय होहि।
दुइ में रुचै जो सुगम सो कीबे तुलसी तोहि॥

(दोहावली ७८)

या तो तुझे राम प्रिय लगने लगें या प्रभु श्रीरामका तू प्रिय बन जा। दोनोंमेंसे जो तुझे सुगम जान पड़े तथा प्रिय लगे, तुलसीदासजी कहते हैं कि तुझे वही करना चाहिये। (अर्थात् या तो सबसे प्रेम छोड़कर श्रीरामको ही अपना एकमात्र प्रियतम मान ले या प्रभुकी शरण होकर सब कुछ उन्हें समर्पण कर दे, जिससे वे तुझे अपना अत्यन्त प्रिय मान लें।)

दन्तकथा-रामायणके कुछ रोचक प्रसंग

(शास्त्री श्रीलोकनाथजी मिश्र)

[भगवान् श्रीराम जैसे स्थावर-जंगमात्मक जगत्‌में सर्वत्र व्याप्त हैं, वैसे ही रामचरित्र भी किसी-न-किसी रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। रामचरित्रके विषयमें आर्षग्रन्थके रूपमें श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण तथा श्रीरामचरितमानस सर्वाधिक मान्य हैं, तथापि न केवल भारतमें ही, अपितु वैदेशिक संस्कृतिमें भी भगवान् श्रीरामके मङ्गलमय पावन चरित्रके अनेक आयाम भरे पड़े हैं। भारतमें तो प्रायः सभी भाषाओं तथा बोलियोंमें राम-चरित्रकी रचनाएँ हुई हैं। कहीं-कहीं जहाँ लिखित साहित्य उपलब्ध नहीं है वहाँ श्रुति-परम्परासे रामगाथाका गान होता आया है। इन रामगाथाओं और रामचरित्रोंमें मूलकथाके साथ ही अवान्तर-स्थानीय कथाएँ, स्थानीय संस्कृति एवं सभ्यताकी गाथाएँ भी अनुस्यूत रहती हैं। न जाने कबसे श्रीरामके यशोगानकी ये गाथाएँ दन्तकथाओंके रूपमें तत्तत् समाजमें प्रचलित हैं। यद्यपि आर्षग्रन्थोंकी प्रचलित कथाओंसे ये दन्तकथाएँ सर्वथा भिन्न हैं तथा इनकी प्रामाणिकताका भी कोई आधार नहीं है तथापि स्थानीय जन बड़ी श्रद्धा एवं आस्थासे तथा बड़े मनोयोगपूर्वक इन कथाओंमें रस लेते हैं और श्रीरामके प्रति अपनी भक्तिभावना प्रकट करते हैं। यहाँ मध्योत्तराखण्डस्थ पर्वतीय प्रदेशोंमें दन्त-कथा-रामायणके रूपमें प्रसिद्ध रामचरित्रके कुछ ऐसे ही प्रसंग लेखकने पाठकोंकी सेवामें प्रस्तुत किये हैं।—सं०]

पुत्रेष्टि-यज्ञकी कथा

राजा दशरथके कोई संतान न थी। अभी उनका विवाह भी नहीं हुआ था। राजा कुशीलकी पुत्रीका नाम कुशल्या था। उसके परिणयकी बात पहले एक अन्य राजकुमारके साथ हुई थी; किंतु फिर उसे किसी अन्यके यहाँ देनेका निश्चय हुआ। इस कारण दुःखी होकर वह घर छोड़कर जंगल चली गयी। कुमारावस्थामें राजा दशरथ शिकार खेलने जंगल जाया करते थे। एक बार जंगलमें घूमते समय एक वृक्षके नीचे तपस्या करती हुई वह कुशल्या उन्हें दिखलायी पड़ी। दयालु-हृदय राजा दशरथ समझा-बुझाकर उसे अपने महलमें ले आये। बादमें उनका गान्धर्व-विवाह हो गया। दोनों मिल-जुलकर रहने लगे। उनकी एक लखमनी नामक पुत्री हुई, किंतु पुत्र कोई नहीं हुआ। पुत्र न होनेसे उन्हें दूसरा विवाह करना पड़ा। इस प्रकार सुमित्रा उनकी दूसरी रानी बनीं। बहुत समय बीतनेपर जब उनसे भी पुत्र न हो पाया और वृद्धावस्था समीप आने लगी तो राजाको बड़ी चिन्ता हुई। राजा दुःखी रहने लगे, तब वसिष्ठ आदि ऋषियोंने उन्हें पुत्रेष्टि-यज्ञ करनेका परामर्श दिया और बतलाया कि इस यज्ञकी सफलताके लिये शृंगी ऋषि ही आचार्य बन सकते हैं। शृंगी ऋषि नदीके उस पार अपने गुरु विभाण्डक ऋषिके पास एक जंगलमें रहते थे। राजा अब उन्हें लानेका उपाय सोचने लगे। तदनन्तर उन्होंने अपने पड़ोसी राजा रूमपालके पास दूत भेजकर उनकी सहायता माँगी। रूमपालने राजा दशरथको सहायता देना स्वीकार कर लिया। तदनुसार राजा रूमपालने अपनी तीन पुत्रियोंको फलोंसे भरी एक-एक टोकरियाँ देकर ऋषिको लाने भेजा। ऋषि नदीके किनारे एक निश्चित समयपर नहानेके लिये आते थे। ठीक उसी समय वे भी नदीपर पहुँचीं। ऋषि जब स्नान करके लौटने लगे तो वे तीनों भी उनके पीछे-पीछे चलकर उनके आश्रमपर पहुँचीं, उस समय वहाँपर विभाण्डक ऋषि नहीं थे। शृंगी ऋषिको अकेला पाकर वे तीनों फलोंकी टोकरियाँ उनके पास रखकर बैठ गयीं। ऋषि शृंगी संसारके व्यवहार-ज्ञानसे सर्वथा अनभिज्ञ थे। उन्होंने राजकन्याओंकी ओर देखा तो जरूर, किंतु बात नहीं की। वे चुपचाप फलोंको खाकर सो गये। कन्याओंने उन्हें जगाया नहीं। बहुत देरके बाद भी वे नहीं उठे तो तीनों घरको चली आयीं। जब ऋषिकी नींद टूटी तो वे उन कन्याओंको खोजने लगे। वे नदीके पार दिखायी दीं। फिर वे भी उनका अनुगमन करते हुए रूमपाल राजाके महलमें पहुँच गये। राजाने बड़े आदरसे उनका स्वागत किया और दशरथको ऋषिके आगमनकी सूचना भिजवा दी। राजा रूमपालने शृंगी ऋषिको सारी घटना बतला दी और दशरथकी पुत्रहीन अवस्थाका भी वर्णन किया। बादमें शृंगी ऋषिने विधि-विधानसे राजा दशरथका पुत्रेष्टि-यज्ञ सम्पन्न करवाया। यज्ञ-कुण्डसे दूधका कटोरा लेकर एक महात्माके वेशमें भगवान् यज्ञपुरुष प्रकट हुए। उन्होंने पहले कुण्डके ढाई

फेरे दिये। फिर वह दूध दोनों रानियोंको पिलाया। बचा हुआ फिर सुमित्राको दिया। तत्पश्चात् समय पाकर कुशल्यासे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम राम पड़ा। सुमित्राके दो पुत्र हुए, जिनका नाम लक्ष्मण, शत्रुघ्न रखा गया। बादमें वे विभाण्डक ऋषि भी अपने शिष्यकी खोज करते हुए अयोध्या पहुँचे। सब स्थिति समझकर उन्होंने शृंगीको गृहस्थ होनेकी आज्ञा दे दी। तदनन्तर राजा दशरथने अपनी पुत्री लखमनीका विवाह शृंगी ऋषिके साथ कर दिया।

दशरथका कैकेयीसे विवाह

राजा दशरथने जंगलमें एक बड़ा तालाब बनवाया था। उसमें एक गैंडा प्रतिदिन पानी पीने जाता था। राजा उसे मारनेकी ताकमें रहते थे। किंतु वह उनके वशमें नहीं आता। उसी जंगलमें श्रवणकुमार अपने अंधे माता-पिताके साथ रहता था। एक बार वह तुंबी लेकर उस तालाबमें पानी भरने लगा। तुंबीसे गैंडेके पानी पीनेकी गद-गद-जैसी ध्वनि निकलने लगी। राजाने समझा कि आज वह गैंडा हाथ लगा है। ऐसा सोचकर उसपर बाण मारा। वह बाण श्रवणको लगा और वह अपने अंधे माता-पिताका नाम लेकर मूर्च्छित हो गया। मानव-शब्द सुनकर राजा शीघ्र ही दौड़ते हुए वहाँ आये, वहाँकी स्थिति देखकर राजा घबड़ा गये और उन वृद्धदम्पतिको प्यासा जानकर पानी लेकर उनके पास पहुँचे। राजा दशरथका परिचय एवं धोखेसे पुत्रके मारे जानेका समाचार जानकर उन अंधे माता-पिताने पानी नहीं पिया, बल्कि राजाको उसी बाणसे मरनेका शाप देकर पुत्र-वियोगमें मर गये। तदनन्तर दशरथने भयभीत होकर नौकरोंसे उस बाणको घिस-घिसकर समाप्त करनेके लिये कहा। उन्होंने वैसा ही किया, किंतु उसका अतिस्वल्प खण्ड पानीमें फेंक दिया। उसे एक मछली निगल गयी। बादमें वह मछली एक मल्लाहके जालमें फँसी। मल्लाहने एक लोहारको वह मछली बेच दी। लोहारने मछलीके पेटसे निकले सुन्दर लोहेसे नाखून काटनेके लिये नहरनी बनाया। उसे एक नाईने खरीदा। वह नाई उसी नहरनीसे जब राजा दशरथके नाखून काट रहा था उस समय नहरनीसे राजाके अंगूठेमें थोड़ा-सा कट गया, जिससे राजाको अत्यधिक पीड़ा होने लगी। बहुत चिकित्सा की गयी, किंतु व्यथा कम न हुई।

केकाई और मेहकाई दो बहनें थीं। केकाई तो पृथिवीपर ही रहती थी, पर मेहकाईका निवास आकाशमें था। दोनों पींगें (झूला) झलारेसे खेलती थीं। एक बार मेहकाईने बातों-ही-बातोंमें केकाईके लिये मीहणा (व्यंग्य वचन) किया कि क्या तू रामसे अपने लिये पींगे-झलारे दिलवायेगी ? इसी व्यंग्य वचनपर केकाईने मार्गमें ही झूला लगाया। उसी समय राम और लक्ष्मण पिताजीके लिये ओषधिकी खोजमें उधरसे जा रहे थे, किंतु केकाईने उन्हें पहचानकर उनका रास्ता रोक लिया। इसपर आपसमें बातचीत हुई। तब केकाई बोली कि दवाई तो मैं दे सकती हूँ, किंतु मुझे एक झलारा दीजिये तब दवाई दूँगी। रामने पहले इस बातको नहीं माना, पर बादमें लक्ष्मणके समझानेपर उन्होंने स्वीकार कर लिया। तब केकाईने राजा दशरथके लिये रामके हाथमें दवाई दे दी। दोनों राजकुमार लौट आये। उस दवाईके लगानेसे दशरथको कुछ आराम प्रतीत हुआ। तदनन्तर उसी केकाईको राजमहलमें लाया गया। तबसे वह तीसरी रानी बनी। समय पाकर केकाईसे भरतका जन्म हुआ।

लव-कुशके जन्मकी कथा

मध्योत्तराखण्ड-पर्वत-प्रदेशमें निरमण्डसे उत्तर १०-१२ कि० मी० दूर ऊँची पर्वतश्रेणीके थाच (जंगलके बीचका मैदान) में मूल महाव नामक एक स्थान है। स्थानीय मान्यता है कि यह आदिकवि वाल्मीकिजीकी गुफा है। निर्वासित गर्भवती सीता माता इसी मूल महाव-आश्रममें श्रीवाल्मीकि-जीके यहाँ रहीं। यहाँपर उन्हें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम लव था। वे उसे नहला-धुलाकर दूध पिलाकर पितृतुल्य ऋषि वाल्मीकिके पास सुलाकर समिधा तथा जल लाने समीपके वनमें चली जाती थीं। वाल्मीकि अपना पूजा-पाठ-जपादि करते हुए बच्चेकी देखभाल भी करते रहते थे। एक दिन सीताने वनमें घूमते हुए एक बंदरीको देखा, जो अपने शिशुको छातीसे लिपटाये हुए थी। वह बंदरी सीताकी ओर देखकर मानो यह बता रही थी कि तुझे अपना पुत्र उतना प्यारा नहीं, जितना कि मुझे है। तभी तुमने अपने पुत्रको घरमें रखा है। यह व्यंग्योक्ति सीताको बहुत खली। वे दूसरे दिन ध्यानस्थ वाल्मीकिके पाससे बच्चेको साथ लेकर समिधा आदि लाने जंगलमें गयीं। ध्यानमें रहनेसे ऋषि इस बातको जान न सके।

वहाँ जाकर सीताने उस बंदरीको अपना पुत्रवात्सल्य-भाव दिखाया। बादमें जब ऋषिने देखा तो बच्चा वहाँ नहीं था। वे चिन्तित हो उठे। तब उन्होंने सोचा कि जब सीता आयेगी तो बच्चेको न पाकर रोयेगी। मुझे इस बातका बड़ा पाप लगेगा। इसलिये उन्होंने कुशका एक दूसरा बच्चा बनाकर उसका प्राण-संचार कर बिस्तरपर सुला दिया। सीताने आकर जब दूसरे बच्चेको देखा तो गुरुजीसे पूछा—इसपर दोनोंने अपनी-अपनी यथार्थ बातें प्रकट कीं। तदनन्तर वाल्मीकिजीने कहा कि अब ये दोनों तेरे पुत्र हुए। पहलेका नाम लव था, कुशसे उत्पन्न होनेके कारण दूसरेका नाम कुश पड़ा।

इस प्रकार मध्योत्तराखण्डस्थ पर्वतीय निरमण्ड, कुल्लु आदि क्षेत्रोंमें भगवान् रामसे सम्बद्ध अनेकों अद्भुत कथाएँ दन्तकथाके रूपमें प्रचलित हैं। यहाँका प्रत्येक स्थान भगवान् रामकी किसी-न-किसी कथासे जुड़ा है और यहाँके निवासी पवित्र-तीर्थस्थलके रूपमें इन स्थानोंके प्रति पवित्र भक्ति—श्रद्धाका भाव रखते हैं।
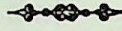
तमिल 'कम्बरामायण' के कुछ विशिष्ट वर्णन

(आचार्य पं० श्रीआद्याचरणजी झा)

(१) चारों गोपुरसहित और चारों ओर जलस्रोतोंसे घिरी अयोध्यानगरी उपनिषद्सहित चारों वेदके समान है अर्थात् चारों गोपुर चारों वेद हैं तथा जलस्रोत उपनिषद्।

(२) दशरथके तीन पत्नियोंके अतिरिक्त साठ हजार (६०,०००) पत्नियाँ थीं, जो दशरथके संस्कारके समय चितामें प्रवेश कर गयीं।

(३) मरण-समयमें दशरथने वसिष्ठसे कहा कि 'मैं कैकेयीको अपने पत्नीत्वसे तथा भरतको पुत्रत्वसे वञ्चित करता हूँ। भरत मेरा श्राद्ध नहीं करेंगे।' ऐसा ही हुआ।

(४) गङ्गा पार होनेपर निषादराज 'गुह' को अपना पाँचवाँ अनुज—लक्ष्मणके अनुज, भरतके अनुजके रूपमें तथा सीताको निषादराजकी भ्रातृजायाके रूपमें स्वीकार करनेकी घोषणा अभूतपूर्व है।

(५) 'चित्रकूट'का वर्णन सभी उपलब्ध रामकाव्योंसे विशिष्ट, उत्कृष्ट तथा विशद है।

(६) पञ्चवटीसे रावणने सीताकी पर्णशालासहित पृथ्वीको ही उखाड़कर पुष्पक-विमानपर रख लिया और उसे लंका ले गया। यह एक अभूतपूर्व कथा है। 'रावणने कभी सीताका स्पर्श नहीं किया'—यह भी उदात्त घटना है।

(७) जटायुका अपने हाथोंसे रामने संस्कार आदि किया। यह भी नूतन घटना वर्णित है।

(८) लक्ष्मणकी मूर्च्छाके बाद संजीवनी लानेका सर्वथा अभूतपूर्व—अज्ञातपूर्व रूपमें वर्णन कर कविने रामकाव्य-कथामें एक चमत्कारजनक अध्याय जोड़ दिया है। संजीवनीका पता केवल जाम्बवान्को ही था। उन्होंने ही विचित्र मार्गका वर्णन किया।

(९) रावणके प्राणवियोगसे पहले ही 'मन्दोदरी' रावणकी छातीपर रोती हुई मर गयी। अर्थात् मन्दोदरी विधवा नहीं हुई। यह भी कम्बरामायणकी सर्वथा नूतन कथा है।

(१०) लंकासे अयोध्या-प्रस्थानके समय वहाँ स्वर्गसे दशरथके आनेपर अनेक वार्तालापके साथ दशरथने रामको दो वरदान दिये। रामने पहला वरदान यह माँगा कि माता कैकेयीको वे पत्नीके रूपमें स्वीकार कर लें तथा दूसरा यह कि भरतको पुत्रत्व लौटा दें। बड़ी कठिनतासे अन्ततः दशरथने दोनों बातें स्वीकार कर लीं।

(११) सीताकी अग्निपरीक्षाका वर्णन प्रायः सभी रामायणकारोंने किया है। किंतु कम्बन्ने जिस रूपमें अयोध्या-प्रस्थानसे पूर्व सीताकी अग्निपरीक्षाका वर्णन किया है वह विचित्र, विस्मयकारी एवं कारुणिक है।

(१२) वैसे तो कम्बन्ने सर्वत्र अपने अद्भुत काव्य-कला-कौशलका अभूतपूर्व परिचय दिया है, उनमें भी 'कामिनी-केश-पाश'के वर्णनने, संस्कृत राम-काव्यसे विभिन्न काव्य एवं भारतीय वाङ्मयके रामकाव्योंमें वर्णित केशपाश-वर्णनों—नारी-शृंगार-वर्णनोंको बहुत पीछे छोड़ दिया है।

(१३) यहाँ प्रत्येक काण्डानुसार—उन-उन पटलोंकी संक्षिप्त सूची दी जा रही है, जहाँ केशपाशका वर्णन है—

[क] बालकाण्ड—(१) देशपटल, (२) कार्मुक-पटल, (३) प्रस्थान-पटल, (४) वीथी-भ्रमण-पटल, (५) शृंगार-सज्जा-पटल।

[ख] अयोध्याकाण्ड—(१) मन्त्रणा-पटल, (२) गङ्गा-पटल।

[ग] अरण्यकाण्ड—(१) शूर्पणखा-पटल, (२) शूर्पणखा-योजना-पटल।

[घ] किष्किन्धाकाण्ड—(१) वर्षा-पटल, (२) किष्किन्धा-पटल, (३) अन्वेषण-पटल।

[ङ] सुन्दरकाण्ड—(१) सीतादर्शन-पटल, (२) उद्यानविध्वंस-पटल।

[च] युद्धकाण्ड—(१) विनोदोत्सव-पटल, (२) पत्यागमन-पटल। कम्बरामायणमें उत्तरकाण्ड नहीं है।

इस तरह कविसम्राट् कम्बन्ने यत्र-तत्र-सर्वत्र नूतन शैलीमें अद्भुत घटनाचक्रसे इस रामायणको अद्वितीय बना दिया है।

कन्नड़ तोरवे-रामायण

कन्नड़ भाषामें महाकवि बत्तलेश्वरने एक अत्यन्त लोकप्रिय रामायणकी रचना की है, जो 'तोरवे-रामायण' कहलाती है। बत्तलेश्वर कन्नड़ प्रदेशके तोरवे ग्रामके रहनेवाले थे, इसलिये उनके द्वारा रचित रामायणको 'तोरवे-रामायण' कहा जाता है। रामायणकी रचना करनेके कारण बत्तलेश्वरको 'कुमार वाल्मीकि' कहा जाता है। कुमार वाल्मीकिका नाम नरहरि भी बताया जाता है। कन्नड़ भाषामें रामकथाकी विस्तृत परम्परा है। हिंदू-परम्परा तथा जैनपरम्पराके अनुसार इन ग्रन्थोंकी संख्या लगभग ३० है, किंतु इनमें 'तोरवे-रामायण' अत्यन्त लोकप्रिय और जनादृत है। यद्यपि कुमार वाल्मीकि-ने अध्यात्मरामायण और आनन्दरामायणके अनेक प्रसंगोंसे इस रचनामें प्रेरणा ली है तथापि उनकी रचनाका मूल आधार वाल्मीकिरामायण ही प्रतीत होता है। इस काव्यमें सर्वत्र रामकी महानताका रम्य वर्णन है। रामका उदात्त चरित्र मानव-जीवनको प्रेरणा प्रदान करनेवाला है। 'भामिनी-षट्पदी' कन्नड़का एक प्रसिद्ध छन्द है। तोरवे-रामायणमें इसी छन्दका प्रयोग हुआ है। यह रचना श्रीराघवेन्द्रके प्रति सरस भक्तिसे समृद्ध है। तोरवे-रामायण शिव-पार्वती-कथोपकथनके रूपमें उपनिबद्ध है। भगवती पार्वतीके द्वारा प्रश्न करनेपर भगवान् शंकर रामकथाका वर्णन उन्हें सुनाते हैं। इसमें लगभग पाँच हजार पद्य हैं। भगवान् शंकरद्वारा प्रतिपादित राम-नामकी महिमाका इसमें विस्तारसे वर्णन हुआ है। अपनी अद्भुत विशेषताओंके कारण तोरवे-रामायणका दक्षिण-प्रदेशमें घर-घर प्रचार है। महाकविका समय ई० १४००—१६०० के मध्य है। तोरवे-रामायणके श्रीराम नररूप नारायण हैं। मन्दोदरी, रावण प्रभृति पात्र भी उनके अवतार-रहस्यको जानते हैं।

श्रीरामके पवित्र उदात्त चरित्रका 'तोरवे-रामायण'में बड़ा ही संयत और मर्यादित वर्णन किया गया है। श्रीभरतके राज्याभिषेक और भगवान् रामके वनगमनके समाचारसे श्रीलक्ष्मणजी क्रोधसे क्षुब्ध हो उठे। श्रीरामने उनको समझाया। श्रीरामने श्रीलक्ष्मणके सामने राज्यपदकी मार्मिक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए कहा—

शोधिसै लेसागि पितृवच—
नोदयवनेले तम्म निन्द महा-
दुराग्रह तारदिरदपयशव नमगेंद ॥
कालवावुदु नोडु नेरेदिहं
मेलणवरारीक्षिसनृतके
सोललहुदे तम्म तदेय मातिनतिगळेदु ॥
मेले काबैश्वर्यवदु ता
कीळुमाडदे नम्मनी जन
जाल नगुवुदु पितननुज्ञेये राज्यपदवेंद ॥

'भैया! तुम्हीं अच्छी तरह सोचो कि पिताजीने किस परिस्थितिसे प्रेरित होकर ये वचन कहे हैं। तुम्हारा यह महाकोप हमारे अपयशका कारण हुए बिना नहीं रहेगा। समय और परिस्थिति तो देखो! हम अनृतके सामने सिर झुकायें, हार मान लें? पिताजीके वचनोंको ठुकराकर ऊर्ध्वके शाश्वत ऐश्वर्य (यश) को नीचा कर दें? हमें देखकर जनसमूह

हँसेगा। पिताजीकी आज्ञा ही सच्चा राज्यपद है।'

श्रीविभीषणद्वारा भगवान् रामकी शरणागतिका वरण करनेपर श्रीहनुमान्‌जीने उनके विषयमें सद्विचार व्यक्त किया। श्रीरामने प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीके सामने राजाके कर्तव्यका जो वर्णन किया है, उसमें वेदमर्यादित राज्यधर्मका बड़ा सुन्दर आदर्श संनिहित है—

धुरदोळिदिरादवरनिरि् वुदु
शरणुहोक्कर सलहुवुदु पति
करिसुवुदु धर्मवन्धर्मवनळिवुदवनियळि
अरसुगळिगिदु नयविनितु गो-
चरिसदिरे हगरणद नाटक-
दरसरेनिसरे जगदलेंदनुनगुत रघुनाथ ॥

'युद्धमें सामना करनेवालेको मारना, शरणागतजनोंकी रक्षा करना, अधर्मको दूरकर पृथ्वीमें धर्मकी प्रतिष्ठा करना राजाओंका कर्तव्य है। ऐसा न करके व्यर्थ बड़बड़ानेवाले जगत्‌में क्या राजा कहलाने योग्य हैं ? रामने ये वचन हँसते हुए कहे।'

महाकवि कुमार वाल्मीकिने 'तोरवे-रामायण'में भगवान् रामके परम पवित्र यशका गानकर कन्नड़-साहित्यकी बड़ी अमूल्य सेवा की। उनकी रामभक्ति धन्य थी।

असमिया रामसाहित्य

असमिया भाषाके मुख्य रामायण-लेखक हैं श्रीमाधवकन्दली। इनके अतिरिक्त भी अनेक कवियोंने रामकथाका गान कर अपनी वाणीको पवित्र बनाया है। असममें वैष्णवधर्मका प्रचार है। वैष्णवधर्मके आदिगुरु शंकरदेव कहे गये हैं। इस प्रदेशमें यद्यपि कृष्णकी रासलीलाका अधिक प्रचार है तथापि रामभक्तिका भी प्रचुर साहित्य मिलता है, यहाँ असमिया रामपरक साहित्यकी एक संक्षिप्त सूची दी जा रही है—

(१) माधवकन्दलीकृत रामायण (१४ वीं शतीसे १६ वीं शती)।
(२) अनन्तकन्दलीकृत रामायण (१६ वीं शती)।
(३) दुर्गावरकृत गीति-रामायण (१६ वीं शती)। [अरण्यकाण्डसे लेकर लंकाकाण्डतक लोक-गीतोंकी शैलीमें]।
(४) अनन्त ठाकुर आताकी कीर्तनिया रामायण (१७ वीं शती)।
(५) रघुनाथ महन्तकी गद्य-कथा रामायण ,,
(६) ,, अद्भुतरामायण ,,
(७) रघुनाथ महन्तकी शत्रुंजय रामायण (१७ वीं शती)।
(८) गंगाराम रायकृत सीतावनवास [१७ वीं शतीके परवर्तीकालका साहित्य।]
(९) भवदेवका अश्वमेधयज्ञ।
(१०) असमिया कृत्तिवास पण्डितकृत 'अङ्गद-रावण'।
(११) धनंजयका गणक-चरित्र [इसमें हनुमान् गणकवेष धारणकर मन्दोदरीके पास जाते हैं।]
(१२) कीर्तनघोषा और नामघोषाके पदोंमें कुछ राम-चरित्र-परक।
(१३) विवाह-गीत, [लोक-गीतोंमें रामकथा।]

इनके अतिरिक्त रामचरितके आधारपर लिखे हुए सोलहवीं शतीके नाटक हैं—

(१) रामविजय-नाटक (सीता-स्वयंवर) श्रीशंकरदेवकृत।
(२) रामभावना।
(३) सीता-पाताल-प्रवेश (अनन्तकन्दली)।
(४) महिरावण-वध (")

सो सुकृती सुचिमंत सुसंत, सुजान सुसीलसिरोमनि स्वै।
सुर-तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं तातनु छ्वै ॥
गुनगेहु सनेहको भाजनु सो सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभायँ सदा छल छाड़ि सबै, 'तुलसी' जो रहै रघुबीरको ह्वै ॥

आदिवासियोंमें प्रचलित रामकथाएँ

(सुश्री दुर्गेशनन्दिनी राघव)

भारतमें रहनेवाले सभी हिन्दुओंकी भाँति यहाँके आदिवासी-समाजमें भी स्थानीय मूल्यों एवं मान्यताओंके साथ रामकथा प्रचलित है। इसमें आचार-विचार और परिवेशकी भिन्नताके कारण कुछ मामूली परिवर्तन अवश्य है, किंतु रामकथाकी मूल कहानी वही है। सामान्यतः आदिवासियोंके यहाँ लिखाई-पढ़ाईकी समुचित व्यवस्था न होनेके कारण उनका कोई विधिवत् साहित्य सुरक्षित नहीं है, इसलिये उनमें प्रचलित कोई लिखित रामकथा ढूँढ़ना एक प्रकारसे व्यर्थ-सा ही है, फिर भी उनके यहाँ मौखिक रूपसे उपलब्ध सामग्रीको ही साहित्य मानकर चला जा सकता है।

बंगाल और बिहारमें फैले संथाल-समाजमें प्रचलित कथाके अनुसार, गुरुके कहे-अनुसार आमका फल खाकर राजा दशरथकी रानियाँ गर्भवती हुई थीं। कैकेयीसे भरत और शत्रुघ्नका जन्म हुआ। कौसल्यासे रामका तथा सुमित्रासे लक्ष्मणका जन्म हुआ। आगे रावण-वधतककी कथा सामान्यतः वाल्मीकीय रामायणवाली ही है। रावण-वधके बाद रामचन्द्रजीने संथालोंके यहाँ रहकर एक शिवजीका मन्दिर बनवाया। उस मन्दिरमें श्रीराम सीताजीके साथ नित्यप्रति पूजा-पाठ करने आया करते थे। इनकी मान्यता है कि बगुलेने सीताजीका पता रामचन्द्रजीको बतानेमें सहायता नहीं की थी, इसलिये रामजीने उसकी गर्दन पकड़कर खींच दी थी जिसके कारण तबसे आजतक उसकी गर्दन लम्बी चली आ रही है। बेरीके पेड़ने सीताजीकी साड़ीके कुछ टुकड़े दिये थे, इस कारणसे उसे अमरताका वरदान प्रभुने दिया। गिलहरी सीताका मार्ग बताती है, जिससे प्रसन्न होकर श्रीरामने उसकी पीठपर अपनी अँगुलियोंसे तीन रेखाएँ खींचकर अपनी अमर-निशानी प्रदान की।

मुंडा जातिमें भी यही कहानियाँ प्रचलित हैं। भीलोंके यहाँ भीलनी शबरीवाली कथा थोड़े विस्तृत रूपमें प्रचलित है। उसके अनुसार रावणके वधके उपरान्त भी भगवान् राम सीताजीके साथ शबरीजीके यहाँ पधारे थे।

आसामकी बोडो जनजातिमें सीता-त्याग-वृत्तान्तके अन्तर्गत धोबीवाला प्रसंग सामान्य प्रचलित कथासे विकृत अवस्थावाला मिलता है।

छोटा नागपुर-क्षेत्रमें पायी जानेवाली असुर-जातिमें प्रचलित रामकथामें भी श्रीरामद्वारा बगुलेको दण्डित किया जानेवाला कथानक मिलता है। इनमें मान्यता है कि वीरवर हनुमान्जीने अपने ही बाणसे समुद्र पार किया था।

नर्मदा नदीके कछारमें आबाद प्रधान नामक जातिके यहाँ मान्यता है कि सीताजीने लक्ष्मणजीके संयमकी परीक्षा ली थी।

आसाम-बंगाल और उड़ीसामें बिखरी विरहोर जातिमें पायी जानेवाली रामकथामें राम-जन्मसे लेकर रावणके वधतकका वृत्तान्त पाया जाता है। ये लोग मानते हैं कि राजा दशरथकी तीन नहीं बल्कि सात रानियाँ थीं। ऋषि विश्वामित्रके साथ दशरथजीने भरत और शत्रुघ्नको भेजा था, इस बातको ऋषि नहीं जान सके थे। सीताजीने घरके आँगनको लीपते समय शिवधनुषको उठाकर एक ओर रख दिया था, तभी राजा जनकने शिवजीके धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ानेकी शर्त स्वयंवरमें रखी थी। लक्ष्मणजीने रामचन्द्रजीकी सहायताके लिये जाते समय सीताजीको राईके कुछ दाने दिये थे, जिनसे सीताजीने एक बार तो कपटी रावणको करीब-करीब जलाकर भस्म ही कर दिया था। हनुमान्जी तोतेका रूप धरकर लंकामें गये थे। श्रीराम और लक्ष्मणजीने हनुमान्जीकी पूँछपर चढ़कर सागर पार किया था। लक्ष्मणजीने रावणका वध किया था।

मध्य प्रदेशकी बैगा-भूमिया जातिकी मान्यताके अनुसार माता सीताजीकी छः अँगुलियाँ थीं। सीताजीने छठी अँगुलीको काटकर धरतीमें रोप दिया, जिससे बाँस उत्पन्न हुआ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि थोड़े-बहुत परिवर्तनोंके साथ रामायणकी मूलकथा हमारे आदिवासी भाइयोंमें भी पायी जाती है और वे लोग स्वयंको भगवान् रामके वंशज मानकर गौरवान्वित होते हैं। उनके राम उनके साथ वन-उपत्यकाओंमें रहते हैं, कन्द-मूल उगाते हैं, दुष्ट पशुओंका संहार करते हैं, उनके सुख-दुःखमें उनका साथ देते हैं तथा उनकी रक्षा करते हैं।

जैन-परम्परामें रामकथा

(डॉ॰ श्रीकृष्णपालजी त्रिपाठी, एम्॰ ए॰, पी-एच्॰ डी॰)

[जैनपरम्परामें जो रामकथा उपलब्ध है, वह वैदिक सनातन परम्पराकी रामकथासे सर्वथा भिन्न है और भारतीय संस्कृतिकी आर्ष मर्यादासे कुछ भी मेल नहीं खाती, तथापि रामकथाकी व्यापकताको दृष्टिगत रखते हुए यहाँ जैन साहित्यकी रामकथाके कुछ उद्धरण भी प्रस्तुत किये गये हैं।—सं॰]

भारतीय संस्कृतिमें रामकथाका अतिशय माहात्म्य है। वेदादि समस्त सद्ग्रन्थोंमें इसकी व्यापकता विद्यमान है। जैन-साहित्यकारोंने भी इसकी अनन्त माधुरी एवं महिमासे प्रभावित होकर अनेक ग्रन्थोंकी रचना की। इस दृष्टिसे 'पउमचरियं'के रचयिता आचार्य विमलसूरि एवं 'पद्मचरितम्'-के प्रणेता आचार्य रविषेणका नाम विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इन कवियोंने जैन-जगत्‌में भी रामकथाके प्रचार-प्रसारमें महनीय योगदान दिया है। प्राकृत भाषाका 'पउमचरियं' और संस्कृत भाषाका 'पद्मचरितम्' ये दो ग्रन्थ जैन-रामकथा-सम्बन्धी आद्य ग्रन्थ माने जाते हैं। विद्वानोंका विचार है कि 'पद्मचरितम्' की अपेक्षा 'पउमचरियं' प्राचीन रचना है। वस्तुतः दोनों ग्रन्थोंका अवलोकन करनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दोनोंका कथानक सर्वथा एक है। इन दोनों ग्रन्थोंके बाद भी अनेक साहित्यकारोंने जैन-रामकथा-सम्बन्धी ग्रन्थोंका प्रणयन किया, परंतु प्रस्तुत लेखमें उपर्युक्त ग्रन्थद्वयका ही आश्रय ग्रहण किया गया है।

जैन-परम्परामें तिरसठ 'शलाका-पुरुष' माने गये हैं, जिनमें २४ तीर्थङ्कर, १२ चक्रवर्ती, ९ बलदेव, ९ वासुदेव और ९ प्रतिवासुदेवोंकी गणना होती है। श्रीराम अष्टम बलदेव, लक्ष्मण अष्टम वासुदेव (नारायण) और रावण आठवें प्रति-वासुदेव (प्रतिनारायण) के रूपमें मान्य हैं[१]। हनुमान्, सुग्रीव आदि विद्याधर माने गये हैं। किंतु उनके छत्र आदिमें वानरका चिह्न होनेसे ये लोग वानर कहलाने लगे[२]। इसी प्रकार राक्षसोंके विषयमें भी कहा गया है कि विद्याधर-वंशमें मेघवाहन नामक शासक हुआ जो लंकामें राज्य कर रहा था। उसके महाराक्षस नामक एक पुत्र हुआ। इसी महाराक्षस नामक विद्याधरके वंशज ही राक्षस कहलाये[३]। जैन-परम्परामें रामका अपरनाम 'पद्म' विशेष प्रसिद्ध है। इसलिये 'पउमचरियं' और 'पद्मचरितम्'का अभिप्राय रामचरित या रामायण है। इन ग्रन्थोंपर आधारित रामकथाका संक्षिप्त कथानक इस प्रकार है—

राजा दशरथ साकेतपुरीके शासक थे। उनके राम (पद्म), लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न नामक चार पुत्र थे। रामकी माताका नाम अपराजिता[४] और लक्ष्मणकी माताका नाम सुमित्रा था[५]। भरत और शत्रुघ्नका जन्म कैकेयीके गर्भसे हुआ था[६]। ये चारों बालक अत्यन्त प्रतिभावान् और गुणग्राही थे। इसलिये शीघ्र ही अनेक विद्याओंमें प्रवीण हो गये।

मिथिलानरेश जनक दशरथके मित्र थे। उनकी पत्नी विदेहाने जब एक ही गर्भसे पुत्री सीता और पुत्र भामण्डलको जन्म दिया तो एक देवने भामण्डलका अपहरण कर लिया। उसने उस शिशुको एक उद्यानमें छोड़ दिया, जिसे रथनूपुरनरेश चन्द्रगति विद्याधर और उसकी पत्नी अंशुमतीने पाल-पोषकर बड़ा किया। एक बार म्लेच्छराज आयरंगने जनकके ऊपर आक्रमण कर दिया। उन्होंने राजा दशरथसे सहायता माँगी तो रामने म्लेच्छोंको पराजित कर भगा दिया। अतः जनकने रामके अद्वितीय पौरुषसे प्रभावित होकर अपनी पुत्री सीता उन्हें समर्पित कर दी।

एक बार नारदने सीताको देखनेके लिये उनके भवनमें प्रवेश करना चाहा; परंतु राजपुरुषोंने उन्हें भगा दिया। अतः

१-पउमचरियं ५।१४५—१५६, २-पउमचरियं ६।८९, पद्मचरितम् ६।२१४, ३-पउमचरियं, ५।२५१-२५२।

४-अपराजिता अरुहस्थनरेश सुकोशल एवं उसकी पत्नी अमृतप्रभाकी पुत्री थी। (पउमचरियं २२।१०६)।

५-कमलसंकुलपुरके राजा सुबन्धतिलक और महारानी मित्राकी पुत्री कैकेयी ही दशरथसे विवाह होनेके बाद सुमित्रा नामसे प्रसिद्ध हुई। (पउमचरियं ५२।१०७-१०८)

६-कैकेयी कौतुकमंगलके राजा शुभगति और उसकी पत्नी पृथ्वीश्रीकी पुत्री थी। (पउमचरियं २४।२-३)

वे रुष्ट होकर रथनूपुर पहुँचे और एक उद्यानकी शिलापर सीताका चित्र बना दिया। उसी समय वहाँ भामण्डल आ गया और अपरिचित होनेके कारण चित्राङ्कित सीतापर आसक्त हो गया। उसकी आसक्तिको जानकर चन्द्रगतिने एक कुचक्रद्वारा जनकका अपहरण करवा लिया। एक जिनालयमें दोनोंकी भेंट हुई तो चन्द्रगतिने जनकसे कहा कि तुम अपनी पुत्री सीताको मेरे पुत्र भामण्डलके लिये दे दो। जनकने कहा कि मैं उसे रामको सौंप चुका हूँ। इसपर चन्द्रगतिने कहा कि यदि देवोंद्वारा रक्षित इस वज्रावर्त धनुषको राम अपने वशमें कर लें, तब वे सीताको ले लें अन्यथा उसे मेरा पुत्र भामण्डल लेगा। वज्रावर्त धनुष मिथिला लाया गया और सभी राजाओंको सीता-स्वयंवरका आमन्त्रण दिया गया। स्वयंवरमण्डपमें रामसहित अनेक मानव एवं विद्याधर राजा उपस्थित हुए। कुछ राजा धनुषकी ओर बढ़े, परंतु धनुषरक्षक सर्परूप देवोंके भयवश वापस लौट गये। अन्तमें जब श्रीराम धनुषके पास पहुँचे तब सर्पगण अपने पूर्वरूपमें स्थित होकर सौम्य हो गये। उन्होंने बड़ी आसानीसे धनुषको उठाकर उसपर डोरी चढ़ा दी। इस प्रकार राम-सीताका विवाह हो गया। कुछ दिनों बाद जनकके भाई कनककी पुत्री सुभद्राने स्वयंवरमें भरतका वरण कर लिया। सीता-विवाहकी सूचना पाकर भामण्डलने साकेतकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें विदर्भ नगरको देखनेसे उसे पूर्वजन्मका स्मरण हो आया, जिससे वह मूर्छित हो गया। सुभटोंने उसे रथनूपुर पहुँचाया। होशमें आनेपर उसके पिताने जब मूर्छाका कारण पूछा तब उसने बताया कि मैं अनुचित कार्य कर रहा था, क्योंकि सीता तो मेरी एकोदरा बहन है। उसके बाद भामण्डलने साकेतमें सीता-रामसे भेंट की और उन्हें सम्पूर्ण वृत्तान्तसे अवगत कराया।

वृद्धावस्था आनेपर दशरथने सर्वभूतशरण मुनिके उपदेशसे प्रभावित होकर अपने सामन्तोंके समक्ष रामको राज्य देकर स्वयं प्रव्रज्या ग्रहण करनेकी इच्छा व्यक्त की। बादमें प्रतिबुद्ध भरतने भी दीक्षा लेनेकी इच्छा प्रकट की। इसे सुनकर कैकेयी अत्यन्त दुःखी हुई। उसने सोचा कि मेरे पति और पुत्र दोनों ही दीक्षाके अभिलाषी हैं। इसलिये ऐसा उपाय करना चाहिये, जिससे पति न सही, पुत्र ही रुक जाय। उसने राजासे अपने पुराने वरदानके रूपमें भरतके लिये अयोध्याका राज्य माँगा। राजाने स्वीकार कर लिया और राम-लक्ष्मणको बुलाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना दिया। जब यह समाचार भरतको मिला, तब उन्होंने राजगद्दीके स्थानपर दीक्षा लेना श्रेयस्कर माना। परंतु रामने उन्हें समझाया कि मैं जंगलमें एकान्तवास करूँगा और तुम चिरकालतक शासन करो। इसके बाद राम माता-पिता आदि गुरुजनोंको प्रणामकर जंगलकी ओर चल दिये। उनके पीछे सीता, लक्ष्मण और अनेक सामन्त भी चल पड़े। सभी लोग एक जिनालयमें ठहरे और रात्रिमें जब सभी सो गये, तब सीता-लक्ष्मणसहित रामने गुप्तद्वारसे निकलकर जंगलकी राह ले ली।

पुत्रवियोगमें राजा दशरथ अत्यन्त विरक्त हो गये और सर्वभूतशरणसे दीक्षा लेकर एकाकी जीवन व्यतीत करने लगे। अपराजिता आदिकी दयनीय दशाको देखकर एक दिन कैकेयीने भरतसे कहा कि मैंने तुम्हें राज्य तो दिला दिया, किंतु राम-लक्ष्मणके बिना मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता। इसलिये तुम उन्हें ढूँढ़कर वापस लाओ। इतना सुनते ही भरतने रामका पता लगाना आरम्भ कर दिया। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक वनमें रामसे भेंट हुई। इसी समय कैकेयी भी पहुँच गयी, उसने घोर पश्चात्ताप किया और रामसे वापस लौटनेका आग्रह किया। परंतु रामने उन्हें समझा-बुझाकर उसी वनमें भरतका राज्याभिषेक कर साकेत वापस कर दिया और स्वयं दक्षिण दिशाकी ओर चल पड़े।

कुछ दिनों बाद तीनों (राम, लक्ष्मण और सीता) चित्रकूट पर्वतपर पहुँचे। तत्पश्चात् जिनेश्वरभक्त वज्रकर्णसे मैत्री कर उसके शत्रु सिंहोदरको पराजित किया, इसके बाद वे कूपभद्र पहुँचे। वहाँकी राजकुमारी कल्याणमालिनीके अनुरोधपर उसके पिता वालिखिल्यको म्लेच्छोंसे मुक्त कराया। तत्पश्चात् ताप्ती नदीको पारकर वर्षा-ऋतुमें एक वटवृक्षके नीचे रुके। वृक्षके अधिपति देवने अपने स्वामी पूयणसे बताया कि मैं अपने घरसे निष्कासित कर दिया गया हूँ। पूयणने जब अवधिज्ञानसे जाना कि वे साक्षात् हलधर और नारायण हैं, तब वह भी उनके दर्शनार्थ आया। उसने सोये हुए राम आदिके स्थानपर एक भव्य नगरी बसा दी। राम जब जगे तब अपनेको एक भव्य महलमें पाया। बादमें उस महानगरीका नाम रामपुरी हो गया।

वर्षा-ऋतुके बाद जब राम चलने लगे तब उस वृक्षाधिपतिने रामको स्वयम्प्रभ नामक हार, लक्ष्मणको मणिकुण्डल और सीताको चूडामणि प्रदान कर बिदा किया। उसके बाद वे विजयनगर पहुँचे। एक दिन राम-लक्ष्मणके समक्ष राजा महीधरसे एक दूतने आकर बताया कि मेरे स्वामी अतिवीर्यका साकेतनरेश भरतसे विरोध हो गया है, इसलिये उनकी सहायताके लिये आप शीघ्र चलें। लक्ष्मणके पूछनेपर दूतने बताया कि अतिवीर्यने भरतसे कहा कि 'तुम मेरी दासता स्वीकार करो, अथवा देश त्याग कर चले जाओ।' इसे सुनकर वे लोग अतिवीर्यके नगरके समीप पहुँचे और भवनपालीदेवी-के सहयोगसे राम-लक्ष्मणने नर्तकीका वेष बनाकर अतिवीर्यको बंदी बना लिया। बादमें उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। कुछ दिनोंतक विजयपुरमें रहनेके बाद वे लोग राजा शत्रुदमनके नगर क्षेमाञ्जलिपुर पहुँचे। तत्पश्चात् 'वंशस्थल'नगरमें देशभूषण, कुलभूषण मुनियोंका उपसर्ग निवारण किया। वहाँके राजा सुरप्रभने रामकी आज्ञाके अनुसार वंशपर्वतपर अनेक जिनमन्दिरोंका निर्माण कराया, जिससे वह पर्वत रामगिरिके नामसे विख्यात हो गया।

रामगिरिके बाद वे दण्डकारण्य गये, जहाँ जटायुसे मैत्री हुई। वहींपर खरदूषण तथा चन्द्रनखाका पुत्र शम्बूक सूर्यहास खड्गकी प्राप्तिहेतु साधना करता था। बारह वर्षकी कठोर तपस्याके बाद वह खड्ग प्रकट हुआ। संयोगवश उसी समय लक्ष्मण पहुँच गये। उन्होंने खड्गको उठाकर बाँस काटना आरम्भ कर दिया। उसीमें शम्बूकका सिर भी कट गया। चन्द्रनखा प्रतिदिनकी भाँति उस दिन भी अपने पुत्रसे मिलने आयी, तो उसे मृत देखकर व्याकुल हो गयी। वह विलाप करती हुई रामके पास पहुँची और दोनों कुमारोंके अतुल सौन्दर्यपर मुग्ध हो गयी। परंतु दोनों कुमारोंद्वारा विवाह-प्रस्ताव ठुकरानेपर वह क्रुद्ध होकर अपने पति खरदूषण और भाई रावणके पास गयी और उन्हें शम्बूक-वधकी सूचना दी। खरदूषणने चौदह सहस्र सैनिकोंके साथ रामपर चढ़ाई की। लक्ष्मणने युद्धमें जाते समय रामसे कहा कि आप सीताकी रक्षा करें, जब मैं संकटमें पड़ूँगा तब सिंहनाद करूँगा और आप आ जाइयेगा। लक्ष्मण और खरदूषणमें भयानक युद्ध आरम्भ हो गया। उधर रावण भी पुष्पकविमानसे आ गया, किंतु सीताके सौन्दर्यपर आसक्त हो गया। उसने अवलोकना-विद्यासे सम्पूर्ण घटनाको जानकर सिंहनाद किया। इस सिंहनादको लक्ष्मणकी आवाज समझकर राम शीघ्र ही चल पड़े। इसी समय अवसर पाकर रावणने सीताका अपहरण कर लिया। जटायुने छुड़ानेका प्रयास किया, परंतु घायल होकर गिर पड़ा। लक्ष्मणको सकुशल देखकर राम लौट आये, किंतु सीताको आश्रममें न पाकर विलाप करने लगे। बादमें जटायुने सम्पूर्ण वृत्तसे अवगत कराया। रामने उसके कानमें नमस्कार-मन्त्र कहकर उसका उद्धार कर दिया। इधर खरदूषणका पुराना शत्रु विराधित भी लक्ष्मणकी सहायता-हेतु आ गया। लक्ष्मणने सूर्यहास खड्गसे खरदूषणका सिर काट लिया और विराधित-सहित रामके पास आये। इसके बाद सीताका पता लगानेके लिये वे लोग पाताललंका पहुँचे और चन्द्रनखाके द्वितीय पुत्र सुन्दकी हत्या करके उसीके महलमें रहने लगे। इधर रावण सीताको लेकर लंका पहुँचा और उन्हें देवरमण उद्यानमें ठहराकर स्वयं महलमें चला गया। मन्दोदरी और विभीषणने उसे बहुत समझाया, किंतु उसने उनकी एक नहीं मानी।

एक दिन सुग्रीव रामके पास पाताललंका पहुँचा। रामद्वारा कुशल-समाचार पूछनेपर जाम्बूनद मन्त्रीने बताया कि आदित्यरजाके दो पुत्र हैं—वालि और सुग्रीव। वालिने सुग्रीवको सत्ता सौंपकर प्रव्रज्या ग्रहण कर ली। इस समय एक विद्याधर सुग्रीवका रूप बनाकर सुताराके पास रहना चाहता है। इसलिये यह आपकी सहायता चाहता है। रामने कहा—'तुम सीताका पता लगाओ मैं तुम्हें अवश्य ही सहयोग दूँगा।' उसके बाद सभी लोग किष्किन्धा आये और रामने बड़ी आसानीसे कृत्रिम सुग्रीव (साहसगति विद्याधर) को मार डाला। उसके बाद सीताका पता लगानेके लिये सुग्रीवने अनेक दूत भेजे और स्वयं भी ढूँढ़ता हुआ कम्बूद्वीप पहुँचा। वहाँ रत्नकेशीने बताया कि सीताको रावण हर ले गया। दोनों रामके पास पहुँचे और सम्पूर्ण समाचारोंसे उन्हें अवगत कराया। इसी समय जाम्बूनदने बताया कि एक बार रावणने साधु अनन्तवीर्यसे अपनी मृत्युके बारेमें पूछा तो उन्होंने कहा कि 'जो कोटिशिलाको उठा लेगा वही तुम्हारा शत्रु होगा।' इसे सुनकर सभी लोग सिन्धुदेशमें कोटिशिलाके पास पहुँचे। लक्ष्मणने जिनेश्वर भगवान्का स्मरणकर शिलाको उठा लिया

और सभी लोग किष्किन्धा लौट आये।

सुग्रीव-पुत्र श्रीभूति दूत बनकर श्रीपुरनरेश हनुमान्‌के पास गया और उन्हें सारा वृत्तान्त कह सुनाया। शम्बूक और खरदूषणके वधको सुनकर अनंगकुसुमा अपने भाई और पिताके वियोगमें रोने लगी। दूसरी ओर सुग्रीवके उद्धारको सुनकर हनुमान्‌की पत्नी तथा सुग्रीवकी पुत्री कमला अत्यन्त प्रसन्न हुई। हनुमान् अपनी सेनाके साथ किष्किन्धा आये और सभीकी मन्त्रणाके अनुसार रामका संदेश लेकर विमानद्वारा सेनासहित लंकाकी ओर चल पड़े। मार्गमें उन्होंने अपने मातामह महेन्द्रसे अपनी माताके निर्वासनका बदला लेकर उसे रामके पास भेज दिया। उसके बाद लंकाके प्राकारके यन्त्रोंको नष्ट कर सर्पिणीके मुखमें प्रवेश किया। उसे भी मारकर वे बाहर निकल आये। तत्पश्चात् हनुमान्‌जीने प्राकारको ध्वस्त कर दुर्गरक्षक वज्रमुखकी हत्या की। उन्होंने लंकामें विभीषणसे मिलनेके बाद सीतासे भेंट की और उन्हें रामकी अँगूठी देकर उनसे उत्तरीय प्राप्त किया। बादमें सीतासे चूडामणि लेकर वे किष्किन्धाकी ओर चल पड़े। मार्गमें इन्द्रजित्से भयानक युद्ध हुआ। इन्द्रजित्‌ने उन्हें नागपाशमें बाँधकर रावणके सामने प्रस्तुत किया। रावणने जब उनका अपमान करना चाहा तब वे नागपाशको तोड़कर रामकी ओर चल दिये।

हनुमान्‌ने किष्किन्धा पहुँचकर रामसे सीताकी दयनीय स्थितिका निरूपण किया। बादमें मार्गशीर्ष मासके कृष्णपक्षकी पञ्चमी तिथिको शुभ मुहूर्तमें रामदलने लंकाकी ओर प्रस्थान किया। मार्गमें नलने वेलन्धरनरेश समुद्रको पराजित किया, आगे हंसद्वीपके राजा हंसरथको हराकर लंकाके समीप पहुँचे।

इधर विभीषणने रावणको समझाया, परंतु उसने क्रुद्ध होकर विभीषणको लंकासे निष्कासित कर दिया। इसलिये वह रामकी शरणमें आ गया। उसी समय सीताका भाई भामण्डल भी ससैन्य आ गया। सभीने लंकापर आक्रमण कर दिया। दोनों पक्षोंमें घमासान युद्ध छिड़ गया। नलने हस्तको, नीलने प्रहस्तको मार डाला। कुम्भकर्णने दर्शनावरणीया विद्याके द्वारा सभी वानरोंको निश्चेष्ट कर दिया; परंतु सुग्रीवने प्रतिबोधिनी विद्यासे सभीकी रक्षा की। इसके बाद युद्धभूमिमें इन्द्रजित् आया और उसने भामण्डल और सुग्रीवको तथा भानुकर्णने हनुमान्‌को नागपाशमें बाँध लिया। हनुमान् तो अंगदकी सहायतासे मुक्त हो गये, परंतु भामण्डल और सुग्रीवको इन्द्रजित्‌ने रावणके सामने प्रस्तुत किया। लक्ष्मणने उपसर्गके समय प्राप्त वरका स्मरण किया तो महालोचन प्रकट हुआ। उसने रामको सिंहवाहिनीविद्या और लक्ष्मणको परिजनसहित गरुड़ा विद्या प्रदान की। राम-लक्ष्मणने अपनी-अपनी विद्याओंके प्रभावसे सुग्रीव और भामण्डलको मुक्त कराया।

इसके बाद रावण स्वयं रणभूमिमें आया। लक्ष्मणसे उसका भयानक युद्ध आरम्भ हुआ। दोनों पक्षोंके अनेक योद्धा रणभूमिमें सो गये। रावणने लक्ष्मणपर दिव्य शक्तिका प्रहार किया। लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। अतः राम फूट-फूटकर विलाप करने लगे। उसी समय एक विद्याधरने बताया कि सूर्योदयके पूर्व ही भरतकी ममेरी बहन विशल्याके स्नानसे बचे हुए जलसे लक्ष्मणका अभिसिंचन किया जाय तो ये स्वस्थ हो जायँगे। इतना सुनते ही हनुमान् आदि कई योद्धा विशल्याको बुलाने चल दिये। थोड़ी ही देरमें उसने आकर लक्ष्मणको स्वस्थ कर दिया। इसके बाद रावणने रामके पास अपना दूत भेजा; परंतु कोई परिणाम नहीं निकला। अब रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करने लगा। उसको शान्तिजिनालयमें विद्या सिद्ध करते देखकर अंगद आदि अनेक योद्धाओंने उसे विचलित करनेका प्रयास किया, परंतु उन्हें सफलता नहीं मिल सकी। रावणकी बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो गयी। उसने सीताको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिये अनेक कुचक्रोंकी रचना की, परंतु हरबार विफल रहा। मन्त्रियों एवं पटरानी मन्दोदरीने उसे बहुत समझाया, किंतु वह युद्धसे विमुख नहीं हुआ। इसके बाद रावण विशाल सेनाके साथ युद्धमें आया। उसने लक्ष्मणपर चक्ररत्नसे प्रहार किया; किंतु वह तीन प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मणके हाथमें आ गया। क्रुद्ध लक्ष्मणने उसी चक्ररत्नसे रावणका वध कर दिया। इसके बाद इन्द्रजित, मेघ-वाहन, कुम्भकर्ण, मय आदि राजाओंने निर्ग्रन्थ दीक्षा ग्रहण कर ली। मन्दोदरी, चन्द्रनखा आदि रानियोंने भी आर्यिका-व्रत ले लिया। तत्पश्चात् राम और सीताका सानन्द मिलन हुआ।

लंकामें रामके छः वर्षतक निवास करनेके बाद नारदने उनसे अपराजिता आदि माताओंके दुःखोंका वर्णन किया। तब सीता, लक्ष्मण और अन्य मित्रोंके साथ रामने अयोध्याके लिये

प्रस्थान किया। अयोध्या पहुँचनेपर भारी समारोह हुआ और भरतने दीक्षा ग्रहण कर ली। कैकेयी भी ३०० स्त्रियोंके साथ आर्यिका बन गयी। कुछ दिनों बाद भरतका निर्वाण हो गया। इधर राम-लक्ष्मणका समारोहपूर्वक राज्याभिषेक हुआ। शत्रुघ्नको मथुराका राज्य प्राप्त हुआ। उन्होंने मधुको पराजित किया और उसने दीक्षा ले ली। परंतु चमरेन्द्रद्वारा मथुरामें भयानक रोग फैला देनेके कारण शत्रुघ्न अयोध्या वापस चले आये। राम-लक्ष्मणने अनेक विद्याधर राजाओंको पराजित कर अपने वशमें कर लिया।

इसके बाद प्रजाने रामसे सीताके लोकापवादकी चर्चा की। फलतः रामकी आज्ञाके अनुसार सेनापति कृतान्तवक्रने जिनमन्दिरोंका दर्शन करानेके बहाने सीताको जंगलमें छोड़ दिया। परंतु पुण्डरीकनरेश वज्रसंघने उन्हें अपनी धर्मबहन मानकर अपने यहाँ शरण दी। सीताने अनङ्गलवण एवं मदनाङ्कुश नामक दो पुत्रोंको जन्म दिया। बड़े होनेपर अनङ्ग-लवणके साथ वज्रसंघने अपनी कन्याओंका विवाह कर दिया। राजा पृथुने अपनी पुत्री कनकमालाको मदनाङ्कुशके लिये समर्पित किया। एक दिन नारदने इन बच्चोंसे उनकी माता सीताके परित्यागकी कथा सुनायी। दोनोंने क्रुद्ध होकर अयोध्यापर चढ़ाई कर दी। अनेक योद्धाओंके मारे जानेके बाद रामने लवणसे और लक्ष्मणने अङ्कुशसे भीषण युद्ध किया। इसी समय सिद्धार्थने रामको दोनों बच्चोंका परिचय दिया, जिससे युद्ध शान्त हो गया। लवण और अंकुश अयोध्यामें रहने लगे। बादमें सीता भी आयीं और अग्निपरीक्षामें खरी उतरीं; परंतु उन्होंने वैराग्य ले लिया और ३३ दिनोंतक सल्लेखना धारण कर स्वर्गमें प्रतीन्द्र-पदपर आसीन हुईं। इसके बाद राजा चन्द्ररथकी दो पुत्रियोंने लवण और अंकुशका वरण किया और समारोहपूर्वक दोनोंका विवाह हुआ। हनुमान्‌ने दीक्षा ले ली। बादमें लवणको राज्य देकर रामने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

नैपाली रामायण

महान् रामभक्त भानुभक्तने नैपाली भाषामें रामगाथाका बड़ा ही सरस गान किया है, जो 'नैपाली रामायण' या 'भानुभक्तरामायण'के नामसे प्रसिद्ध है। मूलतः इसमें अध्यात्म-रामायणका नैपाली भाषामें काव्याङ्कन हुआ है तथापि बीच-बीचमें नवीन काव्यस्रोत भी उमड़ पड़े हैं। इस रामायणकी भाषा नैपाली है, किंतु इसमें छन्दोंकी रचना संस्कृत छन्दोंके समान ही है। कविवर भानुभक्तका जन्म वि० सं० १८७१ की आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशीको नैपालके रम्घा नामके ग्राममें हुआ था। उनके पिताका नाम धनंजय आचार्य था। उनके पितामह श्रीकृष्ण आचार्य संस्कृतके प्रकाण्ड विद्वान् थे, फलस्वरूप इन्हें संस्कृतकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्हींसे प्राप्त हुई।

अनन्य रामभक्त होनेसे इस रामायणमें स्थल-स्थलपर भक्तिकी महिमाका बड़ा ही सरस और रोचक शैलीमें वर्णन हुआ है। भक्तिमें सत्संगकी महिमापर विशेष बल दिया गया है। सीताहरणके बाद उनकी खोज करते हुए श्रीराम जब प्रेममयी शबरीके आश्रमपर पहुँचे तो उसने बड़े ही प्रेमभावसे उनका आदर-सत्कार किया। कंद-मूलसे उनका स्वागत किया। भगवान् रामने नवधा-भक्तिका उपदेश देते हुए सत्संगकी सर्वश्रेष्ठता प्रतिपादित की और कहा—

भक्तिके नौ साधन हैं। उन नौमें पहला साधन सत्संग है। यह प्रथम साधन यदि सध गया—पूरा हो गया तो फिर शेष क्या रह ही गया? जो शेष आठ साधन हैं, वे तो विशुद्ध सत्संगके माध्यमसे स्वयं ही यथाक्रम प्राप्त हो जायँगे। संतका संग प्राप्त हो गया तो सब बात बन गयी। दूसरे किसीके संग करनेसे क्या लाभ? उससे क्या होगा? अर्थात् कुछ भी नहीं। 'नैपाली रामायण'के मूल वचन इस प्रकार हैं—

नौ साधन् कि त भक्ति छन् ति नवमा पैल्हे त सत्संग हो।
पैल्हे साधन पो भयो पनि भेन्या बाँकी रह्याका ति जो॥
आठ् साधन्हरु हुन् ति ता क्रम सितै मिल्छन् असल् सङ्गले।
सत्को सङ्ग भया, सबै बनि गयो, क्या हुन्छ कुन् सङ्गले॥

(अरण्यकाण्ड ११५)

भानुभक्तने स्वरचित रामायणमें अपनी काव्य-शक्ति और श्रीरामभक्तिका जो समीचीन अभिव्यञ्जन किया है, उससे उन्हें 'नैपाली साहित्यका तुलसीदास' कहा जा सकता है। उन्होंने आजीवन रामभक्तिका ही गान किया और उनकी रामायणका जन-जनमें विशेष प्रचार भी हुआ।

विश्रामसागरमें वर्णित रामभक्ति एवं रामनामकी महिमा

(श्रीभवानीशंकर 'ब'जोशी, 'मधु' आर० ई० एस०)

रामभक्तिकी महिमाका वर्णन कई संत-मुनियोंने विभिन्न प्रकारसे किया है। इसी परम्परामेंसे रामानुज-सम्प्रदायमें अग्रदासजीकी शिष्य-परम्परामें दसवें शिष्य संत श्रीरघुनाथदासजी हुए हैं, जो रामसनेही-परम्पराके माने जाते हैं। इन्होंने रामनामकी भक्ति एवं महिमाका अपने स्वरचित काव्य-ग्रन्थ 'विश्रामसागर'में विशद रूपसे वर्णन किया है। वे कहते हैं—

इष्ट हमारो रामसिय, राम नाम प्रिय भाल।
राम रकार मकार है, बिन्दु जानकी लाल॥
पावन को पावन करन, सिव को धनु मुनि पर्ण।
सुचि संतनके प्राण हैं, राम नाम दोउ वर्ण॥

(विश्रामसागर)

इन्होंने रामचरितको विचित्र एवं अपार बताया है। रामनामके कीर्तनंसे सारा संसार शुद्ध हो जाता है। अंधेको आँख, पंगुको पाँव, मूकको वाणी प्राप्त हो जाती है—

अंध विलोचन पंगु पग, लहै मूक वचना सू॥

(विश्रामसागर)

रामनाम मुक्ताफलके समान है, जिसका तीनों लोकोंमें प्रकाश हो रहा है। इस मुक्ताफलको सज्जनरूपी हंस चुगते हैं, दुष्ट काग और बगुले नहीं चुग सकते—

राम नाम मुक्ताहल भाई। जासु आव त्रिभुवन महँ छाई॥
सज्जनमाल चुगत हरषाहीं। दुष्ट काग बक की गति नाहीं॥

(विश्रामसागर)

रामकथा शुभ चिन्तामणिके समान है, जो चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) देनेवाली है। रामनामकी महिमाको चारों वेद, छहों शास्त्र, अठारहों पुराण, ऋषि-मुनि आदि भी नहीं जान सके। रामनामकी महिमाको तो स्वयं राम ही जानते हैं। उन्हींकी महिमाको मैं (रघुनाथदास) उनके अनुग्रहसे कुछ जानकर सुख प्राप्त कर रहा हूँ—

चारि वेद अरु षट सहस, सब पुराण मुनि देव।
नाम प्रभाव सो अनुग्रह अति, तेजहि जानत भेव॥
राम नाम को अर्थ जो, सो सब जान्यो राम।
तासु अनुग्रहसे कछुक, मैं पायो सुख धाम॥

इन्होंने रामनामके एक-एक वर्णका अलग-अलग अर्थ करते हुए बताया है कि रेफसे परब्रह्म, 'र'कारसे जीव, मध्य आकारसे नाद, दीर्घ 'रा'से स्वर, हलन्त मकारसे अनुस्वार, अनुस्वारसे प्रणव, प्रणवसे तीन गुण—सत्, रज, तम आदि आविर्भूत हुए। त्रिगुणसे तीन देव—ब्रह्मा, विष्णु और महेश आविर्भूत हुए। इन तीनोंसे समस्त विश्व उत्पन्न हुआ।

प्रथम रकारसे नारायणका रूप, आकारसे महाविष्णु, मकारसे महाशम्भु हुए। रामनामके भीतर ब्रह्म, जीव और तीनों लोक हैं। क्षितिज, बीज, नक्षत्र, आकाश, नगर, ग्रह आदि सब रामनाममें ही अनुस्यूत हैं। जैसे एक जड़को सींचनेसे डाल-पत्ते हरे हो जाते हैं, उसी प्रकार रामनामके ध्यानमें सम्पूर्ण सृष्टिका ध्यान हो जाता है—

नारायणको रूप करि, जो है प्रथम रकार।
महाविष्णु आकार ते, महाशंभु माकार॥
राम नामके भीतरै, ब्रह्म जीव त्रैलोक।
ज्यों क्षितिबीज नक्षत्र नभ, नगर माहिं गृह थोक॥
राम नामके ध्यानमें, सृष्टि ध्यान होइ जात।
जिमि सींचे यक मूलके, डार पात हरियात॥

(विश्रामसागर)

ऐसा विचार कर जो कोई राम-नामका उच्चारण करता है, उसके सभी शुभाशुभ कर्म जल जाते हैं। रामनाम ही ज्ञान-विज्ञानका मूल आधार है और सुखका बीज यही रामनाम है। रामनामकी महिमाका वर्णन करते हुए वे आगे कहते हैं—

सब नामन में राम नाम, परकाशक जिय जानु।
जिमि नक्षत्र महँ चन्द्रमा, अरु ग्रहणनमें भानु॥
अरु ग्रहणनमें भानु, कबिनमें यथा अनन्ता।
निर्जरमें जिमि शक्र, भक्तमें जिमि हनुमन्ता॥
लोकनमें गोलोक, सरितमें सरयू धारा।
नरन माहिं जिमि भूप, धनुषधारिनमें मारा॥
भगवन्तनमें राम, यथा शक्तिनमें सीता।
अद्रिनमें जिमि मेरु, पुण्य पाठनमें गीता॥
कामधेनु गो माहिं, अहिंसा धर्मन मा जिमि।

वृक्षनमें सुर वृक्ष, खगनमें बैनतेय तिमि ॥
क्षमन माहिं जिमि क्षमा, सरनमें जिमि सरस्वाना ॥
कर्मनमें हरि कर्म, ज्ञानमें ब्रह्म ज्ञाना ॥
पुरिन माहिं जिमि अवध, मंत्रमें जिमि ॐकारा ।
रुद्रनमें शिव यथा स्वरनमें जिमि आकारा ॥
पुष्कर तीरथ माहिं, मणिनमें कौस्तुभ जैसे ।
सब नामनमें राम नाम तुम जानौ तैसे ॥

(विश्रामसागर)

रामनामको महामन्त्र-राज कहा गया है—

राम नाम पर मन्त्र है, सकल मन्त्रको राज ॥

(विश्रामसागर)

यह एक ऐसा मन्त्र है जो सभी मन्त्रोंका बीज है। जो रामनामका स्मरण करता है उसे भक्ति और मुक्ति दोनों मिल जाती है।

नामके प्रभावसे शेषनाग अपने फणपर चौदह भुवनको रजकणके समान धारण किये हुए हैं। रामनामके बलपर ही शिवजीने विषपान किया तथा सनकादि, गणपति आदिने भी रामनामके स्मरणसे ही महानता पायी है।

जोगी ज्ञानी भक्त, जो सुकर्म करत सकल ।
रामनाम अनुरक्त, रमुक्रीडा ताके कहत ॥

(विश्रामसागर)

इस कलिकालमें प्राणीमात्रके लिये मुक्तिका एकमात्र और सरलतम उपाय भगवान् श्रीरामका नाम ही है; क्योंकि सत्ययुगमें हरिका ध्यान करनेसे, त्रेतामें तप, यज्ञ और संयम रखनेसे, द्वापरमें व्रत-पूजा और आचारसे जो गति प्राणी पाता है, वही गति कलियुगमें केवल राम-नामसे प्राप्त हो जाता है। कलियुगमें संसाररूपी सागरसे पार उतरनेके लिये रामनाम दृढ़ नौकाके समान है—

सतयुग सत्य न झूठ बखानी। करि हरि ध्यान तरै भव प्रानी ॥
त्रेता तप मख संयम करहीं। सुख मति देइ जीव जग तरहीं ॥
द्वापर व्रत पूजा आचारा। करि करि जीव होइ भव पारा ॥
कलि नहिं तप व्रत संयम योगा। साधन कठिन देह बस रोगा ॥
ताते निगम सुगम मग गावा। कलि भव सिन्धु नाम दृढ़ नावा ॥

(विश्रामसागर)

इसलिये भगवान् श्रीरामके पावन श्रीचरणोंमें दृढ़ श्रद्धा, भक्ति एवं विश्वास रखकर श्रीभगवन्नामकी नौकाका सहारा लेना चाहिये; क्योंकि वही प्राणीको इस भवसागरसे पार कर अन्तमें श्रीभगवान्‌के परमधामतक पहुँचा देता है।
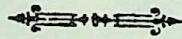
श्रीरामकर्णामृतम्

(डॉ॰ श्रीशिवशङ्करजी अवस्थी)

'श्रीरामकर्णामृतम्' किन्हीं शंकरभगवत्पादकी रचना है। इसके श्लोक अत्यन्त उत्तम और प्रौढ़ हैं। इसमें भगवान् श्रीरामके ध्यानके विविध प्रसंग प्रस्तुत किये गये हैं। 'श्रीरामकर्णामृतम्'में चार आश्वास (परिच्छेद) हैं। प्रथम आश्वासमें १०६, द्वितीयमें ११६, तृतीयमें १२० तथा चतुर्थमें ११० श्लोक उपलब्ध हैं। यहाँ उक्त ग्रन्थसे ध्यान और भक्तिके कुछ श्लोक उद्धृत किये जाते हैं—

शुद्धान्ते मातृमध्ये दशरथपुरतः सञ्चरन्तं परं तं
काञ्चीदामानुविद्धप्रतिमणिविलसत्किङ्किणीनिक्वणाङ्गम्।
फाले मुक्तालालामं पदयुगनिनदन्नूपुरं चारुहासं
बालं रामं भजेऽहं प्रणतजनमनःखेदविच्छेददक्षम् ॥

(प्रथम आश्वास ९२)

'अन्तःपुरमें माताओंके बीच राजा दशरथके सामने जो धीरे-धीरे चल रहे हैं, जिनकी कटिसे लगी करधनीमें आबद्ध अनेक प्रकारकी मणियोंसे जटित किंकिणियोंका शब्द हो रहा है, बालोंमें बँधे मोतियोंसे जो सुन्दर लग रहे हैं तथा जिनके दोनों पैरोंमें पहनाये गये नूपुरोंकी ध्वनि हो रही है, मोहक मुस्कानवाले तथा जो प्रणतजनोंके मानसिक दुःखको दूर करनेमें दक्ष हैं, ऐसे परमात्मरूप बालक रामका मैं भजन करता हूँ।'

उत्फुल्लामलकोमलोत्पलदलश्यामाय रामामन-
श्चन्द्राय प्रशमाय निर्मलगुणारामाय रामात्मने।
ध्यानारूढमुनीन्द्रमानससरोहंसाय संसारवि-
ध्वंसायाद्भुततेजसे रघुकुलोत्तंसाय पुंसे नमः ॥

'फूले हुए निर्मल एवं कोमल नीलकमलदलके समान जो श्यामवर्ण हैं, सीताजीके मनको आनन्दित करनेवाले शान्ति-स्वरूप, निर्मल गुणोंके स्थान, ध्यानमें आरूढ़ बड़े-बड़े मुनियों-के मनरूपी सरोवरके हंस, संसारका विच्छेद करनेवाले, अद्भुत तेजस्वी रघुकुलके आभूषण, रामरूपी पुरुषको नमस्कार है।'

आरामं वैभवानामभिनवसुपथं हारकेयूरकान्तं
हासोल्लासाभिरामं मणिमयमकुटं मङ्गलानां निवासम्।
मन्दारारामसीमान्तरमणिभवनाधिष्ठितं शिष्टसेव्यं
सल्लापानन्दसिन्धुप्रणयमभिनिशं रामचन्द्रं भजेऽहम्॥

(तृ० आ० ४)

'ऐश्वर्योंके उपवन तथा उनकी प्राप्तिके लिये जो नवीन मार्गरूप हैं, हार और केयूरसे मनोहर, हास और उल्लाससे सुन्दर, मणिजटित मुकुटको धारण करनेवाले, कल्याणके निवासस्थान, मन्दार-वृक्षोंके उपवनकी सीमाके बीच बने हुए मणिमय भवनमें बैठे हुए, शिष्टजनोंसे सेव्य, सज्जनोचित आलापसे जन्य आनन्दसिन्धुके प्रसाररूप श्रीरामचन्द्रका रात्रिके समय मैं भजन करता हूँ।'

रामं कोमलनीलनीरदनिभं नीलालकालंकृतं
कट्यां शोभितकिङ्किणीझणझणध्वानैरुपेतं शिशुम्।
कण्ठालम्बितरक्षुनिर्मलनखं कञ्जाक्षमब्जच्छविं
भास्वन्तं मकुटाङ्गदादिविविधाकल्पं सदाऽहं भजे॥

'कोमल एवं नील मेघके सदृश वर्णवाले, काली अलकोंसे अलंकृत, कटिमें शोभित करधनीकी क्षुद्र घंटियोंके झण-झण शब्दसे युक्त, सिंहको भी डरानेवाले तरक्षु नामक अष्टापद जन्तुके सुन्दर नखको जो गलेमें धारण किये हुए हैं, कमलनयन, नीलकमलकी छबिसे सम्पन्न, मुकुट एवं अङ्गद आदि अनेक-विध आभूषणोंसे भूषित, तेजस्वी बालक रामकी मैं सदा वन्दना करता हूँ।'

न ग्रस्तस्तमसा न चाह्नि मलिनो दर्शेन नो कर्शितो
नैवास्तं गतवान् न चाङ्कितततनुर्नो पाक्षिकश्रीरपि।
लोकालोकनगेन्द्रलङ्घनविधौ नो पङ्गुभावङ्गतो
निर्दोषो गुणसागराद्रघुपतेस्तेजो यशश्चन्द्रमाः॥

(च० आ० ९९)

'जो अन्धकार या राहुसे कभी ग्रस्त नहीं होता और न दिनमें मलिन ही होता है, अमावास्याके कारण वह कभी कृश नहीं होता। वह कभी अस्त भी नहीं होता, उसके कलेवरमें कोई कलङ्क भी नहीं है और न वह एक ही पक्षमें (पंद्रह रात्रियोंमें ही) श्रीसम्पन्न रहता है, लोकालोक नामक महान् पर्वतके उल्लंघनकी विधिमें वह असामर्थ्यको भी नहीं प्राप्त होता अर्थात् उसे भी लाँघ जाता है, जो दोषरहित या रात्रिके बिना भी विद्यमान रहता है, ऐसा है भगवान् रामके गुणोंके समुद्रसे उत्पन्न उनके तेजोमय यशका चन्द्रमा।

विचित्ररामायण

विचित्ररामायणकी रचना उड़िया भाषामें हुई है। इसके रचयिता विश्वान खुंटिया हैं। इसमें भक्तिका अपूर्व समन्वय है। यह विचित्ररामायण अनेक राग-रागिनियोंसे समन्वित है। प्रायः अन्य रामायणोंमें एक ही छन्द रहता है; किंतु इसमें अनेक गेय छन्द उपलब्ध होते हैं। यद्यपि यह काव्य वाल्मीकिरामायणकी मुख्य कथाको लेकर चलता है; किंतु कविने अपनी प्रतिभाके आधारपर ही बहुत कुछका संनिवेश कर दिया है। इसमें गणेश, अनेक देवी-देवताओं तथा सरस्वती, चण्डी, श्रीरामचन्द्र, श्रीसीता एवं श्रीलक्ष्मण और वाल्मीकिकी वन्दनाके साथ कथाका आरम्भ किया गया है। अनन्तशयन, सीता-जन्म आदि विषय वाल्मीकिके समान ही है। अयोध्याकाण्डमें वर्णित राम-वनवास और कौसल्याका शोक बड़ा ही मार्मिक है। अरण्यकाण्ड, लंकाकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड सभीका वर्णन वाल्मीकिरामायणके मूल धरापर ही होता है। उत्तरकाण्डमें अगस्त्यमुनिके प्रवेशके साथ यक्ष, राक्षस आदिका और रावणद्वारा कैलास पर्वतके उठाने तथा रावण-दिग्विजय आदिका वर्णन मधुर शब्दोंमें किया गया है, किंतु विषय-वस्तु वाल्मीकिके ही समान है।

ध्यायो रामरूप तब ध्याइबो रह्यो न कछू,
गायो रामनाम, तब गाइबो कहा रह्यो॥

(पद्माकर, प्रबोध-पचासा—१०)

रघुवंशमें श्रीरामका स्वरूप

(विद्याविभूषण साहित्यमार्तण्ड डॉ॰ श्रीरंजनसूरिदेवजी)

संस्कृत-कवियोंद्वारा निबद्ध रामकथाओंमें महाकवि कालिदासके प्रसिद्ध महाकाव्य 'रघुवंश'में गुम्फित रामकथाका अपना स्वतन्त्र अभिज्ञान है। इस महाकाव्यके प्रायः दसवें सर्गसे पंद्रहवें सर्गतक भगवान् श्रीरामजीका दिव्य चरित्र वर्णित है। महाकविने रामको 'हरि' या 'विष्णु'का ही पर्यायवाची माना है। लंका-विजयके बाद सीतासहित रामके पुष्पक-विमानद्वारा अयोध्या-प्रत्यागमनका एक प्रसंग है। रामने सीताको समुद्रके बारेमें बतानेका उपक्रम किया है। उस समय पुष्पक-विमान समुद्रके ऊपर आकाशमार्गसे गुजर रहा था—

अथात्मनः शब्दगुणं गुणज्ञः
पदं विमानेन विगाहमानः।
रत्नाकरं वीक्ष्य मिथः स जायां
रामाभिधानो हरिरित्युवाच॥

(सर्ग १३, श्लोक १)

—इस श्लोकसे स्पष्ट है कि 'हरि' या 'विष्णु' और 'राम' दोनोंमें कोई अन्तर नहीं है। राम गुणज्ञ हैं, अर्थात् रत्नाकर समुद्रके ऐश्वर्यरूप गुणके ज्ञाता हैं। वह विमानद्वारा अपने ही स्थान अर्थात् शब्दगुणात्मक आकाशरूप विष्णु-पदका संचरण कर रहे हैं।

कालिदासके मतसे देवोंकी आर्तिका नाश ही रामावतार-का कारण था। राजा दशरथद्वारा आयोजित पुत्रेष्टियज्ञकी सूचना पाकर राक्षसराज रावणसे उत्पीड़ित देवगण हरि या विष्णुकी सेवामें उसी प्रकार उपस्थित हुए, जिस प्रकार धूपसे पीड़ित व्यक्ति छायादार वृक्षका आश्रय लेता है। उस समय आदिपुरुष भगवान् विष्णु क्षीरसमुद्रमें शेषासनपर योगनिद्रामें थे। देवोंके वहाँ उपस्थित होते ही वे जाग उठे। उस समय उनके चरणकमल पद्मासना श्रीलक्ष्मीजीकी गोदमें थे और उनके पाणिपल्लव फैले हुए थे। वे बालसूर्यके मृदुल आतपकी भाँति दीप्यमान पीताम्बर धारण किये हुए थे, जिससे उनके शरीरकी शोभा शरत्कालके प्रभातकी तरह सुखदर्शन बन गयी थी।

विष्णुका विशाल वक्षःस्थल प्रभानुलिप्त श्रीवत्सके लाञ्छनसे सुशोभित था। लक्ष्मीजीके लिये विभ्रम-दर्पणका काम करनेवाली कौस्तुभमणि उनके हृदयपर विराज रही थी। उनकी विटपाकार भुजाएँ दिव्य आभरणोंसे विभूषित थीं। प्राणवान् अस्त्र सुदर्शनचक्र उनके हाथमें था। वहाँ उपस्थित देवताओंने रामस्वरूप विष्णुका जय-जयकार किया। पुनः वे अञ्जलि बाँधकर उस अवाङ्मनसगोचर भगवान् विष्णुकी स्तुति करने लगे।

देवताओंकी बहुविध स्तुतियोंसे प्रसन्न होकर भगवान्ने उन्हें आश्वस्त किया। भगवान्के श्रीमुखसे निकलनेवाला वाणीका प्रवाह ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उनके पैरसे निकलनेवाली गङ्गाका शेषांश उनके श्रीमुखसे प्रवाहित हो रहा हो। भगवान्का सान्त्वना-वाक्य था—'मैं दाशरथि रामके रूपमें मानवावतार लेकर उस राक्षसराज रावणका वध करूँगा।' मूल श्लोक इस प्रकार है—

सोऽहं दाशरथिर्भूत्वा रणभूमेर्बलिक्षमम्।
करिष्यामि शरैस्तीक्ष्णैस्तच्छिरः कमलोच्चयम्॥

(सर्ग १०, श्लोक ४४)

इस प्रकार महाकवि कालिदासने देवकृत रामस्तुतिके व्याजसे भगवान् श्रीरामकी विष्णु-स्वरूपमें अवतारणा की है।

महाकविकी दृष्टिमें श्रीराम अद्वैत-वेदान्तके निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वरके समवेत-रूप हैं। अद्वैतदर्शनके ब्रह्म स्वयं-प्रकाश, कूटस्थ, नित्य-निष्क्रिय, नित्यतृप्त, सच्चिदानन्द, निरवयव, निराकार और निर्गुण हैं। वही मायासे आच्छादित होनेपर सगुणरूपधारी जगत्स्रष्टा, जगतपालक और जगत्-संहारक ईश्वर बन जाते हैं। ईश्वर और ब्रह्मके सम्मिलित-रूप श्रीरामनामधारी हरिका वर्णन महाकविने इस प्रकार किया है—

नमो विश्वसृजे पूर्वं विश्वं तदनु बिभ्रते।
अथ विश्वस्य संहर्त्रे तुभ्यं त्रेधा स्थितात्मने॥
अमेयो मितलोकस्त्वमनर्थी प्रार्थनावहः।
अजितो जिष्णुरत्यन्तमव्यक्तो व्यक्तकारणम्॥
हृदयस्थमनासन्नमकामं त्वां तपस्विनम्।

दयालुमनघस्पृष्टं पुराणमजरं विदुः ॥
सर्वज्ञस्त्वमविज्ञातः सर्वयोनिस्त्वमात्मभूः ।
सर्वप्रभुरनीशस्त्वमेकस्त्वं सर्वरूपभाक् ॥
अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विषः ।
स्वपतो जागरूकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव ॥

(१०।१६, १८—२०, २४)

अर्थात् विश्वके सर्जक, पालक और संहारक—इस त्रिधा-स्वरूपमें स्थित आपको नमस्कार है। आप अपरिमेय होकर भी लोक-परिमेय हैं, निःस्पृह होकर भी कामप्रद हैं, जयशील हैं और अत्यन्त सूक्ष्म होकर भी व्यक्त स्थूलरूपके कारण हैं। आप सर्वान्तर्यामी हैं, निष्काम और प्रशस्त तपसे दीप्त हैं, दयालु और नित्यानन्दस्वरूप हैं अनादि और अक्षर हैं। आप सर्वज्ञ हैं, पर आपको कोई नहीं जान पाता। आप सर्वयोनि होकर भी स्वयम्भू हैं। प्रभु होकर भी स्वयं अनीश हैं और एक होकर भी सर्वात्मा हैं। आप अज होकर भी जन्म ग्रहण करते हैं, निष्क्रिय होते हुए भी शत्रु-विनाश आदि लोक-कल्याणकारी कार्य करते हैं और योगनिद्रामें रहते हुए भी सर्वसाक्षी हैं। सचमुच आपके यथार्थ स्वरूपको क्या कोई जान सका है?

श्रीराम जब माता कौसल्याके गर्भसे धराधामपर अवतीर्ण हुए, तब उनके शरीरकी अभिरामता देखकर पिता दशरथने उनका नाम 'राम' रख दिया। आगे चलकर वही श्रीराम लोकाभिराम बन गये **(लोकाभिरामं श्रीरामं भूयो भूयो नमाम्यहम्)**। रामके जन्म लेते ही समस्त भूलोक दुर्भिक्ष आदि दोषोंसे रहित हो गया और सर्वत्र दीर्घायु, आरोग्य, ऐश्वर्य आदि गुण प्रकट हो उठे। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ कि धरतीपर उतरे विष्णुके पीछे-पीछे स्वर्ग भी उतर आया हो।

चतुर्मूर्ति भगवान् श्रीरामका उदय होते ही रावणसे डरे इन्द्र आदि देवोंके आवासभूत दिग्दिगन्तराल धूलिरहित वायुके झोंकेसे जैसे उच्छ्वसित हो उठे। चारों दिशाओंके अधिपतियोंके रक्षणके प्रयोजनसे ही यहाँ रामकी चतुर्मूर्तिकी कल्पना महाकविने की है। राक्षसराज रावणसे पीड़ित अग्नि और सूर्य भी रामोदय होते ही दुःखमुक्त होकर निर्धूम और तेजस्वी बन गये। श्रीरामके आविर्भावके समय दशानन रावणके मुकुटसे मणियाँ ऐसे झड़ीं, जैसे राक्षस-श्रीके अश्रुविन्दु धरतीपर गिरकर बिखर गये हों—

दशाननकिरीटेभ्यस्तत्क्षणं राक्षसश्रियः ।
मणिव्याजेन पर्यस्ताः पृथिव्यामश्रुबिन्दवः ॥

(१०।७५)

श्रीरामके जन्मसे राजा दशरथको जितनी प्रसन्नता नहीं हुई, उससे कहीं अधिक प्रसन्नता देवताओंको हुई। वे हर्षातिरेकमें दुन्दुभी बजाने लगे। इस प्रकार पुत्रजन्मके अवसरपर बजाये जानेवाले वाद्योंका उपक्रम देवोंने ही किया। राजा दशरथके महलमें कल्पवृक्षके फूलोंकी वर्षा हो गयी। यह पुष्पवृष्टि मानो पुत्रजन्मोत्सवके मङ्गलाचारका प्रथम आयोजन बन गयी।

रघुवंशमें वर्णित राम बड़े तेजोदीप्त हैं। धनुर्यज्ञके समय गुरु विश्वामित्रकी आज्ञासे जब वे धनुष तोड़नेको उठ खड़े हुए, तब राजा जनक काकपक्षधारी किशोरवय उनके पौरुषके प्रति श्रद्धानत हो उठे। आग चाहे इन्द्रगोप (बीरबहूटी) नामक कीड़ेके बराबरकी ही क्यों न हो, पर उसकी दाहशक्तिमें कमी नहीं होती—

एवमाप्तवचनात् स पौरुषं
काकपक्षकधरेऽपि राघवे ।
श्रद्दधे त्रिदशगोपमात्रके
दाहशक्तिमिव कृष्णवर्त्मनि ॥

(११।४२)

राम-परशुराम-संवादके क्रममें भी महाकविने रामका अतिशय कमनीय स्वरूप उपस्थित किया है। भीमदर्शन भार्गवके ऐसा कहनेपर कि 'तुम मेरे परशुकी चमकती हुई धारसे डरकर कायर हो गये हो', रघुवंश-शिरोमणि रामचन्द्रजीके ओठ मुस्कराहटसे हिल उठे और उन्होंने परशुरामजीके धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ा देनेके लिये उनसे उसे ले लेना ही उनके गर्वापहरणका उचित उत्तर समझा—

एवमुक्तवति भीमदर्शने
भार्गवे स्मितविकम्पिताधरः ।
तद्धनुर्ग्रहणमेव राघवः
प्रत्यपद्यत समर्थमुत्तरम् ॥

(११।७९)

श्रीराम अपने पूर्वजन्म-नारायणावतारके समयके शार्ङ्ग-

धनुषको धारणकर अत्यधिक सुन्दर दिखायी पड़ने लगे। वे शरीरसे लघुदर्शन होकर भी प्रियदर्शन हो उठे। नूतन मेघ अकेले ही सुन्दर लगता है और यदि वह इन्द्रधनुषसे युक्त हो जाय तो फिर उसके सौन्दर्यका क्या कहना ?

पूर्वजन्मधनुषा समागतः
सोऽतिमात्रलघुदर्शनोऽभवत्।
केवलोऽपि सुभगो नवाम्बुदः
किं पुनस्त्रिदशचापलाञ्छितः ॥

(११।८०)

इसी संदर्भमें पुनः आगे महाकविने श्रीरामके और भी अधिक मनोहर तथा वीर्यवान् स्वरूपकी अवतारणा की है। अतिशय बलशाली रामने धनुषके एक सिरेको भूमिपर रखकर जब उसपर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी, तब वहाँ उपस्थित क्षत्रिय राजाओंके शत्रु परशुराम धूमशेष अग्निके समान निस्तेज हो गये। एक दूसरेके सामने खड़े राम और परशुराममें कार्तिकेयके समान पराक्रमी रामका तेज बढ़ता जा रहा था और परशुरामका तेज मलिन पड़ता जा रहा था। वहाँ उपस्थित जनता दोनोंको इस प्रकार देख रही थी, मानो वे दिन बीतनेके बाद सायंकालके चन्द्रमा और सूर्य हों।

तावुभावपि परस्परस्थितौ
वर्धमानपरिहीनतेजसौ।
पश्यति स्म जनता दिनात्यये
पार्वणौ शशिदिवाकराविव ॥

(११।८२)

एकपत्नीव्रत श्रीरामके सातिशय आवर्जकस्वरूपकी अवतारणा महाकविने बड़ी रुचिरतासे उपन्यस्त की है। परित्यक्ता सीताको जंगलमें रखकर लक्ष्मण वापस आ गये और उन्होंने रामको वनवासिनी सीताकी करुण-दारुण स्थितिसे अवगत कराया। सीताकी स्थितिसे दयार्द्रहृदय राम तुषारवर्ती पौष मासके चन्द्रमाके समान आँसू बरसाने लगे। रामने लोकनिन्दाके भयसे भले ही सीताको राजभवनसे निकाल दिया था, परंतु मनसे नहीं निकाला था।

दशाननान्तक राजा रामचन्द्रने स्वर्णनिर्मित प्रतिमूर्ति बनवाकर समग्र यज्ञकार्य सम्पन्न किया। इस व्यवहारको जानकर सीताने पतिकृत परित्यागके दुर्वार दुःखको महान् कष्टके साथ सहन कर लिया—

सीतां हित्वा दशमुखरिपुर्नोपयेमे यदन्यां
तस्या एव प्रतिकृतिसखो यत्क्रतूनाजहार।
वृत्तान्तेन श्रवणविषयप्रापिणा तेन भर्तुः
सा दुर्वारं कथमपि परित्यागदुःखं विषेहे ॥

अन्तमें महाकविने विष्णुके प्रतिरूप श्रीरामका जो स्वरूप उपस्थित किया है, वह अतिशय मार्मिक और हृदय-द्रावक है। श्रीरामने सुविस्तृत साम्राज्यको अपने दो और शेष तीन भाइयोंके छः पुत्रोंमें बाँट दिया और स्वयं वैकुण्ठके लिये महाप्रस्थान किया।

भगवान् विष्णुस्वरूप श्रीराम देवकार्य पूरा करके सर्वलोकाश्रयभूत स्वयं अपनी कायामें प्रविष्ट हो गये—

निर्वर्त्यैवं दशमुखशिरश्छेदकार्यं सुराणां
विष्वक्सेनः स्वतनुमविशत् सर्वलोकप्रतिष्ठाम्।

(१५।१०३)

भक्ति-भाव

हे नाथ ! अजामिल पापी तरे, तैने तारि दियो सदना-से कसैया।
गौतम की तिय तारि दई, गनिकाहू तरी सुक नाम रटैया ॥
गीध जटायु पै कीन्ही कृपा, निजधाम ललाम दियौ रघुरैया।
'गोकुलचन्द' की बेर प्रभो ! कहाँ सोइ गयौ बैकुंठ-बसैया ॥
नाथ ! अनाथनि को है तुही, अरु दीन दुखीन को कष्ट हरैया।
ब्यापक है सगरे जग में, छन भीतर बिस्व को नष्ट करैया ॥
'गोकुलचन्द' तुही घनस्याम, तुही ब्रजबासी है धेनु-चरैया।
ठाकुर है ब्रज-धाम ललाम कौ, अंत समै भव-सिंधु-तैरया ॥

—श्रीगोकुलचन्दजी शर्मा

श्रीरामभक्ति एवं रामोपासनाके विविध स्वरूप

श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता

(श्रीश्रीवैष्णव पं० श्रीरामटहलदासजी)

सृष्टिके आदिसे सनातनधर्मका मूल वेद है, वेद-सिद्धान्तसे ही सब धर्मोंका आविष्कार हुआ है। अतएव वेद-वर्णित सभी धर्म वैदिक धर्म कहे जाते हैं। वेदमें जिन-जिन देवताओंकी उपासना वर्णित है, वे सभी प्राचीन हैं। हमें यहाँ श्रीरामोपासनाकी प्राचीनताके सम्बन्धमें विचार करना है। वेदमें श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता बतायी गयी है, ऋग्वेद मण्डल ७, अनुवाक ८६ में 'मन्त्ररामायण' नामक एक प्रख्यात प्रकरण है। इसके १४१ वें मन्त्रमें श्रीराममन्त्रोद्धारका वर्णन आया है, इसपर श्रीनीलकण्ठ-सूरिने 'मन्त्ररहस्य-प्रकाशिका' नामक व्याख्या भी की है। उक्त प्रकरणसे सिद्ध है कि सृष्टिके प्राचीन कालसे श्रीरामोपासना अविच्छिन्नरूपसे चली आ रही है। सत्ययुगमें अनेक ऋषि-मुनि एवं भक्तगण श्रीरामके उपासक थे, इसके उदाहरणस्वरूप लोमश, अगस्त्य प्रभृतिकी कथा प्रसिद्ध है। वेदके पश्चात् श्रीरामोपासनाका सबसे बड़ा ग्रन्थ श्रीमद्वाल्मीकीयरामायण है, इसके अतिरिक्त ब्रह्म-रामायण, प्रमोदरामायण, भुशुण्डिरामायण, महारामायण, आनन्दरामायण, प्रेमरामायण, अध्यात्मरामायण आदि अनेक रामायण हैं, श्रीरामचरितका वर्णन शतकोटि-विस्तार चौदह लोकोंमें व्याप्त है।

श्रीरामतापिनी-उपनिषद्की चतुर्थ कण्डिकामें श्रीराम-मन्त्रका वर्णन आया है—'**श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः**।' काशीमें श्रीराममन्त्रको शिवजीने जपा, तब श्रीरामचन्द्र भगवान् प्रकट होकर बोले—'**त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्**।' हे शिवजी! आपसे या ब्रह्मासे जो कोई श्रीरामषडक्षर-मन्त्रको लेंगे, वे मेरे धामको प्राप्त होंगे। ब्रह्मासे वसिष्ठ-अगस्त्यादि ऋषियोंने मन्त्र लिया था और भी जिन-जिन ऋषियोंने श्रीरामोपासना करके जिस-जिस पदको प्राप्त किया, उसका प्रमाण वृद्धहारीत-स्मृतिके षष्ठ अध्यायमें आया है—

एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाप्नुयात्।
ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम्॥
कार्तिकेयो मनुत्वं च इन्द्रार्कौ गिरिनारदौ।
बालखिल्यादिमुनयो देवतात्वं प्रपेदिरे॥

अर्थात् इस रामोपासनाद्वारा अगस्त्यजी रुद्रशक्तिसे सम्पन्न हुए, कश्यपजीने श्रीराम-मन्त्रको जपकर ब्रह्मत्व प्राप्त किया, कौशिकमुनि अमरत्वको प्राप्त हुए, कार्तिकेय मनु-पदपर नियुक्त हुए और इन्द्र, सूर्य, पर्वत, नारद और बालखिल्यादि ऋषियोंने श्रीरामोपासना करके दिव्य दैवत्वपदको प्राप्त किया। इस प्रमाणसे सिद्ध है कि सत्ययुग, त्रेता, द्वापरादि तीनों युगोंमें समस्त ऋषिगण श्रीरामोपासक ही थे। यों तो अठारहों पुराण, महाभारत, पाञ्चरात्र आदि सभी ग्रन्थोंमें श्रीरामोपासनाका सविस्तर वर्णन है, किंतु अगस्त्यसंहिताके १९ वें तथा २५ वें अध्याय और पञ्चरात्र बृहद्ब्रह्मसंहिता द्वितीय पाद ७ अध्याय एवं पद्मपुराण उत्तरखण्ड २३५ अध्याय तथा बृहन्नारदीय पुराण पूर्वभाग ३७ अध्याय इत्यादि ग्रन्थोंके स्पष्ट प्रमाणोंसे यह सिद्ध होता है कि श्रीरामोपासना तीनों युगोंमें होती आयी है। यह तो हुई सत्ययुग, त्रेता और द्वापरतककी श्रीरामोपासनाकी प्राचीनता। परंतु कलिकालमें श्रीरामोपासना किनके द्वारा और कैसे आयी? इसका इतिहास इस प्रकार है—सदाशिव-संहिताके नवम अध्यायमें लिखा है—

कलिकालोद्भवानाञ्च जीवानामनुकम्पया।
देव्यानुबोधितः साक्षाद्विष्णुः सर्वजनेश्वरः॥
कृतकृत्या तदा लक्ष्मीर्लब्ध्वा मन्त्रं षडक्षरम्।
ददौ प्रीत्या तदा देवी विष्वक्सेनाय तारकम्॥
वेङ्कटाद्रौ पुरा वेदा द्वापरान्ते पराङ्कुशः।
विष्वक्सेनं समाराध्य लभिष्यति षडक्षरम्॥
तत्समीपे महापीठे वेङ्कटे रङ्गमण्डपे।
जपिष्यन्ति चिरं मन्त्रं तारकं तिमिरापहम्॥
इति ते कथितं मुने मुक्त्युपायं तु भार्गव॥

अर्थात् कलिकालके जीवोंको भवसागरसे तारनेकी इच्छासे भगवान् विष्णुजीने लक्ष्मीजीको श्रीराम-मन्त्रोपदेश दिया। तारक-मन्त्रको प्राप्त कर लक्ष्मीजी कृतकृत्य हुई और

प्रीतिपूर्वक लक्ष्मीने श्रीविष्वक्सेनजीको तारक-मन्त्र दिया। तत्पश्चात् द्वापरके अन्तमें श्रीपराङ्कुश (श्रीशठकोपस्वामीजी) वेंकटाचल-पर्वतपर सबसे प्रथम षडक्षर तारक-मन्त्र लेंगे। वेंकटाद्रिके समीप रंगमण्डपमें सिद्धपीठपर बैठकर सर्व-पापनाशक श्रीरामतारक-मन्त्रको उक्त आचार्य शिष्योंके सहित बहुत कालपर्यन्त जपेंगे। शिवजी कहते हैं—हे भार्गवमुने ! हमने कलिकालके जीवोंके लिये तुमसे मुक्तिका उपाय कहा है।

उपर्युक्त उदाहरणसे स्पष्ट सिद्ध है कि कलिके आदिमें विष्वक्सेनद्वारा श्रीशठकोपदेशिकजीको ही सर्वप्रथम श्रीरामो-पासना मिली। ऐसे ही उदाहरण बृहद्ब्रह्मसंहिताके द्वितीय पाद-के सातवें अध्यायमें भी आये हैं—

विष्वक्सेनादिभिर्भक्तः शठारिप्रमुखैर्द्विजैः।
रामानुजेन मुनिना कलौ संस्थामुपैष्यति॥
द्वापरान्ते कलेरादौ पाखण्डप्रचुरे जने।
रामानुजेति भविता विष्णुधर्मप्रवर्तकः॥

अर्थात् श्रीमन्नारायणने श्रीलक्ष्मीको श्रीराम-मन्त्रोपदेश अर्थ-ध्यानसहित देकर कहा कि 'हे प्रिये ! द्वापरके अन्तमें, कलियुगके आदिमें पाखण्डी मनुष्योंके अधिक हो जानेपर सद्धर्मकी रक्षाके लिये श्रीविष्वक्सेन तथा श्रीशठकोपादि द्विजवरों एवं श्रीरामानुज प्रभृतिद्वारा कलिमें श्रीरामोपासनाकी पूर्ण अभिवृद्धि होगी।' इस प्रमाणसे भी सिद्ध है कि सर्वप्रथम कलिके आदिमें श्रीशठकोपप्रभृतिद्वारा श्रीरामोपासनाका प्रचार हुआ।

श्रीरामोपासनाकी वृद्धिके लिये श्रीशठकोपस्वामीजीने वेंकटाद्रिके निकट तिरुपतिमें सर्वप्रथम श्रीसीतारामजीकी दिव्य मूर्ति स्थापित की थी। यह दिव्य स्थल श्रीशठकोपस्वामीजीका मङ्गलानुशासित है। इसी दिव्य मन्दिरमें बैठकर श्रीशठकोप-स्वामीजीने बहुत कालपर्यन्त श्रीराममन्त्रका जप किया था। इसीलिये सदाशिवसंहितामें लिखा है कि **'तत्समीपे महापीठे व्यङ्कटे रङ्गमण्डपे।'** कहा जाता है कि सबसे प्रथम श्रीराम-मूर्तिकी पूजाका समारम्भ इस युगमें यहींसे हुआ और यह भी किंवदन्ती है कि यह त्रेतायुगकी मूर्ति श्रीशठकोपस्वामीजीको अत्यन्त उत्कट तपस्यासे प्राप्त हुई थी। श्रीशठकोपस्वामीजीने अपने दिव्य प्रबन्ध सहस्रगीति (३।१०)-की आठवीं गाथामें लिखा है—

'दशरथस्य सुतं तं विना नान्यशरणवानस्मि।'

अर्थात् श्रीमद्दशरथ-राजकुमारके अतिरिक्त दूसरेके शरणागत नहीं हूँ। ऐसे ही श्रीराम सर्वेश्वरके महत्त्वपरक एक सहस्र गाथा आपने लिखी है। श्रीशठकोपदेशिकजीने श्रीरामोपासनाका समस्त आभार शिष्योंमें सर्वप्रधान शिष्य श्रीनाथमुनिजीको सौंपा। श्रीनाथमुनिजीने भी श्रीरामोपासनाका प्रचार सर्वजगद्व्यापी किया, जिसका स्पष्ट उदाहरण आपने अपने संगृहीत ग्रन्थोंमेंसे 'नाथमुनियोगपटल' नामक ग्रन्थमें दिया है। इसमें श्रीरामजीके नित्योत्सव गज-रथ-तुरग-पालकी, नित्यविहारलीला एवं पाक्षिक-मासिक-त्रैमासिक-षाण्मासिक-वार्षिक मङ्गलोत्सवोंका वर्णन है। आपकी एक 'मानसिक ध्यानरामायण' अति विचित्र है, आप मानसिक ध्यानसे एक महीनेमें उसको समाप्त किया करते थे।

श्रीनाथमुनिजीके शिष्योंमेंसे प्रधान श्रीपुण्डरीकाक्षजी हुए, आपने श्रीरामोपासना-विषयक 'श्रीरामार्चा' तथा 'श्रीराम-मंगलमनोहर' इत्यादि ग्रन्थ रचे हैं जो कि दक्षिण दिव्य देशोंमें उपलब्ध हैं।

श्रीपुण्डरीकाक्षजीके शिष्य श्रीरामोपासक श्रीराममिश्र स्वामीजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके कई ग्रन्थ लिखे थे, जिनमेंसे 'श्रीरामषडक्षरप्रपत्तिस्तोत्र' है जो कि श्रीराम-मन्त्रके छः अक्षरोंपर छः श्लोक तथा 'श्रीसाकेतसोपान'में विद्यमान हैं, यह 'नित्यस्तुतिसंग्रह' नामक पुस्तकमें मुद्रित है। श्रीमद्रामायणपर आपकी बनायी हुई 'भावप्रकाश' नामक टीका भी सुनी जाती है।

श्रीराममिश्रके शिष्य श्रीयामुनाचार्यजी हुए, आपने श्रीमद्रामायणका अर्थ २१ बार गुरु-मुखसे अध्ययन किया। आपका बनाया 'श्रीमद्रामायण रहस्यप्रकाश' बड़ा विलक्षण ग्रन्थ है। 'श्रीरामभावनाष्टक' नामक स्तोत्र भी आपका निर्मित है। स्तोत्ररत्न 'आलवन्दार' के अन्तमें आपने श्रीरामोपासनाका लोकोत्तर दृश्य दिखाया है। इसके लिये श्रीवेदान्तदेशिककृत 'आलवन्दारभाष्य' का अवलोकन करना चाहिये। आगम-प्रामाण्य, सिद्धित्रयी आदि आपके और भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

श्रीयामुनाचारीस्वामीजीके श्रीमहापूर्णाचार्यादि पाँच शिष्य हुए, श्रीमहापूर्णाचारीस्वामीजीके ही शिष्य श्रीभाष्यकार

लक्ष्मणावतार 'श्रीरामानुजस्वामीजी' महाराज हुए। भूषण-टीकाकार श्रीगोविन्दराजस्वामीजीने श्रीमद्रामायणके आरम्भमें लिखा है कि श्रीरामानुजस्वामीजीने श्रीमद्रामायणका रहस्यार्थ १८ बार अध्ययन किया था। आपने श्रीरंग-मन्दिरके गोपुरपर चढ़कर श्रीराम-मन्त्रोच्चारणद्वारा जगत्‌को उपदेश देकर श्रीरामोपासनाका अपूर्व प्रचार किया। आपने श्रीरामषडक्षर-मन्त्रार्थपरक छः अक्षरोंपर छः श्लोक लिखे हैं। 'गद्यत्रय'में भी आपने **'सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥'**—इस श्रीराम-चरम-मन्त्रको श्रीरामशरणागतिपरक दिया है, जिसपर श्रीवेदान्तदेशिक-स्वामीजीने 'अभयप्रदानसार' नामक ग्रन्थमें १२ हजार व्याख्या की है। आपके द्वारा स्थापित यादवाद्रिमें श्रीयतिराज मठ है, वहाँपर भी श्रीरामषडक्षरकी १२ हजार व्याख्या उपलब्ध है। यह व्याख्या आपके पश्चात् शिष्य-प्रशिष्योंने लिखी है। श्रीमद्रामायणपर भी श्रीभाष्यकारकी टीका विस्तृतरूपमें है, दिव्य देशोंमें भगवद्विषयके नामसे जिसका कालक्षेप हुआ करता है। आपने कन्याकुमारीसे हिमालयपर्यन्त श्रीरामोपासनाका अटल प्रचार कर चराचर चेतनोंको परमपद जानेका मार्ग सुलभ कर दिया। श्रीभाष्यादि आपके और भी कई ग्रन्थ हैं।

श्रीरामानुजस्वामीजीके शिष्योंमेंसे श्रीकूरेशस्वामीजी अनन्य श्रीरामोपासक हुए, इसका पता आपके विरचित ग्रन्थोंमेंसे विशेषरूपसे 'पञ्चस्तवी'से स्पष्ट लगता है कि आप एक बड़े ही उच्चकोटिके उपासक थे। आपने कृमिकण्ठ राजाकी राजसभामें श्रीराममन्त्रका महत्त्व प्रकट करके श्रीरामोपासनाकी विजय पायी—यह आपके 'कूरेशविजय' नामक ग्रन्थसे प्रमाणित होता है।

श्रीरामानुजस्वामीजीके श्रीगोविन्दाचार्य शिष्य हुए, उनके श्रीभट्टारकस्वामी बड़े ही प्रसिद्ध धुरन्धर विद्वान् हुए हैं, जिन्होंने 'भगवद्गुण-दर्पण-सहस्रनामभाष्य'में श्रीरामोपासनाका वर्णन विलक्षणरूपसे किया है। आपके और भी श्रीरामोपासनाके दिव्य प्रबन्ध हैं। श्रीभट्टारकस्वामीजीके श्रीवेदान्ती स्वामी, उनके कलिजित् स्वामी, उनके श्रीकृष्णाचारी, उनके श्रीलोकाचारी स्वामी हुए। आपने उपासनारहस्यमय १८ ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें 'श्रीवचनभूषण' श्रीरामोपासनाका अपूर्व ग्रन्थ है। आपके श्रीशैलेशजी, उनके श्रीवरवरमुनिस्वामीजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। भगवद्विषय-भाष्यमें श्रीरामपरत्वपर आपका लिखा हुआ भाव बड़ा ही विलक्षण है। श्रीरामोपासकोंको इसे अवश्य देखना चाहिये। आपने **'श्रीराममंगलाशासनस्तोत्र'**में श्रीरामायणके सातों काण्डोंका सारांश ऐसा खींच लिया है मानो गागरमें सागर आ गया हो। आपके शिष्य-प्रशिष्योंमें श्रीविजय-रामाचार्यजी हुए हैं, जिन्होंने 'श्रीराममहिम्नःस्तोत्र' लिखकर श्रीराम-मन्त्रका महत्त्व प्रकट किया है। श्रीवरवरमुनिस्वामीजीके शिष्य श्रीदेवाचार्यजी हुए, उनके श्रीहरियाचार्यजी हुए, जिन्होंने श्रीरामस्तवराज भाष्यादि अनेक ग्रन्थ श्रीरामोपासनाके लिखे हैं। आपके शिष्य श्रीराघवाचार्यस्वामीजी बड़े ही उद्भट विद्वान् हुए हैं। आपके श्रीरामानन्दस्वामीजी महाराज समस्त शिष्योंमें शिरोमणि हुए हैं, आपने श्रीरामोपासनाकी रक्षाके लिये 'श्रीवैष्णवमताब्जभास्कर' तथा 'श्रीरामार्चनपद्धति'—ये दो ग्रन्थ लिखे हैं। आपके प्रतापसे भारतके कोने-कोनेमें आपके शिष्य-प्रशिष्योंद्वारा श्रीरामोपासनाका खूब ही प्रचार हुआ। आपकी कृपासे भारतमें श्रीरामोपासना अचल हो गयी। कबीर आदि आपके शिष्य श्रीरामोपासनासे ही सर्वलोकप्रसिद्ध हो गये। श्रीरामानन्दस्वामीजीके शिष्य श्रीनरहर्यानन्दजी हुए, आपके ही शिष्य कविसार्वभौम, श्रीरामोपासक-चूडामणि श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी हुए। आपने श्रीरामोपासनाके श्रीरामायणादि अनेक ग्रन्थ लिखकर श्रीरामोपासनाको अचल कर दिया। श्रीगोस्वामीजीकी कृपासे केवल देश ही नहीं, अपितु विदेशोंमें भी श्रीरामोपासनाकी पताका फहरा रही है। इस प्रकार चारों युगोंसे श्रीरामोपासनाकी प्राचीन गुरु-परम्परा चली आ रही है। परम्परया प्राचीन कालकी प्राचीन श्रीरामोपासनाका मूल मार्ग यही है। साधकोंको चाहिये कि वे भगवान् श्रीरामको अपना इष्टदेव मानकर उनकी भक्ति प्राप्तकर अपने कल्याणका मार्ग प्रशस्त करें।

अरथ न धरम न काम रुचि गति न चहउँ निर्बान।
जनम जनम रति राम पद यह बरदानु न आन॥

सब सुख-खानि— रामभक्ति

(पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल' रामायणी, साहित्येन्दुशेखर, साहित्यप्रभाकर, आयु० विशारद)

वन्दे शारदपूर्णचन्द्रवदनं वन्दे कृपाम्भोनिधिं
वन्दे शम्भुपिनाकखण्डनकरं वन्दे स्वभक्तप्रियम्।
वन्दे लक्ष्मणसंयुतं रघुवरं भूपालचूडामणिं
वन्दे ब्रह्म परात्परं गुणमयं श्रेयस्करं शाश्वतम्॥

(रामगीतगोविन्द)

परम करुणावरुणालय प्रभु श्रीरामचन्द्र पूर्णतम पुरुषोत्तम सर्वव्यापक परब्रह्म हैं। भक्त-भयहारी रामकी विमल भक्ति पानेका सुगम मार्ग प्रेम ही है। ज्ञानमार्गद्वारा परमप्रभुका दर्शन पाना उतना सहज नहीं है जितना मात्र कथनसे प्रतीत होता है। नैष्ठिक नाम-जपकर्ता भक्तके लिये प्यारे राम एक क्षणको भी उससे विलग नहीं होते। भक्तको भगवान्‌का तात्त्विक चिन्तन नहीं करना पड़ता। बल्कि उसकी वाणी नाम-जपमें अहर्निश निरत रहती है, मन भुवनमोहन छविका ध्यान करता हुआ पावन श्रीचरणोंमें भ्रमरके समान पद-पद्मपरागका पान करता रहता है। भक्तके लिये भक्ति ही निरतिशय प्रेमकी महान् उपलब्धि है। जब उपासक-उपास्य, साधक-साध्य, ज्ञाता-ज्ञेय तथा जापक-जाप्य एकरूप—अनन्य हो जाते हैं, तब भक्तको कुछ भी अलभ्य नहीं रह जाता, वरन् भक्ति ही शिखरासीन होकर श्रीरामका सामीप्य सुलभ कर देती है—

त्वं भावयोगपरिभावितहृत्सरोज
आस्से श्रुतेक्षितपथो ननु नाथ पुंसाम्।
यद्यद्धिया त उरुगाय विभावयन्ति
तत्तद्वपुः प्रणयसे सदनुग्रहाय॥

(श्रीमद्भा० ३।९।११)

भाव यह है कि हे नाथ! भाव तथा भक्तिके साथ उपासना करनेपर आप भक्तके नयनपथमें आते हैं। जिस-जिस भावनासे भक्त आपकी चाह करते हैं, उसीके अनुरूप मूर्ति धारण करके आप भक्तोंको दर्शन देते हैं।

चित्तकी सर्वात्मक शुद्धिका मार्ग ही उपासनाका एकमेव सर्वसमर्थ साधन है। मन-वचन-कर्मसे प्रतिक्षण अपने इष्टके समीप रहनेका अर्थ ही उपासना है। उपासक अर्थात् भक्त अपने प्रभुसे केवल भक्ति ही चाहता है। भक्ति तो भक्ति ही है, नामसे पृथक् लगनेपर भी भक्तिका नाता मात्र भगवान्‌से होता है—

इत्येवं स्तुवतस्तस्य रामः सुस्मितमब्रवीत्।
मुने जानामि ते चित्तं निर्मलं मदुपासनात्॥
अतोऽहमागतो द्रष्टुं मदृते नान्यसाधनम्।
मन्मन्त्रोपासका लोके मामेव शरणं गताः॥
निरपेक्षा नान्यगतास्तेषां दृश्योऽहमन्वहम्।

(अध्यात्मरामायण, अरण्य० २।३५—३७)

'इस तरह स्तुति करते हुए सुतीक्ष्णमुनिसे भगवान् श्रीरामने कहा—मुनिवर! मैं जानता हूँ कि आपका चित्त मेरी उपासनासे निर्मल हो गया है। मेरे अतिरिक्त आपका और कोई साधन नहीं है, इसीलिये मैं आपको देखनेके लिये आया हूँ। संसारमें जो लोग मेरे मन्त्रकी उपासना करते हैं, मेरी ही शरणमें रहते हैं, किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं करते और जिनकी अन्य कोई गति नहीं है, वे भक्त मुझे नित्यप्रति देखनेमें समर्थ हैं।'

ऐसे ही प्रभु श्रीरामके वचनोंका स्मरण कर परम भागवतोंने एकमेव भक्तिका ही बारम्बार वरदान माँगा है। पार्वतीवल्लभ दयासागर महादेवने करुणावरुणालय रांघवेन्द्र-के स्वभावका स्मरण कर रामको ही भजनीय बताया है—

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना। ताहि भजनु तजि भाव न आना॥

श्रीरामजी अपने प्राणप्रिय भक्तके लिये गुरु-पिता-माता एवं भाईसे भी बढ़कर हितकारी हैं—

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

भक्तिभूषणसे भूषित व्यक्ति संसारमें नीच माने जानेपर भी भगवान् श्रीरामको प्राणप्रिय होता है।

भगतिवंत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥

जिसके पास चिन्तामणि होती है, वह सब प्रकारसे सुखी माना जाता है। रामभक्ति चिन्तामणि एवं सर्वसुखकी खानि मानी गयी है—

सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़ भागी॥

जहाँ भक्ति है वहाँ सब सुख है, यह मानकर भक्त-मण्डलीने भक्ति ही माँगी है। सुग्रीवने कहा—

अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजनु करौं दिन राती॥

श्रीहनुमान्‌जी ऐसा ही निवेदन करते हैं—

नाथ भगति अति सुखदायनी। देहु कृपा करि अनपायनी ॥

श्रुतियोंने इसी प्रकारकी याचना की है—

करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव यह बर मागहीं।
मन बचन कर्म बिकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं ॥

भगवान् शंकरजी भक्ति चाहते हैं—

पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग ॥

सनकादि मुनिगण भी भक्तिकी याचना करते हैं—

प्रेम भगति अनपायनी देहु हमहि श्रीराम।

अपने प्रभु प्यारे कौसल्यानन्दनके चरणाश्रित रहकर भक्त सभी विघ्न-बाधाओंसे निर्भय रहता है। जब भक्त अपने रामके ध्यानमें लीन होकर समाधिस्थ होता है, तब उसकी पर्णकुटी भी वैकुण्ठधाम बन जाती है। परमानन्ददाता श्रीरामके आगे अनुरागी साधकको त्रैलोक्यकी सम्पदा भी नगण्य दीखती है।

परम सौभाग्यशाली महामुनि विश्वामित्र भक्तिके ही द्वारा चक्रवर्ती दशरथजीके समक्ष समकक्षता ले करके खड़े हो सके। श्रीदशरथजीने, मनु-शतरूपा और दशरथ-कौसल्याके रूपमें श्रीरामको प्राप्त करनेमें दो जन्म लगा दिये। यही लाभ भक्तिके द्वारा गाधिपुत्र विश्वामित्रको श्रीरामके पितृत्वके रूपमें सहजहीमें प्राप्त हो गया। आज महामुनिके पास पुरुषार्थचतुष्टयकी साक्षात् झाँकी भी उपस्थित है—

पुरुषसिंह दोउ बीर हरषि चले मुनि भय हरन।
कृपासिंधु मतिधीर अखिल बिस्व कारन करन ॥

अपने पास अपनी साधना, आराधना, कामना एवं भावनाको प्रत्यक्ष पाकर महामुनि झूम उठे तथा कह पड़े—

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई ॥

समस्त मन्त्रोंका मन्त्र एवं आत्माओंकी आत्मा श्रीराम-नाम ही है। सभी नामोंमें श्रेष्ठतर होनेसे ही जन्मसे लेकर मृत्यु-तक श्रीरामके सनातन शाश्वत सत्यको स्वीकार किया जाता है—

नारायणादिनामानि कीर्तितानि बहून्यपि।
आत्मा तेषां तु सर्वेषां रामनामप्रकाशः ॥

(म० रा०)

भक्तिमें सराबोर भक्तको प्रभुके श्रीचरण, श्रीचरणाङ्क या चरणरजसे रघुवर-मिलनसे भी अधिक आनन्द एवं सुख प्राप्त होता है—

गीधराज—

आगें परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥

अहल्या—

बिनती प्रभु मोरी मैं मति भोरी नाथ न माँगउँ बर आना।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥

भरत—

कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनामु प्रदच्छिन जाई ॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥
कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे ॥

अपनी धुनके पक्के रामनामनिष्ठाके धनी संतजनोंने मात्र रामजीकी भक्तिको ही सार्थक जीवनका लक्ष्य माना है। रामनाम रटने एवं चरणचिन्तनमें जो आनन्द भक्तको मिलता है, वह शब्दोंमें बाँधा नहीं जा सकता।

एषोऽस्य परम आनन्द एतस्यैवानन्दस्यान्यानि भूतानि मात्रामुपजीवन्ति। (बृहदा० ४।३।३२)

'यही इसका परम आनन्द है, इस आनन्दकी मात्राके आश्रित ही सब प्राणी जीते हैं।'

अञ्जनीनन्दन परम रामभक्त हनुमान्‌जीने रावणको उपदेश देते हुए श्रीरामभक्तिको जीवनका अङ्ग बनानेकी ओर इङ्गित किया है—

विष्णोर्हि भक्तिः सुविशोधनं धिय-
स्ततो भवेज्ज्ञानमतीव निर्मलम्।
विशुद्धतत्त्वानुभवो भवेत् ततः
सम्यग्विदित्वा परमं पदं व्रजेत् ॥
अतो भजस्वाद्य हरिं रमापतिं
रामं पुराणं प्रकृतेः परं विभुम्।
विसृज्य मौर्ख्यं हृदि शत्रुभावनां
भजस्व रामं शरणागतप्रियम् ॥

(अध्यात्मरामा०, सुन्दर० ४।२२-२३)

अर्थात् 'भगवान् विष्णुकी भक्ति बुद्धिको अत्यन्त शुद्ध करनेवाली है, उसीसे अत्यन्त निर्मल आत्मज्ञान होता है। आत्मज्ञानसे शुद्ध आत्मतत्त्वका अनुभव होता है और उससे दृढ़ बोध हो जानेसे मनुष्य परमपद प्राप्त करता है, इसलिये तुम प्रकृतिसे परे पुराणपुरुष सर्वव्यापक, आदिनारायण, लक्ष्मीपति हरि भगवान् रामका भजन करो। अपने हृदयमें स्थित शत्रु-

भावरूप मूर्खताको छोड़ दो और शरणागतवत्सल श्रीरामका भजन करो।'

अतएव हम सभीका एकमात्र यही परम कर्तव्य है कि हम जबतक संसारमें रहें, श्रीरामके भक्तोंके भी भक्त बनकर रहें और भक्त सुतीक्ष्णके शब्दों, भावों और विचारोंकी पुनरावृत्ति करते चलें—

अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम।
मम हिय गगन इंदु इव बसहु सदा निहकाम॥

भगवान् श्रीरामकी सर्वोपरि नवधा भक्ति

(स्वामी श्रीअच्युतानन्दजी महाराज)

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं॥
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥
गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥
मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥
सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा॥
नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हियँ हरष न दीना॥

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजद्वारा रचित रामचरितमानसके अरण्यकाण्डमें पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम एवं परम भक्तिमती शबरीका प्रसंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस प्रसंगमें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने भक्तिको सर्वोपरि स्थान दिया है। एक ओर रविकुलकमल-दिवाकर भगवान् श्रीराम और दूसरी ओर साधारण कुलकी शबरी। शबरीकी भक्तिपर भगवान्‌ने इतनी उदारता दिखायी है जिसका वर्णन करना असम्भव है। शबरी भगवान्‌के सम्मुख अपनी दीनता व्यक्त करती हुई कहती है—

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी। अधम जाति मैं जड़मति भारी॥
अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी।

इसके उत्तरमें भगवान्‌ने बड़े ही स्पष्ट स्वरमें कहा है—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता॥
जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई। धन बल परिजन गुन चतुराई॥
भगति हीन नर सोहइ कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा॥

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जाति-पाँतिका भेद-भाव भगवान्‌की दृष्टिमें कोई स्थान नहीं रखता। उनको केवल भक्ति प्यारी है, चाहे भक्त किसी भी जातिका क्यों न हो। साथ ही नवधा भक्तिका वर्णन करके भगवान् श्रीरामने भक्तिमार्गपर चलनेवालेका मार्ग-दर्शन किया है, जो भक्तोंके लिये अति ग्राह्य है।

नवधा भक्तिके वर्णनमें प्रथमसे पञ्चम भक्तितक स्थूल उपासना है। इन पाँचों भक्तिमें मन लगानेकी बात है। प्रथम भक्ति है संतोंका संग। यदि संतोंके संग अर्थात् सत्संगमें मन नहीं लगेगा तो सत्संगका अपेक्षित लाभ भी प्राप्त नहीं हो सकता। और न ही हृदयमें भक्ति जाग्रत् हो सकेगी। मनोयोगपूर्वक सत्संग करनेका फल बतलाते हुए गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारि फल अछत तनु साधु समाज प्रयाग॥

(रा० च० मा० बालकाण्ड दो० २)

नवधा भक्तिमें दूसरी भक्ति है हरिकथा-प्रसंगमें प्रीति। जबतक प्रभु-कथा-प्रसंगमें प्रीति नहीं होगी तबतक कथाका मर्म समझमें नहीं आयेगा। सत्संगद्वारा हरिकथा-प्रसंगका अर्थ जाना जाता है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने कहा है—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥

तीसरी भक्ति है गुरुपद-पंकज-सेवा, जिसे अहंकार छोड़कर करनेके लिये कहा गया है। यहाँ भी मनोयोगकी आवश्यकता है।

गुरुकी सेवामें उनकी आज्ञाका पालन ही उनकी सर्वोपरि सेवा है, जो बिना मन लगाये हो नहीं सकती। संत-मतके सिद्धान्तमें भी आया है—

श्रीसद्गुरुकी सार शिक्षा याद रखनी चाहिये।
अति अटल श्रद्धा प्रेमसे, गुरु-भक्ति करनी चाहिये॥

(महर्षि मैँहि-पदावली)

चौथी भक्ति है कपट छोड़कर प्रभुका यश-गान करना। कपट रखनेवालेका मन कभी भी प्रभुके यश-गानमें लग नहीं सकता। इसी तरह पाँचवीं भक्ति है भगवान्‌का भजन। भजनमें मन नहीं लगेगा तो भजनसे जो परम लाभ होना चाहिये, वह नहीं होगा।

प्रथमसे पाँचवीं भक्तितक स्थूल भक्ति है। इसके पश्चात् 'दम' और 'शम'का साधन शेष रह जाता है। 'दम' और 'शम' सूक्ष्म उपासना है। इसीलिये छठी भक्तिमें भगवान् श्रीरामने दमपर विशेष बल दिया है। दमका अर्थ है इन्द्रियोंको रोकनेका स्वभाव होना।

विनय-पत्रिकामें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने दसों इन्द्रियोंके दमनपर बहुत जोर दिया है। यदि इन्द्रिय-दमन किये बिना साधन करेंगे तो श्रम व्यर्थ ही होगा और भक्तिका जो परम लाभ है—परमात्माकी प्राप्ति, वह नहीं हो सकेगी—

दसइँ दसहु कर संजम जो न करिय निज जानि।
साधन बृथा होइ सब मिलहिं न सारँगपानि॥

(विनय-पत्रिका २०३। ११)

इस साधनामें इन्द्रियाँ दमित होती हैं, मन भी अन्तःप्रकाशको पाकर बाह्य विषय-भोगोंसे उपरत हो जाता है। इसकी साधनामें साधकको सदाचारी होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिये, झूठ, चोरी, नशा, हिंसा और व्यभिचार आदि पापोंसे अपनेको बचायेंगे तो साधनामें अग्रसर होंगे, यही है सज्जनोंका धर्म। साथ ही बहुत-से कर्मोंसे विरत होना होगा, क्योंकि बहुत-से कर्मोंमें यदि रत रहेंगे तो मनमें विशेष विकार उत्पन्न होगा। विकार होनेसे मनमें चञ्चलता रहेगी। चञ्चलताके कारण अन्तर-साधनामें अग्रसर नहीं हो पायेंगे। इसीलिये भगवान् श्रीरामने नवधा भक्तिके क्रममें छठी भक्तिके लिये कहा—

छठ दम सील बिरति बहु करमा। निरत निरंतर सज्जन धरमा॥

(रा० च० मा०, अरण्यकाण्ड ३६। २)

इन्द्रिय-दमनके लिये जिस प्रकार 'दम'की साधना अति आवश्यक है, उसी प्रकार मनोनिग्रहके लिये 'शम'की साधना भी अत्यन्त अपेक्षित है। जैसे दमकी साधनामें ज्योतियोग अर्थात् विन्दु-ध्यान अनिवार्य है, वैसे ही 'शम'की साधनामें सुरत-शब्द-योग—नादानुसंधान अत्यन्त आवश्यक है।

मन कितना चञ्चल है, यह कहना बहुत कठिन है। ऐसे चञ्चल मनकी स्थिरता 'शम'की साधनासे होती है। इसीलिये योगमार्गमें 'शम' साधनाकी बड़ी महत्ता बतायी गयी है। मनकी चञ्चलताका ज्ञान श्रीमद्भगवद्गीताके अवलोकनसे होता है। भगवान् श्रीकृष्णसे अर्जुनने कहा है—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

(६। ३४)

शब्द-साधना यानी नादानुसंधानसे मनको वशमें करना सबसे आसान है। नादानुसंधान करनेवाले मायिक नादोंको पार करते-करते निर्मायिक शब्द जो सार शब्द अथवा सत्त शब्द है, प्राप्त करते हैं। इसीलिये संत कबीरने कहा है—

सबद खोजि मन बस करै, सहज जोग है येहि।
सत्त सब्द निज सार हैं, यह तो झूठी देहि॥

शब्दमें यह गुण होता है कि वह अपने उद्गमतक खींचकर पहुँचाता है। जहाँसे वह शब्द आता है, वहाँका गुण अपने संग लिये रहता है और शब्द ध्यान करनेवालेको अपने गुणसे गुणान्वित करता है। इसीलिये साधक साधना करते-करते जब सार शब्दको प्राप्त करते हैं तब वह शब्द साधकको परमात्मातक पहुँचाता है; क्योंकि सार शब्दका उद्गम परमप्रभु परमात्मासे हुआ है। वही आदिनाम, सत्तनाम, ब्रह्मनाद, प्रणवध्वनि आदि नामोंसे पुकारा जाता है। इस नादकी उपासना करनेवालेकी 'शम'की साधना पूर्ण हो जाती है। साधककी ऐसी गति हो जाती है कि वे सर्वत्र ब्रह्मका ही दर्शन करते हैं। उनको सबमें समताका ही बोध होता है। उनको **'एकोऽहम् द्वितीयो नास्ति'**का ज्ञान होता है। ऐसे ही समताप्राप्त पुरुष संत होते हैं। ऐसे संतोंकी मर्यादा भगवान् श्रीरामने अपनेसे विशेष देते हुए कहा है—

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥

नवधा भक्तिकी सातवीं भक्तिमें ही साधनाकी इतिश्री हो जाती है। आठवीं एवं नौवीं भक्ति तो फलमात्र है, जो साधक अथवा भक्त नादानुसंधानद्वारा परमात्माको प्राप्त कर लेते हैं, उनको किसी प्रकारकी सांसारिक कामना नहीं रहती। ऐसे भक्तोंके लिये गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने लिखा है—

गोधन गजधन बाजिधन और रतनधन खान।

जब आवे संतोष धन सब धन धूरि समान॥

जो भक्त इतने संतुष्ट होंगे, वे फिर किस वस्तुकी कामना करेंगे? उनके लिये संसारकी सारी सामग्री ईश्वर-कृपासे सुलभ रहेगी। उनको हानि-लाभमें—'**हर्षो न विषादः।**' की स्थिति प्राप्त हो जाती है। संत कबीरने कहा है—

चाह गई चिंता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिये, सोई साहंसाह॥

ऐसे भक्त दूसरेमें मात्र गुण ही देखते हैं। दूसरेके दोषोंको वे स्वप्नमें भी नहीं देखते। उनका ऐसा स्वभाव ही हो जाता है।

नवीं भक्ति भगवान्‌ने बतायी है सरलता और सबके साथ कपटरहित बर्ताव करना, हृदयमें मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्थामें हर्ष और दैन्यसे युक्त न होना। यह वास्तवमें संतके ही लक्षण हैं। संतोंमें स्वाभाविक सरलता होती है। गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज रामचरितमानसके बालकाण्डमें जहाँ संतकी वन्दना (प्रार्थना) करते हैं, वहाँ उनके गुणोंका वर्णन करते हुए कहते हैं—

बँदउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलि गत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥
संत सरल चित जगत हित जानि सुभाउ सनेहु।
बालबिनय सुनि करि कृपा राम चरन रति देहु॥

तात्पर्य यह कि चित्तको एकरस रखनेवाले संत किसीके मित्र और शत्रु नहीं होते। जैसे अंजलिमें सुगंधित फूल दोनों हाथोंको (दाहिने और बायेंका विचार छोड़कर) बराबर सुगन्ध देते हैं वैसे ही संत, मित्र और शत्रुके साथ समान व्यवहार करते हैं। संत सरल-चित्त और सारे जगत्‌के मित्र होते हैं। संसारके सब जीवोंपर प्यार रखना उनका स्वभाव ही होता है।

दूसरी जगह गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—संत विषयोंसे अनासक्त, शील और गुणकी खान होते हैं। पराये दुःखसे दुःखी और सुखसे सुखी होते हैं। वे समदर्शी, शत्रुहीन, अभिमानरहित, विरक्त तथा लोभ, क्रोध, हर्ष और भयके त्यागी होते हैं। वे मन, वचन और कर्मसे भक्ति करनेवाले, कोमल-चित्त, मायाहीन और दीनोंपर दया करनेवाले होते हैं। सबको मान देनेवाले और आप मानरहित होते हैं। ऐसे संत अथवा भक्त भगवान्‌को प्राणके समान प्रिय होते हैं। वे शम, दम, नियम और नीतिसे नहीं डिगनेवाले तथा कठोर वचन कभी नहीं बोलनेवाले होते हैं। यथा—

बिषय अलंपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर॥

× × × ×

कोमलचित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया॥
सबहि मानप्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी॥

× × × ×

सम दम नियम नीति नहिं डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहिं बोलहिं॥

ये सभी गुण उनमें होते हैं जो नवधा भक्तिको पूर्ण किये हुए होते हैं। ऐसे संत अथवा भक्त सबसे छलरहित रहते हैं और ईश्वरपर भरोसा रखनेवाले होते हैं और ऐसा ही भक्त भगवान्‌को नवीं भक्तिमें अभीष्ट है।

नवधा भक्तिके स्वरूप-निरूपणके बाद भगवान् श्रीराम शबरीसे कहते हैं—

नव महुँ एकउ जिन्ह कें होई। नारि पुरुष सचराचर कोई॥
सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें॥

वर्णित नवधा भक्तिमेंसे प्रत्येक भक्तिका दूसरी भक्तिसे इस तरह सम्बन्ध है कि जो किसी एकका आरम्भ करेंगे तो उनको नवों प्रकारकी भक्ति प्राप्त हो जायगी। जैसे प्रथम भक्तिमें संतोंका संग कहा गया है। जो संतोंका संग करेंगे, उनको दूसरी भक्ति हरिकथा-प्रसंग उनके सत्संगमें मिलेगा ही। संतोंके सत्संगसे गुरुकी आवश्यकता जब जाननेमें आ जायगी तो वे गुरुपद-पङ्कज-सेवा अहंकाररहित होकर करेंगे ही। संत-सद्गुरुके संगमें हरिका गुणगान स्वाभाविक ही होगा। गुरु-कृपासे जप तथा स्थूल ध्यान करनेकी विधि जानेंगे ही। स्थूल ध्यानके बाद सूक्ष्म ध्यान जो 'दम' और 'शम' की साधनामें पूर्ण होता है, किये बिना भक्तिकी पूर्णता नहीं होगी। इसलिये दोनोंकी साधना भक्त अनिवार्यरूपसे करेंगे ही।

आठवीं और नवीं भक्ति तो प्रथमसे लेकर सातवीं भक्तितकको पूर्ण करनेका फल है। इसीलिये भगवान् श्रीरामने कहा—नवधा भक्तिमेंसे जो कोई एक भी करेगा वह मुझे अतिशय प्रिय होगा चाहे वह नारी हो, जड़ या चेतन हो। शबरी नवों भक्तिमें पारंगत थी। इसीलिये भगवान्‌ने स्वयं कहा—'***सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें।***' इतना ही नहीं, भगवान् श्रीरामने यहाँतक कहा कि जो गति योगियोंको दुर्लभ है, वही आज तुमको सुलभ हो गयी।

नवधा भक्तिमें जो पूर्ण होते हैं, वे ईश्वरके स्वरूपका दर्शन करते हैं। उस अवस्थामें उनको अपने निज-स्वरूपका ज्ञान भी स्वाभाविक रूपसे प्राप्त होता है। इसलिये भगवान्‌ने कहा—

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा॥

शबरी योगाग्निमें अपने शरीरको त्यागकर भगवान्‌के उस परमधाममें लीन हुई, जहाँ जाकर फिर कोई आवागमनके चक्रमें नहीं आता। इस परमधामके सम्बन्धमें गीताके १५ वें अध्यायके छठे श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्णने भी कहा है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने शबरीके बारेमें लिखा—

कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदयँ पद पंकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे॥

'राम भगति निरुपम निरुपाधी'

('मानस-मराल' डॉ॰ श्रीजगेशनारायणजी 'भोजपुरी')

'श्रीरामचरितमानस'के उत्तरकाण्डमें भक्तशिरोमणि पूज्यपाद श्रीगोस्वामीजीने रामभक्तिको 'निरुपम' और 'निरुपाधि' कहा है। 'निरुपम'का तात्पर्य भक्तिकी विलक्षणतासे है। भगवत्प्राप्तिके जितने भी साधन हैं, उनमें भक्ति विलक्षण है; क्योंकि यह निरुपाधि है यानी विघ्नरहित है। निर्विघ्नता ही भक्तिकी सबसे बड़ी विलक्षणता है। प्रभुतक पहुँचनेके अन्य जितने भी साधन हैं, उनमें बाधाएँ भी हैं, मात्र भक्ति निरुपाधि है—बाधारहित है। भक्तिरहित ज्ञान, उपासना, कर्मकाण्ड या योगसाधनाद्वारा ईश्वरकी प्राप्ति अत्यन्त दुष्कर है।

गोस्वामीजीकी तो मान्यता है कि ईश्वर-प्राप्तिके जितने भी साधन हैं, सभी भक्तिके अधीन हैं—

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना॥
जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥
सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥

(रा॰ च॰ मा॰ ३।१६।१—३)

भगवान् श्रीरामने भक्तिका रहस्य लक्ष्मणको समझाते हुए स्पष्ट-रूपसे कहा कि मेरी प्राप्तिका सर्वसुलभ साधन भक्ति है—***'जातें बेगि द्रवउँ मैं भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई॥'*** अर्थात् मेरी प्राप्तिका सर्वसुलभ साधन भक्ति ही है। किंतु भक्तिकी दुर्लभता यह है कि जबतक कोई संत नहीं अनुकूल होते तबतक भक्तिकी प्राप्ति नहीं होती—

भगति तात अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होइँ अनुकूला॥

(रा॰ च॰ मा॰ ३।१६।४)

अर्थात् संतोंकी अनुकूलताके बिना सुखमूला अनुपम भक्ति प्राप्त नहीं होती और यही भक्तिमार्गकी सबसे बड़ी जटिलता है। श्रीरामके कथनका सांकेतिक तात्पर्य यह है कि भक्ति पुरुषार्थ-साध्य नहीं होकर कृपा-साध्य है। भक्तिकी उपलब्धि पुरुषार्थके अधीन नहीं, कृपाके अधीन है। कोई सहज संत जब कृपा कर दे तो सर्वसुखखानि भक्ति सहजमें मिल जाती है।

परंतु कठिनाई यह है कि ऐसे सहज संत साधकको कैसे उपलब्ध होंगे। उनके लिये क्या साधन करना पड़ेगा। कौन-सा पुरुषार्थ करना पड़ेगा ! इस जटिल प्रश्नका सहज समाधान रामचरितमानसमें किया गया है—

अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं संता॥

(५।७।४)

यानी भगवान्‌की कृपाके बिना संत नहीं मिलते और संतकी कृपाके बिना भगवान् नहीं मिलते। संत-मिलनका दूसरा कारण गोस्वामीजीने पुण्योदय माना है। पुण्योंका पुञ्ज जब एकत्र होता है तब संत मिलते हैं—

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता॥

(रा॰ च॰ मा॰ ७।४५।६)

विमल संतोंकी सुखद छायामें बैठे बिना विशुद्ध भक्तिका उदय नहीं होता। सकल सुखखानि भक्ति संतोंकी पावन संनिधिमें किंवा सत्संगसे प्राप्त होती है—

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी॥

(रा॰ च॰ मा॰ ७।४५।५)

भगवान् श्रीरामने भक्तिके गुप्त रहस्यका उद्घाटन करते हुए एक खास बात कही है। उनका कहना है कि शंकरजीके भजनके बिना मानव मेरी भक्तिकी उपलब्धि नहीं कर सकता—

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

(रा० च० मा० ७।४५)

भगवान्‌के इस कथनमें गूढ़ रहस्य छिपा है। उनके कथनका तात्पर्य है कि ईश्वरके विभिन्न रूपों या लीलाओंमें जबतक अभेद-दर्शन नहीं होगा, तबतक वह भक्तिका वास्तविक अधिकारी नहीं बनता। सच्चे भक्तको तो संसारके विविध रूपोंमें अपना ईश्वर ही दिखायी पड़ता है—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

(रा० च० मा० १।८।२)

उसकी आँखोंमें अपने लालकी लाली इस प्रकार घर कर जाती है कि जिधर वह दृष्टि दौड़ाता है उसे अपना लाल ही दृष्टिगत होता है—

लाली मेरे लालकी जित देखौं तित लाल।
लाली देखन मैं गयी मैं भी हो गयी लाल॥

रामभक्तिको निरुपाधि कहनेका दूसरा प्रयोजन यह है कि इसमें धार्मिक अनुष्ठानोंके विधि-निषेधकी जटिलता भी नहीं है।

धार्मिक अनुष्ठानमें विधि-निषेधका बहुत ध्यान रखना पड़ता है। अनुष्ठानमें त्रुटि होनेपर अनिष्टकी चिन्ता बनी रहती है। अतः भगवान्‌ने अपने भक्तोंको अभय वरदान दिया कि जो मेरी शरणमें आता है, उसे मैं सभी पापोंसे मुक्त कर देता हूँ। परमात्माकी शरणमें आना ही जीवका परम-पुरुषार्थ है। वह अनेक जन्मोंसे मायामें ऐसा जकड़ गया है कि ईश्वरकी शरणमें जाना ही नहीं चाहता; क्योंकि ईश्वरकी शरणमें जाना कोई आसान काम नहीं है। जबतक संसारके प्रत्येक क्रिया-व्यापारोंसे उसकी आसक्ति नहीं टूटती, राग नहीं छूटता, तबतक वह शरणागतिके योग्य नहीं बनता। मद, मोह, छल, कपट, परिवारके प्रति अनुरक्ति आदि शरणागतिके मार्गके प्रबल प्रतिबन्धक हैं। जो इन प्रतिबन्धकोंको पार कर जाता है उसे तो भगवान् अपने हृदयमें बिठा लेते हैं—

जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बंधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सब कै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥
समदरसी इच्छा कछु नाहीं। हरष सोक भय नहिं मन माहीं॥
अस सज्जन मम उर बस कैसें। लोभी हृदयँ बसइ धनु जैसें॥

(रा० च० मा० ५।४८।२—७)

कहनेका तात्पर्य यह कि कृपा-साध्य होनेपर भी भक्ति परम-पुरुषार्थकी अपेक्षा रखती है। उपर्युक्त प्रतिबन्धकोंको जीतनेके लिये बहुत बड़े पुरुषार्थकी आवश्यकता है। कृपाका दूसरा अर्थ ऐसा लेना चाहिये कि जीवात्मा जबतक स्वयं अपने ऊपर अपनी कृपा नहीं करता, तबतक उसपर परमात्माकी कृपा भी नहीं होती।

भक्ति इतनी सुलभ है कि इसकी प्राप्तिके लिये कुछ करना ही नहीं है—

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥

(रा० च० मा० ७।४६।१)

भक्तिकी प्राप्तिमें कुछ करना ही नहीं है, न योग, न यज्ञ, न जप, न तप। अतः यह सर्वसुलभ है। बस एक छोटी-सी शर्त है कि भक्तका स्वभाव सरल होना चाहिये। उसके मनमें कोई कपट नहीं होना चाहिये। भगवान् अपने हृदयका पट तभी खोलते हैं, जब हम निष्कपट होकर उनके द्वार जाते हैं। कपट और छल-छिद्र रामजीको अच्छे नहीं लगते—

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

(रा० च० मा० ५।४४।५)

भक्तिमें मनकी निर्मलता और निष्कपटता अनिवार्य शर्त है। जो सभी वासनाओं और कामनाओंको छोड़कर भगवान्‌की शरणागति स्वीकार कर लेता है, भगवान् उसे मुकुटमणि बना लेते हैं। भक्तोंके साथ भगवान्‌का अनोखा व्यवहार हो जाता है। जिसे वे एक बार अपना लेते हैं उसे फिर कभी छोड़ते नहीं। ऐसा भी होता है कि मायामें फँसकर भक्त भगवान्‌को भूल जाता है, किंतु भगवान् उसे एक क्षण भी नहीं भूलते। जैसे छोटे शिशुको माँ एक क्षण भी नहीं भूलती, उसी प्रकार भगवान् भी अपने दासोंकी अहर्निश रक्षा करते हैं—

सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥
करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालक राखइ महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखइ जननी अरगाई॥

(रा० च० मा० ३।४३।४—६)

भक्तोंका बल उसका अपने प्रभुपर दृढ़ विश्वास है। ईश्वरकी शरणागतिमें आकर जीव निर्भय हो जाता है। जैसे

अगाध जलमें मछली सुखपूर्वक निवास करती है, उसी प्रकार भगवान्‌की शरणागति जिसने ले ली है, वह भी निर्विघ्न होकर आनन्दयुक्त हो जाता है—

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरि सरन न एकउ बाधा॥

(रा० च० मा० ४। १७। १)

भक्तिकी सबसे बड़ी विलक्षणता है कि यह भगवान्‌की प्रेयसी है। अतः जो भक्तिमार्गका सहारा लेता है, उसपर मायाका प्रहार नहीं होता—

पुनि रघुबीरहि भगति पिआरी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकइ कछु निज प्रभुताई॥

'श्रीराम जय राम जय जय राम'—एक महामन्त्र

लंका-विजयके उपरान्त अयोध्यामें एक बार भगवान् श्रीराम अपने राजदरबारमें विराजमान थे। उस समय राजा श्रीरामको कुछ आवश्यक परामर्श देनेके लिये देवर्षि नारद, विश्वामित्र, वसिष्ठ और अन्य अनेक ऋषिगण पधारे हुए थे।

जब कि एक धार्मिक विषयपर विचार-विनिमय चल रहा था, देवर्षि नारदने कहा—'सभी उपस्थित ऋषियोंसे एक प्रार्थना है। आपलोग अपने-अपने विचारसे यह बतायें कि 'नाम' (भगवान्‌का नाम), और 'नामी' (स्वयं भगवान्) में कौन श्रेष्ठ है?' इस विषयपर बड़ा वाद-विवाद हुआ, किंतु राजसभामें उपस्थित ऋषिगण किसी निर्णयपर नहीं पहुँच सके। अन्तमें देवर्षि नारदने अपना अन्तिम निर्णय दे दिया—'निश्चय ही नामीसे नाम श्रेष्ठ है और राजसभाके विसर्जन होनेके पूर्व ही प्रत्यक्ष उदाहरणके द्वारा इसकी सत्यता प्रमाणित कर दी जा सकती है।'

तदनन्तर नारदजीने हनुमान्‌जीको अपने पास बुलाया और कहा—'महावीर! जब तुम सामान्य रीतिसे सभी ऋषियोंको और श्रीरामको प्रणाम करो, तब विश्वामित्रको प्रणाम मत करना। वे राजर्षि हैं, अतः वे समान व्यवहार और समान सम्मानके योग्य नहीं हैं।' हनुमान्‌जी सहमत हो गये। जब प्रणामका समय आया, हनुमान्‌जीने सभी ऋषियोंके सामने जाकर सबको साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया, केवल मुनि विश्वामित्रको नहीं किया, इससे मुनि विश्वामित्रजीका मन कुछ क्षुब्ध हो उठा।

तब नारदजी विश्वामित्र मुनिके पास गये और बोले—'महामुने! हनुमान्‌की धृष्टता तो देखो। भरी राजसभामें आपके अतिरिक्त उसने सभीको प्रणाम किया। उसे आप अवश्य दण्ड दें। आप ही देखिये, वह कितना उद्दण्ड और घमंडी है?'

बस, इतनेपर तो विश्वामित्र मुनि आगबबूला हो गये। वे राजा रामके पास गये और बोले—'राजन्! तुम्हारे सेवक हनुमान्‌ने इन सभी महान् ऋषियोंके बीचमें मेरा घोर अपमान किया है। अतः कल सूर्यास्तके पूर्व उसे तुम्हारे हाथों मृत्युदण्ड मिलना चाहिये।' विश्वामित्र रामके गुरु थे। अतः राजा रामको उनकी आज्ञाका पालन करना था। उसी समय भगवान् राम निश्चेष्ट-से हो गये, इसीलिये कि उनको अपने हाथों अपने परम अनन्य स्वामिभक्त सेवकको मृत्युदण्ड देना होगा। 'श्रीरामके हाथों हनुमान्‌को मृत्युदण्ड मिलेगा'—यह समाचार बात-की-बातमें सारे नगरमें फैल गया।

हनुमान्‌जीको भी बड़ा ही खेद हुआ। वे नारदजीके पास गये और बोले—'देवर्षे! मेरी रक्षा कीजिये। भगवान् श्रीराम कल मेरा वध कर डालेंगे। मैंने आपके परामर्शके अनुसार ही कार्य किया। अब मुझे क्या करना चाहिये।' नारदजीने कहा—'ओ हनुमान्! निराश मत होओ। जैसा मैं कहता हूँ, वैसा करो। ब्राह्ममुहूर्तमें बड़े सबेरे उठ जाओ। सरयूमें स्नान करो। फिर सरिताके बालुका-तटपर खड़े हो जाओ और हाथ जोड़कर 'श्रीराम जय राम जय जय राम'—मन्त्रका जप करो। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि तुमको कुछ नहीं होगा।'

दूसरे दिन प्रभात हुआ। सूर्योदयके पहले ही हनुमान्‌जी सरयूतटपर गये, स्नान किया और जिस प्रकारसे देवर्षि नारदने कहा था, तदनुसार हाथ जोड़कर भगवान्‌के उपर्युक्त नामका जप करने लगे। प्रातःकाल हनुमान्‌जीकी कठिन परीक्षा देखनेके लिये नागरिकोंकी भीड़-की-भीड़ इकट्ठी हो गयी। भगवान् श्रीराम हनुमान्‌जीसे बहुत दूर खड़े हो गये, अपने परम सेवकको करुणार्द्रदृष्टिसे देखने लगे और अनिच्छापूर्वक

हनुमान्‌पर बाणोंकी वर्षा करने लगे। परंतु उनका एक भी बाण हनुमान्‌को बेध नहीं सका, सम्पूर्ण दिवस बाण-वर्षा होते रहनेपर भी हनुमान्‌जीपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। भगवान्‌ने ऐसे शस्त्रोंका भी प्रयोग किया, जिनसे वे लंकाकी रणभूमिमें कुम्भकर्ण तथा अन्यान्य भयंकर राक्षसोंका वध कर चुके थे। अन्तमें भगवान् श्रीरामने अमोघ 'ब्रह्मास्त्र' उठाया। हनुमान्‌जी भगवान्‌के प्रति आत्मसमर्पण किये हुए पूर्णभावके साथ मन्त्रका जोर-जोरसे उच्चारण करके जप कर रहे थे। वे भगवान् रामकी ओर मुसकराते हुए देखते रहे और वैसे ही खड़े रहे। सब आश्चर्यमें डूब गये और हनुमान्‌की 'जय जय'का घोष करने लगे।

ऐसी स्थितिमें नारदजी विश्वामित्र मुनिके पास गये और बोले—'हे मुने! अब आप अपने क्रोधका संवरण करें। श्रीराम थक चुके हैं। विभिन्न प्रकारके बाण हनुमान्‌का कुछ भी नहीं बिगाड़ सके। यदि हनुमान्‌ने आपको प्रणाम नहीं किया तो इसमें है ही क्या? अब इस संघर्षसे श्रीरामको परावृत्त कीजिये। अब आपने श्रीरामके नामकी महत्ताको समझ—देख ही लिया है।' इन शब्दोंसे विश्वामित्र मुनि प्रभावित हो गये और 'ब्रह्मास्त्रद्वारा हनुमान्‌को नहीं मारें'—ऐसा श्रीरामको आदेश दिया। हनुमान्‌जी आये और अपने स्वामी श्रीरामके चरणोंपर गिर पड़े एवं विश्वामित्र मुनिको भी उनकी दयालुताके लिये प्रणाम किया। विश्वामित्र मुनिने बहुत प्रसन्न होकर हनुमान्‌जीको आशीर्वाद दिया। उन्होंने श्रीरामके प्रति हनुमान्‌की अनन्य भक्तिकी बड़ी सराहना की।

जब हनुमान्‌जी संकटमें थे, तभी सर्वप्रथम यह मन्त्र नारदजीने हनुमान्‌को दिया था। अतः हे प्रिय साधकगण! जो भवाग्निसे दग्ध हैं, उन्हें अपनी विमुक्तिके लिये इस मन्त्रका जप करना चाहिये।

'श्रीराम'—यह सम्बोधन, भगवान् रामके प्रति पुकार है। 'जय राम' यह उनकी स्तुति है। 'जय जय राम'—यह उनके प्रति पूर्ण समर्पण है। मन्त्रका जप करते समय मनमें यही भाव होना चाहिये कि 'हे राम! मैं आपकी स्तुति करता हूँ। मैं आपकी शरण हूँ।' आपको तुरंत ही भगवान् रामके दर्शन मिलेंगे।

समर्थ स्वामी रामदासजीने इस मन्त्रका तेरह करोड़ जप किया और भगवान् श्रीरामके प्रत्यक्ष दर्शनका लाभ उठाया। राम-नामकी अचिन्त्य शक्तिका प्रभाव अमित है। आप राम-नामका गुणगान करें। आप मन्त्रका जप कर सकते हैं और सुस्वरमें उसको गा भी सकते हैं। इस मन्त्रमें तेरह अक्षर हैं और तेरह लाख जपका एक पुरश्चरण माना गया है।

उपर्युक्त १३ अक्षरके सिद्ध मन्त्रका तुम जप क्यों नहीं करते? और इससे जिस प्रकार अनेकोंको भगवान्‌की प्राप्ति हुई है, उसी प्रकार भगवान्‌की प्राप्ति क्यों नहीं कर लेते?

यह नाम तुम्हारे जीवनका सहारा बने, यह नाम तुम्हारी रक्षा करे, तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करे और लक्ष्यकी प्राप्ति करा दे। पूर्ण श्रद्धा-भक्तिके सहित भगवान्‌के नामका अखण्ड जप करनेसे तुम्हें इसी जन्ममें प्रभुका साक्षात्कार हो जायगा।

श्रीरामके प्रति

सूर्य-चन्द्रके बहु रूपोंमें
स्वयं प्रकाशित शोभाधाम!
ओ मानसके अन्तरालमें
बसनेवाले! तुम्हें प्रणाम।
जीवन-नौकाके कैवर्तक,
दिव्यरूप, लोचन अभिराम;
कविकी कविता, प्रकृति-नटीके
नाट्यकार! हे पूरण-काम॥

भक्तोंके भगवान, मान,
अभिमान, ज्ञान, सीताके राम!
दीनों-दुखियोंके उद्धारक,
परम विलक्षण, सुखके धाम!
हे अनन्त, अविनाशी, अक्षय!
अद्भुत सभी तुम्हारे काम;
दो सुबुद्धि, वह अष्टयाम
रसना ले राम! तुम्हारा नाम॥

—गौरीशंकर गुप्त

सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा ॥

(मानसरत्न संत श्रीसीतारामदासजी)

सो सुकृती सुचिमंत सुसंत, सुजान सुसीलसिरोमनि स्वै।
सुर-तीरथ तासु मनावत आवत, पावन होत हैं तातनु छ्वै॥
गुनगेहु सनेहुको भाजनु सो, सब ही सों उठाइ कहौं भुज द्वै।
सतिभायँ सदा छल छाड़ि सबै, 'तुलसी' जो रहै रघुबीरको ह्वै॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड ३४)

जो पुरुष सब प्रकारका छल छोड़कर सच्चे भावसे ***'रघुकुल केतु सेतु श्रुति रच्छक'*** (रा० च० मा० ७।३५।८) भगवान् श्रीरामचन्द्रजीका होकर रहता है, वही पुण्यात्मा, पवित्र, साधु, सुजान और सुशील-शिरोमणि है, देवता और तीर्थ उसके मनाते ही आ जाते हैं और उसके शरीरका स्पर्श कर स्वयं भी पवित्र हो जाते हैं तथा वह सभी प्रकारके गुणोंका आकर और सबका स्नेह-भाजन हो जाता है।

जो छल छोड़कर ***'दसरथ कुल कुमुद सुधाकर'*** (रा० च० मा० ७।५१।६) रघुवंशविभूषण श्रीरामजीका भजन करता है, वही नीतिमें निपुण है, वही परम बुद्धिमान् है। उसीने वेदोंके सिद्धान्तको भलीभाँति जाना है। वही कवि, वही विद्वान् तथा वही रणधीर है—

नीति निपुन सोइ परम सयाना। श्रुति सिद्धांत नीक तेहिं जाना॥
सोइ कबि कोबिद सोइ रनधीरा। जो छल छाड़ि भजइ रघुबीरा॥

(रा० च० मा० ७।१२७।३-४)

न यद्वचश्चित्रपदं हरेर्यशो
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित्।
तद्वायसं तीर्थमुशन्ति मानसा
न यत्र हंसा निरमन्त्युशिक्क्षयाः॥

(श्रीमद्भा० १।५।१०)

'जिस वाणीसे—चाहे वह रस-भाव-अलंकारादिसे युक्त ही क्यों न हो—जगत्को पवित्र करनेवाले भगवान्के यशका कभी गान नहीं होता, वह वाणी तो कौओंके लिये उच्छिष्ट फेंकनेके स्थानके समान अपवित्र मानी जाती है। मानसरोवरके कमनीय कमलवनमें विहरनेवाले हंसोंकी भाँति ब्रह्मधाममें विहार करनेवाले भगवच्चरणारविन्दाश्रित परमहंस भक्त कभी उसमें रमण नहीं करते।'

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी॥

(रा० च० मा० १।१०।३-४)

इसके विपरीत—

तद्वाग्विसर्गो जनताघविप्लवो
यस्मिन् प्रतिश्लोकमबद्धवत्यपि।
नामान्यनन्तस्य यशोऽङ्कितानि यत्
शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्ति साधवः॥

(श्रीमद्भा० १।५।११)

'जिस वाणीमें सुन्दर रचना भी नहीं है और जो दूषित शब्दोंसे युक्त भी है, परंतु जिसका प्रत्येक श्लोक भगवान्के सुयश-सूचक नामोंसे युक्त है, वह वाणी लोगोंके सारे पापोंका नाश कर देती है, क्योंकि सत्पुरुष ऐसी ही वाणीका श्रवण, गान और कीर्तन किया करते हैं।'

सब गुन रहित कुकबि कृत बानी। राम नाम जस अंकित जानी॥
सादर कहहिं सुनहिं बुध ताही। मधुकर सरिस संत गुनग्राही॥

(रा० च० मा० १।१०।५)

इदं हि पुंसस्तपसः श्रुतस्य वा
स्विष्टस्य सूक्तस्य च बुद्धिदत्तयोः।
अविच्युतोऽर्थः कविभिर्निरूपितो
यदुत्तमश्लोकगुणानुवर्णनम्॥

(श्रीमद्भा० १।५।२२)

'विद्वानोंने इस बातका निरूपण किया है कि मनुष्यकी तपस्या, वेदाध्ययन, यज्ञानुष्ठान, स्वाध्याय, ज्ञान और दानका एकमात्र प्रयोजन यही है कि पुण्यकीर्ति भगवान्के गुणों और लीलाओंका वर्णन किया जाय।'

ततोऽन्यथा किञ्चन यद्विवक्षतः
पृथग्दृशस्तत्कृतरूपनामभिः।
न कुत्रचित्क्वापि च दुःस्थिता मति-
र्लभेत वाताहतनौरिवास्पदम्॥

(श्रीमद्भा० १।५।१४)

जो मनुष्य भगवान्की लीलाके अतिरिक्त और कुछ कहनेकी इच्छा करता है, उसकी मति वैसे ही कहीं स्थिर नहीं होती जैसे हवाके झकोरोंसे डगमगाती हुई डोंगीको कहीं भी

ठहरनेका ठौर नहीं मिलता, कारण कि विषयोंके ध्यान करनेवाले और वर्णन करनेवालेके हृदयमें विषयोंका नाम-रूप प्रकट होकर बुद्धिको चञ्चल कर देते हैं। अतः—

यस्यां न मे पावनमङ्ग कर्म
स्थित्युद्भवप्राणनिरोधमस्य।
लीलावतारेप्सितजन्म वा स्याद्
वन्ध्यां गिरं तां बिभृयान्न धीरः॥

(श्रीमद्भा० ११।११।२०)

'जिस वाणीमें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलयरूप भगवान्की लोकपावन लीलाका वर्णन न हो और लीलावतारोंमें भी भगवान्के लोकप्रिय राम-कृष्णादि अवतारोंका जिसमें यशोगान न हो, वह वाणी वन्ध्या है। बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि ऐसी वाणीका उच्चारण एवं श्रवण न करे।'

मृषा गिरस्ता ह्यसतीरसत्कथा
न कथ्यते यद् भगवानधोक्षजः।
तदेव सत्यं तदु हैव मङ्गलं
तदेव पुण्यं भगवद्गुणोदयम्॥
तदेव रम्यं रुचिरं नवं नवं
तदेव शश्वन्मनसो महोत्सवम्।
तदेव शोकार्णवशोषणं नृणां
यदुत्तमश्लोकयशोऽनुगीयते॥

(श्रीमद्भा० १२।१२।४८-४९)

'जिस वाणीके द्वारा घट-घटवासी अविनाशी भगवान्के नाम, लीला, गुण आदिका उच्चारण नहीं होता वह वाणी भावपूर्ण होनेपर भी निरर्थक है—सारहीन है, सुन्दर होनेपर भी असुन्दर है और उत्तमोत्तम विषयोंका प्रतिपादन करनेवाली होनेपर भी असत्कथा है और जो वाणी तथा वचन भगवान्के गुणोंसे परिपूर्ण रहते हैं, वे ही परम पावन हैं, वे ही मङ्गलमय हैं और वे ही परम सत्य हैं। जिस वचनके द्वारा भगवान्के परम पवित्र यशका गान होता है, वही परम रमणीय, रुचिकर एवं प्रतिक्षण नया-नया जान पड़ता है। उससे अनन्तकालतक मनको परमानन्दकी अनुभूति होती रहती है। मनुष्योंका सारा शोक, चाहे वह समुद्रके समान लम्बा और गहरा क्यों न हो, उस वचनके प्रभावसे सदाके लिये सूख जाता है।'

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै-
र्वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्
यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः॥

(श्रीमद्भा० १०।३८।१२)

'जब समस्त पापोंके नाशक भगवान्के परम मङ्गलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे युक्त होकर वाणी उनका गान करती है, तब उस गानसे संसारमें जीवनकी स्फूर्ति होने लगती है, शोभाका संचार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुल जाती हैं और पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है, परंतु जिस वाणीसे भगवान्के गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गायी जातीं, वह तो मुर्देको ही शोभित करनेवाली है, होनेपर भी नहींके समान व्यर्थ है।'

यह सब कहनेका तात्पर्य मात्र इतना ही है कि वही कवि कवि है, वही विद्वान् विद्वान् है और वही वीर शूरवीर है जो छल छोड़कर रघुवंशमणि श्रीरामजीका भजन करे।

सूर, सुजान, सुपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई।
बिनु हरि भजन इँदारुन के फल तजत नहीं करुआई॥

(विनयप० १७५।३)

कोई शूरवीर, सुचतुर, माता-पिताकी आज्ञामें रहनेवाला सुपूत, सुन्दर लक्षणवाला तथा बड़े-बड़े गुणोंसे युक्त भले ही श्रेष्ठ गिना जाता हो, परंतु यदि वह श्रीरामजीका भजन नहीं करता तो वह इन्द्रायणके फलके समान है। (जो सब प्रकारसे देखनेमें सुन्दर होनेपर भी अपना कड़वापन नहीं छोड़ता।)

तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन बिश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ सोक धाम तजि काम॥

(रा० च० मा० ५।४६)

तबतक जीवकी कुशल नहीं और न स्वप्नमें भी उसके मनको शान्ति है, जबतक वह शोकके घर काम (विषय-कामना) को छोड़कर श्रीरामजीको नहीं भजता।

तब लगि हृदयँ बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरें चाप सायक कटि भाथा॥

(रा० च० मा० ५।४७।१)

लोभ, मोह, मत्सर (डाह), मद और मान आदि अनेकों दुष्ट तभीतक हृदयमें बसते हैं, जबतक कि कर-कमलोंमें

धनुष-बाण और कटि-प्रदेशमें तरकश धारण किये हुए श्रीरघुनाथजी हृदयमें नहीं बसते।

और प्रभु श्रीरामजी उन्हींके हृदय-कमलमें विराजते हैं जो निष्कामभावसे उनका भजन करते हैं—

बचन कर्म मन मोरि गति भजनु करहिं निहकाम।
तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा बिश्राम॥

(रा० च० मा० ३। १६)

अतः—

'लोभ मोह मृगजूथ किरातहि। मनसिज करि हरि जन सुखदातहि॥'

(रा० च० मा० ७। ३०। ६)

—श्रीरामजीका भजन करना चाहिये।

ममता तरुन तमी अँधिआरी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
तब लगि बसति जीव मनमाहीं। जब लगि प्रभु प्रताप रबि नाहीं॥

(रा० च० मा० ५। ४७। ३-४)

राग-द्वेषरूपी उल्लुओंको सुख देनेवाली ममतारूपी अँधेरी रात्रि तभीतक जीवके मनमें बसती है जबतक प्रभु श्रीरामजीका प्रतापरूपी सूर्य उदय नहीं होता।

अतएव निष्काम-भावसे प्रणाम करते ही ममताका नाश कर देनेवाले ***'नमत राम अकाम ममता जहि'***, (रा० च० मा० ७। ३०। ५) श्रीरामजीका भजन करना प्रत्येक जीवका परम कर्तव्य है।

भगवान्‌की मायाके द्वारा रचे हुए दोष और गुण भगवद्भजन बिना नहीं जाते। मनमें ऐसा विचारकर सब कामनाओंको छोड़कर (निष्कामभाव) से श्रीरामजीका भजन करना चाहिये—

हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं।
भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥

भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके भजन बिना जीवोंका क्लेश नहीं मिटता। इसलिये—

सुनु कान दिएँ, नित नेमु लिएँ रघुनाथहिके गुनगाथहि रे।
सुखमंदिर सुंदर रूपु सदा उर आनि धरें धनु-भाथहि रे॥
रसना निसि-बासर सादर सों तुलसी ! जपु जानकीनाथहि रे।
करु संग सुसील सुसंतन सों, तजि क्रूर, कुपंथ कुसाथहि रे॥

(कवितावली, उत्तरकाण्ड २९)

श्रीरामचरितका गान श्रेष्ठ भक्ति है

(डॉ० श्रीराजेन्द्रप्रसादजी शर्मा, संगीतप्रभाकर, संगीतप्रवीण, एम्० ए०, पी-एच्० डी० (संगीत))

शृण्वन् सुभद्राणि रथाङ्गपाणे-
र्जन्मानि कर्माणि च यानि लोके।
गीतानि नामानि तदर्थकानि
गायन् विलज्जो विचरेदसङ्गः॥
एवंव्रतः स्वप्रियनामकीर्त्या
जातानुरागो द्रुतचित्त उच्चैः।
हसत्यथो रोदिति रौति गाय-
त्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

(श्रीमद्भा० ११। २। ३९-४०)

'संसारमें भगवान्‌के जन्मकी और लीलाकी बहुत-सी मङ्गलमयी कथाएँ प्रसिद्ध हैं। उन्हें सुनते रहना चाहिये। उन गुणों और लीलाओंका स्मरण दिलानेवाले भगवान्‌के बहुत-से नाम भी प्रसिद्ध हैं। लाज-संकोच छोड़कर उनका गान करते हुए किसी भी व्यक्ति, वस्तु और स्थानमें आसक्ति न करके विचरण करते रहना चाहिये। जो इस प्रकार विशुद्ध व्रत-नियम ले लेता है, उसके हृदयमें अपने परम प्रियतम प्रभुके नाम-कीर्तनसे अनुरागका, प्रेमका अङ्कुर उग आता है। उसका चित्त द्रवित हो जाता है। अब वह साधारण लोगोंकी स्थितिसे ऊपर उठ जाता है। लोगोंकी मान्यताओं, धारणाओंसे परे हो जाता है। दम्भसे नहीं, स्वभावसे ही मतवाला-सा होकर कभी खिलखिलाकर हँसने लगता है तो कभी फूट-फूटकर रोने लगता है। कभी ऊँचे स्वरसे भगवान्‌को पुकारने लगता है तो कभी मधुर स्वरसे उनके गुणोंका गान करने लगता है। कभी-कभी जब वह अपने प्रियतमको अपने नेत्रोंके सामने अनुभव करता है, तब उन्हें रिझानेके लिये नृत्य भी करने लगता है।'

संगीत प्राचीन कालसे ही ईश्वरकी आराधना एवं भक्तिमें प्रमुख रूपसे सहायक रहा है। प्राचीन कालमें वेदोंकी ऋचाओंका गान संगीतके माध्यमसे ही होता था। सामवेद तो गानस्वरूप होनेसे गेय ही है—पुराणोंमें भगवन्नाम-गुणगानके

सम्बन्धमें भगवान् विष्णुने नारदजीसे यहाँतक कहा है कि—

नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद॥

तात्पर्य यह कि ईश्वरका निवास वहीं है जहाँ उनके भक्त उनके गुणोंका गान करते हैं।

कलियुगमें तो भगवन्नामके, भगवच्चरित्रके, भगवान्की लीलाओंके तथा भगवान्के गुणानुवादके गानकी—संकीर्तनकी ही विशेष महिमा है, महात्मा तुलसीदास, सूरदास, मीराबाई आदि तो निरन्तर भगवद्गुण-गानके आनन्दमें निमग्न रहते थे।

मनकी चञ्चलता रोकनेके लिये भगवान्का गुणगान एक परमोपयोगी उपाय है। इस गानके लिये देश-कालका कोई नियम नहीं है और न पात्र-अपात्रकी बाध्यता है। भजनरूपी दिव्य गुणगानमें समाधिकी-सी स्थिति हो जाती है। संकीर्तन-प्रेमी भक्त अपने आराध्यके नाम, रूप, लीला, धामका आश्रय ग्रहण कर स्वयं भी तद्रूप हो जाता है। आत्मविस्मृति और आराध्यस्मृतिमें भगवद्गुणगानका अद्भुत वैशिष्ट्य है।

भगवन्नामके गुणगानकी इससे अधिक और महिमा क्या हो सकती है कि स्वयं भक्तिदेवी उसमें प्रकट होकर आनन्दित हो नृत्य करने लगती हैं। भागवतमाहात्म्यमें कहा गया है कि भगवान्को प्रसन्न करनेके लिये संकीर्तनके महान् आचार्योंद्वारा जो दिव्य गान प्रारम्भ हुआ उसमें प्रह्लादजी तो अत्यन्त चञ्चलगति होनेके कारण करताल बजाने लगे, उद्धवजीने झाझें उठा लीं, देवर्षि नारद वीणाकी ध्वनि करने लगे, स्वर-विज्ञान (गानविद्या) में कुशल होनेके कारण अर्जुन राग अलापने लगे, इन्द्रने मृदङ्ग बजाना आरम्भ किया, सनकादि बीच-बीचमें जय-घोष करने लगे और इन सबके आगे शुकदेवजी तरह-तरहकी सरस अङ्ग-भङ्गी करके भाव बताने लगे—

प्रह्लादस्तालधारी तरलगतितया चोद्धवः कांस्यधारी
वीणाधारी सुरर्षिः स्वरकुशलतया रागकर्तार्जुनोऽभूत्।
इन्द्रोऽवादीन्मृदङ्गं जयजयसुकराः कीर्तनं ते कुमारा
यत्राग्रे भाववक्ता सरसरचनया व्यासपुत्रो बभूव॥

(श्रीमद्भा० मा० ६। ८६)

प्रभु श्रीरामने स्वयं भक्तिके जो नौ प्रकार बताये हैं, उसमें संगीत-गानको भी चौथी भक्तिके रूपमें स्थान दिया है। उन्होंने कहा है—

चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान॥

अर्थात् प्रभु श्रीरामके गुणोंका गान छल-कपट-रहित होकर अत्यन्त प्रेम एवं श्रद्धाभावसे करना श्रेष्ठ भक्ति है। प्रभु श्रीरामके चरित्रसे सम्बन्धित श्रेष्ठ ग्रन्थ श्रीरामचरितमानस है, जिसके रचयिता रामभक्त गोस्वामी तुलसीदासजी हैं। गोस्वामी तुलसीदासजीने प्रभु श्रीरामका चरित्र गाकर ही रचा है और उसका गान करनेके लिये ही कहा है।

ईश्वराराधनमें एकाग्रताका होना अत्यावश्यक है। संगीत-गानसे एकाग्रता आती है। भगवान् श्रीरामके चरित्रोंका गुण-गान भगवान् शिव, नारद, गरुड, काकभुशुण्डि, याज्ञवल्क्य, भरद्वाज आदि सभी ऋषि-मुनियोंने किया है।

गोस्वामी तुलसीदासजीने तो यहाँतक कहा है कि कलियुगमें तो मनुष्यको भगवान् श्रीरामके गुणगानसे ही भगवच्चरणारविन्दोंकी भक्ति तथा मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है और वह भवसागरसे पार हो जाता है।

उन्होंने श्रीरामचरितमानसमें प्रभु श्रीरामके चरित्र-गानके विषयमें बार-बार संकेत किया है, यहाँ कुछ स्थलोंका निर्देश किया गया है—

बालकाण्ड

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहिं मग चलत सुगम मोहि भाई॥
× × ×

राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनि बर बानी॥
× × ×

जे गावहिं यह चरित सँभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे॥
× × ×

जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन बेद जसु गावा॥
× × ×

राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा॥
× × ×

उमा चरित सुंदर मैं गावा। सुनहु संभु कर चरित सुहावा॥
× × ×

यह चरित जे गावहिं हरि पद पावहिं ते न परहिं भवकूपा॥
× × ×

उपबीत ब्याह उछाह मंगल सुनि जे सादर गावहीं।

बैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्बदा सुखु पावहीं ॥

× × ×

सेस सारदा बेद पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना ॥

× × ×

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। बिपुल बिसद निगमागम गाए ॥

× × ×

बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष संभु श्रुति गाए ॥

× × ×

जहँ तहँ राम ब्याहु सबु गावा। सुजसु पुनीत लोक तिहुँ छावा ॥

अरण्यकाण्ड

रघुबीर चरित पुनीत निसि दिन दास तुलसी गावई।

× × ×

रावनारि जसु पावन गावहिं सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ़ पावहिं बिनु बिराग जप जोग ॥

किष्किन्धाकाण्ड

जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

सुन्दरकाण्ड

सकल सुमंगल दायक रघुनायक गुन गान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव सिंधु बिना जल जान ॥

उत्तरकाण्ड

जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं। सुख संपति नाना बिधि पावहिं ॥

× × ×

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मैं नाथ अमिति सुख पावा ॥

× × ×

रामचरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना ॥

× × ×

कलिजुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा ॥
कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना ॥

× × ×

मन कामना सिद्धि नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा ॥

अन्तमें गोस्वामीजी प्रभु श्रीरामके चरित्रगानके सम्बन्धमें कहते हैं—

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहिं सुनहिं जे गावहीं।
कलि मल मनोमल धोइ बिनु श्रम राम धाम सिधावहीं ॥

उपर्युक्त रामचरितमानसके सभी उदाहरणोंसे हमें यह ज्ञात होता है कि गोस्वामी तुलसीदासजी भी भगवच्चरित्रके गानके महत्त्वके प्रति सचेत थे, यही कारण है कि सम्पूर्ण श्रीरामचरितमानसमें जहाँ भी उन्हें अवसर मिला, उन्होंने श्रीरामभक्तिमें भगवद्गुण-गानके महत्त्वका प्रतिपादन किया। गोस्वामीजीके अनुसार भगवद्गुणानुवादमें इतनी शक्ति है कि वह मनुष्यके सारे कल्मषोंको धोकर उसे श्रीरामके परमधामका अधिकारी बना देता है। श्रीरामके चरित्रका गान भवसागरसे पार होनेका सुगम उपाय है। जो मनुष्य प्रभुके चरित्रका गान नहीं करते, उनके सम्बन्धमें गोस्वामीजी कहते हैं—

जो नहिं करइ राम गुन गाना। जीह स दादुर जीह समाना ॥
(रा० च० मा० १। ११३। ६)

अर्थात् जो जीभ प्रभु श्रीरामचन्द्रजीके गुणोंका गान नहीं करती, वह मेंढककी जीभके समान है। प्रभु श्रीरामके चरणोंमें सहज स्वाभाविक प्रेम-अनुराग और भक्तिके लिये उनके चरित्र और गुणोंका गान बहुत सहायक सिद्ध होता है। श्रीराम-चरितका गुणगान भवसागरसे पार होनेका—मोक्ष प्राप्त करनेका सबसे सरल और सुगम मार्ग है।

श्रीराम—देवता और मनुष्य

श्रीरामचन्द्रजी जो एक ही कालमें हमारे निकट देवता और मनुष्य हैं। रामायण, जो एक ही कालमें हमारी भक्ति और प्रीतिभाजन हुई है, यह कभी सम्भव नहीं होता, यदि इस महाग्रन्थकी कविता भारतवर्षकी दृष्टिमें केवल कवियोंकी कपोल-कल्पना ही होती और वह हमारे लोक-व्यवहारके कार्यमें न आ सकती।

इस प्रकारके ग्रन्थको यदि विदेशी समालोचक अपने काव्योंके विचारके आदर्शके अनुसार अप्राकृत कहेंगे तो उनके देशके सहित तुलना करनेमें भारतवर्षकी एक और भी विशेषता प्रकट होती है। रामायणमें भारतवर्षने जो चाहा, वही पाया है।

—विश्वकवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर

श्रीरामकी मानसी पूजा

भारतीय अध्यात्म-वाङ्मयमें मानसी पूजाका अमित महत्त्व स्वीकार किया गया है। बाह्य उपचारों और सामग्रियोंके अभावमें भी मानसी पूजाके द्वारा भगवत्प्रीतिकी प्राप्ति सर्वथा सहज और सुगम है। श्रीरामकी मानसी पूजाकी विधि श्रीसुतीक्ष्णजीने दण्डकवनमें अपने गुरु अगस्त्य ऋषिसे पूछी थी। अगस्त्यजीने इस प्रसंगपर विस्तारसे प्रकाश डाला है। आनन्दरामायणके मनोहरकाण्डके तीसरे सर्गमें ५५वें श्लोकसे १२३ वें श्लोकतक इसका यथेष्ट विवरण मिलता है।

अगस्त्यजीने बतलाया कि श्रीरामकी मानसी पूजा करनेवाला अपने राग-द्वेषादिसे अपवित्र चित्तको वैराग्यके अभ्याससे निर्मल कर ले। शौचादि कर्मसे प्रातःकाल निवृत्त होकर एकान्त स्थानमें समस्थित होकर भवपाशसे मुक्त होनेके लिये साधकको श्रीरामका ध्यान और पूजन करना चाहिये। अपने हृदयमें श्रीरामका ध्यान करना चाहिये। अगस्त्यजीका कथन है—

रामं पद्मविशालाक्षं कालाम्बुदसमप्रभम्।
स्मितवक्त्रं सुखासीनं चिन्तयेच्चित्तपुष्करे॥

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड ३। ५६)

'साधकके हृदयकमलपर श्रीराम सुखपूर्वक सहज आसनसे विराजमान हैं, उनके नेत्रकमल विशाल हैं, वे श्याम मेघके समान नीले वर्णवाले हैं तथा मन्द-मन्द मुसकरा रहे हैं।'

साधकको चाहिये कि वह नाभिकुण्डसे निकले हुए कदलीपुष्पके समान आठ दलोंवाले स्निग्ध वर्णके हृदयरूपी कमलका ध्यान करे, उस कमलको रामनामसे विकसित कर बीचमें सूर्य, सोम और अग्निमण्डलसे भी अधिक प्रकाशवाले तेजका ध्यान करे, उसपर रत्नमय उज्ज्वल पीठिका—चौकीकी भावना करके उसके बीचो-बीच कोटि-कोटि सूर्यकी प्रभाके समान सम्पूर्ण प्रकाशित श्रीरामका ध्यान करे।

ध्यान

इन्दीवरनिभं शान्तं विशालाक्षं सुवक्षसम्।
उद्यद्दीधितिमद्भास्वत्कुण्डलाभ्यां विराजितम्॥
सुनासं सुकिरीटं च सुकपोलं शुचिस्मितम्।
विज्ञानमुद्रं द्विभुजं कम्बुग्रीवं सुकुन्तलम्॥
नानारत्नमयैर्दिव्यहारैर्भूषितमव्ययम्।
विद्युत्पुञ्जप्रतीकाशं वस्त्रयुग्मधरं हरिम्॥
वीरासनस्थं संतानतरुमूलनिवासिनम्।
महासुगन्धलिप्ताङ्गं वनमालाविराजितम्॥
वामपार्श्वे स्थितां सीतां चामीकरसमप्रभाम्।
लीलापद्मधरां देवीं चारुहासां शुभाननाम्॥
पश्यन्तीं स्निग्धया दृष्ट्या दिव्यां कल्पविराजिताम्।
छत्रचामरहस्तेन लक्ष्मणेन सुसेवितम्॥
हनुमत्प्रमुखैर्नित्यं वानरैः परिवारितम्।
स्तूयमानमृषिगणैः सेवितं भरतादिभिः॥
सनन्दनादिभिश्चान्यैर्योगिवृन्दैः स्तुतं सदा।
सर्वशास्त्रार्थकुशलं योगज्ञं योगसिद्धिदम्॥

(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड ३। ६२—६९)

'श्रीराम नीले कमलकी आभासे युक्त एवं विशाल नेत्रोंसे सुशोभित हैं, शान्त हैं, सुवक्षवाले हैं, सुन्दर किरणोंकी दीप्तिसे प्रकाशित कुण्डलोंसे उनके कान समलंकृत हैं, उनकी नासिका सुन्दर है, कपोल मनोहर हैं, उनकी निर्मल अमृतमयी मुसकान है, उन्होंने सुन्दर मुकुट धारण किया है, विज्ञानमुद्रा धारण किये हैं, वे दो भुजावाले हैं, शङ्खके समान उनकी ग्रीवा है, काले-काले सुन्दर केश हैं, अनेक रत्नोंसे गुँथे दिव्य हार उन्होंने धारण किये हैं, वे अव्यय अविनाशी हैं, उन्होंने विद्युत्प्रकाशपुञ्जकी आभावाले युगल पीत वस्त्र धारण कर रखे हैं, हरि—श्रीराम वीरासनसे स्थित हैं, वे कल्पवृक्षके नीचे विराजमान हैं, उनके अङ्गमें उत्तम सुगन्धित चन्दन-अङ्गराग आदिका लेप है, वे वनमालासे विभूषित हैं, उनके वामभागमें स्वर्ण-आभामयी श्रीसीताजी विराजित हैं जिनके हाथमें लीलापद्म है, जिनकी मुसकान मनको मोहित कर लेनेवाली है तथा मुख बड़ा सुन्दर है, जो स्निग्ध स्नेहमयी दृष्टिसे श्रीरामकी ओर निरन्तर देख रही हैं, जो दिव्य हैं और दिव्य आभूषणोंसे अलंकृत हैं; वे श्रीलक्ष्मणजीके द्वारा सुसेवित हैं, जिनके हाथमें छत्र और चँवर हैं—श्रीलक्ष्मणजी हाथमें छत्र और चँवर लेकर उनकी सेवा कर रहे हैं। वे हनुमान् आदि वानरोंसे नित्य घिरे हुए—परिसेवित हैं। ऋषिगण उनका स्तवन कर रहे हैं, सनन्दन आदि योगी उनकी स्तुतिमें तल्लीन हैं, भरत आदि

उनकी सेवामें रत हैं, उन्हें सारे शास्त्रोंका पूर्ण ज्ञान है, वे परम योगी हैं तथा समस्त योग-सिद्धियोंको प्रदान करनेवाले हैं।'

कौस्तुभमणि तथा चिन्तामणिसे विभूषित श्रीरामका हृदयमें पूजन करके उनका आवाहन करना चाहिये।

आवाहन

आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं विभुम्।
कौसल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम्॥

'मैं प्रकृतिसे परे—दिव्य विष्णुस्वरूप कौसल्यानन्दन जानकीवल्लभ, जगदीश्वर, सर्वव्यापक—विभु भगवान् श्रीरामका आवाहन करता हूँ।'

आसन

राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते।
रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो॥
श्रीरामागच्छ भगवन् रघुवीर रघूत्तम।
जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा॥
रामचन्द्र महेष्वास रावणान्तक राघव।
यावत्पूजां समाप्येऽहं तावत्त्वं संनिधौ भव॥
रघुनन्दन राजर्षे राम राजीवलोचन।
रघुवंशज मे देव श्रीरामाभिमुखो भव॥
प्रसीद जानकीनाथ सुप्रसिद्ध सुरेश्वर।
प्रसन्नो भव मे राजन् सर्वेश मधुसूदन॥
शरणं मे जगन्नाथ शरणं भक्तवत्सल।
वरदो भव मे राजन् शरणं मे रघूत्तम॥

'हे राजाधिराज राजेन्द्र पृथ्वीनाथ श्रीरामचन्द्र! मैं आपको रत्नसिंहासन प्रदान करता हूँ—उसे आप स्वीकार कीजिये। हे राजेन्द्र! हे रघुवीर, रघुश्रेष्ठ भगवान् राम! जानकीके साथ पधारकर आप इस आसनपर सदा विराजमान रहें। हे महाधनुष धारण करनेवाले श्रीरामचन्द्र! रावणका अन्त करनेवाले राघव! जबतक मैं पूजा समाप्त नहीं कर लेता, तबतक आप मेरे पास ही निवास कीजिये। हे रघुनन्दन! राजर्षे, कमलनयन राम, रघुके वंशमें जन्म लेनेवाले देव! आप मेरे सम्मुख होनेकी कृपा कीजिये। हे जानकीनाथ, परम प्रसिद्ध देवेश्वर! हे सर्वेश्वर, मधुसूदन, राजन्! आप मुझपर प्रसन्न हो जाइये, प्रसन्न हो जाइये। हे जगन्नाथ, भक्तवत्सल, रघुश्रेष्ठ राजन्! आप मेरे रक्षक हैं, आप मुझे वरदान दीजिये, मेरी रक्षा कीजिये।'

पाद्य

त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक।
पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन॥

'हे अनन्त, तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले, रघुनायक, राजर्षे, कमलनयन! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप इस पाद्य—पादप्रक्षालनार्थ जलको स्वीकार कीजिये।' (उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर श्रीरामके चरणकमलको मानस जलसे धोकर उसे (जलको) अपने मस्तकपर धारण करनेकी भावना करनी चाहिये।)

अर्घ्य

परिपूर्ण परानन्द नमो रामाय वेधसे।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कृष्ण विष्णो जनार्दन॥

'मैं परिपूर्ण परमानन्द विधाता रामको प्रणाम करता हूँ। हे कृष्ण, जनार्दन, विष्णो! आप मेरे द्वारा दिये गये अर्घ्य—गन्धपुष्पाक्षतसहित जलको ग्रहण कीजिये।' (श्रीरामके करकमलमें पवित्र जल छोड़नेकी भावना करनी चाहिये।)

मधुपर्क

ॐ नमो वासुदेवाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे।
मधुपर्कं गृहाणेमं राजराजाय ते नमः॥

'हे वासुदेव राजराजेश्वर, तत्त्वज्ञानस्वरूप, ॐकारवाच्य श्रीराम! आपको नमस्कार है। इस मधुपर्क—दही, घी और मधुके योगसे बने पदार्थको ग्रहण करनेकी कृपा कीजिये।'

आचमनीय

नमः सत्याय शुद्धाय बुध्याय ज्ञानरूपिणे।
गृहाणाचमनं देव सर्वलोकैकनायक॥

'सत्यस्वरूप, शुद्ध, शिवरूप, ज्ञानरूप भगवान् श्रीरामको प्रणाम है। हे देव, समस्त लोकोंके एकच्छत्र स्वामी! आप इस आचमनीय—सुगन्धमय निर्मल जलको स्वीकार कीजिये।'

स्नान

ब्रह्माण्डोदरमध्यस्थैस्तीर्थैश्च रघुनन्दन।
स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं गृहाण जनार्दन॥

'हे रघुनन्दन! ब्रह्माण्डमें स्थित समस्त तीर्थोंके जलसे मैं

आपको स्नान कराता हूँ। हे जनार्दन ! भक्तिपूर्वक मेरे द्वारा कराये गये इस कर्म—स्नानको आप स्वीकार कीजिये।'

वस्त्र

संतप्तकाञ्चनप्रख्यं पीताम्बरमिमं हरे।
संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते॥

'हे जगन्नाथ रामचन्द्र ! आपको नमस्कार है। अच्छी तरह तपाये गये स्वर्णके समान दमकते हुए इस पीताम्बरको आप स्वीकार कीजिये।'

यज्ञोपवीत

श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव।
ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनायक॥

'हे श्रीराम, अच्युत, यज्ञेश, श्रीधर, आनन्दरूप, राघव, रघुनायक ! उत्तरीय वस्त्रके सहित समर्पित इस यज्ञोपवीतको स्वीकार कीजिये।'

आभूषण

किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमेखलाः।
ग्रैवेयकौस्तुभं हारं रत्नकङ्कणनूपुरान्॥
एवमादीनि सर्वाणि भूषणानि रघूत्तम।
अहं दास्यामि ते भक्त्या संगृहाण जनार्दन॥

'हे रघुश्रेष्ठ श्रीराम ! मुकुट, हार, केयूर (बाजूबंद), रत्नोंके बने कुण्डल, मेखला, गलेमें पहननेके लिये कौस्तुभ, मुक्तामाला, रत्नोंके कड़े, नूपुर आदि सब आभूषण बड़ी भक्तिसे समर्पित करता हूँ। हे जनार्दन ! इन्हें आप स्वीकार कीजिये।'

गन्ध

कुङ्कुमागरुकस्तूरीकर्पूरोन्मिश्रचन्दनम्।
तुभ्यं दास्यामि विश्वेश श्रीराम स्वीकुरु प्रभो॥

'हे श्रीराम ! विश्वेश्वर ! प्रभो ! मैं आपको केसर, अगर, कस्तूरी और कपूरसे मिश्रित चन्दन समर्पित करता हूँ, स्वीकार कीजिये।'

तुलसीदल-पुष्पादि

तुलसीकुन्दमन्दारजातिपुन्नागचम्पकैः।
कदम्बकरवीरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः॥
नीलाम्बुजैर्बिल्वदलैः पुष्पमाल्यैश्च राघव।
पूजयिष्याम्यहं भक्त्या संगृहाण नमोऽस्तु ते॥

'हे राघव ! भक्तिपूर्वक तुलसीपत्र, कुन्द, मन्दार, जूही, पुंनाग, चम्पक, कदम्ब, करवीर, कमल, नीले कमल, बिल्वपत्र और फूलकी मालाओंसे मैं आपका पूजन करता हूँ। आप स्वीकार कीजिये। आपको नमस्कार है।'

धूप

वनस्पतिरसैर्दिव्यैर्गन्धाढ्यैः सुमनोहरैः।
रामचन्द्र महीपाल धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

'हे राजा रामचन्द्र ! वनस्पतिके दिव्य रसों और अत्यन्त मनोहर गन्धसे सम्पन्न यह धूप ग्रहण कीजिये।'

दीप

ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे।
गृहाण दीपकं राजंस्त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥

'हे समस्त ज्योतियोंके पति, विधाता, राम ! आपको नमस्कार है। हे राजन् ! तीनों लोकका अन्धकार नष्ट करनेवाले इस दीपको स्वीकार कीजिये।'

नैवेद्य

इदं दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिर्विराजितम्।
श्रीराम राजराजेन्द्र नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥

'हे राजाओंके राजा श्रीराम ! छः रसोंसे युक्त यह अमृतके समान दिव्य अन्न प्रस्तुत है। इस नैवेद्यको आप स्वीकार कीजिये।'

ताम्बूल

नागवल्लिदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम्।
ताम्बूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिसमन्वितम्॥

'हे श्रीराम ! नागरबेलके पत्तोंसे युक्त सुपारी, कपूर आदि पदार्थोंसे तैयार किये गये ताम्बूल—बीड़ेको ग्रहण कीजिये।'

आरती

मङ्गलार्थं महीपाल नीराजनमिदं हरे।
संगृहाण 'जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते॥

'हे हरे ! राम ! हे राजन् ! हे जगन्नाथ भगवान् रामचन्द्र ! मङ्गल-कल्याणके लिये समर्पित इस नीराजन—आरतीको आप स्वीकार कीजिये, आपको नमस्कार है।'

अष्ट-नमस्कार-पुष्पाञ्जलि

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमात्मने।
सर्वभूतान्तरस्थाय ससीताय नमो नमः॥

ॐ नमो भगवते श्रीरामचन्द्राय वेधसे।
सर्ववेदान्तवेद्याय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीविष्णावे परमात्मने।
परात्पराय रामाय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीरघुनाथाय शार्ङ्गिणे।
चिन्मयानन्दरूपाय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीरामकृष्णाय चक्रिणे।
विशुद्धज्ञानदेहाय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीवासुदेवाय विष्णवे।
पूर्णानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीरामभद्राय वेधसे।
सर्वलोकशरण्याय ससीताय नमो नमः॥
ॐ नमो भगवते श्रीरामायामिततेजसे।
ब्रह्मानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः॥

'ॐकारस्वरूप, भगवान्, परमात्मा, सब प्राणियोंके भीतर निवास करनेवाले सीतासहित श्रीरामको नमस्कार है। श्रीसीतासहित भगवान् सर्ववेदान्तवेद्य विधाता श्रीरामको नमस्कार है। श्रीसीतासहित परात्पर परमात्मा भगवान् विष्णुरूपधारी श्रीरामको नमस्कार है। श्रीसीतासहित चिन्मयानन्दरूप शार्ङ्गधनुषधारी भगवान् श्रीरघुनाथजीको नमस्कार है। श्रीसीतासहित चक्रधारी श्रीरामकृष्ण, विशुद्ध ज्ञानमूर्ति भगवान्‌को नमस्कार है। श्रीसीतासहित एकमात्र पूर्णानन्दस्वरूप भगवान् वासुदेव श्रीविष्णुको नमस्कार है। समस्त लोकको शरण देनेवाले—समस्त लोकोंके रक्षक श्रीसीतासहित परब्रह्म श्रीरामभद्रको नमस्कार है। श्रीसीतासहित एकमात्र ब्रह्मानन्दस्वरूप, अपार तेजस्वी भगवान् श्रीरामको नमस्कार है।'

राजोपचार

नृत्यगीतादिवाद्यादिपुराणपठनादिभिः।
राजोपचारैरखिलैः संतुष्टो भव राघव॥

'हे राघव! मेरे नृत्य, गीत, वाद्य तथा पुराणपाठ आदि समस्त राजोपचारोंसे आप संतुष्ट होनेकी कृपा कीजिये।'

प्रार्थना

विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय विष्णवे।
अन्तःकरणसंशुद्धिं देहि मे रघुनन्दन॥
नमो नारायणानन्त श्रीराम करुणानिधे।
मामुद्धर जगन्नाथ घोरात् संसारसागरात्॥
रामचन्द्र महेष्वास शरणागततत्पर।
त्राहि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहानलात्॥
श्रीकृष्ण श्रीकर श्रीश श्रीराम श्रीनिधे हरे।
श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीनृसिंह कृपानिधे॥
गर्भजन्मजराव्याधिघोरसंसारसागरात्।
मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन॥

'हे निर्मल ज्ञानविग्रह विष्णो! आपको नमस्कार है। हे रघुनन्दन! आप मुझे अन्तःकरणकी शुद्धि प्रदान कीजिये। हे अनन्त! नारायण, करुणासागर श्रीराम! आपको नमस्कार है। हे जगन्नाथ! इस घोर संसारसागरसे आप मेरा उद्धार कीजिये। हे समस्त लोकोंके परमेश्वर, शरणागतकी रक्षामें तत्पर रहनेवाले, विशाल धनुषधारी रामचन्द्र! भौतिक, दैहिक और दैविक—तीनों तापोंकी महाज्वालासे मेरी रक्षा कीजिये। हे श्रीनाथ, महाविष्णो, नृसिंह, कृपासागर, श्रीनिधे, लक्ष्मीपति, श्रीकर, जगन्नाथ, कृष्ण, विष्णो, जनार्दन! आप गर्भ, जन्म, जरा और व्याधिरूपी घोर—विषम संसारसागरसे मेरा उद्धार कर दीजिये।'

श्रीराम गोविन्द मुकुन्द कृष्ण
श्रीनाथ विष्णो भगवन्नमस्ते।
प्रौढारिषड्वर्गमहाभयेभ्यो
मां त्राहि नारायण विश्वमूर्ते॥

'हे श्रीराम, गोविन्द, मुकुन्द, कृष्ण, श्रीनाथ, विष्णो, भगवन्! आपको नमस्कार है। हे विश्वमूर्ति—विश्वरूप नारायण! आप काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सररूपी प्रबल शत्रुओंके भीषण भयसे मेरी रक्षा कीजिये।'

श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्द राघव।
श्रीगोविन्द हरे विष्णो नमस्ते जानकीपते॥
ब्रह्मानन्दैकविज्ञानं त्वन्नामस्मरणं नृणाम्।
त्वत्पदाम्बुजसद्भक्तिं देहि मे रघुवल्लभ॥

'हे श्रीराम, अच्युत, यज्ञेश, श्रीधर, आनन्दरूप राघव, श्रीगोविन्द, हरे, विष्णो, जानकीपते! आपको नमस्कार है। आपका नामस्मरण मनुष्योंके लिये ब्रह्मानन्दके एकमात्र विज्ञानका मूलाधार है। हे रघुवल्लभ! आप मुझे अपने

चरणकमलकी सच्ची भक्ति प्रदान कीजिये।'

नमोऽस्तु नारायण विश्वमूर्ते
नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वयोने।
त्वमेव विश्वं सचराचरं च
त्वामेव सर्वं प्रवदन्ति सन्तः॥
नमोऽस्तु ते कारणकारणाय
नमोऽस्तु कैवल्यफलप्रदाय।
नमो नमस्तेऽस्तु जगन्मयाय
वेदान्तवेद्याय नमो नमस्ते॥
नमो नमस्ते भरताग्रजाय
नमोऽस्तु यज्ञप्रतिपालनाय।
अनन्त यज्ञेश हरे मुकुन्द
गोविन्द विष्णो भगवन् मुरारे॥
श्रीवल्लभानन्त जगन्निवास
श्रीराम राजेन्द्र नमो नमस्ते।
श्रीजानकीकान्त विशालनेत्र
राजाधिराज त्वयि मेऽस्तु भक्तिः॥

'हे विश्वमूर्ते, विश्वके मूल सनातन नारायण! आपको नमस्कार है। आप ही विश्वरूप हैं। संतजन आपको ही सब कुछ सचराचर बतलाते हैं। आप कारणोंके भी कारण हैं, कैवल्यफल—परम मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। हे प्रभो! आपको बार-बार नमस्कार है। हे जगन्मय, वेदान्तवेद्य! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे भरतके अग्रज—श्रीराम! (विश्वामित्रके) यज्ञकी रक्षा करनेवाले! आपको नमस्कार है। हे भगवान् अनन्त, यज्ञेश, मुकुन्द, हरे, विष्णो, गोविन्द, मुरारे, श्रीवल्लभ, अनन्त, जगन्निवास, श्रीराम, राजेन्द्र! आपको नमस्कार है, नमस्कार है। हे जानकीकान्त, बड़े-बड़े नेत्रोंवाले राजाधिराज! आपके प्रति मेरी भक्ति हो।'

तप्तजाम्बूनदेनैव निर्मितं रत्नभूषितम्।
स्वर्णपुष्पं रघुश्रेष्ठ दास्यामि स्वीकुरु प्रभो॥
हृत्पद्मकर्णिकामध्ये सीतया सह राघव।
निवस त्वं रघुश्रेष्ठ सर्वैरावरणैः सह॥
मनोवाक्कायजनितं कर्म यद् वा शुभाशुभम्।
तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया।
दासोऽहमिति मां मत्वा क्षमस्व रघुपुंगव॥
नमस्ते जानकीनाथ रामचन्द्र महीपते।
पूर्णानन्दैकरूप त्वं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते॥

'हे रघुश्रेष्ठ! हे प्रभो! तपाये हुए सोनेसे बनाये गये तथा रत्नोंसे विभूषित स्वर्णपुष्प मैं आपको समर्पित करता हूँ, स्वीकार करनेकी कृपा कीजिये। हृदय-कमलकी कर्णिकाके मध्यमें समस्त आवरणोंसे युक्त श्रीसीताजीके साथ, हे रघुश्रेष्ठ, राघव! आप निवास कीजिये—हे शार्ङ्गधनुषधारी राम! आपको नमस्कार है। मेरे द्वारा मन, वचन और शरीरसे किये गये शुभ-अशुभ कर्म आपकी प्रसन्नताका कारण बनें। मेरे द्वारा रात-दिन हजारों अपराध किये ज़ाते हैं। हे रघुश्रेष्ठ! मुझे अपना दास समझकर क्षमा कर दीजिये। हे पृथ्वीके स्वामी, रामचन्द्र, जानकीनाथ! आपको नमस्कार है। आप एकमात्र पूर्णानन्द-स्वरूप हैं, मेरे अर्घ्यको ग्रहण करनेकी कृपा कीजिये, आपको नमस्कार है।'—(आनन्दरामायण, मनोहरकाण्ड ३। ७१—१२०)

इस तरह महर्षि अगस्त्यने अपने शिष्य सुतीक्ष्णके पूछनेपर श्रीरामकी मानसी पूजाकी विधि साङ्गोपाङ्ग निरूपित कर दी।

श्रीराम—मर्यादापुरुषोत्तम

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामका प्रादुर्भाव अन्य सकल अवतारोंकी अपेक्षा अनेक विशेष महत्त्व रखता है।

× × × × ×

आदर्श सामने होनेसे मनुष्योंकी शिक्षामें अत्यन्त सुभीता होता है। श्रीरामको सदादर्शोंका खजाना कहा जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। उनके चरित्रसे मनुष्य सब तरहकी सत्-शिक्षा प्राप्त कर सकता है। मनुष्योंकी सत्-शिक्षाके लिये जितना गुरुपदका कार्य श्रीरामचरित्र कर सकता है, उतना अन्य किसीका चरित्र नहीं कर सकता। श्रीरामका 'मर्यादापुरुषोत्तम' नाम इसी कारणसे पड़ा है।

—ब्र० स्वामी विवेकानन्दजी

सर्वोपरि साधन भगवन्नाम

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती)

नाम-जपमें श्रद्धा, प्रीति, तन्मयताकी विशेष आवश्यकता

कलियुगमें भगवन्नाम-जपकी साधना ही सर्वोपरि साधना है।

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(नारदपुराण, पूर्वार्ध, प्र० पा० ४१। १५)

अर्थात् 'भगवान्का नाम ही, नाम ही, नाम ही मेरा जीवन है, कलियुगमें नामको छोड़कर दूसरी गति नहीं है, नहीं है, नहीं है।'

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

'उन निरन्तर मुझमें मन लगाये हुए, प्रेमपूर्वक भजन करनेवाले भक्तोंको मैं तत्त्वज्ञान देता हूँ, जिससे वे मुझे प्राप्त हो जाते हैं।'

अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाषी॥

(रा० च० मा० १। २१। ८)

जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ। नाम जीहँ जपि जानहिं तेऊ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ॥

(रा० च० मा० १। २२। ३-४)

चहुँ जुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि बिसेखि नहिं आन उपाऊ॥

(रा० च० मा० १। २२। ८)

सादर सुमिरन जे नर करहीं। भव बारिधि गोपद इव तरहीं॥

(रा० च० मा० १। ११९। ४)

—इन शास्त्र-वचनोंसे यह अति स्पष्ट हो जाता है कि योग, ध्यान आदि साधनोंके बाधक इस कराल कलिकालमें साधकके लिये सकल सिद्धि-प्रसाधक भगवन्नाम-जप ही अन्यतम साधन है। **'भजतां प्रीतिपूर्वकम्'**— ***'सादर सुमिरन जे नर करहीं।'*** ***'साधक नाम जपहिं लय लाएँ'***—इन वाक्योंमें 'प्रीति' 'लय' 'सादर'—ये शब्द यह सिद्ध कर रहे हैं कि श्रद्धा-प्रेमपूर्वक मन लगाकर नाम-जप करनेपर ही सिद्धिकी प्राप्ति होती है, केवल नामजपसे नहीं। पातञ्जलयोग-सूत्रके समाधिपादके अट्ठाईसवें सूत्र **'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** में भी स्पष्ट कहा है कि भगवन्नाम-जपके साथ उसके अर्थकी भावना भी करनी चाहिये।

नामापराधपर विचार

शंका—भगवन्नाम-जपके साथ 'श्रद्धा-प्रीतिपूर्वक मन लगाकर करना चाहिये'—यह शर्त लगाना ठीक नहीं; क्योंकि शास्त्रोंमें किसी प्रकार भी लिया गया भगवन्नाम सम्पूर्ण पापोंका नाशक तथा यमयातनासे रक्षक और कल्याणकारक माना गया है। देखिये—

साङ्केत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा।
वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः॥
पतितः स्खलितो भग्नः संदष्टस्तप्त आहतः।
हरिरित्यवशेनाह पुमान् नार्हति यातनाम्॥

(श्रीमद्भा० ६। २। १४-१५)

तात्पर्य यह है कि संकेत, परिहास, गाने तथा पुकारनेमें भी वैकुण्ठनाथका नाम-ग्रहण सम्पूर्ण पापोंका नाश कर देता है। गिरते, फिसलते, टूटते, काटते, तपते, चोट खाते हुए पुरुषद्वारा परवश होकर 'हरि' ऐसा कहनेपर भी वह यम-यातना नहीं भोगता।

भायँ कुभायँ अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ॥

(रा० च० मा० १। २८। १)

बिबसहुँ जासु नाम नर कहहीं। जनम अनेक रचित अघ दहहीं॥

(रा० च० मा० १। ११९। ३)

यदि कहा जाय कि ये वचन नाम-जपमें प्रवृत्ति करानेके लिये अर्थवादमात्र हैं, इनका स्वार्थमें तात्पर्य नहीं है तो यह कथन ठीक नहीं; क्योंकि नाम-जपके फलको अर्थवाद मानना नाम-अपराध माना गया है—

सन्निन्दाऽसति नामवैभवकथा श्रीशेशयोर्भेदधीः
अश्रद्धा गुरुशास्त्रवेदवचने नाम्न्यर्थवादभ्रमः।
नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ च धर्मान्तरैः
साम्यं नामजपे शिवस्य च हरेर्नामापराधा दश॥

अर्थात् संतोंकी निन्दा करना, नाम-माहात्म्यकी कथाओं-को असत्पुरुषोंमें कहना, भगवान् विष्णु और शंकरमें भेद-

बुद्धि करना, गुरु, शास्त्र और वेदके वचनोंमें अश्रद्धा करना, नामजपके फलमें अर्थवादका भ्रम होना, मेरे पास भगवन्नाम है (ऐसा अभिमान करके) निषिद्धका आचरण और विहितका त्याग करना, नामजपको दूसरे धर्मोंके समान मानना—ये दस नामापराध भगवान् विष्णु और शंकरके नामजपमें माने गये हैं।

समाधान—कुछ विद्वानोंका कहना है कि पूर्वोक्त भागवतके श्लोकोंमें ही, किसी प्रकारसे भी लिये गये भगवन्नामको केवल पापका नाशक तथा नरकयातनासे रक्षक ही बताया है, कल्याणकारक नहीं। भागवतमें अजामिलके प्रसंगमें पूर्वोक्त श्लोक आये हैं। पुत्रके व्याजसे लिये गये भगवन्नामद्वारा अजामिलके भी केवल पापोंका ही नाश हुआ, कल्याण तो हरिद्वारमें जाकर साधना करनेपर ही हुआ था; ऐसा भागवतमें ही स्पष्ट लिखा है—

गङ्गाद्वारमुपेयाय मुक्तसर्वानुबन्धनः ॥
स तस्मिन् देवसदन आसीनो योगमाश्रितः ।

(श्रीमद्भा० ६ । २ । ३९-४०)

अर्थात् पीछेके सभी बन्धनोंसे मुक्त हुआ अजामिल हरिद्वार गया, उस देवसदन (तीर्थ) में उसने योगका आश्रय लिया।

इससे यही सिद्ध होता है कि श्रद्धा-प्रेमरहित किसी भी प्रकारसे लिया गया भगवन्नाम केवल पापका नाशक तथा यमयातनासे रक्षक ही होता है जबकि श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयतासे लिया गया भगवन्नाम कल्याणकारी होता है। यदि ऐसा न माना जाय तो शास्त्रोंमें जो श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयताका कथन है, उसकी सार्थकता सिद्ध न होगी तथा शास्त्रवचनोंमें विरोध उपस्थित होगा। अतः कुभावसे लिये गये नामको भी कल्याणकारी कहनेवाले शास्त्रवचनोंकी संगति यही लगानी चाहिये कि प्रथम तो उससे उनके पापका नाश ही होता है, जिससे शुद्ध अन्तःकरण होनेपर वे श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नामजप करने लग जाते हैं और उनका भविष्यमें कल्याण हो जाता है। ऐसा ही अजामिलका हुआ था।

अन्य विद्वानोंका कहना है कि कुभाव आदिसे एक बार भी लिया गया भगवन्नाम पूर्वके सभी पापोंका नाश कर देता है, यदि व्यक्ति फिर पाप न करे तो उसका कल्याण हो जाता है। पुनः-पुनः पाप करनेपर पुनः-पुनः लिया गया नाम पापका ही नाश करता रहेगा, उससे कल्याण नहीं होगा।

अन्य विद्वानोंका कहना है कि मरते समय कुभाव आदिसे भी लिया गया नाम पापका नाश तथा कल्याण दोनों कर देता है; क्योंकि नामने अपनी शक्तिसे सम्पूर्ण पापोंका नाश कर दिया, नया पाप करे—ऐसा अवसर ही नहीं आया, अतः उसका कल्याण हो जाता है।

अन्य विद्वानोंका कहना है कि कुभाव आदिसे लिया गया नाम सामान्यरूपसे पापका नाश करता है और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक लिया गया नाम विशेषरूपसे पापका नाश करता है। यदि आगे पाप न किया जाय और श्रद्धा-प्रेमपूर्वक नामजप करता रहे तो पाप-वासनाका भी नाश होता है। इसके बाद भगवद्भक्तिका उदय होता है, तब कल्याण होता है।

पूर्वोक्त दस नामापराधोंमें नामको अन्य धर्मकार्योंके समान मानना भी एक अपराध बताया गया है—'**धर्मान्तरैः साम्यम्**'। इसपर विचार करनेसे भी यही अर्थ निकलता है कि नामपर सर्वोपरि 'श्रद्धा' होनी चाहिये। इससे तो यही सिद्ध होता है कि नामजपमें 'श्रद्धा' की शर्त लगाना या आवश्यकता बताना नामापराध नहीं, किंतु श्रद्धाकी शर्त न लगाना या आवश्यकता न बताना ही नामापराध है।

श्रद्धापूर्वक नाम-जप करनेवाले भी जो साधक खान-पान आदिके शास्त्रीय विधि-निषेधका पालन नहीं करते, और ऐसा मानते हैं कि इनका पालन करना तो नामको सर्वसमर्थ माननेमें संदेह करना है, नाममहिमाको घटाना है। उन साधकोंसे प्रार्थना है कि '**नामास्तीति निषिद्धवृत्तिविहितत्यागौ**' अर्थात् नामके बलपर शास्त्रनिषिद्ध आचरण करना और शास्त्रविहित आचरणका परित्याग करना—इन दो नामापराधोंपर ध्यान दें। इन दोनोंपर ध्यान देनेसे स्पष्ट हो जाता है कि नाम-जपको कल्याणका मुख्य साधन मानना तो ठीक है, किंतु अन्य साधनोंकी अवहेलना करना ठीक नहीं। अन्य साधनोंकी अवहेलनासे नामापराध बनकर नाम-महिमा घटती है, उनका आदर करनेसे नहीं।

पुण्य-कर्मोंसे नाम-जपकी विशेषता

शंका—यदि नाम-जपको भी अन्य पुण्यकर्मोंके अनुष्ठानके समान वाणीसे लिया जानेवाला पुण्यकर्मानुष्ठान ही मान लिया जाय तो ऐसी दशामें नाम-जपमें पुण्यकर्मसे क्या

विशेषता रह जायगी ?

समाधान—शास्त्रीय पुण्यकर्मानुष्ठानमें जाति, देश, काल तथा विधि-निषेध आदिके नियमोंका पालन करना अत्यावश्यक है। इन नियमोंका पालन किये बिना पुण्य-कर्मानुष्ठान पापनाशक न होकर पापोत्पादक भी हो सकते हैं। किंतु भगवन्नाम-जपमें जाति आदिके नियम-पालनकी आवश्यकता नहीं, ऐसा शास्त्रोंमें स्पष्ट कहा गया है—

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः स्त्रियः शूद्रान्त्यजातयः ।
यत्र तत्रानुकुर्वन्ति विष्णोर्नामानुकीर्तनम् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तास्तेऽपि यान्ति सनातनम् ।
न देशकालनियमः शौचाचारविनिर्णयः ॥
कालोऽस्ति यज्ञदाने वा स्नाने कालोऽस्ति सज्जपे ।
विष्णुसंकीर्तने कालो नास्त्यत्र पृथिवीपते ॥
गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् वापि पिबन् भुञ्जन् श्वसंस्तथा ।
कृष्ण कृष्णेति संकीर्त्य मुच्यते पापकञ्चुकात् ॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, स्त्री, शूद्र, अन्त्यज जातिके भी लोग जहाँ-तहाँ भगवन्नाम-संकीर्तन करते रहते हैं, वे भी समस्त पापोंसे विनिर्मुक्त होकर सनातन ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। नामजपमें देश, काल, शौचाचार आदिका नियम नहीं है। यज्ञ, दान, पुण्यस्नानमें और (विधिपूर्वक अनुष्ठानरूप) सत्-जपके लिये शुद्ध कालादिकी आवश्यकता है, भगवन्नाम-जपमें नहीं। चलते-फिरते, खड़े रहते, ऊँघते, खाते, पीते हर समय 'राम-राम' 'कृष्ण-कृष्ण' ऐसा संकीर्तन करके मनुष्य पाप-रूपी केंचुलसे छूट जाता है। अपवित्र हो या पवित्र, सभी अवस्थाओंमें कमलनयन भगवान्‌का स्मरण जो करता है, वह बाहर-भीतरसे पवित्र हो जाता है।

शंका—**'कालोऽस्ति सज्जपे'** अर्थात् सत्-जपमें कालका नियम है, ऐसा जब स्पष्ट कहा है, तब नाम-जपमें कालादिका नियम नहीं—ऐसा कहना परस्पर विरुद्ध है।

समाधान—**'सज्जपे'**—यहाँ जपमें 'सत्' शब्द लगाकर यह बताया है कि साधारण रीतिसे नाम-जपमें नहीं, किंतु विधिपूर्वक अनुष्ठानरूपमें किये जानेवाले सत्-जपमें ही कालादि नियमकी अपेक्षा है। इसी अभिप्रायसे तुलसीदास-जीने भी कराल-कलिकालमें जपको भी साधन नहीं माना—

एहिं कलिकाल न साधन दूजा। जोग जग्य जप तप ब्रत पूजा ॥

(रा० च० मा० ७।१३०।५)

कुछ विद्वानोंका कहना है कि गुरुद्वारा दिये गये मन्त्रविशेषका स्नान आदिसे पवित्र होकर पवित्र देश-कालमें जप करनेका विधान है, उसीको यहाँ 'सज्जप' शब्दसे कहा है, सर्वसाधारण भगवन्नामको नहीं। यही कारण है कि इस रहस्य-को जाननेवाले गुरुजन अपने शिष्यको गुरुमन्त्रके अतिरिक्त सर्व-अवस्थामें जप करने योग्य छोटा-सा भगवन्नाम अलगसे बताते हैं।

नाम-जपमें रस क्यों नहीं आता ?

शंका—हमें श्रद्धापूर्वक निष्काम-भावसे नाम-जप करते हुए बीस वर्ष हो गये तो भी अभीतक नाम-जपमें रस नहीं आता, भगवान्‌में तथा उनके नाममें प्रीति नहीं हुई तथा संसारकी आसक्ति ज्यों-की-त्यों बनी हुई है, इसका क्या कारण है ?

समाधान—आप अपनी वस्तुस्थितिको ठीक-ठीक नहीं समझते, इसलिये ऐसी शंका करते हैं। अनेक सच्चे साधक इसी प्रकारकी शंका करते हैं। जब हम उनसे पूछते हैं कि प्रारम्भमें जब आपने नामजप करना शुरू किया था, तब जैसे थोड़ी देरमें ही मन उकता जाता था, क्या वैसे ही अब भी उकता जाता है ? क्या प्रथमकी तरह भगवान् और उनके नामका स्मरण तथा उच्चारण किये बिना दो-चार दिन भी आप रह सकते हैं ? संसारके कार्य तथा पदार्थका परित्याग करके १-२ दिनके लिये भी आप सत्संग-संकीर्तन आदिमें नहीं जाते थे, क्या आज भी वैसी ही स्थिति बनी हुई है ?

मेरे इन सभी प्रश्नोंका उत्तर जब वे नहींके रूपमें देते हैं, तब हम कहते हैं—इससे यह सिद्ध हो गया कि आपको ऐसी शंका अपनी वस्तुस्थितिको न समझनेके कारण ही होती है। कारण ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि कोई सच्चा साधक बीस वर्षोंतक श्रद्धापूर्वक निष्काम-भावसे नाम-जप या अन्य कोई साधना करे और कुछ भी लाभ न हो।

प्रश्न—आपका कथन ठीक है तो भी विशेष उल्लेखनीय लाभ तो नहीं हुआ, इसका कारण क्या है ?

उत्तर—पापकर्मके दो परिणाम होते हैं, एक तो

पापकर्मोंसे अशुभ अदृष्टरूप पाप उत्पन्न होता है, जिससे कालान्तर या जन्मान्तरमें दुःखरूप फल भोगना पड़ता है। दूसरा, बार-बार पापकर्मोंको करनेसे उनके संस्कार दृढ़ होकर पापवासना हृदयमें जम जाती है। नाम-जपके भी दो परिणाम होते हैं, एक तो नाम-जपसे पापका नाश होता है, दूसरा बार-बार नाम-जप करनेसे नाम-जपके संस्कार दृढ़ होकर नाम-वासना हृदयमें जम जाती है।

जब नाम-वासना हृदयमें जम जाती है, तभी पाप-वासनाका विनाश होता है। इसके बाद भी श्रद्धा तथा प्रेम-पूर्वक नाम-जप करते रहनेपर नाम-जपमें रस आने लगता है और भगवान्‌में भक्ति तथा भगवान्‌के नाममें विशेष प्रीति होने लगती है, जिससे संसारकी आसक्ति मिटने लगती है, ऐसा क्रम है। अतः जिन लोगोंके पापकर्म जितने अधिक होते हैं या पाप-वासना जितनी अधिक सुदृढ़ होती है, उसके अनुरूप नाम-जप तथा नाम-वासना सुदृढ़ होनेपर ही उनका विनाश होता है। इसीलिये किसीको अल्प कालमें एवं किसीको दीर्घ कालमें लाभ प्रतीत होता है।

भगवन्नामरूप अलौकिक शब्दमें तथा भगवान्‌के अलौकिक दिव्य रूपादिमें ही नहीं, किंतु लौकिक शब्द-रूपादि विषयोंमें भी तभी रस (आनन्द) आता है, जब मन-इन्द्रियाँ उनमें तन्मय हो जाती हैं। तन्मयताकी योग्यता जन्मान्तरमें या इस जन्ममें सम्पादित अभ्यास तथा सात्त्विक गुणकी तारतम्यताके कारण प्रत्येक व्यक्तिमें न्यूनाधिक होती है। यही कारण है कि लौकिक अतिप्रिय शब्द-रूपादि विषयोंमें भी मनुष्यको एक साथ दीर्घकालतक आनन्द नहीं आता। अतः भगवान्‌के नाम-रूपादिमें दीर्घकालतक रसास्वादनके लिये धैर्यपूर्वक क्रमशः तन्मयताकी योग्यता बढ़ानेका प्रयास करना चाहिये।

नाम-जपमें मन स्थिर क्यों नहीं होता ?

प्रायः नाम-जप करनेवाले यह प्रश्न किया करते हैं कि श्रद्धापूर्वक भी नाम-जप करते समय मन स्थिर क्यों नहीं होता ? इस प्रश्नका उत्तर प्रायः संत यही देते हैं कि नामी या नाममें प्रीति न होनेके कारण मन स्थिर नहीं होता। अपने उत्तरकी सत्यता सिद्ध करनेके लिये वे कहते हैं कि देखो, तुम्हारी पुत्र-पैसा और प्रतिष्ठामें प्रीति है, इनमें तुम्हारा मन लग जाता है या नहीं ? अनुभूतिमूलक युक्तियुक्त उत्तर सुनकर प्रश्नकर्ताको तत्काल तो बहुत संतोष हो जाता है, परंतु स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है; क्योंकि दस-बीस वर्ष बीत जाते हैं, फिर-फिर वही प्रश्न करते रहते हैं, संत वही उत्तर देते रहते हैं। अतः यह विचारणीय हो जाता है कि इस उत्तरमें कुछ कमी है या उनके साधनमें कुछ कमी है ?

इस प्रश्नका सत्य उत्तर पानेके लिये यह देखना होगा कि जिनमें मनुष्यकी अति प्रीति है, ऐसे पुत्र-पैसा आदिमें क्या मन स्थिर हो जाता है ? इसका उत्तर युक्ति आदिसे देनेकी आवश्यकता नहीं; जिसकी पुत्र आदि जिस पदार्थमें अति प्रीति हो, उस पदार्थको नेत्रोंके सम्मुख रखकर उसीमें मन स्थिर करके देखे। तब वह यही उत्तर देगा कि घंटे-दो-घंटेकी तो बात ही क्या, ५-१० मिनट भी ऐसी स्थिति नहीं रही कि उस प्रीतिके आस्पद पदार्थमें ही मन स्थिर रहा हो, बीचमें किसी अन्य पदार्थपर न गया हो।

इस प्रयोगसे यह सिद्ध हो जाता है कि जिस पदार्थमें प्रीति ही नहीं, किंतु अति प्रीति है, उसमें भी मन स्थिर नहीं होता। अतः मनकी स्थिरताके लिये प्रीतिका होनामात्र पर्याप्त नहीं, इसके लिये तो जहाँ-जहाँ मन जाय वहाँ-वहाँसे उसे खींचकर प्रेमास्पदमें लगानेका अभ्यास भी अपेक्षित है। यही कारण है कि गीता तथा योगसूत्रमें मनका निग्रह करनेके लिये निरन्तर दीर्घकालपर्यन्त अभ्यास करना आवश्यक बताया है—

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥

(गीता ६ । ३५)

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥

(गीता ६ । २६)

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

(योगसूत्र० १ । १२)

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ।

(योगसूत्र० १ । १४)

ऐसा होनेपर भी इतना अवश्य मानना होगा कि जिस पदार्थमें प्रीति होती है, उसमें अभ्यासद्वारा मन स्थिर करनेमें वह प्रीति सहायक होती है, इसीलिये मन स्थिर करनेके लिये आलम्बनका विधान करते समय अपनेको जो अभिमत हो

अर्थात् जिसमें प्रीति हो, जो रुचिकर हो, ऐसा आलम्बन लेनेका विधान योगसूत्रकारने किया है—**'यथाभिमतध्यानाद्वा'** (योगसू० १ । ३९) । इसी दृष्टिसे संतजन प्रीतिको मनकी स्थिरतामें हेतु कहते हैं; परंतु पूर्ण सत्य उत्तर यह है कि प्रीतिके साथ-साथ निरन्तर दीर्घकालीन अभ्यासके बिना मन स्थिर नहीं होता ।

इसके अतिरिक्त एक बात यह भी है कि नाम-जपजन्य सुख सात्त्विक सुख है। सात्त्विक सुख प्रारम्भमें तो विषतुल्य अरुचिकर ही होता है, परिणाममें ही हितकर होता है, इसमें अभ्यासद्वारा ही रमण अर्थात् रसास्वादन होता है, ऐसा गीतामें कहा है—

अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।

(गीता १८ । ३६-३७)

सारांश—इस कराल कलिकालमें विविध विधानोंसे युक्त अनुष्ठान करना सम्भव न होनेके कारण देश, काल, जाति आदि विधान-निरपेक्ष नाम-जप ही कल्याणका मुख्य साधन है। नाम-जपमें श्रद्धा, प्रेम तथा तन्मयताकी परम आवश्यकता है, अन्यथा इनका विधान करनेवाले शास्त्रवचनोंसे विरोध होगा। नामापराध-प्रतिपादक शास्त्रवचनोंकी पर्यालोचना करनेपर श्रद्धाकी ही नहीं, किंतु अन्य शास्त्रीय विधि-निषेध-पालनकी आवश्यकता भी सिद्ध होती है। पूर्वके पाप और पाप-वासनाके तारतम्यके अनुसार नाम-जप और नाम-वासनाकी सुदृढ़ता होनेपर ही उनका सम्यक् विनाश होता है और इसके बाद ही भगवान्‌में विशुद्ध भक्ति होती है। वाचिक, उपांशु, मानसिक, जपोंमेंसे जिस प्रकारके जपसे संसारका सम्बन्ध अधिक कटता हो और भगवान्‌में अधिक सम्बन्ध जुड़ता हो, वही जप श्रेष्ठ है। नाम-जपमें मनको स्थिर करनेके लिये श्रद्धा और प्रीतिके साथ-साथ निरन्तर दीर्घकालपर्यन्त अभ्यासकी भी आवश्यकता होती है।

श्रीराम-सम्बन्धी कुछ मन्त्र और उनकी संक्षिप्त अनुष्ठान-विधि

सनत्कुमारजी कहते हैं—नारद ! भगवान् श्रीरामके मन्त्र सिद्धि प्रदान करनेवाले हैं, इनकी उपासनासे मनुष्य भवसागरसे पार हो जाते हैं, सारे उत्तम मन्त्रोंमें वैष्णव-मन्त्र श्रेष्ठ बताये गये हैं। गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिवसे सम्बन्ध रखनेवाले मन्त्रोंकी अपेक्षा वैष्णव-मन्त्र शीघ्र अभीष्ट-सिद्धि करनेवाले हैं। वैष्णव-मन्त्रोंमें भी राममन्त्र अधिक फलदायी हैं। गणपति आदिके मन्त्रोंकी अपेक्षा राममन्त्र कोटि-कोटिगुना अधिक महत्त्व रखते हैं। विष्णु-शय्या (आ) के ऊपर विराजमान अग्नि (र) का मस्तक यदि चन्द्रमा (अनुस्वार) से विभूषित हो और उसके आगे **'रामाय नमः'**—ये दो पद हों तो यह **'रां रामाय नमः'**—मन्त्र महान् पापोंकी राशिका नाश करनेवाला है। श्रीराम-सम्बन्धी सम्पूर्ण मन्त्रोंमें यह षडक्षर-मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ है। जानकर और बिना जाने किये हुए महापातक एवं उपपातक सब इस मन्त्रके उच्चारणमात्रसे तत्काल नष्ट हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं है। इस मन्त्रके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीराम देवता, **'रां'** बीज और **'नमः'** शक्ति हैं। सम्पूर्ण मनोरथोंकी प्राप्तिके लिये इसका विनियोग किया जाता है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजमन्त्र **(रां, रीं** इत्यादि) द्वारा अथवा मूल मन्त्र **(रां रामाय नमः)** के छः वर्णोंसे षडङ्गन्यास करे। फिर पीठन्यास आदि करके हृदयमें श्रीरघुनाथजीका इस प्रकार ध्यान करे—

ध्यान

कालाम्भोधरकान्तं च वीरासनसमास्थितम् ।
ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधतं जानुनीतरम् ॥
सरोरुहकरां सीतां विद्युदाभां च पार्श्वगाम् ।
पश्यन्तीं रामवक्त्राब्जं विविधाकल्पभूषिताम् ॥

(ना० पूर्व० ७३)

'भगवान् श्रीरामकी अङ्गकान्ति मेघकी काली घटाके समान श्याम है। वे वीरासन लगाकर बैठे हैं। दाहिने हाथमें ज्ञानमुद्रा धारण करके उन्होंने अपने बायें हाथको बायें घुटनेपर रख छोड़ा है। उनके वामपार्श्वमें विद्युत्‌के समान कान्तिमती और नाना प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सीतादेवी विराजमान हैं। उनके हाथमें कमल है और वे अपने प्राण-वल्लभ श्रीरामचन्द्रजीका मुखारविन्द निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख जप करे और कमलोंद्वारा प्रज्वलित अग्निमें दशांश होम करे। तत्पश्चात्

ब्राह्मण-भोजन कराये। मूलमन्त्रसे इष्टदेवकी मूर्ति बनाकर, उसे वैष्णवपीठपर स्थापित कर, उसमें भगवान्‌का आवाहन और प्रतिष्ठा करके, साधक विमलादि शक्तियोंसे संयुक्त उनकी पूजा करे। भगवान् श्रीरामके वामभागमें बैठी हुई सीतादेवीकी उन्हींके मन्त्रसे पूजा करनी चाहिये। **'श्रीं सीतायै स्वाहा'**—यह 'जानकी-मन्त्र' है। भगवान् श्रीरामके वाम-भागमें **'शं शार्ङ्गाय नमः'**से शार्ङ्गधनुषकी तथा दक्षिणभागमें **'शं शरेभ्यो नमः'** से बाणोंकी अर्चना करे। केसरोंमें मूलमन्त्रके छः वर्णोंकी पूजा करके दलोंमें हनुमान् आदिकी अर्चना करे। हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न तथा जाम्बवान्—इनका क्रमशः बायें चलते हुए पूजन करना चाहिये। हनुमान्‌जी भगवान्‌के आगे पुस्तक लेकर बाँच रहे हैं। श्रीरामके दक्षिणपार्श्वमें भरत और वामपार्श्वमें शत्रुघ्न चँवर लेकर खड़े हैं। लक्ष्मणजी पीछे खड़े होकर दोनों हाथोंसे भगवान्‌के ऊपर छत्र लगाये हुए हैं। इस प्रकार ध्यानपूर्वक उन सबकी पूजा करनी चाहिये। तदनन्तर अष्ट-दलोंके अग्रभागमें धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रपाल (अथवा राष्ट्रवर्धन), अकोप, धर्मपाल तथा सुमन्त्रकी पूजा करके उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि देवताओंका आयुधोंसहित पूजन करे। इस प्रकार भगवान् श्रीरामकी आराधना करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। घृताक्त दूर्वाओंकी आहुति देनेवाला पुरुष दीर्घायु तथा नीरोग होता है। लाल कमलोंके होमसे मनोवाञ्छित धन प्राप्त होता है। पलाशके फूलोंसे हवन करके मनुष्य मेधावी होता है। जो प्रतिदिन प्रातःकाल पूर्वोक्त षडक्षर-मन्त्रसे अभिमन्त्रित जल पीता है, वह एक वर्षमें कविसम्राट् हो जाता है। श्रीराममन्त्रसे अभिमन्त्रित अन्नका भोजन करे। इससे बड़े-बड़े रोग शान्त हो जाते हैं। रोगके लिये बतायी हुई ओषधिका उक्त मन्त्रद्वारा हवन करनेसे मनुष्य क्षणभरमें रोगमुक्त हो जाता है। प्रतिदिन दूध पीकर नदीके तटपर या गोशालामें एक लाख जप करे और घृतयुक्त खीरसे आहुति दे तो मनुष्य विद्यानिधि होता है। जिसका आधिपत्य (प्रभुत्व) नष्ट हो गया है, ऐसा मनुष्य यदि शाकाहारी होकर जलके भीतर एक लाख जप करे और बेलके फूलोंकी दशांश आहुति दे तो उसी समय वह अपनी खोयी हुई प्रभुता पुनः प्राप्त कर लेता है—इसमें संशय नहीं है। गङ्गातटके समीप उपवासपूर्वक रहकर मनुष्य यदि एक लाख जप करे और त्रिमधु (शर्करा, घी और मधु) युक्त कमलों अथवा बेलके फूलोंसे दशांश आहुति दे तो राज्यलक्ष्मी प्राप्त कर लेता है। मार्गशीर्षमासमें कंद-मूल-फलके आहारपर रहकर जलमें खड़ा हो एक लाख जप करे और प्रज्वलित अग्निमें खीरसे दशांश होम करे तो उस मनुष्यको भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान पुत्र एवं पौत्र प्राप्त होता है।

इस मन्त्रराजके और भी बहुत-से प्रयोग हैं। पहले षट्कोण बनाये। उसके बाह्यभागमें अष्टदल कमल अङ्कित करे। उसके भी बाह्यभागमें द्वादशदल कमल लिखे। छः कोणोंमें विद्वान् पुरुष मन्त्रके छः अक्षरोंका उल्लेख करे। अष्टदल कमलमें भी प्रणवसम्पुटित उक्त मन्त्रके आठ अक्षरों-का उल्लेख करे। द्वादशदल कमलमें कामबीज (**क्लीं**) लिखे। मध्यभागमें मन्त्रसे आवृत नामका उल्लेख करे। बाह्यभागमें सुदर्शन-मन्त्रसे और दिशाओंमें युग्मबीज (**रां श्रीं**) से यन्त्रको आवृत करे। उसका भूपुर वज्रसे सुशोभित हो। कोण कंदर्प, अङ्कुश, पाश और भूमिसे सुशोभित हो। यह यन्त्रराज माना गया है। भोजपत्रपर अष्टगन्धसे ऊपर बताये-अनुसार यन्त्र लिखकर छः कोणोंके ऊपर दलोंका आवेष्टन रहे। अष्टदल कमलके केसरोंमें विद्वान् पुरुष युग्मबीजसे आवृत दो-दो स्वरोंका उल्लेख करे। यन्त्रके बाह्यभागमें मातृका-वर्णों (वर्णमालाके पूरे ४९ वर्णों) का उल्लेख करे। साथ ही प्राण-प्रतिष्ठाका मन्त्र (**'आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों हं सः अमुष्य प्राणा इह प्राणाः'**) भी लिखे। मन्त्रोपासक किसी शुभ दिनको कण्ठमें, दाहिनी भुजामें अथवा मस्तकपर इस यन्त्रको धारण करे। इससे वह सम्पूर्ण पातकोंसे मुक्त हो जाता है। स्वबीज (**रां**), काम (**क्लीं**), सत्य (**ह्रीं**), वाक् (**ऐं**), लक्ष्मी (**श्रीं**), तार (**ॐ**)—इन छः प्रकारके बीजोंसे पृथक्-पृथक् जुड़नेपर पाँच वर्णोंका **'रामाय नमः'**—मन्त्र छः भेदोंसे युक्त षडक्षर होता है। (यथा—**'रां रामाय नमः'**, **'क्लीं रामाय नमः'**, **'ह्रीं रामाय नमः'**, **'ऐं रामाय नमः**, **'श्रीं रामाय नमः'** और **'ॐ रामाय नमः**) —यह छः प्रकारका षडक्षर मन्त्र धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों फलोंको देनेवाला है। इन छहोंके क्रमशः ब्रह्मा, सम्मोहन, सत्य, दक्षिणामूर्ति, अगस्त्य तथा श्रीशिव— ये ऋषि बताये गये हैं

अथवा '**क्लीं**' आदिके ऋषि विश्वामित्र मुनि माने गये हैं। इनका छन्द गायत्री है। देवता श्रीरामचन्द्रजी हैं। आदिमें लगे हुए '**रां**', '**क्लीं**' आदि बीज हैं और अन्तिम '**नमः**' पद शक्ति है। मन्त्रके छः अक्षरोंसे षडङ्गन्यास करना चाहिये। अथवा छः दीर्घ स्वरोंसे युक्त मन्त्राक्षरोंका न्यास करे। मन्त्रके अक्षरोंका पूर्ववत् न्यास करना चाहिये।

ध्यान

ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले सुवर्णमयमण्डपे।
पुष्पकाख्यविमानान्तःसिंहासनपरिच्छदे ॥
पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनीलसमप्रभम्।
वीरासनसमासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम्॥
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसेवितम्।
रत्नाकल्पं विभुं ध्यात्वा वर्णलक्षं जपेन्मनुम्॥
यद्वा स्मरादिमन्त्राणां जयाभं च हरिं स्मरेत्।

(ना० पु० तृ० ७३। ५९—६२)

भगवान्‌का इस प्रकार ध्यान करे—'कल्पवृक्षके नीचे एक सुवर्णका विशाल मण्डप बना हुआ है। उसके भीतर पुष्पकविमान है। उस विमानमें एक दिव्य सिंहासन बिछा हुआ है। उसपर अष्टदल कमलका आसन है, जिसके ऊपर इन्द्रनील मणिके समान श्यामकान्तिवाले भगवान् श्रीरामचन्द्र वीरासनसे बैठे हुए हैं। उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है और बायें हाथको उन्होंने बायीं जाँघपर रख छोड़ा है। भगवती सीता तथा सेवाव्रती लक्ष्मण उनकी सेवामें जुटे हुए हैं। वे सर्वव्यापी भगवान् रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। इस प्रकार ध्यान करके छः अक्षरोंकी संख्याके अनुसार छः लाख मन्त्र जपे अथवा '**क्लीं**' आदिसे युक्त मन्त्रोंके साधनमें जयाभ श्रीहरिका चिन्तन करे।'

पूजन तथा लौकिक प्रयोग सब पूर्वोक्त षडक्षर-मन्त्रके ही समान करने चाहिये। '**ॐ रामचन्द्राय नमः**', '**ॐ रामभद्राय नमः।**'—ये दो अष्टाक्षर-मन्त्र हैं। इनके अन्तमें भी '**ॐ**' जोड़ दिया जाय तो ये नौ अक्षर हो जाते हैं। इनका पूजनादि सब कर्म मन्त्रोपासक षडक्षर-मन्त्रोंकी ही भाँति करे। '**हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा।**' यह दस अक्षरोंवाला महामन्त्र है। इसके वसिष्ठ ऋषि, स्वराट् छन्द, सीतापति देवता, '**हुं**' बीज तथा '**स्वाहा**' शक्ति हैं। (इन सबका यथास्थान न्यास करना चाहिये।) '**क्लीं**' बीजसे क्रमशः षडङ्गन्यास करे। मन्त्रके दस अक्षरोंका क्रमशः मस्तक, ललाट, भ्रूमध्य, तालु, कण्ठ, हृदय, नाभि, ऊरु, जानु और चरण—इन दस अङ्गोंमें न्यास करे।

ध्यान

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे।
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते ॥
सिंहासनसमासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
रक्षोभिर्हरिभिर्देवैः सुविमानगतैः शुभैः ॥
संस्तूयमानं मुनिभिः प्रह्वैश्च परिसेवितम्।
सीतालंकृतवामाङ्गं लक्ष्मणेनोपशोभितम्॥
श्यामं प्रसन्नवदनं सर्वाभरणभूषितम्।

(ना० पुराण, पूर्व० ७३। ६८—७१)

'दिव्य अयोध्या-नगरमें रत्नोंका विचित्र एक सुवर्णमय मण्डप है, जिसमें मन्दारके फूलोंसे चँदोवा बनाया गया है। उसमें तोरण लगे हुए हैं। उसके भीतर पुष्पकविमानपर एक दिव्य सिंहासनके ऊपर राघवेन्द्र श्रीराम विराजित हैं। उस सुन्दर विमानमें एकत्र हो शुभस्वरूप देवता, वानर, राक्षस और विनीत महर्षिगण भगवान्‌की स्तुति और परिचर्या करते हैं। श्रीराघवेन्द्रके वामभागमें भगवती सीता विराजमान हो उस वामाङ्गकी शोभा बढ़ाती हैं। भगवान्‌का दाहिना भाग लक्ष्मणजीसे सुशोभित है। श्रीरघुनाथजीकी कान्ति श्याम है। उनका मुख प्रसन्न है तथा वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त हो दस लाख जप करे। कमल-पुष्पोंद्वारा दशांश होम और पूजनकी विधि षडक्षर-मन्त्रके समान है। '**रामाय धनुष्पाणये स्वाहा।**'—यह दशाक्षर-मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि हैं, विराट् छन्द है तथा राक्षसमर्दन श्रीरामचन्द्रजी देवता कहे गये हैं। '**रां**'—यह बीज है और '**स्वाहा**' शक्ति है। बीजके द्वारा षडङ्गन्यास करे। वर्णन्यास, ध्यान, पुरश्चरण तथा पूजन आदि कार्य दशाक्षर-मन्त्रके लिये पहले बताये-अनुसार करे। इसके जपमें धनुष-बाण धारण करनेवाले भगवान् श्रीरामका ध्यान करना चाहिये। तार (**ॐ**) से युक्त '**नमो भगवते रामचन्द्राय**' अथवा '**रामभद्राय**'—ये दो प्रकारके द्वादशाक्षर मन्त्र हैं। इनके ऋषि और ध्यान आदि पूर्ववत् हैं। श्रीपूर्वक, जयपूर्वक

तथा जय-जयपूर्वक 'राम' नाम हो तो यह **(श्रीराम जय राम जय जय राम)**—तेरह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, विराट् छन्द तथा पाप-राशिका नाश करनेवाले भगवान् श्रीराम देवता कहे गये हैं। इसके तीन पदोंकी दो-दो आवृति करके षडङ्गन्यास करे। ध्यान-पूजन आदि सब कार्य दशाक्षर-मन्त्रके समान करे।

'**ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नमः।**'—यह अठारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके विश्वामित्र ऋषि, धृति छन्द, श्रीराम देवता, '**ॐ**' बीज और '**नमः**' शक्ति हैं। मन्त्रके एक, दो, चार, तीन, छः और दो अक्षरोंवाले पदोंद्वारा एकाग्रचित्त हो षडङ्गन्यास करे।

ध्यान

निश्शाणभेरीपटहशङ्खतुर्यादिनिःस्वनैः ॥
प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमङ्गलभाषिते।
चन्दनागुरुकस्तूरीकर्पूरादिसुवासिते ॥
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि राघवम्।
सौमित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम् ॥
चापबाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम्।
हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् ॥

'भगवान् राघवेन्द्र रावणको मारकर त्रिलोकीकी रक्षा करके लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मणके साथ पुष्पक-विमानमें सिंहासनपर विराजमान हैं। उनका मस्तक जटाओंके मुकुटसे सुशोभित है। उनका वर्ण श्याम है और उन्होंने धनुष-बाण धारण कर रखा है। उनके साथ सुग्रीव तथा विभीषण विराजित हैं। उनकी विजयके उपलक्षमें निशान, भेरी, पटह, शङ्ख और तुरही आदिकी ध्वनियोंके साथ-साथ नृत्य आरम्भ हो गया है। चारों ओर जय-जयकार तथा मङ्गलपाठ हो रहा है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कपूर आदिकी मधुर गन्ध छा रही है।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक मन्त्रकी अक्षर-संख्याके अनुसार अठारह लाख जप करे और घृतमिश्रित खीरकी दशांश आहुति देकर पूर्ववत् पूजन करे।

ॐ रां श्रीं रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम।
दशास्यान्तक मां रक्ष देहि मे परमां श्रियम् ॥

—यह पैंतीस अक्षरोंका मन्त्र है। बीजाक्षरोंसे वियुक्त होनेपर केवल बत्तीस अक्षरोंका होता है। यह अभीष्ट फल देनेवाला है। इसके विश्वामित्र ऋषि, अनुष्टुप् छन्द, रामभद्र देवता, '**रां**' बीज और '**श्रीं**' शक्ति हैं। मन्त्रके चार पादोंके आदिमें तीनों बीज लगाकर उन पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रके द्वारा मन्त्रज्ञ पुरुष पञ्चाङ्गन्यास करके मन्त्रके एक-एक अक्षरका क्रमशः समस्त अङ्गोंमें न्यास करे। इसके ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् करे। इस मन्त्रका पुरश्चरण तीन लाखका है। इसमें खीरसे हवन करनेका विधान है। पीत-वर्णवाले श्रीरामका ध्यान करके एकाग्रचित्त हो एक लाख जप करे। फिर कमलके फूलोंसे दशांश हवन करके मनुष्य धन पाकर अत्यन्त धनवान् हो जाता है।

'**ॐ ह्रीं श्रीं श्रीं दाशरथाय नमः।**'—यह ग्यारह अक्षरोंका मन्त्र है। इसके ऋषि आदि तथा पूजन आदि पूर्ववत् हैं। '**त्रैलोक्यनाथाय नमः।**'—यह आठ अक्षरोंका मन्त्र है। इसके भी न्यास, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य पूर्ववत् हैं। '**रामाय नमः।**'—यह पञ्चाक्षरमन्त्र है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी ही भाँति होते हैं। '**रामचन्द्राय स्वाहा**', '**रामभद्राय स्वाहा।**'— ये दो मन्त्र कहे गये हैं। इनके ऋषि और पूजन आदि पूर्ववत् हैं। अग्नि (र), शेष (आ) से युक्त हो और उसका मस्तक चन्द्रमा (ं) से विभूषित हो तो वह रघुनाथजीका एकाक्षर-मन्त्र (रां) है, जो द्वितीय कल्पवृक्षके समान है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीराम देवता हैं। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त मन्त्राक्षरोंद्वारा षडङ्गन्यास करे।

ध्यान

सरयूतीरमन्दारवेदिकापङ्कजासने।
श्यामं वीरासनासीनं ज्ञानमुद्रोपशोभितम् ॥
वामोरुन्यस्ततद्धस्तं सीतालक्ष्मणसंयुतम्।
अवेक्षमाणमात्मानं मन्मथामिततेजसम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशं केवलं मोक्षकांक्षया।
चिन्तयेत् परमात्मानमृतुलक्षं जपेन्मनुम् ॥

(नारदपु०, पूर्व० तृ० ७३। १०६—१०८)

'सरयूके तटपर मन्दार (कल्पवृक्ष) के नीचे एक वेदिका बनी हुई है और उसके ऊपर एक कमलका आसन बिछा हुआ है, जिसपर श्यामवर्णवाले भगवान् श्रीराम वीरासनसे बैठे हैं।

उनका दाहिना हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है। उन्होंने अपने बायें ऊरु (जाँघ) पर बायाँ हाथ रख छोड़ा है। उनके वामभागमें सीता और दाहिने भागमें लक्ष्मणजी हैं। भगवान् श्रीरामका अमित तेज कामदेवसे भी अत्यधिक सुन्दर है। वे शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल तथा अद्वितीय आत्माका ध्यानद्वारा साक्षात्कार कर रहे हैं। ऐसे परमात्मा श्रीरामका केवल मोक्षकी इच्छासे चिन्तन करे और छः लाख मन्त्रका जप करे।

इसके होम और नित्य-पूजन आदि सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी ही भाँति किये जाते हैं। वह्नि (र) शेष (आ) के आसनपर विराजमान हो और उसके बाद मान्त (म) हो तो केवल दो अक्षरका मन्त्र (राम) होता है। इसके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि सब कार्य एकाक्षर-मन्त्रकी ही भाँति जानने चाहिये। तार **(ॐ)**, माया **(ह्रीं)**, रमा **(श्रीं)**, अनङ्ग **(क्लीं)**,अस्त्र **(फट्)** तथा स्वबीज (रां) इनके साथ पृथक्-पृथक् जुड़ा हुआ द्व्यक्षर मन्त्र (राम) छः भेदोंसे युक्त अक्षर मन्त्रराज होता है। यह सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंको देनेवाला है। द्व्यक्षर-मन्त्रके अन्तमें 'चन्द्र' और 'भद्र' शब्द जोड़ा जाय तो दो प्रकारका चतुरक्षर मन्त्र होता है। इन सबके ऋषि, ध्यान और पूजन आदि एकाक्षर-मन्त्रमें बताये-अनुसार है। तार (ॐ) चतुर्थ्यन्त 'राम' शब्द **(रामाय)**, वर्म **(हुं)**, अस्त्र **(फट्)** वह्निवल्लभा **(स्वाहा)**—यह **('ॐ रामाय हुं फट् स्वाहा)'** आठ अक्षरोंका महामन्त्र है। इसके ऋषि और पूजन आदि षडक्षर-मन्त्रके समान हैं। तार **(ॐ)**, **हृत् (नमः)**, **ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तमश्लोकधुर्याय स्व (न्य)**, भृगु **(स्)**, कामिका **(त)**, **दण्डार्पिताङ्घ्रये।'**— यह **(ॐ नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठतेजसे। उत्तम-श्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये ॥)** तैंतीस अक्षरोंका मन्त्र कहा गया है। इसके शुक ऋषि, अनुष्टुप् छन्द और श्रीराम देवता हैं। इस मन्त्रके चारों पादों तथा सम्पूर्ण मन्त्रसे पञ्चाङ्गन्यास करना चाहिये। शेष सब कार्य षडक्षर-मन्त्रकी भाँति करे। जो साधक मन्त्र सिद्ध कर लेता है, उसे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त होते हैं। उसके सब पापोंका नाश हो जाता है। **'दाशरथाय विद्महे। सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्।'** यह 'रामगायत्री' कही गयी है, जो सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाली है।

श्रीसीताजीकी उपासनाके मन्त्र

भगवान् श्रीरामकी प्रसन्नताके लिये भगवती सीताजीकी प्रसन्नता प्राप्त करना परम आवश्यक है। गोस्वामी तुलसीदासजीने अपनी 'विनय-पत्रिका'में श्रीसीताजीसे प्रार्थना करते समय यही कहा है—

कबहुँक अंब, अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी, कछु करुन-कथा चलाइ ॥
दीन, सब अँगहीन, छीन, मलीन, अघी अघाइ।
नाम लै भरै उदर एक प्रभु-दासी-दास कहाइ ॥
बूझिहैं 'सो है कौन', कहिबी नाम दसा जनाइ।
सुनत राम कृपालुके मेरी बिगरिऔ बनि जाइ ॥
जानकी जगजननि जनकी किये बचन सहाइ।
तरै तुलसीदास भव तव नाथ-गुन-गन गाइ ॥

(विनय-पत्रिका ४१)

मन्त्र

पद्मा **(श्रीं)** ङे—विभक्त्यन्त सीता-शब्द **(सीतायै)** और अन्तमें ठद्वय **(स्वाहा)** यह **(श्रीसीतायै स्वाहा)** षडक्षर सीता-मन्त्र है। इसके वाल्मीकि ऋषि, 'गायत्री' छन्द, भगवती सीता देवता, 'श्री' बीज तथा 'स्वाहा' शक्ति है। छः दीर्घस्वरोंसे युक्त बीजाक्षर **(श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः)** द्वारा षडङ्गन्यास करे।

ध्यान

ततो ध्यायेन्महादेवीं सीतां त्रैलोक्यपूजिताम्।
तप्तहाटकवर्णाभां पद्मयुग्मं करद्वये ॥
सद्रत्नभूषणस्फूर्जद्दिव्यदेहां शुभात्मिकाम्।
नानावस्त्रां शशिमुखीं पद्माक्षीं मुदितान्तराम्।
पश्यन्तीं राघवं पुण्यं शय्यायां षड्गुणेश्वरीम् ॥

'तदनन्तर त्रिभुवनपूजित महादेवी सीताका ध्यान करे। तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी कान्ति है। उनके दोनों हाथोंमें दो कमलपुष्प शोभा पा रहे हैं। उनका दिव्य शरीर उत्तम रत्नमय आभूषणोंसे प्रकाशित हो रहा है। वे मङ्गलमयी सीता भाँति-भाँतिके वस्त्रोंसे सुशोभित हैं। उनका मुख

चन्द्रमाको लज्जित कर रहा है। उनके नेत्र कमलोंकी-सी शोभा धारण करते हैं। उनका अन्तःकरण आनन्दसे उल्लसित है। वे ऐश्वर्य आदि छः गुणोंकी अधीश्वरी हैं और शय्यापर अपने प्राणवल्लभ पुण्यमय श्रीराघवेन्द्रको अनुरागपूर्ण दृष्टिसे निहार रही हैं।'

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक छः लाख मन्त्रका जप करे और खिले हुए कमलोंद्वारा दशांश आहुति दे। पूर्वोक्त (श्रीराम) पीठपर उनकी पूजा करनी चाहिये। मूलमन्त्रसे मूर्ति-निर्माण करके उसमें जनकनन्दिनी किशोरीजीका आवाहन और स्थापन करे। फिर विधिवत् पूजन करके उनके दक्षिण भागमें भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी अर्चना करे। तत्पश्चात् अग्रभागमें हनुमान्जीकी और पृष्ठभागमें लक्ष्मणजीकी पूजा करे। फिर आठ दलोंमें मुख्य मन्त्रियोंका, उनके बाह्यभागमें इन्द्र आदि लोकेश्वरोंका और उनके भी बाह्यभागमें वज्र आदि आयुधोंका पूजन करके मनुष्य सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी हो जाता है। (नारदपु०, पूर्व०, तृतीय पाद, अ० ७३)

श्रीसीता-रामजीकी अष्टयाम-पूजा-पद्धति

(पं० श्रीकान्तशरणजी महाराज)

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥

(गीता ११। ५४)

'हे परंतप अर्जुन! अनन्यभक्तिके द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननेके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये, अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ।'

यह भक्ति एक तो श्रवण आदि बाह्य इन्द्रियोंद्वारा की जाती है, जिसे '**श्रवणं कीर्तनं**....' आदि नवधा-भक्ति कहते हैं और दूसरी अन्तःकरणसे मानसिक सेवारूपमें की जाती है, इसे 'मानसिक अष्टयाम-पूजा' कहा जाता है। यह चित्त-शोधनके लिये परम उपयोगी है।

यह सेवा मनके द्वारा की जाती है। इसमें हरि-ध्यानसे पवित्र होता हुआ मन क्रमशः शान्त होता जाता है। गीता (६। ३५) में चंचल और दुर्निग्रह मनको वशमें करनेके लिये भगवान्ने अभ्यास और वैराग्य—दो उपाय बतलाये हैं। ये दोनों अत्यन्त उत्तम रीतिसे इस सेवामें आते हैं। इसमें मनको अन्य विषयोंसे खींचकर भगवान्की सेवामें लगाना पड़ता है। आठों याम सेवाके विविध प्रकारके आनन्दोंमें लुभाया हुआ मन प्रफुल्लित रहता है, वह अन्यत्र जाता ही नहीं। यदि जाता भी है तो तुरंत उसे सेवामें ही खींच लाना पड़ता है, अन्यथा सेवाके नियत कार्य नियत समयपर हो नहीं सकते। गीता (३। ५) में कहा गया है कि 'कोई क्षणभर भी बिना कुछ किये नहीं रह सकता'; तदनुसार मनके लिये यह सर्वोत्तम धंधा है।

यह अष्टयाम-सेवा श्रीअयोध्या एवं श्रीवृन्दावनके ऐकान्तिक संतोंमें प्रचलित है। इसमें प्रथम पञ्चसंस्कारात्मक दीक्षा-विधान होता है, फिर किसी रसकी उपासनाके अनुसार आचार्यसे नियत सम्बन्ध प्राप्त किया जाता है। वह सेवा सख्य, दास्य एवं वात्सल्य रसोंमें होती है; पर यह विशेषकर शृंगाररसमें प्रचलित है। इसमें श्रीसीता-रामजीके दिव्य सच्चिदानन्द-विग्रहके समान किशोर-अवस्थाके भीतर ही नियत अवस्था एवं रूपकी स्थिति आचार्यद्वारा प्राप्त रहती है। उसी दिव्य रूपसे नित्य तुरीया अवस्थामें ही इस सेवाकी भावना की जाती है। अतः सेवामें लगनेवाले संकल्पित महल एवं विविध पदार्थ तथा परिकर—सब चिन्मय ही होते हैं। इस प्रकार हृदयके सभी संकल्प चिन्मयरूपमें श्रीसीता-रामजीकी सेवामें लगते हुए समाप्त हो जाते हैं। यह मानसिक सेवा आयुपर्यन्त की जानी चाहिये।

नित्यचर्या

इस अष्टयाम-सेवामें आचार्यद्वारा नित्य त्रिपाद्विभूतिके अयोध्या एवं वहाँके श्रीकनकभवन, उसके अङ्गभूत अष्ट-कुंजों, द्वादशवनों तथा विविध क्रीडोपयोगी महलोंके चित्र (नक्शे) प्राप्त किये जाते हैं। पुनः आचार्यसे ही सेवा-विधि भी सीखी जाती है और सेवाओंके नियत स्थलोंपर उत्तम विधानसे सेवाएँ की जाती हैं। प्रत्येक स्थलको जानेके लिये मार्ग भी नियत रहते हैं।

प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्तमें अपने नियत विश्राम-कुंजमें

उठकर, अपने परिकरोंके साथ स्नान-शृंगार आदि करके रसाचार्य एवं आचार्यके नियत कुंजोंपर जाकर उनकी पूजा की जाती है। फिर उनके साथ-साथ सभी सेवाएँ की जाती हैं। क्रमिक सेवाओंका एक पद उद्धृत किया जाता है—

सो दिन आइहै कब फेरि।

नित बिलास बिलोकिहौं पिय संग प्रकृति निबेरि॥

अलिन सहित जगाय सिय-पिय, साज मंगल जेरि।

आरती करि भोग बल्लभ देखिहौं दृग देरि॥

बिबिध बिधि नहवाय, साजि सिंगार, आरति फेरि।

पितहि पिय, सिय मातु मिलि, सँग छबि कलेऊ हेरि॥

लखब चौपड़-खेल, दंपति-छबि सुभोजन केरि।

सैन भवन पलोटि पग, छबि लखब लेटि सुनेरि॥

उठि जगाइ सुकुंज, केलि अनेक हियें चितेरि।

साजि राज-सिंगार, दोल झुलाइ, फेरा-फेरि॥

पितु-सभा पिय जाइ, सिय बैठकहिं तहँ लौटेरि।

बाटिका लखि चंग, संग नहाइ सरि फुलनेरि॥

सजि सिंगार सिंगारि आरति, निरखि छबि रासेरि।

भिन्न-भिन्नरु मंडलाकृति नटब दंपति घेरि॥

रंगमहल कराइ ब्यारू, करब सँग सब चेरि।

सयन छबि लखि, सेइ पग, दंपति रहसि दृग गेरि॥

सेइ पग गुरुजन सुकूजन आइ कुंज निजेरि।

लेटिहौं हिय राखि दंपति 'मंजु' बिहरनि ढेरि॥

इस पदमें दूसरे चरणसे क्रमशः एक-एक चरणमें एक-एक यामकी सेवाकी सूची अत्यन्त संक्षेपमें दी गयी है। इस प्रकार दूसरे चरणमें प्रथम याम और नवेंमें आठवें यामकी सेवा है। इसमें सखीरूपसे यह प्रार्थना की गयी है कि 'जैसे मैं अभी आठों यामोंकी सेवा करती हूँ, वैसे ही नित्य-अवधमें पहुँचकर कब करूँगी।' इन सेवाओंका विस्तार गुरुओंसे सीखना चाहिये। यहाँ विस्तारभयसे नाममात्र सेवाएँ कही गयी हैं।

शंका-समाधान

शंका—ऊपर कहा गया है कि यह भावना तुरीयावस्था-से की जाती है। वह अवस्था श्रीरामचरितमानस (उत्तर० ११७) में वर्णित ज्ञान-साधनकी छठी भूमिकामें बहुत साधनों-के पश्चात् प्राप्त होती है। यहाँ उसका कुछ साधन नहीं बतलाया गया कि साधक कैसे वह अवस्था प्राप्त कर सकेगा?

समाधान—जैसे उस ज्ञानमें कर्मयोग और योग साधनके सहायक हैं, उसी प्रकार भक्ति अन्य साधनोंकी अपेक्षा नहीं रखती। यथा—

सो सुतंत्र अवलंब न आना। तेहि आधीन ग्यान बिग्याना॥

(रा० च० मा० ३। १६। ३)

भक्तिके अन्तर्गत 'नवधा-भक्ति'में कर्मयोगका और 'प्रेम-लक्षण'में ज्ञानका तात्पर्य आ जाता है। पराभक्ति तो स्वयं फलस्वरूपा है। यह मानसिक अष्टयाम-भावना यद्यपि परा-भक्तिमें ही है, तथापि इसके साधन-कालमें तीनों शरीरोंका शोधन अनायास होता जाता है, तब इसकी शुद्ध स्थिति होती है। क्रमशः तीनों शरीरोंके शोधनके कुछ लक्ष्य नीचे लिखे जाते हैं—

(क) जैसे खर-दूषण और त्रिशिरा एवं उनकी चौदह सहस्र सेनाओंके भट परस्पर एक-दूसरेको रामरूप देखते हुए लड़ मरे और मुक्त हो गये, वैसे ही साधनामें लगे हुए साधकके स्थूल शरीरसम्बन्धी क्रोध, लोभ और काम एवं इनसे सम्बन्धित एकादश इन्द्रियाँ और तीन अन्तःकरण—इन चौदहोंके सहस्र-सहस्र संकल्प चिन्मयरूप हो, रामाकार होते हुए सेवामें लगकर समाप्त हो जाते हैं। कहा भी है—

खर है क्रोध, लोभ है दूषन, काम फिरै त्रिसिरन में।

काम क्रोध लोभ मिलि दरसै तीनों एकै तन में॥

(वैराग्य-प्रदीप, काष्ठजिह्वा स्वामी)

(ख) इस मानसिक पूजामें बाह्येन्द्रियोंका व्यापार जब बंद हो जाता है, तब सूक्ष्म-शरीरसे होनेवाले इन्द्रिय-विषयोंके संकल्पोंकी शान्ति निम्नलिखित दृष्टान्तसे समझी जा सकती है। इन्द्र-पूजाकी सामग्री जब गोवर्धन पर्वतकी पूजामें लग गयी, तब इन्द्रने कोप करके व्रजपर घनघोर वर्षा की। भगवान्‌ने गोवर्धनको धारण करके इन्द्रका गर्व चूर्ण कर दिया। वह शान्त होकर चला गया। यहाँ भक्ति गोवर्धन है; क्योंकि यह गौओं—इन्द्रियोंको दिव्य सुख देकर बढ़ाती है, तृप्त करती है। विषयोंसे इन्द्रियोंके देवता तृप्त होते हैं, अतएव विषय एवं तत्सम्बन्धी संकल्प इन्द्रियदेवोंकी पूजन-सामग्री है। उन्हीं संकल्पोंको चिन्मयरूपमें यह अब भगवान्‌में लगाता है। जैसे व्रजमें भगवान्‌ने गोवर्धन पर्वतको धारण किया, वैसे ही वे यहाँ भक्तकी भक्तिनिष्ठा एवं श्रद्धाको धारण करते हैं। (गीता

७।२१।२२)। जैसे इन्द्रकी सारी वर्षा भगवान्‌ने गोवर्धनपर झेल ली, इसी प्रकार इसके इन्द्रियविषयसम्बन्धी सारे संकल्प चिन्मयरूपसे भक्तिमें लगकर समाप्त हो जाते हैं। जैसे इन्द्र शान्त हो गया, वैसे ही इसकी भी सूक्ष्मशरीर-सम्बन्धी बाधाएँ निवृत्त हो जाती हैं।

(ग) इसी बातको अब दूसरे दृष्टान्तमें समझिये। श्रीकृष्णके परिकर ग्वाल-बालों और बछड़ोंको मोहवश ब्रह्माने स्वनिर्मित मान रखा था; अतः उनका हरण करके क्षणभरके लिये वे अपने लोकको चले गये। उतने कालमें यहाँका एक वर्ष बीत गया। लौटनेपर उन्होंने जब नवनिर्मित भगवान्‌के परिकरों और बछड़ोंको चिन्मय भगवद्रूप देखा, तब उनका मोह दूर हुआ। वैसे ही इन भावना-सम्बन्धी संकल्पोंके प्रति भी बुद्धिके देवता ब्रह्माको मोह होता है कि 'ये संकल्प तो प्राकृत बुद्धिके ही हैं, चिन्मय कैसे हुए?' तब भक्तिसे तृप्त भगवान् इसे विवेक देते हैं कि 'जैसे सुषुप्ति-अवस्थामें जब बुद्धिका लय हुआ रहता है, तब भी जीवको ज्ञान रहता है कि मैं सुखसे सोया था। यह सुखानुसंधाता, ज्ञानस्वरूप एवं ज्ञान-धर्मा जीवात्मा है। यथा—

स्वस्मै स्वेनैवावभासनत्वं प्रत्यक्त्वम्।

अर्थात् प्रत्यक्संज्ञक जीवात्मा (बुद्धिके बिना ही) स्वयं अपनेको जानता है। इस अवस्थामें वह स्वयं प्रज्ञाका काम करता है, इसीसे 'प्राज्ञ' कहलाता है। अतः इसके संकल्प अपने चिन्मयस्वरूपसे ही हैं और चिन्मय हैं। इस ज्ञानसे इसकी उक्त बाधा निवृत्त हो जाती है। फिर स्थायी तुरीयावस्थासे ही इसकी भावना हुआ करती है।

श्रीरामनवमी-व्रत-विधि एवं पूजन-विधि

(पं० श्रीलक्ष्मीनारायणजी शुक्ल, न्यायवागीश, भट्टाचार्य)

चैत्रशुक्ला नवमीको 'रामनवमी' का व्रत होता है। यह व्रत मध्याह्नव्यापिनी दशमीविद्धा नवमीको करना चाहिये। अगस्त्यसंहितामें कहा गया है कि यदि चैत्रशुक्ला नवमी पुनर्वसु नक्षत्रसे युक्त हो और वही मध्याह्नके समय रहे तो महान् पुण्यदायिनी होती है। अष्टमीविद्धा नवमी विष्णुभक्तोंको छोड़ देनी चाहिये। वे नवमीमें व्रत तथा दशमीमें पारणा करें। चैत्रमासके शुक्ल-पक्षकी नवमीके दिन स्वयं श्रीहरिका रामावतार हुआ। वह पुनर्वसु नक्षत्रसे संयुक्त नवमी तिथि सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाली है। जो रामनवमीका व्रत करता है, उसके अनेक जन्मार्जित पापोंकी राशि भस्मीभूत हो जाती है और उसे भगवान् विष्णुका परमपद प्राप्त होता है। श्रीरामनवमी-व्रतसे भुक्ति एवं मुक्ति दोनोंकी ही सिद्धि होती है। इस उत्तम व्रतको करके वह सर्वत्र पूज्य होता है।

श्रीरामनवमीके दिन प्रातःकाल नित्यकर्मसे निवृत्त होकर अपने घरके उत्तर भागमें एक सुन्दर मण्डप बना ले। मण्डपके पूर्वद्वारपर शङ्ख, चक्र तथा श्रीहनुमान्‌जीकी स्थापना करे (अर्थात् चित्र बना ले); दक्षिण द्वारपर बाण, शार्ङ्गधनुष तथा श्रीगरुडजीकी, पश्चिमद्वारपर गदा, खड्ग और श्रीअङ्गदजीकी तथा उत्तरद्वारपर पद्म, स्वस्तिक और श्रीनीलजीकी स्थापना करे। बीचमें चार हाथके विस्तारकी वेदिका होनी चाहिये, जिसमें सुन्दर वितान एवं सुन्दर तोरण लगे हों।

इस प्रकार तैयार किये गये मण्डपके मध्यमें परिकरों-सहित भगवान् श्रीसीतारामको प्रतिष्ठित करनेकी मुख्यतया दो विधियाँ हैं। प्रथम विधि यह है कि मण्डपके मध्यमें अष्टदलकमल बनाकर केन्द्रमें श्रीसीताराम एवं लक्ष्मणजीको स्थापित करे।

केन्द्रके पूर्वस्थित दलमें श्रीदशरथजी, दक्षिण-पूर्वके दलमें श्रीकौसल्या अम्बा, दक्षिण-दलमें श्रीकैकेयी अम्बा, दक्षिण-पश्चिमके दलमें श्रीसुमित्रा अम्बा, पश्चिम-दलमें श्रीभरतजी, पश्चिमोत्तर-दलमें श्रीशत्रुघ्नजी, उत्तर-दलमें श्रीसुग्रीवजी तथा पूर्वोत्तर-दलमें श्रीहनुमान्‌जीको स्थापित करे। दूसरी विधि यह है कि श्रीसीता-राम-लक्ष्मणकी मूर्तियाँ या चित्रपट बीचमें स्थापित करके श्रीदशरथजी, श्रीकौसल्याजी, श्रीकैकेयीजी तथा श्रीसुमित्राजी और श्रीहनुमान्‌जीको दूसरी ओर स्थापित करे। यदि इन अष्ट परिकरोंकी मूर्तियाँ या चित्र न मिलें तो उन्हें भावनाद्वारा स्थापित किया जा सकता है। इस प्रकार इन सबको स्थापित करके श्रीरामनवमी-व्रतके दिन श्रीसीतारामका पूजन प्रारम्भ करे। पूजन आरम्भके पूर्व संकल्प

करना आवश्यक है। हाथमें जल, अक्षत और फूल लेकर निम्नाङ्कित संकल्प करे—

ॐ तत्सदद्य श्रीब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे कलियुगे कलिप्रथमचरणे (अमुक) संवत्सरे (अमुक) मासे (अमुक) पक्षे (अमुक) तिथौ (अमुक) वासरे सकलपापक्षयकामः (अमुक) नामाहं मम आत्मनः सकलाभीष्टसिद्ध्यर्थं श्रीसीतारामप्रीत्यर्थं च श्रीरामनवमीव्रतं करिष्ये। तदङ्गत्वेन परिकरसहितं श्रीसीतारामपूजनं च करिष्ये।

फिर फल, पुष्प, अक्षत और जलसे भरे पात्रको हाथमें लेकर कहे—

उपोष्य नवमीं त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव।
तेन प्रीतो भव त्वं भोः संसारात् त्राहि मां हरे॥

'हे राघव! आज इस नवमीको मैं आठ पहरका उपवास करूँगा। उससे आप परम प्रसन्न हो जाइये। हे हरे! संसारसे मेरी रक्षा कीजिये।' इस प्रकार कहकर पात्रके फल-पुष्प-अक्षतसहित जलको छोड़ दे।

फिर श्रीगणेश-गौरीका संक्षिप्त पूजन करके तथा कलशकी स्थापना करके साधक मण्डपमें स्थापित मूर्ति (अथवा चित्र) के कपोल-भागका स्पर्श करता हुआ श्रीराम-मन्त्र (**ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय नमः**) का उच्चारण करे, जिससे मूर्तिमें प्राण-प्रतिष्ठा हो जाय। तदुपरान्त भगवान् श्रीरामचतुष्टयका इस प्रकार ध्यान करना चाहिये—

वामे भागे जनकतनया राजते यस्य नित्यं
भ्रातृप्रेमप्रवणहृदयो लक्ष्मणो दक्षिणे च।
पादाम्भोजे पवनतनयः श्रीमुखे बद्धनेत्रः
साक्षाद् ब्रह्म प्रणतवरदं रामचन्द्रं भजे तम्॥

'जिनके वाम-भागमें श्रीजानकीजी नित्य विराजित हैं, दायें भागमें भ्रातृ-प्रेमसे सने हुए हृदयवाले श्रीलक्ष्मणजी सुशोभित हैं और जिनके चरणकमलोंके पास पवनपुत्र श्रीहनुमान्‌जी श्रीमुखकी ओर एकटक दृष्टि लगाये बैठे हैं, उन मूर्तिमान् ब्रह्म भक्तवरदायक रघुनायक श्रीरामचन्द्रकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ।'

(१) आवाहन-स्थापन-सांनिध्य—

आवाहयामि विश्वेशं जानकीवल्लभं प्रभुम्।
कौसल्यातनयं विष्णुं श्रीरामं प्रकृतेः परम्॥
श्रीरामागच्छ भगवन् रघुवीर नृपोत्तम।
जानक्या सह राजेन्द्र सुस्थिरो भव सर्वदा॥
रामभद्र महेष्वास रावणान्तक राघव।
यावत्पूजां करोम्यद्य तावत् त्वं संनिधौ भव॥
रघुनायक राजर्षे नमो राजीवलोचन।
रघुनन्दन मे देव श्रीरामाभिमुखो भव॥

ॐ परिकरसहितं श्रीसीतारामचन्द्रमावाहयामि, स्थापयामि च।

'जो साक्षात् विष्णु हैं, प्रकृतिसे परे हैं, विश्वके स्वामी हैं, श्रीजनकसुताके परमप्रिय हैं और श्रीकौसल्या अम्बाके पुत्र हैं, उन प्रभु श्रीरामजीका मैं आवाहन करता हूँ। हे राजेन्द्र श्रीराम! हे नृपश्रेष्ठ श्रीरघुवीर! हे भगवन्! आप श्रीजानकीजीके साथ पधारें एवं यहाँ सर्वदा वास करें। हे विशाल धनुषधारी श्रीरामभद्र! हे रावणारि श्रीराघव! जबतक मेरेद्वारा पूजा हो रही है, तबतक आप अपना सांनिध्य प्रदान करें। हे कमलनयन राजर्षि रघुकुलनायक! आपको नमस्कार है। हे मेरे आराध्य रघुनन्दन श्रीराम! आप मेरे सम्मुख होनेकी कृपा करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर यह भावना करे कि 'मैं मण्डपके मध्य परिकरसहित भगवान् श्रीसीतारामजीका आवाहन करके उन्हें स्थापित कर रहा हूँ।'

(२) आसन—

राजाधिराज राजेन्द्र रामचन्द्र महीपते।
रत्नसिंहासनं तुभ्यं दास्यामि स्वीकुरु प्रभो॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय इदमासनं समर्पयामि।

'हे राजाधिराज राजेन्द्र! हे पृथिवीपति श्रीरामचन्द्र! मैं आपको रत्नसिंहासन प्रदान करता हूँ। हे प्रभो! आप इसे स्वीकार करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर आसनके निमित्त पुष्प अर्पित करते हुए यह भावना करे कि मण्डपके मध्यमें भगवान् सीतारामजी रत्नसिंहासनपर तथा उनके सभी परिकर अपने-अपने आसनपर विराजित हो रहे हैं।

(३) पाद्य—

त्रैलोक्यपावनानन्त नमस्ते रघुनायक।
पाद्यं गृहाण राजर्षे नमो राजीवलोचन॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय पाद्यं समर्पयामि।

'तीनों लोकोंको पवित्र करनेवाले अनन्त रघुनायक! आपको नमस्कार है। हे राजर्षे! हे कमलनयन! आपको पुनः नमस्कार है। आप यह पाद्य ग्रहण करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर जल अर्पित करते हुए यह भावना करे कि रत्नसिंहासनपर आसीन भगवान् श्रीसीतारामजीके श्रीचरणोंको एवं तदनन्तर उनके परिकरोंके चरणोंको भी मैं सुगन्धित जलसे धो रहा हूँ।

(४) अर्घ्य—सभीको अलग-अलग अर्घ्य प्रदान करनेका विधान है, अतः जिस-जिस मन्त्रसे जिन-जिनको अर्घ्य दिया जाना चाहिये—इसका विवरण दिया जा रहा है। जिस प्रकार भगवान् श्रीरामके लिये अर्घ्य प्रदान किया जाय, उसी प्रकार अन्योंको भी प्रदान करना चाहिये।

(क) भगवान् श्रीरामके लिये—

दशग्रीवविनाशाय जातोऽसि रघुनन्दन।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसीद परमेश्वर॥

ॐ श्रीरामचन्द्राय अर्घ्यं समर्पयामि।

'हे रघुनन्दन! दशकण्ठ रावणका विनाश करनेके लिये ही आपका प्रादुर्भाव हुआ है। हे परमेश्वर! आप मुझपर प्रसन्न हों तथा मेरेद्वारा प्रदत्त अर्घ्यको स्वीकार करें।'

शंख या किसी पात्रमें फल-पुष्प-तुलसीसहित जल लेकर उपर्युक्त श्लोकका पाठ करते हुए श्रीरामजीको अर्घ्य देना चाहिये।

(ख) भगवती सीताके प्रति—

दशग्रीवविनाशाय जाता सावनिसम्भवा।
मैथिली शीलसम्पन्ना पातु नः पतिदेवता॥

ॐ श्रीसीतादेव्यै अर्घ्यं समर्पयामि।

'जो पृथिवीसे प्रकट हुई हैं, रावणका विनाश ही जिनके प्राकट्यका हेतु है, वे पतिपरायणा शीलसम्पन्ना मिथिलेश-नन्दिनी सीता हमलोगोंकी रक्षा करें।'

(ग) श्रीलक्ष्मणजीके प्रति—

निहतो रावणिर्येन शत्रुजिच्छत्रुघातिना।
स पातु लक्ष्मणो धन्वी सुमित्रानन्दवर्द्धनः॥

ॐ श्रीलक्ष्मणाय अर्घ्यं समर्पयामि।

'जिन्होंने शत्रुओंको मारकर उनपर विजय प्राप्त की है, जिनके द्वारा रावणपुत्र मेघनादका वध हुआ, सुमित्राके आनन्दको बढ़ानेवाले वे धनुर्धारी श्रीलक्ष्मणजी रक्षा करें।'

(घ) श्रीदशरथजीके प्रति—

नानाविधगुणागार गृहाणार्घ्यं नृपोत्तम।
रविवंशप्रदीपाय दशरथाय ते नमः॥

ॐ श्रीदशरथाय अर्घ्यं समर्पयामि।

'रघुकुलदीपक श्रीदशरथजीको नमस्कार है। हे नाना गुणोंके सदन नृपश्रेष्ठ! आप इस अर्घ्यको स्वीकर करें।'

(ङ) श्रीकौसल्या अम्बाके प्रति—

गृहाणार्घ्यं महादेवि रम्ये दशरथप्रिये।
जगदानन्दवन्द्यायै कौसल्यायै नमो नमः॥

ॐ श्रीकौसल्यादेव्यै अर्घ्यं समर्पयामि।

'जगत्को आनन्द देनेवाले भगवान् श्रीरामके द्वारा वन्दनीय मा कौसल्याको बारंबार प्रणाम है। हे दशरथप्रिये सुन्दरी महादेवि! आप इस अर्घ्यको ग्रहण करें।'

(च) श्रीकैकेयी अम्बाके प्रति—

दृढप्रतिज्ञे कैकेयि मातर्भरतवन्दिते।
गृहाणार्घ्यं महादेवि रक्ष मां भक्तवत्सले॥

ॐ श्रीकैकेयीदेव्यै अर्घ्यं समर्पयामि।

'श्रीभरतजीद्वारा वन्दनीय, दृढ़ प्रतिज्ञावाली, भक्तवत्सला, महादेवी मा कैकेयि! आप इस अर्घ्यको ग्रहण करें एवं मेरी रक्षा करें।'

(छ) श्रीसुमित्रा अम्बाके प्रति—

शुभलक्षणसम्पन्ने लक्ष्मणानन्दवर्द्धिनि।
सुमित्रं देहि मे देवि सुमित्रायै नमो नमः॥

ॐ श्रीसुमित्रादेव्यै अर्घ्यं समर्पयामि।

'शुभ लक्षणोंसे सम्पन्न तथा श्रीलक्ष्मणजीके आनन्दको बढ़ानेवाली देवि! आप मुझे अच्छे मित्र प्रदान करें, आपको बारंबार नमस्कार है।'

(ज) श्रीभरतजीके प्रति—

भक्तवत्सल भव्यात्मन् रामभक्तिपरायण।
भक्त्या दत्तं गृहाणार्घ्यं भरताय नमो नमः॥

ॐ श्रीभरताय अर्घ्यं समर्पयामि।

'हे भक्तवत्सल, पवित्रात्मा, रामभक्तिपरायणा श्रीभरत-जी! आप भक्तिपूर्वक दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार करें,

आपके लिये बारंबार नमस्कार है।

(झ) श्रीशत्रुघ्नजीके प्रति—

लवणान्तक शत्रुघ्न शत्रुकाननपावक।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसीद कुरु मे शुभम्॥

ॐ श्रीशत्रुघ्नाय अर्घ्यं समर्पयामि।

'हे लवणासुरको मारनेवाले तथा शत्रुवनके लिये अग्नि-स्वरूप शत्रुघ्नजी! आप मेरे द्वारा प्रदत्त इस अर्घ्यको स्वीकार करें, मुझपर प्रसन्न हों तथा मेरा मङ्गल करें।'

(ञ) श्रीसुग्रीवजीके प्रति—

सुग्रीवाय नमस्तुभ्यं दशग्रीवान्तकप्रिय।
गृहाणार्घ्यं महाबाहो किष्किन्धानायक प्रभो॥

ॐ श्रीसुग्रीवाय अर्घ्यं समर्पयामि।

'रावणको मारनेवाले श्रीरामके प्रिय सखा, विशाल भुजावाले, किष्किन्धाके स्वामी सुग्रीवजी! आप इस अर्घ्यको स्वीकार करें। प्रभो! आपके लिये प्रणाम है।'

(ट) श्रीहनुमान्‌जीके प्रति—

कूर्मकुम्भीरसंकीर्णमुत्तीर्णोऽसि महार्णवम्।
हनूमते नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं महामते॥

ॐ श्रीहनुमते अर्घ्यं समर्पयामि।

'कछुए, मगर आदिसे परिव्याप्त महासमुद्रको लाँघने-वाले, महाबुद्धिशाली श्रीहनुमान्‌जी! आपके लिये नमस्कार है। आप इस अर्घ्यको स्वीकार करें।'

(५) आचमन—

नमः सत्याय शुद्धाय नित्याय ज्ञानरूपिणे।
गृहाणाचमनं नाथ सर्वलोकैकनायक॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय आचमनीयं समर्पयामि।

'नाथ! आप नित्य-शुद्ध—सत्य हैं, ज्ञानस्वरूप हैं और सभी लोकोंके एकमात्र नायक हैं। आप कृपापूर्वक आचमन स्वीकार करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर सुगन्धित जल अर्पित करते हुए यह भावना करे कि मेरेद्वारा परिकरसहित श्रीसीतारामजीको आचमन कराया जा रहा है।

(६) स्नान—

नमः श्रीवासुदेवाय तत्त्वज्ञानस्वरूपिणे।
मधुपर्कं गृहाणेदं जानकीपतये नमः॥
पञ्चामृतं मयाऽऽनीतं पयोदधि घृतं मधु।
शर्करा चेति तद्भक्त्या दत्तं ते प्रतिगृह्यताम्॥
ब्रह्माण्डोदरमध्यस्थतीर्थैश्च रघुनन्दन।
स्नापयिष्याम्यहं भक्त्या त्वं प्रसीद जनार्दन॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय मधुपर्क-पञ्चामृते दत्त्वा स्नानार्थं जलं समर्पयामि।

'तत्त्वज्ञानस्वरूप श्रीवासुदेव भगवान्‌को नमस्कार है। जानकीपति श्रीरामचन्द्रजीको नमस्कार है। आप दधि-मधु-घृतरूप इस मधुपर्कको स्वीकार करें। दूध, दही, घी, मधु और चीनीसे निर्मित यह पञ्चामृत आपके (स्नानके) लिये मैं भक्तिपूर्वक लाया हूँ। आप इसे स्वीकार करें। हे रघुनन्दन! ब्रह्माण्डके सभी तीर्थोंसे लाये गये पवित्र जलसे मैं आपको भक्तिपूर्वक स्नान करा रहा हूँ। जनार्दन! आप मुझपर प्रसन्न हों।'

उपर्युक्त श्लोकोंसे परिकरसहित भगवान् श्रीसीतारामजी-को मधुपर्क तथा पञ्चामृत अर्पण करनेके बाद शुद्ध जलसे स्नान कराना चाहिये।

(७) वस्त्र—

तप्तकाञ्चनसंकाशं पीताम्बरमिदं हरे।
त्वं गृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय वस्त्राणि समर्पयामि।

'हे हरे! तपे हुए सोनेके समान वर्णवाला यह पीताम्बर है। हे जगन्नाथ! आप इसे स्वीकार करें। हे श्रीरामचन्द्र! आपको प्रणाम है।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर परिकरसहित भगवान् श्रीसीता-रामको उत्तरीय वस्त्राभूषण समर्पित करने चाहिये।

(८) यज्ञोपवीत—

श्रीरामाच्युत यज्ञेश श्रीधरानन्त राघव।
ब्रह्मसूत्रं सोत्तरीयं गृहाण रघुनन्दन॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय यज्ञोपवीतं समर्पयामि।

'हे श्रीराम! हे अच्युत! हे यज्ञेश (यज्ञफलदाता)! हे श्रीधर! हे अनन्त! हे राघव! हे रघुनन्दन! आप उत्तरीय-सहित यह यज्ञोपवीत धारण कीजिये।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर परिकरसहित भगवान् श्रीसीता-रामको उत्तरीय (ओढ़नेकी चादर) के साथ यज्ञोपवीत

समर्पित करना चाहिये।

(९) गन्ध—

कुङ्कुमागुरुकस्तूरीकर्पूरं चन्दनं तथा।
तुभ्यं दास्यामि राजेन्द्र श्रीराम स्वीकुरु प्रभो॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय गन्धं समर्पयामि।

'हे राजेन्द्र श्रीराम! केसर, अगर, कस्तूरी और कपूरसे मिला हुआ चन्दन आपको समर्पित करता हूँ। हे प्रभो! आप उसे स्वीकार करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर परिकरसहित भगवान् श्रीसीतारामको कुङ्कुमादियुक्त चन्दन चढ़ाना चाहिये।

(१०) पुष्प—

तुलसीकुन्दमन्दारजातीपुंनागचम्पकैः।
कदम्बकरवीरैश्च कुसुमैः शतपत्रकैः॥
नीलाम्बुजैर्बिल्वपत्रैः पुष्पमाल्यैश्च राघव।
पूजयिष्याम्यहं भक्त्या गृहाण त्वं जनार्दन॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय पुष्पाणि पुष्पमालां च समर्पयामि।

'तुलसी, कुन्द, मन्दार, मालती, पुंनाग, चम्पा, कदम्ब, करवीर, शतपत्र, नीलकमल आदि पुष्पोंसे, बिल्वपत्रोंसे तथा पुष्पमालाओंसे, हे राघव! मैं भक्तिपूर्वक आपका पूजन करता हूँ; हे जनार्दन! आप इसे स्वीकार करें।'

उपर्युक्त मन्त्र पढ़कर परिकरसहित भगवान् श्रीसीतारामचन्द्रजीको नाना प्रकारके पुष्प और पुष्पमालाएँ अर्पित करनी चाहिये।

पुष्पमालार्पणके अवसरपर ही भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके विभिन्न अङ्गोंकी पूजा होती है। आगे मन्त्र लिखे जा रहे हैं। क्रमशः मन्त्र बोलकर मन्त्रके सामने जिन अङ्गोंके नाम लिखे हैं, उन-उन अङ्गोंपर पुष्प या अक्षत चढ़ाने चाहिये।

ॐ श्रीरामचन्द्राय नमः, पादौ पूजयामि। (चरणोंपर)
ॐ श्रीराजीवलोचनाय नमः, गुल्फौ पूजयामि। (टखनोंपर)
ॐ श्रीरावणान्तकाय नमः, जानुनी पूजयामि। (घुटनोंपर)
ॐ श्रीवाचस्पतये नमः, ऊरू पूजयामि। (जाँघोंपर)
ॐ श्रीविश्वरूपाय नमः, जङ्घे पूजयामि। (पिंडलियोंपर)
ॐ श्रीलक्ष्मणाग्रजाय नमः, कटिं पूजयामि। (कमरपर)
ॐ श्रीविश्वामित्रप्रियाय नमः, नाभिं पूजयामि। (नाभिपर)
ॐ श्रीपरमात्मने नमः, हृदयं पूजयामि। (हृदयपर)
ॐ श्रीकण्ठाय नमः, कण्ठं पूजयामि। (कण्ठपर)
ॐ श्रीसर्वास्त्रधारिणे नमः, बाहू पूजयामि। (भुजाओंपर)
ॐ श्रीरघूद्वहाय नमः, मुखं पूजयामि। (मुखपर)
ॐ श्रीपद्मनाभाय नमः, जिह्वां पूजयामि। (जिह्वापर)
ॐ श्रीदामोदराय नमः, दन्तान् पूजयामि। (दाँतोंपर)
ॐ श्रीसीतापतये नमः, ललाटं पूजयामि। (ललाटपर)
ॐ श्रीज्ञानगम्याय नमः, शिरः पूजयामि। (सिरपर)
ॐ श्रीसर्वात्मने नमः, सर्वाङ्गं पूजयामि। (सारे अङ्गोंपर)

(११) धूप—

वनस्पतिरसोद्भूतो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः।
रामचन्द्र महीपाल धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय धूपमाघ्रापयामि।

हे पृथिवीका पालन करनेवाले श्रीरामचन्द्रजी! वनस्पतियोंके रसोंसे और उत्तम गन्धयुक्त द्रव्योंसे बने हुए इस धूपको स्वीकार करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर परिकरसहित भगवान् श्रीसीतारामजीको धूप समर्पित करना चाहिये।

(१२) दीपक—

ज्योतिषां पतये तुभ्यं नमो रामाय वेधसे।
गृहाण दीपकं चैव त्रैलोक्यतिमिरापहम्॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय दीपं दर्शयामि।

'हे श्रीराम! आप सभी ज्योतियोंके स्वामी हैं—स्रष्टा हैं, तीनों लोकोंके अन्धकारका अपहरण करनेवाले इस दीपकको स्वीकार करें। आपको प्रणाम है।'

उपर्युक्त श्लोकको पढ़कर परिकरसहित भगवान् श्रीसीतारामचन्द्रजीको प्रज्वलित दीपक दिखलाना चाहिये।

(१३) नैवेद्य—

इदं दिव्यान्नममृतं रसैः षड्भिः समन्वितम्।
रामचन्द्रेश नैवेद्यं सीतेश प्रतिगृह्यताम्॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय नैवेद्यं समर्पयामि।

'हे सीतापति भगवान् श्रीरामचन्द्र! दिव्य अन्नोंसे निर्मित एवं छहों रसोंसे युक्त इस अमृतमय नैवेद्यको आप स्वीकार करें।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर परिकरसहित श्रीसीतारामको

नैवेद्य समर्पित करना चाहिये। तदुपरान्त भगवान् श्रीसीताराम-के आचमनके लिये शुद्ध जल समर्पित करना चाहिये।

(१४) ताम्बूल—

नागवल्लीदलैर्युक्तं पूगीफलसमन्वितम्।
ताम्बूलं गृह्यतां राम कर्पूरादिसमन्वितम्॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय ताम्बूलं समर्पयामि।

'हे श्रीरामचन्द्रजी! आप सुपारी और कपूर आदिसे युक्त नागरबेल (पान) के पत्तोंका बना हुआ बीड़ा स्वीकार कीजिये।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर परिकरसहित भगवान् श्रीसीता-रामको शुद्ध रीतिसे लगाया हुआ पान अर्पित करना चाहिये।

(१५) आरती—

मङ्गलार्थं महीपाल नीराजनमिदं हरे।
संगृहाण जगन्नाथ रामचन्द्र नमोऽस्तु ते॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय कर्पूरारार्तिक्यं समर्पयामि।

'हे पृथिवीपालक भगवान् श्रीरामचन्द्र! आपके सर्वविध मङ्गलके लिये यह आरती है। हे जगन्नाथ! इसे आप स्वीकार करें। आपको प्रणाम है।'

उपर्युक्त श्लोक पढ़कर किसी शुद्ध पात्रमें कपूर तथा (एक या पाँच या ग्यारह) घीकी बत्ती जलाकर परिकरसहित भगवान् श्रीसीतारामजीकी आरती उतारनी चाहिये और समवेतस्वरमें निम्नलिखित आरतीका गायन करना चाहिये—

आरति कीजै श्रीरघुबरकी,
सत चित आनँद शिव सुंदर की॥ टेक॥
दशरथ तनय कौसिला-नन्दन,
सुर मुनि रक्षक दैत्य-निकन्दन,
अनुगत भक्त भक्त-उर-चन्दन,
मर्यादा-पुरुषोत्तम वरकी॥ आरति०॥
निर्गुण सगुण अरूप रूपनिधि,
सकल लोक वन्दित विभिन्न विधि,
हरण शोक-भय, दायक सब सिधि,
मायारहित दिव्य नर-वरकी॥ आरति०॥
जानकिपति सुराधिपति जगपति,
अखिल लोक पालक, त्रिलोक-गति,
विश्ववन्द्य अनवद्य अमित-मति,
एकमात्र गति सचराचरकी॥ आरति०॥
शरणागत-वत्सल व्रतधारी,
भक्त-कल्पतरु वर असुरारी,
नाम लेत जग पावनकारी,
वानर-सखा दीन-दुख-हरकी॥ आरति०॥

(१६) पुष्पाञ्जलि, प्रदक्षिणा, प्रणाम—

नमो देवाधिदेवाय रघुनाथाय शार्ङ्गिणे।
चिन्मयानन्तरूपाय सीतायाः पतये नमः॥

ॐ परिकरसहिताय श्रीसीतारामचन्द्राय पुष्पाञ्जलिं समर्पयामि।

'देवोंके देव, शार्ङ्गधनुर्धर, चिन्मय, अनन्त रूप धारण करनेवाले, सीतापति भगवान् श्रीरघुनाथजीको बारंबार प्रणाम है।'

अञ्जलिमें पुष्प लेकर उपर्युक्त श्लोक पढ़ना चाहिये। श्लोक-पाठ हो जानेपर पुष्पार्पण करके निम्नलिखित श्लोक पढ़ते हुए प्रदक्षिणा करनी चाहिये—

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्यादिकानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिणपदे पदे॥

'ब्रह्महत्या आदि जितने भी पाप हैं, वे सभी प्रदक्षिणाके पद-पदपर निःशेष हो जाते हैं।'

प्रदक्षिणा करके भगवान् श्रीसीतारामको प्रणाम करना चाहिये एवं उनकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये कातर-याचना करनी चाहिये।

मुमुक्षुजनको चाहिये कि आत्मकल्याणके लिये सदा रामनवमीका व्रत करें। श्रीरामनवमी-व्रत करनेवाला सभी पापोंसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्म भगवान् श्रीसीतारामजीको प्राप्त कर लेता है।

श्रीरामनवमीके दिन भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके प्रतिमादान-का अत्यधिक माहात्म्य श्रीअंगस्त्यसंहितामें कहा गया है। प्रतिमा स्वर्ण या पाषाण या काष्ठकी हो सकती है। स्वर्ण-पत्रपर भगवान् श्रीसीतारामजीका चित्र या रेखाचित्र अङ्कित करके भी उस चित्र-पत्रका दान किया जा सकता है।

श्रीरामरक्षास्तोत्रका माहात्म्य एवं प्रयोग-विधि

(श्रीतनसुखरायजी शर्मा 'प्रभाकर')

श्रीरामरक्षास्तोत्र अत्यन्त लाभप्रद है। यह पुस्तिकाकारमें गीताप्रेससे प्रकाशित है। यह स्तोत्र जगत्‌को बुधकौशिक ऋषिसे प्राप्त हुआ है। बुधकौशिक ऋषिको यह स्वप्नमें भगवान् शंकरसे प्राप्त हुआ था। अनुष्टुप् छन्दमें विरचित इस वज्रपञ्जर स्तोत्रके ऋषि बुधकौशिक हैं, भगवती श्रीसीता इसकी शक्ति हैं, भगवान् श्रीराम इसके देवता हैं तथा श्रीहनुमान्‌जी इसके कीलक हैं। इस स्तोत्रमें विश्वाधार, विश्वसंरक्षक, पतितपावन, सर्वसमर्थ, पूर्णपुरुषोत्तम भगवान् श्रीसीतारामका ध्यान करनेके उपरान्त अङ्ग-प्रत्यङ्गकी रक्षा करनेके लिये उनसे प्रार्थना की गयी है। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी वन्दना करनेवालेका तथा उनके आश्रित रहनेवालेका सर्वत्र और सर्वदा कल्याण ही होता है। लौकिक कष्टकी तो बात ही क्या, रामाश्रयी भक्तको न यमदूत भयभीत कर सकते हैं और न उसे संसार-चक्रमें पड़ना पड़ता है।

भगवान् श्रीसीतारामकी प्रसन्नता-प्राप्तिके लिये इस स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। भगवान् श्रीसीतारामकी शक्ति अनिर्वचनीय तथा अचिन्त्य है। उनकी कृपासे सांसारिक कष्ट, शारीरिक रोग और मानसिक चिन्ताएँ दूर हो सकती हैं। पाठकर्ताकी श्रद्धा और भावनाके अनुसार न केवल लौकिक, अपितु पारलौकिक और पारमार्थिक लाभ भी श्रीरामरक्षा-स्तोत्रके पाठसे होता है। इसके सिद्धकर्ताको श्रद्धा-विश्वासके साथ भावपूर्वक अर्थ समझते हुए पुनः-पुनः पाठ करना चाहिये, जिससे अभीष्टकी प्राप्ति शीघ्र हो सके।

सिद्ध करनेकी विधि

श्रीरामरक्षास्तोत्रका प्रयोग करनेसे पूर्व इसे सिद्ध कर लेना चाहिये, अन्यथा पूर्ण फलकी प्राप्तिमें शङ्का रहती है। इस स्तोत्रको सिद्ध करनेकी संक्षिप्त विधि इस प्रकार है—इसे सिद्ध करनेका समय नवरात्र है। नवरात्र सालमें मुख्य-रूपसे दो बार आता है। किंतु चैत्र मासमें श्रीरामनवमीपर पूर्ण होनेवाला नवरात्र अधिक उपयुक्त है। चैत्र मास या आश्विन मासके शुक्लपक्षके नवरात्रमें नौ दिनों (अर्थात् प्रतिपदासे नवमी तिथि) तक प्रतिदिन ब्राह्म-मुहूर्तमें स्नानादि तथा नित्यकर्मसे निवृत्त होकर, शुद्ध वस्त्र धारणकर, कुशके आसनपर सुखासनसे पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर बैठे। सामने भगवान् रामका दरबार-चित्र या भगवान् श्रीसीतारामका चित्र (*धरें चाप सायक कटि भाथा*' के अनुसार) अथवा श्रीहनुमान्‌जीका चित्र होना चाहिये। चन्दन-पुष्पादिसे पूजन करके इस महान् फलदायी स्तोत्रको सिद्ध करनेके लिये इसका ग्यारह बार पाठ नियमित रूपसे प्रतिदिन करना चाहिये। पाठके समय अखण्ड प्रज्वलित दीपक तथा धूप रखना चाहिये। भगवान् श्रीसीतारामकी कृपाशक्तिके प्रति आपकी जितनी अखण्ड निष्ठा-श्रद्धा होगी, उतना ही फल प्राप्त होगा। नवमीके दिन यथाशक्ति ब्राह्मण-भोजन भी करवा देना चाहिये।

यह स्तोत्र नवरात्रमें सिद्ध किया जाय तो सर्वोत्तम, अन्यथा भारतीय पञ्चाङ्गके अनुसार किसी भी मासके शुक्ल-पक्षके प्रथम नौ दिनोंमें अर्थात् प्रतिपदासे नवमी तिथितक उपर्युक्त प्रकारसे नियमित पाठ करके इस स्तोत्रको सिद्ध किया जा सकता है।

यह स्तोत्र श्रीहनुमान्‌जीके द्वारा कीलित है। इसके उत्कीलनके सम्बन्धमें मैं तो केवल यह कह सकता हूँ कि इसका उत्कीलन श्रीहनुमान्‌जीकी कृपासे होता है। अतः सिद्ध करते समय या प्रयोग करते समय भी श्रीहनुमान्‌जीका संरक्षण एवं उनकी कृपा प्राप्त करनेके लिये प्रारम्भमें और समापनपर श्रीहनुमान्‌जीका ध्यान, कृपाहेतु प्रार्थना-प्रणामादि श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक करते रहना चाहिये। इससे हनुमान्‌जी साधकको संरक्षण एवं सिद्धि देते हैं। वास्तवमें तो उत्कीलनका रहस्य यह है कि हनुमान्‌जीके संरक्षणमें उनके समान ही भक्ति एवं श्रद्धासे पाठ तथा प्रयोग करना चाहिये।

सिद्ध कर लेनेके बाद एक पाठ नित्य कर लेना चाहिये। इसे सिद्ध करनेसे पूर्व इसे कण्ठाग्र कर लेना भी आवश्यक है। यथा—

'यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः।'

रोगीपर प्रयोग-विधि

सभी प्रकारके मनोरथ पूर्ण करनेमें यह स्तोत्र समर्थ है। अत्यावश्यक समझनेपर ही सकाम भावसे पाठ करना उचित होता है, वैसे भक्ति-भावपूर्वक भगवत्प्रीत्यर्थ एक पाठ नित्य

करना ही चाहिये।

किसी भी मनोरथके लिये जप (पाठ) की विधिकी ही प्रधानता होती है। किंतु रोगके निवारणार्थ अभिमन्त्रित जलसे रोगीका मार्जन उत्तम विधि है। मार्जन करनेकी विधि यह है कि कमल या गुलाब अथवा लाल रंगके उपलब्ध सात्त्विक पाँच पुष्प लीजिये। ये शुद्ध रहने चाहिये, क्योंकि गीले वस्त्रमें लपेटने, धोने, सूँघने या अपवित्र हाथोंसे स्पर्श करनेसे पुष्प अशुद्ध एवं अपवित्र हो जाते हैं। जलके लोटेमें चार पुष्प तैरते रहें, एक पुष्प हाथमें रहे अथवा सामने भगवान्‌के सिंहासनपर रखा रहे। नवरात्रमें जिस विधिसे पाठ किया हो, उसी विधिसे पाठ करे। एक मार्जनके लिये ११ या २१ पाठ करना ठीक है। पाठके बाद हाथवाले पुष्पसे रोगीका मार्जन करें। (लोटेके जलमें पुष्प लगाकर फिर उस जलको पुष्पसे रोगीपर सिरसे पैरतक छींटें।) ग्यारह बार छींटे देकर वह पुष्प भगवान्‌के पूजा-स्थानपर छोड़ दें, बाकी चारों पुष्प रोगीके सिरहाने रख दे। सिरहानेवाले पुष्पके सूखते-सूखते रोग भी सूख (नष्ट हो) जायगा। मार्जन आवश्यकतानुसार एक, तीन, सात, ग्यारह या इक्कीसकी संख्यामें किया जा सकता है। भगवान्‌के पास रखे पुष्पको जलाशयमें प्रवाहित कर देना चाहिये। बाकी सूखे पुष्पोंको गाड़ देना चाहिये। मार्जनकर्ता उपवासके दिनकी भाँति एक समय भोजन करके पवित्र—संयम एवं ब्रह्मचर्य-पूर्वक रहे।

रोगीपर प्रयोग करनेके लिये रोगीका हाथ अपने हाथमें लेकर पाठ करना या पाठ करके जलमें फूँक मारकर अभि-मन्त्रित करके वह जल रोगीको पिलाना आदि विधियाँ भी काममें लायी जाती हैं और वे विधियाँ भी श्रेष्ठ हैं, किंतु रोगीके उपचारके लिये मार्जन-विधि ही उत्तम है। इसके कई कारण हैं—

१-जप या पाठ शुद्ध आसनपर बैठकर एकान्तमें भगवान् राघवेन्द्रसरकारके ध्यानपूर्वक एकाग्रचित्तसे करनेपर अधिक शक्ति देता है। रोगीका हाथ अपने हाथमें लेकर पाठ करनेमें कुछ बाधाएँ आयेंगी। पहले तो हर रोगीका इतनी देर स्थिर रहना कठिन होगा। दूसरे पाठकका ध्यान ऐसी स्थितिमें एकाग्र रहनेमें कठिनाई होगी। तीसरे शुद्धतामें भी बाधा रह सकती है, इत्यादि।

२-यद्यपि अभिमन्त्रित जलकी विधि पहलीसे अधिक उचित है (यदि इसमें गङ्गाजल हो तो और भी अच्छा रहे), तथापि बार-बार फूँक मारनेसे जप तैल-धारावत् नहीं हो पाता, जो विशेष शक्ति देता है। साथ ही ध्यान—मन्त्रसहित ध्यान भी पुनः-पुनः करना है।

वैसे सुविधा, रुचि एवं विश्वासानुसार कोई भी विधि अपनायी जा सकती है। यदि किसीके द्वारा स्तोत्र सिद्ध नहीं भी हो अथवा उसे विधि नहीं आती हो तो भी किसी रोगके निवारणके लिये तो रोगीके पास लगातार कुछ उच्च स्वरसे पाठ चलाना चाहिये, जिससे वहाँके वातावरणमें स्तोत्र शब्द फैल जायँ। इससे भी कल्याण ही होगा। रोगीके पास न होनेपर भी अथवा अन्य मनोरथोंके लिये भी यह पाठ उपयुक्त होता है।

इस रहस्यके मर्मज्ञ तो श्रीहनुमान्‌जी ही हैं। किंतु स्वल्प अनुभव एवं अपनी मतिके अनुसार कुछ लिख दिया गया है। बाकी तो पाठक स्वयं अनुभव करके देख सकते हैं। यदि कहीं लिखनेमें त्रुटि हो तो विज्ञजनोंसे क्षमापूर्वक मार्गदर्शनकी प्रार्थना है। भक्तरक्षक सियावर रामचन्द्रजीकी जय!

सुमिरन कर ले

भवसागरकी प्रबल धार है, जाना है उस पार रे।
राम हैं तारक, राम ही तरणी, 'राम'-नाम पतवार रे॥
हित-अनहित पशु-पक्षी जाने मानव फिर क्यों ना जाने।
मायाके करतब ना समझे सपनाको अपना माने॥
'राम'-नामकी ज्योति बिना, नहीं मिटेगा, भ्रम-अँधियार रे।
राम हैं तारक, राम ही तरणी, 'राम'-नाम पतवार रे॥
गीध, अजामिल, गज, गणिकाकी जानी-सुनी कहानी रे।
आगम, निगम, पुराण, शास्त्र, सब संतजनोंकी बानी रे॥
जो प्रमाण हैं, हुए या होगें सबकी यही पुकार रे।
सुमिरन कर ले 'राम'-नामका होगा बेड़ा पार रे॥
नर-तन दुर्लभ, समय है थोड़ा पीछे पड़े न रोना रे।
'राम'-नाम की शरण 'रमण' ले राम-भरोसे होना रे॥
मायामय संसारमें केवल 'राम'-नाम ही सार रे।
राम हैं तारक, राम ही तरणी, 'राम-नाम पतवार रे॥

(श्रीरमणजी भजनानन्दी)

श्रीरामरक्षा-यन्त्रराज

(महात्मा श्रीअवधकिशोरदासजी वैष्णव)

श्रीरामरक्षा-यन्त्रराज कल्पवृक्षकी भाँति उपासकके लौकिक-पारलौकिक—सभी मनोरथ पूर्ण करता है। जिस प्रकार श्रीरामरक्षा-स्तोत्रका पाठ करनेपर समस्त कामनाएँ फलीभूत होती हैं, वैसे ही श्रीरामरक्षा-यन्त्रराजका विधिवत् पूजन करने तथा उसे धारण करनेसे सभी फल प्राप्त होते हैं। प्राचीन संतजन इसको ताम्रपत्रपर अङ्कित करवाकर मन्दिरमें

पूजनमें रखते थे। श्रीरामतापनीयन्त्र कई मन्दिरोंमें अभी भी पूजे जाते हैं।

श्रीअगस्त्य-संहितामें इसके माहात्म्यका वर्णन इस प्रकार किया गया है—श्रीरामचन्द्रजीके वज्रपञ्जरनामक श्रीरामरक्षा-यन्त्रको धारण करनेसे सर्वसिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, सभी आपत्तियाँ-विपत्तियाँ समूल नष्ट हो जाती हैं, भूत-प्रेत-पिशाचादि इसके देखते ही भाग जाते हैं, मित्रोंकी मित्रता दृढ़ होती है, शत्रु मित्र बन जाते हैं, क्रूर कष्ट-प्रद ग्रह प्रसन्न (अतएव शान्त) हो जाते हैं और शासकोंकी अनुकूलता प्राप्त होती है। बहुत क्या कहें, श्रीरामभद्रजीके

श्रीराम-रक्षा-यन्त्रके पूजन तथा धारण करनेसे कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं रह जाता।

यावज्जीवं तु सौवर्णं रौप्यं विंशतिवर्षकम्।
भूर्जे द्वादश वर्षाणि तदर्धं ताम्रपत्रके॥
सौवर्णे राजते पत्रे भूर्जे वा सम्यगालिखेत्।
अथवा ताम्रपत्रे च गुलिकीकृत्य धारयेत्॥

अगस्त्यसंहिताके अनुसार स्वर्ण-पत्रपर अङ्कित रामरक्षा-यन्त्रराज जीवनपर्यन्त, रजतपत्रपर अङ्कित बीस वर्ष, भोजपत्र-पर लिखित बारह वर्ष तथा ताम्रपत्रपर अङ्कित छः वर्षतक प्रभावयुक्त रहता है। उपासक अपनी शक्तिके अनुसार सोना, चाँदी, भोजपत्र अथवा ताम्रपत्रपर लिखकर इसे धारण करें। ताबीज भी बनाकर धारण कर सकते हैं। यन्त्रको भोजपत्रपर लिखकर तथा प्राण-प्रतिष्ठा करवाकर सोना,चाँदी या ताँबेके ताबीजमें धारण किया जा सकता है। यन्त्रराजके दर्शनमात्रसे अनन्त लाभ होता है।

जो नित्यप्रति श्रीरामरक्षा-स्तोत्रका पाठ करते हुए श्रीरामरक्षा-यन्त्रराजपर तुलसी-पत्र अर्पण करता है, वह सैकड़ों दीक्षाओंसे भी दुर्लभ फल प्राप्त करता है। वह आयु-आरोग्य, पुत्र-पौत्र—सभी लौकिक एवं पारलौकिक सुखोंको प्राप्तकर अन्तमें प्रभुके धाममें जाता है।

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीरामभक्तिका स्वरूप

(मानसमर्मज्ञ आचार्यप्रवर पं० श्रीसच्चिदानन्ददासजी रामायणी)

जय-जय प्रभु अशरण-शरण, स्वामी रामानन्द।
विश्ववन्द्य यतिवर चरण, शरण 'सच्चिदानन्द'॥
समारम्भ श्रीसीय पिय, मध्यम रामानन्द।
अपने श्रीआचार्यतक वन्दौं परमानन्द॥

वेदवेद्य परात्पर ब्रह्म अखिलकल्याणगुणसिन्धु साकेता-धीश भगवान् श्रीरामजी ही 'श्री'सम्प्रदाय-श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके प्रथम उपदेष्टा हैं। सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके अधीश्वर श्रीसीतानाथ ही इस विशाल 'श्री'-सम्प्रदायके इष्टदेव हैं। महर्षि अगस्त्यजीके समक्ष परमभागवत नित्यमुक्त श्रीहनुमान्-जीने श्रीसीतारामजीके परस्वरूपका यथार्थतः वर्णन किया है। यथा—

दिव्यानन्तगुणः श्रीमान् दिव्यमङ्गलविग्रहः।
षड्गुणैश्वर्यसम्पन्नो मनोवाचामगोचरः॥
वेदवेद्यः सर्वसाक्षी सर्वोपास्यः स्वतन्त्रकः।
नित्यानां निजभक्तानां योग्यभूतः श्रियः पतिः॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां कारणं सर्वव्यापकः।
मूलं सर्वावताराणां धर्मसंस्थापकः परः॥
द्विभुजश्चापभृच्चैव भक्ताभीष्टप्रपूरकः।
वैदेहीवल्लभो नित्यं कैशोरे वयसि स्थितः॥
एवंभूतश्च ज्ञातव्यो रामो राजीवलोचनः॥

(हनुमत्संहिता)

उन्हीं सम्पूर्ण लोकोंके महेश्वर भगवान् श्रीरामने साकेतधामान्तर्गत ही सर्वप्रथम विश्ववन्दिता परमशक्ति जगन्माता श्रीसीताजीकी प्रार्थना करनेपर उन्हें सम्पूर्ण जीवोंके कल्याणार्थ अपना परम दिव्य महामन्त्र षडक्षर श्रीराममन्त्रका उपदेश दिया। 'श्री'पदवाच्या भगवती श्रीसीताजी ही इस 'श्री'सम्प्रदायकी आद्यप्रवर्तिका हैं। 'श्री'जीके द्वारा प्रवर्तित होनेसे इस विशाल सम्प्रदायका नाम 'श्रीसम्प्रदाय' प्रसिद्ध हुआ। पश्चात् परमप्रभु श्रीरामके संकेतानुसार श्रीजीने साकेतधाममें ही अपने नित्यपार्षद श्रीहनुमान्‌जीको श्रीराममन्त्र प्रदान किया।

यह स्मरणीय है कि श्रीसाकेतधाममें भगवान् श्रीसीता-रामजीके प्रधान सोलह पार्षदोंमें सर्वश्रेष्ठ सेवक श्रीहनुमान्‌जी ही हैं। यथा—

हनुमानथ सुग्रीवः अङ्गदो द्विविदस्तथा।
मयन्दश्च सुषेणश्च कुमुदश्च हविर्मुखः॥
नीलो नलो गवाक्षश्च पनसो गन्धमादनः।
विभीषणो जाम्बवांश्च दधिवक्त्रश्च षोडश॥
मनोवाक्कर्मभिः सर्वे रामसेवासुतत्पराः।
स्थिताः समीपगा नित्यं सीतारामैकमानसाः॥

(साकेतविहारी परब्रह्मरामायण)

साकेतविहारी परब्रह्म रामाभिन्नरूपा श्रीसीताजीके द्वारा उपदिष्ट होनेसे श्रीहनुमान्‌जीको **'सीताशिष्यं गुरोर्गुरुम्।'** श्रीसीताजीका शिष्य एवं सम्पूर्ण गुरुओंका भी गुरु कहा गया

है। क्योंकि परमभागवत श्रीसम्प्रदायाचार्य कौशलेन्द्रदास हनुमान्‌जीने एकपाद-विभूतिमें सृष्टिकर्ता जगद्‌गुरु श्रीब्रह्माजीको मन्त्रराज षडक्षरका सर्वप्रथम उपदेश किया। पुनः श्रीब्रह्माजीके द्वारा आगे इस श्रीसम्प्रदायका प्रचार-प्रसार बढ़ने लगा। यद्यपि श्रीहनुमान्‌जी नित्य-नैष्ठिक बाल-ब्रह्मचारी, परमविरक्त हैं, फिर भी उन्होंने श्रीराममन्त्रका विशेष प्रचार-प्रसार करने-हेतु अपना प्रथम शिष्य गृहस्थधर्मसे युक्त श्रीब्रह्माजीको बनाया। श्रीब्रह्माजीने अपने प्रिय पुत्र ब्रह्मर्षि श्रीवसिष्ठजीको वैदिक मन्त्र प्रदान किया। जगद्‌गुरु श्रीवसिष्ठजीसे क्रमशः उनके पौत्र श्रीपराशरजी एवं प्रपौत्र बादरायण श्रीव्यासजीने श्रीराममन्त्रको ग्रहण किया। पश्चात् श्रीहरिके कलांशावतार कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने कुछ सोच-समझकर द्वापरान्तमें अपने प्रिय पुत्र ऊर्ध्वरेता श्रीशुकदेवजीको श्रीराममन्त्र प्रदान किया। तभीसे श्रीसम्प्रदायाचार्योंने विन्दु-परम्पराद्वारा शिष्य बनानेकी परम्परा-प्रक्रियाका अन्त करते हुए नाद-परम्पराका स्थापन किया।

विश्वविश्रुत विशाल 'श्री' (रामानन्द) सम्प्रदायके मूल संस्थापकाचार्य स्वयं परमात्मा सर्वेश्वर श्रीरामजी महाराज हैं—साक्षात् 'श्री'जीने ही इस सम्प्रदायकी स्थापना करके इसे गौरवान्वित किया। श्रीसीतारामजी तो साक्षात् ब्रह्म हैं, इष्टदेव हैं। अतः प्रथमाचार्यके रूपमें श्रीसम्प्रदायके प्रधान आचार्य श्रीकौशलेन्द्रदास हनुमान्‌जी मान्य हैं। आचार्यप्रवर श्रीहनुमान्‌जीसे ही यह परम्परा आगेकी ओर उन्मुख हुई है।

स्वयं भगवान् श्रीराम ही जगद्‌गुरु श्रीरामानन्दाचार्यजीके रूपमें श्रीसम्प्रदायके परमाचार्य हुए। परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीसीतारामजी ही इस सम्प्रदायके उपास्य परमाराध्य और ध्येय-ज्ञेय हैं। आद्यकवि श्रीमन्महर्षि वाल्मीकिप्रणीत 'श्रीमद्रामायण' एवं श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके महापुरुष स्वामी श्रीनारायणदासजी (नाभाजी)-द्वारा रचित 'श्रीभक्तमाल' एवं जगद्‌गुरु गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज-रचित 'श्रीरामचरितमानस'—ये ग्रन्थत्रय श्रीरामानन्द-सम्प्रदायके ज्ञेय ग्रन्थ हैं। वैदिक सनातनधर्मकी मान्यता, समस्त देवी-देवताओंके प्रति आदरभावना, प्राणिमात्रपर दया, अहिंसा, उदारता, निस्पृहता आदि सद्‌वृत्तियाँ इस विशाल सम्प्रदायकी विशेषताएँ हैं। समग्र मानवोंका मङ्गल, सुख, शान्ति और कल्याण ही श्रीरामानन्द-सम्प्रदायका उद्देश्य है। यह विश्वविश्रुत विशाल श्रीसम्प्रदाय सम्पूर्ण मानव-वंशके कल्याणार्थ ईश्वरीय देन है।

श्रीरामानन्दसम्प्रदायके उपास्यदेव भगवान् श्रीरामकी नवविधा भक्ति करनेके लिये महर्षि वाल्मीकिरचित वाल्मीकि-संहिताके द्वितीय अध्यायमें स्पष्ट निर्देश है—

नवधा भक्तयः प्रोक्ताः श्रीरामस्य प्रसादिकाः।
भक्तैस्ताः सर्वदा सेव्या जगज्जालमुमुक्षुभिः॥

अर्थात् सर्वलोकमहेश्वर प्रभु श्रीरामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेवाली भक्तिविधाएँ नव प्रकारकी कही गयी हैं। सांसारिक उलझनों—जगज्जालोंसे मुक्त होनेके लिये मुमुक्षुओंद्वारा सर्वदा इनका सेवन एवं अनुष्ठान करना चाहिये। महर्षि आगे कहते हैं—परात्पर प्रभु श्रीराघवेन्द्रके परम दिव्य गुणोंका श्रद्धापूर्वक श्रवण करना—सुनते रहना 'श्रवण' नामकी पहली भक्ति है। भगवान् श्रीजानकीनाथके चरित्र एवं गुणोंका गान करना 'कीर्तन'-नामकी दूसरी भक्ति है और श्रीरघुनाथजीके नाम एवं स्वरूपका स्मरण करना 'स्मरण' नामसे तीसरी भक्ति कही गयी है। यथा—

श्रवणं रामचन्द्रस्य गुणानां श्रद्धया पुनः।
गुणानां कीर्तनं चापि तन्नामस्मरणं तथा॥

पुनः आगे वर्णन है—श्रीसीतारामजीके श्रीचरणकमलोंकी सेवा-आराधना 'पादसेवन' नामक चौथी भक्ति मान्य है। भक्ताभीष्टपूरक श्रीरघुनाथजीका विधिवत् षोडशोपचार अर्चन करना पाँचवीं भक्ति 'अर्चन' नामसे कही गयी है। नित्य त्रयकालीन दण्डवत्-प्रणाम करना छठी भक्ति 'वन्दन' नामसे जानी जाती है। भगवान् श्रीरामजीके प्रति दास्यभाव रखते हुए उनकी दासता—सेवा करना सातवीं भक्ति 'दास्य' के नामसे ख्यात है। श्रीराघवके साथ सख्यभाव रखना आठवीं भक्ति 'सख्य' नामसे प्रसिद्ध है और सर्वप्रकारेण जगन्नाथ श्रीजानकीजीवनके लिये श्रद्धा-भक्तिपूर्वक अपनेको अर्पण कर देना 'आत्मनिवेदन' नामकी नवीं भक्ति कही गयी है। यथा—

पादसेवार्चनं नित्यं वन्दनं दास्यमेव च।
सखित्वं श्रद्धया भक्त्या तस्मै चात्मनिवेदनम्॥

इस प्रकार उपर्युक्त नवधाभक्तिसे परात्पर प्रभु श्रीरामकी सेवापरायणता निश्चितरूपेण सम्पूर्ण पापोंको विनष्ट कर देती

है। श्रीराघवकी भक्ति करनेवाला भक्त परम दिव्य सांकेत-लोकमें जाकर शाश्वत सुखका अनुभव करता है—

एताः कुर्वन् सदा भक्तीर्नरः पापात् प्रमुच्यते।
गत्वान्ते च प्रभोर्लोके लभते शाश्वतं सुखम्॥

जगद्गुरु भगवान् श्रीरामानन्दाचार्यजीने 'श्रीवैष्णव-मताब्जभास्कर' नामक स्वरचित ग्रन्थमें भगवान् श्रीरामकी भक्ति-वैशिष्ट्यका निरूपण किया है—

श्रीसीतारामजीकी उदारताका बखान करते हुए आचार्य-श्रीका स्पष्टतः कथन है कि जगन्नियन्ता प्रभुके श्रीचरणोंकी प्रपत्ति—शरणागतिके अधिकारी शक्त-अशक्त सभी प्रकारके लोग हैं। प्रभु श्रीरामके उदार दरबारमें कुल, वर्ण, बल, काल और तथाकथित दिखाऊ पवित्रता आदिकी अपेक्षा नहीं की जाती। तात्पर्य यह कि कोई भी प्राणी प्रभु श्रीसीतारामजीकी प्रियता प्राप्त कर सकता है। वे आदिपिता समस्त जीवोंपर कृपा करते हैं। आवश्यकता है, मात्र श्रीचरणाश्रय-ग्रहण करनेकी। यथा—

सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः शक्ता अशक्ता पदयोर्जगत्प्रभोः।
नापेक्ष्यते तत्र कुलं बलं च नो चापि कालो नहि शुद्धतापि वा॥

श्रीरामानन्द-सम्प्रदायमें श्रीवैष्णव-धर्मका निरूपण एवं मूल तत्त्वोपदेश तथा अर्चावतारादिकी आराधना की जाती है। प्रत्येक वैष्णवको अहिंसा-धर्मका पालन करते हुए मांसादि-अभक्ष्य पदार्थोंसे दूर रहनेकी शिक्षा दी जाती है। सम्पूर्ण सत्कर्मोंको भगवदर्पण करते हुए नैवेद्यादि—कन्द, मूल, फल, अन्नादि पदार्थोंसे निर्मित चारों प्रकारके भोज्य-पदार्थोंको इष्टदेव भगवान् श्रीरामजीका भोग लगाकर तब स्वयं प्रसाद-स्वरूप उसका सेवन किया जाता है। इस प्रकार श्रीरामभक्तोंको भक्तिपरायण जीवन व्यतीत करते हुए सदैव श्रीरामनाम रटते रहनेका उपदेश दिया जाता है, क्योंकि अपार संसारके जन्म-मरणादि दुःखोंका निवारण एकमात्र परमसाधन श्रीरामनाम-संकीर्तन-जपसे ही सम्भव हो सकता है।

श्रीरामानन्दसम्प्रदायका मूल सिद्धान्त इस प्रकार है—

(१) श्रीसीतारामजी निर्हेतुकी कृपा करते हैं, (२) मोक्ष-सुखमें तारतम्य नहीं है, (३) कर्म एवं ज्ञान भक्तिके सहायक हो सकते हैं, परंतु कर्म-ज्ञान स्वतः मोक्षके साधन नहीं हैं। मोक्ष तो एकमात्र अनन्य-भक्तिसे ही हो सकता है। यथा—

तथा मोच्छ सुख सुनु खगराई। रहि न सकइ हरि भगति बिहाई॥

× ×

सो सुतंत्र अवलंब न आना।

× ×

भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी॥

(४) कर्म ज्ञानका साधन है और ज्ञानसे मात्र कैवल्यकी प्राप्ति होती है, परंतु कैवल्यसे पतन भी सम्भव है। यथा—

जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भक्ति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥

(रा० च० मा० ७। १३। छं० ३)

पुराणशिरोमणि श्रीमद्भागवतका भी उद्घोष है—

येऽन्येऽरविन्दाक्ष विमुक्तमानिनस्त्वय्यस्तभावादविशुद्धबुद्धयः।
आरुह्य कृच्छ्रेण परं पदं ततः पतन्त्यधोऽनादृतयुष्मदङ्घ्रयः॥

(श्रीमद्भा० १०। २। ३२)

(५) श्रीसीताजी विभु हैं, (६) श्रीसीताजी पुरुषकार हैं।

(७) श्रीरामजीका स्वभाव है कि अपने प्रति किये हुए अपराधके कारण भक्तमें दोष नहीं देखते—

'देखि दोष कबहुँ न उर आने।'

× × ×

निजगुन, अरिकृत अनहितौ, दास-दोष, सुरति चित रहत न, दिये दानकी।

(विनय-पत्रिका ४२)

(८) श्रीरामनाम समस्त पाप एवं तज्जन्य दुःखका नाशक है।

(९) श्रीरामजीके प्रति शरणागत प्राणी अपना एवं अपने आत्मीयोंके भरण-पोषणका भार श्रीरामजीकी कृपापर निर्भर रहते हुए निश्चिन्त रहता है। इसीको न्यास कहते हैं। इस प्रकार न्यासयुक्त कर्मोंसे मुक्त हो सम्यक् न्यासका नाम ही संन्यास है।

(१०) समर्थ-असमर्थ समस्त व्यक्ति प्रपत्तिके अधिकारी हैं।

(११) कर्मका त्याग ही त्याग कहा जाता है।

(१२) इहामुत्र सुख एवं सुख-साधनका त्याग ही वैराग्य है।

(१३) कर्म-योगादि प्रपत्तिसे सम्बन्धित नहीं है।

(१४) विरक्त श्रीवैष्णवके लिये वर्ण-धर्म दिखावा (ढोंग) मात्र है। यह विरक्तकी भक्ति एवं विरक्तिमें बाधक है,

परंतु गृहस्थके लिये पालनीय है।

(१५) शरणागतिके छः अङ्गोंमें किसी अङ्गकी आंशिक हानिसे शरणागतिकी हानि नहीं होती।

(१६) न्यास श्रीरामजीकी प्रसन्नताके लिये है।

(१७) नामके बलपर अथवा प्रपत्तिके बलपर अपराध नहीं करना चाहिये। शेष अन्य अपराधका प्रायश्चित्त भगवन्नाम-जप है।

(१८) श्रीरामाराधन सभी स्त्री-पुरुष, ऊँच, नीच, धनी-गरीब कर सकते हैं। श्रीरैदासजीकी ठाकुर-सेवा एवं सिल्ले-पिल्लेकी कथा भक्तमालादि ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है। स्वयं श्रीरामजीने श्रीरामानन्दाचार्यके रूपमें प्रकट होकर उपदेश दिया है—

'सर्वे प्रपत्तेरधिकारिणो मताः……।'

(वैष्णवमताब्जभास्कर)

(१९) ब्रह्म **'अणोरणीयान् महतो महीयान्'** (कठ० २। २९) अणु जीवके भीतर प्रविष्ट **'अणोरणीयान्'** है तथा सर्वत्र **'महतो महीयान्'** है।

(२०) कैवल्य विरजा नदीके इसी पार है। विरजाके इसी पार अनेक भगवल्लोकादि भी हैं। उन्हींमें द्वेष, कलह एवं शाप-वरदानादि सम्भव हैं। त्रिपाद-विभूति अप्राकृत लोकोंमें नहीं।

रामस्नेहि-सम्प्रदायकी रामभक्ति

(खेड़ापा पीठाधीश्वर श्री १००८ श्रीपुरुशोत्तमदासजी महाराज)

चौरासी लाख योनियोंके चक्करसे छुटकारा पानेके लिये प्राणिमात्रके परम सुहृद् परमात्माने असीम अनुकम्पा करके प्राणीको समस्त शरीरोंका सिरमौर यह मानव-तन प्रदान किया है। उन्होंने और भी विशेष कृपा करके मनुष्यके हृदयमें विवेक जगाकर आत्मोद्धारका सरलतम सत्पथ दिखानेके लिये अनेकानेक संत-महात्माओंको इस जगत्में प्रकट किया है। जो मनुष्य उन महापुरुषोंकी संनिधिमें आकर उनके गहन अनुभवको अपने जीवनमें उतार लेता है, उसका सहजहीमें कल्याण हो जाता है। इसी संत-परम्परामें श्रीरामस्नेही सम्प्रदायके भी अनेक संत-महापुरुषोंने 'राम' नामकी दिव्य भक्तिसे जीवोंको उनके आत्मकल्याणका सन्मार्ग दिखाया है। संतोंकी अनुभववाणीमें राम-भक्तिका बहुत विलक्षण प्रतिपादन किया गया है। उनमेंसे अपनी मतिके अनुसार कुछ भाव यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

रामस्नेही संतोंका मत है कि वे जिस 'राम'से स्नेह करते हैं उसे मानव तो क्या स्वयं वर्णमालाके वर्ण भी शिरोमणि मानकर छत्र एवं मुकुटमणिके रूपमें सदा शिरोधार्य किये रहते हैं। केवल वर्णमात्र ही इन्हें शिरोधार्य करते हों, इतनी बात नहीं, किसी वर्णको कभी शिरोधार्य नहीं करनेवाले स्वरोंमें 'ऊ' स्वर इस 'राम' नामको छत्र एवं मुकुटमणिके रूपमें शिरोधार्य कर लेता है। इसके फलस्वरूप वह रकार-मकारयुक्त स्वर 'ऊ' ही 'ॐ ॐकार' के रूपमें जगत्का आदि कारणभूत आदि वर्ण (ॐ) बन जाता है। 'राम' नामकी ऐसी दिव्य महत्ताके कारण ही रामस्नेही जन एकमात्र रामसे अनन्य स्नेह किया करते हैं और इसीसे वे रामस्नेही कहलाते हैं।

र र र र र छत्र उवै पर राजत, आदि वर्ण मध अन्त सिरै।
शोभत शुभ शिर ममो मुकुट मणि, इम ओऊं हुय भास तिरै॥
बावन वरण मध रेफ र र सरबग, चवदै सुर मिल काज करै।
अगम अगोचर गम कर सिद्धत, ररो ममो जन ध्यान धरै॥

'इक राम भगति बिन सरव आन' इस दयालु 'म' के वचनानुसार जो 'राम'-नामकी उपासना करता है उसीकी उपासना (भक्ति) सच्ची भक्ति है। जो इसे छोड़ कोई अन्य उपासना करता है वह सब आन (अन्य, अस्थिर तथा माया-विवश) उपासना कहलाती है। बीज अथवा मूलभूत 'राम'-नामके अलावा मायाके वशीभूत जो अन्य (आन) नाम हैं, वे सब निःसार हैं। जिसे मुक्तिरूपी उत्तम फल पाना है उसे एकमात्र 'राम'नामका आश्रय ले लेना चाहिये।

आन नाम माया डंक्या, सो कूकस परवान।
जनरामा कोठे गल्या, कण खेती कण धान॥
राम नाम निज मूल है, और सकल विस्तार।
जन हरिया फल मुक्ति को, लीजै सार संभार॥

उपर्युक्त कारणोंसे परमात्माके अनन्त नामोंमेंसे केवल

'राम'नामको ही सर्वोपरि मानकर रामस्नेही जन कभी भी अपनेसे दूर नहीं होनेवाले एकमात्र 'राम'नामको सम्प्रदाय, भक्ति, गुरुमन्त्र, ध्यान, सेवा, ज्ञान, सिद्धान्त आदिके रूपमें अपना सर्वस्व मानकर सदैव मन-वचन-कर्मसे रामकी इच्छाके अनुसार ही बर्ताव करते रहते हैं। इस कारण उनके हृदयमें सदैव अखण्ड आनन्द समाया रहता है।

सदा आनन्द रहत हिरदा में हरि आनन्द में झूलै ॥
राम सम्प्रदा श्रूप, राम सेवा अभनाशी।
गुरुमन्तर है राम, राम निज भक्ति प्रकाशी ॥
राम ज्ञान वैराग्न, राम निज ध्यान हमारै।
आशै वासै राम, राम सिद्धायन्त सारै ॥
कारण करता रामजी, राम इच्छा मन वच करम।
रामदास के राम जी, चिदानन्द पूरण वरम ॥

शास्त्रोंमें जिस नवधा भक्तिका वर्णन किया गया है, रामस्नेही महात्मा उनमेंसे तीसरी भक्ति 'स्मरण'-भक्तिके सहारे अपने परमाराध्य इष्ट परमात्माको पा लेनेकी प्रेरणा दिया करते हैं। उनके वचनानुसार यमपुरीसे बचनेके लिये इसके अतिरिक्त कोई दूसरा उपाय नहीं है।

राम सुमर रे प्राणिया भूले मत भाई।
सिंवरण विन छूटै नहीं, जमद्वारै जाई ॥
(श्रीरामदास०)

जिस 'राम'नामके सिंवरण (स्मरण-जप) से प्राणी यमपुरीसे बच जाता है वह सिंवरण किस प्रकार करना चाहिये ? इस विषयमें संत-महात्मा कहते हैं कि—

जंघन पर कर धार के वे, सम आसण चित लाय।
निरत धरै निज नासिका वे, शुन में सुरत समाय ॥
(श्रीजैमल०)

परथम सिंवरण जीभ से, चौड़े करो वजाय।
दोय अंछर रट रामदास, सांई साध सुणाय ॥
(श्रीरामदास०)

इस सुमिरणात्मक राम-भक्तिको संतोंकी भाषामें 'सुरत-शब्द-योग' कहा जाता है। संत-पद्धतिके सिंवरणमें गुरुकी आज्ञाके अनुसार सुरत (ध्यान) का शब्दके साथ संयोग करके जिह्वासे निरन्तर 'राम'नामका सुमिरण (जप) किया जाता है। मुख-सिंवरणको पार कर वही 'राम' शब्द निरन्तर अग्रसर होता हुआ क्रमशः कण्ठ, हृदय एवं नाभि-स्थानोंको पारकर मूल-द्वारके निकटसे पश्चिमकी ओर मुड़ जाता है। यहाँ वह शब्द सुषुम्णा-नाडीके माध्यमसे कठिनतम मेरुदण्डके मार्गमें प्रवेश कर इक्कीस मणियोंको पार करता हुआ त्रिकुटी-स्थानमें पहुँच जाता है। फिर आगे बढ़ता हुआ वह शब्द ब्रह्मरन्ध्रका भेदन कर शून्यमण्डलमें प्रवेश कर जाता है। इसके साथ ही यह जीव-भावको प्राप्त हुआ ब्रह्मका अंश पुनः ब्रह्ममें विलीन हो जाता है। इस तरह इस सुमिरणात्मक रामभक्तिके माध्यमसे रामरसायनका रसपान करते हुए जीवात्मा आवागमनके चक्करसे छूटकर सर्वथा निर्भय हो जाता है।

मेरे राम रसायन बूंटी, पीवत संग गया सब तूटी ॥
मुख तें भरम गया सब भागी, कण्ठ में विषय-वासना त्यागी।
हिरदा मांहि किया परकासा, मनवा मुवा हुवा निज दासा ॥
नाभ कँवल में आण समाए, पांच सरपणी पकड़ मराए।
उलटा चढ़या पिछम की वाटी, कलह कलपना ले भुँय दाटी ॥
सूरा संत मेरु में मंडिया, ढाया काल करम सब छंडिया।
चढ़ आकासां त्रिकुटी न्हाया, सांसा सोंग रु रोग गमाया ॥
तिरगुण ताप मोह दुःख गलिया, काम क्रोध सहजां पर जलिया।
नव तत पांच पचीसूं मूवा, रामदास पी निर्भय हूवा ॥

संत-महात्मा जिस 'राम'-नामके प्रतापसे इस तरह जीवन्मुक्त हो जाते हैं उनके वे राम महाराज निर्गुण ब्रह्म हैं। तीन कालसे परे अर्थात् निर्गुण-निराकार होते हुए भी संतोंके राम महाराज, जब कोई भक्त जगत्से सर्वथा असहाय होकर करुणाभावसे उन्हें पुकारता है तब वे निराकारसे साकार बनकर प्रकट हो जाया करते हैं—

निर्बल दुःखित अराधियो, प्रगट्यो तहां परमेश।
वृद्धा तरुणा भेद नहिं, कहा ध्रू बालक वेश ॥
निर्गुण तें सरगुण भए, भगत परायण है जथा।
तीन कालके हो परे, घालबाल अद्भुत कथा ॥

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि आत्मतत्त्वकी प्राप्तिके लिये निर्गुण (निराकार) ब्रह्मकी उपासना श्रेष्ठ है अथवा सगुण (साकार) ब्रह्मकी ? इस विषयमें संतोंने अपना मत स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'रामस्नेहियोंकी रामभक्तिमें निर्गुणके समान 'र' कार पिता है तो सगुणके समान 'म' कार माता है। अथवा निर्गुण ब्रह्म पिता है तो सगुण ब्रह्म पुत्र है।

कहो इनमें किसे छोटा-बड़ा अथवा भला-बुरा कहा जाय ? अतः रामभक्तिमें न तो निर्गुण श्रेष्ठ है और न सगुण। श्रेष्ठ है एक परमात्माका 'राम' नाम। जो इस (रामनाम) की सेवा (सिंवरणात्मक भक्ति) करता है, वह रामनाम उसे परमपिता परमात्माकी प्राप्ति करा देता है।

ररो पिता माता ममो, है दोनूं का जीव।
रामदास कर बन्दगी, सहज मिलावै सीव॥
किसको वन्दिये निन्दिये, एक पिता अरु पूत।
निरगुण सरगुण यूं भया, (ज्यूं) ताणे पेटे सूत॥

इसलिये आत्मकल्याणकामी मनुष्यको चाहिये कि वह किसीके भले-बुरेका वाद-प्रतिवाद छोड़कर परमात्माके 'राम-नाम' से अपना अनन्य एवं अटूट सम्बन्ध जोड़ ले। इससे जैसे भी परमात्मा हैं हमें मिल जायँगे।

यद्यपि रामस्नेही अनन्य-रूपसे एकमात्र 'राम'नामके ही उपासक निष्ठावान् हुआ करते हैं तथापि उनकी दृष्टि बहुत व्यापक है। अपने लक्ष्य (राम) की ओर पूर्ण ध्यान रखते हुए भी वे भगवान्‌के किसी अन्य नामके प्रति कोई विषमताका भाव नहीं रखते। इसी कारण वे अपनी अनुभव-वाणीमें अपने इष्ट रामके लिये भगवान्‌के अन्यान्य नामोंका भी प्रयोग कर लिया करते हैं।

'जन हरिराम रहेगा अम्मर एको नाम अला का'
'पहली दाता हरि भया, जिन ते पाई जिन्द।
पीछे दाता गुरु भया, तिन दाखे गोविन्द॥'
(श्रीहरिराम०)

इस तरह अपने जीवनकालमें तो ये संत-महात्मा रामभक्ति (भजन, सिंवरण) करते हुए एवं रामभक्तिका उपदेश देते हुए अनन्त प्राणियोंका उद्धार करते ही हैं, किंतु ब्रह्मलीन होकर परमात्माकी गोदीमें बैठनेके समय राम-महाराजद्वारा यथेच्छ वरदान माँगनेको कहनेपर वे यही वर माँगते हैं कि—'भगवन्! कृपाकर यह वर दीजिये कि 'जो गुरुमुखी होकर एकमात्र 'राम'नामकी सुमिरणात्मक रामभक्ति करे तथा जो सदैव आपके प्यारे संतों एवं भक्तोंकी सेवा करे—आप उनकी सदा सहायता करते रहें।'

बैठे सिंघासन प्रभू, गोदी में ले दास।
इच्छा सोई लीजिये, स्वयं प्रकाश प्रकाश॥
भक्ती सेवा साधु की, प्रगट्यो तत छिन जाय।
सतगुरु सुमिरण एकमुख, ताके सदा सहाय॥

रामस्नेहियोंकी इन बातोंका चिन्तन एवं मनन करनेसे यही निष्कर्ष निकलता है कि मानवको सदैव एकमात्र राममहाराज-को इष्ट रखते हुए निरन्तर उनके प्यारे नाम अनादिवर्ण 'रामनाम'का सुमिरण करते रहना चाहिये। इस सुमिरणात्मक भक्तिसे उसके सभी कर्मबन्धन कट जाते हैं और वह सहजहीमें जीवन्मुक्त हो जाता है।

स्वामिनारायण-सम्प्रदायमें भगवान् श्रीराम

(श्रीहरिजीवनजी शास्त्री)

स्वामिनारायण-सम्प्रदायके आराध्यदेव भगवान् स्वामि-नारायण और भगवान् श्रीरामका जन्म और जन्मभूमि दोनोंमें अतिशय नैकट्य है। श्रीराम और श्रीस्वामिनारायण—इन दोनोंका जन्म चैत्र सुदी नवमीको—एक ही तिथिमें हुआ था। श्रीराम अयोध्यामें अवतीर्ण हुए तो श्रीस्वामिनारायण भी अयोध्याके पास ही छपैया नामक गाँवमें प्रादुर्भूत हुए थे।

स्वामिनारायण भगवान्‌ने बचपनमें कई दिनोंतक अयोध्यामें निवास किया था। इस सम्प्रदायके महान् ग्रन्थ 'सत्संगिजीवन' में कहा गया है कि आठ सालकी अवस्थामें भगवान् स्वामिनारायण प्रतिदिन सरयूमें स्नान करके घर लौटते समय मार्गमें मन्दिरोंमें बैठकर रामकथा सुना करते थे। रामजन्मभूमि, लक्ष्मणतीर्थ, कनकभवन आदि मन्दिरोंमें जाकर राम, लक्ष्मण और जानकीके दर्शन करके इस प्रकार स्तुति करते थे—

योऽहल्यां निजकर्मणैव महतीं प्राप्तां गतिं दुर्विधां
दीनां गौतमयोषितं निपतितां निःसाधनां कानने।
सद्योऽमोचयदात्मपादकमलस्पर्शेन तं पावनं
रामं जीवहितं भजेऽतिकरुणं निर्हेतुकोपक्रियम्॥

सम्प्रदायके भक्तिशास्त्रके ग्रन्थ सत्संगिभूषणमें लिखा है कि श्रीस्वामिनारायण आठ सालकी अवस्थामें प्रातःकाल

सरयूस्नानके पश्चात् राममन्दिरमें दर्शन करके हनुमानगढ़ीमें रामकथा सुनते थे।

भक्तिचिन्तामणिमें कहा गया है—रामकोट, रामजन्मस्थान, ब्रह्मकुण्ड, जानकीघाट आदि तीर्थोंमें दर्शनके पश्चात् इनकी स्तुति करते थे, उसकी एक झलक—

कर्यो गुह राजा भवपार रे, कर्यो अद्यवंत जयंत उद्धार रे।
करी भीलडी तमे सनाथ रे, धन्य धन्य हे जानकीनाथ रे॥

सम्प्रदायका सर्वोपरि ग्रन्थ 'वचनामृत'-२३१ में हनुमान्‌जी और लक्ष्मणजीको यति कहकर श्रीस्वामिनारायणने उनकी बहुत सराहना की है। सीताकी खोजके लिये गये हनुमान्‌जी लंकामें बहुत-सी स्त्रियोंको देखकर सोचने लगे कि इन सब स्त्रियोंको देखनेसे मुझे बन्धन तो नहीं होगा? मेरी वृत्ति और इन्द्रियोंमें रघुनाथजीकी कृपासे किंचित् भी क्षोभ नहीं पैदा हुआ। इसलिये हनुमान्‌जीकी तरह विकारका हेतु होते हुए भी जिसका अन्तःकरण निर्विकार रहता है वह यति कहलाता है।

सीताकी खोजके दौरान सुग्रीवने सीताके गहने बताये, तब केवल माँ सीताके चरणके पायलको पहचानते हुए लक्ष्मणने कहा—'मैंने चरणारविन्दके अतिरिक्त सीताका कोई भी अङ्ग नहीं देखा, चरण-स्पर्शके समय पायल देखे थे। इस प्रकार लक्ष्मण चौदह वर्षतक सेवामें रहकर भी दृष्टिसे जानकीजीके चरणारविन्दके अतिरिक्त उनका दूसरा कुछ भी रूप देखे नहीं थे। जो ऐसा है वही यति है। (वच० २३१)

भक्तिमार्गमें आत्मसुखकी कल्पनाका भी कितना अभाव है। इस बातको समझाते हुए भगवान् स्वामिनारायणका कहना है—'जब जानकीजीको श्रीरामने वनवास दिया, तब विलाप करते हुए जानकीजीने लक्ष्मणसे कहा—मैं अपने दुःखके लिये नहीं रोती, मैं रामके दुःखके लिये रोती हूँ। क्योंकि रामचन्द्रजी अति कृपालु हैं, उन्होंने लोकापवादके कारण मुझे वनमें छोड़ दिया, परंतु अब ऐसा सोचते होंगे कि सीताको मैंने बिना अपराध वनमें छोड़ दिया है। इसलिये रामचन्द्रजीसे कहना कि सीताको कुछ भी दुःख नहीं है और वह महर्षि वाल्मीकिके आश्रममें जाकर सुखपूर्वक आपकी भक्ति करेगी। आप सीताके दुःखसे दुखी मत होवें।' (वचनामृत २४५)

वचनामृत (१२६) में कहा है कि 'परमात्मा मत्स्य, कच्छप, वराहादि-रूपको और राम-कृष्णादिके रूपको किसी कार्यवशात् धारण करते हैं; परंतु अपना जो मूलस्वरूप है, उसका त्याग करके अवतार धारण नहीं करते, वे परमात्मा अनन्त ऐश्वर्य और अनन्त शक्तिसहित ही अवतार धारण करते हैं।'

वचनामृत (१६१) में कहा गया है कि पुरुषोंमें रामचन्द्र-जैसा कोई पुरुष नहीं है और स्त्रियोंमें सीता-जैसी कोई स्त्री नहीं है। सम्प्रदायके कीर्तन-साहित्यमें भी श्रीरामका भक्तिमय गुम्फन बड़ा अच्छा हुआ है। ब्रह्मानन्दस्वामीके शब्दोंमें—

राम अमल रंग राते साधु राम अमल रंग राते,
अनंत कल्प बीते एहि पीते, आज हूँ नाहीं अघाते॥ साधु०॥

इस जगत्‌में सबसे बड़ा भला कौन है? इसे बताते हुए ब्रह्मानन्दस्वामी कहते हैं—

राम भजे सो सबमें भला है।
नहि कुल ऊँच नीच को कारण, ज्युं जल उरवर गंग मिल्या है॥ राम०॥
सोई कुल ऊँच सरस सबही से, प्रभु चरनन से चित्त अचला है॥ राम०॥

बालस्वरूप श्रीरामका इस कीर्तनमें कितना सुन्दर वर्णन हुआ है। ब्रह्मानन्दजीके शब्दोंमें—

रघुकुल तिलक ज्यूँ राम मनोहर, खेलत देखन सुर सकल आवे। टे०।
आवे शिव लीने कर डमरु, शेष गले शशी भाल सोहावे॥ रघु०॥

× × ×

धन धन अवध नगर धन पुरजन, धन जननी नित्य गोद खेलावे।
नर नाटक लीला महाप्रभु की, ब्रह्मानंद सदा मन भावे॥ रघु०॥

घट-घटमें रामकी प्रतीति कर मुक्तानन्दजीके एक गुजराती कीर्तनकी झाँकी—

अनुभवी ने अंतरे, रहे राम वासे रे,
ते बोले ते सां भळे, दृष्टि प्रकाशे रे। अनु०॥
ज्याँ जुऐ त्यां रामजी, बीजुं कांई न भासे रे,
भाल्य देखी भुले नहि·······

मैं कौन हूँ? इस बातका तत्त्वज्ञानकी दृष्टिसे उत्तर देते हुए सम्प्रदायके दूसरे एक संत कवि निष्कुलानन्दजी कहते हैं—

मैं हूँ आदि अनादि आ तो सर्वे उपाधि।
पानी में से पुरुष बनाया, मलमूत्र की क्यारी
मिल्या राम ने सर्या काम, अब न रही कोउ सें यारी। मैं हूँ॥

एकनिष्ठ परमात्मभक्तिके प्रेमी स्वामिनारायण-सम्प्रदायकी

दैनिक सायं प्रार्थनाका आरम्भ भी 'राम' नामसे ही होता है—

राम कृष्ण गोविंद जय जय गोविंद
हरे राम गोविंद जय जय गोविंद ॥

शिक्षापत्रीमें (सम्प्रदायका मुख्य ग्रन्थ) स्वामिनारायण भगवान्‌ने भक्तोंके कष्टनिवारणार्थ नारायणवर्म तथा हनुमान्‌जीके मन्त्रोंको जपनेकी आज्ञा दी है और बताया कि इन मन्त्रोंके श्रद्धापूर्वक जप करनेसे सभी प्रकारके कष्ट दूर होते हैं, आनन्द प्राप्त होता है और सबसे बड़ी बात रामजीकी प्रीति प्राप्त होती है। हनुमत्स्तोत्रका एक श्लोक इस प्रकार है—

नीतिप्रवीण निगमागमशास्त्रबुद्धे
राजाधिराजरघुनायकमन्त्रिवर्य ।
सिन्दूरचर्चितकलेवरनैष्ठिकेन्द्र
श्रीरामदूत हनुमन् हर संकटं मे ॥

भगवान् स्वामिनारायणकी कुल-परम्परामें हनुमान्‌जी कुलदेव रहे हैं। जब-जब विपत्तियाँ आया करती थीं, तब-तब रामदूत हनुमान्‌जीने स्वप्नमें या ब्राह्मण-वेषद्वारा श्रीस्वामिनारायणके माता-पिताको मार्गदर्शन और ढाढस बँधाया था। जिसका सम्प्रदायके अनेक ग्रन्थोंमें उल्लेख मिलता है।

जैसे उद्धव और कृष्णमें कोई अन्तर नहीं है वैसे ही हनुमान्‌जी और राममें कोई अन्तर नहीं है। इसीलिये हनुमान्‌जीके कुलदेव होनेसे और एकनिष्ठ रामभक्त होनेसे हनुमान्‌जीकी महत्ता श्रीरामकी ही महत्ता है।

सम्प्रदायने हनुमान्‌जीको अपरम्पार गरिमा प्रदान की है। वह केवल रामभक्त हनुमान्‌की ही नहीं, अपितु श्रीरामकी गरिमा है। सेवककी पूजा रामकी पूजा है। भक्तका सम्मान रामका ही सम्मान है।

घट-घटमें विराजित, आदिपुरुष, विश्ववन्द्य, अन्तर्यामी भगवान् रामकी गरिमा-महिमाको किसने नहीं गाया है? इस न्यायसे भला स्वामिनारायण-सम्प्रदाय रामको कैसे भूल सकेगा?

बिश्नोई-सम्प्रदायमें रामभक्ति

(श्रीमांगीलालजी बिश्नोई)

विक्रम-संवत् १५०८में भाद्रपद मासके कृष्णपक्षकी अष्टमीकी अर्धरात्रिको पीपासर (जोधपुर) में योगेश्वर श्रीजाम्भोजीका आविर्भाव हुआ। श्रीजाम्भोजी महाराज भगवान्‌के अनन्य भक्त और परम गोभक्त थे। जब ये आठ वर्षके हुए तब इन्हें गाय चरानेका शौक हो गया और सत्ताईस वर्षकी अवस्थातक जंगलमें गायें चराते रहे और साधु-संतोंका संग करते रहे। तदनन्तर ये भगवद्भक्तिका प्रचार करनेके लिये देशाटन करने लगे। इनके विचारों और शुद्ध भगवद्भावोंसे लोग इनकी ओर आकृष्ट होने लगे। संवत् १५४२ में इन्होंने वैदिक बिश्नोई-सम्प्रदाय (पंथ) की स्थापना की। उनकी शिक्षाएँ 'शब्दवाणी' कहलाती हैं। शब्दवाणीमें भगवान् विष्णुकी सात्त्विक भक्ति और नाम-जपपर विशेष बल दिया गया है। शब्दवाणीमें वर्णित उनका श्रीरामभक्ति-विषयक स्तुति-गान अद्वितीय कहा जा सकता है। शब्द-संख्या ६० से ६७ तक उन्होंने जो राम-स्तुति-गान किया है, वह परम पुनीत, हृदयग्राही, मर्मस्पर्शी तथा भावोद्रेकका अत्युज्ज्वल उदाहरण है। कुछ प्रसंग यहाँ उद्धृत हैं—

श्रीरामका भ्रातृ-प्रेम—लक्ष्मणके मूर्च्छित हो जानेपर श्रीराम अत्यन्त दुःखित होकर कहते हैं—

तो बिन ऊभा यह परधानों। तो बिन सूना त्रिभुवन थानों।
कहा हुवो जे लंका लइयों। कहा हुवो जे रावण हइयों।
कहा हुवो जे सीता अइयों। कहा करूँ गुणवन्ता भइयों।
खल के साटै हीरा गइयों ॥ (शब्द ६०)

'हे लक्ष्मण! तुम्हारे बिना सुग्रीव, हनुमान्, अंगद आदि प्रधान सेनापति निराश खड़े हैं। तुम्हारे बिना तीनों लोक सूने हैं। तुम्हारे बिना हम लंका जीतें तो क्या? रावणको भी जीत लें तो क्या? तुम्हारे बिना सीताकी प्राप्ति भी हो जाय, तब भी कोई प्रसन्नताकी बात नहीं है। अतः हे मेरे गुणवान् भाई! बताओ मैं क्यों करूँ? जिस प्रकार हीरेके बदले खल (खली) लेनेसे प्रसन्नता नहीं होती, उसी प्रकार तुम्हारे बिना किसी भी पदार्थकी प्राप्तिसे मुझे प्रसन्नता नहीं हो सकती।'

हनुमान्‌जीकी रामभक्तिका प्रसंग—

राघो सीता हनवत पाखो कौन बंधावत धीरू ॥

(शब्द ६३)

हनुमान्‌जीने सीताजीको श्रीराम-नामाङ्कित मुद्रिका देकर तथा लक्ष्मणके लिये संजीवनी बूटी लाकर जो धीरज बँधाया, वैसा कोई नहीं कर सकता था। पुनश्च—

तउवा काज जो हनुमत सारा और भी सारत काजूँ ॥

(शब्द ६५)

हनवत सो कोई पायक न देख्यो ॥ (शब्द ८५)

अर्थात् हनुमान्‌जीके समान कोई सच्चा तथा अनन्य सेवक देखनेमें नहीं आया।

सीताका सतीत्व-प्रसंग—

तउवा लाज जो सीता लाजी और भी लाजंत लाजूँ ॥

(शब्द ६५)

जितना सतीत्व (लज्जा) सीताने रखा, उतना कोई स्त्री नहीं रख सकती। अर्थात् सीताजी साक्षात् शील एवं धर्मकी मूर्ति थीं।

सीता सरीखी तिरिया न देखी। गरब न करियो कोई ॥

(शब्द ८३)

सीताजीके समान कष्टोंको सहन करती हुई भी पतिव्रता-धर्मको शीलपूर्वक पूरा करनेवाली कोई स्त्री देखनेमें नहीं आयी।

लक्ष्मणजीकी क्षमता-विषयक प्रसंग—

तउवा पाज जो सीता कारण लक्ष्मण बाँधी और भी बाँधत पाजों ॥

(शब्द ६५)

जिस प्रकार श्रीलक्ष्मणजीने सीताजीकी रक्षाके लिये जलकी रेखा सीताजीके चारों ओर खींची थी, उस प्रकारकी शक्तिशाली रेखा और कोई नहीं खींच सकता था। रावणको वह जलती अग्निके समान लगी थी।

रामकी शक्तिमत्ता—

दश सिरका दश मस्तक छेदा। ताणु बाणू लेव्लूं कुव्लूं।
सोखा बाबू एक बखाणूँ। जा का बहु पर वाणूँ ॥

(शब्द ६७)

नर-वानरको छोड़ अन्यसे न मरनेका वरदान-प्राप्त रावणके दस मस्तकोंको मैंने (रामरूपमें) मनुष्यावतार होकर दस बाणोंसे काट डाला था, तथापि उसकी नाभिमें अमृत होनेसे उसकी मृत्यु नहीं हुई थी। तो मैंने एक बाणसे उसके नाभिमें स्थित अमृतको सुखा दिया था, पुनः मस्तकोंका छेदन किया, तब रावणकी मृत्यु हुई।

दशरथजीका महिमा-गान—

दशरथ सो कोई पिता न देख्यो ॥ (शब्द ८५)

राजा दशरथके समान धर्मात्मा और पुत्रोंसे सच्चा प्रेम करनेवाला पिता दूसरा नहीं देखा गया।

रामनामकी महिमा—

राम-नामकी महिमाका वर्णन करते हुए श्रीराम स्वयं कहते हैं—हे लक्ष्मण ! जो व्यक्ति मेरे नाम (राम) का जप एवं स्मरण करता है, उसे मैं अपने धाम वैकुण्ठमें वास देता हूँ—

जो कोई जाणे हमारा नाऊँ। तो लक्ष्मण ले बैकुण्ठे जाऊँ ॥

(शब्द ६०)

है नीको मेरो देवता कोसलपति राम।
सुभग सरोरुह लोचन, सुठि सुंदर स्याम ॥
सिय-समेत सोहत सदा छबि अमित अनंग।
भुज बिसाल सर धनु धरे, कटि चारु निषंग ॥
बलि-पूजा चाहत नहीं, चाहत एक प्रीति।
सुमिरत ही मानै भलो, पावन सब रीति ॥
देहि सकल सुख, दुख दहै, आरत-जन-बंधु।
गुन गहि, अघ-औगुन हरै, अस करुनासिंधु ॥
देस-काल-पूरन सदा बद बेद पुरान।
सबको प्रभु, सबमें बसै, सबकी गति जान ॥
को करि कोटिक कामना, पूजै बहु देव।
तुलसिदास तेहि सेइये, संकर जेहि सेव ॥

(विनय-पत्रिका १०७)

सिख-सम्प्रदायके सभी पूज्य गुरु भगवान् श्रीरामके अनन्य उपासक थे

[सिख संत महाराज श्रीधर्मसिंहजीके महत्त्वपूर्ण सदुपदेश]

भारतके सुप्रसिद्ध सिख संत पूज्य महाराज श्रीधर्मसिंहजी एक बड़े ही उच्चकोटिके संत हुए हैं और बड़े ही विद्वान् महापुरुष माने गये हैं। हमने उनके श्रीचरणोंमें बैठकर जो सदुपदेश लिखे थे, वे यहाँपर दिये जा रहे हैं। आशा है, पाठक इन्हें बड़े ही ध्यानसे पढ़नेकी कृपा करेंगे।

सिख गुरुओंका जीवनाधार श्रीरामनाम

प्रश्न—महाराज! हमें क्या करना चाहिये?

उत्तर—मनुष्य-जीवनका उद्देश्य एकमात्र ईश्वर-प्राप्ति करना है, सो तुम्हें भी ईश्वर-प्राप्तिका साधन करना चाहिये।

प्रश्न—ईश्वर-प्राप्तिका साधन क्या है?

उत्तर—ईश्वर-प्राप्तिका साधन है श्रीरामनाम जपना, श्रीरामभक्ति करना।

प्रश्न—क्या ईश्वर और राममें कुछ अन्तर है?

उत्तर—उसे ही ईश्वर कहते हैं और उसे ही राम कहते हैं और उसे ही श्रीकृष्ण कहते हैं इनमें कोई अन्तर नहीं है।

प्रश्न—सिख-मतमें और गुरुग्रन्थसाहबमें कल्याणका साधन क्या बताया गया है?

उत्तर—हमारे सिख-धर्ममें और श्रीगुरुग्रन्थसाहबमें सनातनधर्मकी सभी बातोंको मान्यता दी गयी है। वेद-शास्त्र-पुराणोंकी बात ही श्रीगुरुग्रन्थसाहबमें भरी पड़ी है और श्रीगुरुग्रन्थसाहब श्रीराम, कृष्ण, हरि, गोविन्द, नारायण आदि श्रीभगवन्नामोंसे भरा पड़ा है।

प्रश्न—आजकलके बहुतसे सिख यह कहते हैं कि हम हिन्दू नहीं हैं और हमारा हिन्दुओंसे कोई सम्बन्ध नहीं है और हम दशरथनन्दन श्रीरामको नहीं मानते हम तो निराकार रामको मानते हैं और श्रीगुरुग्रन्थसाहबमें निराकार रामकी उपासना बतायी गयी है, इस सम्बन्धमें आपका क्या मत है?

उत्तर—जो सिख होकर ऐसा कहते हैं कि हम हिन्दू नहीं हैं और हम श्रीदशरथनन्दन रामको नहीं मानते और हमारा राम निराकार राम है तो वे महामूर्ख हैं, कोरे अज्ञानी हैं। उन्हें न तो सिखधर्मका ज्ञान है और न उन्हें श्रीगुरुग्रन्थसाहबका ज्ञान है। हमारे पूज्य प्रातःस्मरणीय श्रीगुरुगोविन्दसिंहजी महाराजने श्रीभगवती नैनादेवीको प्रसन्नकर प्रकट किया तो उन्होंने उनसे यही वरदान माँगा—

यही देहू आज्ञा तुरक को खपाऊँ।
गोघात का दुख जगत् से मिटाऊँ॥
सकल जगत महि खालसा पंथ गाजे।
जगै धर्म हिन्दू सकल भंडभाजे॥

यदि वे हिन्दूधर्मको नहीं मानते होते तो श्रीनैनादेवीसे गोरक्षा करनेकी और हिन्दूधर्मकी रक्षा करनेकी याचना क्यों करते?

प्रश्न—तो क्या सिख गुरु साकार-उपासक थे?

उत्तर—अवश्य ही। श्रीगुरुग्रन्थसाहबमें डंकेकी चोट राम-कृष्णकी स्तुति भरी पड़ी है। लो सुनो, श्रीगुरुग्रन्थसाहबमें क्या लिखा है—

धन धन मेघा रोमावली। जहँ कृष्ण ओढ़े कामली।
धन धन वृन्दावना। जहँ खेले श्रीनारायणा॥

यह साकार भगवान् श्रीकृष्णका गुणगान नहीं है तो क्या है?

एक कृष्णं सर्वदेवा देव देवात आत्मः
आत्मं श्रीवासुदेवस्य जे को जानत भेव।
नानक ताका दास है सोई निरंजन देव॥
आये गोपी, आये कान्हा, आये गऊ चरावे वाना।
आप उपावे आप खपावे। तुष लेप नहीं हक तिहा रंगा॥

और सुनिये—

हरि हरि करत पूतना तरी। बाल घातनि कपटहिं मरी॥
केसी कंस मथन जिन कीया। जीव दान काली को दीया॥
प्रणवे नामा ऐसो हरी। जास जपत भय अपदा टरी॥

(ग्रन्थसाहब)

अब सुनिये श्रीगुरु नानकदेवजी महाराजकी श्रीराम-भक्तिके प्रमाण। श्रीगुरु नानकदेवजी कहते हैं—

सूरजवंशी रघु भया रघुकुल वंशी राम।
रामचन्द्र के दोए सुत, लऊ कुश ताहि नाम॥
संग सखा सब तजि गये कोऊ न निबहो साथ।
कहि नानक इस विपति में टेक एक रघुनाथ॥

इसमें स्पष्ट-रूपसे श्रीगुरुनानकदेव श्रीरघुनाथजीका

भजन करना और श्रीदशरथनन्दन श्रीरामकी उपासना करना बतला रहे हैं, इससे बढ़कर और प्रमाण क्या चाहिये? रघुनाथ क्या निराकारका नाम हो सकता है? और सुनो श्रीरामनामकी अद्भुत विलक्षण महिमाकी बात—

सबसे ऊँच राम प्रकाश। निस बासर जप नानक दास॥

राम नाम महामन्त्र

न ओ मरे न ढ़ागे जाहिं। जिनके राम बसे मन माहिं॥

श्रीगुरुनानकदेव तो बाल्यावस्थासे ही परम श्रीरामभक्त थे और श्रीरामभक्तिमें हर समय सराबोर रहा करते थे तथा आपको बाल्यावस्थासे ही श्रीरामंभक्तिका नशा सवार हो गया था और आप श्रीरामभक्तिमें चूर रहा करते थे। जब घरवालोंने देखा कि यह दिन-रात श्रीराम-भजनमें ही संलग्न रहता है और घरका कोई काम नहीं करता, इसलिये आपको खेतपर चिड़िया उड़ानेका काम सौंपा गया कि तुम चिड़िया उड़ाकर खेतकी रक्षा किया करो। आप खेतपर चले तो गये पर सब जीवमात्रमें अपने परम इष्टदेव भगवान् श्रीरामको देखनेवाले संत श्रीगुरुनानकदेवजी महाराज भला उन चिड़ियोंमें अपने परम इष्टदेव श्रीरामजीको कैसे न देखते? आप चिड़ियोंमें भी अपने श्रीरघुनाथजीको देखकर कह उठे—

रामजीकी चिड़िया, रामजी का खेत।
खाओ चिड़िया भर भर पेट॥

अब तो घरवालोंको बहुत बुरा लगा। आपको खेतसे हटाकर एक बार नाज तोलनेका काम दे दिया गया। आपसे कोई नाज मोल लेनेके लिये आया। जिस समय तोला जाता है तो यह भारतीय प्राचीन परम्परा है कि उस समय एकको एक न कहकर तोलनेवाले एककी जगह राम ही राम कहते हैं और उसके बाद दूजा, तीजा कहना प्रारम्भ करते हैं। जिस समय आपने नाज तोलनेके लिये तराजू अपने हाथमें ली और तराजूके एक पलड़ेमें नाज और दूसरे पलड़ेमें वाट रखा और इधर लेनेवालेने अपना कपड़ा फैलाया और आपने पहले पलड़ेको ज्यों ही रामा ही रामा कहना प्रारम्भ किया तो फिर क्या था आप श्रीरामप्रेमके नशेमें सराबोर हो गये और आपको अपने शरीरकी सुध-बुध जाती रही। अब न तो आपको तराजू-वाटका ध्यान रहा और न नाजका और न सामने बैठे नाज लेनेवाले ग्राहकका। बस मुखसे राम ही रामा हो रहा है और नेत्र मुँद गये हैं, हृदय गद्गद हो रहा है, अब भला श्रीरामनामामृतको छोड़कर इस असार संसारके दूजे-तीजेके चक्करमें कौन फँसे। भला श्रीरामनाममें जो अद्भुत विलक्षण मजा है, श्रीरामनाममें जो अद्भुत स्वाद है और श्रीरामनाममें जो अद्भुत मिठास है उसे भला ऐसा कौन है कि जिसे यह स्वाद लग जाय और फिर वह उसे छोड़ सके? आपने संसारको दुःखोंकी खान माना और श्रीरामनामामृतका पान करना ही सब सुखोंका केन्द्र माना—

नानक दुखिया सब संसारा।
सुखिया वही जो नाम अधारा॥

आप तंबाकू, सुल्फा, गाँजा आदि सब नशोंके घोर विरोधी थे। बस अपने श्रीरामनामके नशेको सर्वोपरि महत्त्व देते थे और श्रीरामप्रेमके नशेमें ही हर समय झूमते रहते थे।

श्रीरामभक्तिका क्या चमत्कार दिखाया?

एक बार आप मुसलमानोंके देशमें जा निकले और श्रीरामभक्तिका प्रचार करते हुए मक्का-मदीना जा पहुँचे। रात्रि होनेपर एक मस्जिदकी ओर पैर करके सो गये। प्रातःकाल होनेपर जब उस मस्जिदका मुल्ला आया तो उसने आपको जो मस्जिदकी तरफ पैर करके सोते हुए देखा तो वह बड़ा नाराज हुआ और आगबबूला हो गया। आपसे पूछा कि बताओ तुम कौन हो? उत्तरमें श्रीगुरुनानकदेवने कहा—

हिन्दू कहूँ तो मारिये मुसलमान हूँ नाहीं।
पंचतत्त्व का पूतला नानक मेरा नांव॥

आपने मनमें विचार किया कि मैं वास्तवमें हिन्दू हूँ, यदि इसके सामने सच्ची बात कह दी कि मैं हिन्दू हूँ तो यह मुझे मारेगा और मैं मुसलमान हूँ नहीं, 'नहीं' यह बात झूठ कैसे कह दूँ? इसलिये आपने पाँच तत्त्वका पुतला बता दिया। मुल्लाने फिर प्रश्न किया कि तू खुदाकी तरफ पैर करके क्यों सोया है? इसके उत्तरमें श्रीगुरुनानकदेवने कहा कि खुदा तो सब जगह है, यदि खुदा सब जगह नहीं है तो तू मुझे उधरको कर दे जिधर खुदा न हो? मुल्लाने जब आपका पैर पकड़कर इधरसे उधरकी ओर घुमाया तो सबने क्या देखा कि श्रीगुरुनानकदेवके पैरके घूमनेके साथ-साथ वह मस्जिद भी उधरको ही घूम रही है, जिधरको पैर घूम रहे हैं। जड़ मस्जिद भी श्रीरामभक्त संतके इशारेपर इधरसे उधर घूमते देखकर अब

तो मुल्ला-मौलवियोंके होश गुम हो गये और वह आपके श्रीचरणोंमें लोट-पोट हो गये, नतमस्तक हो गये और करबद्ध क्षमा माँगने लगे।

काबुल पहुँचनेपर बादशाहने उनका स्वागत किया और सोनेके कटोरेमें आपके लिये बाबर बादशाहने भाँग पीनेको दी और आपसे करबद्ध प्रार्थना की कि साईंजी महाराज! इसे पीजिये। भला श्रीगुरुनानकदेवजी इस नशीली चीजको कैसे पी सकते थे? आप तो हर समय श्रीरामप्रेमके नशेमें झूमनेवाले थे। आपने उससे कहा—

भाँग तंबाकू छोतरा उतर जाय परभात।
नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात॥

अरे बावले बादशाह! तुम्हारा यह नशा क्या नशा है यह तो तुच्छ है और यह तो सुबहतक उतर जायगा, इसके सेवनसे क्या लाभ? हम तो श्रीरामनामकी खुमारीमें मस्त रहते हैं जो दिन-रात चढ़ी रहती है। हमें तुम्हारा यह तुच्छ नशा नहीं चाहिये।

आपने पूज्या गोमाताकी अद्भुत महिमाके सम्बन्धमें कहा है—

गऊ चौदवाँ रतन है, कामधेन तेह नाम।
पूजन सब अवतार तिसें करके मात समान॥
शीर जिन्हा दा पीजिये तिस मारियाँ बहुत गुनाह।
नानक आखे रुकन दीन बहु भुखियाँ होय निबाह॥

(जन्म-साखी)

प्रश्न—महाराज! क्या श्रीगुरुग्रन्थसाहबमें जिन कबीर, नामदेव, रैदास आदि संतोंकी वाणियाँ हैं वह सब संत भी श्रीरामनाम जपते थे और क्या वह भी सब रामभक्त थे और वह भी निराकार रामको नहीं, अपितु श्रीदशरथनन्दन श्रीराघवेन्द्र प्रभुके ही माननेवाले थे?

उत्तर—निःसंदेह सभी गुरु और सभी संतोंने अपनी वाणियोंमें श्रीदशरथनन्दन रघुनन्दन, कौसल्यानन्दन श्रीरामका ही एकमात्र गुणगान किया है।

प्रश्न—संत कबीरजी महाराजको तो यह कहा जाता है कि वे निराकारके उपासक थे, क्या यह बात सत्य है?

उत्तर—नहीं, कभी नहीं, तीन कालमें नहीं। संत कबीरजीने जिन्हें अपना गुरु बनाया वे कौन थे? जातिके ब्राह्मण और परम वैष्णव श्रीरामोपासक श्रीरामानन्दजी महाराज थे। भला जो निराकारको माननेवाला होगा वह साकारोपासकको अपना गुरु क्यों बनायेगा। संत कबीरजी भी हर समय श्रीरामनामामृतका पान किया करते थे और साकारोपासक थे। राम-कृष्णके अनन्य भक्त थे।

कबिरा मन निर्मल भया जैसा गंगा नीर।
पाछे पाछे हरि फिरें कहत कबीर कबिरा॥

तो क्या निराकार पीछे-पीछे कबीर-कबीर कह घूम सकता है। यदि घूम सकता है तो फिर वह निराकार कैसे हुआ? यदि नहीं घूमता तो क्या कबीर संत होकर झूठ बोलते हैं? और सुनो कबीरके साकारोपासक होनेका प्रबल प्रमाण—

कबिरा कबिरा क्या कहे चल यमुना के तीर।
एक एक गोपी चरण पर वारौं कोटि कबीर॥

और सुनिये ध्यानसे—

कबिरा धारा अगम की सद्गुरु दयी बताय।
उलट ताहि पढ़िये सदा स्वामी संग लगाय॥

अब इसके अर्थपर ध्यान दीजिये। हमारे सद्गुरुने उस अगम अगोचर परब्रह्मकी धाराको हमें बता दिया है, अतः उसे पलटकर अर्थात् धारा शब्दको उलट कर पढ़नेपर राधा शब्द बन जायगा, उसे पढ़ो पर केवल राधा नहीं अपितु उसके साथ उसके स्वामी (श्रीकृष्ण) को संगमें जोड़कर अर्थात् राधा-कृष्ण ऐसी ही भावनासे जाप करो।

क्या अब भी उन्हें निराकार रामका उपासक मानोगे? संत कबीरजी कहते हैं—

कबिरा सब जग निरधना धनवन्ता नहिं कोय।
धनवन्ता सोइ जानिये जाके रामनाम धन होय॥
नाम जपन्ता कुष्टी भला चुइ चुइ परे जो चाम।
कंचन देह किस काम का जो मुख नाहीं राम॥
राम मरे तो हम मरें नातर मरे बलाय।
अविनाशी की गोद में मरे न मारा जाय॥

संत कबीरजी कलिकालमें कल्याणका एकमात्र उपाय श्रीरामनाम-कीर्तन और श्रीरामकथाका श्रवण करना ही मानते हैं।

कथा कीर्तन कलिविषे भवसागर की नाव।

कहैं कबीर जग तरन को नाहिन और उपाव ॥
कथा कीर्तन करनकी जाके निश दिन रीत।
कहैं कबीर ता दाससे कीजै निश्चय प्रीत ॥

और भी संत कबीरजी कहते हैं—

भजो रे भैया राम गोविन्द हरी।
जप तप साधन कछु नहिं लागत खरचत नहीं गठरी ॥

—वही रघुनन्दन राम और वही गाय चरानेवाले कन्हैया गोविन्द।

वाहे गुरु, वाहे गुरु, वाहे गुरुके तत्त्वको समझो। हमारे सभी पूज्य गुरु वाहे गुरु वाहे गुरु कहते थे और सारा सिख समाज वाहे गुरु, वाहे गुरु कहता है, पर क्या आपने कभी इसपर ध्यान दिया कि इसका असली रहस्य क्या है ? इसका तात्पर्य यह है कि चार युग होते हैं—सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग। इन चारों युगोंके इष्टदेवोंके चारों नामोंको लेकर वाहे गुरु बना है। इसमें भी चार शब्द हैं जैसे कि व ह ग र। वाहे गुरुमें सतयुगका विष्णुसे व लिया और त्रेतामें हरिकी पूजा होती थी इसलिये हरिसे ह लिया और द्वापरमें गोविन्दकी पूजा होती थी तो गोविन्दसे ग लिया और कलियुगमें मुख्य नाम है राम। इस राम-नामसे र लिया। इस प्रकार प्रभुके चारों युगोंके चारों नामके एक-एक अक्षरको लेकर तब यह वाहे गुरु बना है। जब वाहे गुरुमें भगवान् श्रीविष्णु, हरि, गोविन्द, राम—ये सब नाम लिये गये हैं तो यह सब साकारके नाम हैं या निराकारके ? कलियुगमें एकमात्र जीवके कल्याणका साधन श्रीरामनाम बताया गया है और यही बात वेद-पुराणोंने भी बतायी है। वेद-पुराणोंके सम्बन्धमें हमारे यहाँ स्पष्ट शब्दोंमें कहा गया है—

वेद पुरान कतहुँ न झूठे, झूठे जो न विचारे।

इतना ही नहीं श्रीगङ्गाकी, श्राद्ध-तर्पणकी महिमा श्रीगुरु-ग्रन्थसाहबमें आयी है—

आपन देय चुलू भर पानी। ते निन्दें जिन गंगा आनी ॥

आप तो अपने पितरोंके निमित्त चुल्लूभर पानी भी नहीं दे सकता और निन्दा करता उस भगीरथकी जो अपने पितरोंके तारनेके निमित्त साक्षात् श्रीगङ्गाजी महारानीको इस भूतलपर ले आया।

हमारे सभी सिख गुरु हाथमें माला लेकर रामनाम, श्रीकृष्ण नाम जपते थे और गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक थे और कट्टर सनातनधर्मी हिन्दू थे। श्रीगुरु तेगबहादुर साहबने तो—

कीनों बड़ो कुलमें साखा। तिलक जञ राखा प्रभुताका ॥

चोटी, तिलक, यज्ञोपवीतकी रक्षाके लिये ही उन्होंने अपने प्राण न्यौछावर किये थे। सभी सिखगुरु वर्णाश्रमधर्मको मानते थे और तीर्थयात्रा करते थे, देवमन्दिरोंको मानते थे और भगवान् श्रीराम-कृष्णके गुणगान करते थे और कथा-कीर्तन करते थे। पंजाब-केसरी महाराजा श्रीरणजीतसिंहने लाखों रुपया ज्वालाजीके मन्दिरमें, विश्वनाथ-मन्दिरमें तथा श्रीलक्ष्मीनारायणके मन्दिर बनवानेमें खर्च किये थे और वे गो-ब्राह्मणोंके कट्टर परम भक्त थे और गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजकी रामायणको एक ब्राह्मणके द्वारा बड़े प्रेमसे सुना करते थे। सबके जीवनका श्रीरामनाम ही आधार रहा है।

(प्रेषक—ब्रह्मलीन भक्त श्रीरामशरणदासजी)

पूरन पुरान और पुरुष पुरान परि-
पूरन बतावै न बतावैं और उक्ति कों।
दरसन देत जिन्हैं दरसन समुझैं न
नेति नेति कहैं बेद छाँड़ि भेद-जुक्ति कों ॥
जानि यह 'केसोदास' अनुदिन राम राम
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति कों।
रूप देहि अनिमाहि गुन देहि गरिमाहि
नाम देहि महिमाहि भक्ति देहि मुक्ति कों ॥

(रामचन्द्रिका १ । ३)

भगवान् श्रीरामके परम उपासक (श्रीरामभक्तोंकी कथाएँ)

भगवान् श्रीरामके परम भक्त एवं उपासक—भगवान् सदाशिव

(श्रीश्यामनारायणजी शास्त्री, सा० रत्न, रामायणी)

यों तो भगवान् श्रीरामके उपासक देव, दानव, मानव, खग, मृग, जीव, चराचर अनेक हुए हैं, होंगे भी। किंतु भगवान् श्रीरामके अनन्योपासक सदाशिव-जैसे अन्य कोई नहीं हुए। स्वयं गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें वर्णन किया है—

सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी॥

यदि गम्भीरदृष्टिसे विचार किया जाय तो सतीजीका इतना भी अपराध नहीं था कि क्षणमात्रमें परम दुर्लंघ्य पत्नीका परित्याग कर दिया जाय। अपराध तो एक परीक्षाके रूपमें क्षणिक ही था—

सिय बेषु सतीं जो कीन्ह तेहिं अपराध संकर परिहरीं।
सतीं कीन्ह सीता कर बेषा। सिव उर भयउ बिषाद बिसेषा॥
जौं अब करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती॥
परम पुनीत न जाइ तजि किएँ प्रेम बड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेस कछु हृदयँ अधिक संतापु॥

अन्तमें निर्णय भी तत्काल ले लिया—

सिव संकल्प कीन्ह मन माहीं। एहि तनु सतिहि भेंट अब नाहीं॥

इनकी ऐसी दृढ़ निष्ठा एवं श्रीरामभक्तिकी अनन्यताकी प्रशंसा आकाशवाणीने भी की—

अस पन तुम्ह बिनु करइ को आना। रामभगत समरथ भगवाना॥

इन राम भगवान्‌के अनन्य उपासक सदाशिवने सती-शरीर-त्याग ही क्या स्वयंके शरीरका भी त्याग श्रीराम-सेवार्थ कर दिया—

जानि राम सेवा सरस समुझि करब अनुमान।
पुरुषा ते सेवक भए हर ते भे हनुमान॥
जेहि सरीर रति राम सों सोइ आदरहिं सुजान।
रुद्रदेह तजि नेहबस बानर भे हनुमान॥

इन्होंने जीवनभर ऐसी सेवा की कि श्रीरामके समस्त परिवार, परिकरमण्डल सभीको अपना ऋणी बनाया। सेवा भी आजतक कर रहे हैं और भविष्यमें अनन्त कालतक करते ही रहेंगे—

राम दुआरे तुम रखवारे। होत न आज्ञा बिनु पैसारे॥

× × ×

तावत् स्थास्यामि मेदिन्यां तवाज्ञामनुपालयन्।

भगवान् शंकरकी, श्रीरामके अनन्योपासनाकी परम पराकाष्ठा तो यह है कि श्रीराम एवं उनका पूरा परिवार ही शंकर भगवान्‌का परमोपासक है। तथापि ये श्रीरामके अनन्य दासत्वमें ही अपना परम गौरव मानते तथा उसीको समग्र-रूपमें निर्वाह करनेकी ही दृढ़ता रखते हैं। इनके तीन सम्बन्धका गोस्वामीजी वर्णन करते हैं। और सबके निर्वाहका भी प्रमाण श्रीरामचरितमानस एवं गोस्वामीजीके समस्त ग्रन्थोंमें मिलता है—

सेवक स्वामि सखा सिय पी के।

सेवक—

भगवान् शंकरजी स्वयं ही शिवासे वर्णन करते हैं—

जासु कथा कुंभज रिषि गाई। भगति जासु मैं मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥
पुरुष प्रसिद्ध प्रकासनिधि प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ कहि सिवँ नायउ माथ॥
कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

कथारम्भमें भी भगवान् शंकरने अपने इष्टदेवका स्मरण किया—

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरषि सुधा सम गिरा उचारी॥

विवाह-समयमें भी अपने इष्टदेव श्रीरामको ही प्रणाम किया—

बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदयँ सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥

स्वामी—

भगवान् श्रीराम एवं उनका परिवार इन्हीं अपने इष्टदेव शंकरकी ही सर्वत्र उपासना करता है—

मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥

× × ×

अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने॥

× × ×

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥

सखा—

अब बिनती मम सुनहु सिव जौं मो पर निज नेहु।
जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि माँगें देहु॥

इस दोहेमें तो एक साथ तीनों भावोंका निर्वाह हो गया। ***'अब बिनती मम सुनहु सिव'***, यह श्रीराम स्वयं प्रार्थना करते हैं, शंकरजीको उपास्य समझकर, यह सेवक-भाव है। ***'जौं मो पर निज नेहु'***, यह सखा-भाव, ***'जाइ बिबाहहु सैलजहि'*** यह आदेश स्वामि-भावमें स्वयं दे रहे हैं। किंतु धन्य है भगवान् शंकरकी अनन्योपासना। शंकर भगवान् इन तीनों भावोंमेंसे वही स्वीकार एवं संकेत करते हैं जिसकी सर्वदा ही अविरल उपासना करते चले आ रहे हैं। और आजतक वही चल रही है। भविष्यमें भी वही चलानेकी प्रतिज्ञा करते एवं निभाते भी हैं—

कह सिव जदपि उचित अस नाहीं। नाथ बचन पुनि मेटि न जाहीं॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यह नाथ हमारा॥

यदि वास्तवमें गम्भीर एवं मूल दृष्टिकोणसे विचार किया जाय तो—

रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिवः।
एक एव द्विधा भूतो लोके चरति नित्यशः॥

शंकर भगवान्के परम उपास्य विष्णु भगवान् एवं विष्णु भगवान्के परम उपास्य शंकर भगवान् हैं। एक ही तत्त्व दो रूपमें होकर लीलार्थ लोकमें विचरण करते हैं—

शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः।

इसी कारण गोस्वामीजी श्रीरामचरितमानसमें इसका स्पष्टीकरण भी करते हैं—

हरि हर पद रति मति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुबर की॥

क्योंकि जो श्रीराम-तत्त्व है वही शिव-तत्त्व है। मूलतः तनिक भर भी कहींपर भी किसी शास्त्र-पुराणादिकोंमें इनका भेद वर्णन न करके हरि-हरात्मक अभेदका वर्णन ही सर्वत्र किया गया है। वस्तुतः—

उभयोः प्रकृतिरेका प्रत्ययमात्रेण भिन्नवद् भाति।
कलयति कश्चन् मूढो हरिहरभेदो विना शास्त्रम्॥

दोनोंकी प्रकृति एक है। केवल प्रत्ययमात्रसे भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं।

भगवान् श्रीराम स्वयं ही अवधवासियोंको स्पष्ट संकेत करते हैं—

औरउ एक गुपुत मत सबहि कहउँ कर जोरि।
संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि॥

इसी बातको परमवैष्णव नारदजीको भी भगवान् विष्णु स्वयं आदेश देते हैं कि—

जेहि पर कृपा न करहिं पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरें। असि परतीति तजहु जनि भोरें॥

श्रीरामेश्वर-स्थापना-कालमें भी इसीकी पुष्टि भगवान् स्वयं करते हैं—

लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा॥
सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहि न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥

संकर प्रिय मम द्रोही सिव द्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि घोर नरक महुँ बास॥

वस्तुतः बिना शंकरके विष्णु एवं बिना विष्णुके शंकरकी उपासना सिद्ध नहीं हो सकती। इसी कारण शास्त्रोंमें दोनोंकी अभेदोपासनाका वर्णन किया गया है—

यथा हरस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः।
अन्तरं शिवविष्ण्वोश्च मनागपि न दृश्यते॥

(स्कन्दपुराण)

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराजने तो श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शंकर एवं भगवान् श्रीरामके गुणगणोंके साम्यका सर्वत्र ही वर्णन किया है। जो-जो गुण भगवान् श्रीरामके हैं, वे-वे ही गुण श्रीशंकरभगवान्में पूर्णरूपसे हैं। मानसमें अनेकों उदाहरण इस प्रकारके भरे पड़े हैं। कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। बुधजन इसपर विचार करेंगे तो स्पष्ट हो जायगा—

गुणावली	भगवान् श्रीराम	भगवान् शंकर
१-दोनों जगदीश हैं	रामाख्यं जगदीश्वरम्	संकरु जगतबंद्य जगदीसा।
२-दोनों अन्तर्यामी हैं	सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी ॥	जद्यपि प्रगट न कहेउ भवानी। हर अंतरजामी सब जानी ॥
३-दोनों सर्वप्रेरक हैं	उर प्रेरक रघुबंस बिभूषन।	तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ सो मति रामहि देहु।
४-दोनों व्यापक ब्रह्म हैं	राम ब्रह्म ब्यापक जग जाना।	विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं।
५-दोनों निर्गुण हैं	अगुन अरूप अलख अज सोई।	निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं।
६-दोनों मन आदिसे परे हैं	मन समेत जेहि जान न बानी।	गिरा ग्यान गोतीतमीशं गिरीशं।
७-दोनों कालभक्षक हैं	भुवनेस्वर कालहु कर काला।	करालं महाकालकालं कृपालम्।
८-दोनोंका नाम कल्पतरु है	नाम रामको कलपतरु कलि कल्यान निवास।	जोग ग्यान बैराग्य निधि प्रनत कलपतरु नाम ॥
९-दोनोंके धाम मोक्षदाता हैं	चारि खानि जग जीव अपारा। अवध तजें तनु नहिं संसारा ॥	आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं ॥
१०-दोनोंकी चरणरति आवश्यक है	भव सिंधु अगाध परे नर ते। पद पंकज प्रेम न जे करते ॥	न यावद् उमानाथ पादारविन्दं भजंतीह लोके परे वा नराणां।
११-दोनों ही उदार हैं	प्रभु छाड़ेउ करि छोह को कृपालु रघुबीर सम।	तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस ॥
१२-दोनोंके चरित अगाध हैं	चरित सिंधु रघुनायक थाह कि पावइ कोइ।	चरित सिंधु गिरिजा रमन बेद न पावहिं पारु।

इसी प्रकार मानसमें दोनोंकी अर्धाङ्गिनी चिन्मयी दिव्य शक्तियोंका भी परम साम्य दिखलाया गया है—

गुणावली	श्रीजानकीजी	श्रीपार्वतीजी
१-दोनों जगदम्बा हैं	जगदंबा जानहु जियँ सीता।	जगदंबा तव सुता भवानी ॥
२-दोनों आदिशक्ति हैं	आदि सक्ति जेहि जग उपजाया।	अजा अनादि सक्ति अबिनासिनि।
३-दोनों उद्भवादिकारिणी हैं	उद्भवस्थितिसंहारकारिणीम्।	जग संभव पालन लय कारिनि।
४-दोनों ऋद्धि-सिद्धि-सेविता हैं	तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे।	सेवत तोहि सुलभ फल चारी।
५-दोनों पतिव्रताशिरोमणि हैं	सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।	एहि कर नामु सुमिरि संसारा। त्रिय चढ़िहहिं पतिब्रत असिधारा ॥

—इस प्रकार भगवान् श्रीराम एवं भगवान् श्रीशंकर, विष्णु, नारायण—ये सभी मूलतः एक ही रूप हैं। पुराणोपनिषदादिका आलोडन करनेपर सर्वत्र ही हरि-हरमें सर्वथा अभेद अथवा ऐक्य पाया जाता है। एकरूपता होनेपर भी भक्तोंको आह्लादित करनेके लिये दोनोंमें उपास्य-उपासक-भावसे लीला चलती ही रहती है। कभी शिव उपास्य बन जाते हैं तो श्रीराम उपासक बन जाते हैं और जब श्रीराम उपास्य बन जाते हैं तो भगवान् शिव नाना प्रकारसे नाना भावोंसे उन्हें रिझाते हैं और स्वयं भी रीझते हैं।

जब श्रीरामने दशरथनन्दनके रूपमें कौसल्याम्बाके अङ्कमें जन्म लिया तो उनके बालरूपके दर्शनोंकी उत्कट अभिलाषा लेकर भोलेभण्डारी मनुष्यरूपमें अवधमें आ पहुँचे। ब्रह्मादि देवता तो भगवान्‌का दर्शन तथा उनकी स्तुति कर वापस लौट गये; किंतु शंकरजीका मन अपने इष्टदेव

बालरूप भगवान्‌की बाँकी झाँकीमें ऐसा उलझा कि वे काकभुशुण्डिजीके साथ बहुत समयतक अवधकी वीथियोंमें घूमते रहे और वहाँका आनन्द लूटते रहे। इस बातको स्वयं शंकरजी पार्वतीजीसे कहते हैं—

औरउ एक कहउँ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ़ मति तोरी॥
कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानइ नहिं कोऊ॥
परमानंद प्रेमसुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई॥

(रा० च० मा० १। १९६। ३—६)

इस प्रकार भगवान् शंकरने कभी देवरूपसे, कभी मनुष्य-रूपसे और कभी वानराकार हनुमान्‌के रूपमें स्वयं अवतीर्ण होकर सब प्रकारसे श्रीरामकी सेवा करनेमें ही अपना परम गौरव एवं कर्तव्य समझा। और भक्तों, साधकों तथा प्रेमियोंके सामने भगवान्‌की—अपने आराध्यकी किस प्रकार भक्ति की जाती है, किस प्रकार उनकी सेवा की जाती है, किस प्रकार उन्हें प्राप्त किया जा सकता है—इन बातोंका एक सर्वश्रेष्ठतम सुगम आदर्श प्रस्तुत किया। साथ ही आराध्य-आराधक और आराधना—इस त्रिपुटीके ऐक्यका—तादात्म्यका अन्यतम भाव दिखलाया। इसीलिये गोस्वामीजीने स्पष्ट घोषणा की है—*'सिव सम को रघुपति ब्रतधारी।'*

श्रीहनुमतलालजीकी परोपकारी भावना

(योगिराज श्रीबलिराजसिंहजी)

देखा जाय तो आज हनुमान्‌जीके उपासकोंकी संख्या सर्वाधिक होगी। हिन्दू ही नहीं बल्कि अन्य धर्मावलम्बी भी श्रद्धापूर्वक हनुमान्‌जीका दर्शन करते हैं, किंतु दुर्भाग्यकी बात है कि आज पूजा, उपासना और भक्तिका महत्त्व ही विस्मृत होता जा रहा है। बहुधा, लोग दूसरोंको कष्ट देनेके लिये और अपने स्वार्थ-साधनके लिये मन्दिरमें जाया करते हैं और 'हे भगवन्! अमुक कभी सुखी न हो, मैं सुख-चैनसे रहूँ। मेरी यह इच्छा पूरी हो जाय, मेरे पास खूब धन हो जाय'—आदि-आदि भावनाओंको लेकर बड़ी ही भक्ति जताते हैं और बड़ी-बड़ी मनौतियाँ भी मानते हैं, कहते हैं कि 'हे हनुमान्‌जी! मेरा यह काम कर दो मैं आपको लड्डू चढ़ाऊँगा।' इतना ही नहीं बल्कि कार्यसिद्धि न होनेपर हनुमान्‌जीको दोषी भी ठहराते हैं। यही कारण है कि उन्हें इच्छित फल नहीं प्राप्त होता; क्योंकि ऐसा होना सम्भव नहीं। दूसरेको हानि पहुँचाने अथवा अहंकी तुष्टिके लिये देवताकी शरणमें जानेवाले लोग न केवल निराश हुए हैं, बल्कि उन्हें मुँहकी खानी पड़ी है। भगवान् शंकरके परम उपासक रावणको न केवल पराभव प्राप्त हुआ, अपितु उसका कुलसहित विनाश हो गया। धर्मग्रन्थोंमें देखें तो ऐसी अनेक कथाएँ मिलेंगी।

वास्तविकता यह है कि शक्ति, साधना और उपासनाका लक्ष्य यदि लोकहितमें नहीं हुआ तो उसकी परिणति साधकके अनुकूल नहीं हो सकती। वैसे उपासनाकी आधारभूमि तद्रूपता है। हम किसी आराध्यका स्वरूप तभी स्वीकार करते हैं, जब उसके गुणोंके प्रति हमारा आन्तरिक आकर्षण होता है। आराध्यके अनुरूप बननेका प्रयास ही उपासना है। इसी संदर्भमें हम श्रीहनुमान्‌जीकी चर्चा करते हैं, जिनमें अनेक विशेषताएँ हैं। वे पूर्णरूपसे स्वार्थरहित हैं। नैष्ठिक ब्रह्मचारीके रूपमें उनका स्मरण किया जाता है। ऋद्धियों और सिद्धियोंके वे दाता हैं। भगवान् श्रीरामके अनन्य भक्त कहे जाते हैं। उनमें तनिक भी अभिमान नहीं है। इसके साथ ही वे महान् परोपकारी हैं। परोपकारके बलपर उनका जीवन-दर्शन राम-भक्तोंमें सर्वाधिक निखर उठा है। हनुमान्‌जीके चरित्रसे, उनकी सेवा-भावना और परोपकारमें तत्परतासे प्रेरणा लेकर हम लोककल्याणका मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं, जिसकी वर्तमानयुगमें सर्वाधिक आवश्यकता है। इसी लोककल्याणमें आत्मकल्याण स्वतः ही हो जायगा।

श्रीरामकी सेवामें पूर्णरूपसे समर्पित हनुमान् अपने सुख-दुःख, आराम, विश्राम तथा मान, अपमानका तनिक भी ख्याल नहीं करते। लंकामें ब्रह्मास्त्रसे बाँधे जानेपर वे स्पष्ट शब्दोंमें कहते हैं—

मोहि न कछु बाँधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा॥

मानसके अनुसार प्रथम भेंटमें श्रीरामका कथन है कि—

'सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥'

अर्थात् मैं सेवक हूँ और सम्पूर्ण चर-अचर जगत् मेरे स्वामी भगवान्का स्वरूप है—ऐसा माननेवाला सेवक मुझे प्रिय है। यह राममय भाव हनुमान्के सम्पूर्ण जीवन-चरित्रमें सर्वथा चरितार्थ होता है। हनुमान्ने सम्पूर्ण जगत्को राममय देखा और वे रामके दासोंके दास बने रहे।

भक्तिका एक रूप सेवा भी है जिसे दूसरे शब्दोंमें हम परोपकार भी कह सकते हैं। भगवान्के भक्त बहुत प्रकारके हैं, किंतु अद्वितीय परोपकारी और अनन्य सेवक होनेके नाते हनुमान्जीको विशेष-रूपसे स्मरण किया जाता है। हनुमान्जी परोपकारमें अपनी सुख-शान्तिका ध्यान कभी नहीं रखते। संसारको भूलकर वे निरन्तर परोपकारमें तत्पर रहते हैं। दीन-दुखियों तथा प्रताड़ितोंके प्रति उनके मनमें करुणाका सागर उमड़ता रहता है। वे ऐसे सच्चे परोपकारी हैं कि पथभ्रष्ट प्राणीको जैसे भी हो सन्मार्गकी ओर प्रेरित करते हैं। किष्किन्धामें बालिके शासनकालमें वे वहीं रह रहे थे, किंतु बालिद्वारा प्रताड़ित होनेके पश्चात् उन्होंने सुग्रीवके साथ रहना स्वीकार किया। सुग्रीव चूँकि ईश्वर-भक्त था और बिना किसी अपराधके वह बालिद्वारा प्रताड़ित किया जा रहा था। अतः हनुमान्जी उसका साथ कैसे छोड़ सकते थे ? विकट संकटकी घड़ीमें उन्होंने सुग्रीवका साथ दिया और भगवान् रामसे उनकी मित्रता कराकर उसका महान् हित-साधन किया। भगवान् रामने हनुमान्द्वारा किये गये उपकारोंके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहा—'कपे ! तुमने जो उपकार किये हैं, उनमेंसे एक-एकके लिये मैं अपने प्राण निछावर कर सकता हूँ। तुम्हारे शेष उपकारोंके लिये तो मैं ऋणी ही रह जाऊँगा।'

एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामि ते कपे।
शेषस्येहोपकाराणां भवाम ऋणिनो वयम्॥

(वा० रा० ७।४०।२३)

कपिश्रेष्ठ ! मैं तो यही चाहता हूँ कि तुमने जो-जो उपकार किये हैं, वे सब मेरे शरीरमें ही पच जायँ। उनका बदला चुकानेका मुझे कभी अवसर न मिले, क्योंकि पुरुषमें उपकारका बदला पानेकी योग्यता आपत्तिकालमें ही आती है (मैं नहीं चाहता कि तुम भी संकटमें पड़ो और मैं तुम्हारे उपकारका बदला चुकाऊँ)—

मदङ्गे जीर्णतां यातु यत् त्वयोपकृतं कपे।
नरः प्रत्युपकाराणामापत्स्वायाति पात्रताम्॥

(वा० रा० ७।४०।२४)

भगवान्की यह उक्ति अक्षरशः सत्य है। भगवान् रामका पूरा परिवार हनुमान्जीके उपकारसे दबा हुआ है। हनुमान्ने अलंघ्य समुद्रको पारकर सीताजीकी खोज की। लक्ष्मणको शक्ति लगनेपर रातोंरात संजीवनी लाकर उन्हें जीवन-दान दिया। भरतजीको भगवान्के अयोध्या-आगमनकी सूचना देकर उनके प्राणोंकी रक्षा की, पातालमें जाकर अहिरावणका अन्तकर श्रीराम और लक्ष्मणको मुक्त कराया तथा लंकायुद्धमें उपस्थित रहकर वे श्रीरामको विजयश्री प्राप्त करनेमें सहायक बने। पूरी रामकथामें हनुमान्जीका उदात्त चरित्र पग-पगपर परोपकारसे भरा हुआ दिखायी देता है। वे समस्त कार्योंको सिद्ध करते हैं।

इस प्रकार हनुमान् शक्ति, सेवा और परोपकारके पर्याय हैं। परोपकारका बड़ा मूल्य है। परोपकारसे ही जीवन सार्थक बनता है। गोस्वामीजीने कहा भी है—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई।
परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

अर्थात् पर-उपकारीके लिये संसारमें कुछ भी दुर्लभ नहीं। परोपकारपर ही रीझकर भगवान्ने हनुमान्को ***'तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना'*** कहा। शास्त्रवक्ताओंने परोपकारकी महिमाको स्वीकारते हुए यहाँतक माना है—परोपकार ही पुण्य है और दूसरेको दुःख देना ही पाप है—

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्॥

इस प्रकार हनुमान्-जैसे महान् परोपकारी चरित्रको न केवल पूजने, स्मरण करनेकी ही आज आवश्यकता है बल्कि आवश्यकता है उनके चरित्रसे शिक्षा ग्रहण करनेकी और गुणोंका अनुसरण करनेकी। इसीमें हम सच्चे अर्थोंमें हनुमान्जीके सच्चे सेवक बन सकेंगे और तभी हमें हनुमान्जीकी और उनके स्वामी श्रीरामजीकी सच्ची अनुकम्पा प्राप्त हो सकेगी।
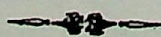
वात्सल्यभक्त महाराज दशरथ

बंदउँ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद।
बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥

जिनके यहाँ भक्ति-प्रेमवश साक्षात् सच्चिदानन्दघन प्रभु पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए, उन परम भाग्यवान् महाराज श्रीदशरथकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है! महाराज दशरथजी मनुके अवतार थे, जो भगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्तकर अपरिमित आनन्दका अनुभव करनेके लिये ही धराधाममें पधारे थे और जिन्होंने अपने जीवनका परित्याग और मोक्षतकका संन्यास करके श्रीरामप्रेमका आदर्श स्थापित कर दिया।

श्रीदशरथजी परम तेजस्वी मनु महाराजकी भाँति ही प्रजाकी रक्षा करनेवाले थे। वे वेदके ज्ञाता, विशाल सेनाके स्वामी, दूरदर्शी, अत्यन्त प्रतापी, नगर और देशवासियोंके प्रिय, महान् यज्ञ करनेवाले, धर्मप्रेमी, स्वाधीन, महर्षियोंके सदृश सद्गुणोंवाले, राजर्षि, त्रैलोक्य-प्रसिद्ध पराक्रमी, शत्रुनाशक, उत्तम मित्रोंवाले, जितेन्द्रिय, अतिरथी,[१] धन-धान्यके संचयमें कुबेर और इन्द्रके समान, सत्यप्रतिज्ञ एवं धर्म, अर्थ तथा कामका शास्त्रानुसार पालन करनेवाले थे। (वा० रा० १। ६। १से ५ तक)

इनके मन्त्रिमण्डलमें महामुनि वसिष्ठ, वामदेव, सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप और धर्मपाल आदि विद्याविनयसम्पन्न, अनीतिमें लजानेवाले, कार्यकुशल, जितेन्द्रिय, श्रीसम्पन्न, पवित्र-हृदय, शास्त्रज्ञ, शस्त्रज्ञ, प्रतापी, पराक्रमी, राजनीतिविशारद, सावधान, राजाज्ञाका अनुसरण करनेवाले, तेजस्वी, क्षमावान्, कीर्तिमान्, हँसमुख, काम-क्रोध और लोभसे बचे हुए एवं सत्यवादी पुरुषप्रवर विद्यमान थे। (वा० रा० १। ७)

आदर्श राजा और मन्त्रिमण्डलके प्रभावसे प्रजा सब प्रकारसे धर्मरत, सुखी और सम्पन्न थी। महाराज दशरथकी सहायता देवतालोग भी चाहते थे। महाराज दशरथने अनेक यज्ञ किये थे। अन्तमें पितृमातृभक्त श्रवणकुमारके वधका प्रायश्चित्त करनेके लिये अश्वमेध, तदनन्तर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित् और आप्तोर्याम आदि यज्ञ किये। इन यज्ञोंमें दशरथने अन्यान्य वस्तुओंके अतिरिक्त दस लाख दुग्धवती गायें, दस करोड़ सोनेकी मुहरें और चालीस करोड़ चाँदीके रुपये दान दिये थे।

इसके बाद पुत्रप्राप्तिके लिये ऋष्यशृङ्गको ऋत्विज् बनाकर राजाने पुत्रेष्टि यज्ञ किया, जिसमें समस्त देवतागण अपना-अपना भाग लेनेके लिये स्वयं पधारे थे। देवता और मुनि-ऋषियोंकी प्रार्थनापर साक्षात् भगवान्‌ने दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे अवतार लेना स्वीकार किया और यज्ञपुरुषने स्वयं प्रकट होकर पायसान्नसे भरा सुवर्णपात्र देते हुए दशरथसे कहा—'राजन्! यह खीर अत्यन्त श्रेष्ठ, आरोग्यवर्धक और प्रजाकी उत्पत्ति करनेवाली है। इसको अपनी कौसल्यादि तीनों रानियोंको खिला दो।' राजाने प्रसन्न होकर मर्यादाके अनुसार कौसल्याको बड़ी समझकर उसे खीरका आधा भाग, मँझली सुमित्राको चौथाई भाग और कैकेयीको आठवाँ भाग दिया। सुमित्राजी बड़ी थीं, इससे उनको सम्मानार्थ अधिक देना उचित था, इसीलिये बचा हुआ अष्टमांश राजाने फिर सुमित्राजीको दे दिया, जिससे कौसल्याके श्रीराम, सुमित्राके (दो भागोंसे) लक्ष्मण और शत्रुघ्न एवं कैकेयीके भरत हुए। इस प्रकार भगवान्‌ने चार रूपोंसे अवतार लिया।

राजाको चारों ही पुत्र परम प्रिय थे। परंतु इन सबमें श्रीरामपर उनका विशेष प्रेम था। होना ही चाहिये, क्योंकि इन्हींके लिये तो जन्म धारणकर सहस्रों वर्ष प्रतीक्षा की गयी थी! वे रामका अपनी आँखोंसे क्षणभरके लिये भी ओझल होना नहीं सह सकते थे। जब विश्वामित्रजी यज्ञरक्षार्थ श्रीराम-लक्ष्मणको माँगने आये, उस समय श्रीरामका वय पंद्रह वर्षसे अधिक था, परंतु दशरथने उनको अपने पाससे हटाकर विश्वामित्रके साथ भेजनेमें बड़ी आनाकानी की। आखिर वसिष्ठके बहुत समझानेपर वे तैयार हुए। श्रीरामपर

१-जो दस हजार धनुर्धारियोंके साथ अकेला लड़ सकता है, उसे 'महारथी' कहते हैं और जो ऐसे दस हजार महारथियोंके साथ अकेला लोहा लेता है, वह 'अतिरथी' कहलाता है।

अत्यन्त प्रेम होनेका परिचय तो इसीसे मिलता है कि जबतक श्रीराम सामने रहे, तबतक प्राणोंको रखा और अपने वचन सत्य करनेके लिये, रामके बिछुड़ते ही राम-प्रेमानलमें अपने प्राणोंकी आहुति दे डाली।

श्रीरामके प्रेमके कारण ही दशरथ महाराजने राजा केकयके साथ शर्त हो चुकनेपर भी भरतके बदले श्रीरामको युवराज-पदपर अभिषिक्त करना चाहा था। अवश्य ही ज्येष्ठ पुत्रके अभिषेककी कुलपरम्परा एवं भरतके त्याग, आज्ञावाहकता, धर्मपरायणता, शील और रामप्रेम आदि सद्‌गुण भी राजाके इस मनोरथमें कारण और सहायक हुए थे। परंतु भगवान्‌ने कैकेयीकी मति फेरकर एक ही साथ कई काम करा दिये। जगत्‌में आदर्श मर्यादा स्थापित हो गयी, जिसके लिये श्रीभगवान्‌ने अवतार लिया था। इनमें निम्नलिखित १२ आदर्श मुख्य हैं—

(१) दशरथकी सत्यरक्षा और श्रीरामप्रेम।
(२) श्रीरामके वनगमनसे राक्षस-वधादिरूप कार्योंके द्वारा दुष्ट-दलन।
(३) श्रीभरतका त्याग और आदर्श भ्रातृप्रेम।
(४) श्रीलक्ष्मणजीका ब्रह्मचर्य, सेवाभाव, रामपरायणता और त्याग।
(५) श्रीसीताजीका आदर्श पवित्र पातिव्रतधर्म।
(६) श्रीकौसल्याजीका पुत्रप्रेम, पुत्रवधूप्रेम, पातिव्रत, धर्मप्रेम और राजनीति-कुशलता।
(७) श्रीसुमित्राजीका श्रीरामप्रेम, त्याग और राजनीति-कुशलता।
(८) कैकेयीका बदनाम और तिरस्कृत होकर भी प्रिय 'रामकाज' करना।
(९) श्रीहनुमान्‌जीकी निष्काम प्रेमाभक्ति।
(१०) श्रीविभीषणजीकी शरणागति और अभय-प्राप्ति।
(११) सुग्रीवके साथ श्रीरामकी आदर्श मित्रता।
(१२) रावणादि अत्याचारियोंका अन्तमें विनाश और उद्धार।

यदि भगवान् श्रीरामको वनवास न होता तो इन मर्यादाओंकी स्थापनाका अवसर ही शायद न आता। ये सभी मर्यादाएँ आदर्श और अनुकरणीय हैं।

जो कुछ भी हो, महाराज दशरथने तो श्रीरामका वियोग होते ही अपनी जीवन-लीला समाप्तकर प्रेमकी टेक रख ली।

जिअन मरन फलु दसरथ पावा। अंड अनेक अमल जसु छावा॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरनु सँवारा॥

श्रीदशरथजीकी मृत्यु सुधर गयी, रामके विरहमें प्राण देकर उन्होंने आदर्श स्थापित कर दिया। दशरथके समान भाग्यवान् कौन होगा, जिन्होंने श्रीराम-दर्शन-लालसामें अनन्य भावसे रामपरायण हो, रामके लिये 'राम-राम' पुकारते हुए प्राणोंका त्याग किया।

श्रीरामायणमें लंका-विजयके बाद पुनः दशरथके दर्शन होते हैं। श्रीमहादेवजी भगवान् श्रीरामको विमानपर बैठे हुए दशरथजीके दर्शन कराते हैं। फिर तो दशरथ सामने आकर श्रीरामको गोदमें बैठा लेते हैं और आलिङ्गन करते हुए उनसे प्रेमालाप करते हैं। यहाँ लक्ष्मणको उपदेश करते हुए महाराज दशरथ स्पष्ट कहते हैं कि 'हे सुमित्रासुखवर्धन लक्ष्मण! श्रीरामकी सेवामें लगे रहना, तेरा इससे बड़ा कल्याण होगा। इन्द्रसहित तीनों लोक, सिद्ध पुरुष और सभी महान् ऋषि-मुनि पुरुषोत्तम श्रीरामका अभिवन्दन करके उनकी पूजा करते हैं। वेदोंमें जिस अव्यक्त अक्षर ब्रह्मको देवताओंका हृदय और गुप्त तत्त्व कहा है, ये परम तपस्वी राम वही हैं।' (वा० रा० ५। ११९। २७—३०)

सो जननी, सो पिता, सोइ भाइ, सो भामिनि, सो सुतु, सो हितु मेरो।
सोइ सगो, सो सखा, सोइ सेवकु, सो गुरु, सो सुरु, साहेबु चेरो॥
सो 'तुलसी' प्रिय प्रान समान, कहाँ लौं बनाइ कहौं बहुतेरो।
जो तजि देहको गेहको नेहु, सनेहसों रामको होइ सबेरो॥

(कवितावली ७। ३५)

जननी कौसल्या

बंदउँ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची॥
प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥

रामायणमें महारानी कौसल्याजीका चरित्र बहुत ही उदार और आदर्श है। ये महाराज दशरथकी सबसे बड़ी पत्नी और भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी जननी थीं। प्राचीन कालमें मनु-शतरूपाने तप करके श्रीभगवान्‌को पुत्ररूपसे प्राप्त करनेका वरदान पाया था, वे ही मनु-शतरूपा यहाँ दशरथ-कौसल्या हैं और भगवान् श्रीराम ही पुत्ररूपसे उनके घर अवतरित हुए हैं। श्रीकौसल्याजीके चरित्रका प्रारम्भ अयोध्याकाण्डसे होता है। भगवान् श्रीरामका राज्याभिषेक होनेवाला है। नगरभरमें उत्सवकी तैयारियाँ हो रही हैं। आज माता कौसल्याके आनन्दका पार नहीं है, वे रामकी मङ्गल-कामनासे अनेक प्रकारके यज्ञ, दान, देवपूजन और उपवास-व्रतमें संलग्न हैं। श्रीसीतारामको राज्यसिंहासनपर देखनेकी निश्चित आशा-से उनका रोम-रोम पुलकित है। परंतु श्रीराम दूसरी ही लीला करना चाहते हैं। महाराज दशरथ कैकेयीके साथ वचनबद्ध होकर श्रीरामको वनवास देनेके लिये बाध्य हो जाते हैं।

धर्मके लिये त्याग

प्रातःकाल श्रीरामचन्द्र माता कैकेयी और पिता दशरथ महाराजसे मिलकर वनगमनका निश्चय कर लेते हैं और माता कौसल्यासे आज्ञा लेनेके लिये उनके महलमें पधारते हैं। कौसल्या उस समय ब्राह्मणोंके द्वारा अग्निमें हवन करवा रही हैं और मन-ही-मन सोच रही हैं कि 'मेरे राम इस समय कहाँ होंगे, शुभ लग्न किस समय है?' इतनेमें ही नित्य प्रसन्नमुख और उत्साहपूर्ण हृदयवाले श्रीरामचन्द्र माताके समीप जा पहुँचते हैं। रामको देखते ही माता तुरंत उठकर उनके पास जा पहुँचती हैं। राम माताको पास आयी देख उनके गले लग जाते हैं और माता भी भुजाओंसे पुत्रका आलिङ्गन कर उनका सिर सूँघने लगती हैं। (वा॰ रा॰ २। २०। २०-२१)

इस समय कौसल्याके हृदयमें वात्सल्य-रसकी बाढ़ आ गयी, उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बहने लगी। कुछ देरतक तो यही अवस्था रही, फिर कौसल्या रामपर निछावर करके बहुमूल्य वस्त्राभूषण बाँटने लगीं। श्रीराम चुपचाप खड़े थे। अब स्नेहमयी मातासे रहा नहीं गया। उन्होंने हाथ पकड़कर पुत्रको नन्हेसे शिशुकी भाँति गोदमें बैठा लिया और लगीं प्यार करने।

बार बार मुख चुंबति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥

जैसे रंक कुबेरके पदको प्राप्तकर फूला नहीं समाता, आज वही दशा कौसल्याकी है। इतनेमें स्मरण आया कि दिन बहुत चढ़ गया है। मेरे प्यारे रामने अभी कुछ खाया भी नहीं होगा। अतएव मा कहने लगीं—

तात जाउँ बलि बेगि नहाहू। जो मन भाव मधुर कछु खाहू॥

माता सोच रही हैं कि 'लगनमें बहुत देर होगी, मेरा राम इतनी देर भूखा कैसे रह सकेगा। कुछ मिठाई ही खा ले, दो-चार फल ही ले ले, तो ठीक है।' उन्हें यह पता नहीं था कि राम तो दूसरे ही कामसे यहाँ आये हैं। भगवान् रामने कहा—'माता! पिताजीने मुझको वनका राज्य दिया है, जहाँ सभी प्रकारसे मेरा बड़ा कल्याण होगा। तुम प्रसन्न-चित्तसे मुझको वन जानेके लिये आज्ञा दे दो, चौदह साल वनमें निवासकर पिताजीके वचनोंको सत्य करके पुनः इन चरणोंके दर्शन करूँगा। माता! तुम किसी तरह दुःख न करो।'

रामके ये वचन कौसल्याके हृदयमें शूलकी भाँति बिंध गये! हा! कहाँ तो चक्रवर्ती साम्राज्यके ऊँचे सिंहासनपर बैठनेकी बात और कहाँ अब प्राणाराम रामको वन जाना पड़ेगा। कौसल्याजीके हृदयका विषाद कहा नहीं जाता, वे मूर्च्छित होकर गिर पड़ीं और थोड़ी देर बाद जगकर भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगीं।

कौसल्याके मनमें आया कि पिताकी अपेक्षा माताका स्थान ऊँचा है, यदि महाराजने रामको वनवास दिया है तो क्या हुआ, मैं नहीं जाने दूँगी। परंतु फिर सोचा कि 'यदि बहिन कैकेयीने आज्ञा दे दी होगी तो मेरा रोकनेका क्या अधिकार है, क्योंकि मातासे भी सौतेली माताका दर्जा ऊँचा माना गया है।' इस विचारसे कौसल्या श्रीरामको रोकनेका भाव छोड़कर मार्मिक शब्दोंमें कहती हैं—

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥

मातासे कहा गया कि 'पिताकी ही नहीं, माता कैकेयीकी

भी यही सम्मति है।' यहाँपर कौसल्याने बड़ी बुद्धिमानीके साथ यह भी सोचा कि यदि मैं श्रीरामको हठपूर्वक रखना चाहूँगी तो धर्म जायगा ही, साथ ही दोनों भाइयोंमें परस्पर विरोध भी हो सकता है।

राखउँ सुतहि करउँ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥

अतएव सब तरहसे सोचकर धर्मपरायणा साध्वी कौसल्याने हृदयको कठिन करके रामसे कह दिया कि 'बेटा! जब पिता-माता दोनोंकी आज्ञा है और तुम भी इसको धर्म-सम्मत समझते हो तो मैं तुम्हें रोककर धर्ममें बाधा नहीं देना चाहती, जाओ और धर्मका पालन करते रहो।' मेरा एक अनुरोध अवश्य है—

मानि मातु कर नात बलि सुरति बिसरि जनि जाइ॥

पातिव्रतधर्म

कह तो दिया, परंतु फिर हृदयमें तूफान आया। अब कौसल्या साथ ले चलनेके लिये आग्रह करने लगीं और बोलीं—

यथा हि धेनुः स्वं वत्सं गच्छन्तमनुगच्छति।
अहं त्वानुगमिष्यामि यत्र वत्स गमिष्यसि॥

(वा० रा० २।२४।९)

'बेटा! जैसे गाय अपने बछड़ेके पीछे, जहाँ वह जाता है वहीं जाती है, वैसे ही मैं भी तुम्हारे साथ तुम जहाँ जाओगे, वहीं जाऊँगी।' इसपर भगवान् श्रीरामने माताको अवसर जानकर पातिव्रत-धर्मका बड़ा ही सुन्दर उपदेश दिया, जो स्त्रीमात्रके लिये मनन करने योग्य है। भगवान् बोले—

'माताजी! पतिका परित्याग करना स्त्रीके लिये बहुत बड़ी क्रूरता है, आपको मनसे भी ऐसा सोचना नहीं चाहिये, करना तो दूर रहा। जबतक ककुत्स्थवंशी मेरे पिताजी जीवित हैं, तबतक आपको उनकी सेवा ही करनी चाहिये, यही सनातन धर्म है। सधवा स्त्रियोंके लिये पति ही देवता है और पति ही प्रभु है। महाराज तो आपके और मेरे स्वामी तथा राजा हैं। भाई भरत भी धर्मात्मा और प्राणिमात्रके साथ प्रिय आचरण करनेवाले हैं, वे भी आपकी सेवा ही करेंगे, क्योंकि उनका धर्ममें नित्य प्रेम है। माता! मेरे जानेके बाद आपको बड़ी सावधानीके साथ ऐसा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे महाराज दुखी होकर दारुण शोकसे अपने प्राण न त्याग दें। सावधान होकर सर्वदा वृद्ध महाराजके हितकी ओर ध्यान दें। व्रत-उपवासादि नियमोंमें तत्पर रहनेवाली धर्मात्मा स्त्री भी यदि अपने पतिके अनुकूल नहीं रहती तो वह अधम गतिको प्राप्त होती है, परंतु जो देवताओंका पूजन-वन्दन आदि बिलकुल न करके भी पतिकी सेवा करती है, उसको उसीके फलस्वरूप उत्तम स्वर्गकी प्राप्ति होती है। अतएव पतिका हित चाहनेवाली प्रत्येक स्त्रीको केवल पतिकी सेवामें ही लगे रहना चाहिये। स्त्रियोंके लिये श्रुति-स्मृतिमें एकमात्र यही धर्म बतलाया गया है।' (वा० रा० २।२४)

साध्वी कौसल्या तो पतिव्रता-शिरोमणि थीं ही, पुत्र-स्नेहसे रामके साथ जानेको तैयार हो गयी थीं, अब पुत्रके द्वारा पातिव्रत-धर्मका महत्त्व सुनते ही पुनः कर्तव्यपर डट गयीं और श्रीरामको वन जानेके लिये उन्होंने आज्ञा दे दी। कौसल्याके पातिव्रतके सम्बन्धमें निम्नलिखित उदाहरण और भी ध्यान देने योग्य है—जिस समय श्रीसीताजी स्वामी श्रीरामके साथ वन जानेको तैयार होती हैं, उस समय कौसल्याजी उत्तम आचरण-वाली सीताको हृदयसे लगाकर और उनका सिर सूँघकर निम्नलिखित उपदेश करती हैं—

'पुत्री! जो स्त्रियाँ पतिके द्वारा सब प्रकारसे सम्मान पानेपर भी गरीबीकी हालतमें उनकी सेवा नहीं करतीं, वे असती मानी जाती हैं। जो स्त्रियाँ सती हैं, वे ही शीलवती और सत्यवादिनी होती हैं, बड़ोंके उपदेशके अनुसार उनका बर्ताव होता है, वे अपने कुलकी मर्यादाका कभी उल्लङ्घन नहीं करतीं और अपने एकमात्र पतिको ही परम पूज्य देवता मानती हैं। बेटी! आज मेरे पुत्र रामको पिताने वनवासी बना दिया है, वह धनी हो या निर्धन, तेरे लिये तो वही देवता है। अतः कभी उसका तिरस्कार न करना।'

यद्यपि परम सती सीताजीको पातिव्रतका उपदेश करना सूर्यको दीपक दिखाना है, तथापि सीताने सासके वचनोंसे कुछ बुरा नहीं माना या अपना अपमान नहीं समझा और उनकी बातें धर्मार्थयुक्त समझ, हाथ जोड़कर कहा—'माताजी! मैं आपके उपदेशानुसार ही करूँगी, पतिके साथ किस प्रकारका बर्ताव करना चाहिये, इस विषयका उपदेश माता-पिताके द्वारा मुझको प्राप्त हो चुका है। आप असाध्वी स्त्रियोंके साथ मेरी तुलना न करें।

मैं कदापि धर्मसे विचलित न हो सकूँगी। जिस प्रकार चन्द्रमासे चाँदनी अलग नहीं होती, जिस प्रकार बिना तारके वीणा नहीं बजती, जिस प्रकार बिना पहियेके रथ नहीं चल सकता, उसी प्रकार स्त्री चाहे सौ पुत्रोंकी भी माँ क्यों न हो जाय, पति बिना वह कभी सुखी नहीं हो सकती। पिता, माता, भाई और पुत्र आदि जो कुछ सुख देते हैं, वह परिमित होता है और केवल इसी लोकके लिये होता है, परंतु पति तो मोक्षरूप अपरिमित सुखका दाता है। अतएव ऐसी कौन दुष्ट स्त्री है, जो अपने पतिकी सेवा न करेगी—

धर्माद्विचलितुं नाहमलं चन्द्रादिव प्रभा ॥
नातन्त्री वाद्यते वीणा नाचक्रो विद्यते रथः।
नापतिः सुखमेधेत या स्यादपि शतात्मजा ॥
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य तु दातारं भर्तारं का न पूजयेत् ॥

(वा० रा० २।३९।२८—३०)

जब श्रीराम वनको चले जाते हैं और महाराज दशरथ दुखी होकर कौसल्याके भवनमें आते हैं, तब आवेशमें आकर वे उन्हें कुछ कठोर वचन कह बैठती हैं, इसके उत्तरमें जब दुःखी महाराज आर्तभावसे हाथ जोड़कर कौसल्यासे क्षमा माँगते हैं, तब कौसल्या भयभीत होकर अपने कृत्यपर बड़ा भारी पश्चात्ताप करती हैं। उनकी आँखोंसे निर्झरकी तरह आँसू बहने लगते हैं, और वे महाराजके हाथ पकड़, उन्हें अपने मस्तकपर रखकर घबराहटके साथ कहती हैं—'नाथ ! मुझसे बड़ी भूल हुई। मैं धरतीपर सिर टेककर प्रार्थना करती हूँ, आप मुझपर प्रसन्न होइये। मैं पुत्रवियोगसे पीड़ित हूँ, आप क्षमा कीजिये। देव ! आपको जब मुझ दासीसे क्षमा माँगनी पड़ी, तब मैं आज पातिव्रत-धर्मसे भ्रष्ट हो गयी। आज मेरे शीलपर कलंक लग गया। अब मैं क्षमाके योग्य नहीं रही, मुझे अपनी दासी जानकर उचित दण्ड दीजिये। अनेक प्रकारकी सेवाओंके द्वारा प्रसन्न करने योग्य बुद्धिमान् स्वामी जिस स्त्रीको प्रसन्न करनेके लिये बाध्य होता है, उस स्त्रीके लोक-परलोक दोनों नष्ट हो जाते हैं। हे स्वामिन् ! मैं धर्मको जानती हूँ, आप सत्यवादी हैं, यह भी मैं जानती हूँ। मैंने जो कुछ कहा सो पुत्र-शोककी अतिशय पीड़ासे घबराकर कहा है।' कौसल्याके इन वचनोंसे राजाको कुछ सान्त्वना हुई और उनकी आँख लग गयी।

उपर्युक्त अवतरणोंसे यह पता लगता है कि कौसल्या पातिव्रत-धर्मके पालनमें बहुत ही आगे बढ़ी हुई थीं। स्त्रियोंको इस प्रसंगसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

कर्तव्यनिष्ठा

दशरथजी श्रीरामके वियोगमें व्याकुल हैं, खान-पान छूट गया है, मृत्युके चिह्न प्रत्यक्ष दीखने लगे हैं, नगर और महलोंमें हाहाकार मचा हुआ है। ऐसी अवस्थामें धीरज धारणकर अपने दुःखको भुला श्रीरामकी माता कौसल्या, जिनका प्राणाधार पुत्र वधूसहित वनवासी हो चुका है, अपने उत्तरदायित्व और कर्तव्यको समझती हुई महाराजसे कहती हैं—

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू ॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू ॥
धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सबु परिवारू ॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहिं बहोरी ॥

धन्य ! रामजननी देवी कौसल्या ऐसी अवस्थामें तुम्हीं ऐसे आदर्श वचन कह सकती हो, धन्य तुम्हारे धैर्य, साहस, पातिव्रत, विश्वास और तुम्हारी आदर्श कर्तव्य-निष्ठाको।

वधू-प्रेम

कौसल्याको अपनी पुत्रवधू सीताके प्रति कितना वात्सल्य-प्रेम था, इसका दिग्दर्शन नीचेके कुछ शब्दोंसे होता है। जब सीताजी रामके साथ वन जाना चाहती हैं, तब रोती हुई कौसल्या कहती हैं—

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई ॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढ़ाई। राखेउँ प्रान जानकिहिं लाई ॥

× × ×

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सियँ न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअनमूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहिं टारन कहऊँ ॥

जब सुमन्त श्रीसीता-राम-लक्ष्मणको वनमें छोड़कर अयोध्या आते हैं, तब कौसल्या अनेक प्रकारकी चिन्ता करती हुई पुत्रवधूका कुशल-समाचार पूछती हैं। फिर जब चित्रकूटमें सीताको देखती हैं, तब बड़ा ही दुःख करती हुई कहती हैं—'बेटी ! धूपसे सूखे हुए कमलके समान, मसले हुए कुमुदके समान, धूलसे लिपटे हुए सोनेके समान और बादलोंसे छिपाये हुए चन्द्रमाके समान तेरा यह मलिन मुख देखकर मेरे

हृदयमें जो दुःखरूपी अरणीसे उत्पन्न शोकाग्नि है, वह मुझे जला रही है।'

राम-भरतमें समानभाव और प्रजा-हित

कौसल्या राम और भरतमें कोई अन्तर नहीं मानती थीं। उनका हृदय विशाल था। जब भरतजी ननिहालसे आते हैं और अनेक प्रकारसे विलाप करते हुए एवं अपनेको धिक्कारते हुए, सारे अनर्थोंका कारण अपनेको मानते हुए माता कौसल्याके सामने फूट-फूटकर रोने लगते हैं, तब माता सहसा उठकर आँसू बहाती हुई भरतको हृदयसे लगा लेती हैं और ऐसा मानती हैं मानो राम ही लौट आये। उस समय शोक और स्नेह उनके हृदयमें नहीं समाता, तथापि वे बेटे भरतको धीरज बँधाती हुई कोमल वाणीसे कहती हैं—

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी॥

× × ×

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम्ह रघुपतिहि प्रानहु तें प्यारे॥
बिधु बिष चवै स्रवै हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी॥
भएँ ग्यानु बरु मिटै न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू॥
मत तुम्हार यहु जो जग कहहीं। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं॥
अस कहि मातु भरतु हियँ लाए। थन पय स्रवहिं नयन जल छाए॥

कैसे आदर्श वाक्य हैं! रामकी माता ऐसी न हों तो और कौन होगी। महाराजकी दाह-क्रियाके उपरान्त जब वसिष्ठजी और नगरके लोग भरतको राजगद्दीपर बैठाना चाहते हैं और जब भरत किसी प्रकार भी नहीं मानते, तब माता कौसल्या प्रजाके सुखके लिये धीरज धरकर कहती हैं—

पूत पथ्य गुर आयसु अहई॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी। तजिअ बिषादु काल गति जानी॥
बन रघुपति सुरपति नरनाहू। तुम्ह एहि भाँति तात कदराहू॥
परिजन प्रजा सचिव सब अंबा। तुम्हही सुत सब कहँ अवलंबा॥
लखि बिधि बाम कालु कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि परिजन दुखु हरहू॥

प्रजा-हितका इतना ध्यान श्रीराम-माताको होना ही चाहिये। माताने रामके वन जाते समय भी कहा था—'मुझे इस बातका तनिक भी दुःख नहीं है कि रामको राज्यके बदले वन मिल रहा है, मुझे तो इसी बातकी चिन्ता है कि रामके बिना महाराज दशरथ, पुत्र भरत और प्रजाको महान् क्लेश होगा—

राजु देन कहि दीन्ह बनु मोहि न सो दुख लेसु।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतिहि प्रजहि प्रचंड कलेसु॥

पुत्र-प्रेम

कौसल्याकी पुत्र-वत्सलता आदर्श है। रामके वनवाससे कौसल्याको प्राणान्त क्लेश है, परंतु प्यारे पुत्र श्रीरामकी धर्मरक्षाके लिये कौसल्या उन्हें रोकती नहीं, वरन् कहती हैं—

न शक्यसे वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे॥
यं पालयसि धर्मं त्वं प्रीत्या च नियमेन च।
स वै राघवशार्दूल धर्मस्त्वामभिरक्षतु॥

(वा० रा० २।२५।२-३)

'बेटा! मैं तुझे इस समय वन जानेसे रोक नहीं सकती। तू जा और शीघ्र ही लौटकर आ। सत्पुरुषोंके मार्गका अनुसरण करता रह। तू प्रेम और नियमके साथ जिस धर्मका पालन कर रहा है, वह धर्म ही तेरी रक्षा करे।' इस प्रकार धर्मपर दृढ़ रहने और महात्माओंके सन्मार्गका अनुसरण करनेकी शिक्षा देती हुई माता पुत्रकी मङ्गलरक्षा करती हैं और कहती हैं—

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुँ उचित नृपति बनबासू। बय बिलोकि हियँ होइ हराँसू॥

कर्तव्यपरायणा धर्मशीला त्यागमूर्ति माता कौसल्या इस प्रकार पुत्रको सहर्ष वनमें भेज देती हैं। वियोगके दावानलसे हृदय दग्ध हो रहा है, परंतु पुत्रके धर्मकी टेक और उसकी हर्ष-शोक-रहित सुख-दुःख-शून्य आनन्दमयी मञ्जुल मूर्तिकी ओर देख-देखकर अपनेको गौरवान्वित समझती हैं। यह है सच्चा प्रेम। यहाँ मोहको तनिक भी अवकाश नहीं। भरतजीके सामने कौसल्या गौरवके साथ प्यारे पुत्र श्रीरामकी प्रशंसा करती हुई कहती हैं—'बेटा! महाराजने तेरे बड़े भाई रामको राज्यके बदले वनवास दे दिया, परंतु इससे रामके मुखपर म्लानता भी नहीं आयी—

पितु आयस भूषन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु पहिरे बलकल चीर॥
मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू। सब कर सब बिधि करि परितोषू॥
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी। रहइ न राम चरन अनुरागी॥

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई ॥

यह सब होनेपर भी माताका हृदय पुत्रका मधुर मुखड़ा देखनेके लिये निरन्तर व्याकुल है। चौदह साल बड़ी ही कठिनतासे श्रीरामके ध्रुव सत्य वचनोंकी आशापर बीतते हैं। लंका-विजयकर श्रीराम जब अयोध्या लौटते हैं और जब माताको यह समाचार मिलता है, तब वे सुनते ही इस प्रकार दौड़ती हैं, जैसे गाय बछड़ेके लिये दौड़ा करती है।

कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ॥
जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृहँ चरन बन परबस गईं।
दिन अंत पुर रुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं ॥

बहुत दिनोंके बाद पुत्रका मुख देखकर कौसल्याके प्रेमसमुद्रकी मर्यादा टूट जाती है, वे पुत्रको हृदयसे लगाकर बार-बार सिर सूँघती हैं और कोमल मस्तक तथा मुख-मण्डलपर हाथ फेरती एवं टकटकी लगाकर देखती हुई मनमें बहुत ही आश्चर्य करती हैं कि मेरे इस कलके कोमल कमनीय जरा-से बच्चेने रावण-जैसे प्रबल पराक्रमीको कैसे मारा होगा। मेरे राम-लक्ष्मण तो बड़े ही सुकुमार हैं, ये महाबली राक्षसोंसे कैसे जीते होंगे ?

कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहि। चितवति कृपासिंधु रनधीरहि ॥
हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा ॥
अति सुकुमार जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे ॥

माता ! क्या तुम इस बातको भूल गयीं कि तुम्हारे सुकुमार बारे बालक लीला-संकेतसे ही त्रिभुवनको बनाने-बिगाड़नेवाले हैं। इन्हींकी मायासे सब कुछ हो रहा है। ये तुम्हारे प्रेमके कारण तुम्हारे यहाँ पुत्ररूपसे प्रकट होकर जगत्‌का कल्याण करते हुए तुम्हें सुख पहुँचा रहे हैं। माता तुम धन्य हो !

कौसल्याको अपने धर्मपालनका फल मिलता है, उनका शेष जीवन सुखमय बीतता है और अन्तमें वे श्रीरामके द्वारा तत्त्वज्ञान प्राप्तकर—

रामं सदा हृदि ध्यात्वा छित्त्वा संसारबन्धनम्।
अतिक्रम्य गतीस्तिस्रोऽप्यवाप परमां गतिम् ॥

—'हृदयमें सर्वदा श्रीरामका ध्यान करनेसे संसारबन्धनको छिन्नकर सात्त्विक, राजस, तामस तीनों गतियोंको लाँघकर परम पदको प्राप्त हो जाती हैं।'

माता सुमित्रा

प्रात सुमित्रा नाम जग जे तिय लेहिं सनेम।
तनय लखन रिपुदमन सम पावहिं पति पद प्रेम ॥

महाराज दशरथकी रानियोंकी संख्या कहीं तीन सौ साठ और कहीं सात सौ बतायी जाती है। जो भी हो, महारानी कौसल्या पट्टमहिषी थीं और महारानी कैकेयी महाराजको सर्वाधिक प्रिय थीं। शेषमें श्रीसुमित्राजी ही प्रधान थीं। महाराज छोटी महारानीके भवनमें ही प्रायः रहते थे। सुमित्राजीने उपेक्षित प्रायः महारानी कौसल्याके समीप रहना ही उचित समझा। वे बड़ी महारानीको ही अधिक मानती थीं।

पुत्रेष्टि-यज्ञ समाप्त होनेपर अग्निके द्वारा प्राप्त चरुका आधा भाग तो महाराजने कौसल्याजीको दे दिया। शेषका आधा कैकेयीजीको प्राप्त हुआ। चतुर्थांश जो शेष था, उसके दो भाग करके महाराजने एक भाग कौसल्या तथा दूसरा कैकेयीजीके हाथोंपर रख दिया। दोनों महारानियोंने अपना-अपना वह भाग सुमित्राजीको प्रदान कर दिया। महाराज यदि सुमित्राजीको भाग देते तो सभी रानियोंको देनेका प्रश्न उठता।

समयपर माता सुमित्राने दो हेमगौर तेजस्वी पुत्र प्राप्त किये। उनमेंसे कौसल्याजीके दिये भागके प्रभावसे लक्ष्मणजी श्रीरामके तथा कैकेयीजीके दिये भागके प्रभावसे शत्रुघ्नजी भरतजीके अनुगामी हुए। यों चारों कुमारोंको रात्रिमें माता सुमित्राकी गोदमें ही निद्रा आती थी। सबकी सुख-सुविधाका, लालन-पालनका, क्रीडाका प्रबन्ध माता सुमित्रा ही करती थीं। गोस्वामी तुलसीदासजीने गीतावलीमें बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। अनेक बार माता कौसल्या श्रीरामको अपने पास सुला लेतीं। रात्रिमें जगनेपर वे रोने लगते। माता रात्रिमें ही सुमित्राजीके भवनमें पहुँचकर कहतीं—'सुमित्रा ! अपने रामको लो। इन्हें तुम्हारी गोदके बिना नींद ही नहीं आती। देखो तो रो-रोकर आँखें लाल कर ली हैं।' श्रीराघव सुमित्रा-जीकी गोदमें जाते ही चुप हो जाते।

बड़े होनेपर प्रभु प्रातः उठकर पिता तथा माताओंको

प्रणाम करते। नित्य उन्हें पूछना पड़ता कि मझली मा कहाँ हैं। क्योंकि राजसदनके समस्त प्रबन्धका निरीक्षण, दास-दासियोंकी नियुक्ति, पूजा तथा दानके लिये सामग्रियोंको प्रस्तुत करना, अतिथियोंको आमन्त्रण दिया गया कि नहीं—यह देखना, दैनिक एवं नैमित्तिक उत्सवों, पूजादिकोंकी व्यवस्था करना—सब सुमित्राजीने अपने ऊपर ले लिया था। इन कार्योंमें व्यस्त रहनेके कारण वे प्रातःकाल राजसदनके किसी निश्चित स्थानपर नहीं रहा करती थीं।

× × ×

पितासे वनवासकी आज्ञा पाकर श्रीरामने माता कौसल्यासे तो आज्ञा ली, परंतु सुमित्राजीके समीप वे स्वयं नहीं गये। वहाँ उन्होंने केवल लक्ष्मणजीको भेज दिया। माता कौसल्या अपने पुत्रको रोककर कैकेयीसे विरोध नहीं कर सकती थीं। भगवान्‌के लिये भी माताकी अपेक्षा विमाता कैकेयी शास्त्रके आज्ञानुसार अधिक सम्मान्य थीं। परंतु सुमित्राजीके सम्बन्धमें यह बात नहीं थी। यदि न्यायका पक्ष लेकर वे तेजस्विनी अड़ जायँ तो क्या होगा ? वे श्रीरामको वन न जानेकी आज्ञा निःसंकोच दे सकती थीं। उनके रुष्ट होनेपर कोई भी उनका प्रतीकार करनेमें समर्थ नहीं था। लक्ष्मण और शत्रुघ्न दोनों माताके परम आज्ञाकारी थे। इस प्रकारकी असमंजसमयी स्थितिसे बचनेके लिये ही श्रीरघुनाथजी सुमित्राजीसे आज्ञा लेने नहीं गये। लक्ष्मणजीको आज्ञा माँगनेपर माता सुमित्राने जो आज्ञा दी है, उसे श्रीरामचरितमानससे ज्यों-का-त्यों उद्धृत किया जा रहा है। माताके विशाल हृदयका इससे विशद परिचय और कहीं भी प्राप्त होना दुर्लभ है—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानु प्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुर पितु मातु बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रानप्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥
भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥
पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥

× × ×

सकल सुकृत कर बड़ फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

माताने इस प्रकार पुत्रको केवल आज्ञा ही नहीं दी, ***'पुत्रवती जुबती'*** आदिसे उन्होंने नारी-जीवनकी सफलता भी बतलायी। आज्ञाके साथ आशीर्वाद दिया—

रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई।

माता सुमित्राका ही वह आदर्श हृदय था। प्राणाधिक पुत्रको निःसंकोच उन्होंने कह दिया—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम्॥

× × ×

चित्रकूटमें माता सुमित्राकी नीतिज्ञताका बड़ा मनोहर परिचय हमें मिलता है। श्रीजनकजीकी महारानी सुनयनाका कैकेयीपर अपार रोष है। कौसल्याजीके बार-बार समझानेपर भी उनका चित्त शान्त नहीं होता। ***'सुनिअ सुधा देखिअहिं गरल'*** के समान कटूक्तियाँ वे सुनाती जा रही हैं। सहसा सुमित्राजीने ***'देबि दंड जुग जामिनि बीती।'*** कहकर इस प्रसंगको ही समाप्त कर दिया है।

दूसरी बार हमें उनके उसी गौरवमय हृदयका परिचय मिलता है, जिस गौरवसे उन्होंने लक्ष्मणको वन जानेकी आज्ञा दी थी। 'लंकामें घोर युद्ध हो रहा है। लक्ष्मण रणभूमिमें आहत होकर मूर्च्छित हो गये हैं।' यह समाचार धौलागिरि लेकर जाते हुए हनुमान्‌जीने भरतजीके बाणसे आहत होकर गिरनेपर दिया। अयोध्यामें अत्यन्त उदासी और व्याकुलता छा गयी—

'छिन छिन गात सुखात मातु के छिन छिन होत हरे हैं।'

उस समय माता सुमित्राकी मनोदशा विचित्र हो गयी। 'लक्ष्मण—मेरा पुत्र, श्रीरामके लिये सम्मुख युद्धमें वीरतापूर्वक लड़ता हुआ गिरा है। अहा ! मैं धन्य हो गयी।' प्रसन्नतासे वे खिल उठीं। पर दूसरे ही क्षण—'ओह !

शत्रुओंके मध्यमें श्रीराम अकेले रह गये!' यह सोचते ही उनका मुख सूख गया। पर तुरंत ही 'क्या चिन्ता है, अभी शत्रुघ्न तो है ही।' एक निश्चयपर आकर उन्होंने संतोष व्यक्त किया। पुत्रको तुरंत आज्ञा दी— *'तात जाहु कपि संग।'* ऐसी जननीका पुत्र प्रमादी या भीरु नहीं हुआ करता। ***'रिपुसूदन उठि कर जोरि खरे हैं।'*** आज्ञाका पालन हुआ। महर्षि वसिष्ठने नहीं रोका होता तो माता अपने छोटे पुत्रको भी श्रीरामकी सेवामें लंका भेजनेसे रुकती नहीं। उन्होंने लक्ष्मणको आज्ञा देते समय कहा था—

'राम सीय सेवा सुचि ह्वै हौ, तब जानिहौं सही सुत मेरे।'

और इस सेवाकी अग्निमें तपकर जब उनका लाल तप्त विशुद्ध काञ्चनकी भाँति अधिक उज्ज्वल होकर लौटा, तभी उन्होंने उसे हृदयसे लगाया। धन्य!

भक्तहृदया माता कैकेयी

उस समय महाराज दशरथके आश्चर्यकी सीमा न रही, जब उन्हें विदित हुआ कि 'मेरी अनिन्द्यसुन्दरी पत्नी कैकेयी अत्यन्त सरल, बुद्धिमती एवं साध्वी ही नहीं, अपितु अनुपम वीराङ्गना भी है। केकयराजकी इस लाड़ली पुत्रीने एक बार मेरे सारथिके हत हो जानेपर स्वयं सारथिका कार्य कर मेरे प्राणोंकी रक्षा की थी और दूसरी बार उसने मेरे रथके धुरेके टूट जानेपर उसके स्थानपर अपना हाथ लगा दिया। कितने साहस और धैर्यका परिचय दिया था इसने? यह पीड़ासे छटपटा उठी थी, इसके नेत्रोंके कोये काले पड़ गये थे, पर इसने उफतक नहीं की और सच भी यही है कि यदि शम्बरासुरके साथ होनेवाले भयानक युद्धमें मेरी सेवाके लिये वीराङ्गना कैकेयी मेरे साथ नहीं होती तो मेरी प्राण-रक्षा सम्भव नहीं थी।'

'तुम मुझसे कोई वर माँग लो।' आनन्द एवं कृतज्ञतासे भरे महाराज दशरथने अपनी आदर्श पत्नीसे साग्रह कहा।

'आप मुझपर प्रसन्न रहें—बस, इतना ही मुझे अभीष्ट है।' पतिपरायणा कैकेयीको किसी वरकी आवश्यकता नहीं थी। वे तो पतिके सुख एवं उनकी सेवासे ही संतुष्ट थीं।

'नहीं, तुम दो वर मुझसे माँगो।' महाराज दशरथने विशेष आग्रह किया।

'अच्छा, कभी माँग लूँगी।' त्यागमयी कैकेयीने महाराज दशरथकी विचारधारा मोड़नेके लिये कह दिया।

श्रीरामको युवराज-पद देनेका निश्चय हुआ। उस समय भरत और शत्रुघ्न ननिहालमें थे। कारण जो भी रहा हो, महाराज दशरथने भरत और शत्रुघ्नको उक्त शुभ समारोहपर बुलाना आवश्यक नहीं समझा। कैकय-नरेशको भी निमन्त्रण नहीं भेजा गया। कहा जाता है कि कैकेयीसे परिणयके समय महाराज दशरथने इन्हींके पुत्रको राज्यका उत्तराधिकारी स्वीकार किया था, किंतु अपने वंशकी प्रथा एवं श्रीरामके प्रति अत्यधिक अनुरागके कारण उन्हें युवराज-पदपर अभिषिक्त करनेकी सारी तैयारी कर ली गयी। महारानी कैकेयीके पास भी यह समाचार नहीं पहुँच पाया। महारानी कैकेयी इस बातसे पूर्णतया परिचित थीं कि 'इस राज्य-पदका अधिकारी मेरा पुत्र भरत है।' किंतु कैकेयी रघुवंशकी मर्यादा एवं श्रीरामके प्रति स्नेहके कारण उनके युवराज बनाये जानेका संवाद सुनते ही आनन्दमग्न हो गयीं। उनकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं थी। दासी मन्थराके द्वारा यह समाचार पाते ही अत्यन्त हर्षमें भरकर उन्होंने उसे तुरंत एक बहुमूल्य आभूषण प्रदान किया—

'दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्॥'

(वा० रा० २। ७। ३२)

और उससे कहा—

इदं तु मन्थरे मह्यमाख्यातं परमं प्रियम्।
एतन्मे प्रियमाख्यातं किं वा भूयः करोमि ते॥
रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात् तुष्टास्मि यद् राजा रामं राज्येऽभिषेक्ष्यति॥
न मे परं किंचिदितो वरं पुनः
प्रियं प्रियार्हे सुवचं वचोऽमृतम्।
तथा ह्यवोचस्त्वमतः प्रियोत्तरं
वरं परं ते प्रददामि तं वृणु॥

(वा० रा० २। ७। ३४—३६)

'मन्थरे! यह तूने बड़ा ही प्रिय समाचार सुनाया। तूने मेरे लिये जो यह प्रिय संवाद सुनाया, इसके लिये मैं तेरा और कौन-सा उपकार करूँ? मैं भी राम और भरतमें कोई भेद नहीं

समझती। अतः यह जानकर कि राजा श्रीरामका अभिषेक करनेवाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है। मन्थरे ! तू मुझसे प्रिय वस्तु पानेके योग्य है। मेरे लिये श्रीरामके अभिषेकसम्बन्धी इस समाचारसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय एवं अमृतके समान मधुर वचन नहीं कहा जा सकता। ऐसी परम प्रिय बात तुमने कही है, अतः अब यह प्रिय संवाद सुननेके बाद तू कोई श्रेष्ठ वर माँग ले, मैं उसे अवश्य दूँगी।'

महारानी कैकेयीकी इस हर्षपूरित वाणीको सुनते ही मन्थराने उनके दिये हुए आभूषणको उठाकर फेंक दिया एवं वह श्रीरामके विरुद्ध कितनी ही बातें कहने लगी। मन्थराकी इन बातोंको सुननेपर भी कैकेयी श्रीरामके धर्मज्ञान, गुण, जितेन्द्रियता, कृतज्ञता, सत्यवादिता एवं पवित्रता आदिका ही बखान करती रहीं।

इतनेपर भी मन्थरा जब महाराज दशरथ और श्रीरामकी निन्दा करने लगी, तब महारानी कुपित हो गयीं। उन्होंने मन्थराको डाँटते हुए कहा—

पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावउँ तोरी॥

(रा॰ च॰ मा॰ २।१४।८)

'यह तो मङ्गल एवं अभ्युदयका शुभ अवसर है। इस समय तेरे मनमें जलन कैसी?' महारानी कैकेयीने मन्थरासे कहा—

कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभायँ पिआरी॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी॥
जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्ह कें तिलक छोभु कस तोरें॥

(रा॰ च॰ मा॰ २।१५।५—८)

इन थोड़ी-सी पंक्तियोंसे स्पष्ट पता चल जाता है कि महारानी कैकेयी श्रीरामको कितना अधिक प्यार करती थीं और उन्हें श्रीरामके राज्याभिषेकमें कितना आनन्द एवं प्रसन्नता थी। इसके अनन्तर दासी मन्थराके बहकानेसे लक्ष्मण और सीता-सहित श्रीरामको चौदह वर्षके लिये अरण्यवास करना पड़ा। यह अस्वाभाविक एवं परम अमङ्गलमय दुःखद घटना कैसे घट गयी? जो कैकेयी अपने पवित्र रघुवंशकी मर्यादाका ध्यान ही नहीं रखती थीं, बल्कि श्रीरामको प्राणाधिक प्यार करती थीं, अत्यन्त शीलवती साध्वी नारी थीं, श्रीरामके राज्याभिषेकके संवादसे प्रमुदित होकर मन्थराको बहुमूल्य आभूषण ही नहीं दिया, उसे मुँहमाँगी वस्तु देनेके लिये वचन दे चुकी थीं, मन्थराकी विपरीत बात सुनकर उसकी जीभतक खिंचानेकी बात कुछ ही क्षण पूर्व कह चुकी थीं, उनके द्वारा ऐसा अनर्थकारी कार्य कैसे हो गया, जिससे वे सदाके लिये दुष्टा और पापिनी कहलायीं? श्रीरामके प्रति भरतकी अद्भुत आदर्श प्रीति एवं भक्तिसे परिचित होकर भी उन्होंने भरतके लिये राज्य एवं श्रीरामके लिये अरण्यवासका वरदान कैसे माँगा?

इसमें मुख्यतया दो हेतु प्रतीत होते हैं—

(१) कैकेयीने भगवान् श्रीरामकी लीलामें सहायता करनेके लिये जन्म लिया था। वे श्रीरामको साक्षात् परमात्मा समझती थीं, इसी कारण उनके द्वारा इस प्रकारके वरदानकी याचना हुई। यदि श्रीरामका राज्याभिषेक हो जाता तो वे वनमें नहीं जाते और वन-गमनके बिना ऋषि-मुनियोंको दर्शन, सीता-हरण तथा रावण-वध आदि क्रियाएँ नहीं हो पातीं। साधु-परित्राण एवं दुष्ट-विनाश—अवतारके ये प्रमुख कार्य नहीं हो पाते।

(२) महाराज दशरथका मृत्यु-काल निकट था। उसके लिये भी किसी निमित्तकी अपेक्षा थी और वह निमित्त महारानी कैकेयीको बनना पड़ा।

दूसरी ओर कमलनयन श्रीरामका राज्याभिषेक न हो, इसके लिये देवसमुदाय प्रयत्नशील था ही—

एतस्मिन्नन्तरे देवा देवीं वाणीमचोदयन्।
गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयत्नतः॥
रामाभिषेकविघ्नार्थं यतस्व ब्रह्मवाक्यतः।
मन्थरां प्रविशस्वादौ कैकेयीं च ततः परम्॥
ततो विघ्ने समुत्पन्ने पुनरेहि दिवं शुभे।
तथेत्युक्त्वा तथा चक्रे प्रविवेशाथ मन्थराम्॥

(अ॰ रा॰ २।२।४४—४६)

'इसी समय देवताओंने सरस्वती देवीसे आग्रह किया—'देवि! तुम यत्नपूर्वक भूलोकस्थित अयोध्यापुरीमें जाओ और वहाँ ब्रह्माजीकी आज्ञासे रामचन्द्रजीके राज्याभिषेकमें विघ्न उपस्थित करनेके लिये यत्न करो। प्रथम तो तुम मन्थरामें प्रवेश करना और फिर कैकेयीमें। शुभे! इस प्रकार विघ्न

उपस्थित हो जानेपर तुम फिर स्वर्गलोकको लौट आना।' इसपर सरस्वतीने 'बहुत अच्छा' कहकर वैसा ही किया और मन्थरामें प्रवेश किया[१]।'

जगन्नियन्ता श्रीरामकी प्रेरणासे सुरोंके द्वारा प्रेरित होकर जब सरस्वती देवीने कैकेयीकी बुद्धि बदल दी, तब ***'सुरमाया बस बैरिनिहि सुहद जानि पतिआनि ॥'*** और ***'भावी बस प्रतीति उर आई।'***

इस प्रकार सुस्पष्ट है कि श्रीरामकी परम अन्तरङ्ग प्रेमपात्री महारानी कैकेयीने प्रभुकी लीलामें बड़ी सहायता की और इस सहायतामें उन्होंने अपने लिये चिरकालिक अपयश एवं कलङ्क ग्रहण किया। पापिनी, कलङ्किनी, कुलघातिनी आदि शब्दोंको उन्होंने प्रभुकी सेवाके निमित्त सर्वथा मौन होकर सदाके लिये स्वीकार कर लिया।

पर वे सर्वथा निर्दोष ही नहीं, प्रभुके अत्यधिक प्रेमी भक्तोंमें भी सम्मानित हैं। श्रीरामके वियोगमें विकल-विह्वल भरतजी चित्रकूट जाते समय जब भरद्वाजमुनिसे मिले, तब भरद्वाजजीने उनसे कहा था—

न दोषेणावगन्तव्या कैकेयी भरत त्वया।
रामप्रव्राजनं ह्येतत् सुखोदर्कं भविष्यति ॥
देवानां दानवानां च ऋषीणां भावितात्मनाम्।
हितमेव भविष्यद्धि रामप्रव्राजनादिह ॥

(वा० रा० २।९२।३०-३१)

'भरत! तुम कैकेयीके प्रति दोष-दृष्टि न करो। श्रीरामका यह वनवास भविष्यमें बड़ा ही सुखद होगा। श्रीरामके वनमें जानेसे देवताओं, दानवों तथा परमात्माका चिन्तन करनेवाले महर्षियोंका इस जगत्में हित ही होनेवाला है[२]।'

चित्रकूटमें जब भरतजीने श्रीरामको लौटनेके लिये विशेष आग्रह किया, तब प्रभुके संकेतसे वसिष्ठजीने भरतजीको एकान्तमें ले जाकर कहा—'आज मैं तुमसे एक सुनिश्चित गुप्त रहस्य बताता हूँ। भगवान् राम साक्षात् नारायण हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर उन्होंने रावणको मारनेके लिये दशरथके यहाँ पुत्ररूपसे जन्म लिया है। इसी प्रकार योगमायाने जनकनन्दिनी सीताके रूपमें अवतार ग्रहण किया है और शेषजी लक्ष्मणके रूपमें अवतरित होकर उनका अनुगमन कर रहे हैं। ये रावणको मारना चाहते हैं, इसलिये निस्संदेह वनको ही जायँगे।'

कैकेय्या वरदानादि यद्यन्निष्ठुरभाषणम्॥
सर्वं देवकृतं नो चेदेवं सा भाषयेत् कथम्।
तस्मात् त्यजाग्रहं तात रामस्य विनिवर्तने ॥

(अ० रा० २।९।४५-४६)

'कैकेयीके वरदान और निष्ठुर भाषण आदि जो कुछ भी कार्य हैं, वे सब देवताओंकी प्रेरणासे ही हुए हैं, नहीं तो वह ऐसे वचन कैसे बोल सकती थी। इसलिये हे तात! तुम रामको लौटानेका आग्रह छोड़ दो।'

फिर तो भरतजी प्रभुकी पादुका लेकर अयोध्या लौटनेकी तैयारी करने लगते हैं और माता कैकेयी एकान्तमें प्रभुसे मिलती हैं। उनके नेत्रोंमें आँसू भरे होते हैं। अत्यन्त दुःखी होकर वे कहती हैं—'हे राम! मायासे मोहित होकर मैंने बहुत बड़ा अपकर्म किया है, किंतु आप मेरी कुटिलताको क्षमा कर दें, क्योंकि साधुजन सर्वदा क्षमाशील ही होते हैं। देवताओंका कार्य सिद्ध करनेकी दृष्टिसे आपने ही मुझसे यह कर्म करवाया है। अब मैंने आपको पहचान लिया है, आप देवताओंके भी मन और वाणी आदिसे परे हैं।'

पाहि विश्वेश्वरानन्त जगन्नाथ नमोऽस्तु ते।
छिन्धि स्नेहमयं पाशं पुत्रवित्तादिगोचरम्॥
त्वज्ज्ञानानलखड्गेन त्वामहं शरणं गता।

१-सारद बोलि बिनय सुर करहीं। बारहिं बार पाय लै परहीं॥
बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु।
रामु जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु॥ (रा० च० मा० २।११।८, ११)
नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकइ केरि।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि॥ (रा० च० मा० २।१२)

२-तुम्ह गलानि जियँ जनि करहु समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं गई गिरा मति धूति॥ (रा० च०मा० २।२०६)

'हे विश्वेश्वर ! हे अनन्त ! आप मेरी रक्षा कीजिये। हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है। हे प्रभो ! मैं आपकी शरण हूँ। आप अपने ज्ञानाग्निरूप खड्गसे मेरे पुत्र और धन आदिके स्नेह-बन्धनको काट डालिये।'

कैकेयीके ये अत्यन्त श्रद्धा-भक्तिपूर्ण, सर्वथा सरल एवं स्पष्ट वचन सुनकर हँसते हुए भगवान् श्रीरामने उनसे कहा—

यदाह मां महाभागे नानृतं सत्यमेव तत्।
मयैव प्रेरिता वाणी तव वक्त्राद् विनिर्गता॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थमत्र दोषः कुतस्तव।
गच्छ त्वं हृदि मां नित्यं भावयन्ती दिवानिशम्॥
सर्वत्र विगतस्नेहा मद्भक्त्या मोक्ष्यसेऽचिरात्।
अहं सर्वत्र समदृक् द्वेष्यो वा प्रिय एव वा॥
नास्ति मे कल्पकस्येव भजतोऽनुभजाम्यहम्।
मन्मायामोहितधियो मामम्ब मनुजाकृतिम्॥
सुखदुःखाद्यनुगतं जानन्ति न तु तत्त्वतः।
दृष्ट्या मद्गोचरं ज्ञानमुत्पन्नं ते भवापहम्॥
स्मरन्ती तिष्ठ भवने लिप्यसे न च कर्मभिः।

(अ० रा० २।९।६३—६८)

'महाभागे ! तुमने जो कुछ कहा है, वह ठीक ही है, मिथ्या नहीं। मेरी प्रेरणासे ही देवताओंकी कार्यसिद्धिके लिये तुम्हारे मुखसे वे शब्द निकले थे। इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। अब तुम जाओ। अहर्निश निरन्तर हृदयमें मेरी ही भावना करनेसे तुम सर्वत्र स्नेहरहित होकर मेरी भक्तिद्वारा शीघ्र ही मुक्त हो जाओगी। मैं सर्वत्र समदर्शी हूँ, मेरा कोई भी प्रिय या अप्रिय नहीं है।'

'मायावी पुरुष जिस प्रकार अपनी ही मायासे रचे पदार्थोंमें राग-द्वेष नहीं करता, उसी प्रकार मेरा भी किसीमें राग-द्वेष नहीं है। जो पुरुष जिस प्रकार मेरा भजन करता है, मैं भी वैसे ही उसका ध्यान रखता हूँ। हे मातः ! मेरी मायासे मोहित होकर लोग मुझे सुख-दुःखके वशीभूत साधारण मनुष्य जानते हैं। वे मेरे वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। तुम्हारा बड़ा भाग्य है, जो तुम्हारे अंदर संसार-भयको दूर करनेवाला मेरा तत्त्वज्ञान उत्पन्न हुआ है। तुम मेरा स्मरण करती हुई घरमें ही रहो, इससे तुम कर्म-बन्धनमें नहीं बँधोगी।'

भगवान् श्रीरामकी वाणीसे स्पष्ट हो जाता है कि भक्त-हृदया कैकेयी परम पुण्यमयी, महाभाग्यवती एवं सर्वथा निर्दोष थीं। वे तत्त्वज्ञान-सम्पन्न थीं। उन्होंने भगवान् श्रीरामकी लीलामें सहयोग देनेके लिये, बिना किसी लौकिक स्वार्थके, शुद्ध राम-काजके निमित्त, सदाके लिये अपकीर्तिको वरण कर लिया। वे उच्चकोटिकी प्रभुभक्त थीं। भरत-जैसे श्रीरामके अनन्य भक्तकी वे जननी थीं। ऐसी माता कैकेयी तिरस्कार एवं लांछनाके योग्य नहीं, वे तो सदा ही पूजनीया और प्रणम्या हैं।

रामसेवक श्रीलक्ष्मण और देवी उर्मिला

रामायणमें रामसेवाव्रती श्रीलक्ष्मणजीका तथा उनकी धर्मपत्नी श्रीउर्मिलादेवीजीका चरित्र बड़ा ही अनुपम है। लोग कहेंगे कि 'उर्मिलाके चरित्रका तो रामायणमें कहीं वर्णन ही नहीं है, फिर वह अनुपम कैसे हो गया ?' वास्तवमें उनके चरित्रके सम्बन्धमें कविका मौनावलम्बन ही चरित्रकी परम उच्चताका सूचक है। उनका चरित्र इतना महान् त्यागपूर्ण है कि कविकी लेखनी उसका चित्रण करनेमें अपनेको असमर्थ पाती है। सीताजी श्रीरामके साथ वन जानेके लिये आग्रह करती हैं और न ले जानेपर प्राण-परित्यागके लिये प्रस्तुत हो जाती हैं, यद्यपि ऐसा करना उनका अधिकार था और इसीलिये श्रीराम अपने पहले वचनोंको पलटकर उन्हें साथ ले गये। श्रीरामने जो सीताजीको घर-नैहरमें रहनेका उपदेश दिया था, वह तो लोक-शिक्षा, सती-पतिव्रताके परम आदर्शकी स्थापना और पत्नीके प्रति पतिके कर्तव्यकी सत्-शिक्षाके लिये था। वास्तवमें सीताको श्रीरामजी वनमें ले जाना ही चाहते थे; क्योंकि उनके गये बिना रावण अपराधी नहीं होता और ऐसा हुए बिना उसकी मृत्यु असम्भव थी, जो अवतारधारणका एक प्रधान कार्य था। श्रीसीताजी साक्षात् जगन्नायिका और श्रीराम सच्चिदानन्दघन जगदीश्वर थे। वे उनसे अलग कभी रह ही नहीं सकतीं। केवल पातिव्रत्यकी बात होती तो सीताजी भी शायद उर्मिलाकी भाँति अयोध्यामें रह जातीं। उर्मिला सीताजीकी छोटी बहिन थीं, परम पतिव्रता थीं। बड़ी बहिन सीताजी जैसे अपने स्वामी श्रीराममें अनुरक्ता और सेवाव्रतधारिणी थीं, वैसे ही उर्मिला भी थीं। वे भी सीताकी भाँति ही साथ जानेके लिये

प्रेमाग्रह कर सकती थीं; परंतु उनके घर रहनेमें ही श्रीरामकाजमें सुविधा थी, जिसमें सेवक बनकर रहना उनके पतिका एकमात्र धर्म था और जिसमें उर्मिला पूर्ण सहमत और सहायक थीं। इन्द्रजित् मेघनादको वरदान था कि जो महापुरुष लगातार बारह वर्षतक फल-मूल खायेगा, निद्राका त्याग करेगा और अखण्ड ब्रह्मचर्यका पालन करेगा, उसीके हाथोंसे मेघनादका मरण होगा। इसलिये जैसे रावण-वधमें कारण बननेके लिये सीताजीका श्रीराम-लीलामें सहयोगिनी बनकर वन जाना आवश्यक था, वैसे ही लक्ष्मणजीका भी रामलीला-में शामिल होनेके लिये तीव्र महाव्रत-पालनपूर्वक मेघनाद-वधके लिये वन जाना आवश्यक था और ठीक इसी तरह उर्मिलाजीको भी रामलीलाको सुचारुरूपसे सम्पन्न करानेके लिये ही, जो दम्पतिके जीवनका व्रत था, घरपर रहना आवश्यक था। उर्मिलाजी साथ जातीं, तब भी लक्ष्मणजीका महाव्रतपालन होना कठिन था और वे घरपर रहते, तब तो कठिन था ही।

यह बात श्रीलक्ष्मणजीने उर्मिलाजीको अवश्य समझा दी होगी या महान् विभूति होनेके कारण वे इस बातको समझती ही होंगी। इसीसे उन्होंने पतिके साथ जानेके लिये एक शब्द भी न कहकर आदर्श पातिव्रत-धर्मका वैसा ही पालन किया, जैसा श्रीसीताजीने साथ जानेके लिये प्रेमाग्रह करके किया था। घर रहनेमें ही पति श्रीलक्ष्मणजीका सेवाधर्म सम्पन्न होता है; जिन श्रीरामकी सेवाके लिये लक्ष्मणजी अवतीर्ण हुए थे, वह सेवाकार्य इसीमें सफल होता है—यह बात जाननेके बाद आदर्श पतिव्रता देवी उर्मिला कैसे कुछ कह सकती थीं। वे आजकलकी भाँति भोगकी भूखी तो थीं ही नहीं। पतिकी धर्मरक्षामें सहायक होना ही पत्नीका धर्म है, इस बातको वे खूब समझती थीं और यही उर्मिलाजीने किया।

लोग कहते हैं कि 'लक्ष्मण बड़े निष्ठुर थे; राम तो सीताको साथ ले गये, परंतु लक्ष्मणने तो उर्मिलासे बाततक नहीं की।' पर वे क्या बात करते; वे इस बातको खूब जानते थे कि 'मेरा और मेरी पत्नीका एक ही धर्म है। मेरे धर्मपालनमें मद्गतप्राणा कर्तव्य-परायणा प्रेममयी उर्मिलाको सदा ही बड़ा आनन्द मिलता है। वह धर्मके लिये सानन्द मेरा बिछोह सह सकती है। जनकपुरसे ब्याहकर आनेके बाद बारह वर्षोंमें लक्ष्मणजीकी अनुगामिनी सती उर्मिलाने अपना रामसेवा-धर्म निश्चय कर लिया था; उसी निश्चयके अनुसार पतिको रामसेवामें भेजनेके लिये वीराङ्गना उर्मिला भी उसी प्रकार सम्मत और प्रसन्न थीं, जैसे लक्ष्मण-माता वीर-प्रसविनी देवी सुमित्राजी प्रसन्न थीं। धर्मपरायणा वीराङ्गनाएँ अपने पति-पुत्रोंको हँसते-हँसते रणाङ्गणमें भेजा ही करती हैं, वैसे ही यहाँ सुमित्रा और उर्मिलाने भी किया। अवश्य ही उर्मिला कुछ बोली नहीं; परंतु यहाँ न तो बोलनेका अवकाश था और न धर्ममें नित्य हार्दिक सम्मति होनेके कारण बोलनेकी आवश्यकता ही थी तथा न मर्यादा ही ऐसी आज्ञा देती थी। सेवा-धर्ममें तत्पर निःस्वार्थ सेवकको तुरंत करने योग्य प्रबल मनचाहा सेवाकार्य सामने आ पड़नेपर सलाह-मशविरेके लिये न तो अवकाश ही रहता है और न उसकी सहधर्मिणी पत्नी भी इससे दुःख मानती है; क्योंकि वह अपने पतिकी स्थितिसे भलीभाँति परिचित होती है और उसके प्रत्येक त्यागपूर्ण महान् कार्यका अनुमोदन करना ही अपना धर्म समझती है।

एक बात और है, सेवक परतन्त्र होता है। स्वामी श्रीराम तो स्वतन्त्र थे, वे अपने साथ जानकीजीको ले गये। परंतु परतन्त्र, सेवापरायण लक्ष्मण भी यदि उर्मिलाको साथ ले जाना चाहते तो यह अनुचित होता; उन्हें रामजीकी सम्मति लेनी पड़ती। श्रीरामजी जहाँ वनमें सीताजीको साथ ले जानेमें ही आपत्ति करते थे, वहाँ वे उर्मिलाको साथ ले जानेमें कैसे सहमत होते। जो कार्य स्वामीकी रुचिके प्रतिकूल हो, उसकी कल्पना भी सच्चे सेवकके चित्तमें उत्पन्न नहीं हो सकती। इसी प्रकार पतिकी रुचिके प्रतिकूल कल्पना सती पतिव्रता पत्नीके हृदयमें नहीं उठ सकती। उर्मिला परम पतिव्रता थीं, लक्ष्मण इसको जानते थे। धर्मपालनमें उनकी चिरसम्मति उन्हें प्राप्त थी। एक बात यह भी है कि लक्ष्मणजी सेवाके लिये वन जाना चाहते थे, सैरके लिये नहीं। पत्नीको साथ ले जानेसे उसकी देखभालमें भी इनका समय जाता तथा दो स्त्रियोंके सँभालनेका भार श्रीरामपर पड़ता। सेवक अपने स्वामीको संकोचमें कभी नहीं डाल सकता, लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनों ही इस बातको जरूर समझते थे। अतएव उन्होंने कोई निष्ठुरताका बर्ताव नहीं किया, प्रत्युत इसीमें लक्ष्मणजी और उर्मिलाजी दोनोंकी सच्ची महिमा है।

वनवासमें श्रीलक्ष्मणजीके व्रतपालनका महत्त्व देखिये। वे दिन-रात श्रीसीतारामके पास रहते हैं। कंद-मूल-फल ला देना, पूजाकी सामग्री जुटा देना, आश्रमको झाड़ना-बुहारना, वेदिकापर चौका लगा देना, श्रीसीतारामकी रुचिके अनुसार उनकी हर प्रकारकी सेवा करना और दिन-रात सजग रहकर वीरासनसे बैठे, राममें मन लगाये, राम-नाम जपते हुए पहरा देना ही उनका कार्य है। वे अपने कार्यमें बड़े ही तत्पर हैं। ब्रह्मचर्यव्रतका पता तो इसीसे लग जाता है कि माता सीताकी सेवामें सदा प्रस्तुत रहनेपर भी उन्होंने उनके चरणोंको छोड़कर अन्य किसी अङ्गका कभी दर्शनतक नहीं किया। यह बात इसीसे सिद्ध है कि लक्ष्मणजी सीताजीके गहनोंको पहचान नहीं सके। जब रावण श्रीसीताजीको आकाशमार्गसे ले जा रहा था, तब उन्होंने पहाड़पर बैठे हुए वानरोंके दलमें कुछ गहने डाल दिये थे। श्रीराम-लक्ष्मण सीताको खोजते हुए जब हनुमान्जी-की प्रेरणासे सुग्रीवके पास पहुँचे, तब सुग्रीवने श्रीरामको वे गहने दिखलाये। श्रीरामके पूछनेपर लक्ष्मणजी बोले—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

(वा० रा० ४। ६। २२)

'स्वामिन्! मैं इन केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचानता। मैंने तो प्रतिदिन चरणवन्दनके समय माताजीके नूपुर देखे हैं, अतः उन्हें पहचान सकता हूँ।' आजकलके देवरोंको इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। श्रीलक्ष्मणजीके इस महान् व्रतपर श्रीरामका बड़ा भारी विश्वास था, इस बातका पता इसीसे लगता है कि वे मर्यादापुरुषोत्तम होनेपर भी लक्ष्मणजीके साथ सीताजीको अकेले बेधड़क छोड़ देते थे। जब खर-दूषण भगवान्के साथ युद्धके लिये आये थे, तब श्रीरामने जानकीजीको लक्ष्मणजीकी संरक्षकतामें एकान्त गिरिगुहामें भेज दिया था—

'राम बोलाइ अनुज सन कहा॥'
'लै जानकिहि जाहु गिरि कंदर।'

(रा० च० मा० ३। १८। १०-११)

मायामृगको मारनेके समय भी सीताके पास आप लक्ष्मणजीको छोड़ गये थे और निर्वासनके समय भी लक्ष्मणजीको ही सीताके साथ भेजा था।

लक्ष्मणजीका सेवा-व्रत तपपूर्ण था। उन्होंने बारह सालतक लगातार श्रीरामसेवामें रहकर कठिन तपस्या की, इसी कारण वे मेघनादको मारकर राम-काजमें सहायक बन सके थे। तपस्यामें उनका उद्देश्य भी यही था; क्योंकि वे श्रीरामको छोड़कर दूसरी बात न तो जानते थे और न जानना चाहते ही थे। उन्होंने स्वयं कहा है—

गुर पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबंधु उर अंतरजामी॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही॥

(रा० च० मा० २। ७२। ४—७)
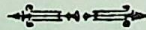
श्रीशत्रुघ्नकुमारजी

रिपुसूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥

संसारमें भगवान्के कई प्रकारके भक्त होते हैं। सबके आचार तथा सबके व्यवहार भिन्न-भिन्न प्रकारके होते हैं। शत्रुघ्नकुमार उन सब भक्तोंमें विलक्षण हैं। वे मूक कर्मयोगी हैं। उन्हें न कुछ कहना रहता, न पूछना रहता। भगवान्के भक्तका अनुगमन करना, भक्तकी सेवा करना, भक्तके ही पीछे लगे रहना—यह सबसे सुगम साधन है। भगवान् क्या करते हैं, कब कृपा करेंगे, कैसे कृपा करेंगे—इन बातोंको सोचना छोड़कर किसी सच्चे प्रेमी संतकी शरण ले लेना और निश्चिन्त होकर उसकी सेवा करना, उसीपर अपनेको छोड़ देना अनेक महाभाग पुरुषोंमें देखा गया है। शत्रुघ्नकुमारने भी इसी प्रकार भगवान्के परम प्रिय भक्त श्रीभरतलालजीकी सेवाको अपना आदर्श बना लिया था और इससे वे कभी भी विचलित नहीं हुए।

शत्रुघ्नजीके विषयमें ग्रन्थोंमें बहुत ही कम चर्चा आयी है; पर जो आयी है, उससे उनकी एकान्त निष्ठाका पूरा परिचय मिलता है। उन्होंने भरतजीका आश्रय लिया और फिर एक बार भी उस आश्रयसे पृथक् नहीं हुए। कोई भी यह सोचतक नहीं सकता था कि शत्रुघ्न कभी भरतसे अलग रह सकते हैं। चित्रकूटमें परीक्षाके लिये जब वसिष्ठजीने भरतलालसे

कहा—'श्रीराम-लक्ष्मण अयोध्या लौट जायँ और तुम दोनों भाई वनको जाओ।' तब बिना एक क्षणके विलम्बके भरतजीने इसे स्वीकार कर लिया। शत्रुघ्नसे भी पूछना चाहिये, यह सोचनेकी आवश्यकता मानना तो शत्रुघ्नके भावपर अविश्वास करना होता।

एक बार ननिहालसे जब भरत-शत्रुघ्न लौटे, तब मन्थरापर छोटे कुमारका रोष प्रकट हुआ। वे उस कुटिलाको बहुत कठोर दण्ड देना चाहते थे। दया करके भरतजीने उन्हें रोक दिया। इसके पश्चात् वे शान्त हो गये। फिर किसीसे वे रुष्ट नहीं हुए। चित्रकूटसे लौटनेपर भरतजी नन्दिग्राममें तपस्वी बनकर रहने लगे। माताओंकी, राजपरिवारकी, सेवकोंकी—सभीकी व्यवस्थाका भार शत्रुघ्नजीपर पड़ा। शत्रुघ्नजीको क्या किसीसे कम दुःख था? श्रीरामके वनवाससे उन्हें कम पीड़ा हुई थी? ऐसी व्यथामें सारे भोग-सुख काटने दौड़ते हैं। उस समय सब कुछ छोड़कर व्रत, उपवास, संयम, नियम, तप करनेसे आत्मतोष होता है। हृदयकी पीड़ा कुछ घटती है। परंतु जब हृदय पीड़ासे हाहाकार कर रहा हो, जब वस्त्र-आभूषण जलती अग्नि-से लगते हों, तब दूसरोंको प्रसन्न करनेके लिये, दूसरोंको सुख देनेके लिये हृदय दबाकर, मुखपर हँसी बनाये रखकर उन सबको स्वीकार करना कितना बड़ा तप है—इसका कोई सहृदय अनुभवी पुरुष ही अनुमान कर सकता है। शत्रुघ्नजीपर माताओंकी सेवाका भार था। उन दुःखिनी माताओंको समान-भावसे प्रसन्न रखना था। शत्रुघ्न स्वयं वस्त्राभरणसे सजे न रहें, प्रसन्न न दीखें तो माताओंका शोक जग जायगा। उन्हें अपार पीड़ा होगी। अतएव शत्रुघ्नजीने चौदह वर्ष अंदरसे भगवान्‌के साथ पूर्ण योग रखते हुए, पूर्ण संयम पालते हुए भोगको स्वीकार करके, प्रसन्न रहनेकी मुद्रा रखनेका सबसे कठोर तप किया। उन्होंने सबसे कठिन कर्तव्यका पूरे चौदह वर्ष निर्वाह कियां।

श्रीरामराज्याभिषेकके पश्चात् रघुनाथजीकी आज्ञासे लवण नामक असुरको मारकर शत्रुघ्नजीने मधुपुरी (मथुरा) बसायी, वहाँ राज्यकी स्थापना की और पीछे वहाँका राज्य अपने पुत्रोंको देकर फिर वे श्रीरामके समीप पहुँच गये। पूरे जीवनमें वे भरतलालकी आज्ञाके अनुवर्ती रहे।

राम-भक्त केवट

(श्रीशिवकुमारजी पाठक)

केवट श्रीगङ्गाजीके किनारे अपनी नावपर बैठा है। देखता क्या है कि सामनेसे प्रभु राम सीता, लक्ष्मण और निषादराजके साथ चले आ रहे हैं। केवटने देखा, पर उठा नहीं। अपने राजा निषादराजका भी उसे कोई ध्यान नहीं है। अन्तर्मनमें बड़ा प्रफुल्लित है, किंतु बाहरसे कोई भाव प्रकट नहीं हो रहा है। श्रीरामजी उसके सामने खड़े होकर नाव माँगने लगे। जगत्‌के स्वामी आज एक साधारण केवटके सामने खड़े होकर नावकी याचना कर रहे हैं—

मागी नाव न केवटु आना।

राघवेन्द्र सरकारके द्वारा नावकी याचना करनेपर भी केवट उनके सामने आकर खड़ा नहीं हुआ। भगवती सीता तथा लक्ष्मण केवटके इस व्यवहारसे चकित हैं। वे देखते आ रहे थे कि रास्तेमें बाल-वृद्ध, युवा, नर-नारी प्रभुकी एक झलक पानेके लिये कितने लालायित होकर उनके सामने दौड़ते चले आते थे और उनके दर्शन पाकर अपनेको धन्य मानते थे और एक यह केवट है, जो ऐसे बैठा है जैसे इसके लिये प्रभु श्रीरामका कोई महत्त्व ही नहीं। मगर केवटके मनमें कुछ और ही भाव है। न जाने कितने जन्मोंके पुण्य-फलके परिणामस्वरूप आज केवटको भगवान् रामका दर्शन हुआ है, उसका वह पूरा-पूरा लाभ उठा लेना चाहता है। उसे कोई जल्दी नहीं, उतावली नहीं। अपनी नावमें बैठे-बैठे ही सहजभावसे बोला—'मैं आपके मर्मको अच्छी तरह जानता हूँ। आपके चरणोंकी रजमें कुछ ऐसी अद्भुत शक्ति है कि उसके स्पर्श-मात्रसे ही पत्थरकी शिला सुन्दर स्त्री हो गयी है ऐसा मैं सब सुन चुका हूँ। जब आपकी चरणरजके छूनेसे पत्थरकी शिला सुन्दर नारी बन गयी, फिर हमारी नौका तो काठकी है जो पत्थरसे कहीं ज्यादा कोमल है। आपकी चरणरज लगते ही कहीं मेरी नौका भी ऋषि-पत्नी बन गयी तो

महाराज ! मैं बेमौत मारा जाऊँगा। मेरी जीविकाका एकमात्र साधन नौका तो जायगी ही साथमें घरमें एक प्राणीकी वृद्धि भी हो जायगी। उसका भरण-पोषण भी करना पड़ेगा। महाराज ! मैं दूसरा कोई धंधा भी नहीं जानता। इसलिये कृपा करके दूर ही खड़े रहिये, नौकाके पास न आइये।'

केवट फिर कहने लगा—'हाँ, एक शर्त है। यदि आप वास्तवमें गङ्गापार जाना ही चाहते हैं तो पहले मुझे अपने चरण अच्छी तरह मलमल कर धो लेने दीजिये, जिससे उनमें कोई रजकण चिपका न रह जाय।'

प्रभु चुपचाप सुन रहे हैं। सीताजी भी कुछ नहीं बोल रही हैं। परंतु हमारे शेषावतार श्रीलक्ष्मणजीसे नहीं रहा गया। तुरंत तीर निकालकर केवटको लक्ष्य करके बोले—'तू पार उतारता है या मैं तीर चलाऊँ ?' परंतु केवटपर उसका भी कोई असर नहीं हुआ। वह अपनी जगहपर ही बैठे-बैठे बोलता चला जा रहा है। इतना ही नहीं वह भगवान् रामकी ही नहीं, उनके पिता दशरथतककी सौगन्ध खाने लगा कि 'मैं सब कुछ सच-सच कह रहा हूँ कि जबतक आपके चरणोंका प्रक्षालन नहीं कर लूँगा, मैं आपको नावमें नहीं चढ़ाऊँगा और हाँ, एक शर्त और है कि मैं आपसे उतराई भी नहीं लूँगा।' कितना हठी भक्त है। न जाने कितने जन्मोंमें कितने महान् पुण्य इस साधारण जीव केवटने किये होंगे, जिसके सामने सृष्टिके रचयिता सर्वशक्तिमान् प्रभु साधारण नावके लिये याचना कर रहे हैं। वामन-अवतारमें जिसने सम्पूर्ण विश्व तीन पगसे भी छोटा कर दिया था—

सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहिं जगु किय तिहु पगहु ते थोरा॥

जिनके नाममें वह शक्ति है, जिसके एक बार स्मरण-मात्रसे जीव इस विशाल भवसागरको पार कर जाता है—

जासु नाम सुमिरत एक बारा। उतरहिं नर भवसिंधु अपारा॥

और जहाँ प्रभु साक्षात् उपस्थित हों वहाँका तो कहना ही क्या—

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

केवटके जन्म-जन्मान्तरके पाप तो प्रभुके दर्शनमात्रसे ही नष्ट हो गये; परंतु वह बड़ा चतुर है। इतनेसे उसे संतोष कहाँ ! वह बार-बार अपनी ही बात कहे जा रहा है—

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

केवटके प्रेमभरे अटपटे वचनोंको सुनकर प्रभु मुस्करा उठे। आज किसी सच्चे प्रेमी भक्तसे पाला पड़ा है। केवटका प्रेम अलौकिक है। वह गाँवका गँवार साधारण व्यक्ति है। अपने घाटपर अपना शासन वह बरसोंसे चला रहा है। उसे इस समय निषादराजकी भी परवाह नहीं है। प्रभुने विहँसकर पहले जानकीजी और फिर लखनलालकी ओर देखा। रामजीके सामने कोई विकल्प रह ही नहीं गया तो कहना ही पड़ा—'केवट ! वही करो जिससे तुम्हारी नाव भी बनी रहे और हम गङ्गापार भी हो जायँ, मुझे विलम्ब हो रहा है; जल लाकर पाद-प्रक्षालन कर लो'—

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥

केवटको मनमाँगी मुराद मिल गयी। प्रभु उसका निहोरा कर रहे हैं कि चाहे जो करो मुझे शीघ्र उस पार ले चलो। अब केवट उठकर दौड़ा, घरवालोंको खबर दी और एक लकड़ीके कठौतेमें पानी ले आया—

केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥

गङ्गाजल नहीं लिया और न किसी धातुके बर्तनमें पानी लाया। उसने सोचा इससे परीक्षा भी हो जायगी। यदि लकड़ीमें पैर लगानेसे कोई स्त्री प्रकट हो गयी तो फिर नावके पास ही नहीं आने दूँगा। और गङ्गा-जल तो उसके लिये साधारण पानी है। वह तो दिन-रात गङ्गाजलमें ही बैठा रहता है। उसका प्रभाव उसे विदित नहीं है। अब केवटकी खुशी और सौभाग्यकी कोई सीमा नहीं है। देवतागण भी उसके भाग्यकी सराहना करने लगे। उसने कहा—'महाराजजी ! अब जल्दी न मचाइये। यह साधारण कृत्य नहीं है। पूरे परिवारके साथ ही कर पाऊँगा और अभी तो आपसे पहले ही पार जानेके लिये जो लाइनमें खड़े हैं, उन्हें पार उतारना होगा।' भगवान्‌ने इधर-उधर देखा—'क्या कहा मुझसे पहले ?' हाँ प्रभु—केवटने कहा—'देखिये हमारे पितृगण कितनी आशासे प्रतीक्षा कर रहे हैं, ऐसा अवसर फिर क्या कभी आयेगा। पहले उन्हें पार उतारूँगा। महाराजजी ! बस, आप

शान्त रहें।'

केवटने खूब रगड़-रगड़कर प्रभु-पादोंका प्रक्षालन किया। चरणामृतको अपने परिवारमें बाँटा, सबको पिलाया, स्वयं पान किया, फिर पितृगणोंको भवसागरसे पार कराया, तब रामचन्द्रजीको अत्यन्त प्रसन्नताके साथ गङ्गापार ले गया। आज वह कितना हर्षित है! उसके हर्षका पारावार नहीं। जन्म-जन्मान्तरोंके पुण्योंके फल आज एक बारमें ही प्राप्त हो गये—

पद पखारि जलु पान करि आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥

गोस्वामीजीने कितना सुन्दर वर्णन किया—केवटने न केवल अपना और अपने परिवारका कल्याण किया प्रत्युत न जाने कितनी पीढ़ियोंके अपने पितरोंका उद्धार भी कर दिया। धन्य है केवट तुम्हारी सूझ-बूझ और चतुराई। रामभक्तिका कैसा अनूठा इतिहास रचा। भोलेबाबा माता पार्वतीसे कहते हैं, उन्हें समझाते हैं—

सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।
श्रीरघुबीर परायन जेहिं नर उपज बिनीत॥

केवटका सारा कुल धन्य हो गया।

प्रभु रामजी सीता, लक्ष्मण और निषादराजके साथ गङ्गा-पार करके रेतीमें खड़े हैं। सकुचा रहे हैं कि केवटको पार उतारनेकी मजदूरी नहीं दी गयी है, कुछ पासमें है भी नहीं, क्या दें? मिथिलेशकुमारी सीता प्रभुके मनकी असमंजसभरी स्थितिको भाँप गयीं, उन्होंने अपने हाथकी मणिकी सुन्दर अँगूठी तुरंत उतारी और प्रभुकी ओर बढ़ा दी, प्रभुने मुस्कराते हुए केवटसे कहा—'केवट! लो अपनी उतराई, ले लो।' प्रेम-विह्वल होकर केवटने अकुलाकर प्रभुके चरण पकड़ लिये, बोला—'प्रभो! आज मुझे क्या नहीं मिल गया! न जाने कितने जन्मोंसे मैं मजूरी कर रहा था, विधाताने आज सब मूल धन ब्याजसहित चुकता कर दिया है। आपकी ऐसी कृपा हो गयी है कि अब तो कुछ भी पानेकी इच्छा नहीं रही।'

केवटने आगे कहा—प्रभो! मैंने तो आपसे पहले ही कह दिया था कि मैं आपसे उतराई नहीं लूँगा; क्योंकि मैं और आप एक ही काम करनेवाले हैं। एक मल्लाह दूसरे मल्लाहसे उतराई लेता है? महाराज! मैं भी मल्लाह और 'आप भी मल्लाह। आज आप मेरे घाटपर आये, मैंने आपको पार उतार दिया। जब मैं आपके घाटपर आऊँ तो दयानिधान! भूलियेगा नहीं, इस अथाह संसार-सागरसे पार अवश्य उतार दीजियेगा।' कितनी चतुराईसे केवटने अपना काम बना लिया।

विचार करें—जीव ऐसी परिस्थितिमें कब पहुँचता है, जब उसे कुछ पानेकी इच्छा ही न रहे। साधारण जीवके जीवनमें भी क्या कभी ऐसी स्थिति आ सकती है? आखिर जीवन धारण करनेका लक्ष्य है क्या? परमात्माकी प्राप्ति। और केवटको परमात्माकी प्राप्ति हो गयी। अब उसे और क्या चाहिये। परंतु प्रभुदर्शनसे अभी उसका जी भरा नहीं है। इसीलिये पुनः दर्शन पानेकी लालसासे प्रभुको फिर आनेका निमन्त्रण दे रहा है।

श्रीगोस्वामीजी वर्णन करते हैं—

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥

प्रभुने बहुत समझाया, बहुत प्रयास किया कि केवट अपनी उतराई ले ले। सीताजी और लक्ष्मणजीने भी बहुत कुछ कहा कि कुछ तो यादगार-स्वरूप निशानीके तौरपर ही सही ले लो। परंतु वाह रे केवट! तुम धन्य हो! उसका मन तो किसी अन्य दुर्लभ वस्तुपर था, कुछ भी भौतिक पदार्थ लेनेके लिये राजी नहीं हुआ, तो प्रभुने उसे प्रसन्नतापूर्वक बिदा किया, परंतु खाली हाथ नहीं, उसे वह दुर्लभ वस्तु दे दी, जिसे बड़े-बड़े ऋषि-मुनि अनेक जन्मोंतक कठोर तपस्या और योग-साधना करके भी नहीं प्राप्त कर पाते। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं—

अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥

वही दुर्लभ भक्ति प्रभु रामने केवटको सहज ही बिना माँगे दे दी। उसका मानव-शरीर धारण करना सार्थक हो गया। अनेक जन्मोंसे मजूरी कर रहा था और आज सारी मनःकामनाएँ एक साथ पूरी हो गयीं। न कुछ माँगनेकी इच्छा रही और न कुछ पानेकी। कितनी सुन्दरतासे गोस्वामीजीने लिखा है—

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवटु लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥

मराठी संतोंकी रामभक्ति

(डॉ॰ श्रीभीमाशंकरजी देशपांडे, एम्॰ए॰, पी-एच्॰ डी॰, एल्-एल्॰बी॰)

भारतके अन्य भागोंकी तरह ही महाराष्ट्रके संत श्रीभगवान् रामचन्द्रजीके चरण-पद्मोंके अनुयायी रहे हैं। प्राचीन कालसे ही महाराष्ट्रके अनेक संत-महात्मा एवं कवियोंने श्रीरामका गुणगान किया है। महाराष्ट्रके संत भगवान् श्रीरामके भक्त तो थे ही किंतु उन्होंने रामकथाके माध्यमसे जन-जागरण एवं समाज-प्रबोधनके क्षेत्रमें अधिक रुचि ली। इन संतोंमें संत एकनाथजी और समर्थ रामदासजीका विशेष स्थान है। एकनाथ महाराज और स्वामी रामदासजी—इन दोनों महापुरुषोंकी दृष्टि अन्य संतोंसे कुछ भिन्न रही है।

संत एकनाथ महाराज महाराष्ट्रके भागवतधर्मके महान् साधु थे। उनकी रचना 'भावार्थरामायण' के नामसे प्रख्यात है। जनता-जनार्दनको अतिप्रिय रामचरितकी रचना करनेका कार्य उन्होंने अपनी आयुके उत्तरकालमें किया। भावार्थ-रामायण किसी संस्कृत-ग्रन्थका भाष्य नहीं है; अपितु विभिन्न रामचरितके ग्रन्थोंमें जो रामकथा उपलब्ध है, उसका महत्त्वपूर्ण आशय मधुसंचयकी पद्धतिसे इस ग्रन्थमें संकलित किया गया है। यह एक स्वतन्त्र रामचरित् है। तत्कालीन जन-जीवनका व्यवहार एवं राजकार्यका सम्यक्‌दर्शन इस ग्रन्थमें दिखायी देता है। संत एकनाथजीके समय यवनोंकी सत्ता दक्षिण भारतमें फैली हुई थी। सनातन हिन्दूधर्मको उस संकट-कालसे बचानेके लिये रामचरित्रका निजी अर्थ बतलाना और सुयोग्य मार्गदर्शन करना, उन्होंने अपना कर्तव्य समझा। इस रामायणमें असुरोंका वर्णन समकालीन यवन-सत्ताधारी राजाओंसे मिलता-जुलता है। समाज-प्रबोधन और धर्मकी सुरक्षाके लिये भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी कथा एवं कीर्तिका गुण-गान उन्हें महत्त्वपूर्ण प्रतीत हुआ और सारी विपत्तियोंका उच्छेद रामकथाके प्रभावसे होनेकी उन्हें दृढ़ आशा थी। इसीलिये श्रीरामके पराक्रम और शौर्यका इसमें विशेष वर्णन हुआ है। महाराष्ट्रमें एकनाथजीके भावार्थरामायणका नित्य पाठ होता है। इस पाठके समय कथा सुनने स्वयं हनुमान्‌जी पधारते हैं, ऐसी भावना और ऐसा विश्वास होनेके कारण जहाँ-कहीं इसका पाठ होता है वहाँ एक आसन श्रीहनुमान्‌जीके लिये भी रखा जाता है।

महाराष्ट्र-प्रदेशके रामभक्त-संतोंमें समर्थ रामदासजीका स्थान उच्चतर है। समर्थ स्वामी रामदासजीने ही भागवत-धर्मकी भक्तिको शक्तिका आधार देनेका उपदेश किया। रामोपासना और हनुमदुपासनाका महत्त्व बताते हुए स्वामी रामदासजीने शक्ति-साधनापर बल दिया। उन्हें इस कार्यमें भगवान् रामचन्द्रजीका अनुग्रह प्राप्त था। वे आग्रहपूर्वक उपदेश करते हैं कि 'रामकथा ब्रह्माण्ड भेदून पल्याड न्यावी' अर्थात् रामकथाको ब्रह्माण्डके भी पार ले जाना है। उनके ग्रन्थ दासबोध, आत्माराम और अन्य रचनाओंमें रामायण-कथा है। उनकी रामकथामें केवल सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड हैं। इसका कारण बताते हुए वे कहते हैं कि रामचरितका सार इन दो काण्डोंमें ही निहित है।

रामदासजीका मानना था कि 'रामदासी' कभी परतन्त्र नहीं होता। इस शरीरके होते हुए वह कभी उपासनाका त्याग नहीं करता। ऐसे रामदासीका रक्षण करना श्रीरामचन्द्रजी अपना विरद समझते हैं।

उसी प्रकार उस समय यवनोंके अत्याचारोंसे त्रस्त सनातनधर्मावलम्बियोंकी दैन्यावस्था देखकर रामदासजी बहुत व्यथित हुए। बड़ी व्याकुलतासे उन्होंने भगवान् रामचन्द्रजीकी प्रार्थना की। उन्हें पूरा विश्वास था कि भगवान् रामचन्द्र इस संकटको दूर करने अवश्य आयेंगे।

एक समय महाराष्ट्रके सतारा जनपदमें स्थित उनके चाफळ क्षेत्रमें दशावतारका मंचन चल रहा था। भगवान् रामचन्द्रजीके स्वाँगमें नटके मंचपर आते ही वे उठ खड़े हुए। मंचन पूरा होनेतक वे खड़े ही रहे। उनके साथ राजा, अमात्य तथा पण्डितलोग उपस्थित थे, वे भी खड़े हो गये। रामदासजीने आसन ग्रहण नहीं किया। इससे मेरे रामकी मर्यादा भंग होती है ऐसा समझकर उन्होंने भगवान् रामचन्द्रजीका स्वाँग न करनेका आदेश दे दिया। रामचन्द्रजीके प्रति उनका इतना आदर था।

कर्मकाण्डका एवं बाह्याडम्बरका महत्त्व बढ़नेसे जनसमाजमें जब धर्मके प्रति श्रद्धा कम होने लगी, उस समय संत ज्ञानेश्वर महाराजने भागवतधर्मकी नींव डाली।

उस भागवतधर्मके पथपर आगे चलकर संत एकनाथजी और साधुश्रेष्ठ तुकारामजी महाराजने उस वैष्णवधर्मको शिखरपर चढ़ाया और उसपर भागवत-धर्मका झंडा फहराया। परंतु उत्तरकालमें यवन-सत्ताके समय केवल भक्तिसे काम बननेवाला नहीं था। उस समय समर्थ रामदासजीने भक्तिके साथ शक्तिकी आवश्यकता बताते हुए शक्ति-संचयपर विशेष बल दिया। इस कार्यकी सिद्धि-हेतु उन्होंने ग्यारह सौ मठोंकी स्थापना की तथा सम्पूर्ण भारतमें हनुमान्‌जीकी उपासनाका प्रचार किया। समर्थ रामदासजीने छत्रपति शिवाजी महाराजको अपना शिष्य स्वीकारनेके पश्चात् न सिर्फ स्वराज्यकी स्थापनाके लिये प्रेरित किया, अपितु उसमें अपना महत्त्वपूर्ण—सक्रिय सहयोग भी दिया।

स्वामी रामदासजीकी रचना—'कल्याणकारी रामरामा' में प्रभु श्रीरामचन्द्रजीकी करुणामय प्रार्थना है। उनकी यह रचना सम्पूर्ण महाराष्ट्रमें आबाल-वृद्ध नित्य गाते हैं। इस रचनामें रामके प्रति उनका आदर एवं विश्वास प्रकट होता है।

महाराष्ट्रके अनेक संत कवियोंने रामकथा-वाङ्मयमें रुचि लेकर उसे अपने शब्दोंमें अपनी भावनाओं एवं कल्पनाओंके अनुसार रूप देकर जन-जनतक पहुँचाया। उनमें जानकी-स्वयंवरकी रचना करनेवाले जनी जनार्दन, कवि विठारेणुका-नंद, वामनपंडित, जयरामस्वामी वडगांवकर, आनंदतनय, गोसाविनंदन, नागेश, विठ्ठल, कृष्णदास मुद्गल, नाथ-महाराजके पौत्र और प्रपौत्र मुक्तेश्वर एवं शिवरामस्वामी कल्याणीकर, माधवस्वामी, समर्थशिष्या वेणाबाई प्रमुख हैं। मराठीमें रचित रामदासकृत लघुरामायण, श्रीधरकविकृत रामविजय, मोरोपंतका अष्टोत्तर-शतरामायण और अर्वाचीन कालके अमृतराय ओकका लिखा हुआ शतमुखरामायण सम्पूर्ण रामकथा-साहित्यमें महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

श्रीरामकृष्ण परमहंसके रामललाकी अद्भुत लीला

(स्वामी श्रीविदेहात्मानन्दजी)

सन् १८६३-६४ की बात है। कलकत्तेके निकट दक्षिणेश्वर नामका एक गाँव है। वहाँ रानी रासमणिद्वारा निर्मित कालीमन्दिरके प्राङ्गणमें परमहंस श्रीरामकृष्ण अपनी साधनामें लीन थे। वे जब जिस प्रकारकी साधना प्रारम्भ करते, तब दक्षिणेश्वरमें उसी भावके साधु-संतोंका आगमन आरम्भ हो जाता था। जगदम्बाकी इच्छासे उनके मनमें वैष्णव-भावोंके अनुसार साधनाकी इच्छा उत्पन्न हुई और अब परमहंसदेवको रामभक्तिका आस्वादन कराने वहाँ अनेक महान् वैष्णव भक्तोंका आगमन होने लगा। श्रीजटाधारी नामके रामायतपन्थी साधु भी इन्हींमेंसे एक थे।

श्रीजटाधारीके पास पीतलकी एक 'रामलला'की मूर्ति थी, जिसके साथ उनका विशेष लगाव था। दीर्घकालतक उस मूर्तिकी सेवा-पूजा करनेके फलस्वरूप उनका मन इतना अन्तर्मुखी हो चुका था कि उन्हें भावराज्यमें सदा दिखायी देता कि श्रीरामका ज्योतिर्मय बालविग्रह वास्तवमें उनके सामने प्रकट होकर उनकी सेवा स्वीकार कर रहा है। प्रारम्भिक अवस्थामें उन्हें प्रतिदिन थोड़े समयके लिये ही ऐसा दर्शन होता था और उसीसे वे आनन्दविभोर रहा करते थे। बादमें वे ज्यों-ज्यों साधनामें अग्रसर होने लगे, त्यों-त्यों रामललाका दर्शन भी उनके लिये घनीभूत होते हुए दैनन्दिन जीवनकी अन्य वस्तुओंके समान ही सहज तथा स्थायी हो गया। रामलला मानो उनके नित्य सहचर हो चुके थे और जटाधारी 'विग्रह'-की सेवा करते हुए भारतके विभिन्न तीर्थोंका भ्रमण करते हुए अन्ततः दक्षिणेश्वर आ पहुँचे थे।

श्रीजटाधारीने किसीको बताया नहीं था कि उन्हें सर्वदा रामललाकी भावघन-मूर्तिका दर्शन होता रहता है। लोग केवल इतना ही देख पाते कि वे अपने धातुनिर्मित विग्रहकी अतीव निष्ठापूर्वक सेवा करते रहते हैं। परंतु श्रीरामकृष्णको यह सब समझते जरा भी देर नहीं लगी। इसी कारण वे श्रीजटाधारीसे पहली बार भेंट होनेके बादसे ही उनके प्रति श्रद्धावान् हो गये और उन्हें आवश्यकताकी सारी वस्तुएँ उपलब्ध कराने लगे। वे काफी समयतक श्रीजटाधारीकी सेवा-पूजा तथा रामललाकी अलौकिक लीलाका अवलोकन करते रहते। जटाधारीके साथ सत्संग करते हुए श्रीरामकृष्णका हृदय क्रमशः कौसल्यानन्दनके प्रति भक्ति-प्रीतिसे ओतप्रोत हो उठा। जटाधारीकी रामलला-मूर्तिके समीप बैठकर उसकी

मधुर बाल-चेष्टाएँ देखते उनका सारा समय निकल जाता।

श्रीरामकृष्ण पहले ही अपने कुलदेवता श्रीरघुवीरकी पूजा करनेके लिये राममन्त्रकी दीक्षा ले चुके थे। पहले वे दास्यभावसे उपासना कर चुके थे। परंतु अब उनके मनमें वात्सल्य-भावसे मन्त्र लेकर उपासना करनेकी इच्छा हुई। जटाधारीको जब इसका पता चला तो उन्होंने सहर्ष श्रीरामकृष्णको भी अपने इष्टमन्त्रमें दीक्षित कर लिया। कुछ ही दिनोंकी साधनाके उपरान्त उन्हें भी 'रामलला' का सतत दर्शन होने लगा और क्रमशः अनुभव होने लगा—

जो राम दशरथ का बेटा, वही राम घट घट में लेटा।
उसी राम ने जगत् पसारा, वही राम है सबसे न्यारा॥

परवर्ती-कालमें श्रीरामकृष्णने अपने युवा शिष्योंके समक्ष रामललाकी मूर्ति दिखाते हुए अपनी इस उपासनाका सविस्तार वर्णन किया था। उन्होंने बताया था—

'बाबाजी सदैव उस मूर्तिकी सेवामें लगे रहते थे। वे जहाँ भी जाते, उसे अपने साथ ले जाते। उन्हें जो कुछ भिक्षा मिलती उससे 'रामलला' का भोग लगाते और इतना ही नहीं उन्हें प्रत्यक्ष दिखायी देता कि रामलला सचमुच भोजन कर रहा है, कोई चीज खानेको माँग रहा है, घूमने जाना चाहता है, या फिर प्रेमपूर्वक हठ कर रहा है। और उस मूर्तिको लेकर वे सदा आनन्दविभोर तथा मस्त रहा करते थे। मुझे भी रामललाके ये आचरण दृष्टिगोचर होते थे और प्रतिदिन सारे समय बाबाजीके समीप बैठा-बैठा मैं रामललाको देखता रहता था।

'ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, त्यों-त्यों रामललाका भी मेरे प्रति प्रेम बढ़ने लगा। मैं जबतक बाबाजीके पास रहता, तबतक रामलला भी वहीं रहकर चुपचाप खेलता और मैं ज्यों ही वहाँसे अपने कमरेकी ओर लौटता, त्यों ही वह भी मेरे साथ-साथ चल देता। मेरे मना करनेपर भी वह बाबाजीके पास नहीं ठहरता। शुरू-शुरूमें तो मुझे ऐसा लगा कि मैं अपनी धुनमें ही ऐसा देखता रहता हूँ। अन्यथा बाबाजीद्वारा चिरपूजित रामलला, जिसे वे इतना लाड़-प्यार करते हैं, भक्तिपूर्वक इतनी सावधानीसे जिसकी सेवा करते हैं, वह उनकी अपेक्षा मुझसे अधिक लगाव रखे, यह भी क्या सम्भव है ? लेकिन मेरी इस धारणाका मूल्य ही क्या था ? जैसे मैं तुमलोगोंको देख रहा हूँ, रामललाको भी ठीक इसी प्रकारसे देखा करता था। मुझे सचमुच ही दिखायी देता था कि कभी

वह मेरे आगे-आगे और कभी पीछे-पीछे मटकता हुआ चला आ रहा है। कभी वह मेरी गोदमें चढ़नेके लिये मचलता और फिर जब मैं उसे गोदमें लिये रहता, तो कभी-कभी वह बिलकुल भी गोदमें नहीं रहना चाहता और गोदसे उतरकर धूपमें दौड़ना, कँटीली झाड़ियोंमें जाकर फूल तोड़ना या गङ्गाजीमें उतरकर उछल-कूद मचाना चाहता था। मैं उसे मना करता, 'अरे, ऐसा न कर, धूपमें पाँव जलेंगे ! पानीमें मत कूद, सर्दी-बुखार हो जायगा।' पर इन बातोंको वह भला क्यों सुनने लगा ? मानो कोई किसी अन्यसे कह रहा हो। कभी वह अपने कमलदल-जैसे सुन्दर नेत्रोंसे मेरी ओर देखकर मुसकराता हुआ और भी अधिक ऊधम मचाने लगता। अथवा अपने दोनों ओठोंको फुलाये मुँह बनाकर मुझे चिढ़ाने लगता। तब मैं क्रुद्ध होकर उसे डाँटता-डपटता, नहीं माननेपर थप्पड़ भी जमा देता। मार खानेके बाद वह अपने दोनों सुन्दर ओठोंको फुलाये सजल नेत्रोंसे मेरी ओर देखता रहता। उस समय मेरे मनमें बड़ा कष्ट होता और मैं उसे गोदमें लेकर स्नेहपूर्वक शान्त किया करता। मैं ठीक-ठीक ऐसा ही देखता और उसके साथ इसी तरहका व्यवहार किया करता।

'एक दिन जब मैं नहाने जा रहा था, उस समय वह भी मेरे साथ चलनेके लिये हठ करने लगा। बाध्य होकर मुझे उसे ले जाना पड़ा। नहानेके बाद वह कैसे भी पानीसे निकलना ही नहीं चाहता था। मैंने कितना ही कहा, पर उसने एक न सुनी। आखिरकार क्रुद्ध होकर मैंने उसके सिरको पानीमें डुबोकर कहा—'ले, जितना चाहे पानीमें रह।' तब मैंने देखा कि पानीके अंदर सचमुच ही उसका दम घुट रहा है और उसका

शरीर काँप रहा है। उस समय उसके कष्टको देखकर, 'हाय, यह मैंने क्या किया !' कहते हुए मैंने उसे पानीसे निकाला और गोदमें उठाकर छातीसे लगा लिया।

'एक दिन मेरे मनमें उसके लिये कितना कष्ट हुआ था, मैं कितना रोया था, बता नहीं सकता। उस दिन रामललाके हठको देखकर उससे चित्तको दूसरी ओर भुलानेके लिये मैंने उसे खानेको थोड़ी-सी लाई दी थी। लाईमें कुछ धानके छिलके भी लगे हुए थे। बादमें मैंने देखा कि उस लाईको चबाते-चबाते धानके छिलकोंसे उसकी नरम जीभ छिल गयी है। यह देखकर मुझे बड़ा खेद हुआ। मैं उसे गोदमें लेकर जोरोंसे रोने लगा और उसकी ठोड़ी पकड़कर कहने लगा 'हाय, माता कौसल्या जिस मुखमें खीर, मलाई, मक्खन आदि भी बड़ी सावधानीसे खिलाया करती थीं, मैं इतना अभागा हूँ कि उस मुखमें ऐसी तुच्छ चीज देते हुए मेरे मनमें जरा भी संकोच नहीं हुआ।'

'किसी-किसी दिन उन बाबाजीको रसोई बनानेके बाद भोग देते समय रामललाका दर्शन ही नहीं मिलता। उस समय वे दुःखी होकर दौड़ते हुए मेरे कमरेमें आ पहुँचते और देखते कि रामलला वहीं खेल रहा है। उस समय वे क्षुब्ध होकर जो भी मनमें आता, कह डालते। वे कहते—'तुझे खिलानेके लिये मैं इतनी रसोई बनाकर ढूँढ़ रहा हूँ और तू निश्चिन्त होकर यहाँ खेल रहा है। तेरा स्वभाव ही ऐसा है। जो जीमें आता है, तू वही करता है। तेरे हृदयमें लेशमात्र भी दया नहीं है। पिता-माताको छोड़कर तू वन चला गया, रोते-रोते पिताका देहान्त हो जानेपर भी तू नहीं लौटा, उनसे फिर नहीं मिला'—आदि बहुत-कुछ कहते हुए वे रामललाको खींचकर ले जाते और उसे भोजन कराते। इसी प्रकार दिन बीतने लगे। उन साधुने काफी दिनोंतक यहाँ निवास किया था, क्योंकि रामलला मुझे छोड़कर जाना नहीं चाहता था और उनके लिये भी सदासे अपने परमप्रिय रामललाको छोड़कर चल देना सम्भव न था। तदनन्तर एक दिन सहसा बाबाजी मेरे पास उपस्थित हुए और सजल नयनोंके साथ मुझसे बोले—'मैं रामललाको जैसे देखना चाहता था, उसने कृपा करके तदनुरूप दर्शन देकर मेरे हृदयकी प्यास मिटा दी है। उसने कहा है कि अब वह यहाँसे नहीं जायेगा, तुमको छोड़कर वह कैसे भी जाना ही नहीं चाहता, पर अब मेरे मनमें कोई कष्ट नहीं है। तुम्हारे पास वह सुखपूर्वक रहता है, आनन्दमें खेलता-कूदता है—यह देखकर मेरा चित्त आनन्दसे भरपूर हो जाता है। अब मेरी यह धारणा हो चुकी है कि जिसमें उसे सुख मिले, उसीमें मेरा भी सुख है। इसलिये अब उसे तुम्हारे पास रखकर मैं अन्यत्र जा सकूँगा। यह सोचकर कि वह तुम्हारे पास सुखपूर्वक रहता है—उसके ध्यानमात्रसे ही मुझे आनन्द प्राप्त होगा।' इतना कहनेके बाद रामललाको मुझे सौंपकर उन्होंने विदा ली। तभीसे रामलला यहाँ है।'

श्रीरामकृष्णके पुनीत संगसे श्रीजटाधारीको यह बोध हो गया था कि उनके प्रेमास्पद रामलला सदा-सर्वदा उनके हृदयमें विराजमान हैं और इच्छामात्रसे उनका दर्शन प्राप्त होगा। इसी कारण वे अपने प्राणोंसे भी प्रिय रामललाके विग्रहको दक्षिणेश्वरमें श्रीरामकृष्णके पास छोड़कर तीर्थाटन करने चले गये और रामकृष्ण रामललाकी लीलाओंका प्रत्यक्ष आनन्द लेने लगे।

(श्रीरामकृष्णलीला-प्रसङ्गसे)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरणजी गुप्तकी रामभक्ति

(डॉ॰ श्रीरामकुमारजी पाठक, डी॰ लिट॰)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त परम वैष्णव थे। उनकी रस-प्रवर्षिणी लेखनीसे प्रणीत 'साकेत' महाकाव्य आधुनिक हिन्दी-कालकी सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। इस महाकाव्यमें गुप्तजीने भगवान् रामके पावन चरित्रको इस प्रकार प्रस्तुत किया है कि वह मानवके लिये अधिक-से-अधिक लोकमङ्गलकारी एवं अनुकरणीय बन सके। अतः साकेत महाकाव्यके मुखपृष्ठपर वे निम्न पंक्तियाँ लिखते हैं—

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है॥

गुप्तजीने भगवान् रामको परब्रह्मके रूपमें चित्रित करके उनके सगुण और निर्गुण दोनों रूपोंके प्रति पूर्ण आस्था एवं भक्ति प्रकट की है। उनका दृढ़ विश्वास है कि अनादि ब्रह्म

संसारको उचित मार्ग दिखानेके लिये ही अवतार लेता है—

हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
ले लिया अखिलेश ने अवतार है।

× × ×

पथ दिखानेके लिये संसार को,
दूर करनेके लिये भू-भार को।
पापियोंका जान लो अब अंत है
भूमि पर प्रकटा अनादि अनंत है॥

भगवान् राम सर्वशक्तिमान् हैं। जिसपर रामकी कृपा होती है, संसारमें उसका कोई बाल-बाँका भी नहीं कर सकता। रामके संकेतसे ही जगत्‌के समस्त कार्योंका संचालन होता है। जब राम किसीके प्रतिकूल हो जाते हैं तो फिर अन्य किसीकी आशा नहीं करनी चाहिये—

ईश इंगित के अनुसार
हुआ करते हैं सब व्यापार

× × ×

राम जब बाम हुए आशा वहाँ किसकी ?

राम मर्यादापुरुषोत्तम हैं। वे एक आदर्श राजा हैं, आदर्श स्वामी हैं, आदर्श पुत्र हैं, आदर्श भाई हैं। उनके समस्त सामाजिक रूप आदर्श एवं सम्पूर्ण समाजके लिये अनुकरणीय हैं। अतः रामका यह आदर्श स्वरूप ही गुप्तजीको सदैव अपनी ओर आकृष्ट करता रहा—

निज मर्यादापुरुषोत्तम ही मानव का आदर्श।
नहीं और कोई कर पाता मेरा हदय स्पर्श॥

गुप्तजीने भगवान्‌की नाम-महिमाके प्रति गहरी आस्था व्यक्त की है। उनके राम स्वयं अपने श्रीमुखसे स्पष्ट कर देते हैं कि जो व्यक्ति मेरा नाममात्र ही स्मरण करेगा वह भी बिना किसी अन्य प्रयासके इस संसाररूपी सागरको पार कर लेगा—

जो नाम मात्र ही स्मरण मदीय करेंगे।
वे भी भवसागर बिना प्रयास तरेंगे॥

उपासना और पूजाका वास्तविक अर्थ है उपास्यके पास पहुँचना और उसके गुण तथा स्वभावको अपने आचरणमें ग्रहण करना। रामके आदर्शोंको न माननेवाला व्यक्ति रामका सच्चा भक्त कैसे कहा जा सकता है। अतः गुप्तजीके राम कहते हैं जो मेरे गुण, कर्म और स्वभावको अपने आचरणोंमें उतार लेंगे, वे न केवल स्वयं, अपितु अन्य व्यक्तियोंको भी इस संसार-सागरसे पार कर सकते हैं। ऐसे व्यक्ति ही वास्तवमें लोक-शुद्धिके जनक होते हैं—

पर जो मेरा गुण कर्म स्वभाव धरेंगे।
वे औरों को भी तार पार उतरेंगे॥

कर्मके बिना भक्ति वन्ध्या है। अतः सभी भक्त कवियोंने भक्तिके साथ कर्मको विशेष महत्त्व दिया है और कर्मत्यागकी निन्दा की है। गुप्तजीने सदाचारको मुक्तिका द्वार कहा है और कदाचारको रौरव नरक बतलाया है। मनुष्य अपने अच्छे कर्मोंसे जहाँ चाहे वहाँ स्वर्ग-जैसी शान्तिका वातावरण बना सकता है। अतः गुप्तजीने भक्तिके क्षेत्रमें कर्तव्य-पालनको विशेष महत्त्व दिया है और आनन्द-प्राप्तिको अपने सत्कर्मोंके अधीन सिद्ध किया है—

आनंद हमारे ही अधीन रहता है,
तब भी विषाद नर लोक व्यर्थ सहता है।
करके अपना कर्तव्य रहो संतोषी
फिर सफल हो कि तुम विफल न होगे दोषी॥

गुप्तजीद्वारा प्रतिपादित भक्तिमें लोकोपकार एवं समाज-सेवाकी भावना सर्वत्र निहित है। उन्होंने भक्तिको सीमित कर्मकाण्डके सीकचोंमें बंद नहीं किया है; अपितु मानवताकी सेवाके रूपमें अङ्कित किया है। भक्तिके इसी उदार रूपको अपनानेसे ही सच्चे सुख और संतोषकी अनुभूति मनुष्यको हो सकती है—

करते हैं जब उपकार किसीका हम कुछ
होता है तब संतोष हमें का कम कुछ ?
निज हेतु बरसता नहीं व्योमसे पानी,
हम हो समष्टिके लिये व्यष्टि बलिदानी॥

वस्तुतः भक्तिकी एक सामाजिक उपयोगिता है। जिस समाजमें सदाचारी भक्त रहते हैं, वहाँ सब प्रकारसे शान्ति और सुखका अनुभव होता है। गोस्वामी तुलसीदास राम-राज्यका चित्रण करते हुए लिखते हैं कि वहाँ सभी व्यक्ति वैर-भावको त्यागकर आपसमें प्रेमसे रहते हैं। इसी प्रकार साकेतके आदर्श समाजमें सभी मनुष्य इस प्रकार प्रेमसे मिलकर रहते हैं जैसे किसी वृक्षपर सैकड़ों पुष्प बिना किसी ईर्ष्या-द्वेषके खिलते हैं—

एक तरु के विविध सुमनों से खिले,
पौरजन रहते परस्पर हैं मिले।

इस आदर्श समाजमें मानवकी श्रेष्ठता कुलसे नहीं वरन् शील और चरित्रसे होती है। वहाँ **'वृत्तेन भवति आर्येण विद्यया न कुलेन च'** के सिद्धान्तको अपनाया जाता है। इसका कारण है कि भगवान् रामका अवतार आर्योंका आदर्श समाजके सामने रखनेके लिये ही हुआ था। वे समाजको यह शिक्षा देनेके लिये पृथिवीपर आये थे कि मानवताके सम्बन्धोंका विशेष महत्त्व है, उनकी अपेक्षा धनका कोई महत्त्व नहीं है। समाजमें सुख और शान्तिकी स्थापनाके लिये वह एक क्रान्तिका संदेश लेकर पृथिवीपर आये थे और जिन मनुष्योंको भगवान्‌की सत्तामें विश्वास होता है, उनके विश्वासकी रक्षाके लिये ही भगवान् रामने इस पृथिवीपर अवतार लिया था—

मैं आर्यों का आदर्श बताने आया
जन सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया।
सुख-शान्ति-हेतु मैं क्रान्ति मचाने आया
विश्वासी का विश्वास बचाने आया॥

इस प्रकार हम देखते हैं कि राष्ट्रकवि मैथिलीशरणकी रामभक्तिका दृष्टिकोण बड़ा ही व्यापक एवं मानवतावादी रहा है। उनके राम विश्वमें नया वैभव व्याप्त करानेके लिये तथा मानवको उच्च आदर्शोंसे युक्त बनाकर मानवमें ही ईश्वरत्वकी प्रतिष्ठा करानेके लिये इस भूमिपर अवतार लेते हैं—

भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया,
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ पर नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया॥

अतः भगवान् राम स्वर्गका संदेशमात्र लेकर इस पृथिवीपर नहीं आते, वरन् इस पृथिवीको ही सुख, शान्ति, सौहार्द, प्रेम, दया आदि मानवोचित गुणोंसे परिपूर्ण करके स्वर्ग बनानेके लिये आया करते हैं। गुप्तजीकी इस राम-भक्ति-परिकल्पनामें मानवताका अमर संदेश है।
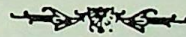
रसिक सम्प्रदायके रामभक्त

(डॉ॰ श्रीकृष्णचन्द्रलाल)

(१)

महात्मा रामचरणदास 'करुणासिन्धु'

'रसिक सम्प्रदाय'के उन्नायकोंमें जिन महात्माओंका नाम विशेष रूपसे लिया जाता है, उनमें रामचरणदासका नाम अग्रगण्य है। उन्होंने सीतारामकी मधुरोपासनाको शास्त्रसम्मत सिद्ध करके उसके दार्शनिक सिद्धान्तोंका सम्यक् विश्लेषण किया और रसिकसाधनाके सम्बन्धमें लोगोंके हृदयमें विद्यमान भ्रान्तियोंको दूर करके उसे भलीभाँति समझनेकी सही दृष्टि दी। उनके इस महत्त्वपूर्ण कार्यके कारण ही रामचरणदासको गोस्वामी तुलसीदास-जैसी लोकप्रियता प्राप्त हुई। जिस प्रकार रामोपासनाको जन-जनतक पहुँचानेका श्रेय गोस्वामी श्रीतुलसीदासको है, उसी प्रकार मधुरोपासनाको प्रतिष्ठित करनेका गौरव रामचरणदासजीको है।

रामचरणदासका जन्म संवत् १८१७ के लगभग प्रतापगढ़ जिलेमें एक कान्यकुब्ज ब्राह्मणके घर हुआ था। इन्होंने प्रारम्भिक शिक्षा घरपर ही समाप्त करके प्रतापगढ़के राजाके यहाँ खजांचीका कार्यभार सँभाला, परंतु ये भगवत्प्रेममें सदा तल्लीन रहते थे, जिसके फलस्वरूप एक दिन उचित समयपर अपनी ड्यूटीपर न जा सके। अतः राजाके पास जाकर अपने विलम्बागमनके लिये जब उन्होंने क्षमा-याचना की तो राजाने कहा कि 'तुम तो समयसे आये थे' और उस दिनके इनके द्वारा हस्ताक्षरित पत्रों आदिको भी दिखाया। रामचरणदासने उसे भगवान्‌की असीम अनुकम्पा समझा और उनका हृदय भगवत्प्रीतिमें डूब गया। अतः तत्काल त्यागपत्र देकर ये अयोध्या चले आये। हनुमानगढ़ीका दर्शन करनेके बाद ये विन्दुकाचार्यसे मिले और उनके आदेशानुसार उन्हींके शिष्य रघुनाथप्रसादसे दीक्षा ले ली—

अवधपुरीमें आये, सरयू नहाये, कोटद्वार,
हनुमन्त के चरण शीश नाय कै।
दीनबन्धु शिष्य रघुनाथप्रसाद मिलै
तिनकी शरण भये अति हरषाइ कै॥
युगुल उपासना को मूलमंत्र पायो सब

भयो मन भायो गुरु सवासुख पाय कै।
मानसी स्वरूपको प्रभाव सरसायो
स्वामी आदिके प्रबन्धनमें रहे हैं लुभाय कै॥

(रसिक प्रकाश भक्तमाल-युगलप्रिया-टीकाकार जानकी रसिकशरणका छन्द २१८, पृ० ४२)

रामचरणदासजीने विन्दुकाचार्यजीके साथ चित्रकूट, मिथिला आदि रामतीर्थोंका भ्रमण किया। मधुरोपासनाको भलीभाँति समझनेके लिये ये रेवासा गये और 'अग्रसार' ग्रन्थका अध्ययन अपने तिलकको परिवर्तित करके किया, जो इनकी ज्ञानपिपासाकी उत्कटताका परिचायक है (राम-भक्तिमें रसिक सम्प्रदाय—डॉ० भगवती प्रसाद सिंह, पृ० ४१९)। उसके बाद अयोध्या आकर जानकीघाटपर 'रामचरितमानस'-की कथा कहने लगे, जिससे इनकी ख्याति चतुर्दिक् बढ़ गयी। इस प्रकार संत-सेवा और भगवत्कीर्तन करते हुए वे माघ शुक्ल ९, सं० १८८८ को देह-लीला समाप्त कर सीतारामकी नित्य-लीलामें प्रविष्ट हुए।

रामचरणदासजी एक निःस्पृह एवं संतसेवी महात्मा थे। इनकी कृपाशीलता और उदारताके कारण ही इन्हें 'करुणा-सिन्धु' की उपाधि मिली। इनके शिष्योंमें युगलप्रिया, रसिक अली और हरिदासका नाम इन्हींकी भाँति रसिक भक्तिके व्याख्याताओं और उन्नायकोंमें परिगणित किया जाता है।

करुणासिन्धुजी तत्सुखी-भावोपासक थे, स्वसुख-भावना-का प्रवर्तन इन्हींके शिष्य जनकराजकिशोरीशरण रसिक अलीने किया। उसी समयसे रसिक सम्प्रदायमें भावना-भेदसे दो शाखाएँ हो गयीं—पहली तत्सुखी-शाखा और दूसरी स्वसुखी-शाखा।

करुणासिन्धुजी रससिद्ध महात्मा होनेके साथ-साथ एक प्रतिभासम्पन्न कवि भी थे। पूर्वाचार्योंकी वाणीके संकलन-विश्लेषणके द्वारा जहाँ एक ओर इन्होंने साम्प्रदायिक मान्यताओंका प्रतिपादन किया, वहींपर सीतारामकी मधुर लीलाओंमें निमग्न हृदयकी अन्तर्वृत्तियोंका सरस पदोंमें उद्घाटन भी किया। उनकी निम्नलिखित १९ रचनाएँ प्राप्त होती हैं—

(१) आनन्दलहरी, (२) शतपञ्चाशिका, (३) रस-मालिका, (४) राम-पदावली, (५) जयमाल-संग्रह, (६) छप्पय रामायण, (७) सीताराम-चरण-चिह्न, (८) कवितावली, (९) दृष्टान्त-बोधिका, (१०) तीर्थयात्रा, (११) पिंगल, (१२) अष्टयाम-पूजाविधि, (१३) अमृत-खण्ड, (१४) सियारामरसमंजरी, (१५) काव्यशृंगार, (१६) झूलन, (१७) कौशलेन्द्ररहस्य, (१८) रामनवरत्न- सारसंग्रह और (१९) भाषा-भूषण।

रामचरणदास उच्चकोटिके भावापन्न साधक तो थे ही, उत्कृष्ट काव्यप्रतिभाके भी धनी थे। यहाँपर उनकी रचनाशीलताके कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

(१)

जुगल बदन छवि धाम कोटि शशि छवि इमि।
मानिक मनि ढिंग होत, होत द्युति त्यों जिमि॥
तिलक अधर रम बिम्ब हास अद्भुत लसै।
जनु घन रवि ससि जलज पेट दामिनि लसै॥
बेसरि स्वच्छ बुलाक अधर पर छलकई।
जनु बृहस्पति दिवि शुक्र हृदय शशि ललकई॥

(२)

देखि री हरि की सुन्दरताई।
जानु पानि विचरत मनि आँगन बोलत किलकि बदन छवि छाई॥
इन्दु बिन्दु युग तड़ित सुवन अलि अरुन कंज दल परि जनु आई।
कुण्डल झलक कपोलन झलकत, कर कछु खात झुकाई।
मनहुँ इन्दु रस सहित बाल अलि छोड़त पिअत डेराइ डेराई॥
कठुला कंठ रंग बहु राजत ता बिच पदिक मातु पहिराई।
मनहुँ मेघ पर रविमण्डल करि सवरन नवग्रह सुवन कथाई॥
कर कंगन अंगन किंकिन कल नूपुर की छवि अस बनि आई।
रामचरन जनु राम अंग प्रति, सेवहि मुनि चित रूप बनाई॥

(३)

शोभा त्रैलोक्य को विधाता कामधेनु करै
मदन अहीर छवि दूध को दुहावई।
आनंदमय पात्र अवटाय गाढ़ पातिव्रत,
शीतल सुखद परम रूप जामन जमावई॥
नेह रजु मथानी सिंग ललित्य खम्भ
मदन मथि माखन माधुर्य परम पावई।
रामचरण शील आदि बारहो विभूषन सानि,
ताही की विरंचि रचि नायिका बनावई॥

ऐसो जो नायिका बनावे विधि रचि पचि
जाहि देखि उमा, रमा, शारदा लजावई।
ताहि देखि मेरो मन स्वप्न हू न दृष्टि करै,
जानकी को रूप देखे बिक्यो मैं, मोल न लावई॥

(२)

जनकराजकिशोरीशरण 'रसिक अली'

स्वामी अग्रदासजीने सीतारामकी रसमयी लीलाओंकी भक्तिका आलम्बन बनाकर राम-भक्ति-धारामें जिस रसिक सम्प्रदायको जन्म दिया उसीकी एक महत्त्वपूर्ण कड़ीके रूपमें 'रसिक अली'जीका नाम उल्लेखनीय है। इनका पूरा नाम जनकराजकिशोरीशरण 'रसिक अली' था। रसिक अली इनका महली नाम था। इन्होंने पूर्वागत रसिक धाराको भी एक नयी दिशामें प्रवाहित किया। इनसे पहले सीतारामकी युगल-लीलाका रसपान सखियाँ 'तत्सुखीभाव'से करती थीं। तत्सुखीका तात्पर्य है उसके सुखसे सुखी रहना। युगल-दम्पतिकी मधुर लीलाओंका अवलोकन कर आनन्दका अनुभव करना ही तत्सुखी-भावना है। इसमें परकीया-भावकी प्रधानता रहती है। रसिक अलीजीने परकीया-भावको महत्त्वपूर्ण तो ठहराया, परंतु स्वकीयाभावको उत्कृष्ट एवं अनिवार्य बतलाते हुए स्वसुखी-भावनाको प्रश्रय दिया। इसमें सखियाँ लीलाओंकी द्रष्टा न होकर भोक्ता हो गयीं और वास्तविक रूपसे सीतारामके सामीप्यका लाभ उठाकर कृत-कृत्य होने लगीं। अयोध्या, मिथिला एवं चित्रकूट-जैसे रामतीर्थोंमें अभी भी इस भावनाके भक्त हैं।

रसिक अलीजी एक भ्रमणशील संत थे। इन्होंने निश्चितरूपसे कहीं अपना निवास-स्थान नहीं बनाया था, परंतु अयोध्यासे इनका घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। यहींपर ये दीक्षित भी हुए थे और इनका 'रसिक-निवास' नामसे एक स्थान अयोध्यामें बना हुआ है। ये अयोध्या और मिथिला—इन दो राम-धामोंमें आया-जाया करते थे।

इनका जन्म काठियावाड़में सुदामापुरीके पास नागर ब्राह्मण-वंशमें हुआ था। बचपनमें ही किसी साधुके साथ अयोध्या चले आये। यहाँपर कनकभवनका दर्शन करनेके बाद महात्मा राजराघवदासके दर्शनके लिये आये और उनके शरणागत हो गये। बाबा राजराघवदासने इन्हें हिन्दी और संस्कृतका अच्छा विद्वान् बना दिया। रसिक अलीजीकी दीक्षा मधुर दास्य-भावानुकूल हुई थी, परंतु इनका मन सीताकी शृंगारलीलामें अधिक रमता था, इसलिये गुरुकी आज्ञाके अनुसार महात्मा रामचरणदास करुणासिन्धुजीसे शृंगारी सम्बन्ध प्राप्त किया। इसी समय टिकरीके राजाको भी करुणासिन्धुने मन्त्रोपदेश दिया था। इसके साथ ही रसिक अलीजीने भी टिकरीके राजाको कनकभवनके स्वरूपका उपदेश दिया, जिससे प्रभावित होकर राजाके मनमें नव वनों और अष्टकुंजोंके साथ कनकभवनका निर्माण करानेकी इच्छा जाग्रत् हुई। इसके लिये उन्होंने रसिक अलीजीको दस हजार रुपये दिये, परंतु रसिक अलीजी सीतारामके इतने रसिक ठहरे कि सारा धन समाप्त हो गया, परंतु कनकभवनका निर्माण नहीं हो सका। इसका कारण यह रहा कि जो मजदूर रखे गये, उनके लिये पीत वस्त्र और घुँघरू तैयार कराये गये तथा कार्य करते समय उनके लगानेके लिये इत्र-फुलेल आदि खरीदे गये। जितने साज-सामान थे, सब मधुर भावानुकूल; जिससे बहुत सारा धन इस टीम-टाममें ही समाप्त हो गया। इसी बीच राम-विवाह भी पड़ गया। वह भी बड़े धूमधामसे हुआ और संतोंको भंडारा भी दिया गया। इस प्रकार दस हजार रुपयेमें बड़ी मुश्किलसे अष्टकुंजोंमें केवल एक कुंजका एक द्वार बन पाया। बाबा राजराघवदासजीने इनके इस अनुभवहीन कृत्यसे अप्रसन्न होकर इनसे पूछा कि धनको इस प्रकारसे नष्ट करनेसे तुम्हें क्या मिला? तो इन्होंने उत्तर दिया कि 'संत सुखी हुए और भक्तिका प्रचार हुआ।' इस घटनासे रसिक अलीजीकी भक्ति-भावनापर काफी प्रकाश पड़ता है। इसके बाद इनका मन अयोध्यासे उचट गया और ये मिथिला चले गये। वहाँसे अयोध्या आते रहते थे। संवत् १९१९ में ये नित्य-साकेत-लीलामें प्रविष्ट हुए।

रचनाएँ—

रसिक अलीजीने जिस स्वसुखी-भावनाको प्रचारित किया, उसको परिपुष्ट करनेके लिये प्रचुर मात्रामें साम्प्रदायिक एवं सैद्धान्तिक ग्रन्थोंका प्रणयन किया। इनके रचित निम्नलिखित २५ ग्रन्थ चारुशील बाग, जानकीघाट, अयोध्यामें सुरक्षित हैं—

(१) सिद्धान्त-मुक्तावली, (२) सीताराम-सिद्धान्त-

रस-तरंगिणी, (३) आंदोल रहस्य-दीपिका, (४) तुलसीदास-चरित्र, (५) विवेक-सार-चन्द्रिका, (६) सिद्धान्त-चौंतीसा या बारहखड़ी, (७) ललित-शृंगार-दीपिका, (८) कवितावली, (९) जानकी-कर्णाभरण, (१०) सीताराम अनन्य तरंगिनी (संस्कृत), (११) सीतारामरहस्य अनन्य तरंगिनी या सीताराम-रहस्य, (१२) आत्मसम्बन्धदर्पणम् (संस्कृत), (१३) होलिका-विनोद, (१४) वेदान्तसार श्रुतिदीपिका, (१५) श्रीराम-पद्धति, (१६) दोहावली, (१७) रघुवर-कर्णाभरण, (१८) मिथिला-विलास, (१९) अष्टयाम-प्रबन्ध या अष्टयाम, (२०) वर्षोत्सव-पदावली, (२१) जिज्ञासा-पञ्चकम् (संस्कृत), (२२) अमर-रामायण (संस्कृत महाकाव्य), (२३) ध्यायजी (संस्कृत), (२४) अनुराग-रत्नमाला और (२५) सीताराम-रस-चन्द्रोदय।

रसिक अलीजीकी उपर्युक्त रचनाओंमें कुछ सैद्धान्तिक हैं और कुछ भावात्मक। सैद्धान्तिक ग्रन्थोंमें रसिक रामभक्तिके सिद्धान्तों और सीतारामकी रसमयी लीलाओंकी दार्शनिक व्याख्या की गयी है और भावात्मक ग्रन्थों—जैसे वर्षोत्सव-पदावली, होलिका-विनोद आदिमें सीतारामकी मधुर लीलाओंकी भावपूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। रसिक अलीजी हिन्दी और संस्कृतके विद्वान् थे। उनकी रचनाओंमें आलंकारिक छटा और उक्ति-वैचित्र्यका भी सौन्दर्य देखनेको मिलता है। उनकी रचनाके दो-एक नमूने दिये जा रहे हैं—

(१)

समता समानी, संतोष काली पानी पहुँच्यो,
सील बेलि मारि गयी दुचिता दवारी है।
संसि गई सूरता, उदारता उदास बैठी
धीरता धरामें पैठी श्रद्धा देह गारी है॥
विद्या भई वृषली, सुरुचि दूती साथ लै के,
ब्रह्म कुल त्यागी तब करै का बिचारी है।
मारि गई मीतता पुनीतता पताल बैठी
दया मया मौन साधि बैठी मन मारी है॥

(तुलसीदास-चरित्र)

(२)

काम को कमान ऐसी बनी बंक भौंहे आली,
केसरिको तिलक रेख राजत है रूरी।
कंज मीन खंजनसे चंचल विसाल नैन,
फूलत झरत बैन होत मौन मान रूरी॥
पाग जरकसी तापै मोतिन की कलँगी है,
मोतिनके झब्बन की झूलन छबि पूरी।
सुषमा अपार अंग राघव सुजान जू के,
देखि-देखि अलीगन डारत तृण तूरी॥

(३)

नग लीजे प्रिया, गिरि कैसे उठाइये, भूषन है, नहिं भूष हमारे।
उर गोरी कहै छवि शंक रही, लर तीन को है, ईर्षा न प्रचारे॥
कर धारो याही भरो कहिहे नेग, नील जरै, जड़ लाज न धारे।
वर वैन कहो, नहिं छंद पढ़ो, बतियाँ जू कहौ, हम दीप न बारैं॥

(३)

श्रीश्यामसखे

उन्नीसवीं शताब्दीमें रसिक रामभक्तिधाराको अपनी उत्कृष्ट रचना-शीलतासे समृद्ध करनेवाले रामभक्तोंमें महात्मा 'श्यामसखे' का नाम सगर्व लिया जाता है। खेद है कि इनके जन्मादिके विषयमें कोई ठोस जानकारी उपलब्ध नहीं है। इनकी एकमात्र रचना 'राग-प्रकाश' उपलब्ध है, जिसके एक पदसे ज्ञात होता है कि ये अयोध्या-निवासी थे—

जाके हनुमान चरन आसा।
ताको सफल मनोरथ करिहैं, वर दीन्हों रघुपति दासा॥
जो मन वच विस्वास बढ़ावै संकट वेगि करै नासा।
निश्चै श्यामसखे अपनायो दीन्हों अवध नगर वासा॥

(राग-प्रकाश, पद-सं० ३१४)

अन्तिम पंक्तिमें श्यामसखेने अपने ऊपर हनुमान्‌जीके कृपालु होनेके विश्वासका प्रमाण यह दिया है कि उन्हींकी कृपासे उन्हें अयोध्या नगरमें निवास करनेका सौभाग्य मिला है। इससे ज्ञात होता है कि उनकी जन्मभूमि चाहे जहाँ रही हो, किंतु अयोध्या उनकी साधना-भूमि थी।

श्यामसखेके नामान्तमें विद्यमान 'सखे' शब्दसे ज्ञात होता है कि ये सख्यभावोपासक रामभक्त थे, किंतु उनकी पदावलीमें 'सखी-भाव'की प्रधानता है। उन्होंने अयोध्या और मिथिलाकी सखियोंकी भावनासे भावित होकर सीतारामके युगल-माधुर्यका चित्रण किया है। इनकी रचना राग-प्रकाश देखनेसे पता चलता है कि श्यामसखे यद्यपि रामभक्त थे; परंतु

अन्य देवी-देवताओंके प्रति भी उनमें प्रेमभाव था। यहाँ उनके कुछ पद दिये जा रहे हैं—

(१)

देखु सखी ! छवि श्याम-सुँदरकी ॥
मनि मानिक सिरमौर बिराजै रतन-मँडपतर दामिनि दमकी।
उर वनमाल, केसरिया जामा, कच कुंचित बिच नागिन लटकी ॥
एक-से-एक सखी मिथिलापुर रघुनंदन-छवि देखत अँटकी।
श्यामसखे दम्पति-छवि निरखत लेत लाहु लोचन हिय की ॥

(पद-संख्या-२५)

(२)

हनुमत कुँवर रजाय तोहारे।
× × ×
श्यामसखे हमरी सुधि लीजे रामसियाजीके प्रानपियारे ॥

(पद-संख्या-३१०)

(३)

साँवली सिवके सँग सोहै।
चित चकोर पति-प्रेम-पियासी बदन-चंद्र जोहै ॥
शिवाकी छवि बरने को है।
कोटिन रति-पति उपजत-विनसत भृकुटी वर मोहै ॥

(पद-संख्या-३९४)

(४)

मन बसि करि लियो अवध-निवासी।
दशन दाम मन काम पूरकर मटकनि मंद हँसनि सुखरासी ॥
चिकने चिकुर मुकुर कपोल ढिंग लटकनि कुंडल बजनि बिभासी।
मदन मीन अहिगन विलोकि के नाचत गावत खंजन मासी।
× × ×
घट सिसु रूप ईश मुनिगन जहाँ खेलत मगन रहत अविनासी।
श्यामसखे कमला शिव दासिनि भृकुटि विलोकत करत खवासी ॥

(पद-संख्या-१०४)

(४)

श्रीसीतारामशरण 'रसरंगमणि'जी

इनका जन्म रामपुरमें एक कुलीन ब्राह्मण-परिवारमें संवत् १९१६ में हुआ था। इनके पिताका नाम अवधकिशोरप्रसाद और माताका नाम जगरानीदेवी था। चौदह वर्षकी अवस्थामें ही इन्होंने संस्कृत भाषाका अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया। इसी समय वाल्मीकिरामायण आदिके अध्ययनसे इनके हृदयमें भगवत्प्रीति अविरल रूपसे प्रगाढ़ होने लगी, जिसके प्रभाव-स्वरूप पिताके अनेकानेक आग्रहोंके बावजूद इन्होंने विवाह नहीं किया और गृहप्रपञ्चसे मुक्ति लेकर संवत् १९३० में चित्रकूट चले गये। वहाँ इनकी भेंट सख्यभावोपासक कामदेन्द्रमणिसे हुई। उन्होंने इन्हें रामभक्तिमें दीक्षित किया और रसिक सम्प्रदायानुकूल इनका शरणागतिसूचक नाम 'सीतारामशरण' और रस-सम्बन्धी नाम 'रसरंगमणि' रखा। कालान्तरमें कामदेन्द्रमणिके साथ ही ये अयोध्या चले आये। अयोध्यामें इन्होंने 'रामरसरंगविलास' नामक अपना स्थान बनाया। दीर्घकालतक अवधवास करके सं० १९६९ में ये सीतारामकी दिव्यलीलामें प्रविष्ट हुए।

रसरंगमणिकी उपासना मधुर सख्यभावकी थी। इन्होंने स्वयं लिखा है—

'मधुर सख्य रसरंगमणी श्रीरामलला अलबेला को।'

ये रामको अपना सखा तथा सीताजीको स्वामिनी मानते थे—

'मणि रसरंग दुलारे न्यारे सिय स्वामिनि सुकुमारी के'

सीतारामशरण 'रसरंगमणि'की २९ रचनाओंका उल्लेख प्राप्त होता है, जो इस प्रकार हैं—(१) श्रीरामस्तवराजटीका, (२) ध्यानमंजरीकी टीका, (३) मानसी सेवा, (४) श्रीरामानन्द-यशावली, (५) श्रीहनुमतयशतरंगिणी, (६) श्रीयुगलानन्द-बधाई, (७) सरयूरसरंगलहरी, (८) बारहमासा-माहात्म्य, (९) सीतारामनाममंजरी, (१०) श्रीरामप्रेमपंचरत्न, (११) रामलीलासंवाद, (१२) सीताराम-प्रेमपदावली, (१३) होलीविलास, (१४) सीतारामशोभावली, (१५) सीताराम-नखशिख, (१६) सीताराम-झूला-विलास, (१७) गीताके बारहवें अध्यायकी टीका, (१८) सीताराम-सुषमाविलास, (१९) श्रीरामप्रेमचर्चा, (२०) जानकी-यशावली, (२१) रामायण बाराखड़ी, (२२) सीतारामवर्ष-विलास, (२३) श्रीरामझाँकी-विलास, (२४) रामरक्षास्तोत्रकी टीका, (२५) श्रीरामशतवन्दना, (२६) नाभाजीके भक्तमालकी टीका, (२७) रामरसरंग-दोहावली, (२८) श्रीरामनाथयशविलास और (२९) रामरसरंगविलास।

उपर्युक्त रचनाओंके संदर्भमें कहा जा सकता है कि सीतारामशरण 'रसरंगमणि'ने सीता और रामकी मधुर

लीलाओंके भावपूर्ण चित्रणमें विशेष रुचि ली है। 'श्रीरामानन्द-यशावली' और 'श्रीहनुमतयशतरंगिणी'-जैसी रचनाओंमें उन्होंने क्रमशः स्वामी रामानन्द और भगवान् रामके अनन्य भक्त हनुमान्जीके जीवन-चरित्रका विशद निरूपण किया है, अन्य ग्रन्थोंमें सीतारामके युगलमाधुर्य-वर्णविलास, युगल-सौन्दर्य और युगल-विहारकी ही मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गयी है। यहाँपर इनसे सम्बन्धित कुछ भावपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनसे रसरंगमणिजीकी भाव-साधना और कलात्मक अभिव्यक्तिका अच्छा परिचय मिल जायगा—

(१)

सोन सो सुन्दरताई, ससी सितलाई सोहाई प्रभा अमली-सी।
दामिनि ओप मनीरसरंग मृदुल सुगंधिहु चंपकली-सी॥
कल्प-लता-सी लसै लहरानि अनूपम लाल तमाल रली-सी।
ज्यों छवि देह सनेह की दीप दिपै दुति देह विदेह लली की॥

(२)

सीता तड़ित के तन बसन समान घन
घनश्याम तन तट दुति तड़िता की है।
मानो काल नील कंज शील पुंज सिया नैन
लाल कंजहू ते मंजु आँखें रसिया की हैं॥
ऐसे रसरंगमनी शोभा दोऊ दोहुन की
मंद मुस्कान मोह प्रीति-मद छाकी है।
तीनों लोक झाँकी, बुद्धि कतहूँ न झाँकी
राघव सिया की जस बाँकी वर झाँकी है॥

(३)

हिंडोरे झूलि रहे सियराम।
सावन सुख सरसत घन बरसत दामिनि परस ललाम॥
झोंकत रसिक हँसत अवलोकत प्यारी मुख अभिराम।
ससि जू ललकि ललन गल लागहिं कहि कछु केलि कलाम॥
लूटहिं लोचन लाहु अली लखि लीला ललित ललाम।
मणिरसरंग युगल झूलन पर वारत बहु रति काम॥

हिन्दीमें रसिक रामभक्ति काव्यधारामें रसरंगमणिजीका साहित्य उल्लेखनीय महत्त्वका है। इससे रामभक्ति-काव्य-धारापर पड़े रीतिकालीन प्रभावोंके अध्ययनमें भी काफी मदद मिलती है।
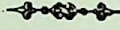
जन्मसिद्ध आलवारों तथा वैष्णवाचार्योंकी रामभक्ति

(डॉ॰ श्रीभगवतीप्रसाद सिंहजी)

राम-भक्ति तथा राम-कथाका जो राष्ट्रव्यापी प्रचार आज हम देखते हैं और जिसने भाषा, क्षेत्रीय-संस्कार तथा भौगोलिक स्थितिकी विभिन्नताओंके बावजूद सारे देशको एक सूत्रमें बाँधकर भावनात्मक एकताकी स्थापनामें अपूर्व योगदान किया है, उसके मूलमें भावसिद्ध आलवारों तथा ज्ञानमूर्ति वैष्णवाचार्योंकी अखण्ड तपश्चर्या तथा साधनापुष्ट पाण्डित्य रहा है। महाकवि कंबन, महात्मा तुलसीदास, एकनाथ, बलरामदास, कृत्तिवास, शंकरदेव, गुरु गोविन्दसिंह-जैसे लोक-विश्रुत रामचरित-प्रणेताओंके हृदयमें रामावतारके प्रति असाधारण आस्थाकी स्थापना इसी परम्पराके आचार्यों तथा भक्तोंका प्रसाद था।

राम-कथाकी भाँति, रामोपासनाके भी मूलमें वाल्मीकि-रामायण तथा महाभारतकी महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। इनमें निर्दिष्ट हनुमच्चरित तथा विभीषणकी शरणागतिके प्रसंगोंका विशेष महत्त्व है। वाल्मीकिरामायण (६।१८।३३) में विभीषणके प्रति रामद्वारा कहे गये प्रपत्तिमूलक वाक्य रामोपासनामें चरम मन्त्रके रूपमें प्रतिष्ठित हो गये—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

यहाँतक कि स्वयं रामानुजाचार्यने भी 'शरणागति-गद्य'में इसका आधार लेकर आत्मनिवेदन किया है। विभीषणकी राम-भक्तिका प्रतिपादन वाल्मीकिरामायणके एक अन्य प्रसंगसे भी होता है, जिसके अनुसार ऐक्ष्वाकुओंके कुलदेवता श्रीरंगजीको अयोध्यासे ले जाकर द्रविड़ देशमें स्थापनाका श्रेय उन्हींको दिया गया।

दक्षिण भारतमें श्रीरंगधाम शताब्दियोंसे वैष्णव भक्तिका प्रधान केन्द्र रहा है। ऐतिहासिक कालमें राम-भक्तिके प्रवर्तक आलवारों—शठकोप (नम्मालवार) और कुलशेखर तथा आचार्यों—नाथ मुनि और रामानुजको राम-भक्तिका प्रसाद इसी दिव्य देशमें प्राप्त हुआ था।

आठवीं शताब्दीसे आलवारोंकी पीयूषवाणीसे सिंचित हो भक्तिलता पुनः लहलहा उठी। पाँचवें आलवार शठकोप रामके अनन्य भक्त थे। इनकी सहस्रगीतिमें दाशरथि रामकी शरणागतिका सर्वप्रथम स्पष्ट उल्लेख मिलता है—

'दशरथस्य सुतं तं विना नान्यशरणवानस्मि'

(सहस्रगीति ३।६।८)

शठकोपाचार्य भगवान् रामकी पादुकाके अवतार माने जाते हैं। इन्होंने वेंकटाचलके निकट तिरुपतिमें श्रीरामचन्द्रकी मूर्ति स्थापित की थी (श्रीरामरहस्यत्रयार्थ (परि॰), पृ॰ ४४)। कलियुगमें रामतारक-मन्त्रके उपदेशद्वारा रामोपासनाके प्रचारका श्रेय इन्हींको दिया गया है—

वेंकटाद्रौ पुरा वेदा द्वापरान्ते पराङ्कुशः।
विष्वक्सेनं समाराध्य लभिष्यति षडक्षरम्॥
तत्समीपे महापीठे वेंकटे रंगमण्डपे।
जपिष्यन्ति चिरं मन्त्रं तारकं तिमिरापहम्॥

(श्रीरामरहस्यत्रयार्थ)

छठे आलवार मधुर कवि हुए। ये शठकोपके शिष्य और अप्रतिम गुरु-भक्त थे। वैष्णव ग्रन्थोंमें इनका जो वृत्त प्राप्त है, उससे इनकी प्रगाढ़ राम-भक्तिके प्रमाण मिलते हैं। प्रपन्नामृतमें इनकी अयोध्या-यात्रा, सरयूस्नान तथा सीताराम-पूजाका उल्लेख करते हुए कहा गया है कि इन्होंने कुछ दिन अयोध्यावास भी किया था—

तस्मिन् कालेऽथ वेदान्तिस्तस्माद्बदरिकाश्रमात्।
अयोध्यामगमद्धीमान् कविर्मधुरसंज्ञकः॥
स्नात्वाथ सरयूनद्यां वेदान्ती भगवत्परः।
संसेव्य सीतासहितमयोध्यां रघुनन्दनम्।
कश्चित् कालमुवासात्र नित्यवासरतः सदा॥

सातवें आलवार चेरनरेश कुलशेखर पेरुमाल प्रसिद्ध रामभक्त थे। ये रामायणको वेदोंके समान पूज्य मानते थे। कहा जाता है कि रामचरितमें इनकी इतनी आस्था थी कि एक बार कथामें व्यासके मुखसे खर-दूषणकी विशाल सेनाद्वारा वनवासी रामपर आक्रमणका वृत्तान्त सुनकर ये आवेशमें आ गये थे और प्रभुकी सहायताके लिये तत्काल अपनी सेनाका डंका बजवा दिया था। इसी भाँति एक अन्य अवसरपर सीता-हरणका प्रसंग कानमें पड़ते ही इन्होंने जगन्माताका उद्धार करनेके लिये लंकापर धावा बोल दिया था। नाभादासजीने भक्तमालमें इनके परिचयके प्रसंगमें इस घटनाका उल्लेख किया है। इनके विषयमें यह भी प्रसिद्ध है कि इष्टदेवकी अन्तःप्रेरणासे इन्होंने अपनी पुत्री उनके प्रतिरूप श्रीरंगदेवको ब्याह दी थी। आराध्यके प्रति इतनी प्रगाढ़ निष्ठाके उदाहरण पूरे भक्ति-साहित्यमें दुर्लभ हैं। कुलशेखरद्वारा तमिल भाषामें विरचित एकादश श्लोक राम-भक्ति-साहित्यकी अमूल्य निधि हैं।

आठवें आलवार विष्णुचित्तकी पुत्री गोदा, जो आन्दाल तथा रंगनायिकीके नामसे भी प्रसिद्ध हैं, तुलसी-वाटिकामें प्रकट होनेके कारण भूमिजा सीताका अवतार मानी जाती हैं। उनकी माधुर्य-भावकी उक्तियाँ यद्यपि अधिकांशतः रंगनाथ तथा कृष्णको उद्दिष्ट करके कही गयी हैं, किंतु कुछ छन्दोंमें वही भाव रामके प्रति भी व्यक्त हुए हैं, एक उदाहरण है—

जनकनृपतेः पुत्र्याः पाणिग्रहाय यथा तदा
दृढधनुर्भंगं चकार नृणां पणम्।
वृषभकरीणां भंगं नीलाग्रहाय यथा च मे
कमपि पणमत्रास्ते कुर्वन् तथा न करग्रहे॥

(गोदास्तोत्र, पृ॰ १२)

बारहवें तथा अन्तिम पेरियालवार तिरुमोलिके भी रामशरणागतिसम्बन्धी कुछ छन्द तमिल दिव्य-प्रबन्धमें संकलित मिलते हैं।

आलवारोंकी भक्ति-भावनाके विवेचनके प्रसंगमें यह उल्लेखनीय है कि उनके भक्तिपूर्ण उद्गार भगवान् विष्णु, नारायण, श्रीरंगनाथ, राम तथा कृष्णके प्रति अभेदभावसे व्यक्त हुए हैं। इसलिये उन्हें किसी एककी भक्ति-परिधिमें सीमित नहीं किया जा सकता, यह दूसरी बात है कि व्यक्तिगत साधनामें इनमेंसे किसी एककी ओर उनकी विशेष रुझानको लक्षित कर परवर्ती साहित्यमें उसे ही उनका आराध्य स्वीकार कर लिया गया हो।

उपासनामें इष्टदेवकी अनिवार्यताकी प्रवृत्ति आलवारोंके अनुवर्ती वैष्णवाचार्योंद्वारा पोषित तथा प्रतिष्ठित हुई, जिसके फलस्वरूप सगुणोपासनामें राम-भक्ति तथा कृष्ण-भक्तिकी दो पृथक् धाराओंका प्रवर्तन हुआ और उनकी अलग परम्पराएँ चलीं।

वैष्णवोंके चार सम्प्रदायों—श्री, सनक, ब्रह्म और विष्णुस्वामीमें राम-भक्तिका विशेष प्रसार श्रीसम्प्रदाय तथा ब्रह्मसम्प्रदायमें हुआ। प्रथमके आदि प्राचार्य नाथ मुनि तथा द्वितीयके मध्वाचार्य थे। आलवारोंकी भाँति इन आचार्योंने भी विष्णु तथा उनके अवतारोंमें समान रूपसे आस्था व्यक्त की और तद्विषयक साहित्य-रचनामें रुचि दिखायी। इसीलिये राम-भक्तिपरम्परामें ये पार्षदोंके अवतारके रूपमें पूज्य हुए[१]।

'श्रीवैष्णवों'के प्रथम आचार्य नाथ मुनि (८२४—९२४ ई०)ने शठकोप आलवारके पदचिह्नोंका अनुसरण कर अपनी साधनामें रामनिष्ठाकी प्रमुखता दी। दिव्य देशोंका पर्यटन करते हुए उन्होंने अयोध्या और चित्रकूटका दर्शन किया था। इनके द्वारा आराधित कोदण्डपाणि रामकी मूर्ति बालाजी पर्वतपर बड़े जियरमठमें अबतक विद्यमान है। आचार्य रामानुजने सर्वप्रथम इसी विग्रहसे प्रेरणा प्राप्त की थी। वाल्मीकिरामायणकी गोविन्द-राजद्वारा निर्मित प्रसिद्ध 'भूषण' टीका इसी स्थानपर हनुमान्‌जीके समक्ष लिखी गयी थी। इसके अतिरिक्त प्रपन्नामृतमें आचार्य नाथ मुनिके महाप्रस्थानका जो वृत्तान्त दिया गया है वह भी रामचरणोंमें उनकी अलौकिक श्रद्धाका परिचायक है। कहते हैं कि एक दिन नाथ मुनिको ढूँढ़ते हुए दो धनुर्धर राजकुमार, एक सुन्दरी युवती तथा बलवान् वानरके साथ उनके घर आये। उनकी पुत्रीसे पूछनेपर पता चला कि नाथ मुनि कहीं बाहर गये हैं। अतः वे लौट गये। पिताके घर आनेपर पुत्रीने सारा हाल कह सुनाया। नाथ मुनि उनके दर्शनोंके लिये तुरंत घरसे निकल पड़े। निकटवर्ती गाँवों, नगरों, पर्वतों और जंगलोंमें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब वे थक गये और आगन्तुकोंका कहीं पता नहीं चला तो परम विरहाकुल-दशामें आराध्यका साक्षात्कार करनेके लिये उन्होंने परमधामके लिये प्रस्थान किया।

आचार्य नाथ मुनिके उत्तराधिकारी पुण्डरीकाक्ष हुए। उनका 'रामार्चा' नामक ग्रन्थ दक्षिणके दिव्य देशोंमें पाया जाता है। तीसरे आचार्य राममिश्र थे। इनकी दो कृतियाँ 'राम-षडक्षर-प्रपत्ति-स्तोत्र' तथा वाल्मीकिरामायणकी 'भाव-प्रकाशिका टीका'का उल्लेख साम्प्रदायिक साहित्यमें मिलता है। प्रथमका एक श्लोक नीचे दिया जाता है—

रामायणपरत्वार्थं प्रतिपाद्यपरः स्मृतः।
ऐकान्तिकानां सेव्योऽयं मन्त्रराजः षडक्षरः॥
गुहपक्षीन्द्रकाकादीन् भल्लप्लवगराक्षसान्।
मोक्षो दत्तः पुरा येन स मे त्राता भविष्यति॥

(रामरहस्यत्रयार्थ (परि०), पृ० ४७)

श्रीराममिश्रके शिष्य यामुन मुनि (९१६—१०४० ई०) असाधारण महत्त्वके आचार्य हुए। 'श्री'-सम्प्रदायकी विधिवत् स्थापना और उसके सिद्धान्तोंका प्रवर्तन इन्हींकी प्रेरणाका फल था। अपनी विश्रुत रचना 'आलवन्दारस्तोत्र' (स्तोत्ररत्नम्)में इन्होंने रामकी विभीषणके समक्ष की गयी प्रतिज्ञा **'सकृदेव प्रपन्नाय'**की दुहाई देते हुए अपने पितामह नाथ मुनिकी प्रगाढ़ राम-भक्तिका स्मरण दिलाकर उसी नातेसे चरणोंमें स्थान पानेकी पात्रता व्यञ्जित की है—

ननु प्रपन्नः सकृदेव नाथ तवाहमस्मीति च याचमानः।
तवानुकम्प्यः स्मरतः प्रतिज्ञां मदेकवर्ज्यं किमिदं व्रतं ते॥
अकृत्रिमत्वच्चरणारविन्दप्रेमप्रकर्षावधिमात्मवन्तम्।
पितामहं नाथमुनिं विलोक्य प्रसीद मद्वृत्तमचिन्तयित्वा॥

(आलवन्दारस्तोत्र ६७-६८)

आचार्य रामानुज (१०१६—१११७ ई०) यामुन मुनिके प्रशिष्य थे। 'श्री'-सम्प्रदायमें ये अपने नाम-गुणानुसार शेष अथवा लक्ष्मणके अवतार माने जाते हैं और अहर्निश अग्रजकी सेवा ही इनकी निष्ठा बतायी जाती है। प्रसिद्धि है कि महापूर्ण स्वामीने इनका दीक्षा-संस्कार कोदण्ड-राममन्दिर (वेंकटाचल-तिरुपति)में श्रीविग्रहके समक्ष सम्पन्न किया था। वाल्मीकिरामायणमें इनकी अगाध निष्ठा थी। उसकी चौबीस आवृतियाँ इन्होंने गुरुसे मनोयोगपूर्वक सुनी थीं।

रामतीर्थोंमें इनकी भक्तिका अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि इन्होंने शैव राजा कृमिकंठद्वारा आक्रान्त चित्रकूटका उद्धार किया था और आराध्यकी जन्मभूमि अयोध्याका दर्शन करने गये थे। प्रपन्नामृतके अनुसार

१-वैष्णव संहिताओंमें लक्ष्मीनारायणसे सीतारामकी अभिन्नता प्रतिपादित कर इसका पथ प्रशस्त कर दिया गया था—

तत्रायोध्या पुरी रम्या यत्र नारायणो हरिः। रामरूपेण रमते सीतया परया सह॥
आदिभूता महालक्ष्मीः सीता तु विभवे मता।

(बृहद्ब्रह्मसंहिता, पृ० ८४)

यादवाचलपर इन्होंने रामके लीलाविग्रह 'संपत्कुमार'की स्थापना की थी। उनमें इनकी अनुरक्ति इतनी अधिक हो गयी थी कि पूर्वाचार्योंद्वारा आराधित श्रीरंगदेवको भी भूल गये थे। 'श्री-भाष्य'की रचना इसी स्थानपर हुई थी।

आचार्य रामानुजकी शिष्य-परम्परामें रामके प्रति भावभक्ति उत्तरोत्तर दृढ़ होती हुई अनेक रूपोंमें विकसित हुई। उनके शिष्य पराशर भट्ट पहले रामभक्त हैं, जिन्होंने खुले रूपमें 'दामाद' रूपमें रामकी उपासना करते हुए उनके सामीप्य-लाभकी आकांक्षा व्यक्त की—

मातर्लक्ष्मि यथैव मैथिलजनस्तेनाध्वना ते वयं
त्वद्दास्यैकरसाभिमानसुभगैर्भावैरिहामुत्र च।
जामाता दयितस्तवेति भवती सम्बन्धदृष्ट्या हरिं
पश्येम प्रतियाम याम च परीचारान् प्रहृष्येम च॥

(श्रीगुणरत्नकोश, ५१)

इतना ही नहीं, उन्होंने स्वर्गके परे स्थित अपराजिता अयोध्याके उस दिव्य रूपका भी वर्णन किया है, जो परात्पर ब्रह्म रामकी भोगभूमि एवं नित्य-लीलास्थली है और जिसकी प्राप्ति रसिक रामोपासक अपनी साधनाका परम लक्ष्य मानते हैं—

आज्ञानुग्रहभीमकोमलपुरीपाला फलं भेजुषां
यायोध्येत्यपराजितेति विदिता नाकं परेण स्थिता।
भावैरद्भुतभोगभूमगहनैः सान्द्रा सुधास्यन्दिभिः
श्रीरंगेश्वरगेहलक्ष्मि युवयोस्तां राजधानीं विदुः॥

(श्रीगुणरत्नकोश, २३)

इसी परम्परामें आविर्भूत लोकाचार्यने रामभक्तिमें सीतापरत्वकी भावनाको कुछ आगे बढ़ाया। उन्होंने अपराधैकपरायण संसारी जीवोंके लिये भगवत्प्राप्तिका सर्वाधिक सुगम-साधन जगन्माता सीताकी शरणागति बताया है। जगत्पिता रामके स्वभावमें पुरुषसुलभ कठोरता तथा मार्दव—दोनों गुणोंकी स्थिति है। अतः दण्डके भयसे जीव सहसा उनके समक्ष उपस्थित होनेसे डरता है। इसके विपरीत सीताजीका मातृहृदय वात्सल्यपूर्ण है। वे चेतनोंका दुःख नहीं देख सकतीं। अपराध करनेपर भी माताके सम्मुख उपस्थित होनेमें बालक संकोचका अनुभव नहीं करता। सीताजी शरणागत जीवका अपराध अनेक उपायोंसे पतिद्वारा क्षमा कराती हैं और अवसर पाकर उसे उनके चरणोंमें अर्पित कर देती हैं। उनका स्वभाव ही विमुख जीवोंको सम्पत्ति-लाभके लिये ईश्वरोन्मुख करना है। यही उनका घटकत्व अथवा पुरुषकारत्व है। इसलिये वरवरमुनिने रामकी कृपासे सीताका अनुग्रह अधिक सुलभ माना है। (श्रीवचनभूषण, टीकाकार वरवर मुनि, पृ० ४०, ५६)।

लोकाचार्यजीने जीव और सीताके सम्बन्धकी स्वाभाविकता अन्य प्रकारसे भी सिद्ध की है। उनका मत है कि शरीर छूटनेपर सभी आत्माएँ स्त्री-स्वरूप हो जाती हैं और उस स्थितिमें स्त्री-सुलभ छः गुणोंसे समन्वित जीव सीतासे एकात्मता स्थापित कर परम पुरुष रामका भोग्य बन जाता है। लोकाचार्य तथा वरवरमुनिद्वारा प्रतिपादित यह सिद्धान्त आगे चलकर शृंगारी रामोपासनाका मुख्य प्रेरणास्रोत बन गया।

इस प्रकार श्रीवैष्णव आचार्योंने अपनी भावसाधनाद्वारा रामोपासनामें पञ्चरसात्मिका भक्तिके विकासका मार्ग प्रशस्त कर दिया। इन्होंने स्वयं इसकी प्रेरणा आलवारोंसे ग्रहण की थी। नम्मालवार माधुर्य एवं दास्य, कुलशेखर सख्य तथा दास्य और गोदाकी उपासना माधुर्य-भावकी थी। इसीके अनुरूप नाथ मुनि तथा कूरेश स्वामी दास्य, रामानुज दास्य-मिश्रित वात्सल्य, पराशरभट्ट दास्य तथा वात्सल्य और लोकाचार्य एवं वरवरमुनि दास्य-मिश्रित शृंगारी-भावके साधक थे।

स्वामी राघवानन्द और उनके लोकविश्रुत शिष्य तथा मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलनके पुरस्कर्ता स्वामी रामानन्दको आलवारों तथा आचार्योंद्वारा पोषित पञ्चरसात्मिका रामभक्तिके ये सिद्धान्त रिक्थ-रूपमें प्राप्त हुए। उन्होंने उनकी रक्षा ही नहीं की, प्रत्युत अपनी अद्भुत संगठन-शक्ति एवं साधनासे खींचकर विकासकी चरम सीमातक पहुँचाया। राम-मन्त्रकी व्याख्या करते हुए उन्होंने ईश्वर और जीवके भाव-सम्बन्धके इन पाँचों रूपोंको विहित ठहराया और कूरेश स्वामी तथा लोकाचार्यकी पद्धतिपर सीताजीके पुरुषकारत्वका महत्त्व स्वीकार करते हुए निम्नलिखित व्यवस्था दी—

पुरुषकारपरा विनिगद्यते सकमला कमला कमलप्रिया।
इयमसौ कुशलैस्तदुपायता नृभिरुपायशून्यपरैः परैः॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर, ९५)

और इसकी पात्रता-प्राप्तिके लिये नवधासे परे 'दशधा' प्रेम-लक्षणा अथवा पराभक्तिकी साधनाका उपदेश दिया—

एवं महान् भोगवतः सुसंस्कृतः रामस्य भक्तिं च परां प्रकुर्यात् ।
महेन्द्रनीलाश्मरुचेः कृपानिधेः श्रीजानकीलक्ष्मणसंयुतस्य ॥

(वैष्णवमताब्जभास्कर, ६२)

स्वामी रामानन्दके द्वादश शिष्योंद्वारा रामोपासनाकी मर्यादावादी तथा रसिक भावधाराओंका देशव्यापी प्रचार हुआ। इससे यवन-शासकोंके अत्याचारोंसे संत्रस्त जनमानसमें आत्मविश्वासका संचार हुआ और परिस्थितियोंसे जूझते हुए आत्मरक्षाकी भावना जागी। राष्ट्रके कोने-कोनेमें मठों और अखाड़ोंका जाल बिछाकर इन सर्वव्यापी भक्तोंने आध्यात्मिक क्रान्तिका जो मन्त्र फूँका उसने समाजके सभी वर्गोंमें अपूर्व जागृति उत्पन्न की और तुर्कोंकी राजनीति-विजयको सांस्कृतिक पराजयमें परिणत कर दिया। स्वामी रामानन्दद्वारा राष्ट्रिय संस्कृतिकी रक्षाकी दिशामें किये गये इस महान् प्रयासको दृष्टिमें रखते हुए ही नाभादासने अपने भक्तमालमें उन्हें लोकोद्धारक रामका प्रतिरूप घोषित कर उनके प्रति भावपूर्ण कृतज्ञता व्यक्त की—

बहुत काल वपु धारिकै प्रनत जनन को तार दियो ।
श्रीरामानंद रघुनाथ ज्यों दुतिय सेतु जगतरन कियो ॥

कहना न होगा कि स्वामी रामानन्द तथा उनके द्वारा संचालित मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलनकी असाधारण सफलताके मूलमें आलवारों तथा वैष्णवाचार्योंकी अखण्ड साधना तथा अलौकिक व्यक्तित्व था।

'श्री'-सम्प्रदायकी भाँति ब्रह्मसम्प्रदायमें भी राम-भक्तिकी एक प्रशस्त परम्पराका संधान मिलता है। उसके प्रवर्तक श्रीमाधवाचार्य (११९९—१३०३ ई०) उत्तरी भारतकी दिग्विजय करते समय बदरिकाश्रमसे 'दिग्विजयी राम' की मूर्ति दक्षिण ले गये थे। प्रसिद्धि है कि अपने शिष्य नरहरितीर्थसे १२६४ ई०के लगभग उन्होंने जगन्नाथपुरीसे मूल राम-सीताकी मूर्ति मँगायी थी। सम्भवतः यही विग्रह उन्होंने अपने अष्ट शिष्योंमेंसे एकको दिया था, जिसकी स्थापना उत्तरादिमठ मैसूरमें 'मूलराम'के नामसे हुई थी।[१]। इसके अतिरिक्त उडुपीके 'फलेमार मठ'में प्रतिष्ठित रामविग्रह भी श्रीमध्वाचार्य-प्रदत्त बताया जाता है। काशीमें हनुमानघाटपर स्थापित 'मध्वाश्रम' ब्रह्म-सम्प्रदायकी राम-भक्तिशाखाकी मूल गद्दी उत्तरादि मठसे सम्बद्ध है।

श्रीमध्वाचार्य हनुमान्के अवतार माने जाते हैं[२]। 'मध्व-विजय'में रामदूत हनुमान्का यशोगान हुआ है। साम्प्रदायिक परम्परामें हनुमान्की राम-भक्तिसम्बन्धी एक छन्द प्रचलित है, जिसका भाव यह है कि रामार्चनके लिये साम्प्रदायिक आचारके अनुसार अञ्जलिमें पुष्प-धारण करनेमें जितना प्रयास उन्हें करना पड़ता है, उतना संजीवनी-बूटीसमेत पर्वत उठाकर लानेमें भी नहीं करना पड़ा था[३]।

माध्व-मतमें हनुमान्के साथ भीमकी बड़ी प्रतिष्ठा है।[४] हो सकता है वायुपुत्र होनेसे हनुमान्के बन्धुत्वके कारण ही उन्हें यह गौरव प्राप्त हुआ हो। उत्तरादिमठकी शाखाओंमें राम और हनुमान्के साथ उनकी मूर्तिकी भी पूजा होती है।

मध्वाचार्य-विरचित 'द्वादशस्तोत्र'में 'जानकीकान्त राघव'-की वन्दना भावपूर्ण ढंगसे की गयी है[५]।' माध्व-सम्प्रदायमें रामोपासनाके ये बीज आगे चलकर राम-भक्तिकी स्वतन्त्र परम्पराओंकी स्थापनामें सहायक हुए।

१-माध्व-सम्प्रदायमें मूलराम विग्रहकी वन्दनाका श्लोक नीचे दिया जाता है। इससे उसके प्राचीन इतिहासपर भी प्रकाश पड़ता है—

सीतायुक्तमजादिपूजितपदं श्रीमूलरामं विभुम्। रामं दिग्विजयाद्यमेवममलं श्रीवंशरामं सुधीः॥
व्यासाख्याः प्रतिमाः सुदर्शनशिलाः······। चक्राङ्कानपि पूजयन् विजयते सत्यप्रमोदो गुरुः॥

२-उत्तरमध्यकालीन सख्य-सम्प्रदायाचार्य श्रीरामसखे मध्वमतके ही अनुयायी थे। मैहर (म० प्र०) तथा अयोध्या दोनों स्थानोंपर उनकी परम्परा विकसित हुई। अयोध्याकी 'नृत्यराघवकुंज' तथा 'श्रवणकुंज' की गद्दियाँ इन्हींके द्वारा स्थापित मानी जाती हैं। अपनी प्रसिद्ध कृति 'नृत्यराघव-मिलन'में ये लिखते हैं—

राम मंत्र निज कर्ण सुनावा। परम्परा पुनि तत्व लखावा॥
संप्रदाय विधि मूल प्रधाना। अधिकारी ता महँ हनुमाना॥
मध्व रूप सोई अवतरिया। मत अभेद जिन खण्डन करिया॥ (नृ०, रा०, मि०, पृ० ४५)

३-रामार्चने यो नयतः प्रसूनं द्वाभ्यां कराभ्यामभवत् प्रयत्नः। एकेन दोष्णा नयते गिरीन्द्रं संजीवनाद्रौ श्रममस्य नाभूत्॥

४-प्रथमो हनुमान्नाम द्वितीयो भीम एव च। पूर्णप्रज्ञस्तृतीयस्तु भगवत्कार्यसाधकः॥

५-राघव राघव राक्षसशत्रो मारुतिवल्लभ जानकिकान्त। (द्वादशस्तोत्र, मध्वाचार्य, ६।४)

मुस्लिम संतोंने श्रीरामके दर्शन किये और कराये

(श्रीलल्लनप्रसादजी व्यास)

श्रीराम-जन्मभूमि अयोध्यामें निर्मित बाबरी-मस्जिद ढाँचेको लेकर जो मन्दिर-मस्जिद-विवाद शताब्दियोंसे चला आ रहा है, उसका संतोषजनक समाधान अभीतक सामने नहीं आ सका है, बल्कि और उग्र हो गया है। जब विशुद्ध आध्यात्मिक चिन्तनका सहारा लिया जायगा, तभी इसका पारस्परिक संतोषजनक हल निकल सकता है, क्योंकि आध्यात्मिक चिन्तनसे ही व्यक्ति या समाजमें अपेक्षित उदारता-सहिष्णुता सम्भव हो सकती है।

भारतके श्रेष्ठ संतोंमें परमहंस राममंगलदासजी महाराजकी गणना है, जिनके गुरु महाराज बेनीमाधवजीकी कृपासे बहुत थोड़ी आयुमें ही उन्हें भगवान्‌का साक्षात्कार हुआ और ध्यानावस्थामें वे प्रायः दर्शन या साक्षात्कार करते थे। इस स्थितिमें दर्शन और अनुभूतियोंके आधारपर उनके समक्ष अनेक सत्य उद्घाटित हुए, जिनसे आध्यात्मिक सत्तामें पूर्ण एकता और सद्भावना व्यक्त होती है। सच्चे संतोंकी आध्यात्मिक अनुभूतियों और दर्शनके माध्यमसे व्यक्त सत्यतामें कभी संदेहकी गुंजाइश नहीं रहती। आध्यात्मिक क्षेत्रकी ऐसी अनेक घटनाएँ हैं, जब सिद्ध संतोंकी ऐसी ही अनुभूतियोंके आधारपर व्यक्ति और स्थानसे सम्बन्धित अनेक सत्य प्रकट हो जाते हैं, जो कालान्तरमें लुप्त हो चुके थे।

परमहंस राममंगलदासजी अयोध्यामें निवास करते थे, जिन्होंने १९८४ के अन्तमें शरीर छोड़ा। उनके माध्यमसे श्रीराम-जन्मकी इस पवित्र भूमिके अनेक संत प्रकाशमें आये हैं—विशेष रूपसे उन्होंने ऐसे सिद्ध मुसलमान फकीरों और संतोंका जिक्र किया है, जिनमेंसे कुछेकके बारेमें यह कहा गया है कि उन्हें स्वयं पैगम्बर मोहम्मद साहबने साधनाके लिये अयोध्यामें भेजा था। परमहंसजीको ध्यानमें ईसामसीह, पैगम्बर मोहम्मद साहब, गुरु नानकदेव, संत कबीर-जैसी श्रेष्ठ आध्यात्मिक विभूतियोंके न केवल दर्शन होते थे, बल्कि उनसे बातचीतमें अनेक आध्यात्मिक रहस्योंका उद्घाटन भी होता था। ऐसे अनेक दिव्य संस्मरण उनकी 'भक्त-भगवंत-चरितावली' तथा कुछ अन्य पुस्तकोंमें उल्लिखित है, जिन्हें उनके भक्तोंने सुनकर बादमें उनकी अनुमतिसे प्रकाशित किया। पहले तो ध्यानकी घटनाके बाद सामान्य स्थिति प्राप्त करनेपर याद नहीं रहती थी। परंतु बादमें सरस्वतीजीकी कृपासे याद रहने लगी। अनेक मुसलमान फकीरोंसे इनका साक्षात्कार हुआ था, जिन्होंने अपनी कहानी उन्हें स्वयं बतायी। तदनुसार परमहंसजीद्वारा बताये गये कुछ मुसलमान फकीरोंका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

मर्द शहीद, सरयू-तटके टीलेपर—

इनके गुरुकी मजार रुदौलीमें है। ये अरबसे आये थे। इन्होंने १२६ वर्षकी आयुमें शरीर छोड़ा। रोजाना मात्र एक रोटीका टुकड़ा खाते थे।

रामभक्त कलंदरशाह—

ये जानकीबागमें रहते थे। इन्होंने अपने बारेमें बताया था—'जब हम अरबसे आये तो इसी जगह बैठ गये। हिंदू लोगोंने फूसकी झोंपड़ी बना दी। मेरे पास दो लँगोटी, एक लोटा, एक जल पीनेका मिट्टीका पात्र था। सरयू करीब थी, स्नान करते, एक कौर पकाया चावल हिंदू लोगोंसे ले लेते। उसे खाकर थोड़ा पानी पी लेते। चलते-फिरते मालिकका नाम लेते रहते। जहाँ-जहाँ प्राचीन दर्शनीय स्थान थे, वहाँ जाते। फिर धीरे-धीरे मुझे अनुभव होने लगा और मन्दिरकी मूर्ति सामने दिखायी पड़ने लगी। एक दिन आधी रातको महारानीजी (सीताजी) ने प्रकट होकर त्रिकुटीका ध्यान बता दिया। मैं ध्यान करने लगा। पट खुल गये। फिर चारों सरकार, चारों महारानी सामने हो गये। नामकी ध्वनि गूँजने लगी।'

ये पाँच सौ वर्ष पहले हुए थे तथा इन्होंने १३५ वर्षकी आयुमें शरीर छोड़ा।

हनुमान्‌जीके भक्त शीश पैगम्बर—

ये भी अरबसे आये थे। इन्होंने यहाँ भजन किया। ये हनुमान्‌जीके भक्त थे। गणेश-कुंडमें स्नान करते और प्रतिदिन हनुमान्‌जीके दर्शन करते। एक झोंपड़ीमें रहते थे। एक मुट्ठी कच्चा चना खाते थे। इन्होंने १५० वर्षमें शरीर छोड़ा था। बहुत बड़ी तपस्या की। अधिकतर खड़े-खड़े हनुमान्‌जीका मन्त्र जपते थे। हनुमान्‌जी उनके सामने हर समय रहते थे, इसीसे सब देवी-देवता उनसे मिलते थे। जीवोंपर बड़ी दया थी।

सबको बराबर मानते थे। किसीसे द्वैतभाव न था। इन्हें शरीर छोड़े पाँच सौ वर्ष हो गये हैं।

जब ये मनीपर्वतपर आये तो उसी जगह लोगोंने उनके लिये झोंपड़ी डाल दी। ये हनुमान्-हनुमान् करते रहते। एक बार आकाशवाणी हुई—'तुम्हारा प्रेम केशरी-किशोरसे है तो यह मन्त्र जपा करो। तबसे उन्होंने निम्न मन्त्र जपना शुरू कर दिया—

'ॐ नमो हनुमान महावीर बजरंग अंजनीकुमार पवनपूत रामदूताय नमः।'

रामभक्त जिकिरशाह, साकेत महाविद्यालय

ईरानके जिकिरशाह २८ वर्षकी उम्रमें अयोध्या आये। एक मुट्ठी जौ भिगोकर खाते थे। छः माहके बाद विष्णुभगवान् प्रकट हो गये, सिरपर हाथ फेरा, सब प्राप्त हो गया। तबसे वैसे ही एक मुट्ठी भिगोये जौसे जीवन बिताया। १०५ वर्षमें शरीर छोड़ा, ये एक पेड़के नीचे रहते थे। केवल दो लँगोटी रखते थे। शरीर दुबला था, बल नहीं घटा था। घरपर संतोंकी पुस्तकें बहुत देखी थीं, उसीसे मन भगवान्‌की तरफ हो गया था।

आकाशवाणी हुई कि अयोध्या पाक-स्थान खुर्द मक्का है, वहाँ तुम्हारा काम हो जायगा। तब यहाँ चले आये।

बस इतना बताकर अन्तर्धान हो गये। यह घटना ५०० वर्षकी है।

रामभक्त खजट्टी पीर, 'कुबेर'—टीलापर

खजट्टी पीर भी अरबसे ३० वर्षकी उम्रमें आये। इसी 'कुबेर' टीलापर बैठ गये, आकाशवाणी हुई कि तुम इसीपर रहो। महीना गर्मीका था। केवल लँगोटी थी, एक लोहेका चिमटा था। दाढ़ी-केश थे, रंग न बहुत काला था, न गोरा—गेहुँवा रंग था। चार दिन बैठे रहे, तब हनुमान्‌जी प्रकट हुए और बोले कि तुम गर्दन झुकाकर सुख-आसनमें बैठो और नाभिपर सुरति लगाओ। इसे पराबानी कहते हैं। यह जप सतयुगका है। पश्यन्ती हृदयमें त्रेताकी है, मध्यमा बानी द्वापरकी है, वैखरी कलियुगकी है। ये चारों वाणियाँ ब्रह्मवाणीसे प्रकट हुई हैं। सुरति लगानेसे सारी वाणियाँ एकमें लय हो जाती हैं।

संतने हनुमान्‌जीको दण्डवत् किया और उसी रीतिमें बैठ गये। सात दिनके बाद उनके पट खुल गये, फिर हनुमान्‌जी प्रकट हुए और बोले—'अब तुम्हारा काम हो गया, कुछ जलपान करो।' इन्होंने कहा—'कुछ भूख-प्यास नहीं है।' हनुमान्‌जीने जबरदस्ती इन्हें उठाया और कहा—'शरीर अकड़ गया, कुछ थोड़ा टहल लो, हम अभी जो तुम्हारे लिये भगवान्‌के यहाँसे हुक्म होगा, भेजेंगे।' इसके बाद हनुमान्‌जीने भिगोया चना पाव-आध पाव एक कुल्हड़में और एक कुल्हड़ पानी भैरवजीके हाथ भेजा और कहा—'रूप बदल कर जाना, यह विकराल रूप है, साधकने ऐसा रूप नहीं देखा है।' एक दिन दो बजे रातको चारों भाई प्रकट हो गये। संतने उन्हें साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। रामजीने कहा—'तुम तो हमारे बड़े प्रेमी हो गये, मारुतिनन्दनने तुमको उपदेश देकर कृतार्थ कर दिया, अब हम चारों भाई अपनी-अपनी शक्तिके साथ तुम्हारे सामने हर समय रहेंगे, मारुतिनन्दन हमारे परम भक्त हैं।' ज्यों ही इतना कहा, त्यों ही चारों महारानियोंकी छटा-छबि-शृंगार संतके सामने हो गयी। वे रूप अन्तर्हित हो गये। उनके दिव्य रूपोंकी शोभा अपार थी। सभी देवी, देवता, सिद्ध-संत, ऋषि, मुनि दर्शन देने लगे। रामनामकी धुनि सारे शरीरसे—रोम-रोमसे होने लगी। जीवनभर भैरवजी वही चना और जल देते थे। १२५ वर्षपर जानकी-नौमीवाले दिन ठीक १२ बजे दिनमें इन्होंने शरीर छोड़ा।

कृष्णभक्त इब्राहीम शाहजी

ये बादशाहके लड़के थे। अयोध्याजीमें अड़गड़ाके पास एक झोंपड़ीमें भजन करते थे। ये भी बहुत छोटी उम्रमें अरबसे आये थे और कृष्णके भक्त थे। इन्होंने ६४ दिनतक खाना-पीना नहीं किया, अन्तमें उन्हें भगवान्‌के दर्शन हुए। १०१ वर्षकी उम्रमें उन्होंने शरीर छोड़ा।

रामभक्त नौ गजा पीर—

ये चालीस वर्षकी उम्रमें अरबसे आये थे। इन्होंने अपने सम्बन्धमें परमहंसजीको बताया कि स्वप्नमें उन्हें हजरत मोहम्मद साहबके दर्शन हुए, जिन्होंने आदेश दिया कि तुमको भजन करना है तो राम-धाम जाओ। वहाँ तुम्हारे ऊपर भगवान्‌की कृपा होगी। तुम्हारा ईमान ठीक है और जीवोंपर दया करते हो। ऐसी क्रियासे ईश्वर बहुत प्रसन्न रहते हैं। जो सबपर दया करता है उसे ही सच्चा संत, साधु भक्त और फकीर

कहते हैं। आदेश पाते ही वे दूसरे दिन प्रातः अयोध्याके लिये चल पड़े। उस समय वहाँ जंगल था और कुछ साधु रहते थे। उनकी जहाँ समाधि है, वहीं वे आकर बैठ गये थे। अयोध्याके लोगोंने उनके लिये एक झोंपड़ी बनवा दी। वे एक छटाक आटा, नमक और पानीके साथ पी लेते थे। उन्हें हनुमान्‌जीके दर्शन हुए और बादमें श्रीराम और सीताके भी दर्शन हुए। इन्होंने रामनवमीके दिन १२ बजे अपना शरीर छोड़ा और उस समय १५० वर्षकी आयु थी।

'सुभान अल्लाह' मन्त्रसे भगवान्‌के दर्शन—

परमहंस राममंगलदासजीने 'भक्त-भगवंत-चरितावली'में एक ऐसा संस्मरण लिखवाया है, जो आध्यात्मिक क्षेत्रमें एकता, अभिन्नता और सद्भावको व्यक्त करता है और महान् आश्चर्यसे भरा है। यह संस्मरण दुराही कुआँ, अयोध्यामें एक कलूट नामक मुसलमान चिकवाकी पत्नीके विषयमें है। उसकी उम्र भी अधिक नहीं २६ सालकी थी। उसे जब परमहंसजीके दर्शन हुए तो कहा कि हमें कुछ बताओ। परमहंसजीने उसे देखते ही समझ लिया कि यह अत्यन्त सरल हृदयकी स्त्री है और सरलतामें ही निर्विकारता होनेके कारण भगवान् शीघ्र ही अपना निवास बना लेते हैं। परमहंसजीने कृपा करके उससे कहा कि तुम 'सुभान अल्लाह'का जप दस तसबी (माला) जपा करो। परमहंसजीको खुदाका खास बंदा मानकर वह पूरे मनोयोगसे जप करने लगी। फिर उसे ध्यान भी बताया। थोड़े समयकी साधनाके बाद ही उस अशिक्षित गरीब मुस्लिम महिलाको श्रीसीताराम, राधेश्याम, लक्ष्मी-विष्णु, पार्वती-शंकर, गणेश-कार्तिकेय, हनुमान्, कालभैरव आदिके दर्शन होने लगे। हजरत मोहम्मद साहबने भी उसे दर्शन दिया और कहा कि तुमने उस भगवान्‌से ऐसा प्रेम किया है कि जो करोड़ोंमें कोई कर सकता है। ऐसा अभीतक सुना और देखा नहीं गया। हजरत मोहम्मद साहबने उसके सिरपर हाथ रखा और अन्तर्धान हो गये।

अन्तमें भगवान्‌के दर्शन करते हुए और अपने आँसू बहाते हुए उसने अपना शरीर छोड़ दिया। मणिपर्वतके पास उसकी जमीन थी, जहाँ कई कब्रें थीं। वहीं उसे दफनाया गया। उस समय उसकी उम्र केवल ३० वर्षकी थी।

इसी प्रकार सीतापुर जिलेके ग्राम धैलाके फिक्कू नाम चिकवाकी पत्नीकी चर्चा भी परमहंसजीने इस पुस्तकमें करायी। उसके गुरुका नाम झल्लरशाह था। जब उसे वैराग्य हो गया तो वह मस्जिदमें बैठ गयी और समाधि लग गयी, उसका दर्शन करने जब लोग आते तो वह कहती कि 'जिनका मन जब ध्यान-पाठमें लग जाता है, उनके पट खुल जाते हैं। पहले नेम-टेमसे अपना काम करो, फिर जब प्रेम आ जायगा तो नेम-टेम छूट जायगा, शरम-भरम भाग जायँगे।'

हजरत मोहम्मद साहबके दर्शन—

परमहंस राममंगलदासजीने इस्लाम धर्मके पैगम्बर हजरत मोहम्मद साहबका दर्शन करनेके बाद अपने शब्दोंमें लिखा है कि—'मोहम्मद साहब दोहरी देहके गोरे-गोरे थे, सिर बड़ा था, सफेद तहमद बाँधे थे, नीचे लँगोट था। साधुभेषमें थे। उस समय हमारी अवस्था लगभग ४० वर्षकी रही होगी, तब यह हमारे ध्यानमें गोकुलभवनमें आये। इन्होंने बहुत बड़ा पद सुनाया था। वह सब हमने लिख लिया था। ग्रन्थमें लिखा है। उसका थोड़ा अंश इस प्रकार है—

शेर—ईमान जिसका हो मुसल्लम रहम जीवोंपर सदा।
अल्लाका प्यारा जानिये तन मनसे सच्चा वह गदा॥
तसबी जबे मनकी फिरै तब काम सब तेरा सरै।
रोजा नेमाज तभी छुटै जब सामने मूरति डटै॥

बड़ी बुआजी और संत जमीलशाह—

अयोध्यामें बड़ी देवकली मन्दिरके पास बड़ी बुआकी मजार सर्वविदित है। परमहंसजीको ध्यानमें उनके दर्शन और उपदेश हुआ करते थे। बुआजीके सूक्ष्म शरीरके माध्यमसे परमहंसजीको कई सिद्ध मुस्लिम फकीरोंके बारेमें पता चला था। वे पाँच शताब्दी-पूर्व आचार्य रामानन्दजीके समयमें थीं। वे मियाँ चिस्तीके निर्देशपर चित्रकूटमें स्वामी सुखानन्दाचार्यके दर्शन करने गयी थीं, जो स्वामी रामानन्दाचार्यके शिष्य थे और संत कबीरके गुरु-भाई। वहाँ उन्हें बगदादसे पधारे संत जमीलशाहसे भी भेंट हुई थी, जो उस समय स्वामीजीके दर्शनार्थ आये थे। बुआजीने १२५ वर्षकी आयुमें अपना शरीर छोड़ा था।

संत जमीलशाह किसी दैवी संकेतके अनुसार भारत आये थे और चित्रकूटसहित अनेक तीर्थोंमें घूमते फिरे। चित्रकूटमें किसीने कहा कि बिना गुरुके ज्ञान और दर्शन नहीं

होगा। अन्तमें उनकी भेंट स्वामी सुखानन्दाचार्यसे हुई और जब बगदादके संतने उनसे अपना शिष्य बनानेके लिये प्रार्थना की तो उन्होंने कहा कि किसीको मैं शिष्य नहीं बनाता, फिर भी तुम्हारा हित अवश्य करूँगा। इसके बाद उन्होंने जमीलशाहको अपने सामने बैठाया और कहा कि आँखें बंद करके मुक्त-भावसे अपना कलमा पढ़िये। ऐसा करते ही उनपर जैसे कोई बड़ा नशा सवार हो गया और वे बड़ी देरतक होशमें नहीं रहे। होशमें आनेपर जब स्वामीजीने पूछा कि कहिये क्या हाल है ? तब जमीलशाहने उत्तर दिया कि मैंने लाखों बार जिस कलमाको पढ़ा और पढ़ाया उसमें इतनी करामात भरी है यह मैं नहीं जानता था। अल्लाहकी फजलसे आज मुझे सच्चा उस्ताद मिल गया। जमीलशाहने यह भी बताया कि जब मैं ताड़ी चढ़नेपर दसवीं मंजिलपर पहुँचा, तब हमारे पीर मुर्शिद हबीबे खुदा और अशरफुल अम्बियाने दीदार किया। उनकी नूरानी शकल कभी भूल नहीं सकती। अँगुली-के इशारेसे उन्होंने मुझे अपने पास बुलाया, लेकिन वहाँ जाकर उनकी खिदमतमें पहुँचनेकी मेरी हिम्मत न हुई। वहीं खड़ा रहा। हजरत मुसकरा रहे थे, उस मुस्कुराहटपर मैं फिदा हो गया। उस बेखुदीमें मैं हजरतके साथ कहाँ-कहाँ घूमा और क्या-क्या देखा, यह बयानसे बाहर है। स्वामीजी सुन-सुनकर मुस्करा रहे थे। जब वह चुप हुआ तब उसकी दृष्टि इनपर पड़ी। उसे उसमें भी हजरतकी ही मुसकानकी छटा दिखायी दी, वह चौंक पड़ा। चरणोंमें गिरकर कहने लगा। 'अरे आप तो वही हजरत ही हैं , स्वामीजीने उसके मस्तकपर हाथ रखकर आगे बोलनेसे रोक दिया।' कहा—'भाई ! रहस्यकी बातें मनमें गुप्त रखना सीखो। इसके बाद स्वामीजीने संत जमीलशाहको अपने गुरु स्वामी रामानन्दाचार्यजीके पास काशीके पञ्चगङ्गा-घाटपर भेजा। वहीं संत कबीरदासजी तथा उनके अनेक सिद्ध गुरु-भाइयोंसे आपकी भेंट हुई। इसके बाद ये पुनः चित्रकूट अपने गुरुके पास आये। वहाँसे वे शरभंग-वनमें जाकर जप-तप करने लगे।

संत वसालीने पण्डितजीको श्रीरामके दर्शन कराये—

शाह जलालुद्दीन वसाली खुरासानसे आये सूफी संत थे। उन्हें जीवनकालमें ही भगवान्‌से मिलन हो गया था, अतएव वे वसाली उपनामसे विभूषित हो गये। उसके बाद घूमते-फिरते मुल्तान नगर पहुँचे, जहाँ प्रसिद्ध रामायणी पं० टेकचन्द शर्माके मुखसे उन्होंने श्रीरामके अलौकिक सौन्दर्यकी चर्चा सुनी तो वे मस्त हो गये और पण्डितजीसे प्रसन्न होनेपर उन्हें वरदान भी दिया, किंतु पण्डितजीने एक वरदान यह भी माँगा था कि उन्हें श्रीरामके दर्शन हों, जीवनमें दर्शनकी लालसा सर्वोच्च होते हुए उन्होंने पुत्र-लालसा पहले पेश की थी। अतएव संत वसालीने पुत्रवाला वरदान तो निश्चित समयमें फलित कर दिया, किंतु श्रीरामके दर्शनकी बात भविष्यके लिये रख दी। जब पहला वरदान पुत्रके रूपमें मिल गया तो पण्डितजी पछताने लगे कि उन्होंने कैसी नादानी कर दी। तबतक संत वसाली कहीं और चले गये थे।

अन्ततः अयोध्यामें पुनः एक दिन पण्डितजीकी कथामें वे प्रकट हुए, तब पण्डितजीने उनका दामन पकड़ लिया और कहा कि अब श्रीरामके दर्शनका वरदान पूरा कीजिये। उन्होंने एक बगीचेमें बेरके पेड़के नीचे उन्हें एकान्तमें बुलाया और पण्डितजीकी चरम लालसा पूरी की। इसके बाद पण्डितजीका नाम वलीराम पड़ गया। अन्तमें संत वसालीने अयोध्यामें ही शरीर छोड़ा था। कहते हैं कि उनकी समाधि उसी बेरवृक्षके नीचे विद्यमान रही।

इसी प्रकार अनेक ऐसे ज्ञात-अज्ञात सिद्ध मुस्लिम संत हुए हैं, जिन्होंने अपने इस्लाम-धर्मका पालन करते हुए भी श्रीराम और कृष्णके रूपमें एक निर्गुण-निराकार ब्रह्मके दर्शन किये। इन घटनाओंसे यह सब बार-बार सिद्ध हुआ है कि ईश्वर एक है और उसका साक्षात्कार किसी भी धर्म, पंथ या उपासना-पद्धतिके माध्यमसे हो सकता है।

राम चरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेषि बड़ लाहु॥

(दोहावली १९३)

कविवर गुमानीकी रामभक्ति

(डॉ० श्रीबसन्तबल्लभजी भट्ट, एम्० ए०, पी-एच्० डी०)

उत्तरप्रदेशके सुदूर उत्तरवर्ती जनपद पिथौरागढ़में भारद्वाजगोत्रीय पन्त नामक ब्राह्मणोंका एक गाँव है— उप्राड़ा। यही उप्राड़ा ग्राम कविवर गुमानीकी मातृभूमि थी। संवत् १८४७ के पौष कृष्ण द्वादशीको पं० देवनिधि पन्त और माता देवमञ्जरीके गर्भसे एक विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न बालकका जन्म हुआ। जन्मके समय इनके माता-पिता काशीपुरमें थे। फलतः गुमानीका अधिकांश बाल्यकाल काशीपुरमें ही बीता। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा स्वपितृव्य पं० राधाकृष्ण वैद्यराजद्वारा ही सम्पन्न हुई, तदनन्तर इन्होंने सर्वतन्त्र स्वतन्त्र कलौन ग्रामवासी पं० हरिदत्त ज्योतिर्विद्से विविध शास्त्रोंका ज्ञान प्राप्त किया। हरिदत्त ज्योतिर्विद्के विषयमें कूर्माचल (कुमाऊँ)में उन्हींके द्वारा प्रोक्त गर्वोक्ति आज भी सुनी जाती है—

'स्वर्गे इन्द्रः पाताले शेषः भूर्लोके चाहं हरिदत्तः।'

गृहस्थाश्रममें प्रवेशके अनन्तर ही एक घटनाने इनकी जीवनधाराको अन्यत्र मोड़ दिया। ऐसा सुना जाता है कि एक दिन भोजन बनाते समय इनका यज्ञोपवीत दग्ध हो गया। उसके प्रायश्चित्तके लिये इन्होंने ब्रह्मचर्यव्रत धारणकर तत्क्षण ही गृह त्याग कर दिया और 'जबतक व्रतकी समाप्ति न होगी, तबतक अग्निपक्व ग्रहण नहीं करूँगा' इस प्रकारकी कठिन प्रतिज्ञा कर ली। प्रतिज्ञाके अनुसार बारह वर्षतक केवल फल-मूलाशनका आश्रय ग्रहणकर तीर्थान्तरोंमें भगवद्भजनमें लीन रहे और व्रतोद्यापनके अनन्तर अपनी माताके आग्रहपर इन्होंने पुनः गृहस्थाश्रममें प्रवेश किया।

एक बारकी बात है टिहरीनरेश महाराजा सुदर्शनशाहकी राजसभामें शास्त्रार्थके लिये समागत एक पण्डितने शास्त्रार्थसे पूर्व गुमानीजीका नाम जानना चाहा। प्रत्युत्पन्नमति गुमानीजीने तत्क्षण एक ऐसा विलक्षण श्लोक बनाकर सुना दिया, जिसे सुनकर उन महाशयको अर्थ समझनेमें कुछ समय लग गया। वह श्लोक इस प्रकार था—

कोर्मध्यमो ह्रस्वतृतीयकेन स्वरेण दीर्घप्रथमेन युक्तः।
पोरन्तिमस्तोश्चरमस्तुवर्णो दीर्घद्वितीयेन ममाभिधानम्॥

अर्थात् कवर्गका मध्यम वर्ण 'ग्' और तृतीय ह्रस्व स्वर 'उ'=गु, पवर्गका अन्तिम वर्ण 'म्' और प्रथम दीर्घ स्वर 'आ'=मा तथा तवर्गका अन्तिम वर्ग 'न्' और द्वितीय दीर्घ स्वर 'ई' नी।

यह चमत्कार देखकर सभीको बड़ा आनन्द हुआ। ऐसी ही अनेक चमत्कारपूर्ण कहानियाँ उनके जीवनके साथ जुड़ी हुई हैं।

विविध भाषाज्ञान—गुमानीजी न केवल संस्कृत भाषाके अपितु हिन्दी, कुमाऊँनी, नेपाली, व्रज, अवधी, उर्दू, फारसी तथा व्रज-भाषाओंके अच्छे ज्ञाता थे। उनकी रचनाएँ प्रधानतः संस्कृत, हिन्दी, कुमाऊँनी तथा नेपालीमें उपनिबद्ध हैं। वे हिन्दीके आदिकवि भी माने जाते हैं।

रामभक्त कविके रूपमें—गुमानीजी भगवान् रामके अनन्य भक्त थे। उनकी संस्कृतसे इतर भाषाओंकी रचनाओंका वर्ण्य विषय, कुमाऊँनीकी लोक-संस्कृति, लोक-व्यवहार तथा देशप्रेमसे सम्बद्ध है, किंतु संस्कृत भाषामें प्रणीत उनकी रचनाओंमें सर्वत्र भगवान् रामकी भक्तिका अनन्य भाव समाया हुआ है। यद्यपि उन्होंने सभी देवों—कृष्ण, शिव, गणेश, जगन्नाथ, सरस्वती, गङ्गा, कालिका आदिकी वन्दना की है, किंतु श्रीरामके प्रति उनका विशेष पक्षपात-सा दिखायी देता है। गुमानीजीके अनेक भाषाओंमें रचित एक पदकी छटा देखिये, जिसमें उन्होंने अपने रामभक्त होनेका स्पष्ट संकेत दिया है—

बाजे लोग त्रिलोकिनाथ शिवकी पूजा करें तो करें (हिन्दी)
क्वे-क्वे भक्त गणेशका जगत्में बाजा हुनी त हुन्। (कुमाऊँनी)
राम्रो ध्यान भवानि का चरणनमां गर्दन कसैले गरन् (नेपाली)
धन्यो मातुलधामनीह रमते रामे गुमानी कविः॥ (संस्कृत)

गुमानीका कृतित्व—गुमानीजीने किसी विशाल काव्यकी रचना नहीं की, अपितु उनकी सभी रचनाएँ प्रायः स्फुट पदोंमें मिलती हैं। अन्य भाषाओंकी अपेक्षा संस्कृत भाषा-सम्बन्धी रचनाएँ कुछ विस्तृत अवश्य हैं तथापि एक विषयपर प्रायः २०० से अधिक पद नहीं मिलते। चूँकि कवि

काव्य-संचयकी दृष्टिसे उदासीन थे, अतः इनके सभी पदोंका संग्रह नहीं हो सका है। १८९७ ई० में अल्मोड़ेसे एक संग्रह प्रकाशित हुआ है तथा जार्ज ग्रियर्सनने इनकी कुछ रचनाओंका उल्लेख किया है। 'सुप्रभातम् पत्रिका' तथा काव्यमाला-गुच्छकमें भी कुछ रचनाएँ प्रकाशित हैं, तथापि विद्वानोंका यह अनुमान है कि गुमानी-प्रणीत यदि सभी पद उपलब्ध होते तो उनकी संख्या एक लाख पदसे भी अधिक होती।

संस्कृत भाषाकी प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं—

(१) रामनाम-विज्ञप्तिसार, (२) रामाष्टपदी, (३) रामनाम-पञ्चाशिका, (४) भक्तिविज्ञप्तिसार, (५) भक्तविज्ञप्तिसार, (६) ज्ञानभैषज्यमञ्जरी, (७) हितोपदेशशतक, (८) समस्यापूर्ति, (९) जगन्नाथाष्टक, (१०) गङ्गार्याशतक, (११) पञ्चपञ्चाशिका, (१२) दुर्जन-दूषण, (१३) विभिन्न देवतास्तोत्र, (१४) कृष्णाष्टक, (१५) रामसहस्रगणदण्डक, (१६) तिथिनिर्णय, (१७) आचार-निर्णय, (१८) अशौच-निर्णय और (१९) सद्रङ्गाष्टकम्।

इसके अतिरिक्त संस्कृत भाषामें उपनिबद्ध अनेक स्फुट पद भी उनके प्राप्त होते हैं।

यहाँ उनके केवल रामभक्तिमय पदोंकी ही कुछ चर्चा की गयी है—गुमानीके एकमात्र आराध्य श्रीराम ही थे। उन्होंने दास्यभावको ही सर्वोपरि मानते हुए अपना आत्मनिवेदन श्रीरामके सामने रखा है। वे श्रीरामके चरणकमलोंके अनन्य शरणागत होकर उनके चरणकमलोंकी प्रीतिकी याचना करते हैं। भक्तविज्ञप्तिसारके सौ पदोंमें उन्होंने अपना हृदय खोलकर उनके सामने रख दिया है। कविका कहना है कि हे करुणा-वरुणालय राम! न तो आपके समान अनन्तकोटि पातकों, महापातकोंसे उद्धार करनेवाला अन्य कोई है और न मेरे समान कोई पातकी ही है तथापि हे प्रभो! आप मुझे अपना दास स्वीकार कर लीजिये—

न त्वादृशो जगति पातककोटिघातो
दुर्धर्षदुष्कृतभरो न च मादृशोऽपि।
इत्येव नित्यमवगत्य भवन्तमीहे
कर्तुं निजं परिवृढं दृढभृत्यभावः॥

(भक्तविज्ञप्तिसार, ५)

हे जानकीवल्लभ! जब मेरी देह वृद्धावस्थाका वरण करेगी उस समय जर्जरित इन्द्रियोंवाली बेचारी मेरी जीर्ण देहके लिये आपके अतिरिक्त और कौन शरणदाता हो सकता है—

देहं विदेहतनयाधिपते मदीयं
सा संश्रयिष्यति तदा तु जरा वराकी।
हा हन्त हन्त राम मम जर्जरितेन्द्रियस्य
त्वत्तोऽपरः शरणदो भविता तदा कः॥

(भक्तविज्ञप्तिसार, १८)

गुमानी अपने अनन्य शरणदाता श्रीरामजीसे कहते हैं—हे प्रभो! कुछ लोग भगवान् शंकर, कुछ लोग भगवान् गणेश, कुछ लोग भगवती गौरी तथा कुछ लोग ग्रहोंके अधिपति भगवान् भुवनभास्करकी उपासना करते हैं, किंतु मेरे चित्तमें तो आपके नवीन मेघके समान आभावाली श्याममयी द्युतिमयी मूर्ति ही सदा-सर्वदा विद्यमान रहती है—

केचिद्गिरीशमपरे गजवक्त्रमेके
गौरीमथ ग्रहपतिं समुपासतेऽन्ये।
मच्चेतसि त्वभिनवाम्बुदनीलमूर्ति-
र्विद्योतते द्युतिमती तव सर्वदैव॥

कविवर गुमानी अपने इष्टदेवको सम्बोधित करते हुए कहते हैं—हे जगदीश्वर! आपका पवित्र मङ्गलमय नाम ही मुक्तिका एकमात्र साधन है अर्थात् बिना रामनामका आश्रय ग्रहण किये संसारके दुःख-जालसे मुक्ति पाना सम्भव नहीं। यदि ऐसी बात नहीं होती तो जो वेदादि-शास्त्रोंके ज्ञाता हैं, अमलात्मा हैं, विमलात्मा हैं, विशुद्ध बुद्धियुक्त धीरपुरुष हैं, साधु संत एवं भक्त हैं, वे क्योंकर आपके नामका अवलम्बन ग्रहण करते? हे कृपासिन्धो! इसीलिये इस घोर संसाररूपी दारुण पाशमें आबद्ध मैं यही आशा लेकर जी रहा हूँ कि आपका नाम-जप करते हुए मैं भी किसी दिन मुक्ति प्राप्त कर लूँगा—

धीराः श्रुतिस्मृतिविदो विमलं त्वदीयं
नामैव केवलमलं कलयन्ति मुक्त्यै।
जीवामि तेन जगदीश्वर जीविताशः
संसारदीर्घदृढपाशनितान्तबद्धः॥

(भक्तविज्ञप्तिसार, ४१)

गुमानीजीका यह दृढ़ विश्वास है कि कोसलाधिपति श्रीरामके नाम-कीर्तनके बिना कल्याण कहाँ सम्भव है? जो

भगवान्‌के मङ्गलमय, कल्याणमय नामामृतका निरन्तर पान करता है, उनके पवित्र नामको हृदयमें बैठा लेता है, वही पुण्यवान् है, वही विशुद्ध बुद्धियुक्त है और वही मान्य भी है—

त्वन्नामकीर्तनसुधामपहाय जन्तुः
स्यात् कोसलाधिप कथं कुशली जगत्सु ।
नूनं स एव सुकृती सुमतिः स एव
मान्यः स एव हृदि तद्विधृतं हि येन ॥

(भक्तविज्ञप्तिसार, ४३)

कवि अपने हृदयकी बात रामजीके सामने रखते हुए अपना दैन्य निवेदन करते हुए कहते हैं—हे पुरुषोत्तम श्रीराम ! मैं आपसे सत्य कहता हूँ कि आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करनेके अतिरिक्त मेरा और कोई भी शरण्य नहीं है अर्थात् मैं तो केवल आपके चरणोंका ही दास हूँ, मेरा और कोई भी आश्रय नहीं है, आपको छोड़कर मैं अन्यत्र कहाँ जाऊँ, मेरे तो सर्वस्व आप ही हैं, हे प्रभो ! केवल मैं ही आपका सबसे बड़ा सेवक हूँ यह मैं नहीं मानता, मुझसे भी अधिक श्रेष्ठ आपके अन्य भी तो सेवक होंगे ही, किंतु जब आप अपने सेवकोंकी, अपने भक्तोंकी गणना करेंगे उस समय कदाचित् मेरा स्मरण करेंगे कि नहीं करेंगे। यह मुझे नहीं मालूम। हे दीनानाथ ! मेरी तो यही प्रार्थना है कि यदि आप उस समय मेरा भी स्मरण करेंगे तो मैं कृतार्थ हो जाऊँगा—

सत्यं वदामि पुरुषोत्तम ते पुरस्ता-
न्नान्यद्भवच्चरणतः शरणं मदीयम् ।
त्वं तु स्वभृत्यगणनावसरे क्वचि-
न्मां स्मृत्वा कृतार्थयसि वा नहि तन्न जाने ॥

(भक्तविज्ञप्तिसार, ३०)

पुनः गुमानी कहते हैं—हे प्रभो ! पाषाण बनी गौतमकी पत्नी अहल्यापर जैसा आपका अनुग्रह हुआ, जैसा अनुग्रह गुहपर हुआ, अर्थात् आपने ऐसे-ऐसे जनोंका भी उद्धार किया वैसा ही अनुग्रह आप यदि हे रामचन्द्रजी ! मुझपर भी कर दें, तो फिर मैं समझता हूँ कि तब पृथ्वीपर मेरे समान और कोई धन्यतम नहीं हो सकता ? तात्पर्य यह है कि धन्यतम वही है, कृतकृत्य वही है जिसपर भगवान् श्रीरामजीकी कृपा-दृष्टि हो जाती है—

यादृग्दृषद्वपुषि योषिति गौतमस्य
यादृग्गुहेऽप्यपसदे त्वदनुग्रहोऽभूत् ।
स्याद्रामचन्द्र यदि मय्यपि तादृशश्च
मन्ये तदा न भुवि धन्यतमो मदन्यः ॥

(भक्तविज्ञप्तिसार, ३२)

हे करुणासिन्धो ! यद्यपि मैंने आपके पादपद्मोंकी न तो उचित आराधना ही की है और न मनसे आपका नाम ही लिया है, फिर भी हे दीनानाथ ! आप तो सबका उद्धार करनेवाले हैं ही, करते ही हैं। तात्पर्य यह है कि सेवकमें अपने स्वामीकी सेवाके भावका अभाव हो सकता है, सेवककी सेवामें न्यूनता तो होती है, किंतु आप तो स्वामी हैं, सर्वतोभावेन सर्वज्ञ हैं, इसलिये आप मेरा निश्चित ही उद्धार कर देंगे, क्योंकि महापुरुषोंका तो धर्म ही है—दीनों, अनाथोंका उपकार करना। हे प्रभो ! यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो आपका जो विरद है वह मिथ्या हो जायगा—

आराधितं पदयुगं तव नो यदापि
नाम स्मृतं न खलु यद्यपि चेतसा ते ।
उद्धर्तुमर्हसि तथापि दयानिधे मां
दीनात्मनामुपकृतिर्महतां हि धर्मः ॥

(भक्तविज्ञप्तिसार, ३३)

श्रीरामजीकी भक्तिकी अपार महिमा एवं अनन्त शक्तिका वर्णन करते हुए गुमानी कहते हैं—हे जानकीहृदयवल्लभ ! हे पुण्यकीर्ति श्रीराम ! आपकी अतुल शक्तिदात्री भक्तिकी जय हो, जिसका आश्रय ग्रहणकर बंदर-भालु, गीध आदि भी पुरुषार्थके भागी हुए अर्थात् उन्हें भी आपका साकेतलोक प्राप्त हुआ, वे भी वैकुण्ठके वासी बने। आपकी भक्ति यज्ञ, तप आदि साधनोंसे भी दुर्लभ है, फिर मुझ-जैसे दीन-हीनके लिये वह कैसे सुलभ हो सकती है ?

भक्तिर्जयत्यनघ तेऽतुलशक्तिदात्री
शाखामृगा अपि यया पुरुषार्थभाजः ।
हे जानकीहृदयवल्लभ दुर्लभा सा
यज्ञैस्तपोभिरपि मे सुलभा कथं स्यात् ॥

हे रघुवंशशिरोमणि ! आपके भक्तिभावसे पवित्र हुआ यदि मेरा चाण्डालयोनिमें भी जन्म हो तो भी मेरे लिये वह उत्तम ही होगा, किंतु यदि आपके कृपाप्रसादसे रहित अमित

ऐश्वर्य किंवा ऐन्द्र-पद भी मुझे प्राप्त हो जाय तो वह मेरे लिये निरर्थक ही है—

त्वद्भक्तिभावनपवित्रितचेतसो मे
चाण्डालयोनिषु जनुः स्पृहणीयमेव।
न त्वत्प्रसादरहितस्य तु माननीय-
मैश्वर्यमैन्द्रमपि तद्रघुवंशकेतो॥

अन्तमें रामजीकी ललित स्तुति करते हुए गुमानीजी कहते हैं—

मार्तण्डवंशधरपूरुषमण्डनाय
प्रोद्दण्डदानवकदम्बकदण्डनाय।
वृन्दारकप्रकरकल्पितवन्दनाय
तुभ्यं नमोऽस्तु सततं रघुनन्दनाय॥

इस प्रकार अनवरत साधना करते हुए ५६ वर्षकी अवस्थामें कवि गुमानी अपने आराध्यदेव भगवान् श्रीराममें लीन हो गये। कुमाऊँमें आज भी उनके द्वारा रचित पद बड़े-बूढ़े बड़े ही भावमग्न होकर सुनाया करते हैं।

गिलहरीपर राम-कृपा

कहा जाता है कि जब लंका-विजयके लिये नल-नील समुद्रपर सेतु बनानेमें लगे थे और अपार वानर-भालुसमुदाय गिरिशिखर तथा वृक्षसमूह ला-लाकर उन्हें दे रहा था, एक गिलहरी भी मर्यादापुरुषोत्तमके कार्यमें सहायता करने वृक्षसे उतरकर वहाँ आ गयी। नन्हीं-सी गिलहरी—उससे न वृक्षकी शाखा उठ सकती थी और न शिलाखण्ड। लेकिन उसने अपने उपयुक्त एक कार्य निकाल लिया। वह बार-बार समुद्रके जलमें स्नान करके रेतपर लोट-पोट होती और सेतुपर दौड़ जाती। वहाँ वह अपने शरीरमें लगी सारी रेत झाड़ देती और फिर स्नान करने दौड़ती। अविराम उसका यह कार्य चलता रहा।

महापुरुष तथा शास्त्र बतलाते हैं कि भगवान् साधन-साध्य नहीं हैं। जीवका महान्-से-महान् साधन उन सर्वेशको न तो विवश कर सकता है और न उनकी प्राप्तिका मूल्य बन सकता है। इसलिये किसने कितना जप, तप आदि किया, इसका वहाँ महत्त्व नहीं है। जीवनिष्ठ साधन तथा भगवन्निष्ठ कृपाके संयोगसे भगवत्प्राप्ति होती है, यह महापुरुष कहते हैं; किंतु भगवान् तो नित्य कृपाके अनन्त-अनन्त सागर हैं। जीव अप्रमत्त होकर अपनी शक्तिका पूरा उपयोग करके सच्ची श्रद्धा तथा प्रीतिसे जब साधन करता है, वे करुणा-वरुणालय प्रसन्न हो जाते हैं। किसने कितने समग्र या कितना साधन किया, यह प्रश्न वहाँ रहता नहीं। भगवान् प्रसन्न होते हैं—वे नित्य-प्रसन्न जो हैं।

गिलहरीकी चेष्टा बड़े कुतूहलसे, बड़ी एकाग्रतासे मर्यादापुरुषोत्तम देख रहे थे। उस क्षुद्र जीवकी ओर दूसरे किसीका ध्यान नहीं था, किंतु कबीरदासजीने कहा है न—

'चींटीके पग घुँघरू बाजे सो भी साहब सुनता है।'

श्रीराघवेन्द्रने हनुमान्‌जीको संकेतसे पास बुलाकर उस गिलहरीको उठा लानेका आदेश दिया। हनुमान्‌जीने गिलहरी-को पकड़कर उठा लिया और लाकर रघुनाथजीके किसलय-कोमल-बन्धूकारुण हाथपर रख दिया उसे। प्रभुने उस नन्हें प्राणीसे पूछा—'तू सेतुपर क्या कर रही थी? तुझे भय नहीं लगता कि कपियों या रीछोंके पैरके नीचे आ सकती है या कोई वृक्ष अथवा शिलाखण्ड तुझे कुचल दे सकता है?'

गिलहरीने हर्षसे रोम फुलाये, पूँछ उठाकर श्रीराघवके करपर गिरायी और बोली—'मृत्यु दो बार तो आती नहीं, आपके सेवकोंके चरणोंके नीचे मेरी मृत्यु हो जाय यह तो मेरा सौभाग्य होगा। सेतुमें बहुत बड़े-बड़े शिलाखण्ड तथा वृक्ष लगाये जा रहे हैं। बहुत श्रम करनेपर भी नल-नील सेतुको पूरा समतल नहीं कर पा रहे हैं। ऊँची-नीची विषम भूमिपर चलनेमें आपके कोमल चरणोंको बड़ा कष्ट होगा, यह सोचकर पुलके छोटे-छोटे गड्ढे मैं रेतसे भर देनेका प्रयत्न कर रही थी।'

मर्यादापुरुषोत्तम प्रसन्न हो गये। उन्होंने वाम हस्तपर गिलहरीको बैठा रखा था। उस क्षुद्र जीवको वह आसन दे रखा था जिसकी कल्पना त्रिभुवनमें कोई कर ही नहीं सकता। अब दाहिने हाथकी तीन अँगुलियोंसे उन्होंने गिलहरीकी पीठ थपथपा दी। कहते हैं कि गिलहरीकी पीठपर श्रीरामकी अँगुलियोंके चिह्नस्वरूप तीन श्वेत रेखाएँ बन गयीं और तभीसे सभी गिलहरियोंको वे रेखाएँ भूषित करती हैं।

मिथिलाके दूल्हा श्रीराम

(आचार्य डॉ॰ श्रीजयमन्तजी मिश्र, पूर्वकुलपति)

मिथिलाके महाराज सीरध्वजकी राजधानी जनकपुरी जिसे प्रकृति नटीने अपनी सारी कलाओंसे आज विशेषरूपसे सजा रखा है। त्रैलोक्यसुन्दरी जनकदुलारी श्रीसीताजीका स्वयंवर जो होने जा रहा है। चारों ओर अपूर्व आनन्द और उल्लासका वातावरण है।

'महर्षि विश्वामित्रके साथ अयोध्याके राजकुमार श्रीराम अपने अनुज श्रीलक्ष्मणसहित जनकपुरमें पधारे हैं।'—यह सुखद समाचार चारों ओर चर्चाका विषय बना हुआ है। गुरुदेवकी शुश्रूषासे निवृत्त होनेपर दोनों राजकुमारोंसे नगरकी शोभा देखनेके लिये महर्षि कहते हैं—

देखि आउ जा कय नगर, सुख निधान दुहु भाय।
करू सफल सबहुक नयन, सुन्दर वदन देखाय॥

जनकपुरकी ललनाएँ अट्टालिकाओंके झरोखोंसे अनुपम छवि देखकर कहती हैं—

वय किसोर सुषमासदन, स्याम गौर सुखधाम।
अंग अंग पर निहुँछिदी, कोटि कोटि सत काम॥

जिस ओर दोनों कुमार जाते हैं उस ओर तो आनन्दकी झड़ी लग जाती है—

हिय हरषथि बरषथि सुमन, सुमुखि सुलोचनि वृन्द।
जाथि जहाँ जहँ बन्धु दुहु, तहँ तहँ परमानन्द॥

नगरकी शोभा देखकर दोनों राजकुमार प्रमुदित हैं—

बाग, तड़ाग विलोकि प्रभु, छथि सबन्धु हरखैत।
परम रम्य आराम जे अछि रामहि सुख देत॥

अवधकुमारकी अपूर्व छवि देखकर एक सहेली दौड़ी हुई आती है और राजकुमारी सीतासे सब कुछ सुनाती है। सीताके हृदयमें पूर्वरागका उदय होता है। दूसरे दिन कुलदेवी भगवती गिरिजाकी पूजा करने जानकी सखियोंके साथ सुमनहेतु पुष्पवाटिका जाती है। इधर राजकुमार भी पुष्पचयन-हेतु उसी वाटिकामें आते हैं। वहाँ श्रीराम वैदेहीकी अपूर्व छबि देखते हैं और संकेत करते हुए अनुजसे कहते हैं—

सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, कय निज दसा बिचार।
बजला सुचि मन अनुज सौं, बचन समय अनुसार॥
तात वैह ई जनक दुलारी। जनिका हित हो धनुमख भारी॥
अनलनि सखि सब गौरि पुजाबय। घुमइत फुलबाड़ी दुति पाबय॥
करथि बतकही अनुज सौं, मन लुबधल सिय रूप।
मुख सरोज मकरन्द छबि, पीबथि बनल मधूप॥

इधर प्रभुको देखते ही—

सुमिरि सीय नारद बचन, उपजल प्रीति पुनीत।
चकित विलोकथि सकल दिस, जनि सिसु मृगी सभीत॥
देखि रूप लोचन ललचायल। हरखल जनि निधि अपन चिन्हायल॥
लोचन मग रामहिं उर आनी। देलनि पलक कपाट सयानी॥
सखि सब सियहिं प्रेम वस जानी। मन सकुचथि कहि सकथि न वानी॥

उसी अवसरपर दोनों राजकुमार—

लता भवन सौं प्रगटला, तहि अवसर दुहुभाय।
निकसल जनि युग विमल विधु, जलदक पटल हटाय॥[१]

परस्पर अवलोकनके बाद दोनोंकी मनोदशा अवर्णनीय हो जाती है।

अगले दिन स्वयंवरके अवसरपर धनुर्यज्ञ होता है। शिवधनुष भङ्ग कर महाप्रभु अपने पराक्रमका परिचय देते हैं। आनन्दकी मन्दाकिनी प्रवाहित होने लगती है। अयोध्यासे सज-धजकर बारात आती है। मार्गशीर्ष शुक्ल-पञ्चमी (जिसे मिथिलामें विवाह-पञ्चमी कहते हैं)-को शुभ लग्नमें वैवाहिक विधियोंका श्रीगणेश होता है।

मिथिलाकी परम्परा है कि विवाह-मण्डपपर जानेसे पहले द्वारपर गङ्गलगान करती हुई ललनाओंके द्वारा वरका परीक्षण होता है। ब्रह्मचर्याश्रमसे गार्हस्थ्य जीवनमें प्रवेश करनेवाले वरके व्यावहारिक ज्ञानकी परीक्षा ली जाती है और साथ ही उसे लोक-शिक्षा दी जाती है।

इस परीक्षणके क्रममें दूल्हा श्रीराम एक स्वर्ण-रजत-मण्डित चौकीपर खड़े किये जाते हैं। एक ललना पानके पत्तेसे

१-रामलोचनशरणकृत मैथिलीश्रीरामचरितमानस, बालकाण्ड।

उनके नासाग्र-भागको जोरोंसे दबाती है। वह उनके प्राणायाम करनेकी परीक्षा ले रही है। दूल्हेका यह श्वास-निरोध-जन्य कष्ट एक सयानी महिलाको सह्य नहीं हो रहा है। वह कहती है—

सखि हे नाक नहि जोरें दबाउ।
दुल्हा छथि अतिकृशतनु कोमल
जनु हिय दुख पहुँचाउ॥

संसारमें ठग और बगुलाभगत पग-पगपर मिलते हैं। इनसे सावधान रहनेकी शिक्षा देनेके लिये ठग और वककी मूर्ति दिखलायी जाती है। दूल्हेको ठग और वककी मूर्ति दिखलाती हुई ललना पूछती है। दूल्हा जान-बूझकर हास्य व्यंग्य सुननेकी लालसासे मौन रह जाते हैं। इसपर एक सखी उपहास करती हुई कहने लगती है—

बूढ़ पिताक दुलारु तनय, नहि ज्ञानक लेश कोनो जगके।
कोशलमे बसि कौशलटा छनि, बाण सँ वेध करए हिय के॥

इस तरहकी अनेक विधियों और हास्य-मनोविनोदोंके साथ दूल्हा विवाह-मण्डपपर पधारते हैं। मिथिलाकी पारम्परिक विधिके अनुसार दूल्हाके साथ और सात नैष्ठिक व्यक्ति पुरुषसूक्तका पाठ करते हुए होमके लिये मूसलसे ऊखलमें धान कूटते हैं। ललनाएँ इस अवसरके मङ्गल-गीत गाती हैं। इसके बाद अनेक वैदिक विधियोंके उपरान्त कन्यादानके समय गोत्राध्यायके क्रममें दशरथ और अजके नाम सुनते ही सखियाँ हँस पड़ती हैं—

सखि हे बड़ अजगुत ई बात
दुल्हा केर पिता छथि 'दशरथ'
तनिकर 'अज' छथि वाप।
कोना तनिक ई मनमोहन सुत
देखितहिं हर हिय-ताप॥

इस मधुर व्यंग्यको सुनकर दूल्हा मुस्कराने लगते हैं। इसके बाद दूल्हेको वेदीके चारों ओर घुमाया जाता है।

वैवाहिक विधि सम्पन्न होनेपर सखियाँ दूल्हेको कोहबर (कौतुकागार) ले जा रही हैं। दूल्हेकी साली देहली छेंककर आगे जानेसे रोकती है। उसकी निम्नलिखित माँगे जबतक पूरी नहीं होतीं, दूल्हा आगे नहीं बढ़ सकते—

देहरी छेकावन हमरा चुकबियौ हे रघुबंसी दुल्हा
तखन कोहबर घर जाउ यौ रघुबंसी दुल्हा
'नै हम लेब' दुल्हा अन्न धन सोनमा
'नै हम लेब' गलेहार यौ रघुबंसी दुल्हा
'हमरा कै दीय' दुल्हा शान्ति बहिनी
भैया के राजी-खुसी हम मनायब यौ रघुबंसी दुल्हा
राजा दशरथजी के तीन पटरानी यौ रघुबंसी दुल्हा
'तहू मे दीय' एक दान यौ रघुबंसी दुल्हा
दुनू घर रहत अबाद यौ रघुबंसी दुल्हा

दुल्हा दानमें एक मधुर मुस्कान देकर आगे बढ़ते हैं।

मिथिलामें विवाहके बाद चतुर्थीकर्मपर्यन्त वरको लवणरहित भोजन कराया जाता है। इसमें पायस ही प्रमुख भोज्य रहता है, जो दूल्हा श्रीरामको अधिक प्रिय नहीं है। इसपर एक सयानी व्यंग्य करती है—

पायस खाय तँ माय महाप्रभुरायक जन्म देलनि, सब जान।
पायस तैं नहि नीक लगै छनि, छैक ने बात इयैह सुजान ?

दूल्हा निरुत्तर होकर मुसकाने लगते हैं। दूल्हेको प्रायः पूर्वाभास था कि पुनः जनकपुर आकर सालियोंकी गाली सुननेका सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सकेगा। इसलिये दूल्हा हास, उपहास, गाली सुन-सुनकर अत्यधिक प्रमुदित होते हैं।

अब दुलहनको लेकर दूल्हा अयोध्या जानेकी तैयारीमें हैं। सीताजीकी बिदाईका यह करुण अवसर है। जनकपुरके समस्त नागरिक जानकीके बिछोहकी मार्मिक पीड़ा सहनेमें असमर्थ पाते हैं। विदेहराजका पारमार्थिक ज्ञान अश्रुप्रवाहका रूप ले रहा है। रोनेके कारण 'सुनयना' सुनयना नहीं दीख रही हैं। कहारोंके कन्धेपर डोली चढ़ चुकी है। रोती हुई सीताकी सखियाँ मिथिलाके प्रसिद्ध राग 'समदाउन' में जो गीत गा रही हैं उसे सुनकर पाषाण-हृदय भी फूट-फूटकर रो रहा है—

बड़रे जतनसँ सीयाजीके पोसल, सेहो रघुबंसी नेने जाय।
कौने रंग दोलिया कौने रंग ओहरिया, लागि गेल बतीसो कहार॥
लए दए निकसल बिजु बन सखिया, ओहि बन कियो ने हमार।
केओ जे कानय राजमहलमें केओ कानै दरबार॥
केओ जे कानय मिथिलानगरमें जोड़िसँ बिजोड़ कैने जाय।
आजु धीया कोना अमा बिनु रहती, छन-छन उठति चेहाय॥

सीमन्तिनी-रत्न सीताकी डोली जा रही है। सखियाँ रो रही हैं। मिथिला रो रही है। आजतक रोती ही रही है। ***'सिया बिनु सब सुन लाग।'***

पंजाबी, हरियाणवी तथा हिमाचली लोक-चेतनामें रामभक्तिका स्वरूप

(डॉ० श्रीनवरत्नजी कपूर, एम्०ए०, पी-एच्०डी०, पी०ई०एस्०)

पौराणिक कथाएँ इस तथ्यकी साक्षी हैं कि अजामिल-जैसा असत् आचरण करनेवाला ब्राह्मण अन्तिम समयमें अपने पुत्र—'नारायण' का नाम पुकारनेसे भवसागरसे पार उतर गया और गणिका अपने पालित तोतेको 'राम-राम' रटाते हुए देवलोककी अधिकारिणी बन गयी। भगवन्नामकी इस अपार महिमाके कारण ही भारतीय नामोंमें 'राम' शब्द जोड़नेकी विशेष प्रथा है। 'राम-राम', 'जय श्री राम', 'जय सियाराम' और 'जय रामजीकी' जैसे अभिवादन श्रद्धालुजनोंकी सच्ची रामभक्तिके परिचायक हैं। मृतकी अर्थीको कंधा देनेवाले भाई-बन्धु भी 'राम-नाम सत्य है' इस शब्दावलीको दोहराकर भगवन्नामकी महिमाको बार-बार दर्शाते हैं। सच्चा भक्त तो उठते-बैठते, खाते-पीते और सोते-जागते वस्तुतः हर घड़ी एवं हर पल राममय होनेकी अभिलाषा अपने हृदयमें सँजोये रहता है।

साहित्यके नव रसोंकी आधार-सामग्री जुटानेके लिये प्रतिभावान् कवि चिरन्तनकालसे अपने आराध्यदेवके अनेक रूपोंकी उद्भावना करते आये हैं, किंतु जन-मानस अपने ही वातावरणके परिप्रेक्ष्यमें भगवान् रामके जीवनके किसी-न-किसी प्रसंगको चुनकर अपना भक्तिभाव दर्शानेके लिये उत्सुक रहता है—

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

जब हम किसी क्षेत्र-विशेषके लोक-साहित्य और लोक-जीवनका अध्ययन करते हैं तो वहाँकी जनताकी रामभक्तिकी कतिपय निजी विलक्षणताओंका परिचय मिलता है।

पंजाबी लोक-काव्यमें रामभक्ति-प्रसंग

दसवें सिक्ख गुरु श्रीगोविन्दसिंहजीने अपने 'दशम-ग्रन्थ'में चौबीस अवतारोंकी कथाको बड़े सुन्दर काव्यात्मक ढंगसे प्रस्तुत किया है। भगवान् रामका जीवन-चरित्र दशमेश पिताने 'रामावतार' शीर्षकसे हिन्दी-जगत्को प्रदान किया है, जिसे कुछ विद्वानोंने 'गोविन्दरामायण' भी कहा है। इसी ग्रन्थमें गुरु साहबने रामकथापर विस्तारसे प्रकाश डाला है। मूलतः इसमें वाल्मीकीय रामायण, अध्यात्मरामायण एवं रामचरितमानसका ही स्पष्ट प्रभाव परिलक्षित होता है। तथापि बीच-बीचमें स्थानीय मान्यताओंका भी समावेश हो गया है। देवताओंकी प्रार्थनापर रामावतारसे कथा प्रारम्भ होती है और रामावतार, सीतास्वयंवर, अवध-प्रवेश, वनवास, वनप्रवेश, सीताहरण, सीताकी खोज, लंका-गमन, प्रहस्त-युद्ध, त्रिमुण्डयुद्ध, महोदरयुद्ध, इन्द्रजीत-युद्ध, अतिकाय-युद्ध, मकराक्ष-युद्ध, रावण-युद्ध, सीता-मिलन, अयोध्या-आगमन, माता-मिलन, सीता-वनवास, अवध-प्रवेश, रामका परमधाम-गमन तथा चारों भाइयोंके पुत्रोंद्वारा चारों दिशाओंका उत्तराधिकारी बनना—इन शीर्षकोंमें अनेक छन्दोंमें रामचरितका गान हुआ है।

गोविन्दरामायणमें मुख्यरूपसे भगवान् श्रीरामका, दुष्टोंके संहारक और अभयदाता तथा शरणदाताके रूपमें विशेष रूपसे चित्रण हुआ है। इसीलिये जहाँ-कहीं राक्षसोंके साथ युद्धका वर्णन आया है, वहाँ विस्तारसे भगवान् श्रीरामके पराक्रमका विस्तृत वर्णन किया गया है। भगवान् श्रीरामकी भगवत्ताके विषयमें कहा गया है—

प्रभू है। अजू है॥ अजै है। अभै है॥
अजा है। अता है॥ अलै है। अजै है॥

अर्थात् श्रीराम सभी लोकोंके स्वामी हैं, अयोनि हैं, अजेय और अभय हैं, अजन्मा तथा स्वयं प्रकृतिरूप हैं और अता (पुरुष) रूप भी हैं। वे अलै हैं अर्थात् उनका कभी लय नहीं होता, वे सर्वथा अजेय हैं।

राजा रघुके वृत्तान्तसे रामकथाका आरम्भ हुआ है और दशरथजीके परिचयके अनन्तर भगवान् श्रीरामकी माता कौसल्याजीका वर्णन है। उस प्रसंगमें यह बताया गया है कि कौसल्या 'कोसल' देशकी राजकुमारी थीं और कौसल्याजीका जन्मस्थान 'कुड़हाम' बताया गया है, जो हरियाणा और पंजाबकी सीमापर निर्दिष्ट है—

कुड़हाम जहाँ सुनिए नगरं। तहँ कोशल-राज नृपेश वरं॥
उपजी तिह धाम सुता कुशला। जिह जीत लई ससि अंश कला॥
सुधि पाय सुयम्बर जो करयो। अवधेश नरेशहिं तो वरयो॥

कुशल (कौसल) के राज्यकी पुत्री कौसल्याजीका जन्म 'कुड़हाम' (अब इसे 'धड़ाम' कहा जाता है) में हुआ और

उनका विवाह अवधके राजाके साथ हुआ। हरियाणा और पंजाबकी सीमापर बसा 'धड़ाम' नामक छोटा कस्बा पंजाबके मालवा क्षेत्रके प्रसिद्ध नगर पटियालाके समीप ही पड़ता है। पटियाला, फतेहगढ़ साहिब और संगरूर जिलोंके कई पंजाबी ब्राह्मण एवं क्षत्रिय आज भी अपने नामोंके साथ 'कौशल' गोत्रका प्रयोग करते हैं।

कौसल्याजीको जब पंजाबके जन-मानसने अपने प्रदेश-की बेटीका सम्मान दे दिया तो मलवई बोलीका क्षेत्र भगवान् रामकी ननिहाल-भूमि कहलानेका अधिकारी बन गया। बेटीके विवाह-गीतोंको 'सुहाग' कहा जाता है। इसीलिये कौशल-राज्यकी आधुनिक बेटियोंके 'सुहागों'में भी कौसल्या-जैसी आदर्श सास, दशरथ-जैसा आदर्श ससुर, लक्ष्मण-जैसा देवर तथा अयोध्याजीके राम-सदृश आदर्श पति पानेकी मनः-कामना कन्याद्वारा प्रकट की जाती है। यथा—

बीबी बाबल दिआँ महलाँ उत्ते किउँ खड़ी ?
मैं ताँ खड़ी सी बाबल जी दे पास
बाबल ! वर लोड़ीए।
बेटी किहो जिहा वर लोड़ीए ?
मैं ताँ सस्स मँगाँगी कौशलिआ
कि सहुरा दशरथ होवे।
मैं ताँ वर मँगाँगी श्री राम
छोटा देवर लछमण होवे।
मैं ताँ मँगाँगी अयुधिआजी दा राज
पंघूड़े बैठी हुकम कराँ ॥

पंजाबकी पलवई उप-बोलीके लोकगीतों और बारातके भोजनके समय गाये जानेवाले हास-परिहासभरे 'पत्तल-काव्य' के अन्तर्गत आनेवाली कई रचनाओंमें राम एवं सीताके वैवाहिक प्रसंगको अपनाकर रामभक्तिकी अभिव्यक्ति की गयी है। 'सीठणी' गाकर बारातको भोजन करनेसे रोकनेको 'पत्तल बाँधना' कहते हैं। बारातके साथ आया एक कवि अनेक उक्तियोंसे उन सीठणियोंका उत्तर देकर 'पत्तल छुड़ाने'का दायित्व निभाता है। मलवई लोक-गीतकारने एक 'पत्तल-काव्य' में इस परम्पराको भगवान् रामके समयसे चली आ रही बताकर जहाँ अपनी रामभक्ति प्रकट की है, वहाँ 'पत्तल छुड़ाने'का श्रेय भी लक्ष्मणजीको दिया है। कवि शादीरामकी 'पत्तल' के तत्सम्बन्धी कुछ अंश प्रस्तुत हैं—

कोरिआँ से बठाई जन्न जोमणे नूँ जनकजी ने,
आप जनक पत्तलाँ ते भोजन जो पामदा।
जन्न बन्न दित्ती रामचंद्र दी नारीआँ ने,
'शादीराम' लक्ष्मण जो उट्ठके छुडां मदा ॥ १२ ॥

(पिआरा सिंध पद्य (संपा०), पंजाबी जन्नाँ, पृष्ठ ३६)

पंडित चंदूलाल और रामसिंघ सिद्धके 'पत्तल-काव्य'में भी इसी प्रकार 'सीता-स्वयंवर' में भगवान् रामका श्रद्धापूर्ण वर्णन किया गया है। वस्तुतः पंजाबके लोक-साहित्यमें श्रीरामकी परिकल्पना एक आदर्श जामाताके रूपमें भी की गयी है।

हरियाणवी लोक-काव्यमें श्रीराम

पंजाबसे सटा हरियाणा प्रदेश कुछ समय पूर्वतक पंजाबका ही अङ्ग था। हरियाणवी बोलीमें रचित लोकगीतोंमें भी लगभग पंजाब-जैसे ही प्रसंगोंद्वारा श्रीरामका स्मरण किया गया है, यथा—

बाबा जी के कमरै मैं बन्नाजी बुलाए।
बाबल जी के कमरै मैं बन्नाजी बुलाए।
देख म्हारी लाड़डो यो कैसे वर आए।
चन्दा नहीं आए, सूरज नहीं आए।
हाल्थी के होदे राजा राम चन्दर आए।

(हरियाणाके लोकगीत, भाषा-विभाग, हरियाणाद्वारा प्रकाशित)

बेटीके बिदाई-गीतमें उसी तरहके आदर्श ससुर दशरथ, आदर्श सास कौसल्या और आदर्श देवर लक्ष्मण-जैसे परिजन प्राप्त करनेकी आकांक्षा इस प्रकार प्रकट की गयी है—

बीबी तेरे बाबा जी खड़े
राम-रथ हाँक दिया
बीबी मांगणा हो सोए माँग
अभी तो ततै मिल सकदा
मैं तो वर माँगूँ भगवान
देवर छोटे लछमन-से
मैं तो माँगूँ कुसल्या बरगी सास
ससुर राजा जसरथ-से
मैं तो माँगूँ अयुध्याजी का राज
तख्त बैठी हुक्म करूँ।

'भात नौतने' के समय 'हनुमान बली' का स्मरण करके प्रकारान्तरसे रामभक्तिका प्रदर्शन होता है, ऐसा एक लोकगीत देखिये—

काहे की तेरी ओबरी, काहे का जड़ाए किवाड़,
सद्या हनुमान बली।
अगड़ चंदन की ओबरी, चंदन जड़ाए किवाड़,
सद्या हनुमान बली।

एक लोकगीतमें कुशको जन्म देनेवाली वनवासिनी सीताके अकेलेपनके कष्टोंका उल्लेख भी इस प्रकार किया गया है—

सिया खड़ी पछताय कुस बन में हुए
जो यहाँ होती ललना की दाई
ललना देती जमाय सूरज देती पुजाय
मुन्ना लेती खिलाय, कुस बन में हुए।

(हरियाणाके लोकगीत पृष्ठ ५८)

इसी प्रकार चाची, नायन, दादी, ताई आदिकी भूमिकाका बाल-जन्मके समय वर्णन किया गया है। 'नेग'के इस लोकगीतमें 'उत्तररामायण' का प्रसंग तो आया है, किंतु कहींपर भी श्रीरामकी कठोरताका निदर्शन नहीं हुआ। प्रकारान्तरसे यह रामभक्तिकी मौन स्वीकृति ही तो है।

हिमाचली लोक-साहित्यमें श्रीराम

पर्वतवासियोंका जीवन एवं भरण-पोषण बड़ा श्रम-साध्य होता है। बीहड़ वनोंको लाँघकर रोजी-रोटीके साधन उन्हें जुटाने पड़ते हैं। जंगलोंमें हिरण-जैसे पशु होते हैं, जो कुलाँचें भरते हुए पहाड़ियोंके आकर्षणकी वस्तु बन जाते हैं। रामायणमें मारीचद्वारा स्वर्णमृगके रूपमें किया छल-कपट ही सीता-हरण, रामके वियोग, सीताजीकी खोज और अन्ततः लंका-दहनकी घटनाओंका कारण बनता है। पहाड़ी रहन-सहनके परिप्रेक्ष्यमें हिमाचली लोक-साहित्यमें 'सीता-हरण' का प्रसंग अत्यधिक लोकप्रिय है। हिमाचलके लोकधर्मी नाट्यों एवं लोक-नृत्योंके संक्षिप्त विवरणसे यह और भी स्पष्ट हो जायगा, यथा—

(क) हरण लोक-नाट्य—यह कुल्लू जनपदका विशुद्ध लोकरञ्जक नाट्य है। इसका आरम्भ दशहरेके अन्तिम दिवसकी पूर्व-रात्रि (रामनवमीकी रात्रि) से होती है, जिसे हिमाचली भाषामें 'दशहरेकी मुहल्ला रात्रि' कहा जाता है। तबसे आरम्भ हुए इस नृत्यका प्रदर्शन अगले तीन महीनोंतक केवल शुक्ल पक्षकी रात्रियोंमें ही किया जाता है। इस अवधिसे पहले और बादमें 'हरण' लोकनाट्यका आयोजन निषिद्ध है। कुल्लू जिलेके अनेक भागोंमें इसे 'सीता-हरण'की कथा-से जोड़कर रामायणके आख्यानका अभिनय किया जाता है, जिसे देखकर शोक-विह्वल हो राम-भक्त-दर्शक आँसू बहाने लगते हैं।

लोकविश्वासके अनुसार मारीचने स्वर्ण-मृग बनकर राम एवं लक्ष्मणको वनोंमें खूब भटकाया और अन्तमें उनके हाथों मारा गया। इसी लोक-आख्यानकी पुष्टि—'हरण-नाट्य-गीत' की इन पंक्तियोंसे हो जाती है—

नाचै नाचै हरिणये।
नाचै नाचै तेरा नाकडू
काँटू डाये काँटू··· ॥

अर्थात् हे हरिण ! तेरे नाचनेसे सीता-हरण हो गया और इससे तेरी नाक कट गयी।

(ख) हरणात्र लोक-नाट्य—इसे 'हरणात्तर' भी कहते हैं। यह 'हरण-नृत्य' का अपभ्रंश रूप माना जाता है। चम्बा जिलेका यह लोक-नृत्य वसन्तके आरम्भमें होता है और चैत्र-वैशाखतक चलता है। किंतु फाल्गुन मासमें होलीके आस-पास इसकी खूब धूम रहती है। भले ही इसमें 'कृष्ण-लीला'का प्रदर्शन अधिक होता है। परंतु राम-कथाके 'सीता-हरण'-प्रसंगमें इसका आरम्भिक स्रोत छिपा हुआ है।

(ग) बरलाज—यह हिमाचली गेय नाट्य है। इसका आयोजन शिमला, सोलन, सिरमौर और कुल्लू जिलोंके अनेक भागोंमें 'दीपावली' के आस-पास होता है। इसमें रामायणके प्रसंगोंको चार दृश्योंमें विभाजित करके हलकी ठंडी रातोंमें प्रदर्शित किया जाता है। पवनसुत हनुमान्से सम्बद्ध दृश्यको 'हणु'-लक्ष्मणसे सम्बन्धित दृश्यको 'जति', सीता-प्रसंगको 'सिया' और अन्य सभी प्रसंगोंको 'रमैनी' कहा जाता है। इसमें 'सीता-हरण' के दृश्यको इस प्रकार संगीतबद्ध किया जाता है—

रामे होटा हेड़ो के देई लखनो कारो,
लंका दा रावण आया सीया नीही हारो।

रामो आये हेड़े दे आये पाई सीया शोधी।
मुखोगे चिन्ता पोड़ी केरी लखनो बोधी।

श्रीरामकी चिन्ता और लक्ष्मणका अपने बड़े भाईको समझानेका प्रसंग युद्धकी साज-सज्जा और लंका-दहन तक बढ़ता है। अन्ततः 'रमैनी' दृश्यमें रावण-वध और उसकी राजधानीके अन्य प्रसंग भी रंगमंचीय साज-सज्जा तथा संगीतद्वारा अभिनीत किये जाते हैं।

होलीके दिनोंमें 'फागुली' त्योहार मनाया जाता है। किन्नौर जिलेके कामरूप, रोपा, सांगला नामक गाँवोंमें वसन्तपञ्चमीके दिन यह पर्वोत्सव सम्पन्न होता है। उस दिन कागजपर रावणका चित्र बनाकर ग्रामीण लोग उसपर बाणोंसे निशाना लगाते हैं। इसे 'लंका मारना' या 'लंका-दहन' कहा जाता है। हिमाचली लोकविश्वास है कि यदि निशाना ठीक लग जाय तो स्वर्गमें देवताओंकी विजय हो जाती है। वस्तुतः यह आसुरी शक्तियोंपर विजय प्राप्त करनेवाले श्रीरामकी शक्तिके प्रति भक्ति-भाव दर्शानेकी शौर्यपूर्ण पद्धति है।

कुल्लू-दशहरा

दक्षिणमें मैसूरके दशहरेकी भाँति कुल्लूका दशहरा भी उत्तर भारतमें अद्वितीय माना जाता है। इस मेलेके समय पहाड़ी अञ्चलके दूर-दूरके मन्दिरोंके देवी-देवताओंका एक स्थानपर एकत्र होना मैसूरके दशहरेसे विचित्र साम्य रखता है। यह मेला कुल्लू नगरके ढालपुर मैदानमें लगता है और दशहरेसे लेकर पूर्णिमातक पाँच दिन चलता है।

कुल्लूके प्रसिद्ध रघुनाथ-मन्दिरसे श्रीरामचन्द्रजीकी स्वर्णिम प्रतिमा नौवें नवरात्रकी संध्याको रथमें चढ़ाकर एक विशाल शोभायात्राके रूपमें ढालपुर मैदानमें लायी जाती है। लकड़ीके विशालकाय रथको खींचनेके लिये हजारों रामभक्तोंमें होड़-सी लग जाती है और लोकवाद्योंकी ध्वनिके साथ 'जय रघुनाथ'के स्वरोंसे आकाश गूँज उठता है।

पाँच दिनतक रघुनाथजीकी सवारी ढालपुर मैदानमें ठहरती है और अन्य देवी-देवता मैदानके इर्द-गिर्द निश्चित स्थानोंपर विराजते हैं। मेलेके अन्तिम दिन सभी देवी-देवता रावणकी लंका फूँकनेकी विशेष तैयारी करते हैं। शामको जुलूस व्यासनदीके तटपर पहुँचता है। वहाँपर काँटों और झाड़ियोंसे बनी लंकापर आक्रमण करके उसे जला दिया जाता है। इस विजय-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें विशेष पूजा होती है और रघुनाथजीका रथ वापस खींचा जाता है। अगले प्रातःसे श्रद्धालुजन अपने-अपने देव-मन्दिरोंसे लायी प्रतिमाओंको फिर पालकियोंमें विराजमान करके लोक-वाद्योंके साथ अपने स्थानको लौटने लगते हैं।

इस प्रकार पंजाब, हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेशके लोक-जीवनमें भगवान् श्रीरामसे सम्बन्धित विभिन्न प्रसंग विभिन्न रूपोंमें स्वीकृत दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँके लोगोंके सम्पूर्ण जीवनसे श्रीरामके विभिन्न प्रसंगोंका इतना अधिक सम्बन्ध होना उनकी रामभक्तिको ही प्रकट करता है।

सिंधी-साहित्यमें राजाराम-सीताराम

(श्रीश्री १०८ श्रीमहंत स्वामी श्रीनारायणदास प्रेमदासजी उदासीन)

विश्वकी प्राचीनतम संस्कृतियोंमें सिंधकी संस्कृतिका एक विशिष्ट स्थान है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ोके शिलालेखोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि सिंधकी सभ्य संस्कृतिने ही सर्वप्रथम सभ्यताकी नींव रखी होगी। यही कारण है कि भारतीय मनीषियोंने सिंधु नदीके पावन तटपर ही स्वाध्याय कर वेदोंका विन्यास किया था।

यद्यपि सिंधु-प्रदेशमें भगवान् श्रीरामजीका कोई ऐतिहासिक या प्रसिद्ध मन्दिर विशेष नहीं है, तथापि जन-मानसके हृदय-पटलपर वे आदिकालसे ही राजाराम-सीतारामके रूपमें विराजमान हैं। सम्पूर्ण सिंधी समाजके रोम-रोममें राजाराम-सीताराम रमा हुआ है। आज भी कोई व्यक्ति किसी गाँव या प्रदेशमें जाता है तो उससे कहा जाता है कि हमारी ओरसे अमुक-अमुकको 'राम सत' कहना अर्थात् 'राम राम' कहना। किसी भी समाजके इष्टदेव, स्थानदेव एवं व्यक्ति-प्रधान देवका आभास उनके रीति-रिवाज, सामान्य भाषा तथा आचार-व्यवहारसे हो जाता है। इस आधारपर सिंधी समाजके इष्टदेवके रूपमें भगवान् रामकी ही प्रधानता प्रकट होती है। बात-बातमें कहा जाता है कि 'राम

भली कंदो' अर्थात् 'रामजी भला करेंगे।'

हमारे सिंध लाड़काणामें दो सगे भाई राम-भक्त हो चुके हैं, जिनका नाम हजारीमल और मंगूमल था। हजारीमल सदैव कहा करते थे कि 'हे रामजी ! तुमने ऐसा क्यों किया ?' तो तत्काल ही उनका छोटा भाई मंगूमल कह बैठता कि 'भैया ! रामजी सब अच्छा ही करते हैं—उनकी रजापर राजी रहना चाहिये'—इन दो छोटेसे वाक्योंमें रामके प्रति इतना रहस्य समाया हुआ है, इतना निष्ठा-प्रेम एवं आस्था-विश्वास भरा हुआ है कि जिसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। इन शब्दोंसे जहाँ हजारीमलके दुःखमय जीवनकी झलक मिलती है, वहीं मंगूमलजीके संतोषमय स्वभावका संकेत भी प्राप्त होता है; क्योंकि एक तो अपने दुःखोंका वर्णन भगवान् रामजीसे करना चाहता है और दूसरा दुःखमें भी धैर्य धारणकर रामजीको भूलना नहीं चाहता। दोनों ही दशामें उन्हें भगवान् रामकी ही याद आती है। तात्पर्य यह कि जिस भी भावसे रामका स्मरण करें, वे भला ही करते हैं।

भगवान् राम किसी जाति-विशेष या सम्प्रदायके ही इष्टदेव नहीं हैं, अपितु वे तो समस्त प्राणिमात्रके ही हितैषी तथा सुखदायक देवादिदेव हैं। ऐसा इष्टदेव भगवान् रामके सिवा दूसरा कौन हो सकता है, जो न केवल मानवमात्रका ही इष्ट करते हैं, अपितु चराचर प्राणिमात्रका भी कल्याण करते हैं—

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना ॥
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ॥

सिंधी-साहित्यके प्रत्येक पृष्ठपर भगवान् राम प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूपसे समाये हुए हैं और सामान्य जनवाणीके प्रत्येक वाक्यमें उनका निवास है। सिंधी संस्कृतिका श्रीगणेश ही इस वाक्यसे प्रारम्भ होता है—***'एको एको रामे रामे सति।'*** अर्थात् एक राम केवल एक राम ही सत् है। यहाँ यह बात विशेषता रखती है कि एक राम मात्र एक राम, अतः रामके सिवा और कोई नहीं। इसलिये 'एको एको' और 'रामे रामे' दो बार वर्णन किया गया है। भगवान् रामका सिंधी-साहित्य और संस्कृतिमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक लोकोक्तियों एवं रीति-रिवाजोंके मूलमें श्रीराम और उनकी लोकपावनी कथा ही दिखलायी पड़ती है।

राजस्थानके भक्ति-साहित्यमें रामकथा

(डॉ॰ श्रीओंकारनारायण सिंहजी)

राजस्थानके भक्ति-साहित्यकी निर्गुण एवं सगुण दोनों स्वरूप-विधाओंके अन्तर्गत पौराणिक आख्यायिकाओंका चित्रण प्रचुर रूपमें उपलब्ध होता है। सगुण साहित्यमें एतद्विषयक उल्लेख भाव-भक्ति, विश्वास तथा समर्पणपरक अभिव्यंजनाओंके प्रकट अर्थ करनेवाले हैं, जबकि निर्गुण साहित्यमें प्रायः इनका प्रकारान्तरसे प्रतीक अर्थमें प्रयोग हुआ है।

उपर्युक्त पौराणिक मान्यता—विश्वासोंके अन्तर्गत श्रीराम एवं श्रीकृष्णकी अवतार-लीलाओंके सम्बन्धमें अनेकशः विवरण प्राप्त होते हैं।

राजस्थानमें रामानन्दकी सगुण भक्ति-परम्पराके अन्तर्गत अनन्तानन्दके शिष्य कृष्णदास पयहारीको राम-भक्तिका विशिष्ट उन्नायक माना गया है, जिन्होंने 'आलवार' संतोंकी परम्पराके क्रममें राम-भक्तिके अन्तर्गत रसिक भावका समावेश किया। इसके अतिरिक्त 'सगुणोन्मुख निर्गुण-भक्ति-परम्परा'के प्रतिष्ठापक जांभोजीकी परम्परामें कवि मेंँहद्वारा १५१८ ई॰के लगभग २६१ छन्दोंवाली 'मेंँह रामायण' की रचना हुई। इसमें प्रचलित रामकथाके अन्तर्गत कविद्वारा कतिपय लोकप्रसिद्ध तत्त्वोंके संयोजन—समायोजनके अतिरिक्त मानवीय संवेदनशीलताका उत्कृष्ट चित्रण प्रस्तुत हुआ है। यथा—

सत सीता जत लखमणा, सबळाई हणवंत।
जे आ सीत न जावही, अै गुण मांहि गळंत ॥

(छन्द २५१)

निरंजनी-सम्प्रदायके साहित्यके अन्तर्गत श्रीरामावतारका हेतु राक्षसोंका वध करना और संत-जनोंके कार्यको पूर्ण करना निर्दिष्ट किया गया है—

रामजी ओतार आप बड़े ही बिख्यात भये।

रामो आये हेड़े दे आये पाई सीया शोधी।
मुखोगे चिन्ता पोड़ी केरी लखनो बोधी।

श्रीरामकी चिन्ता और लक्ष्मणका अपने बड़े भाईको समझानेका प्रसंग युद्धकी साज-सज्जा और लंका-दहन तक बढ़ता है। अन्ततः 'रमैनी' दृश्यमें रावण-वध और उसकी राजधानीके अन्य प्रसंग भी रंगमंचीय साज-सज्जा तथा संगीतद्वारा अभिनीत किये जाते हैं।

होलीके दिनोंमें 'फागुली' त्योहार मनाया जाता है। किन्नौर जिलेके कामरूप, रोपा, सांगला नामक गाँवोंमें वसन्तपञ्चमीके दिन यह पर्वोत्सव सम्पन्न होता है। उस दिन कागजपर रावणका चित्र बनाकर ग्रामीण लोग उसपर बाणोंसे निशाना लगाते हैं। इसे 'लंका मारना' या 'लंका-दहन' कहा जाता है। हिमाचली लोकविश्वास है कि यदि निशाना ठीक लग जाय तो स्वर्गमें देवताओंकी विजय हो जाती है। वस्तुतः यह आसुरी शक्तियोंपर विजय प्राप्त करनेवाले श्रीरामकी शक्तिके प्रति भक्ति-भाव दर्शानेकी शौर्यपूर्ण पद्धति है।

कुल्लू-दशहरा

दक्षिणमें मैसूरके दशहरेकी भाँति कुल्लूका दशहरा भी उत्तर भारतमें अद्वितीय माना जाता है। इस मेलेके समय पहाड़ी अञ्चलके दूर-दूरके मन्दिरोंके देवी-देवताओंका एक स्थानपर एकत्र होना मैसूरके दशहरेसे विचित्र साम्य रखता है। यह मेला कुल्लू नगरके ढालपुर मैदानमें लगता है और दशहरेसे लेकर पूर्णिमातक पाँच दिन चलता है।

कुल्लूके प्रसिद्ध रघुनाथ-मन्दिरसे श्रीरामचन्द्रजीकी स्वर्णिम प्रतिमा नौवें नवरात्रकी संध्याको रथमें चढ़ाकर एक विशाल शोभायात्राके रूपमें ढालपुर मैदानमें लायी जाती है। लकड़ीके विशालकाय रथको खींचनेके लिये हजारों रामभक्तोंमें होड़-सी लग जाती है और लोकवाद्योंकी ध्वनिके साथ 'जय रघुनाथ'के स्वरोंसे आकाश गूँज उठता है।

पाँच दिनतक रघुनाथजीकी सवारी ढालपुर मैदानमें ठहरती है और अन्य देवी-देवता मैदानके इर्द-गिर्द निश्चित स्थानोंपर विराजते हैं। मेलेके अन्तिम दिन सभी देवी-देवता रावणकी लंका फूँकनेकी विशेष तैयारी करते हैं। शामको जुलूस व्यासनदीके तटपर पहुँचता है। वहाँपर काँटों और झाड़ियोंसे बनी लंकापर आक्रमण करके उसे जला दिया जाता है। इस विजय-प्राप्तिके उपलक्ष्यमें विशेष पूजा होती है और रघुनाथजीका रथ वापस खींचा जाता है। अगले प्रातःसे श्रद्धालुजन अपने-अपने देव-मन्दिरोंसे लायी प्रतिमाओंको फिर पालकियोंमें विराजमान करके लोक-वाद्योंके साथ अपने स्थानको लौटने लगते हैं।

इस प्रकार पंजाब, हरियाणा एवं हिमाचल प्रदेशके लोक-जीवनमें भगवान् श्रीरामसे सम्बन्धित विभिन्न प्रसंग विभिन्न रूपोंमें स्वीकृत दृष्टिगोचर होते हैं। वहाँके लोगोंके सम्पूर्ण जीवनसे श्रीरामके विभिन्न प्रसंगोंका इतना अधिक सम्बन्ध होना उनकी रामभक्तिको ही प्रकट करता है।

सिंधी-साहित्यमें राजाराम-सीताराम

(श्रीश्री १०८ श्रीमहंत स्वामी श्रीनारायणदास प्रेमदासजी उदासीन)

विश्वकी प्राचीनतम संस्कृतियोंमें सिंधकी संस्कृतिका एक विशिष्ट स्थान है। हड़प्पा और मोहनजोदड़ोके शिलालेखोंसे यह सिद्ध हो चुका है कि सिंधकी सभ्य संस्कृतिने ही सर्वप्रथम सभ्यताकी नींव रखी होगी। यही कारण है कि भारतीय मनीषियोंने सिंधु नदीके पावन तटपर ही स्वाध्याय कर वेदोंका विन्यास किया था।

यद्यपि सिंधु-प्रदेशमें भगवान् श्रीरामजीका कोई ऐतिहासिक या प्रसिद्ध मन्दिर विशेष नहीं है, तथापि जन-मानसके हृदय-पटलपर वे आदिकालसे ही राजाराम-सीतारामके रूपमें विराजमान हैं। सम्पूर्ण सिंधी समाजके रोम-रोममें राजाराम-सीताराम रमा हुआ है। आज भी कोई व्यक्ति किसी गाँव या प्रदेशमें जाता है तो उससे कहा जाता है कि हमारी ओरसे अमुक-अमुकको 'राम सत' कहना अर्थात् 'राम राम' कहना। किसी भी समाजके इष्टदेव, स्थानदेव एवं व्यक्ति-प्रधान देवका आभास उनके रीति-रिवाज, सामान्य भाषा तथा आचार-व्यवहारसे हो जाता है। इस आधारपर सिंधी समाजके इष्टदेवके रूपमें भगवान् रामकी ही प्रधानता प्रकट होती है। बात-बातमें कहा जाता है कि 'राम

भली कंदो' अर्थात् 'रामजी भला करेंगे।'

हमारे सिंध लाड़काणामें दो सगे भाई राम-भक्त हो चुके हैं, जिनका नाम हजारीमल और मंगूमल था। हजारीमल सदैव कहा करते थे कि 'हे रामजी ! तुमने ऐसा क्यों किया ?' तो तत्काल ही उनका छोटा भाई मंगूमल कह बैठता कि 'भैया ! रामजी सब अच्छा ही करते हैं—उनकी रजापर राजी रहना चाहिये'—इन दो छोटेसे वाक्योंमें रामके प्रति इतना रहस्य समाया हुआ है, इतना निष्ठा-प्रेम एवं आस्था-विश्वास भरा हुआ है कि जिसका वर्णन कर पाना सम्भव नहीं है। इन शब्दोंसे जहाँ हजारीमलके दुःखमय जीवनकी झलक मिलती है, वहीं मंगूमलजीके संतोषमय स्वभावका संकेत भी प्राप्त होता है; क्योंकि एक तो अपने दुःखोंका वर्णन भगवान् रामजीसे करना चाहता है और दूसरा दुःखमें भी धैर्य धारणकर रामजीको भूलना नहीं चाहता। दोनों ही दशामें उन्हें भगवान् रामकी ही याद आती है। तात्पर्य यह कि जिस भी भावसे रामका स्मरण करें, वे भला ही करते हैं।

भगवान् राम किसी जाति-विशेष या सम्प्रदायके ही इष्टदेव नहीं हैं, अपितु वे तो समस्त प्राणिमात्रके ही हितैषी तथा सुखदायक देवादिदेव हैं। ऐसा इष्टदेव भगवान् रामके सिवा दूसरा कौन हो सकता है, जो न केवल मानवमात्रका ही इष्ट करते हैं, अपितु चराचर प्राणिमात्रका भी कल्याण करते हैं—

पाई न केहिं गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना ।।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ।।
आभीर जमन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे ।
कहि नाम बारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते ।।

सिंधी-साहित्यके प्रत्येक पृष्ठपर भगवान् राम प्रत्यक्ष अथवा परोक्षरूपसे समाये हुए हैं और सामान्य जनवाणीके प्रत्येक वाक्यमें उनका निवास है। सिंधी संस्कृतिका श्रीगणेश ही इस वाक्यसे प्रारम्भ होता है—***'एको एको रामे रामे सति।'*** अर्थात् एक राम केवल एक राम ही सत् है। यहाँ यह बात विशेषता रखती है कि एक राम मात्र एक राम, अतः रामके सिवा और कोई नहीं। इसलिये 'एको एको' और 'रामे रामे' दो बार वर्णन किया गया है। भगवान् रामका सिंधी-साहित्य और संस्कृतिमें महत्त्वपूर्ण स्थान है। अनेक लोकोक्तियों एवं रीति-रिवाजोंके मूलमें श्रीराम और उनकी लोकपावनी कथा ही दिखलायी पड़ती है।

राजस्थानके भक्ति-साहित्यमें रामकथा

(डॉ० श्रीओंकारनारायण सिंहजी)

राजस्थानके भक्ति-साहित्यकी निर्गुण एवं सगुण दोनों स्वरूप-विधाओंके अन्तर्गत पौराणिक आख्यायिकाओंका चित्रण प्रचुर रूपमें उपलब्ध होता है। सगुण साहित्यमें एतद्विषयक उल्लेख भाव-भक्ति, विश्वास तथा समर्पणपरक अभिव्यंजनाओंके प्रकट अर्थ करनेवाले हैं, जबकि निर्गुण साहित्यमें प्रायः इनका प्रकारान्तरसे प्रतीक अर्थमें प्रयोग हुआ है।

उपर्युक्त पौराणिक मान्यता—विश्वासोंके अन्तर्गत श्रीराम एवं श्रीकृष्णकी अवतार-लीलाओंके सम्बन्धमें अनेकशः विवरण प्राप्त होते हैं।

राजस्थानमें रामानन्दकी सगुण भक्ति-परम्पराके अन्तर्गत अनन्तानन्दके शिष्य कृष्णदास पयहारीको राम-भक्तिका विशिष्ट उन्नायक माना गया है, जिन्होंने 'आलवार' संतोंकी परम्पराके क्रममें राम-भक्तिके अन्तर्गत रसिक भावका समावेश किया। इसके अतिरिक्त 'सगुणोन्मुख निर्गुण-भक्ति-परम्परा'के प्रतिष्ठापक जांभोजीकी परम्परामें कवि मेँहद्वारा १५१८ ई०के लगभग २६१ छन्दोंवाली 'मेँह रामायण' की रचना हुई। इसमें प्रचलित रामकथाके अन्तर्गत कविद्वारा कतिपय लोकप्रसिद्ध तत्त्वोंके संयोजन—समायोजनके अतिरिक्त मानवीय संवेदनशीलताका उत्कृष्ट चित्रण प्रस्तुत हुआ है। यथा—

सत सीता जत लखमणा, सबळाई हणवंत।
जे आ सीत न जावही, अै गुण मांहि गळंत।।

(छन्द २५१)

निरंजनी-सम्प्रदायके साहित्यके अन्तर्गत श्रीरामावतारका हेतु राक्षसोंका वध करना और संत-जनोंके कार्यको पूर्ण करना निर्दिष्ट किया गया है—

रामजी ओतार आप बड़े ही बिख्यात भये।

राक्षसां कूं मारकर, संतां काज सारे हैं॥

मीराँके पदोंमें श्रीराम-चरित्रोंका मार्मिक चित्रण बहुविध प्रकट होता है। यथा—

चरण रज महिमा मैं जानी।

× ×

ये ही चरण से अहिल्या उधारी गौतम की पटरानी॥

(मीराँ बृहत्पदावली—भाग १, पद १३५)

अच्छे मीठे चाख चाख, बोर लाई भीलणी।

× × ×

नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी॥
जूठे फल लीन्हे राम, प्रेम की प्रतीत जाण।
ऊँच नीच जाने नहिं, रस की रसी लणी॥

(पद ३)

सागर ऊपर सिला तिराई, दुष्ट रावण कूं मार लियोरी।
सीता सहित अवधपुर आये, भगत विभीषण राज दियोरी॥

(पद ९७)

राम लखन अरु भरत सत्रुहन, अगवाणी हनुमान।
मीराँ के प्रभु राम सियावर, तुम ही कृपानिधान॥

(पद ४४२)

इसी प्रकार निरंजनी सम्प्रदायके प्रवर्तक हरिदास निरंजनीकी वाणीके अन्तर्गत वनवास, सीताहरण, रावण-वध इत्यादि लीला-चरित्रोंकी चर्चा हुई है। यथा—

जन हरीदास दसरथ सुत, सो रामचंद्र वनवास पठाया।

(पृ० ३२४, कुंडलिया ८)

रांम स वन में छल्या, अकलि ब्रह्मा की षोवण।

(पृष्ठ ३२३, कुंडलिया ७)

रांमचंद्र बांण जब लीया, सुर तेतीस छुड़ाया।
रांवण मारि लंका गढ़ तोड्या, राज बभीषण पाया॥

(पृ० १३५, साखी १५)

चरणदासने प्रेमाभक्तिको वर्णाश्रम-व्यवस्थागत कुल, रूप, आचार, शुचिताकी प्रत्येक सीमासे परे बताते हुए प्रभु-मिलनका सरलतम साधन घोषित किया है। यथा—

चारि बरन सूं हरिजन ऊँचे।
··· जो न पतीजै साखि बताऊं, सवरी के जूंठे फल खाये।
बहुत ऋषीसर हंवाई रहते, तिनके घर रघुपति नहिं आये॥

··· ब्राह्मन छात्री भूप हुते बहु, बाजो संख सुपच जब आयो।
बालमीक जग पूरन कीन्हो, जैजैकार भयो जस गायो॥

(वाणी, भाग १, पद १८, पृ० ५५)

भक्त कवि सुंदरदासद्वारा सेतु-बन्धके संदर्भमें श्रीराम-महिमाका गान किया गया है—

राम मंत्र तें शिला तिरानी। पाथर कहा तिरै कहुं पानी॥

(सुंदर-ग्रन्थावली, भाग १, पृ० ९७, चौ० २०)

विश्नोई सम्प्रदायके प्रणेता, जांभोजीकी सबदवाणीके अन्तर्गत लक्ष्मण-मूर्च्छाके प्रसंगकी उपदेशपरक व्याख्या हुई है। मेघनादकी शक्तिसे मूर्च्छित लक्ष्मणके चैतन्य होनेपर श्रीरामद्वारा अठारह दोषोंका नामोल्लेख करते हुए उनसे मूर्च्छित होनेका कारण पूछे जानेपर (सबद ५९) लक्ष्मण उत्तर देते हैं—

एक ज अवगंण रामैं कीयौ
अंण हुंतो मिरघौ मारंण गइयौ॥
दूजौ अवगंण रामैं कीयौ
एकौ दोस उदोसां दीयौ
वनखंड मां जदि साथरि सोइयौ॥

(सबद ६०)

अर्थात् एक तो आपके अनहोने (स्वर्ण) मृगके पीछे जानेपर मैं आपकी आज्ञाका उल्लंघन कर सीताको अकेली छोड़ आपके पीछे चला आया। दूसरे मैंने निर्दोष (भरत) को तो दोष दिया और स्वयं निद्राजित् कहलाकर भी वनमें साथरीपर सो गया। इन दो दोषोंके कारण मूर्च्छा हुई।

इसके अतिरिक्त श्रीरामके साथ-साथ राम-कथासे सम्बद्ध लीला-स्थलों यथा—अयोध्या, चित्रकूट, रामेश्वरम्, जनकपुर, पञ्चवटी, पम्पापुर आदिकी भी पवित्र तीर्थोंके रूपमें महत्ता प्रकाशित होती है। यथा—

अवधपुरी मधुपुरी द्वारिका चित्रकूट यमुना सी।
सेतुबंध रामेश्वर ईश्वर मूल वटी सुरजासी।
हरिद्वार कुरुखेत जनकपुर गोदावरी हुलासी।
पंचवटी पंपापुर रुक्मिणी देव कपिल युवरासी॥

(मीराँ—बृहत्पदावली, पद ४७३)

उपर्युक्त भक्त कवियोंके समानान्तर अनेक चारण—कवियोंद्वारा भी राम-कथाका गानकर अपने साहित्यको पवित्र

बनाया गया है।

'करणीदान कविया'ने 'सूरज प्रकास'-सदृश ऐतिहासिक प्रबन्ध-काव्यमें सूर्यवंशके विवरणके साथ संक्षिप्त रामायणकी ही रचना कर दी है। इसमें श्रीराम-जन्मोत्सवका हृदयहारी चित्रण द्रष्टव्य है—

उछाबवधे अजोधिया, प्रभुदरसण परवांण।
चंद्र देख सामंद्र चढ़ै, जळ राका निस जांण॥

कवि अजबा आढ़ाद्वारा प्रियाके असामयिक निधनपर रघुराजसे उपालम्भपूर्ण विनती की गयी है कि पतिके जीवित रहते प्रिया-वियोग न करायें। यथा—

कंत पहल्ला कामणी, माधव मत मारेह।
सीता रावण लै गयौ, वे दिन चीतारेह॥

सारांशतः राजस्थानके भक्ति-साहित्यके अन्तर्गत राम-कथाके कवियोंकी संक्षिप्त सूची कालक्रमानुसार निम्नाङ्कित है—

क्रम	कवि	ग्रन्थ	लिपिकाल (वि॰ सं॰)
१—	मेहागोदारा	मेह रामायण	१५७५
२—	बारहठ ईसरदास	गुण हरिरस	१६वीं शती
३—	माधोदास दधवाड़िया	गुण रामरासो	१७६८
४—	माधोदास	राममंगल	१८वीं शती
		रामरक्षा	,, ,,
		राम-नख-शिखवर्णन	,, ,,
५—	सुन्दरदास	रामचरित	,, ,,
६—	बारहठ नरहरिदास	पौरुषेय रामायण	१७७९
		अवतार-चरित्र	१८५२
७—	पीरदान लाळस	ज्ञान-चरित्र	१८वीं शती
८—	माधोदास गुसाई	रघुनाथलीला	१८२५
९—	अग्रदास	श्रीरामध्यानमंजरी	१९वीं शती
१०—	रामचरण	रामप्रताप	,, ,,
		राम नौरत्न सारसंग्रह	,, ,,
११—	किसना आढ़ा	रघुवर जस प्रकास	,, ,,
		चित इलोळगीत	,, ,,
		सपंखरौ गीत	,, ,,
१२—	मंछाराम सेवग	रघुनाथ रूपक	,, ,,
१३—	रघुनाथ मुहता	रूघरास	,, ,,
१४—	करणीदान कविया	सूरजप्रकास	,, ,,
१५—	ब्रह्मदास वीठू	भगतमाळ	,, ,,
१६—	बांकी दास	दातार बावनी	,, ,,

उपर्युक्त कवियोंके अतिरिक्त पृथिवीराज राठौड़, दुरसा आढ़ा, सूजा-बीठू, आपजी आढ़ा, चैनजी सांदू, कुसलजी रतनू, आवड़दान लाळस, गुलजी आढ़ा, बुधजी सिंढायच, चिमनजी कविया, फतैदान वणसूर आदिद्वारा भी राम-नाम एवं राम-कथाका गुणगान किया गया है।

वस्तुतः राजस्थानके लोकजीवनके अन्तर्मन श्रीराम इस सीमातक रचे-बसे हैं कि पारस्परिक अभिवादन प्रायः 'रांम रांम सा' के उच्चारणसे होता है। इसके अतिरिक्त कवियोंद्वारा ग्रन्थकी पुष्पिकाके अन्तमें प्रायः 'बांचै विचारै ज्यांनै रांम रांम' लिखा जाता रहा है। साथ ही ग्रन्थ-रचनाके अन्तमें गद्य अथवा पद्यमें मात्र 'रांम रांम' की ही परम्परा प्रकट होती है। ये समग्र प्रथाएँ राजस्थानके जनसामान्यमें श्रीरामके प्रति अडिग तथा अविरल निष्ठाविश्वासको ही निदर्शित करती हैं।

रामराज्य

नृपतिमुकुटरत्ने राघवे शासति क्ष्मां
गुणगणपरिपूर्णः सर्वसम्पत्समृद्धः।
समुचितनिजकर्मा धर्ममार्गप्रवृत्तः
सुतपरिजनयुक्तः प्राज्ञजीवो जनोऽभूत्॥

(रामायणमञ्जरी, रामाभिषेक, उत्तर॰ १९३)

'राजाओंके मुकुटमणि भगवान् रामके पृथिवीपर राज्य करते समय प्रत्येक व्यक्ति सद्गुणोंसे युक्त था। वह सारी सम्पत्तिसे सम्पन्न था, उचित ढंगसे अपना काम करता था, धर्माचरणमें तत्पर और सुत-परिजन आदिसे संयुक्त और बुद्धिमान् था।'

बुंदेली लोक-काव्यमें रामनामकी महत्ता

(डॉ० श्रीमुरारीलालजी द्विवेदी, एम्०ए०, पी-एच्०डी०)

बुंदेली लोक-जीवनमें लोककवि 'ईसुरी' को शृंगार-रसका सम्राट् माना गया है, किंतु उनकी भक्ति-रससे परिपूर्ण चौकड़ियाँ पठनीय और मननीय हैं। उनकी चौकड़ियोंमें आध्यात्मिक भावना तरंगित हो रही है। वे संसारकी क्षण-भंगुरताको देखकर सीतारामके भजन करनेकी ओर संकेत करते हुए कहते हैं—

भज मन राम सिया भगवानें।
संग कछू ना जानें।
धन संपत सब माल खजानें, रैजें एइ ठिकानें॥
भाई बन्द औ कुटुम कबीला, जे सब स्वारथ जानें।
कैंडा कैसो छोड़ ईसुरी, हंसा होत रमानें॥

बुंदेली जन-जीवनके चतुर-चितेरे 'ईसुरी' का पूर्ण विश्वास है कि जिसके रक्षक श्रीरामचन्द्रजी हैं, उसके साथ कौन दगा कर सकता है। यथा—

जी के रामचन्द रखवारे, को कर सकत दगारे।
धर नरसिंग रूप कढ़ आये, हिरनाकुस को मारे।
राना जहर दऔ मीरा खों, पीतन प्रान समारे॥
मसकी उतै ग्राह की गरदन, झट गजराज उबारे।
ईसुर बचा लई है उनने, सिर से गाज हमारे॥

कवि मनसे श्रीरामका भजन करनेकी राय देते हैं, क्योंकि अन्तिम दिनोंमें यही रामनाम काम आता है। देखिये—

मन ते काय भजत ना रामें। आय आखिरी कामें।
सुआ पढ़ावत गनका तर गई, सोंरी लेतन नामें।
नाम लेत रैदास चले गये, चला चाम के दामें॥
अपने जनकी वेइ निवाउत, पठै देत सुर धामें।
तें नइ भजत ईसुरी जानें, तोय नरक के गामें॥

सुकवि 'ईसुरी' राम-नामको अनमोल नगीना मानते हैं, इसे मनरूपी मुद्रिकामें जड़ा जाता है। यही भाग्यको चमकाता है। इसे अलौकिक खानसे निकाला है। इसमें जयपुरी रत्नोंकी चमक है और भजन-भक्तिकी मीनाकारी है। यह दिन-प्रति-दिन देहको दिव्य प्रकाश देता है और कभी मलिन नहीं होता—

रसना राम कौ नाम नगीना। मन मुदरी में दीना॥
नियत निवान खान से खोदौ, ऐसो थान कहीना॥
देत उद्योत जोत जैपुर की, चढ़ौ भजन को मीना।
दिन दिन देत देहु खों दीपक, कभउँ न होत मलीना॥

यह जीवन चंद साँसोंका खजाना है, इसका कोई भरोसा नहीं, अतः समयको व्यर्थ न गँवाकर रामका भजन करना सार्थक है, नहीं तो पीछे पछताना होगा, क्योंकि—

जिदना खतम होइ बइ खाता। बुलवा लेइ विधाता।
घरी-पलक की देरी नाहीं, सत्य हिसाब कराता॥
करनी होय सो कर लो जग में, फेर न जौ दिन आता।
कात 'ईसुरी' भज लो रामै, नइ पीछे पछताता॥

तभी तो कविवर ईसुरी सभीको सचेत करते हुए कहते हैं कि—

तन कौ तनक भरोसौ नइयाँ। राखे लाज गुसइयाँ।
तर वर पत्र गिरै धरनी में, फिर ना लगत डरइयाँ॥
जर बर देह मिले माटी में, चुनें न राख चिरइयाँ।
जा नर देही काम न आवै, पसु की बनै पनइयाँ॥

अन्ततः लोक-कवि ईसुरी 'राम'-नामकी माला फेरनेकी राय देते हैं, क्योंकि इस भवसागरसे 'राम'-नामके भजनसे ही पार उतर सकते हैं। ठीक ही कहा है—

जो कोउ सीताराम बिसारै। जीती बाजी हारै।
नामइ लैं पृहलाद बचा लए, हिरनाकुस खों मारे॥
परमेसुर ने देह दई जा, नाम की माला टारें।
'ईसुर' भव सागरसे जन खाँ, नामइ पार उतारै॥

वस्तुतः इस कलिकालमें श्रीरामजीका गुणगान ही एकमात्र आधार है, अतः सभी भरोसे त्यागकर श्रीरामका भजन कर हम सभी मानव जीवनको सफल बना सकते हैं।

स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहिं सब पान।
गिरा ग्राम्य सिय राम जस गावहिं सुनहिं सुजान॥

उड़िया साहित्यमें रामकथा

(श्रीयोगेश्वरजी त्रिपाठी 'योगी')

मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका चरित्र भारतीय आदर्श, सांस्कृतिक चेतना, व्यवहार-कुशलता एवं नैतिक मूल्योंसे ओतप्रोत दिखायी देता है। उनके चरित्रके पठन-पाठनसे लोक-मानसमें पवित्र भावनाओंकी उर्मिल तरंगें सहज ही उठने लगती हैं। विभिन्न प्रकारके सद्गुणोंका विकास उनके जीवन्-दर्शनकी अमूल्य निधि है। युग-युगसे रामायण पतितजनोंके परित्राणका संदेश देती आयी है। इसमें समग्र मानव-जातिके लिये आशाकी किरण आलोकित है।

देशके विभिन्न अञ्चलोंकी भाँति उत्कलमें भी रामकाव्य प्रचुरमात्रामें देखनेको मिलता है। उड़ीसाकी प्रान्तीय भाषा अनुमानतः ग्यारहवीं शताब्दीसे ही एक समर्थ साहित्य-माध्यमके रूपमें प्रसिद्ध रही है। हजार वर्षोंके अन्तरालमें उड़ीसामें कई सौ रामायणोंकी रचना अथवा अनुवाद हुआ है, जिनका मूल आधार वाल्मीकीयरामायण, अध्यात्मरामायण तथा हनुमन्नाटक है। ग्रामाञ्चलोंमें प्रायः पाँच सौसे अधिक अनुवाद देखनेको मिल जाते हैं। उनमेंसे बहुतसे तो ऐसे हैं जिनका मुद्रण अभीतक सम्भव नहीं हुआ। गाँवोंमें ताड़पत्रपर लिखे हुए ये ग्रन्थ अभी भी सुरक्षित रखे हैं। उड़िया भाषामें रामायणके अनुवादकी चार कोटियाँ हैं, जो रामायणके अक्षरशः अनुवाद, भावानुवाद, संस्कृत-रूपान्तर तथा नाटकमें प्रयुक्त होनेवाले कथोपकथनयुक्त रामलीला-साहित्यके रूपमें उपलब्ध हैं। भावानुवादोंमें आत्माभिव्यक्ति एवं स्वसाहित्यके माध्यमसे अभिनव चिन्तनका समावेश भी हुआ है।

उड़िया भाषाका सबसे प्राचीन रामायणका अनुवाद रूइपादकातेणपदी रामायण है, जो अभीतक अप्रकाशित है। अनुमानतः यह रचना नवीं शताब्दीकी है। उसमें पवित्र सूर्यवंशकी प्रतिष्ठा, यज्ञ-महिमा, मुनियोंकी रक्षा, ईश्वरीय विभूतिका प्रदर्शन आदि आदर्शोंका उल्लेख मिलता है।

श्रीशारलादासका रामायण-अनुवाद परवर्ती रचना है, जो अनुमानतः तेरहवीं शताब्दीमें रची गयी। इसका कुछ अंश श्रीआर्तबल्लभजीके द्वारा 'प्राचीप्रकाशन' से प्रकाशित किया गया था। इसमें रामायणको शुद्ध यौगिक ग्रन्थके रूपमें लिया गया है। शारलादासजी योगरामायणमें कहते हैं कि अध या ऊर्ध्वगतिको योग-गति कहा जाता है। उस साफल्यके केन्द्रबिन्दुका ही नाम अयोध्या है। दस इन्द्रियोंका दमन-कर्ता राजा दशरथ है। इडा, पिंगला और सुषुम्नारूप उनकी तीनों पटरानियाँ हैं। सुषुम्नासे धर्मतत्त्वरूप आत्मा—राम, इडा नाडीसे स्थिति कामतत्त्व एवं मोक्षतत्त्व—लक्ष्मण और शत्रुघ्न तथा पिंगलासे अर्थ-तत्त्व—भरतका प्रादुर्भाव हुआ। यही राम-परिवार रसतत्त्वके सरयू-पुलिनपर योगेश्वर-रूपमें क्रीडारत था। शारलादासजीने योगानुभवकी व्याख्या करते हुए सुग्रीवको योगभ्रष्ट, ताराको आह्लादिनीशक्ति, बालिको त्राटक, वानरोंको योगग्रन्थि, कुम्भकर्णको अज्ञान, रावणको मोह तथा मेघनादको ईर्ष्या एवं योगाभिमानके रूपमें प्रस्तुत किया है।

सोलहवीं शताब्दीतक उड़ीसामें रामायणके प्रचुर अनुवाद हो चुके थे। भक्त बलरामदासजीने श्रीजगन्नाथ-मन्दिरमें बैठकर 'जगमोहनरामायण' की रचना की यह श्रीचैतन्य महाप्रभुके समकालीन थे। पंडित मधुसूदन मिश्रने हनुमन्नाटकका ख्याति-प्राप्त अनुवाद किया है। कवि चिकिटि राजेन्द्रकी 'चिकिटिरामायण' भी उड़ीसाकी एक प्रमुख रामायण है। वनगमनका वर्णन करते हुए वह लिखते हैं कि 'जिनके मस्तकपर धैर्यका जटाभार और युगल नेत्रोंमें कृपाका निर्झर झरता रहता है, अधरपर शान्तिकी वाणी विश्वको सान्त्वनाका संदेश देती है, जिनकी दोनों बाहुओंको देखकर प्रजा अपनेको भयरहित मानती है, वक्षःस्थलके दर्शनमात्रसे स्त्रियाँ संकुचित हो जाया करती हैं, जिनके चरणोंके दर्शनसे ज्ञानीजन विज्ञानी कहलाते हैं'—ऐसे रघुनाथजी वनमें कैसे चले गये?

पीताम्बरद्वारा विरचित 'दाण्डीरामायण' तथा श्रीकृष्ण-चन्द्र पट्टनायकद्वारा रचित रामायण अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। पञ्चवटीमें सीताजी लक्ष्मणको श्रीरामकी सहायताके लिये जानेको कहती हैं और उनके न जानेपर कटु शब्दोंसे आघात पहुँचाती हैं। अन्तमें लक्ष्मण यह कहते हुए चले जाते हैं कि 'हे माता! मेरी बातोंपर ध्यान दें। मेरे कथनको बालविनोद न समझें। कभी-कभी बच्चे भी अपनी तोतली मधुर वाणीसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात कह जाते हैं। परदेशमें, उन्नतिके समय, आपत्तिकालमें तथा शत्रुसे घिरी भूमिमें चित्तकी

चञ्चलता सबसे बड़ा शत्रु है।'

इन रामायणोंके अतिरिक्त क्षेत्रमोहनरामायण, भागवत-दानरामायण, शारलादासकृत विलंकारामायण, रावणरामायण, विश्वनाथ खुंटियाविरचित विचित्ररामायण, टिकारामायण, अर्जुनदासकृत रामविभा, धनंजयभंजका रघुनाथ-विलास, गर्गबटुकीरामायण तथा अनेकानेक रामायण-ग्रन्थ उड़ीसामें उपलब्ध हैं। रामकथाके क्षेत्रमें श्रीउपेन्द्रभंजको कविसम्राट्की उपाधि प्राप्त हुई है। इनके द्वारा लिखित वैदेहीश-विलास, अबना रसतरंग आदि उच्चकोटिके ग्रन्थ हैं। अलंकार एवं साहित्यिक दृष्टिकोणसे वैदेहीश-विलास सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ माना जाता है। भारतीय रामकाव्यमें वैदेहीश-विलास एक मनोज्ञ सृष्टि है। इस बृहत् ग्रन्थकी प्रत्येक पंक्ति 'ब' अक्षरसे प्रारम्भ होती है। यमक-श्लेषादि अलंकारोंका प्राचुर्य, अनेकानेक बन्धोंमें छन्दोंका बाँधा जाना जैसे नागबन्ध, वृक्षबन्ध, रथबन्ध, गदाबन्ध, मीनबन्ध आदि बन्ध-रस प्रचुरताके साथ इसमें पिरोये मिलते हैं। कविसम्राट् उपेन्द्रभंजने अपने रामको पतितोद्धारक-रूपमें चित्रित करते हुए यह सिद्ध कर दिया है कि श्रीराम पतितपावन भगवान् जगन्नाथके ही अवतार थे। उन्होंने पतिता अहल्याका उद्धार किया। पतित धीवरको भी अपने चरणोंके प्रक्षालनका अधिकार सौंपकर जगत्को चमत्कृत कर दिया।

वनवास-कालमें श्रीराम, लक्ष्मण एवं सीताके साथ उत्कल प्रदेशमें प्रविष्ट हुए। उन्होंने चन्द्रभागाके निकटवर्ती अर्कक्षेत्र कोणार्कमें चण्डीका पूजन किया, जिसे अब रामचण्डी कहकर लोग पुकारते हैं। एकाम्र-कानन भुवनेश्वरके लिंगराज-मन्दिरमें भगवान् शंकरके पूजनके उपरान्त वे नीलाचलविहारी महाप्रभु जगन्नाथके दर्शनार्थ पुरी पहुँचे। दक्षिण सागरसे स्नान करके उन्होंने महाप्रभु जगन्नाथकी पूजा करते हुए कहा कि 'मैं जगन्नाथ हूँ, लक्ष्मण बलभद्र तथा सीता सुभद्रा हैं।' इस प्रकारके वर्णन विविध रामायण ग्रन्थोंमें प्राप्त हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शुद्ध उड़िया साहित्य राम-गाथाओंसे परिपूर्ण है ही; परंतु सम्बलपुरके ग्राम्य अञ्चलोंमें सम्बलपुरी ग्रामीण भाषामें भी गाँवली-रामायणकी कथा देखनेको मिलती है जो अत्यन्त प्रचलित है। विभिन्न कवियोंने रामकथापर आधारित फुटकर भजन-संग्रह लिखे। खण्डकाव्यके माध्यमसे विविध लीलाओंका वर्णन विभिन्न कवियोंने किया है। खण्डकाव्योंमें वरपालीके गंगाधर मेहेरकी रचना 'तपस्विनी' एक पठनीय ग्रन्थ है, जिसमें प्रकृतिका मानवीकरण वर्ड्सवर्थकी रचनाओंको भी पीछे ढकेल देता है। कतिपय साहित्यकारोंने रामकथाको नाटकीय ढंगपर लिखा और उनका मंचन स्थान-स्थानपर होता रहता है। उन साहित्यकारोंमें श्रीसदाशिव, अनंग, विक्रम तथा पीतवास आदिके नाम विशेष प्रकारसे उल्लेखनीय हैं।

श्रीरामके वेशमें जगन्नाथजीका विग्रह दस कुप्रवृत्तियों-वाले दशाननका अन्त करनेके लिये रथयात्रामें उपगत होता है। शरद् ऋतुमें एक उत्सव आयोजित होता है जिसे लोग वेण्टयात्रा कहते हैं। काम, राग, लोभ, आसक्ति, अहंकार, वितृष्णा, प्रतिहिंसा-परायणता, मिथ्यावादिता, गर्व तथा व्यभिचार—ये दस मानवके चिर-शत्रु कहे गये हैं। इन्हींको नष्ट करनेके लिये जगन्नाथने दशाननके विनाश-हेतु रामरूप धारण किया।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अन्य भाषाओंके प्रचलित रामसाहित्यकी अपेक्षा उड़िया साहित्यमें भगवान् श्रीरामके प्रति अनन्य भक्ति एवं प्रगाढ़ निष्ठा विशेष रूपसे निरूपित है, जो जनमानसके लिये एक उच्च आदर्श एवं प्रेरणास्रोतके रूपमें प्रतिष्ठित रही है।

रामभक्तकी अनन्यता

जागैं जोगी-जंगम, जती-जमाती ध्यान धरैं,
डरैं उर भारी लोभ, मोह, कोह, काम के।
जागैं राजा राजकाज, सेवक-समाज, साज,
सोचैं सुनि समाचार बड़े बैरी बाम के॥
जागैं बुध बिद्या हित, पंडित चकित चित,
जागैं लोभी लालच धरनि, धन, धाम के।
जागैं भोगी भोग हीं, बियोगी, रोगी सोगबस,
सोवै सुख 'तुलसी' भरोसे एक राम के॥

गुजरातीमें रामभक्तिका विकास

(डॉ॰ श्रीकमलजी पुंजाणी)

अन्यान्य भारतीय भाषाओंकी भाँति गुजरातीमें भी रामभक्तिके विकासकी एक सुदीर्घ परम्परा दृष्टिगत होती है। अध्ययनकी सुविधाकी दृष्टिसे हम इस परम्पराको मुख्य तीन वर्गोंमें विभाजित कर सकते हैं—

(१) कथा-कीर्तनकी परम्परा, (२) शिष्ट-साहित्यकी परम्परा और (३) लोकसाहित्यकी परम्परा। यहाँ अनुक्रमसे प्रत्येक परम्परापर संक्षेपमें विचार किया जा रहा है—

१—कथा-कीर्तनकी परम्परा—प्राचीन गुजरातमें संतों एवं भक्तोंके भजन-कीर्तनों, भवाईके वेशों, कठपुतलियों-के खेलों आदिके द्वारा रामलीलाका प्रदर्शन होता था। रामायणकी कथ्य-परम्पराका आरम्भ ईसाकी तेरहवीं शताब्दीसे माना जाता है। उस समय गुजरातके प्रत्येक गाँवमें दो-तीन कथाकार होते थे, जो कथा-कीर्तनकी शैलीमें श्रोताओंको रामायणकी कथा सुनाते थे। आगे चलकर कथा-कीर्तनकी यह शैली आख्यान-शैलीमें बदल गयी और गुजरातीके मध्य-कालीन साहित्यमें उद्धव, भालण, विष्णुदास, गिरधर, नाकर, प्रेमानन्द आदिके आख्यानोंद्वारा राम-भक्तिकी सरिता प्रवाहित होने लगी। वही भक्तिधारा आज कथा-कीर्तनकी परम्पराके रूपमें विकास माणभट्टों और कथाकारोंकी गीतशैलीमें विकसित होती दिखायी पड़ती है।

२—शिष्ट-साहित्यकी परम्परा—गुजरातीमें राम-भक्ति-सम्बन्धी शिष्ट-साहित्यका सर्जन चौदहवीं शताब्दीसे ही होने लगा था। गुजरातीके मध्यकालीन साहित्यका अवलोकन करनेसे ज्ञात होता है कि भालण (वि॰-सं॰ १५५०—१५७५) द्वारा विरचित 'रामचरित', 'रामबालचरित', 'रामविवाह' आदि काव्य-कृतियाँ पर्याप्त रोचक एवं रसपूर्ण हैं। एक ओर जहाँ इस प्रकारके प्रसंग-काव्योंकी रचनाएँ हो रही थीं, वहाँ दूसरी ओर 'उद्धवरामायण', 'गिरिधररामायण' आदि प्रबन्ध काव्योंका प्रणयन भी हुआ।

मध्यकालीन हिन्दी-साहित्यमें जो स्थान गोस्वामी तुलसी-दासके 'रामचरितमानस' को प्राप्त है, वही सम्मान गुजरातीमें श्रीगिरिधरकी 'गिरिधररामायण' को दिया जाता है। 'मानस' के समान यह रामायण भी बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्य-काण्ड आदि विविध काण्डोंमें विभक्त है। प्रत्येक काण्डमें अलग-अलग अध्यायोंकी योजना की गयी है, जिनमें राम-कथाके प्रसिद्ध प्रसंगोंका प्रभावपूर्ण रेखाङ्कन किया गया है। उदाहरणार्थ, सुन्दरकाण्डका विभीषण-शरणागति-प्रसंग देखा जा सकता है।

शरणागत विभीषणको 'अनुज-बन्धु' मानकर जब भगवान् श्रीराम लंकापतिके रूपमें उसका राज्याभिषेक करते हैं, तब सुग्रीव प्रभुसे पूछते हैं—'प्रभो! यदि इस समय रावण सीताजीको लेकर आपकी शरणमें आ जाय तो आप उसे क्या प्रदान करेंगे?' इस प्रश्नके उत्तरमें भगवान् श्रीराम कहते हैं—

·····जो रावण आवशे
शरणागत करी हेत,
त्यारे मारी अयोध्या आपीश एने
वैभवराज समेत।
हुं करीश तप वनमां जइ, राज करशे
रावण राय,
पण विभीषणनो जे लंका आपी
ते मिथ्या नव थाय॥'

(श्रीगिरिधररामायण, सुन्दरकाण्ड, अध्याय २०)

यदि रावण शरणागत होकर आयेगा तो उसे मैं अपनी अयोध्या समस्त वैभव और राज्यके साथ प्रदान कर दूँगा। वह राज्य करेगा और मैं वनमें जाकर तपस्या करूँगा, किंतु विभीषणको लंका देनेकी बात कभी मिथ्या न होगी।

इस प्रकार अनेक सुमधुर संवादों एवं प्रभावपूर्ण प्रसंगोंके कारण यह रामायण ग्रन्थ गुजरातमें अत्यन्त लोकप्रिय है।

सत्रहवीं तथा अठारहवीं शताब्दीमें गुजरातके अनेक जैन कवियोंने भी रामकथाको अपने काव्यका उपजीव्य बनाया। इन कवियोंकी रामभक्ति-विषयक रचनाएँ गुजरातीमिश्रित हिन्दीमें लिखी गयी हैं। मध्यकालीन गुजराती कवियोंकी भाँति इन कवियोंकी कुछ रचनाएँ प्रबन्धकाव्यके रूपमें हैं और कुछ प्रसंग-काव्यके रूपमें। प्रबन्धकाव्यकी दृष्टिसे श्रीजिनराय सूरि-रचित 'जैन रामायण' तथा प्रसंग-काव्यकी दृष्टिसे

श्रीसमयसुन्दर-लिखित 'सीताराम चौपाई' विशेष उल्लेखनीय हैं। ये रचनाएँ न केवल जैन कवियोंकी रामभक्तिका परिचय ही देती हैं, अपितु गुजराती एवं हिन्दी भाषाओंके मध्य एक सेतु भी निर्मित करती हैं।

३—लोकसाहित्यकी परम्परा—शिष्ट साहित्यके समान गुजरातीके लोकसाहित्यमें भी रामभक्तिका विकास यथेष्ट-मात्रामें हुआ है। इसमें भी अनेक प्रकारके रामायणग्रन्थ लिखे गये हैं, जिनमें रामायणकालीन संस्कृतिके साथ गुजरातकी तत्कालीन संस्कृतिका सुभग समन्वय हुआ है। गुजरातीकी विभिन्न बोलियोंमें जो रामायणग्रन्थ उपलब्ध होते हैं, उनमें 'लोकरामायण', 'डांगी रामायण' 'भीलोडी रामायण' इत्यादि विशेषरूपसे द्रष्टव्य हैं।

'लोकरामायण' का विशेष प्रचार गुजरातके बनासकांठा तथा खेड़ा जिलेमें देखा जाता है। इसमें राम-कथाके हृदय-स्पर्शी प्रसंगोंपर अनेक गीत दिये गये हैं। इन लोकगीतोंमें सीताहरण तथा लक्ष्मण-मूर्छा-सम्बन्धी गीत विशेष प्रचलित हुए हैं।

'डांगी रामायण' की रचना डांगी बोलीमें हुई है। यह गुजरातके डांग प्रदेशके आदिवासियोंकी बहुमूल्य धरोहर है। डांग प्रदेशके निवासी अपनेको दण्डकारण्यवासियोंका वंशज मानते हैं। विजयादशमी तथा रामनवमीके त्योहारोंपर डांग प्रदेशके आदिवासी 'डांगी रामायण' के छन्दोंको गाते हुए रामलीला खेलते हैं।

'भीलोडी रामायण' गुजरातकी भील प्रजाका गौरव ग्रन्थ है। यह भीली बोलीमें लिखा गया है। गुजरातके पंचमहाल जिलेके भील इस ग्रन्थके प्रति विशेष आदर एवं आस्था रखते हैं, इसमें केवट, गुह, जटायु, शबरी इत्यादि पात्रोंको विशेष महत्त्व दिया गया है।

उपर्युक्त तीनों परम्पराओंके अवलोकनसे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन कालसे आधुनिक कालतक गुजरातीमें रामभक्ति-सम्बन्धी अनेक महत्त्वपूर्ण एवं मननीय ग्रन्थ प्रकाशमें आये हैं। ये ग्रन्थ गुजराती प्रजाकी रामभक्तिके परिचायक तो हैं ही, अन्यान्य भारतीय भाषाओंके रामभक्ति-विषयक साहित्यके तुलनात्मक अध्ययनकी दृष्टिसे उपयोगी एवं सहायक भी हैं।

महाराष्ट्रके वारकरी-सम्प्रदायमें श्रीरामनामकी महिमा

(एडवोकेट श्रीरमेशचन्द्र के॰ परदेशी, एम्॰ए॰ (हिन्दी, राज्य॰), डी॰ एच्॰ ई॰, एल्॰-एल्॰ बी॰, आयुर्वेदरत्न)

महाराष्ट्रका वारकरी-सम्प्रदाय एक महत्त्वपूर्ण भक्ति-सम्प्रदाय है। इस सम्प्रदायके प्रवर्तक संत ज्ञानेश्वर माने जाते हैं और पंढरपुरके श्रीविट्ठल (पांडुरंग) इस सम्प्रदायके उपास्य देवता हैं।

महाराष्ट्रमें ११ वीं शताब्दीके बाद तथा वारकरी-सम्प्रदायके उदयके साथ ही 'राम-कृष्ण'-भक्तिधाराका प्रवाह विशेष रूपसे प्रवाहित हुआ है। वारकरी शिव और हरिमें कोई भेद नहीं मानते। वारकरी-सम्प्रदाय भागवत-धर्मका वह व्यापक एवं विशाल स्वरूप है जो सभी पंथके लोगोंको, ऊँच-नीचको, सुशिक्षित एवं अशिक्षित सभीको साथ लेकर चलनेवाला मानव-धर्मका प्रसार एवं प्रचार करनेवाला सम्प्रदाय है। इसका महाराष्ट्रके सारे भागोंमें तथा तटवर्ती प्रदेशोंमें गहरा प्रभाव है।

वारकरी-सम्प्रदाय सगुण एवं निर्गुणमें भेद नहीं करता, भगवान् श्रीविट्ठल सगुण हैं और निर्गुण भी हैं। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ एवं तुकाराम वारकरी-सम्प्रदायके प्रमुख एवं प्रसिद्ध संत हैं।

स्वामी समर्थ रामदास महाराष्ट्रके एक प्रसिद्ध संत हैं, जो समर्थ-सम्प्रदायके संस्थापक हैं और जिनके आराध्य भगवान् श्रीरामजी हैं। 'जय-जय रघुवीर समर्थ'—यह इस पंथका मन्त्र है। समर्थ रामदासजीकी 'दासबोध, करुणाष्टक, मनोबोध एवं लघु-बृहत् रामायण'—ये प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। जिसमें प्रयत्नवाद तथा कर्मयोगका महत्त्व बतलाते हुए उन्होंने प्रपञ्च एवं परमार्थका विवेचन किया है। भगवान् श्रीरामजीकी भक्ति, उनके आदर्श, श्रीराम-नामकी महिमा आदिके साथ वीर-रसकी चेतावनी उनके साहित्यमें है।

स्वराज्यका मूल मन्त्र देनेवाले रामदास भारतके प्रथम संत हैं। उनके साहित्यमें भगवान् श्रीरामजीकी सगुण भक्ति-

उपासना, शक्ति-तत्त्व एवं भक्तितत्त्वका सुन्दर मिलाप है।

वारकरी-सम्प्रदायका मुख्य मन्त्र है—'जय-जय, राम-कृष्ण हरी'। वारकरी भगवान् श्रीविट्ठलका भजन करते हैं तो उसमें राम-कृष्ण-हरिका सुन्दर मिलाप—अभिप्रेत रहता है। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ तथा तुकाराम आदि संतोंकी रचनाओंमें श्रीराम-नामका विशेष महत्त्व बतलाया है। हरिपाठ वारकरी लोगोंके जपका प्राण है। द्विजमात्रके लिये जैसे संध्या-गायत्री आवश्यक होती है, उसी प्रकार वारकरी-सम्प्रदायके अनुयायियोंके लिये नित्य हरिपाठ आवश्यक है।

हरिपाठमें भगवान् श्रीराम-नामका महत्त्व—

राम-कृष्ण वाचा भाव हा जीवाचा।
आत्मा जो शिवाचा राम-जप॥

× × ×

विष्णु विळे जप व्यर्थ त्याचे ज्ञान।
राम-कृष्ण, मन नाही ज्याचे॥

(हरिपाठ, ज्ञानेश्वर)

हरि नाम जपे तो नर-दुर्लभ।
वाचेसी सुलभ राम-कृष्ण॥
राम-कृष्ण,नामी उन्मनी साधली।
तयासी लाधली सकळ सिहरी॥
ज्ञानदेवी नाम राम-कृष्ण ठसा।
तेणे दस-दिशा आत्माराम॥

(संत ज्ञानेश्वर—हरिपाठ)

जन्माचे कारण रामनाम पाठी।
जाईजे वैकुंठी एकीहेळा॥ १॥
रामनाम ऐसा जिव्हे उमटे ठसा। जो उद्धरेल अपैसा इहलाकी॥
दो अक्षरी राम जप हा परम। नलगे तुज नेम नाना पंथ॥
नामा म्हणे पवित्र श्रीराम चरित्र। उद्धरिते गोत्र पूर्वजेसी॥

(संत नामदेव—हरिपाठ)

हरिपाठके इस अभंगमें 'राम'—इस दो अक्षरके शब्द (नाम) का महत्त्व बताया है। राम-नामसे बिना आयास ही संसार-सागरसे उद्धार हो जाता है और वैकुण्ठकी प्राप्ति हो जाती है। अपने पूर्वजोंसहित अपना बेड़ा पार हो जाता है। भगवान् श्रीरामका नाम, उनका चारित्र्य-गान बड़ा ही पवित्र एवं मङ्गल है, जिससे उद्धार हो जाता है।

हरिपाठके अतिरिक्त अन्य रचनाओंमें भी ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ एवं तुकाराम आदि संतोंने 'श्रीराम'-नामकी बड़ी महिमा गायी है और संत एकनाथजीने 'भावार्थरामायण' नामके ग्रन्थकी रचना की है, जिसमें भगवान् श्रीरामजीकी कथा मराठी-भाषामें अत्यन्त मधुर भावोंके साथ प्रस्तुत की है। हिन्दी-साहित्यमें तुलसीदासजीका रामायण जैसे सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ है, वैसे ही मराठी-साहित्यमें संत एकनाथका 'भावार्थरामायण' है। अपने 'एकनाथी-भागवत' ग्रन्थमें रामनामका महत्त्व बताते हुए उन्होंने कहा है—'भगवान् राम और कृष्णका स्मरण करते ही जन्म-मरणका यह चक्र दूर हो जाता है, उसे संसार-सागरके पार करनेकी कोई चिन्ता ही नहीं रह जाती है, क्योंकि—

करिता राम-कृष्ण स्मरण। उठोनि पळे जन्म मरण।
तेंथे भव-भयाचे तोंड कोण। धैर्यपण धरावया॥

(संत एकनाथ-भागवत, अ० २।६)

अभंग-गाथाएँ—मराठी तथा वारकरी संतोंकी सबसे बड़ी देन है—अभंग-गाथा। इस अभंग-वाणीमेंसे 'राम'-नामकी झाँकी प्रस्तुत करनेवाले कुछ अभंग इस प्रकार हैं—

राम-म्हणे वाट चाली। यज्ञ पाकुलापाकुली॥ १॥
धन्य धन्य ते शरीर। तीर्थ व्रतांचे माहेर॥ २॥
राम म्हणे करिता धंदा। सुख समाधि त्या सदा॥ ३॥
राम म्हणे ग्रासो ग्रासी। तोचि जेविला उपवासी॥ ४॥
राम म्हणे भोगी त्यागी। कर्म न लिंपे त्या अंगी॥ ५॥
ऐसा राम जैपे नित्य। तुका म्हणे तो जीवन्मुक्त॥ ६॥

(अभंग-गाथा—संत तुकाराम)

राम पिता, सीता माता। लक्ष्मण सोयरा चुलता।
नामा म्हणे माझे गोत। चित्रकुटी असे नांदत।
श्रीराम सोयरा आला माझ्या धरा।
दिधला क्या थारा हृद्रया माझ्या।
पावलो विश्रान्ती धाले माझे मन। न लगे आता ध्यान शिकावया।

(अभंग-गाथा—संत नामदेव)

राम वाचे बोल। तया पुरुष नाही मोल।
धन्य तयाचें शरीर। करीं जना उपकार।
नामा म्हणे स्वामी। सुखे वसे अंतर्यामी॥

(अभंग-गाथा—संत नामदेव)

रामा दशरथ नंदना। योगिजन मनरंजना।

अभय वरद वैष्णव जना। बिभीषण स्थापि मेलें।
म्हणकनी तुझे मी पोसणे। हे ऐके एक रघुनंदने।
येणेचि कारणे आलो शरण। विष्णु दास म्हणे नामा।

(अभंग-गाथा—संत नामदेव)

राम नाम जपि बौ, श्रवननि सुनिबौ।
सलिल मोह मै बहि नहीं जाइबौ॥ टेक॥
अकथ कथ्यौ न जाई कागद लिख्यौ न माई।
सकल भुवन पति, मिल्यौ है सहज भाई।
राम माता, राम पिता, राम सबै जीव दाता।
भणत नामईयौ छीपौ। कहै रे पुकारि गीता॥

(अभंग-गाथा—संत नामदेव)

वारकरियोंके सर्वस्व जीव-प्राण एवं परम देवता भगवान् विट्ठल श्रीराम ही हैं। इसी दृष्टिसे समग्र वारकरी-सम्प्रदायका साहित्य राम-नामकी ही महिमा गाता है। संत नामदेवजीके शब्दोंमें—

राम राम विट्ठला। हम तुमारे सेवक। सेवक।
ग्यान विट्ठल, ध्यान विट्ठल। नामा का स्वामी प्राण विट्ठल।
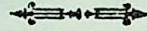
दक्षिणी-पूर्वी एशियामें रामकथा

(डॉ॰ श्रीकेशवप्रसादजी गुप्त, एम्॰ ए॰ (भूगोल, संस्कृत), पी-एच्॰ डी॰, शास्त्री)

श्रीरामकथा मूल-रूपमें भारतीय है और आर्योंकी एक आदर्श कथा है। यह जगत्पावनी कथा लोकमङ्गलकारी, सुविशाल, व्यापक एवं अति सारगर्भित है। आदिदेव भगवान् विष्णुके अंशसे अवतीर्ण, नरतनुधारी मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामकी जीवन-लीलासे सम्बन्धित यह कथा उत्तर एवं दक्षिण भारतकी संस्कृतियोंको जोड़नेवाली एक महत्त्वपूर्ण शृंखला है। भारतके हर धर्म, सम्प्रदाय एवं वर्गके अनुयायियोंमें यह किसी-न-किसी रूपमें अवश्य व्याप्त है। मूलतः वाल्मीकिरामायण-पयोधिसे निकली हुई यह राममय अजस्र-धारा अति प्राचीन कालसे ही भारतके चतुर्दिक् फैलने लगी थी। कालान्तरमें तत्तद्देशीय निवासियोंने इस कथामें पर्याप्त परिवर्तन भी कर लिये, जिससे यह उनके समाज एवं परिस्थितिके सानुरूप हो गयी। आज भी जिन देशोंमें भारतीय हैं अथवा जिन देशोंके लोग भारतमें हैं, वहाँ न्यूनाधिक रूपमें रामकथाकी परिचर्चा अवश्य देखने-सुननेको मिलती है।

दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंसे भारतका सांस्कृतिक सम्बन्ध अत्यन्त प्राचीन कालसे ही चला आ रहा है। यद्यपि आज यहाँ कई संस्कृतियोंका संगम दिखायी पड़ता है और यहाँके निवासी विविध धर्मोंको माननेवाले हैं, फिर भी इनपर भारतीय संस्कृतिका गहरा और अमिट प्रभाव पड़ा हुआ है। फलस्वरूप यहाँकी संस्कृति और साहित्य दोनोंमें रामकथा अत्यन्त घुल-मिल गयी है। सम्भवतः इन देशोंमें रामकथा अशोक एवं समुद्रगुप्त-जैसे प्रभावशाली भारतीय राजाओंद्वारा चलाये गये विदेशोंमें धर्मविजय-अभियानसे बहुत पूर्व ही अपना स्थायी स्वरूप प्राप्त कर चुकी थी। आज, दक्षिणी-पूर्वी एशियाके कई देशोंमें बौद्ध एवं इस्लाम-धर्मोंका वर्चस्व होनेपर भी यहाँ रामकथा पूरी तरहसे अपना अस्तित्व बनाये हुए है।

थाईलैंड (सियाम या स्याम) दक्षिणी-पूर्वी एशियाका एक प्रमुख देश है, जो बर्माके पूर्वमें स्थित है। यहाँके अधिकांश निवासी बौद्धधर्मके अनुयायी हैं, फिर भी यहाँ रामकथाको अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त है। यहाँ अयोध्या (अयुधिया) नामकी नगरी है, जहाँके राजा 'रामाधिपति' कहलाते थे। यहाँ लवपुरी (लोपभुरी) नामसे प्रसिद्ध एक अन्य नगरी भी है, जो पहले द्वारवती राज्यकी राजधानी थी। थाईलैंडके कई शासक अपने नामके साथ 'राम' लगाया करते थे। तेरहवीं शताब्दीके उत्तरार्धके नरेश खुन-राम-खम्हेङ् तो 'राम' के नामसे ही प्रतिष्ठित थे। राजा भूमिबल-अतुलंतेज भी अपने नामके साथ 'राम' लगाते थे।

थाईलैंडमें समय-समयपर कई रामायणोंका प्रणयन हुआ है, परंतु सन् १८०७ में नरेश राम प्रथमद्वारा लिखी गयी रामायण सर्वाधिक लोकप्रिय एवं सर्वमान्य है। यहाँ प्रतिष्ठित रामायणका नाम 'रामकियेन' है, जिसका तात्पर्य होता है—रामकीर्ति। इस रामायणका कथानक मूल रूपमें वाल्मीकि-रामायणसे लिया गया है, परंतु इसमें पर्याप्त परिवर्तन एवं कल्पनाका आश्रय लेकर इसे अपने देश एवं परिस्थितिके अनुरूप ढाल दिया गया है। फलस्वरूप यहाँके निवासियोंमें

यह धारणा बन चुकी है कि रामका जन्म उन्हींके देशमें हुआ था और रामकथा भी उन्हींके देशसे सम्बन्धित घटना है। इस रामायणमें हनुमान् एवं सूर्यदेव, सीता-वनवास आदि प्रसंग अत्यन्त रोचक ढंगसे प्रस्तुत किये गये हैं। थाईलैंडके कुछ मन्दिरोंमें रामकी मूर्तियाँ भी प्रतिष्ठित हैं। यहाँके राष्ट्रिय संग्रहालयमें भी रामकी मूर्तियाँ सुरक्षित हैं। थाईलैंडकी राजधानी बैंकाकके एक प्रसिद्ध मन्दिरकी दीवारोंपर 'राम-कियेन' की कतिपय महत्त्वपूर्ण घटनाएँ चित्र-रूपमें उत्कीर्ण हैं।

थाईलैंडके निकटवर्ती देश कम्बोडिया (कम्बुज या कम्प्यूचिया) में रामकथाका पर्याप्त महत्त्व है। यहाँकी रामायण 'रामकेर' नामसे सुप्रसिद्ध है। यह थाई रामायणसे विशेष प्रभावित है। यहाँ सूर्यवर्मनद्वारा बनवाये गये अङ्कोरवातके मन्दिरकी दीवारोंमें जो पत्थर लगे हुए हैं, उनपर रामसे सम्बन्धित दृश्य अङ्कित हैं। बायोनके मन्दिरकी भित्तियोंपर भी रामायणके कथानकसे सम्बन्धित चित्र बने हुए हैं, जिसके एक चित्रमें क्रुद्ध शंकर अपने तृतीय नेत्रसे कामदेवको भस्म करते हुए दर्शाये गये हैं। इसी प्रकार रामायणकी कथापर आधारित मारीचका आखेट, सीताहरण, बाली और सुग्रीवका युद्ध, सुग्रीव और रामकी मैत्री, अशोकवाटिकामें सीता, राम-रावण-युद्ध आदि दृश्य कम्बोडियाके मन्दिरोंकी भित्तियोंपर चित्रित हैं। रामायणके रचयिता वाल्मीकि मुनिका उल्लेख यशोवर्मा-की सूखी झीलके पूर्वी तटवर्ती एक अभिलेखमें स्पष्ट रूपसे हुआ है।

लाओस देशमें भी रामकथाका विशेष प्रचार है। यहाँके कुछ मन्दिरोंकी भित्तियोंपर भी रामकथाके दृश्य अङ्कित हैं। यहाँ दो रामायण प्रचलित हैं—१-फालक फालाम और २-फोमचक्र। यहाँ समय-समयपर रामकथाका रंगमंचपर अभिनय किया जाता है, जिसे यहाँके निवासी बड़े हर्षोल्लास-के साथ देखते हैं।

कम्बोडियाके पूर्वमें दक्षिणी वियतनाम दक्षिणी चीन सागरतक फैला हुआ है। प्राचीन कालमें इस क्षेत्रमें एक भारतीय हिन्दू-राज्य स्थापित था, जिसे चम्पा कहा जाता था। चम्पामें रामायणका इतना प्रचार था कि यहाँके अभिलेखोंमें बार-बार रामायणके पात्रोंका नाम देकर उनसे वहाँके राजाओंकी तुलना की जाती थी। दशरथ एवं उनके पुत्र रामका यहाँके अभिलेखोंमें अनेक बार उल्लेख हुआ है—

'दशरथनृपजोऽयं राम इत्याशया यं
श्रयति विधिपुरोगा श्रीरहो युक्तिरूपम्।'

वियतनामके इस क्षेत्रमें यत्र-तत्र रामकथाका मनोरम स्वरूप अब भी परिलक्षित होता है।

दक्षिणी-पूर्वी एशियामें मलेशिया एक इस्लाम-धर्मका अनुयायी देश है। परंतु यहाँ भी रामकथाका व्यापक प्रभाव दृष्टिगत होता है। यहाँके इतिहासमें 'लंकासुक' नामक एक राज्यका उल्लेख मिलता है। मलेशियामें प्रचलित रामायणका नाम है—'हिकायत सिरीरामा।' इस देशमें रामायणकी घटनाओंका बड़ी रोचकताके साथ मंचन किया जाता है और यहाँके मुस्लिम लोग भी रंगमंचपर रामायणके पात्रोंके रूपमें आते हैं। यहाँ आये दिन रामके चरित्रसे सम्बन्धित नृत्य एवं गीतके आयोजन हुआ करते हैं। यहाँ रामकथामें रामके सहयोगी पात्रोंको बड़ी श्रद्धाकी दृष्टिसे देखा जाता है।

दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंमें राम और रामकथाका सबसे बड़ा प्रेमी देश इंडोनेशिया है। यहाँ रामके प्रति लोगोंकी वैसी ही श्रद्धा एवं निष्ठा है, जैसी भारतीयोंकी। यहाँके निवासी रामके चरित्रसे अत्यन्त प्रभावित हैं। यहाँकी सुप्रसिद्ध रामायणका नाम 'रामायण ककविन्' है। इस ग्रन्थका प्रणयन जावा (यव) द्वीपके मतरामवंशी महाप्रतापी नरेश बलितुङ्गके शासनकाल (नवीं शताब्दीके उत्तरार्ध) में उनके राजकवि योगीश्वरने जावाकी प्राचीन भाषा (कवि-भाषा) में किया था। वाल्मीकिरामायण, भट्टिकाव्य एवं रघुवंशसे प्रभावित इस महान् ग्रन्थमें २६ सर्ग तथा कुल २७७८ श्लोक हैं। इस ग्रन्थका देवनागरी लिप्यन्तरण एवं हिन्दी-रूपान्तर भी हुआ है। इस रामायणके कतिपय प्रसंग वाल्मीकिरामायणसे भिन्न हैं। इसकी कथाके अनुसार अग्नि-परीक्षाके पश्चात् रामने सीताको ग्रहण किया था और सीताके अन्तिम वर्ष वाल्मीकि ऋषिके आश्रममें नहीं बीते। इंडोनेशियामें रामकथा बाली एवं जावा द्वीपोंमें विशेष रूपसे प्रचलित है। बाली एक हिन्दू द्वीप है। यहाँ भारतीय देवी-देवताओंकी पूजा-अर्चना आज भी परम्परागतरूपमें होती है। यहाँ रामका आदर्श चरित्र एवं रामकथा जन-जनको प्रिय है। जावा द्वीपमें मुस्लिमोंकी संख्या अधिक होनेपर भी, यहाँ रामकथा बहुप्रचलित है। यहाँके

मुख्य नगर जोग जकार्ताके रामकथापर आधारित नृत्य-नाटक आदि विश्व-विश्रुत है। इस नगरके समीपमें स्थित 'परम नवम्' के मन्दिरमें रामकथा उत्कीर्ण है। यहाँ प्रस्तर-निर्मित रामकी मूर्तियाँ हैं। जावामें 'चण्डी-लर-जोग्रङ्ग' के मन्दिरकी भित्तियोंपर भी रामायणके चित्र अङ्कित हैं। यहाँका मुस्लिम समुदाय भी रामकथाके अभिनयमें अत्यधिक रुचि लेता है।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि दक्षिणी-पूर्वी एशियाके अन्य छोटे-छोटे द्वीपोंमें भी रामकथाका अस्तित्व अवश्य होगा।

उपर्युक्त विवेचनसे स्पष्ट है कि दक्षिणी-पूर्वी एशियामें रामकथाका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन देशोंके निवासियोंकी रामपर अपार श्रद्धा एवं अगाध आस्था है। उनके विचार, चिन्तन, मान्यताएँ आदि रामके लोकोत्तर चरित्रसे बहुत-कुछ प्रभावित हैं। वे रामका आदर्श स्वरूप ग्रहण करते हुए पग-पगपर रामकथासे प्रेरणा एवं शिक्षा प्राप्त करते हैं। निःसंदेह, दक्षिणी-पूर्वी एशियाके देशोंमें राम सर्वत्र वन्दनीय हैं, पूजनीय हैं।

रूसमें श्रीरामके आदर्श चरित्रसे प्रेरणा ली जा रही है

(श्रीशिवकुमारजी गोयल)

स्व० अलैक्सेई बारान्निकोव सोवियत-संघके पहले हिन्दी-प्रचारक तथा गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामचरितमानसका रूसी भाषामें 'रामचरितमानस—रामके शौर्यमय कार्योंका सागर' नामसे अनुवाद करनेवाले प्रथम मनीषी थे।

श्रीबारान्निकोवके पुत्र डॉ० प्योत्रा बारान्निकोव भी हिन्दी तथा भारतीय संस्कृतिके अनन्य प्रेमी हैं। उन्होंने भी रामचिरतमानस तथा भारतीय संस्कृतिपर बहुत लिखा है। श्रीबारान्निकोव हालहीमें तीन माहके लिये भारत आये थे। लोगोंको यह जानकर आश्चर्य होगा कि वे अयोध्याके श्रीरामजन्मभूमि-मन्दिर-निर्माणके लिये सोवियत-संघके श्रीरामभक्तोंकी ओरसे श्रीरामशिला अपने साथ लाये थे। वे गर्वके साथ कहते हैं 'सोवियत-संघका प्रत्येक हिन्दी-प्रेमी तथा रामचरितमानसमें रुचि रखनेवाला हृदयसे चाहता है कि अयोध्यामें श्रीरामजन्मभूमिके ऐतिहासिक स्थलपर भव्य राममन्दिरका निर्माण हो—इसी भावनासे अभिभूत होकर मैं रामशिला साथ लाया था। उन्हें इस बातकी पीड़ा है कि भारतके कुछ कथित प्रगतिशील बाबर-जैसे साम्राज्यवादी तथा अत्याचारीके दुष्कृत्योंका अन्ध-समर्थन करनेमें नहीं हिचकते।' उन्होंने कहा—'करोड़ों लोगोंकी मानवताको प्रेरणा देनेवाले मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी बाबर-जैसे नरसंहार करानेवाले साम्राज्यवादीके साथ तुलना करना दिमागी दिवालियापनका ही परिचायक है।'

श्रीप्योत्रा बारान्निकोवने एक साक्षात्कारमें बताया कि 'जब मेरे पूज्य पिताजी अलैक्सेई पैत्रोविच बारान्निकोवने श्रीरामचरितमानसका रूसी भाषामें अनुवाद किया था, तब 'कथित' बुद्धिजीवियों और प्रगतिशीलोंने उन्हें भी 'दकियानूसी' बताया था।'

ऐसे थे मेरे पिताजी—श्रीप्योत्रा बारान्निकोव अन्ताराष्ट्रिय ख्यातिप्राप्त अपने पिता डॉ० अलैक्सेई बारान्निकोवकी स्मृतियोंमें खो जाते हैं। वे कहते हैं—'मेरे पिताजी केवल हिन्दी तथा संस्कृतके विद्वान् ही नहीं थे, अपितु भारतीय संस्कृति और भारतकी परम्पराओंके प्रति भी निष्ठावान् थे। उनका कहना था कि संस्कृत तथा हिन्दी महान् वैज्ञानिक भाषाएँ हैं और भारतीय साहित्य पूरे संसारकी महान् धरोहर है।'

श्रीबारान्निकोवने अन्तमें अपना समस्त जीवन ही भारतीयताकी सेवाके लिये समर्पित कर दिया था। गोस्वामी तुलसीदासजीकी रामचरितमानसको वे संसारका सर्वश्रेष्ठ आदर्श जीवन-चरित्र मानते थे।

श्रीबारान्निकोवका जन्म २१ मार्च १८९० को सोवियत-संघके एक साधारण बढ़ई-परिवारमें हुआ था। सन् १९१० में वे कीव विश्वविद्यालयके छात्र थे तथा प्राच्य भाषाविद् डॉ० कनाउएरके शिष्य बने। उस दौरान प्राच्यतम भाषाके रूपमें उन्हें संस्कृत भाषाको समझनेका मौका मिला तथा उन्होंने अनुभव किया कि संस्कृत और हिन्दी भाषाएँ प्राचीन तथा वैज्ञानिक हैं।

संस्कृत तथा हिन्दीका प्रचार—उन्होंने सन् १९१६ में संस्कृत तथा हिन्दीका विधिवत् अध्ययन शुरू कर दिया। सन् १९१९ में श्रीबारान्निकोव समस्कि विश्वविद्यालयमें संस्कृत और तुलनात्मक भाषा-विज्ञानके प्रोफेसर बने।

श्रीबारान्निकोवने संस्कृत-हिन्दीके साथ-साथ मराठी और बँगला भाषाका भी अध्ययन किया। उन्होंने एक लेख लिखकर घोषित किया कि संस्कृत भारतीय भाषाओंकी ही नहीं, अपितु संसारकी अनेक भाषाओंकी जननी है। संस्कृत और हिन्दीके साहित्यका जब उन्होंने अध्ययन किया तो गोस्वामी तुलसीदासके अमर ग्रन्थ 'रामचरितमानस' ने उनका हृदय मोह लिया। उन्हें अनुभूति हुई कि मर्यादापुरुषोत्तम श्रीरामका आदर्श चरित ही संसारके माँ-बाप, भाई-बहन, पुत्र-पुत्री तथा पुत्र-बधुओंको आदर्श जीवन जीनेकी प्रेरणा दे सकता है। वे सोवियत-संघके लोगोंको श्रीरामके आदर्श चरितसे परिचित करानेके कार्यमें जुट गये। सन् १९४८ में यह कार्य पूरा हुआ तथा रूसी भाषामें उनका अनुवाद किया हुआ रामचरितमानस प्रकाशित हुआ। उन्होंने अनुवादकी भूमिकामें लिखा—'रामचरितमानस' समाजमें नैतिक मूल्योंकी स्थापना करनेवाला महान् ग्रन्थ है। यह ग्रन्थ भारतीय दर्शन, सौन्दर्यशास्त्र और नैतिकताका आईना है। रामचरितमानस उस साहित्यिक स्मारककी तरह है जो दूसरोंकी भलाईके लिये मानवको सच्चा मानव बननेकी युग-युगोंतक प्रेरणा देनेकी क्षमता रखता है।'

उन्हें प्रतिक्रियावादी बताया गया—रूसी तानाशाह स्टालिनके युगमें बारान्निकोवकी न केवल उपेक्षा की गयी, अपितु यह 'फतवा' भी दे दिया गया कि वे 'प्रतिक्रियावादी' धार्मिक विचारोंका विष पनपानेके काममें लगे हैं। प्रबल विरोधके बावजूद भी डॉ० बारान्निकोव 'रामचरितमानस' तथा भारतीय संस्कृतिके शाश्वत तत्त्वोंका प्रचार करते रहे। प्रसिद्ध रूसी विद्वान् श्री ए० पी० चेलीशेवके अनुसार श्रीबारान्निकोवने इन आलोचनाओंपर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लेनिनग्राद विश्वविद्यालयमें कहा था—'मैं मध्यकालीन वैष्णव समाज तथा श्रीरामके मानवतावादी दृष्टिकोणका प्रचारक हूँ—इसलिये कुछ कथित प्रगतिशील मेरी आलोचना करते हैं, किंतु मैं पुनः दोहराता हूँ कि श्रीरामका आदर्श चरित ही हमें मानवताके साथ-साथ अन्यायके प्रतिकारकी प्रेरणा देनेमें सर्वथा सक्षम है'।

श्रीबारान्निकोवने श्रीलल्लूजी-कृत 'प्रेमसागर' का भी अनुवाद किया। बादमें महान् भारतीय लेखक प्रेमचंदकी कहानियोंका रूसी भाषामें उन्होंने अनुवाद किया।

अपने 'भारत और रूसके सांस्कृतिक सम्बन्ध' नामक लेखमें श्रीबारान्निकोवने यह स्वीकार किया कि भारतीय संस्कृतिका रूसपर भारी प्रभाव रहा है। उन्होंने अपने पुत्र प्योत्रा बारान्निकोवको भी भारतीय संस्कृति तथा हिन्दीपर कार्य करनेकी प्रेरणा दी। तदनुसार डॉ० प्योत्रा भी अपने स्वर्गीय पिताजीकी तरह हिन्दी तथा भारतीयताकी सेवामें सक्रिय हैं।

डॉ० प्योत्रा बारान्निकोव लेनिनग्राद विश्वविद्यालयमें हिन्दी विभागमें प्रोफेसर हैं। वे जब जनवरीमें भारत-भ्रमणपर आये थे तो चित्रकूटमें आयोजित रामायण-सम्मेलनमें भी उन्होंने भाग लिया। वे गाजियाबादमें अन्ताराष्ट्रिय सहयोग परिषदके एक समारोहमें भी पधारे। उन्होंने जब समारोहमें भारतीयोंको अंग्रेजी भाषाका प्रयोग करनेके लिये लताड़ा तो तमाम श्रोता उनके हिन्दी-प्रेमसे उत्पन्न पीड़ाकी अनुभूति कर उठे थे।

श्रीबारान्निकोवने कहा था—'हिन्दी ही हिन्द है और हिन्द ही हिन्दी है। जो स्वाधीनताके इतने वर्ष बाद भी विदेशी साम्राज्यकी प्रतीक अंग्रेजीकी मानसिक दासताका गुलाम है, वह भारत-विरोधी है। हिन्दी-जैसी समृद्ध, वैज्ञानिक तथा सरल भाषापर गर्व न कर विदेशी भाषा अंग्रेजीका मोह करना घोर शर्मनाक तथा दुर्भाग्यपूर्ण है।'

'प्रयाग'का नाम इलाहाबाद क्यों?—श्रीप्योत्रा बारान्निकोव रामचरितमानसके भक्त हैं, अतः वे चित्रकूट, अयोध्या, प्रयाग, लखनऊ आदि उन स्थानोंपर भी गये जिनका श्रीरामसे सम्बन्ध रहा है। उन्होंने बताया 'प्रयागमें पावन संगममें स्नानकर मैंने भारी मानसिक शान्ति प्राप्त की, किंतु उस समय मुझे बहुत कष्ट हुआ, जब पता चला कि प्राचीन 'प्रयाग' नगरीका नाम 'इलाहाबाद' तथा लक्ष्मणजीके नामपर बसी 'लक्ष्मणपुरी' नगरीका नाम 'लखनऊ' कर दिया गया है।' उन्होंने कहा कि 'यदि मैं भारतका नागरिक होता तो इलाहाबादका नाम पुनः 'प्रयाग' तथा लखनऊका 'लक्ष्मण-पुरी' करनेके लिये प्रस्ताव लाता। श्रीबारान्निकोव बताते हैं कि सोवियत-संघमें प्राचीन नगरोंके नामोंको पुनः प्रतिष्ठापित किया गया है। सोवियत-संघ भले ही आधुनिकताका हामी है, किंतु प्राचीनताको अक्षुण्ण रखा जाना आवश्यक समझता है। इसी प्रकार भारतको भी अपने प्राचीन ऐतिहासिक नगरोंके नामोंका प्रचलन करनेमें गर्व अनुभव करना चाहिये।

विश्वकी विभिन्न भाषाओंमें राम-साहित्य

(श्रीजयसिंहजी राठौर)

यावत् स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले ॥
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति ।

'जबतक धरतीपर नदियाँ और पहाड़ रहेंगे, तबतक इस लोकमें रामकथाका प्रचार होता रहेगा।' समयकी कसौटीपर अबतक महर्षि वाल्मीकिका यह कथन अक्षरशः खरा उतरा है और निश्चय ही इसकी सत्यता भविष्यमें भी अक्षुण्ण ही रहेगी। भारत तो भगवान् श्रीरामकी अवतारभूमि तथा लीला-भूमि है ही, परंतु भारतके बाहर भी अनेक देशोंके जन-जीवन और संस्कृतिमें श्रीराम इस तरहसे समाहित हैं कि उन देशोंके लोग अपनी मातृभूमिको भगवान् श्रीरामकी लीला-भूमि और स्वयंको उनका वंशज मानते हैं और गौरवान्वित होते हैं। उनका तो यहाँतक समझना है कि मूलतः राम उनके अपने देशके अधिनायक हैं और भारतने भी इन्हें अपना लिया है। इसके दो उदाहरण यहाँ दिये जा रहे हैं।

एक बार अफ्रिकाके मुस्लिम देश मिस्रके अरबी नस्लके राष्ट्रपति अब्देल गमाएल नासिर भारत आये। उन्होंने यहाँ रामायणका एक नाट्य-प्रदर्शन देखनेके बाद तत्कालीन प्रधान मन्त्री नेहरूजीसे बड़े आश्चर्यपूर्वक कहा था कि आप भारतीयोंने हम मिस्रियोंके लोकनायक रामको किस हदतक अपना लिया है?

इंडोनेशियाकी स्वाधीनताके बाद भी न्यूगिनीके पश्चिमी भागके ऊपर हालैंडने कब्जा बनाये रखा। इंडोनेशियाद्वारा बार-बार इसकी माँग करनेपर डच-सरकार (हालैंड) ने कोई ऐसा साक्ष्य प्रस्तुत करनेको कहा जिससे कि ऐसा लगे कि वह भूभाग इंडोनेशियाका भाग रहा हो। इसपर इंडोनेशियाई-मण्डलके नेताने सीताजीकी खोजपर जानेवाले वानर-दलको जहाँ-जहाँ जानेको कहा था उनमें न्यूगिनीके इस भाग, तब उसका नाम दूसरा था, का भी वर्णन किया। नीदरलैंड (हालैंड) के प्रतिनिधिने प्रतिवाद करते हुए कहा था कि रामकथा तो भारतके हिन्दुओंका ग्रन्थ है, इससे आपलोगोंका क्या लेना-देना? प्रत्युत्तरमें इंडोनेशियाई प्रतिनिधिने कहा— 'लेना-देना क्यों नहीं साहब! राम हमारे देशके लोकनायक हैं, उसे भारतने भी अपना लिया तो क्या हुआ?' दिलचस्प बात तो यह है कि इसी साक्ष्यने बादमें वह भूभाग वापस दिलानेमें एक बड़ी भूमिका निभायी।

भगवान् रामका उदात्त चरित्र देश, काल, धर्म और जातिगत सीमाओंको लाँघकर समानरूपसे सर्वत्र प्रसिद्ध है। श्रीरामके यश-कीर्तिकी मूलकथा तो महर्षि वाल्मीकिवाली ही है; किंतु स्वाभाविकरूपसे स्थानीय संस्कृतियों तथा लोकाचारों-का प्रभाव उन कथाओंपर अवश्य पड़ा है।

यहाँ रामकथासे सम्बद्ध वैदेशिक भाषाओंमें उपलब्ध कुछ ग्रन्थोंकी एक सूची दी जा रही है, जिससे यह स्पष्ट हो जायगा कि भारतेतर देशोंमें भी समय-समयपर रामकथा तथा रामभक्तिपरक साहित्यका सर्जन होता आया है—

ग्रन्थका नाम	रचयिता	रचनाकाल	देश-स्थान
१-लिऊ तऊत्च	किंग	२५१ ई०	चीन
२-त्च पाओ	त्वांग किंग	४७२ ई०	''
३-लंका सिहा	अज्ञात	७वीं शती	''
४-खोतानी रामायण	''	९वीं ''	पूर्वी तुर्किस्तान
५-तिब्बती रामायण	''	३री ''	तिब्बत
६-मंगोलियाकी रामकथा	''	१०वीं ''	मंगोलिया
७-जापानकी रामकथा	होबुत्सु	१२वीं ''	जापान
८-'' '' ''	साम्बो ऐ कोतोबा	१०वीं ''	''
९-हरिश्रय	हरिश्रयककविन	८वीं ''	इंडोनेशिया

ग्रन्थका नाम	रचयिता	रचनाकाल	देश-स्थान
१०-रामपुराण	अज्ञात	१९वीं "	इंडोनेशिया
११-अर्जुनविजय	"	१९वीं "	"
१२-रामविजय	"	सही समय अज्ञात	"
१३-वीरतन्त्र	"	"	"
१४-कपिपर्व	"	"	"
१५-चरित्र-रामायण	"	"	"
१६-ककविन रामायण	कवि ककविन	"	"
१७-जावी रामायण	अज्ञात	"	"
१८-मिसासुर रामकथा	"	"	"
१९-केचक रामकथा	"	"	"
२०-रामकियेन	"	"	थाईलैंड
२१-फालक फालाम	"	"	लाओस
२२-पोम्मचाक	"	"	"
२३-हकायत श्रीराम	"	१३वीं शती	मलेशिया
२४-हकायत महाराज रावण	"	सही समय अज्ञात	"
२५-रामकीर्ति	"	" "	कम्बोडिया
२६-जानकी-हरणम्	लुंकापति कुमार दास	कालिदासके समकालीन	श्रीलंका
२७-महरादिया लावना	अज्ञात	१३वीं शती	फिलीपीन्स
२८-रामवस्तु	"	१७वीं"	बर्मा
२९-महाराम	"	१८वीं"	"
३०-राम तोन्मयो	"	१९०४ ई०	"
३१-रामताज्यी	"	१७७५ ई०	"
३२-रामयग्रान	"	१७८४ ई०	"
३३-अलोगराम ताज्यी	"	१९०५ ई०	"
३४-थिरीराम	"	१८वीं शती	"
३५-पोन्तवराम	"	१८८० ई०	"
३६-पौन्तव रामलखन	"	१९१० ई०	"

शिशु राम

कजरा अँखियान लसै बिलसै, तन पै छबि चन्द्र-छटानकी न्यारी।
अधराधर बिद्रुम-मान हरैं, दँतियाँन पै दामिनिकी दुति वारी॥
लट कंज-कपोल किलोल करैं, मधु-मत्त-मिलिन्दनकी अनुहारी।
निसि-वासर वास करै उर मैं, अवधेस के बालक की किलकारी॥
तोतरे बोल अमोल रमैं, उर मैं बिरमैं मधु-पानकी चाहैं।
दीठि-सनाल-सरोज लसै, लखि देव-अदेव-त्रिदेव सराहैं॥
गात मैं इन्दुको कोटि उदोत है, ज्योति-तरंगित-धार उमाहैं।
मेरो कलेस हरैं अवधेसके बालकजूकी मृणाल-सी बाहैं॥

—डॉ० श्रीगणेशदत्तजी सारस्वत

विदेशी चिन्तकोंकी दृष्टिमें तुलसीदास और उनकी रामकथा

(डॉ० श्रीराज गोस्वामी, विद्यावाचस्पति, पी-एच० डी०)

गोस्वामी तुलसीदासजीकी लोकप्रियता एवं रामचरितमानसके महत्त्व तथा उसके चिरस्थायी प्रभावको देखकर विदेशी विद्वान् भी तुलसीकी ओर आकृष्ट हुए। श्रीहोनेन्स हेमन विल्सनने १८२३ तथा १८२८ ई० के एशियाटिक रिसर्चेजमें 'स्केच ऑफ द रिलीजस सेक्ट्स ऑफ द हिन्दूज' शीर्षकसे लेख लिखा। इस लेखमें प्रथम बार एक विदेशीने तुलसीदास और उनकी रचनाओंका परिचय दिया।

विदेशी चिन्तकोंमें तुलसीका दूसरा उल्लेख फ्रांसीसी विद्वान् गार्सा दतासीने किया, उन्होंने तुलसीका परिचय फ्रेंच भाषामें लिखा, जिसका शीर्षक था 'इस्तवार दल लितेर हयूर, ऐंदुई ऐं ऐन्दुस्तानी'। यह दो भागोंमें १८३९ तथा १८४७ में प्रकाशित हुआ। दतासीने एक अन्य पुस्तक भी लिखी, उसमें भी तुलसीपर बहुत कुछ लिखा। 'लै ओत्यूर ऐन्दुस्तानी ऐ ल्यूर उवरज' जिसकी हिन्दी है—'हिन्दुस्तानी लेखक और उनकी रचनाएँ'। इस पुस्तकके पृष्ठ २१५—२७२ में दतासीने तुलसीके रामचरितमानसके 'सुन्दरकाण्ड' का फ्रांसीसी अनुवाद प्रस्तुत किया है।

विदेशी चिन्तकोंमें एफ० एस० ग्राउजका तृतीय स्थान है। उन्होंने 'रामचरितमानस' के काव्य-तत्त्वका अनुशीलन किया। ग्राउजने मानस और वाल्मीकिरामायणका तुलनात्मक अध्ययन भी किया। ग्राउज मानसके पहले विदेशी चिन्तक हैं, जिन्होंने 'रामचरितमानस' का अंग्रेजीमें अनुवाद किया। 'द रामायण ऑफ तुलसीदास' शीर्षकसे यह ग्रन्थ पृथक्-पृथक् भागोंमें १८७१ ई० और १८७८ ई० के बीच छपा। सरकारी प्रेस इलाहाबादने ग्रन्थके प्रथम भाग 'बालकाण्ड' का अनुवाद 'चाइल्डहुड' शीर्षकसे १८७७ ई० में प्रकाशित किया। इस पुस्तकके मुख-पृष्ठपर लिखा है—उत्तर-पश्चिम प्रदेशोंकी जनतामें तुलसीदासका रामायण इंग्लैंडमें बाइबिलकी अपेक्षा अधिक लोकप्रिय एवं आदर-प्राप्त ग्रन्थ है।

पाश्चात्त्य चिन्तकोंमें तुलसी-सम्बन्धी अध्ययनकी दृष्टिसे अब्राहम जार्ज ग्रियर्सनका नाम महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने राबर्ट एटकिंगसनसे संस्कृत तथा मीर औलाद अलीसे हिन्दुस्तानी सीखी। ग्रियर्सनने १८८६ ई० में आस्ट्रियाके वियना नगरमें होनेवाले यूरोपीय प्राच्य विद्या-विशारदोंकी अन्ताराष्ट्रिय सभाके अधिवेशनमें भारत-सरकारका प्रतिनिधित्व किया। इस अधिवेशनमें उन्होंने हिन्दुस्तानकी मध्यकालीन भाषा-साहित्य, विशेषकर तुलसी-सम्बन्धी शीर्षक प्रबन्ध पढ़ा। ग्रियर्सनका 'द माडर्न बर्नाक्युलर लिटरेचर ऑफ हिन्दुस्तान' नामक लेख 'एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल' के जर्नलमें प्रकाशित हुआ। यह हिन्दी-साहित्यका प्रथम इतिहास है। इसके छठे अध्यायमें गोस्वामी तुलसीदासका विवेचन है। १८९३ ई० की इंडियन ऐंटिक्विटीमें ग्रियर्सनका 'नोट्स ऑन तुलसीदास' शीर्षक प्रबन्ध छपा। ग्रियर्सनने १९१२ ई०में इम्पीरियल गजटके लिये तुलसीदास-सम्बन्धी प्रबन्ध लिखा। रायल एशियाटिक सोसायटीके जर्नलमें 'क्या तुलसीदासकृत रामायण अनुवाद है ?' शीर्षक प्रबन्ध १९१३ ई०में प्रकाशित हुआ, इसमें रामचरितमानसको अनुवाद न मानकर मौलिक रचना सिद्ध किया गया है। १९२१ में प्रकाशित 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन एण्ड एथिक्स' में तुलसी-सम्बन्धी लेख भी ग्रियर्सनका ही है।

रामकथाके प्रभावसे सोवियत संघ भी अछूता न रह सका। रूसके सुदूर उत्तरके विस्तृत भू-भाग साइबेरियातक रामकथाका विस्तार हुआ। तिब्बती और खोतानी भाषामें लिखी रामकथा रूसमें प्रसारित हुई, जिसका समय तीसरीसे नवीं सदी बताया जाता है। साइबेरियाके बुर्यात प्रदेशमें जहाँ बर्फ ढकी रहती है, सर्वप्रथम १२वीं, १३वीं शताब्दीमें लिखी एक पुस्तकमें रामायणका सारांश प्रकाशित हुआ। तत्पश्चात् मंगोलों और तुर्कोंके प्रभावसे रामकथा बोल्गा नदी-क्षेत्रमें पहुँची, जहाँकी एक जाति हाल्मिकमें यह कथा लोककथाके रूपमें प्रचलित हुई। रूसके महान् साहित्यकार लियो तोल्स्तोयने अपने पत्रोंमें रामायणके उपदेशात्मक तथा ज्ञान-प्रधान कथनको उद्धृत किया है।

सुप्रसिद्ध सोवियत भारत-विद्याविद् अकादमीशियन अलेक्सेई बारान्निकोव (१८९०—१९५२) ने १० वर्षसे अधिक परिश्रमके पश्चात् स्व० श्यामसुन्दरदासद्वारा सम्पादित तुलसीकृत 'रामचरितमानस' का रूसी भाषामें छन्दोबद्ध

अनुवाद किया, जिसे सोवियत संघकी विज्ञान अकादमीने सन् १९४८ में प्रकाशित किया। अनुवाद पद्यमें किया गया है ताकि उसे यथासम्भव मूलके करीब लाया जा सके।

सोवियत संगीतकार जिवानी मिखाइलोव 'मास्को-संगीत-विद्यालय' के स्नातक हैं। उन्होंने सोवियत संगीत-कार अराम रवचातुर्यानकी देख-रेखमें अध्ययन किया। मिलाइलोवने स्वतः लिखा है—रामायणके आधारपर संगीत रचनेकी इच्छा मेरे मनमें बहुत दिनोंसे थी, जिसमें भारतीयजनके नैतिक आदर्श मूर्तिवत् हैं। श्रीमती नतालिया गुसेवाने 'रामायण' की कथावस्तुको लेकर बच्चोंके लिये नाटकके रूपमें रंगमंचीय संस्करण तैयार किया। इस नाटकमें संगीत देनेके लिये संगीतकार एस० ए० वालासन्यान तथा नृत्यरचनाकार वी० पी० बुर्मेहस्तेर तथा एल० एन० ग्रिकुरोवाको संगीतमें भारतीय धुनों और लयोंकी अभिव्यक्ति देनेके लिये दर्जनों रिकार्ड सुनने पड़े। सन् १९६१ में जब जवाहरलाल नेहरू अन्तिम बार मास्को गये थे तो उन्होंने इसे सुना। सोवियत संघमें भारतके भूतपूर्व राजदूत के० पी० एस० मैननने इसे 'दो देशोंके बीच मैत्रीकी अनवरत बढ़ती हुई शृंखलामें एक स्वर्णकड़ी' कहा है।

बंगालके मेजर जनरल चार्ल्स स्टूआर्ट न केवल हिन्दू धर्मसे प्रभावित थे, बल्कि उन्होंने तुलसीके श्रीरामको अङ्गीकार भी कर लिया था।

हिन्दीमें रामचरितमानसपर सर्वप्रथम शोध करनेवाले इटली-निवासी डॉ० लुहजि पियो तैस्सितोरी अब खुद शोधका विषय बन गये हैं। भारतमें सिर्फ दो ही स्थान ऐसे हैं जहाँ तैस्सितोरीके स्मृति-चिह्न मिलते हैं। एक स्थान है ईसाई धर्मके अनुरूप श्रीहजारीमल बाँठियाद्वारा बीकानेरमें उनके शवगर्तका निर्माण, जहाँ वे दफन किये गये थे। दूसरा स्थान है कानपुरमें मोतीझील-स्थित तुलसी-उपवन, जहाँ पण्डित बद्रीनारायण तिवारीद्वारा इस महान् हिन्दी सेवीकी स्मृतिमें एक शिलालेख लगवाया गया है।

भारतीय कलाके अमरीकी विद्वान् मीलो क्लेवलैंड बच्चोंमें रामायणकी कथाओंके प्रति आकर्षणसे बड़े प्रभावित थे। उन्होंने इस महाकाव्यको बालसाहित्यके रूपमें रूपान्तरित किया, जिसका प्रकाशन 'एडवेन्चर ऑफ रामा' के शीर्षकसे 'स्मिथसोनियन संस्थान' की 'फॉर गैलरी ऑफ आई' ने किया है।

जातककी बहुत-सी कथाएँ चीनसे होकर जापान पहुँचीं। इसी प्रकार रामायणका चीनी भाषामें अनुवाद किया गया है। वही धीरे-धीरे जापानतक पहुँच गया। रामायणकी कथा संक्षिप्त रूपमें महाभारत (अध्याय ३, पेज २७४—२९०) में शामिल की गयी। उसके बाद बौद्ध साहित्यके रूपमें पाली जातकमें दशरथ जातकके रूपमें आयी। इस कथाका बौद्ध लोककथाके रूपमें चीनीमें अनुवाद हुआ और इसे 'लिक-त्-त्ची किंग (४—४६) और त्सा-पाओ त्सान किंग' में शामिल किया गया। इन्हीं स्रोतोंसे यह जापानकी बारहवीं सदीकी कृति 'होंबत्स ५' में आया। यह कृति तादूरा-नो-यातूयोरीसे सम्बन्धित है। इस प्रकार भारतीय महाकाव्य 'रामायण' लोककथाके रूपमें जापान आया।

रामायणके नेपाली भाषामें कई अनुवाद अपार लोकप्रियता प्राप्त कर चुके हैं। बहुत पहले रामचरितमानसका पद्यानुवाद नेपाली भाषामें पुरानी पीढ़ीके कवि और नाटककार पहलमान-सिंह स्वाँरने किया था। उसके बाद महान् कवि-कुलचन्द्र गौतमने नेपाली टीका की है।

रामचरितमानसपर अभीतक सैकड़ों शोध-कार्य हो चुके हैं। इस महाकाव्यमें गोस्वामी तुलसीदासने लगभग सोलह हजार शब्दोंका प्रयोग किया है।

भाषा-वैज्ञानिकोंके अनुसार संसारकी किसी भी भाषाके किसी एक कविने अपनी रचनाओंमें इतनी विशाल शब्द-सम्पदाका प्रयोग अभीतक नहीं किया है। तुलसीदासका 'रामचरितमानस' कालजयी होनेके साथ ही वास्तवमें एक सार्वभौम ग्रन्थ है।

सनमुख आवत पथिक ज्यों दिएँ दाहिनो बाम।
तैसोइ होत सु आप को त्यों ही तुलसी राम॥

(दोहावली ८१)

रूसमें श्रीरामके प्रति अगाध प्रेम

(श्रीउदयनारायणसिंहजी)

श्रीरामका आदर्श चरित अपनी सरसता तथा संवेदनशीलतासे भारतकी भौगोलिक सीमाओंतक ही सीमित न रह सका; अपितु उसने सुदूर देशोंकी संस्कृतियोंको, वहाँके लोगोंको भी बहुत अधिक प्रभावित किया। श्रीरामके चरित्रका वर्णन संस्कृत, हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओंके लेखकोंने ही नहीं किया, वरन् विदेशी भाषाओंके लेखकों, रंगमंचके अभिनेताओं तथा संगीतके रचनाकारोंने भी इस माध्यमसे बहुत प्रतिष्ठा अर्जित की। रूसमें भी सुदूर उत्तरके विस्तृत भूभाग साइबेरियातक राम-कथाका विस्तार हुआ। तिब्बती और खोतानी भाषामें लिखी राम-कथा रूसमें विशेष प्रचारित हुई, जिसका समय तीसरीसे नौवीं शती बताया जाता है। साइबेरियाके बुर्यात प्रदेशमें जहाँ बर्फ ढकी रहती है, सर्वप्रथम १२वीं-१३वीं शताब्दीमें मंगोल भाषामें लिखी एक पुस्तकमें रामायणका सारांश प्रचारित हुआ। तत्पश्चात् मंगोलें और तुर्कोंके प्रभावसे राम-कथा वोल्गा नदी-क्षेत्रमें पहुँची, जहाँकी एक प्रजाति हाल्मिकमें यह कथा लोक-कथाके रूपमें प्रचलित हुई। इसके पश्चात् धीरे-धीरे श्रीरामके प्रति अगाध प्रेम रूसी जनमानसको आत्मविभोर करने लगा।

भारत तथा रूसके सांस्कृतिक सम्बन्धोंको बढ़ानेमें रामायणके रूसी अनुवादने मुख्य योग दिया। सुप्रसिद्ध सोवियत-भारत विद्याविद् एकादमीशियन अ० बारान्निकोव (१८९०—१९५२) ने अपने १० वर्षसे अधिकके सतत परिश्रमके पश्चात् तुलसीकृत 'रामचरितमानस'का रूसी भाषामें छन्दोबद्ध अनुवाद किया, जिसे सोवियतसंघकी विज्ञान अकादमीने सन् १९४८ में प्रकाशित किया। 'रामायण'के रूसी अनुवाद-संस्करणकी भूमिकामें बारान्निकोवने लिखा है—'मैंने जिस पुस्तकपर वर्षों घोर परिश्रम किया था, वह अब इतिहासके उस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कालमें प्रकाशित हो रही है जब रूस और भारतके मध्य राजनयिक सम्बन्ध स्थापित हो रहे हैं। मुझे आशा है कि यह पुस्तक इन दोनों देशोंको सांस्कृतिक दृष्टिसे एक-दूसरेके अधिकाधिक समीप लायेगी।'

अनुवाद अधिकाधिक ठीक हो, इसके लिये बारान्निकोवने भारतीय काव्यशास्त्रके समस्त रूपकों-अलंकारोंको भी अनुवादमें अक्षुण्ण रखा और भाव तथा अर्थमें तनिक भी अन्तर नहीं आने दिया। अनुवाद-कार्यको अपने हाथमें लेनेके साथ बारान्निकोवने गोस्वामी तुलसीदासके युगका व्यापक एवं सर्वाङ्गीण अध्ययन तथा चिन्तन किया था। बारान्निकोवने सन् १९४६ में 'रामायण'-सम्बन्धी अपनी लेख-मालाएँ रूसकी विभिन्न वैज्ञानिक पत्रिकाओंमें प्रकाशित करायीं।

जिस समय बारान्निकोव 'मानस' का रूसी-अनुवाद कर रहे थे, वह एक अत्यन्त कष्टसाध्य काल था। द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था और नाजियोंका सोवियतसंघपर आक्रमण तेजीपर था। इस समय अनुवादकका स्वास्थ्य गम्भीर बीमारीसे जर्जर हो चुका था, लेकिन इतनी कठिन परिस्थितियोंमें भी उनका अनुवाद-कार्य चलता रहा। उनके कठिन प्रयत्नोंसे भारतीय संस्कृति एवं भक्तिधाराका एक अमूल्य ग्रन्थ सोवियत-जनताके समक्ष आ सका।

सोवियतमञ्चपर रामायण—रामकथाने अपने अत्यन्त सरल, संवेदनशील तथा शिक्षाप्रद कथानकसे न केवल भारतकी जनता वरन् विश्वके अनेक देशोंकी जनता, वहाँके साहित्यकारों, बुद्धिजीवियों तथा कलाप्रेमियोंको भी अनुप्राणित किया है। श्रीरामचरितके विभिन्न पहलुओंपर न केवल साहित्यकी ही रचना हुई है, बल्कि उस कथाको नाट्य एवं अभिनयके माध्यमसे भी प्रस्तुत किया गया है। श्रीराम-कथाका मञ्चन वस्तुतः उन सभी देशोंके कलाप्रेमियोंने किया है, जहाँ रामकथाका प्रचार हुआ, परंतु रूसने इसे रंगमञ्चके माध्यमसे प्रचारित करनेमें विशेष भूमिका अदा की है। रूसी कलाकारोंने इसका न केवल यूरोपमें ही वरन् अन्य दूरवर्ती महाद्वीपोंमें भी सफल प्रदर्शन कर वहाँकी जनताका हृदय जीत लिया है।

रामायणका मञ्चीकरण वस्तुतः एक अधिक कष्टसाध्य कार्य था, विशेष रूपसे उन देशोंके कलाकारोंके लिये जो भारतीय संस्कृति, सामाजिक परम्पराओं, आचार-व्यवहार, वेश-भूषा आदिसे भलीभाँति परिचित नहीं है तथापि भारतीय संस्कृतिकी अमर काव्यकृति 'रामायण' के प्रभावसे प्रेरित होकर

सोवियत-भारतविद्याविद् श्रीमती नतालिया गुसेवाने 'रामायण'का एक रंगमञ्चीय संस्करण १९६० में तैयार किया। स्वतः नतालिया गुसेवाने यह लिखा है—'जो अपने समकालीन लोगोंको जितनी बार रामायणकी कथा सुनाये, उसे चाहिये कि वह उसके मुख्य गुण सत्यकी विजय, उस सत्यकी जो कोई समझौता नहीं करता अथवा कोई छूट नहीं देता; वह सत्य, जो मानवीय भावनाओंका, भारतीय सम्बन्धोंका सत्य है—बनाये रखे। जब मैंने बच्चोंके लिये इस नाटकको लिखनेका निश्चय किया तो इसी लक्ष्यका अनुसरण किया।'

'रामायण'-नाटकको मञ्चित करनेके लिये इसके निर्देशक, संगीतकार, नृत्य-रचनाकार तथा अभिनेता—सभीको भारत, उसकी संस्कृति, कला, वेश-भूषा तथा तौर-तरीकोंका गहरा अध्ययन करना पड़ा। उन्हें एक प्रकारसे हर चीजका अध्ययन करना पड़ा, जो इस महान् भारतीय महाकाव्यको मञ्चपर प्रस्तुत करनेमें सहायक रहा। रूसी रामायणके रचनाकार नतालिया गुसेवाने बताया कि रामायणके उच्च नैतिक प्रतिमानों तथा उसकी वीरगाथाओंने मुझे अत्यधिक आकृष्ट किया तथा मुझे इस बातकी इच्छा हुई कि इसका संदेश अपने देशवासियोंको प्रदान किया जाय। प्रत्येक राष्ट्रका अपना एक वीरतापूर्ण ग्रन्थ है, लेकिन उनमेंसे कोई भी भारतीय प्राचीन काव्य 'रामायण' के समान उच्च नैतिक आदर्शों तथा कठोर आत्मानुशासनसे ओतप्रोत नहीं।

नाटकके संगीतकार एम्० ए० बालासन्याल तथा नृत्यरचनाकार वी० पी० बर्मेहस्तेर और एल० एन० ग्रिकुरोवाको भारतीय धुनों और लयोंको संगीतमें अभिव्यक्ति प्रदान करनेके लिये दर्जनों रिकार्ड सुनने पड़े। इस नाटकके सबसे प्रथम प्रोड्यूसर वी० कोलेसाएव थे, लेकिन उनकी मृत्युके पश्चात् गेन्नादी पेच्निकोवने यह स्थान ग्रहण किया, जो रामकी मुख्य भूमिका अदा करते हैं। कलाकारोंने कई मासतक परिश्रमकर भारतीय आचार-व्यवहार नृत्य-शैलियों, भारतीय भाव-भंगिमाओंका अध्ययन और मनन कर इसे पूर्णता प्रदान की। इससे स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है कि नाटकके मञ्चीकरणपर कितनी तैयारियाँ करनी पड़ी होंगी।

संगीत रचना—महान् सोवियत-संगीतकार जिवानी मिखाइलोवने रामायणके संगीतकी रचना की। इस विषयमें उन्होंने अपने उद्‌गार व्यक्त किये हैं। उनके कथनोंका भाव यह है—'रामायण' के विषयपर संगीत रचनेकी इच्छा मेरे मनमें बहुत दिनोंसे थी। महाकाव्योंकी कोटिमें यह रचना अपने वर्णनकी तीव्र भावनात्मकताकी दृष्टिसे विशिष्ट है और किसी साहित्यिक कृतिको संगीतबद्ध करनेमें यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण होती है। किसी अन्य संगीतकारकी तरह इस बातको जाननेके लिये मैं दिलसे यह चाहता था कि सोवियत-श्रोता भारतके शास्त्रीय संगीतकी समृद्धताको पसंद करें, उसका सम्मान करें और उसकी प्रशंसा करें। मुझे प्रसन्नता है कि 'रामायण'की संगीत-रचनामें मुझे सफलता मिली है।

सोवियत-नृत्य-मण्डलीने रूसके अतिरिक्त अबतक जर्मनी, बुलगारिया, कनाडा, अमेरिका, नीदरलैंड आदि देशोंमें रामायणका सफल अभिनय प्रदर्शन कर वहाँके लाखों लोगोंमें रामके प्रति अपनी असीम भक्ति पैदा की है। इस तरह रूसी जनतामें श्रीरामके प्रति अगाध प्रेम और भक्ति है और उनके चरितने उस सुदूर देशकी जनताको भी अत्यधिक प्रभावित और उनके उच्च आदर्शोंपर चलनेके लिये अनुप्राणित किया है।

अकबरके राम-सीय-प्रकारके सिक्के

(श्रीठाकुरप्रसादजी वर्मा)

अकबरने अपने शासन-कालके अन्तिम वर्षमें 'राम-सीय'-प्रकारके सिक्के चलवाये थे। ये सिक्के इस दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं कि इनपर न केवल नागरी अक्षरोंमें 'राम-सीय' शब्द अङ्कित है, बल्कि इनके पुरोभागपर राम और सीताकी आकृतियाँ भी उत्कीर्ण हैं। इसके पूर्व किसी भी मुसलमान शासकने मानव-आकृतियाँ ही नहीं, पशु और पक्षियोंकी आकृतियोंको भी सिक्कोंपर उत्कीर्ण करानेका साहस नहीं किया था। यह 'राम-सीय' मुद्रा इस दृष्टिसे और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती है कि राम और सीताकी आकृतियोंको पुरोभागपर अङ्कित किया गया है, जो सदैव केवल कलमाके लिये ही

सुरक्षित समझा जाता है। यह बात इस तथ्यको उजागर करती है कि अकबरने रामकी आकृतिको पुरोभागपर स्थान देकर उनकी ईश्वरीय महत्ताको स्वीकार किया था।

राम-सीय सिक्के—

इस समय इस प्रकारके केवल तीन सिक्के प्रकाशमें आ सके हैं, जिनमें दो सोनेकी अर्ध मोहरें हैं। इनमेंसे एक प्रिंसेपके संग्रहमें थी जो अब ब्रिटिश म्यूजियम है तथा दूसरी केबिने डि फ्रांसमें संगृहीत है। तीसरा सिक्का चाँदीकी अठन्नी है जिसको लखनऊके जे० के० अग्रवालने प्राप्त किया था और इस समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालयके संग्रहालय भारत-कला-भवनमें है। अभी हालहीमें नागपुरके श्रीप्रशान्त पी० कुलकर्णीने सूचित किया है कि एक अन्य सिक्का जबलपुरके श्रीदिलीपशाहके व्यक्तिगत संग्रहमें है। उपर्युक्त तीन सिक्कोंका विवरण इस प्रकार है।

(१) ब्रिटिश म्यूजियम लन्दनका सिक्का—

धातु—स्वर्ण, भार—७४-०० ग्रेन, आकार—०-८''

पुरोभाग—बिंदु-युक्त वृत्तमें दो आकृतियाँ—(१) एक पुरुष तीन कंगूरेवाला मुकुट पहने, धनुष और बाणसहित; (२) एक नारी जो अपने चेहरेपर घूँघट किये है। लेख—अनुपस्थित।
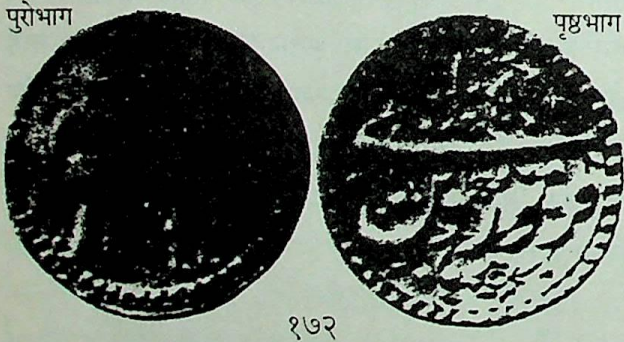
रामसीय सिक्का (स्वर्ण) ब्रिटिश म्यूजियम लन्दन

पृष्ठ-भाग—बिंदुयुक्त वृत्तमें अरबी लेख '५० इलाही फरवरदीन' लतावल्लरीसे अलंकृत (बी० एम० सी०, मुगल्स, पृष्ठ ३४, नं० १७२, प्लेट ५, १७२)।

(२) केबिने डि फ्रांसका सिक्का—

धातु—स्वर्ण, भार और आकार अनुल्लिखित।

पुरोभाग—पूर्ववर्तीकी भाँति किंतु आकृतियोंके सिरके ऊपर नागरी लेख 'राम-सीय'।

पृष्ठ-भाग—पूर्ववर्तीकी भाँति (पी० एम० सी०, खण्ड २ प्लेट २१, २ में चित्रित)।

(३) भारत-कला-भवनका सिक्का—

धातु—चाँदी, भार—८१ ग्रेन, आकार— ७५''

पुरोभाग—बिन्दुयुक्त वृत्तमें दो आकृतियाँ—(१) एक पुरुष-आकृति जिसके बायें हाथमें धनुष है, (२) एक नारी-आकृति। दोनों दाहिनी ओर चलते हुए। धनुर्धरके सिरपर मुकुट, घुटनोंतक लटकता हुआ जामा तथा एक पटका जिसके दोनों सिरे आगे और पीछे लटक रहे हैं, पीठपर बाणोंसे युक्त तरकश, नारीके दाहिने हाथमें फूलोंका एक गुच्छा (?) जो पीछेकी ओर है और दूसरा हाथ सामनेकी ओर है तथा उसमें भी फूलोंका गुच्छा (?) है। वह तंग चोली तथा ढीला लहँगा पहने है जो टखनेतक लंबा है। आकृतियोंके ऊपर नागरी लेख 'राम सी(य)' है।
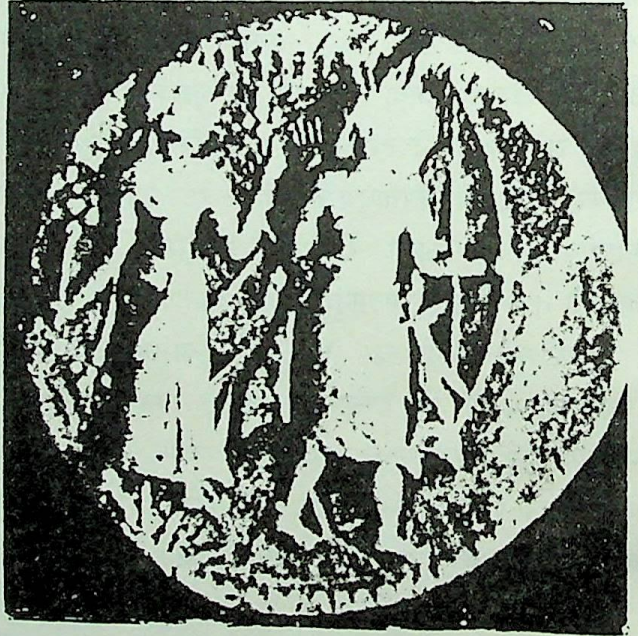
रामसीय सिक्का (रजत) (पुरो भाग) भारत कला भवन

इन सिक्कोंके पुरोभागके सम्बन्धमें यह ध्यान देनेकी बात है कि सोनेके सिक्कोंपर रामको धोती और उत्तरीय तथा सीताको चोली और साड़ी पहने दिखाया गया है जो परम्परागत हिन्दू-वेश है, किंतु चाँदीके सिक्केपर राम और सीता मध्यकालीन पुरुषों और स्त्रियोंके वेशमें हैं। दोनों ही उपप्रकारोंमें सीताको

चूड़ी पहने दिखाया गया है। रामके सिरपर मुकुट इस कालके हिन्दू देवताओंके सिरपर बनाये जानेवाले मुकुट-जैसा ही है।

पृष्ठ-भाग—सादे वृत्तमें और लतावल्लरी-युक्त पृष्ठभूमिमें अरबी लेख 'इलाही अमरदाद' (जे० एन० एस० आई०, वाल्यूम ४, पृ० ६९)।
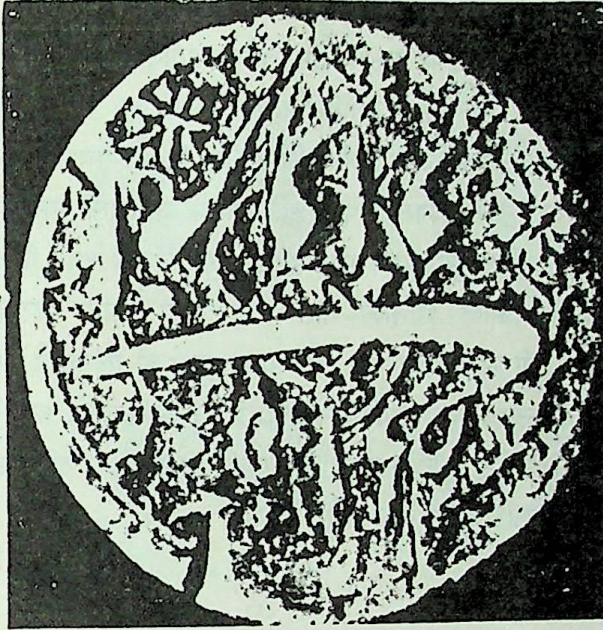
रामसीय सिक्का (रजत) (पृष्ठ भाग) भारत कला भवन

जहाँतक इन सिक्कोंकी प्राप्तिका प्रश्न है सबसे पहले ब्रिटिश म्यूजियमका सिक्का ही प्राप्त हुआ था, जिसके पुरोभागपर किसी भी प्रकारका लेख नहीं है, जिससे उन आकृतियोंकी पहचान की जा सकती। इसी कारण १८९२ में जब स्टेनली लेन-पूलने सबसे पहले इसका वर्णन किया तो स्वभावतः ही इन आकृतियोंके सम्बन्धमें वह दिग्भ्रमित हो गया। उस समय कोई भी इतिहासकार यह सोच भी नहीं सकता था कि कोई मुसलमान शासक, वह कितना ही प्रबुद्ध और उदारमना क्यों न हो, किसी हिन्दू देवताकी आकृतिवाले सिक्कोंको प्रचारित कर सकता है। लेन-पूल लिखता है—'एक अन्य सोनेका सिक्का, जिसपर टकसालका नाम नहीं है, एक मुकुटधारी धनुर्धरकी विचित्र आकृतिसे युक्त है, जिसकी धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ी हुई है और तीरोंसे भरा तरकश है, जिसके पीछे एक नारी है जो अपने चेहरेपर लंबा घूँघट हाथसे पकड़े है। यह बीजापुरके राजाके समर्पण (हिजरी १०१३ सिक्केकी तिथि) को संदर्भित कर सकता है, जिसमें उसने अपनी पुत्रीको अकबरके पुत्र राजकुमार दानियालको दुल्हनके रूपमें दिया था।' लेकिन विन्सेंट स्मिथ इस सुझावपर संदेह प्रकट करते हैं, क्योंकि दानियाल १६०४ ई०के अप्रैल महीनेमें मर चुका था। यह घटना अकबरके शासनके ४९ वें वर्षमें पड़ती है न कि ५० वेंमें। आगे चलकर आर० बी० ह्वाइटहेडको केविने डि फ्रांसमें एक ऐसा ही सिक्का मिला, जिसको उन्होंने अपने पूरक प्लेट-संख्या २१:२ में छापा है और उसमें पुरोभाग-पर नागरी लेख 'राम-सीय' उत्कीर्ण है। इस प्रकार उन्होंने निश्चित रूपसे इन दोनों आकृतियोंकी पहचान राम और सीताके रूपमें की। प्रो० वासुदेवशरण अग्रवालने इनकी पहचान पुनः और जोरदार ढंगसे की, जब उन्होंने चाँदीकी अठन्नीको वर्णित किया। उन्होंने लिखा है कि 'राम-सीय' प्रकारका सोनेका सिक्का अति बिरल मुगल सिक्का है, किंतु चाँदीमें यह अपनी तरहका अकेला है।

रामभक्त अकबर—

अकबरकी हिन्दू-धर्मके प्रति कैसी अभिरुचि थी, इसपर इतिहासकारोंने विशेष प्रकाश डाला है। अकबरने १५९१ ई०में वाल्मीकिरामायणका फारसी अनुवाद बदायूँनीसे करवाया था। इसके अतिरिक्त हिन्दू-धर्मावलम्बी अनेक संतों, विद्वानों और पंडितोंसे उसकी धर्मचर्चा होती रहती थी। इस प्रकार अकबरकी आस्था राम और रामकथापर हो गयी हो तथा वह राम-भक्ति करने लगा हो तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० आनन्दकृष्ण तथा डॉ० निसार अहमद-जैसे विद्वानोंने राम-सीय लेखको अवधी भाषाका मानकर उसपर तुलसीदासके रामचरितमानसका प्रभाव ढूँढ़ने-का प्रयास किया है। किंतु उनका यह अभिमत स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि वे शब्द केवल, अवधी क्षेत्रतक ही सीमित नहीं थे, बल्कि लगभग समस्त उत्तर भारतमें इनका प्रचलन था। वास्तवमें रामभक्ति-आन्दोलन, जो तुलसीदासके बहुत पहलेसे ही उत्तर भारतमें प्रचलित हो गया था, में संतोंने जिस भाषाका प्रयोग किया है, यह उसीका अंश है। तुलसी-दास अकबरके कनिष्ठ समकालीन थे और उनका प्रभाव अकबरपर पड़नेकी सम्भावना बहुत ही कम है। यदि किसी संतका प्रभाव मानना ही हो तो महात्मा अग्रदास ही वह व्यक्ति हो सकते हैं, जिनका प्रभाव अकबरपर पड़ा, यह कहा जा

सकता है। किंतु रामभक्तिकी जो धारा संत रामानन्दने चलायी थी, उसका प्रभाव उन हिन्दू दार्शनिकों और विद्वानोंपर अवश्य पड़ा होगा जो अकबरके निकट सम्पर्कमें आते थे और उन्हींसे अकबरको रामभक्तिकी प्रेरणा भी मिली होगी।

इस प्रकार हम निःसंकोच यह धारणा बना सकते हैं कि अपने जीवनके संध्या-कालमें अकबर हिन्दू-धर्मकी ओर आकृष्ट हुआ और उसके हृदयमें भक्ति-भावना जाग्रत् हुई। इसकी पृष्ठभूमि काफी दिनोंसे बन रही थी। प्रशासनिक कार्योंमें उसने संक्रान्तिके दिनसे प्रारम्भ होनेवाले पञ्चाङ्गको प्रारम्भ किया। अपने शासनके ४५ वें वर्षमें असीरगढ़से बाजके चित्रसे युक्त आधी मुहरका प्रचलन करवाया जो मुस्लिम संसारके सिक्कोंपर जीवधारीका पहला चित्रण था। इसके बाद उसने लगभग ५ वर्षोंतक अपने साथियोंकी प्रति-क्रियाका निरीक्षण किया तथा आश्वस्त हो जानेके बाद अपने शासनके ५० वें वर्षमें हिन्दू देवता राम और सीताके चित्र अपने सिक्कोंपर बनवाये। फरवरदीन ५० वें वर्षका पहला महीना था और सम्भवतः यह वर्षका पहला दिन था जबकि उसने सोनेके 'राम-सीय' सिक्कोंका प्रचलन किया। इसी वर्षके तीसरे महीने (खुरदाद) में उसने बतख प्रकारके सिक्के जारी कराये तथा पाँचवें महीने (अमरदाद) में 'राम-सीय' प्रकारकी चाँदीकी अठन्नी प्रचलित करवायी। यहाँपर यह उल्लेखनीय है कि इसी वर्षके आठवें महीने (अबान) में ६३ वर्षकी आयुमें, सम्भवतः विष देनेके कारण उसकी मृत्यु हो गयी। अपने इन सिक्कोंपर उसने राम और सीताको पूर्ण ईश्वरीय मान्यता दी। इन सभी बातोंको ध्यानमें रखते हुए यह मानना पड़ेगा कि अकबर अपने जीवनके अन्तिम दिनोंमें रामभक्त बन गया था। इस प्रकारकी परिस्थिति सर्वथा अनजानी नहीं है, क्योंकि अनेक मुसलमान भक्त हुए हैं, जिन्होंने इस युगमें हिन्दू देवी-देवताओंके भक्तिके गीत रचे। इनमें उसके स्वयंके दरबारी भी सम्मिलित थे। लेन-पूलने सत्य ही लिखा है कि यदि अकबरके कट्टर प्रतिक्रियावादी प्रपौत्र औरंगजेबने उसकी नीतिको उलट न दिया होता तो भारतीय संस्कृतिका इतिहास और उनका स्वरूप कुछ और ही होता।
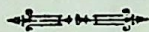
रामटंका

(डॉ॰ श्रीमेजर महेशजी गुप्ता)

रामटंका कोई सिक्के नहीं हैं, किंतु भारतीय मुद्राशास्त्रमें इनका विशिष्ट स्थान है। इन टंकाओंमें भिन्न-भिन्न देवताओंके चित्र उत्कीर्ण रहते हैं। इन टंकाओंके साथ धार्मिक आस्था एवं विश्वास तथा श्रद्धाका एक पवित्र आस्तिक भाव जुड़ा हुआ है। अधिकतर ये पीतलके बने होते हैं, कुछपर चाँदीकी पालिश होती है। कुछ चाँदीके बने होते हैं। सोनेमें ये बहुत ही कम मिलते हैं। इनका आकार सिक्कोंकी तरह गोलाई लिये रहता है और इसके दोनों ओर भगवान्के चित्र और तिथि आदि टंकित रहते हैं। कहीं-कहीं धार्मिक तीर्थ-स्थानोंपर ये आज भी मिला करते हैं। तीर्थयात्री इन्हें खरीद कर अपने घरमें पूजा-स्थलमें या रुपये-पैसेके साथ रख देते हैं। ऐसा विश्वास है कि इन्हें घरमें रखनेसे सभी प्रकारकी सुख-समृद्धि बनी रहती है और कोई रोग-शोक नहीं होते। लोग देवताओंकी मूर्तिकी तरह इनकी पूजा भी करते हैं। बहुत समयसे इनका इसी तरह उपयोग होता रहा है।

प्रायः रामटंकाओंपर एक ओर राम-दरबार और दूसरी ओर श्रीराम-लक्ष्मण बने रहते हैं और उसमें एक तारीख भी टंकित रहती है। जनताकी यह मान्यता है कि ये श्रीरामके समयके सिक्के हैं और हजारों साल पुराने हैं।

यहाँपर श्रीरामसे सम्बद्ध बारह रामटंका प्रकाशित किये जा रहे हैं, जो विभिन्न आकार-प्रकारके हैं—

(१) चाँदीका टंका—इस चाँदीके बने टंकामें अग्रभागमें राम-लक्ष्मण तथा सीता सिंहासनपर आसीन हैं और हनुमान्जी दोनों हाथसे छत्र पकड़े खड़े हैं, चारों ओर देवनागरीमें कुछ लिखा है, किंतु सारे अक्षर कटे हुए हैं। अतः अस्पष्ट हैं।

इस टंकेके पृष्ठ-भागमें राम-लक्ष्मण सामने देखते हुए खड़े हैं, वे बायें हाथमें तीर तथा दाये कंधेपर कमान धारण किये हैं। राम-लक्ष्मण तीर-कमानके साथ ही तलवार और ढाल भी धारण किये हैं। तलवार तथा ढाल लिये हुए रामटंका

अग्रभाग	पृष्ठभाग	अग्रभाग	पृष्ठभाग

१

२

३

४

५

६

७

८

९

१०

११

१२
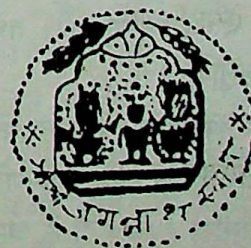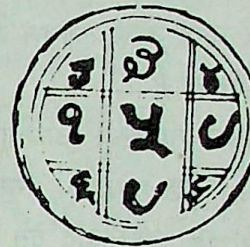
बहुत ही कम दिखायी देते हैं। चारों तरफ देवनागरीमें अधूरे अक्षरोंमें 'राम लक्ष्मण जनक, जय बल हनमनक' (अर्थात् राम लक्ष्मण जानकी जय बोलो हनुमान की) लिखा हुआ है।

(२) चाँदीका रामटंका—इसके अग्रभागमें राम-लक्ष्मण दायें मुँह किये खड़े हैं। बायीं ओर अस्पष्ट कुछ शब्द हैं, पृष्ठ-भागमें राम-सीता कुटीमें बैठे हैं, रामका दाहिना हाथ आशीर्वाद-मुद्रामें उठा है तथा सीता रामके सामने हाथ जोड़े बैठी हैं। दायीं तरफ हनुमान् और बायीं तरफ लक्ष्मण हाथ जोड़े खड़े हैं। ऊपर 'राम-सीता' लिखा है।

(३) चाँदीका रामटंका—इस रामटंकेके अग्रभागमें राम तथा सीता सिंहासनपर बैठे हैं, सीता हाथ जोड़े, गरदन झुकाये रामको नमन कर रही हैं। राम आशीर्वाद देते हुए अपना बायाँ हाथ उठाये हैं। लक्ष्मण बायीं ओर छत्र पकड़े खड़े हैं। दायीं ओर हनुमान् हाथ जोड़े खड़े हैं। नीचे 'राम सात' (अर्थात् राम सीता) लिखा है।

पृष्ठ-भागमें हवामें उड़ते हुए हनुमान्‌को सूर्यको पकड़ते दिखाया गया है। हनुमान्‌के नीचे पेड़-पौधे तथा पहाड़ अङ्कित हैं। ऊपर 'हमान' (अर्थात् हनुमान्) लिखा है।

(४) पीतलका रामटंका—इसके अग्रभागमें नौ खानेमें ९ अङ्क—१ से ९ तक लिखे हैं, जिनका हर दिशामें जोड़ १५ आता है।

पृष्ठ-भागमें राम-दरबारका चित्र है। राम-सीता सिंहासनपर बैठे हैं, ऊपर छत्र है, बायीं ओर लक्ष्मण तथा दायीं ओर भरत और शत्रुघ्न खड़े हैं। नीचे हनुमान् हाथ जोड़े बैठे हैं। अधिकतर रामटंकाओंमें एक ओर राम-दरबार बना रहता है।

(५) पीतलका टंका—इस रामटंकाके अग्रभागमें चौथे पीतलके रामटंकाके पृष्ठ-भागके समान ही चित्र उत्कीर्ण है। पृष्ठ-भागमें राम-लक्ष्मण हाथमें धनुष-बाण लिये खड़े हैं, चारों तरफ देवनागरीमें 'राम-लछमन-जानक जबल हनमानक' (अर्थात् राम लक्ष्मण जानकी जय बोलो हनुमान की) तथा काल्पनिक तारीख ५५१—४० लिखी है।

(६) चाँदीका टंका—इसके अग्रभागमें राम-लक्ष्मण सामने देखते हुए खड़े हैं, रामके हाथमें तीर तथा लक्ष्मणके हाथमें कमान है। नीचे काल्पनिक तारीख १७४० दी है, चारों तरफ देवनागरीमें 'राम-लछमन-जानक जबल हनमनक' लिखा है। पृष्ठ-भागमें 'राम-दरबार' का चित्र उत्कीर्ण है।

(७) पीतलका टंका—इसके अग्रभागमें राम-लक्ष्मण सामने मुँह किये हुए खड़े हैं। रामके हाथमें तीर तथा लक्ष्मणके हाथमें तीर-कमान है। देवनागरीमें 'राम-लछमन जानक जबल हनमनक' लिखा है और तारीख १७४० दी है। पृष्ठ-भागमें 'राम-दरबार' टंकित है।

(८) पीतलका टंका—इसके अग्रभागमें राम-दरबारका चित्र टंकित है तथा ऊपर 'राम राम' लिखा हुआ है और पृष्ठ-भागमें राम-लक्ष्मण सामने मुँह किये हुए खड़े हैं। रामके हाथमें धनुष-बाण और लक्ष्मणके हाथमें केवल धनुष दर्शाया गया है। नीचे काल्पनिक तारीख १७०० (अस्पष्ट) दी है। देवनागरीमें 'राम-लछमन जानक जबल हनमाक' लिखा है।

(९) पीतलका टंका—इसके अग्रभागमें हनुमान्‌जी बायें हाथमें पर्वत उठाये और दायें हाथमें गदा लिये हैं। पूँछ ऊपरकी ओर मुड़ी है, सिरपर मुकुट धारण किये हवामें उड़ते-से अङ्कित किये गये हैं। इनके पाँवके नीचे घास-जैसी कोई वस्तु दिखायी गयी है। देवनागरीमें चारों तरफ 'राम भगत लंका दाहक हनुमान' लिखा है। तारीख ५००० दी है। इसके पृष्ठ-भागमें राम-दरबारका चित्र टंकित है।

(१०) पीतल एवं चाँदीका पत्र चढ़ा रामटंका—इसके अग्रभागमें राम-दरबारका चित्र है तथा पृष्ठ-भागमें हनुमान्‌जी खड़ी अवस्थामें हवामें खड़े हैं। उनके पाँवके नीचे और दोनों ओर पेड़ दीख रहे हैं, दायें हाथमें गदा तथा बायें हाथमें पर्वत उठाये हैं, पूँछ ऊपर मुड़ी हुई है, सिरपर मुकुट धारण किये हैं, देवनागरीमें चारों ओर 'राजा रामसत लछमनक हनमन ज' (अर्थात् राजा राम सीता लक्ष्मण हनुमान्‌की जय) लिखा है।

(११) पीतलका टंका—इसके अग्रभागमें भगवान् चतुर्भुज शिव बाघके चर्मपर पालथी मारे बैठे हुए हैं। दायें हाथमें त्रिशूल, बायें हाथमें डमरू तथा अन्य दो हाथ सीनेपर हैं। सिरकी जटासे गङ्गा निकल रही हैं। गलेमें सर्प, मस्तकपर तीसरा नेत्र है। देवनागरीमें 'शिवाय नमः' जैसा कुछ अस्पष्ट टंकित है। पृष्ठ-भागमें राम-दरबारका चित्र है।

(१२) पीतलका टंका—इसके अग्रभागमें जगन्नाथ,

सुभद्रा और बलराम—ये तीनों सामने मुँह किये खड़े हैं। नीचे देवनागरीमें 'श्री श्री जगन्नाथ स्वामी' टंकित है। पृष्ठ-भागमें राम-दरबार बना हुआ है।

इस प्रकार उपर्युक्त रामटंका अलग-अलग धातुओंमें अलग-अलग समयपर भिन्न-भिन्न धार्मिक स्थानोंसे बनकर निकले हैं। राम-दरबारके साथवाले हनुमान् अयोध्याके हैं और श्रीजगन्नाथवाले दक्षिणके हैं। आशा है, इन टंकाओंके ज्ञानसे उनका महत्त्व समझमें आयेगा और रामोपासना तथा रामभक्तिके विविध आयामों एवं उपायों तथा साधनोंका परिचय प्राप्त होगा।

(डॉ॰ श्रीमती श्यामला गुप्ताके व्यक्तिगत संग्रहसे)

त्रेतामें राम अवतारी, द्वापरमें कृष्णमुरारी

भगवान् श्रीराम जब समुद्र पारकर लंका जानेके लिये समुद्रपर पुल बाँधनेमें संलग्न हुए, तब उन्होंने समस्त वानरोंको संकेत किया कि 'वानरो! तुम सब पर्वतोंसे पर्वत-खण्ड लाओ जिससे पुलका कार्य पूर्ण हो।' आज्ञा पाकर वानरदल भिन्न-भिन्न पर्वतोंपर खण्ड लानेके लिये दौड़ चले और अनेक पर्वतोंसे बड़े-बड़े विशाल पर्वत-खण्डोंको लाने लगे। नल और नील जो इस दलमें शिल्पकार थे, उन्होंने कार्य प्रारम्भ कर दिया। हनुमान् इस वानरदलमें अधिक बलशाली थे। वे भी गोवर्धन नामक पर्वतपर गये और उस पर्वतको उठाने लगे; परंतु अत्यन्त परिश्रम करनेपर भी वे पर्वतराज गोवर्धनको न उठा सके। हनुमान्‌को निराश देखकर पर्वतराजने कहा—'हनुमान्! यदि आप प्रतिज्ञा करें कि भक्तशिरोमणि भगवान् श्रीरामके दर्शन करा दूँगा तो मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूँ।' यह सुनकर हनुमान्‌ने कहा—'पर्वतराज! मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आप मेरे साथ चलनेपर श्रीरामजीका दर्शन कर सकेंगे।' विश्वास प्राप्त कर पर्वतराज गोवर्धन हनुमान्‌जीके करकमलोंपर सुशोभित होकर चल दिये। जिस समय हनुमान्‌जी पर्वतराज गोवर्धनको लेकर व्रजभूमिपरसे आ रहे थे, उस समय सेतु बाँधनेका कार्य पूर्ण हो चुका था और भगवान् श्रीरामने आज्ञा दे दी थी कि 'वानरो! अब और पर्वत-खण्ड न लाये जायँ; जो जहाँपर है, वह वहींपर पर्वत-खण्डोंको रख दे।' आज्ञा पाते ही समस्त वानरोंने जहाँ-के-तहाँ पर्वत-शिलाओंको रख दिया। हनुमान्‌जीने भी आज्ञाका पालन किया और उन्हें पर्वतराज गोवर्धनको वहींपर रखना पड़ा। यह देख पर्वतराजने कहा—'हनुमान्‌जी! आपने तो विश्वास दिलाया था कि मुझे श्रीरामजीका दर्शन कराओगे, पर आप तो मुझे यहींपर छोड़कर चले जाना चाहते हैं। भला कहिये तो सही, अब मैं पतितपावन श्रीरामका दर्शन कैसे कर सकूँगा।' हनुमान्‌जी विवश थे; क्या करते, प्रभुकी आज्ञा ही ऐसी थी। हनुमान्‌जी शोकातुर होकर कहने लगे—पर्वतराज! निराश मत हो, मैं श्रीरामजीके समीप जाकर प्रार्थना करूँगा; आशा है कि दीनदयालु आपको लानेकी आज्ञा प्रदान कर देंगे, जिससे आप उनका दर्शन कर सकेंगे।

इतना कहकर हनुमान्‌जी वहाँसे चल दिये और रामदलमें आकर श्रीरामजीके चरणोंमें उपस्थित हो अपनी 'प्रतिज्ञा' निवेदन की। श्रीरामजीने कहा—'हनुमान्! आप अभी जाकर पर्वतराजसे कहिये कि वह निराश न हों। द्वापरमें कृष्णरूपसे उन्हें दर्शन होगा।' हनुमान्‌जी तुरंत ही पर्वतराज गोवर्धनके पास गये और जाकर बोले—'पर्वतराज! भगवान् श्रीरामजीकी आज्ञा है कि आपको द्वापरमें कृष्ण-रूपसे दर्शन होंगे।'

द्वापर आया। भगवान् श्रीरामने श्रीकृष्णरूप धारणकर व्रजमें जन्म लिया। एक समय देवताओंके राजा इन्द्रने व्रजवासियोंद्वारा अपनी पूजा न पानेके कारण क्रोधातुर हो व्रजको समूल नष्ट करनेका विचार करके मेघोंको आज्ञा दी कि 'आप व्रजमें जाकर समस्त व्रजभूमिको वर्षाद्वारा नष्ट कर दो।' मेघ देवराज इन्द्रकी आज्ञा पाकर व्रजपर मूसलाधार जल बरसाने लगे।

अतिवृष्टिके कारण व्रजमें हाहाकार मच गया। समस्त व्रजवासी इन्द्रके कोपसे भयभीत होकर नन्दबाबाके घरकी ओर दौड़े। भगवान् श्रीकृष्णने कहा—'व्रजवासियो! धैर्य धारण करो, इन्द्रका कोप आपका कुछ न कर सकेगा; आओ, हमारे साथ चलो। भगवान् श्रीकृष्ण गोप तथा व्रजबालाओं-सहित गोवर्धनकी ओर चल दिये। पर्वतराज गोवर्धनको दर्शन देकर अङ्गुलिपर धारण कर लिया और समस्त व्रजवासियोंका भय हर लिया तथा अपने वचन एवं सेवक हनुमान्‌की प्रतिज्ञा भी पूरी की।

नम्र निवेदन और क्षमा-प्रार्थना

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥

अकारण-करुणा-वरुणालय भगवान् श्रीरामके स्वरूपमें जड़-चेतनरूप सम्पूर्ण चराचर जगत्को सर्वप्रथम प्रणाम करते हुए आज हम पाठकोंकी सेवामें इस वर्ष 'कल्याण'के विशेषाङ्कके रूपमें 'श्रीरामभक्ति-अङ्क' प्रस्तुत कर रहे हैं।

श्रीराम भारतीय संस्कृतिके प्रतीक हैं और भारतवासियोंके जीवन हैं। श्रीरामको परब्रह्मका अवतार माना गया है, जो इस जगत्में मर्यादाओंकी रक्षाके लिये अवतरित हुए। सदाचार-संस्थापन और धर्मसंरक्षण ही उनका मुख्य उद्देश्य था। वास्तवमें श्रीरामका जीवन ही भारतकी संस्कृति है। इसी कारण भगवान् श्रीरामकी कथाका प्रचार-प्रसार और विस्तार भारतीय जन-मानसमें सर्वाधिकरूपसे होता रहा है। वेद, पुराण और इतिहासमें भगवान् श्रीरामकी कथाओं और लीलाओंका वर्णन सर्वत्र व्याप्त है। उनके जीवन-चरित्रकी घटनाएँ, लीलास्थल, लक्षण और उनके चिह्न, जिनका वर्णन शास्त्रोंमें मिलता है, वे आज भी उपलब्ध हैं, इसीलिये भगवान् श्रीरामका अवतार, उनकी लीलाएँ और उनकी कथाएँ कपोलकल्पित नहीं, बल्कि वास्तविक हैं और भारतीय जन-मानसकी सर्वाधिक श्रद्धाकी प्रतीक हैं।

श्रीराम परिपूर्णतम ईश्वर तो हैं ही, साथ ही पूर्ण मानव भी हैं। उनके लीलाचरित्रमें जैसे एक ओर भगवत्ताका अशेष वैचित्र्यमय लीला-विलास है, वैसे ही दूसरी ओर मानवताका परमोत्कर्ष प्रकाश है, अनन्त ऐश्वर्यके साथ अपरिसीम माधुर्य, अनन्तवीर्यके साथ मुनि-मन-मोहन अनुपम नित्य-नव-सौन्दर्य, वज्रवत् न्याय-कठोरताके साथ कुसुमवत् प्रेम-कोमलता, समस्त विषमताओंके साथ नित्य-सहज-समता—इस प्रकार अगणित परस्पर विरोधी भावों और गुणोंका युगपद् विलास है।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामने भारतकी इस पवित्र भूमिपर अवतरित होकर समग्र भारतीय संस्कृतिको अध्यात्मभावोंसे अनुप्राणित कर दिया है। केवल भारतकी राष्ट्रिय-सीमाके अंदर ही नहीं, किसी भी देशमें, जहाँ भी भारतीय संस्कृतिने अपना प्रभाव-विस्तार किया, सर्वत्र ही श्रीराम और श्रीरामकी लीलाकथाने जनताके हृदय-पटलपर अधिकार-स्थापन किया और ईश्वरको मनुष्यके अति समीप लाकर उपस्थित कर दिया।

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामके गुण और चरित्र इतने प्रभावपूर्ण हैं कि वे सम्पूर्ण प्रजाओंपर अपनी अमिट छाप छोड़ते हैं। इसीलिये रामराज्य सुख-शान्तिका एक आदर्श प्रतीक है। रामराज्यके सम्बन्धमें कहा गया है कि—

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग॥
दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज नहिं काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीती॥

× × ×

राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥
अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा। सब सुंदर सब बिरुज सरीरा॥
नहिं दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहिं कोउ अबुध न लच्छन हीना॥
सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनग्य पंडित सब ग्यानी। सब कृतग्य नहिं कपट सयानी॥

सब लोग अपने-अपने वर्णाश्रमके अनुकूल वेदमार्गपर चलते हैं और सुख पाते हैं। भय, शोक, रोग तथा दैहिक, दैविक और भौतिक ताप कहीं नहीं है। राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ-मोह, झूठ-कपट, प्रमाद-आलस्य आदि दुर्गुण देखनेको भी नहीं मिलते। सब लोग परस्पर प्रेम करते हैं और स्वधर्ममें दृढ़ हैं। धर्मके चारों चरणों—सत्य, शौच, दया और दानसे जगत् परिपूर्ण है। स्वप्नमें भी कहीं पाप नहीं है। स्त्री-पुरुष सभी रामभक्त हैं और सभी परम गतिके अधिकारी हैं। प्रजामें न छोटी उम्रमें किसीकी मृत्यु होती है, न कोई पीड़ा है, सभी सुन्दर और नीरोग हैं। दरिद्र, दुःखी, दीन और मूर्ख कोई भी नहीं है। सभी नर-नारी दम्भरहित, धर्मपरायण, अहिंसापरायण, पुण्यात्मा, चतुर, गुणवान्, गुणोंका आदर करनेवाले, पण्डित, ज्ञानी और कृतज्ञ हैं।

सभी उदार, परोपकारी, दूसरोंकी सेवामें रत और तन-मन-वचनसे एकपत्नीव्रती हैं, स्त्रियाँ सभी पतिव्रता हैं। ईश्वरकी भक्ति और धर्ममें सभी नर-नारी ऐसे संलग्न हैं मानो भक्ति और धर्म साक्षात् मूर्तिमान् होकर उनमें निवास कर रहे हों। पशु-पक्षी सभी सुखी और सुन्दर हैं। भूमि सदा हरी-भरी रहती है और वृक्षादि सदा फले-फूले रहते हैं। सूर्य-चन्द्रमादि देवता बिना ही माँगे समस्त सुखदायी वस्तुएँ प्रदान करते हैं। सारे देशमें सुख-सम्पत्तिका साम्राज्य छाया रहता है। श्रीसीताजी और तीनों भाई तथा सारी प्रजा श्रीरामकी सेवामें ही अपना सौभाग्य मानते हैं। और श्रीरामजी सदा उनके हितमें लगे रहते हैं। रामराज्यकी यह व्यवस्था महान् आदर्श है। आज भी संसारमें जब कोई किसी राज्यकी प्रशंसा करता है तो वह सबसे ऊँची प्रशंसामें यही कहता है कि बस, वहाँ तो 'रामराज्य' है।

जिनके गुणोंसे प्रभावित राज्यमें प्रजा भी इतनी गुणवान् हो, उनके अपने गुण और चरित्र कैसे होंगे, इसका अनुमान करते ही

हृदय भक्तिसे गद्गद हो उठता है। भगवान्‌के अनन्त गुणों और चरित्रोंका जरा-सा भी स्मरण-मनन महान् कल्याणकारी और परम पावन है।

वास्तवमें सदाचार, संयम, स्वार्थत्याग, माता-पिता एवं अन्य गुरुजनोंकी सेवा और उनका सम्मान, परस्पर सौहार्द तथा प्राणिमात्रमें भगवद्बुद्धिकी भावना और उनकी सेवा भारतीय धर्म और संस्कृतिके आधार-स्तम्भ हैं। वर्तमान युगमें इन सभी आदर्श गुणोंका जगत्‌में सोचनीय ह्रास हो रहा है, सर्वत्र मर्यादाहीनता, उच्छृङ्खलता, अनाचार, दुराचार, अत्याचार, भ्रष्टाचार एवं व्यभिचारका बोलबाला है। सत्यनिष्ठा, ब्रह्मचर्य एवं मर्यादित जीवनका लोप-सा हो रहा है। भोगलिप्सा अमर्यादित रूपसे बढ़ रही है। परस्पर विद्वेष तथा कलह, परस्वापहरण, मुकदमेबाजी, चोरी-डकैती, मार-काट, जीव-हिंसा, घूसखोरी एवं स्वार्थपरायणता सीमाको पार कर चुके हैं। नवयुवकों एवं विद्यार्थियोंमें अनुशासनहीनता, गुरुजनोंके प्रति अवज्ञा एवं उद्दण्डता स्वभावगत-सी हो गयी है। आये दिन प्रकृतिके प्रकोपका शिकार बनना पड़ता है। इस सोचनीय ह्रासकी गति अवरुद्ध हो और हम मानव-जीवनके परम उद्देश्यको समझकर इसकी उपलब्धिके लिये प्रयत्नशील हों और मानव होकर मानव होनेकी योग्यता अर्जित करें—इसके लिये आवश्यकता है कि भगवान् श्रीरामके आदर्श चरित्र और लीलाकथाका स्मरण, चिन्तन एवं मनन तथा पठन-पाठन किया जाय। भगवान् श्रीराम भारतीय अध्यात्म, धर्म और संस्कृतिके आधार-स्तम्भ हैं और उनकी आराधना प्रायः प्रत्येक आस्तिकके घरमें होती है। इतना ही नहीं, भगवान् श्रीरामको जो व्यक्ति भगवान्‌के रूपमें स्वीकार नहीं कर पाते, वे भी उनके आदर्श गुणों और मर्यादित गुणोंके प्रति नतमस्तक हैं।

अतः इस पुनीत उद्देश्यको दृष्टिमें रखकर ही 'श्रीरामभक्ति-अङ्क'के प्रकाशनका निर्णय लिया गया। भगवान् श्रीरामकी अनन्त अपरिसीम अनुकम्पासे इस अङ्कमें भगवान् श्रीराम, जो परात्पर 'ब्रह्म' हैं, निर्गुण-निराकार और सगुण-साकार हैं, मर्यादा-संस्थापक तथा संरक्षक महापुरुष हैं, जो 'महामानव' हैं, आदर्श राजा हैं—इतना ही नहीं, जो सर्वकारणकारण हैं, जिनसे सब उत्पन्न हैं, जिनमें सब स्थित हैं, जिनमें सब कुछ समाया हुआ है तथा जिनके अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है, उन्हीं भगवान् श्रीराम और उनकी अभिन्ना शक्ति भगवती श्रीसीताके नाम, स्वरूप, लीला-धाम, आदर्श गुण, प्रभाव एवं महत्त्व आदिका तात्त्विक विवेचन तो विस्तारसे हुआ ही है, इसके साथ ही श्रीरामभक्ति एवं रामोपासनाके विविध स्वरूपका विवेचन, श्रीरामभक्त और उपासकोंकी कथाएँ तथा श्रीरामजन्मभूमिकी महिमा और श्रीरामकथाकी व्यापकताका दिग्दर्शन भी कराया गया है। अनन्तकालसे विविध रामायणोंमें, पुराणोंमें तथा ग्रन्थोंमें रामकथाका विस्तार प्राप्त होता है। जिनमें कल्पभेदके कारण कुछ वैभिन्न्य भी दीखता है। इसीलिये कहा गया है—***'रामायन सत कोटि अपारा।'*** तदनुसार इस अङ्कमें विभिन्न रामायणों, पुराणों तथा ग्रन्थोंकी रामकथाओंको भी यथासम्भव प्रस्तुत करनेका प्रयास किया गया है। देशके विभिन्न क्षेत्रोंमें एवं विदेशोंमें रामकथाकी व्यापकता दिखायी पड़ती है, जिसका विवेचन भी इसमें समाहित करनेका प्रयत्न किया गया है।

'श्रीरामभक्ति-अङ्क'के लिये रामभक्तों, उपासकों तथा लेखक महानुभावोंने उत्साहपूर्वक जो सहयोग प्रदान किया है, वह अत्यन्त सराहनीय और अनुपम है। हमें आशा नहीं थी कि वर्तमान समयमें श्रीरामभक्तिसे सम्बन्धित उच्चकोटिके लेख सुलभ हो सकेंगे, किंतु भगवत्कृपासे इतने लेख और इतनी सामग्रियाँ प्राप्त हो गयीं कि उन सबको एक अङ्कमें समायोजित करना सम्भव नहीं था। फिर भी विषयकी सर्वाङ्गीणतापर ध्यान रखते हुए अधिकतम सामग्रियोंका संयोजन करनेका नम्र प्रयत्न अवश्य किया गया। मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् श्रीसीतारामके विशिष्ट उपासक, भक्त, संत और विद्वान् जो आज हमारे बीच नहीं हैं, उन महानुभावोंमेंसे कतिपयके अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख भी प्राचीन अङ्कोंसे संगृहीत कर लिये गये हैं, जिससे हमारे पाठकोंको उन विशिष्ट संत महानुभावोंके विचारोंका भी लाभ प्राप्त हो सके। उन लेखक महानुभावोंके हम अत्यधिक कृतज्ञ हैं, जिन्होंने कृपापूर्वक अपना अमूल्य समय लगाकर श्रीरामसे सम्बन्धित सामग्री तैयार कर यहाँ प्रेषित की है। हम उन सबकी सम्पूर्ण सामग्रीको इस विशेषाङ्कमें स्थान न दे सके इसका हमें खेद है, इसमें हमारी विवशता ही कारण है, क्योंकि हम निरुपाय थे। इनमेंसे कुछ तो एक ही विषयपर अनेक लेख होनेके कारण नहीं छप सके तथा कुछ विचारपूर्ण अच्छे लेख विलम्बसे आये, जिनमेंसे कुछ लेखोंको स्थानाभावके कारण पर्याप्त संक्षिप्त करना पड़ा और कुछ नहीं भी दिये जा सके। यद्यपि साधारण अङ्कोंमें इनमेंसे कुछ अच्छे लेखोंको देनेका प्रयास किया जा सकता है, फिर भी बहुतसे लेख अप्रकाशित ही रह सकते हैं, इसके लिये हम लेखक महानुभावोंसे हाथ जोड़कर विनीत क्षमा-प्रार्थी हैं।

हमारे कुछ पाठक महानुभावोंकी शिकायत है कि विशेषाङ्कके साथ अधिक परिशिष्टाङ्क देनेसे साधारण अङ्कोंकी सामग्री कम हो जाती है, इसलिये इस वर्ष विषय और सामग्रीकी अधिकता होते हुए भी केवल दूसरे मासका एक अङ्क परिशिष्टाङ्कके रूपमें साथमें दिया जा रहा है। भगवत्कृपासे विशेषाङ्कमें यथासाध्य रामभक्तिसे सम्बन्धित सम्पूर्ण सभी विषयोंके समायोजन करनेका प्रयास किया गया है।

हमें अपने पाठकोंको यह बताते हुए हर्षका अनुभव होता है कि इस वर्षसे साधारण मासिक अङ्कोंकी पृष्ठ-संख्या ४० से

बढ़ाकर ४८ कर दी गयी है, जिससे आपको अब पहलेकी अपेक्षा कुछ अधिक सामग्री प्राप्त हो सकेगी।

प्रसन्नताकी बात है कि 'कल्याण'के ग्राहक इधर कुछ वर्षोंसे बढ़ रहे हैं। पिछले वर्ष लगभग २० हजार ग्राहकोंकी वृद्धि हुई। इसलिये विशेषाङ्कके दो बार संस्करण पुनः छापने पड़े, फिर भी सम्पूर्ण माँग पूरी न की जा सकी। हम भी 'कल्याण'का प्रकाशन-वितरण अधिक संख्यामें करना चाहते हैं, जिससे अधिकाधिक लोग लाभान्वित हो सकें तथा सर्वसाधारणकी आध्यात्मिक रुचिमें वृद्धि हो, पर इस कार्यमें आपके सहयोगकी भी अत्यधिक आवश्यकता है। हम यह चाहते हैं कि प्रत्येक पाठक 'कल्याण'का कम-से-कम एक ग्राहक अवश्य बनाये। इससे आप भी इस आध्यात्मिक पत्रिकाके प्रचार-प्रसारमें सहायक हो सकेंगे।

अब हम अपने उन सभी पूज्य आचार्यों, परम सम्मान्य पवित्र-हृदय संत-महात्माओं, साधक-भक्तों, विद्वान् लेखक महानुभावोंके श्रीचरणोंमें श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं, जिन्होंने विशेषाङ्ककी पूर्णतामें किंचित् भी योगदान किया है। भक्तिभावों और सद्‌विचारोंके प्रचार-प्रसारमें वे ही मुख्य निमित्त भी हैं, क्योंकि उन्हींके सद्भावपूर्ण एवं उच्च विचारपूर्ण लेखोंसे 'कल्याण'को सदा शक्तिस्रोत प्राप्त होता रहता है। हम अपने विभागके तथा प्रेसके अपने उन सभी सम्मान्य साथी-सहयोगियोंको भी प्रणाम करते हैं, जिनके स्नेहभरे सहयोगसे यह पवित्र कार्य सम्पन्न हो सका है। हम अपनी त्रुटियों तथा व्यवहार-दोषके लिये उन सबसे क्षमा-प्रार्थी हैं।

'श्रीरामभक्ति-अङ्क'के सम्पादनमें जिन भक्तों, उपासकों, संतों और विद्वान् लेखकोंसे हमें सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, उन्हें हम अपने मानस-पटलसे विस्मृत नहीं कर सकते। सर्वप्रथम मैं समादरणीय पं० श्रीलालबिहारीजी शास्त्री तथा पं० श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामीके प्रति हृदयसे आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने विभिन्न रामायणोंकी रामकथाओंके संकलनमें अपना योगदान किया। इसके साथ ही मैं डॉ० श्रीभगवतीप्रसादसिंहजीका विशेष आभारी हूँ, जिनके प्रयाससे हमें कतिपय रामभक्तोंकी गाथाएँ उपलब्ध हो सकीं। 'गोधन'के सम्पादक श्रीशिवकुमारजी गोयल तथा अन्य कतिपय महानुभावोंने भी इस कार्यमें विशेष सहयोग प्रदान किया, जिनके प्रति हम आभार व्यक्त करते हैं। अपने सम्पादकीय विभागके वयोवृद्ध विद्वान् पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा तथा कुछ अन्य सहयोगियोंके अथक परिश्रमसे ही यह विशेषाङ्क इस रूपमें प्रस्तुत हो सका है। इसके सम्पादन, प्रूफ-संशोधन, चित्र-निर्माण आदि कार्योंमें जिन-जिन लोगोंसे हमें सहायता मिली है, वे सभी हमारे अपने हैं, उनको धन्यवाद देकर उनके महत्त्वको हम घटाना नहीं चाहते। वास्तवमें 'कल्याण'का कार्य भगवान्‌का कार्य है, अपना कार्य भगवान् स्वयं करते हैं, हम तो केवल निमित्त मात्र हैं।

वस्तुतः रघुकुलभूषण भगवान् श्रीरामचन्द्रजीके समान मर्यादारक्षक आजतक कोई दूसरा हुआ नहीं। श्रीराम साक्षात् पूर्ण परमात्मा हैं, वे धर्मकी रक्षा और लोगोंके उद्धारके लिये ही अवतीर्ण हुए; परंतु उन्होंने निरन्तर स्वयंको एक सदाचारी आदर्श मानवके रूपमें ही प्रस्तुत किया। उनके आदर्श लीला-चरित्रोंके पढ़ने, सुनने और स्मरण करनेसे हृदयमें अत्यन्त पवित्र भावोंकी लहरें उठने लगती हैं और मन मुग्ध हो जाता है। उनके प्रत्येक कर्म अनुकरण करने योग्य हैं। श्रीराम सद्गुणोंके समुद्र हैं। सत्य, सौहार्द, दया, क्षमा, मृदुता, धीरता, वीरता, गम्भीरता, पराक्रम, निर्भयता, विनय, शान्ति, तितिक्षा, उपरति, संयम, निःस्पृहता, नीतिज्ञता, तेज, प्रेम, त्याग, मर्यादा-संरक्षण, एकपत्नीव्रत, प्रजारञ्जकता, ब्राह्मण-भक्ति, मातृपितृभक्ति, गुरुभक्ति, भ्रातृप्रेम, मैत्री, शरणागतवत्सलता, सरलता, व्यवहार-कुशलता, प्रतिज्ञा-पालन, दुष्टदलन, साधुरक्षण, निर्वैरता, लोकप्रियता, अपिशुनता, बहुज्ञता, धर्मज्ञता, धर्मपरायणता आदि अनन्त गुणोंका मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराममें समावेश था। जो संसारके किसी एक व्यक्तिमें प्राप्त होना सम्भव नहीं है। माता-पिता, बन्धु-मित्र, स्त्री-पुत्र, सेवक-प्रजा आदिके साथ उनका जैसा असाधारण आदर्श बर्ताव था, उसे स्मरण करते ही मन आनन्दमग्न हो जाता है। श्रीराम-जैसी लोकप्रियता कहीं देखनेमें नहीं आती। उनकी लीलाके समय कोई ऐसा प्राणी नहीं था, जो श्रीरामके प्रेमपूर्ण मधुर बर्तावसे मुग्ध न हो गया हो।

इस बार 'श्रीरामभक्ति-अङ्क'के सम्पादन-कार्यके अन्तर्गत अनन्त सद्गुणोंसे सम्पन्न श्रीमर्यादापुरुषोत्तमके चिन्तन-मनन और स्मरणका सौभाग्य निरन्तर प्राप्त होता रहा है, यह हमारे लिये विशेष महत्त्वकी बात थी, हमें आशा है कि इस विशेषाङ्कके पठन-पाठनसे हमारे सहृदय पाठकोंको भी इस पवित्र संयोगका लाभ अवश्य प्राप्त होगा।

अन्तमें हम अपनी त्रुटियोंके लिये आप सबसे क्षमा-प्रार्थना करते हुए दीनवत्सल अकारण-करुणा-वरुणालय विश्वात्मा प्रभुके श्रीचरणोंमें प्रणतिपूर्वक निवेदन करते हैं—

सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी॥

—राधेश्याम खेमका

सम्पादक

गीताप्रेस, गोरखपुरके प्रकाशनोंका सूचीपत्र

ध्यान देने योग्य कुछ आवश्यक बातें

(१) पुस्तकोंके आर्डरमें पुस्तकका कोड नं०, नाम, मूल्य तथा मँगानेवालेका पूरा पता, डाकघर, जिला, पिन कोड आदि हिन्दी या अंग्रेजीमें सुस्पष्ट लिखें। पुस्तकें यदि रेलसे मँगवानी हों तो निकटतम रेलवे-स्टेशनका नाम अवश्य लिखना चाहिये।

(२) कम-से-कम रु० ५००.०० मूल्यकी कुल पुस्तकोंके आर्डरपर डिस्काउन्ट देनेकी व्यवस्था है। डिस्काउन्टकी दर मूल्यके बाद △ चिह्नवाली पुस्तकोंपर ३०% एवं□ चिह्नवाली पुस्तकोंपर १५% है। अन्य खर्च—पैकिंग, रेलभाड़ा आदि अतिरिक्त देय होगा। १०००.०० मूल्यसे अधिककी पुस्तकें एक साथ चलान करनेपर पैकिंग-खर्च नहीं लिया जाता तथा रेलभाड़ा बाद दिया जाता है।

(३) डाकसे भेजी जानेवाली पुस्तकोंपर कम-से-कम ५% (न्यूनतम ५० पैसे) पैकिंग-खर्च, अंकित डाकखर्च तथा रजिस्ट्री/वी०पी० खर्च पुस्तकोंके मूल्यके अतिरिक्त देय है। डाकसे शीघ्र एवं सुरक्षित मिलनेके लिये वी० पी०/रजिस्ट्रीसे पुस्तकें मँगवायें। रु० २००.०० से अधिक मूल्यकी पुस्तकोंके साथ अग्रिम राशि भेजनेकी कृपा करें।

(४) सूचीमें पुस्तकोंके मूल्यके सामने वर्तमानमें लगनेवाला साधारण डाकखर्च (बिना रजिस्ट्री-खर्चके) ही अंकित है। बड़ी पुस्तकोंको रजिस्ट्री/वी० पी० पी०से ही मँगाना उचित है। वर्तमानमें अंकित डाकखर्चके अतिरिक्त रजिस्ट्री-खर्च रु० ६.०० प्रति पैकेट (५ किलो वजनतक) दरसे लगता है।

(५) 'कल्याण' मासिक या उसके विशेषाङ्कके साथ पुस्तकें नहीं भेजी जा सकतीं। अतएव पुस्तकोंके लिये गीताप्रेस पुस्तक-विक्रय-विभागके पतेपर 'कल्याण'के लिये 'कल्याण'-कार्यालय, पो० गीताप्रेसके पतेपर अलग-अलग आर्डर भेजना चाहिये। सम्बन्धित राशि भी अलग-अलग भेजना ही उचित है।

(६) आजकल डाकखर्च बहुत अधिक लगता है। अतः पुस्तकोंका आर्डर देनेसे पहले स्थानीय पुस्तक-विक्रेतासे सम्पर्क करें। इससे समय तथा धनकी बचत हो सकती है।

(७) विदेशोंमें निर्यातके मूल्य तथा नियमादिकी जानकारी अलग सूचीपत्रमें उपलब्ध है।

विशेष—**जो पुस्तकें इस समय तैयार नहीं हैं उनके मूल्य इस सूचीपत्रमें अङ्कित नहीं हैं; अतएव कृपया उन्हें बादमें मँगायें। पुस्तकोंके मूल्य, डाकखर्च आदिमें परिवर्तन होनेपर परिवर्तित राशि देय होगी।**

व्यवस्थापक—**गीताप्रेस, गोरखपुर-२७३००५ फोन नं० (०५५१) ३३४७२१**

पुस्तक-सूची

श्रीमद्भगवद्गीता

कोड		मूल्य	डाकखर्च
	गीता-तत्त्व-विवेचनी—(टीकाकार-श्रीजयदयालजी गोयन्दका) गीता-विषयक २५१५ प्रश्न और उनके उत्तर-		
1	रूपमें विवेचनात्मक हिन्दी टीका, सचित्र, बृहदाकार	६०.०० □	१९.००
2	,, ,, राजसंस्करण	३०.०० □	९.००
3	,, ,, सामान्य संस्करण	२०.०० □	८.००
4	,, ,, गुटका बाइबल पेपर	१५.०० □	७.००
457	,, ,, अंग्रेजी अनुवाद	२५.०० □	८.००
	गीता-साधक-संजीवनी—(टीकाकार स्वामी श्रीरामसुखदासजी) गीताके मर्मको समझने-हेतु व्याख्यात्मक शैली एवं सरल, सुबोध भाषामें		
5	हिन्दी टीका बृहदाकार, सचित्र, सजिल्द	८०.०० □	२२.००
6	,, ,, राजसंस्करण	५०.०० □	१२.००
462	,, ,, साधारण संस्करण	३५.०० □	११.००
512	,, ,, पाकेट साइज (दो खण्डोंमें)	४०.०० □	५.००
7	,, ,, मराठी अनुवाद	६०.०० □	१०.००
467	,, ,, गुजराती अनुवाद	६०.०० □	१०.००
458	,, ,, अंग्रेजी अनुवाद	३२.०० □	८.००
585	,, ,, अंग्रेजी (दो खण्डोंमें)	४०.०० □	५.००
	गीता-दर्पण—(स्वामी रामसुखदासजीद्वारा गीताके तत्त्वोंपर प्रकाश, गीताके प्रधान विषयों-पर लेख, गीता-व्याकरण और छन्द-		
8	सम्बन्धी गूढ़ विवेचन सचित्र, सजिल्द	२५.०० □	५.००
504	,, ,, (मराठी अनुवाद) ,,	२०.०० □	५.००
556	,, ,, (बँगला अनुवाद) ,,	२५.०० □	५.००
468	,, ,, (गुजराती अनुवाद) ,,	□	
493	**गीता-दर्पण**— (अंग्रेजी पाकेट साइज) ,,	२०.०० □	२.००
10	**गीता-शांकर-भाष्य**—	३०.०० □	६.००
581	,, **रामानुज-भाष्य**—	२५.०० □	५.००
	गीता-चिन्तन—श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दारके गीता-विषयक लेखों, विचारों, पत्रों		
11	आदिका संग्रह	१५.०० □	३.००
	गीता—मूल, पदच्छेद, अन्वय, भाषा-टीका, टिप्पणी-प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं 'त्यागसे		
17	भगवत्प्राप्ति' लेखसहित, सचित्र, सजिल्द	६.५० □	३.००
12	,, (गुजराती)	१५.०० □	४.००
13	,, (बँगला)	१०.०० □	४.००
14	,, (मराठी)	१५.०० □	४.००
	गीता—प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित, सजिल्द,		
16	मोटे अक्षरोंमें	१०.०० □	३.००
15	,, (मराठी अनुवाद)	१५.०० □	३.००
	,, भाषाटीका, टिप्पणी-प्रधान विषय		
18	मोटा टाइप	७.५० □	२.००
502	**गीता**—मोटा टाइप, सजिल्द	१०.०० □	३.००
19	**गीता**—केवल भाषा	४.०० □	१.००
20	**गीता**—भाषा-टीका	२.५० □	१.००
455	,, ,, (अंग्रेजी)	२.५० □	१.००
	श्रीपञ्चरत्न गीता—गीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्रमोक्ष		
21	(मोटे अक्षरोंमें)	८.०० □	२.००
22	**गीता**—मूल, मोटे अक्षरोंवाली	५.०० □	२.००
538	,, मूल, मझली (सजिल्द)	६.०० □	२.००

कोड		मूल्य	डाकखर्च
23	,, मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	१.०० □	१.००
488	**नित्यस्तुतिः**—गीता मूल, विष्णुसहस्रनाम-सहित	२.५० □	१.००
24	**गीता**—ताबीजी (माचिस आकार)	१.०० □	१.००
566	**गीता**—ताबीजी एक पन्नेमें सम्पूर्ण गीता (कम-से-कम ५०० प्रति)	०.१० □	
288	**गीताके कुछ श्लोकोंपर विवेचन**—	०.७५ △	१.००
289	**गीता-निबन्धावली**—	०.७५ △	१.००
297	**गीतोक्त संन्यास या सांख्ययोगका स्वरूप**—	०.७५ △	१.००
561	**गीतोक्त कर्मयोग, भक्तियोग और ज्ञानयोगका रहस्य** —	△	
	गीता-माधुर्य—स्वामी रामसुखदासजीद्वारा		
388	सरल प्रश्नोत्तर-शैलीमें (हिन्दी)	६.०० △	१.००
389	,, ,, (तमिल)	८.०० △	२.००
390	,, ,, (कन्नड़)	४.५० △	१.००
391	,, ,, (मराठी)	६.०० △	१.००
392	**गीता-माधुर्य**—(गुजराती)	५.०० △	१.००
393	,, ,, (उर्दू)	६.०० △	२.००
394	,, ,, (नेपाली)	५.०० △	२.००
395	,, ,, (बँगला)	५.०० △	१.००
487	,, ,, (अंग्रेजी)	६.०० △	१.००
470	**गीता**—रोमन गीता मूल, श्लोक एवं अंग्रेजी अनुवाद	६.०० △	२.००
503	**गीता-दैनन्दिनी (1994)**–पुस्तकाकार-प्लास्टिक कवर	२०.०० □	३.००
506	,, ,, पाकेट साइज	८.०० □	२.००
464	**गीता-ज्ञान-प्रवेशिका**—गीता-व्याकरणका पूर्ण विवरण	१०.०० □	२.००
508	**गीता सुधा तरंगिनी**—गीताका पद्यानुवाद	४.०० □	१.००
	रामायण		
237	**जय श्रीराम**—चित्र	१०.०० □	
	श्रीरामचरितमानस—बृहदाकार, मोटा टाइप, सजिल्द,		
80	आकर्षक आवरण, राजसंस्करण	१३०.०० □	१९.००
463	,, ,, बृहदाकार, मोटा टाइप, सजिल्द	□	
81	,, ,, सटीक, मोटा टाइप, आकर्षक आवरण	६०.०० □	१०.००
79	**रामचरितमानस**—(बिना आवरण)	□	
82	,, ,, मझला साइज, सजिल्द	२५.०० □	५.००
456	,, ,, अंग्रेजी अनुवाद-सहित	४५.०० □	९.००
83	,, ,, मूलपाठ, मोटे अक्षरोंमें, सजिल्द	३०.०० □	६.००
84	,, ,, मूल, मझला साइज	१६.०० □	४.००
85	,, ,, मूल, गुटका	१०.०० □	२.००
94	,, ,, बालकाण्ड सटीक	१०.०० □	२.००
95	,, ,, अयोध्याकाण्ड—सटीक	८.०० □	१.००
96	,, ,, अरण्यकाण्ड— ,,	२.०० □	१.००
97	,, ,, किष्किन्धाकाण्ड— ,,	१.५० □	१.००
98	,, ,, सुन्दरकाण्ड— ,,	२.२५ □	१.००
101	,, ,, लंकाकाण्ड— ,,	३.५० □	१.००
102	,, ,, उत्तरकाण्ड— ,,	४.५० □	१.००
99	,, ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, गुटका	१.२५ □	१.००
100	,, ,, सुन्दरकाण्ड—मूल, मोटा टाइप	२.०० □	१.००
	मानसपीयूष—(श्रीरामचरितमानसपर सुप्रसिद्ध तिलक, टीकाकार—श्रीअञ्जनीनन्दनशरण		
86	(सातों खण्ड)	□	
87	,, ,, बालकाण्ड खण्ड—१	□	
88	,, ,, ,, खण्ड—२	□	

कोड		मूल्य	डाकखर्च
89	**मानसपीयूष**— खण्ड—३	□	
90	,, ,, अयोध्याकाण्ड खण्ड—४	□	
91	,, ,, अरण्य, किष्किन्धाकाण्ड खण्ड—५	□	
92	,, ,, सुन्दर तथा लंकाकाण्ड खण्ड—६	□	
93	,, ,, उत्तरकाण्ड खण्ड—७	□	
75	**श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण**—सटीक, सजिल्द (प्रथम खण्ड)	४५.०० □	८.००
76	,, ,, (द्वितीय खण्ड)	४५.०० □	८.००
77	,, ,, केवल भाषा	५५.०० □	१०.००
583	,, ,, (मूलमात्रम्)	६५.०० □	११.००
78	,, ,, सुन्दरकाण्ड, मूलमात्रम्	१०.०० □	२.००
452	,, ,, अंग्रेजी अनुवाद-सहित भाग—१	६०.०० □	८.००
453	,, ,, भाग—२	६०.०० □	८.००
454	,, ,, भाग—३	६५.०० □	९.००
74	**अध्यात्मरामायण**—सटीक, सचित्र, सजिल्द	□	
223	**मूल रामायण**—	□	
	अन्य तुलसीकृत साहित्य—		
105	**विनयपत्रिका**—सरल भावार्थ-सहित	१३.०० □	२.००
106	**गीतावली**— ,, ,,	१२.०० □	२.००
107	**दोहावली**—सानुवाद	५.०० □	१.००
108	**कवितावली**— ,,	६.५० □	१.००
109	**रामाज्ञाप्रश्न**—सरल भावार्थ-सहित	२.०० □	१.००
110	**श्रीकृष्णगीतावली**— ,, ,,	३.०० □	१.००
111	**जानकीमंगल**— ,, ,,	२.०० □	१.००
112	**हनुमानबाहुक**—सानुवाद	१.५० □	१.००
113	**पार्वतीमंगल**—सरल भावार्थ-सहित	१.५० □	१.००
114	**वैराग्यसंदीपनी**— ,, ,,	०.५० □	१.००
115	**बरवै रामायण**— ,, ,,	०.५० □	१.००
	पुराण, उपनिषद् आदि		
	श्रीमद्भागवत-सुधासागर—सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका		
28	भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	५५.०० □	९.००
25	,, ,, बृहदाकार, बड़े टाइपोंमें ,,	१३५.०० □	२५.००
26	**श्रीमद्भागवत-महापुराण**–सटीक—सचित्र, सजिल्द (प्रथम खण्ड)	६०.०० □	१०.००
	श्रीमद्भागवत-महापुराण–सटीक– सचित्र, सजिल्द		
27	(द्वितीय खण्ड)	६०.०० □	९.००
564	,, ,, ,, अंग्रेजी (प्रथम खण्ड)	□	
565	,, ,, ,, ,, (द्वितीय खण्ड)	२०.०० □	५.००
29	,, ,, ,, मूल, मोटा टाइप	४०.०० □	६.००
	श्रीप्रेम-सुधासागर—श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्धका		
30	भाषानुवाद, सचित्र, सजिल्द	२०.०० □	४.००
31	**भागवत एकादश स्कन्ध**—सचित्र, सजिल्द	५.०० □	२.००
	महाभारत—हिन्दी टीका-सहित, सजिल्द, सचित्र		
32	प्रथम खण्ड [आदिपर्व और सभापर्व]	□	
33	,, ,, द्वितीय खण्ड [वन और विराटपर्व]	□	
34	,, ,, तृतीय खण्ड [उद्योग और भीष्मपर्व]	६५.०० □	१०.००
35	,, ,, चतुर्थ खण्ड [द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक और स्त्रीपर्व]	७५.०० □	१२.००
36	,, ,, पञ्चम खण्ड [शान्तिपर्व]	□	
	,, ,, षष्ठ खण्ड [अनुशासन, आश्वमेधिक		

जय श्रीरामके चित्र कम-से-कम १०० प्रति ही भेजे जा सकते हैं। फुटकर भेजनेमें चित्रोंके खराब होनेकी सम्भावना है। गीता दैनन्दिनी २०.०० रु॰ वाली १०० प्रतिके कार्टूनमें भी उपलब्ध है।

कोड		मूल्य	डाकखर्च
37	**महाभारत**— आश्रमवासिक,मौसल,महा-प्रस्थानिक और स्वर्गारोहणपर्व]	६५.०० □	११.००
38	**महाभारत-खिलभाग हरिवंशपुराण**—हिन्दी टीका	७०.०० □	११.००
39	**संक्षिप्त महाभारत**— (प्रथम खण्ड) केवल भाषा, सचित्र, सजिल्द	४५.०० □	९.००
511	,, ,, (द्वितीय खण्ड) ,,	४५.०० □	८.००
44	**संक्षिप्त पद्मपुराण**—सचित्र, सजिल्द	५५.०० □	८.००
45	**संक्षिप्त शिवपुराण**—सचित्र,सजिल्द	४०.०० □	६.००
539	**संक्षिप्त मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क**—	६५.०० □	९.००
46	**संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत**—केवल भाषा	५०.०० □	७.००
48	**श्रीविष्णुपुराण**—सानुवाद, सचित्र, सजिल्द	४५.०० □	६.००
47	**पातञ्जलयोग-प्रदीप**—पातञ्जलयोग-सूत्रोंका वर्णन	४५.०० □	७.००
517	**गर्गसंहिता**—भगवान् कृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन, सचित्र, सजिल्द	४५.०० □	७.००
279	**स्कन्दपुराण**—सचित्र, सजिल्द	८०.०० □	११.००
66	**ईशादि नौ उपनिषद्**—अन्वय-हिन्दी व्याख्या-सहित	□	
67	**ईशावास्योपनिषद्**—सानुवाद, शांकरभाष्य	२.०० □	१.००
68	**केनोपनिषद्**— ,, ,,	५.५० □	१.००
578	**कठोपनिषद्**— ,, ,,	६.५० □	१.००
69	**माण्डूक्योपनिषद्**— ,, ,,	११.०० □	१.००
513	**मुण्डकोपनिषद्**— ,, ,,	५.०० □	१.००
70	**प्रश्नोपनिषद्**— ,, ,,	५.०० □	१.००
71	**तैत्तिरीयोपनिषद्**— ,, ,,	९.५० □	१.००
582	**छान्दोग्य-उपनिषद्**— ,, ,,	४५.०० □	७.००
577	**वृहदारण्यक-उपनिषद्**— ,, ,,	६०.०० □	१०.००
72	**ऐतरेयोपनिषद्**— ,, ,,	४.०० □	१.००
73	**श्वेताश्वतरोपनिषद्**— ,, ,,	१०.०० □	२.००
65	**वेदान्त-दर्शन**—हिन्दी व्याख्या-सहित, सजिल्द	१८.०० □	४.००
135	**पातञ्जलयोगदर्शन**— ,, ,,	□	
201	**मनुस्मृति दूसरा अध्याय सानुवाद**	□	
	भक्तचरित्र		
40	**भक्तचरिताङ्क**—सचित्र, सजिल्द	६०.०० □	९.००
51	**श्रीतुकाराम-चरित**—जीवनी और उपदेश	□	
53	**भागवतरत्न प्रह्लाद**—	७.५० □	२.००
123	**चैतन्य-चरितावली**—खण्ड-१	□	
124	,, ,, खण्ड-२	६.०० □	२.००
125	,, ,, खण्ड-३	६.०० □	२.००
126	,, ,, खण्ड-४	□	
127	,, ,, खण्ड-५	□	
167	**भक्त भारती**—	□	
168	**भक्त नरसिंह मेहता**—	५.५० □	१.००
169	**भक्त बालक**—गोविन्द-मोहन आदिकी गाथा	२.५० □	१.००
170	**भक्त नारी**—मीरा, शबरी आदिकी गाथा	३.०० □	१.००
171	**भक्त पञ्चरत्न**—रघुनाथ-दामोदर आदिकी भक्तगाथा	३.५० □	१.००
172	**आदर्श भक्त**—शिवि, रन्तिदेव आदिकी गाथा	३.५० □	१.००
173	**भक्त सप्तरत्न**—दामा, रघु आदिकी भक्तगाथा	३.०० □	१.००
174	**भक्त चन्द्रिका**—सखू, विट्ठल आदि छः भक्तगाथा	३.०० □	१.००
175	**भक्त-कुसुम**—जगन्नाथ आदि छः भक्तगाथा	३.५० □	१.००
176	**प्रेमी भक्त**—बिल्वमंगल, जयदेव आदि पाँच भक्तगाथा	३.०० □	१.००
177	**प्राचीन भक्त**—मार्कण्डेय, उत्तङ्क आदि १५ भक्तगाथा	५.०० □	१.००
178	**भक्त सरोज**—गङ्गाधरदास, श्रीधर आदि दस भक्तगाथा	३.५० □	१.००
179	**भक्त सुमन**—नामदेव, राँका-बाँका आदि भक्तगाथा	३.५० □	१.००
180	**भक्त सौरभ**—व्यासदास, प्रयागदास आदि भक्तगाथा	३.५० □	१.००
181	**भक्त सुधाकर**—रामचन्द्र, लाखा आदि भक्तगाथा	□	

कोड		मूल्य	डाकखर्च
182	**भक्त महिलारत्न**—रानी रत्नावती, हरदेवी आदि भक्तगाथा	३.५० □	१.००
183	**भक्त दिवाकर**—सुव्रत, वैश्वानर आदि आठ भक्तगाथा	३.५० □	१.००
184	**भक्त रत्नाकर**—माधवदास, विमलतीर्थ आदि चौदह भक्तगाथा	३.५० □	१.००
185	**भक्तराज हनुमान्**—हनुमान्‌जीका जीवनचरित्र	२.५० □	१.००
186	**सत्यप्रेमी हरिश्चन्द्र**—	२.०० □	
187	**प्रेमी भक्त उद्धव**—	□	
188	**महात्मा विदुर**—	२.०० □	१.००
189	**भक्तराज ध्रुव**—	२.०० □	
537	**बालचित्रमय बुद्धलीला**—चित्रोंमें	२.५० □	
194	,, **चैतन्यलीला**— ,,	२.५० □	
292	**नवधा भक्ति**—भरतजीमें नवधा भक्ति-सहित	२.५० △	१.००
385	**नारदभक्तिसूत्र**—सानुवाद	१.२५ △	१.००
330	**नारदभक्तिसूत्र**—सानुवाद (बँगला)	१.२५ △	१.००
121	**एकनाथ-चरित्र**—	४.०० □	१.००
516	**आदर्श चरितावली**—पृष्ठ ६४	२.५० □	१.००
396	**आदर्श ऋषिमुनि**— (,, ,,)	२.५० □	१.००
397	**आदर्श देशभक्त**— (,, ,,)	२.५० □	१.००
398	**आदर्श सम्राट**— (,, ,,)	२.५० □	१.००
399	**आदर्श संत**— (,, ,,)	२.५० □	१.००
402	**सुधारक संत**— (,, ,,)	२.५० □	१.००
136	**विदुरनीति**—पृष्ठ-सं० १४४	५.०० □	२.००
138	**भीष्मपितामह**—पृष्ठ-सं० १३६	४.५० □	१.००
	परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके शीघ्र कल्याणकारी प्रकाशन—		
527	**प्रेमयोगका तत्त्व**—(हिन्दी)	६.०० △	२.००
521	,, ,, (अंग्रेजी अनुवाद)	४.०० △	२.००
528	**ज्ञानयोगका तत्त्व**—(हिन्दी)	६.०० △	२.००
520	,, ,, (अंग्रेजी अनुवाद)	५.०० △	२.००
266	**कर्मयोगका तत्त्व**—(भाग-१)	४.०० △	१.००
267	,, ,, (भाग-२)	४.०० △	१.००
303	**प्रत्यक्ष भगवद्दर्शनके उपाय**—(भ० यो० त० भाग १)	४.०० △	१.००
298	**भगवान्‌के स्वभावका रहस्य**—(भ० यो० त० भाग २)	३.५० △	१.००
242	**महत्त्वपूर्ण शिक्षा**—पृष्ठ ३५८	६.०० △	२.००
243	**परम-साधन**—भाग-१, पृष्ठ १९२	४.०० △	२.००
244	,, भाग-२, पृष्ठ १६०	३.५० △	२.००
245	**आत्मोद्धारके साधन**—भाग-१ पृष्ठ ४६४	४.०० △	२.००
335	**अनन्यभक्तिसे भगवत्प्राप्ति**—(आ० सा० भाग २)	४.०० △	१.००
579	**अमूल्य समयका सदुपयोग**—	३.०० △	१.००
246	**मनुष्यका परम कर्तव्य**—भाग-१, पृष्ठ १९२	४.०० △	२.००
247	,, ,, भाग-२, ,,	४.०० △	२.००
588	**अपात्रको भी भगवत्प्राप्ति**—	४.०० △	१.००
248	**कल्याणप्राप्तिके उपाय**—तत्त्वचिन्तामणि भाग-१	५.०० △	२.००
275	,, ,, ,, (बँगला)	६.०० △	२.००
249	**शीघ्र कल्याणके सोपान**—त०चि०म० भाग-२, खण्ड-१	४.०० △	२.००
250	**ईश्वर और संसार**— ,, भाग-२, खण्ड-२	४.५० △	२.००
519	**अमूल्य शिक्षा**— ,, भाग-३, खण्ड-१	३.५० △	
253	**धर्मसे लाभ अधर्मसे हानि**– ,, भाग-३,खण्ड-२	३.५० △	२.००
251	**अमूल्य वचन**— ,, भाग-४, खण्ड-१	४.०० △	२.००
252	**भगवद्दर्शनकी उत्कण्ठा**— ,, खण्ड-२	४.०० △	२.००
254	**व्यवहारमें परमार्थकी कला**— ,, भाग-५, खण्ड-१	४.०० △	२.००
255	**श्रद्धा-विश्वास और प्रेम**— ,, भाग-५, खण्ड-२	४.०० △	२.००
258	**तत्त्वचिन्तामणि**— ,, भाग-६, खण्ड-१	४.५० △	२.००
257	**परमानन्दकी खेती**— ,, भाग-६, खण्ड-२	४.०० △	२.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
260	समता अमृत और विषमता विष—भाग-७, खण्ड—१	४.००	△	२.००
259	भक्ति-भक्त-भगवान्— ,, भाग-७, खण्ड-२	४.००	△	२.००
256	आत्मोद्धारके सरल उपाय—पृष्ठ २१४	४.००	△	२.००
261	भगवान्‌के रहनेके पाँच स्थान—पृष्ठ ५४	२.००	△	१.००
262	रामायणके कुछ आदर्श पात्र—पृष्ठ २१४	२.५०	△	१.००
264	मनुष्य-जीवनकी सफलता—भाग-१, पृष्ठ १४४	४.००	△	२.००
265	,, ,, भाग-२, पृष्ठ १४४	३.५०	△	२.००
268	परमशान्तिका मार्ग—भाग-१, पृष्ठ १७६	४.००	△	२.००
269	,, ,, भाग-२, पृष्ठ १९२	४.००	△	२.००
272	स्त्रियोंके लिये कर्तव्य शिक्षा—पृष्ठ १६०	३.००	△	१.००
273	नल-दमयन्ती—पृष्ठ ७२	२.००	△	१.००
263	महाभारतके कुछ आदर्श पात्र—पृष्ठ १९२	२.५०	△	१.००
274	महत्त्वपूर्ण चेतावनी—पृष्ठ ११२	२.५०	△	१.००
276	परमार्थ-पत्रावली—बँगला, प्रथम भाग	२.५०	△	१.००
277	उद्धार कैसे हो ?—५१ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ ११२	२.५०	△	१.००
278	सच्ची सलाह—८० पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ १७२	३.००	△	१.००
280	साधनोपयोगी पत्र—७२ पत्रोंका संग्रह	४.००	△	१.००
281	शिक्षाप्रद पत्र—७० पत्रोंका संग्रह	४.००	△	२.००
282	पारमार्थिक पत्र—९१ पत्रोंका संग्रह, पृष्ठ २१४	१.२५	△	१.००
284	आध्यात्म-विषयक पत्र—५४ पत्रोंका संग्रह	३.००	△	१.००
283	शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ—११ कहानियोंका संग्रह	२.५०	△	१.००
480	,, ,, (अंग्रेजी)	२.५०	△	१.००
320	वास्तविक त्याग—पृष्ठ ११२	२.५०	△	१.००
285	आदर्श भ्रातृप्रेम—पृष्ठ ९६	२.००	△	१.००
286	बालशिक्षा—पृष्ठ ६४	१.५०	△	१.००
287	बालकोंके कर्तव्य—पृष्ठ ८८	२.००	△	१.००
290	आदर्श नारी सुशीला—पृष्ठ ४८	१.२५	△	१.००
312	आदर्श नारी सुशीला—(बँगला)	१.२५	△	१.००
291	आदर्श देवियाँ—पृष्ठ १२८	१.२५	△	१.००
293	सच्चा सुख और उसकी प्राप्तिके उपाय—	०.७५	△	१.००
294	संत-महिमा—पृष्ठ ६४	०.७५	△	१.००
295	सत्संगकी कुछ सार बातें—(हिन्दी)	०.७५	△	१.००
296	,, ,, (बँगला)	०.५०	△	१.००
299	ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप—पृष्ठ ६०	२.००	△	१.००
300	नारीधर्म—पृष्ठ ४०	१.५०	△	१.००
301	भारतीय संस्कृति तथा शास्त्रोंमें नारीधर्म—	१.००	△	१.००
310	सावित्री और सत्यवान—पृष्ठ २८	१.००	△	१.००
302	श्रीप्रेमभक्ति प्रकाश—पृष्ठ १६	१.००	△	१.००
304	गीता पढ़नेके लाभ—	०.५०	△	१.००
305	गीताका तात्त्विक विवेचन एवं प्रभाव—	१.२५	△	१.००
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय—पृष्ठ ९६ (कल्याण प्राप्तिकी कई युक्तियाँ)	१.००	△	१.००
311	परलोक और पुनर्जन्म—(वैराग्य-सहित)	१.००	△	१.००
317	अवतारका सिद्धान्त—पृष्ठ ६४	०.७५	△	१.००
306	भगवान् क्या हैं ?—पृष्ठ ४८	०.५०	△	१.००
307	भगवान्‌की दया—पृष्ठ ४८	०.५०	△	१.००
308	सामयिक चेतावनी—	०.५०	△	१.००
313	सत्यकी शरणसे मुक्ति	०.५०	△	१.००
314	व्यापार-सुधारकी आवश्यकता, मुक्ति	०.५०	△	१.००
315	चेतावनी—	०.५०	△	१.००
316	ईश्वर-साक्षात्कार—नाम-जप सर्वोपरि साधन है		△	
318	ईश्वर दयालु और न्यायकारी है—	०.५०	△	१.००
270	हेतुरहित भगवान्‌का सौहार्द—पृष्ठ ३२	०.५०	△	१.००
271	भगवत्प्रेमकी प्राप्ति कैसे हो ?—पृष्ठ ३२	०.५०	△	१.००

कोड		मूल्य		डाकखर्च
319	हमारा कर्तव्य—पृष्ठ ३२	०.५०	△	१.००
321	त्यागसे भगवत्प्राप्ति—(गजलगीतासहित)	०.५०	△	१.००
326	प्रेमका सच्चा स्वरूप—	०.५०	△	१.००
329	शोक-नाशके उपाय—	०.५०	△	१.००
322	महात्मा किसे कहते हैं ?—		△	
323	ज्ञानयोगके अनुसार विविध साधन		△	
324	श्रीमद्भगवद्गीताका प्रभाव—		△	
328	चतुःश्लोकी भागवत	०.३०	△	१.००
327	तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य कुछ उपयोगी बातें—		△	
309	भगवत्प्राप्तिके विविध उपाय—		△	

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी) के अनमोल प्रकाशन

कोड		मूल्य		डाकखर्च
050	पदरत्नाकर—पृष्ठ-सं० ९७६	३५.००	□	५.००
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन—		□	
058	अमृत-कण—	१२.००	□	३.००
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता—पृष्ठ-सं० ४४८	१२.००	□	३.००
333	सुख-शान्तिका मार्ग—पृष्ठ ३०४	८.५०	□	२.००
343	मधुर—	९.००	□	२.००
056	मानव-जीवनका लक्ष्य—पृष्ठ २४०	८.००	□	२.००
331	सुखी बननेके उपाय—पृष्ठ २५६	८.००	□	२.००
334	व्यवहार और परमार्थ—पृष्ठ २९६	८.००	△	२.००
336	नारीशिक्षा—पृष्ठ १५२	४.५०	△	१.००
514	दुःखमें भगवत्कृपा—पृष्ठ-सं० २२४	७.५०	△	२.००
386	सत्संग-सुधा—पृष्ठ २२४	७.००	△	२.००
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल	८.००	△	२.००
347	तुलसीदल—पृष्ठ २९४	८.००	△	२.००
337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श—पृष्ठ १४४	५.००	△	१.००
339	सत्संगके बिखरे मोती—	६.५०	△	२.००
340	श्रीरामचिन्तन—पृष्ठ १८४	५.५०	△	२.००
338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन—पृष्ठ २३२	७.५०	△	२.००
345	भवरोगकी रामबाण दवा—पृष्ठ १४४	४.५०	△	१.००
346	सुखी बनो—पृष्ठ १२८	४.५०	△	१.००
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू संस्कृति—	४.००	△	२.००
350	साधकोंका सहारा—पृष्ठ ४४०	४.००	△	२.००
351	भगवच्चर्चा भाग—५	५.००	△	१.००
352	पूर्ण समर्पण—	५.००	△	१.००
341	प्रेमदर्शन—पृष्ठ-सं० १७६	६.००	△	२.००
353	लोक-परलोकका सुधार—(कामके पत्र) (भाग-१)	२.००	△	१.००
354	आनन्दका स्वरूप—पृष्ठ २६०	२.५०	△	१.००
355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर— '' २९२	३.००	△	१.००
356	शान्ति कैसे मिले ?—(लो० प० सुधार भाग—४)	८.००	△	२.००
357	दुःख क्यों होते हैं ?—	३.००	△	१.००
358	कल्याण-कुंज—भाग-१, पृष्ठ १३२	४.५०	△	१.००
359	,, भाग-२		△	
360	,, भाग-३		△	
361	मानव-कल्याणके साधन— (क० कु० भाग-४)	८.००	△	२.००
362	दिव्य सुखकी सरिता— (क० कु० भाग-५)	३.५०	△	१.००
363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ—(,, भाग-६)	४.००	△	१.००
364	परमार्थकी मन्दाकिनी— (,, भाग ७)	३.५०	△	१.००
387	प्रेम-सत्संग-सुधा-माला—पृष्ठ २०८	७.००	△	१.००
365	गोसेवाके चमत्कार—(तमिल)	३.५०	△	१.००
366	मानव-धर्म—पृष्ठ ९५	३.५०	△	१.००
367	दैनिक कल्याण-सूत्र—पृष्ठ ८२	३.००	△	२.००
368	प्रार्थना—इक्कीस प्रार्थनाओंका संग्रह	१.००	△	१.००
369	गोपीप्रेम—		△	

कोड	मूल्य		डाकखर्च
370 **श्रीभगवन्नाम**—	१.००	△	१.००
371 **राधा-माधव-रस-सुधा**—सटीक, व्रजभाषामें		△	
372 ,, ,, —गुटका		△	
373 **कल्याणकारी आचरण**—(जीवनमें पालन करने योग्य)	१.५०	△	१.००
374 **साधन-पथ**—सचित्र	०.७५	△	१.००
375 **वर्तमान शिक्षा**—		△	
376 **स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी**—पृष्ठ ४८	२.००	△	१.००
377 **मनको वश करनेके कुछ उपाय**—	०.८०	△	१.००
378 **आनन्दकी लहरें**—	१.००	△	१.००
379 **गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य**—	०.५०	△	१.००
380 **ब्रह्मचर्य**—		△	
381 **दीनदुखियोंके प्रति कर्तव्य**—	०.८०	△	१.००
382 **सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन**—	१.००	△	१.००
384 **विवाहमें दहेज**—		△	
348 **नैवेद्य**—	२.५०	△	१.००
344 **उपनिषदोंके चौदह रत्न**—	२.००	△	१.००
383 **भगवान् श्रीकृष्णकी कृपा**—			

परम श्रद्धेय स्वामी रामसुखदासजीके कल्याणकारी प्रवचन

कोड	मूल्य		डाकखर्च
400 **कल्याण-पथ**—पृष्ठ १६०	५.५०	△	१.००
401 **मानसमें नाम-वन्दना**—पृष्ठ १६०	५.००	△	१.००
403 **जीवनका कर्तव्य**—पृष्ठ १७६	५.००	△	१.००
436 **कल्याणकारी प्रवचन**—(हिन्दी)	४.००	△	१.००
404 ,, ,, —(गुजराती)	४.००	△	१.००
405 **नित्ययोगकी प्राप्ति**—पृष्ठ १२८	४.५०	△	१.००
407 **भगवत्प्राप्तिकी सुगमता**—पृष्ठ १३६	४.५०	△	१.००
408 **भगवान्से अपनापन**— ,, ९६	३.५०	△	१.००
409 **वास्तविक सुख**—पृष्ठ ११२	४.००	△	१.००
410 **जीवनोपयोगी प्रवचन**—पृष्ठ १५४	४.५०	△	१.००
411 **साधन और साध्य**—पृष्ठ ९०	३.५०	△	१.००
412 **तात्त्विक प्रवचन**—(हिन्दी) पृष्ठ ९६	३.५०	△	१.००
413 ,, ,, —(गुजराती) पृष्ठ १२०	४.००	△	१.००
414 **तत्त्वज्ञान कैसे हो ?**—पृष्ठ १२०	४.००	△	१.००
415 **किसानोंके लिये शिक्षा**—	१.२५	△	१.००
416 **जीवनका सत्य**—पृष्ठ ९६	३.५०	△	१.००
417 **भगवन्नाम**—पृष्ठ ७२	२.५०	△	१.००
418 **साधकोंके प्रति**—पृष्ठ ९६	३.५०	△	१.००
419 **सत्संगकी विलक्षणता**—पृष्ठ ६८	२.५०	△	१.००
420 **मातृशक्तिका घोर अपमान**—पृष्ठ ४०	२.००	△	१.००
421 **जिन खोजा तिन पाइयाँ**—पृष्ठ १०४	३.५०	△	१.००
422 **कर्मरहस्य**—(हिन्दी)	२.५०	△	१.००
423 ,, (तमिल)	३.००	△	१.००
424 **वासुदेवः सर्वम्**—पृष्ठ ६८	२.५०	△	१.००
425 **अच्छे बनो**—पृष्ठ ८८	३.००	△	१.००
426 **सत्संगका प्रसाद**—पृष्ठ ८८	३.००	△	१.००
431 **स्वाधीन कैसे बनें?**—पृष्ठ ४८	२.००	△	१.००
427 **गृहस्थमें कैसे रहें ?**—(हिन्दी)	४.००	△	१.००
428 ,, ,, —(बँगला)	३.००	△	१.००
429 ,, ,, —(मराठी)	६.००	△	१.००
128 **गृहस्थमें कैसे रहें ?**—(कन्नड़)	२.७५	△	१.००
430 ,, ,, —(उड़िया)	३.५०	△	१.००
472 ,, ,, —(अंग्रेजी)	३.००	△	१.००
432 **एकै साधे सब सधै**—पृष्ठ ८०	३.००	△	१.००
433 **सहज साधना**— ,, ६४	२.५०	△	१.००
434 **शरणागति**—(हिन्दी)	२.५०	△	१.००
568 ,, —(तमिल)	३.००	△	१.००

कोड	मूल्य		डाकखर्च
589 **भगवान् और उनकी भक्ति**	४.००	△	१.००
435 **आवश्यक शिक्षा**—	१.५०	△	१.००
515 **सर्वोच्चपदकी प्राप्तिका साधन**—	१.२५	△	१.००
438 **दुर्गतिसे बचो**—(हिन्दी)	१.००	△	१.००
449 ,, —(बँगला)	१.७५	△	१.००
439 **महापापसे बचो**—(हिन्दी)	१.००	△	१.००
451 ,, ,, —(बँगला)	०.८०	△	१.००
549 ,, ,, —(उर्दू)	१.२५	△	१.००
440 **सच्चा गुरु कौन ?**—	१.००	△	१.००
553 ,, ,, (बँगला)		△	
441 **सच्चा आश्रय**—	०.८०	△	१.००
442 **संतानका कर्तव्य**—(हिन्दी)	०.८०	△	१.००
443 ,, ,, —(बँगला)	०.८०	△	१.००
444 **नित्य-स्तुतिः**—	०.८०	△	१.००
445 **हम ईश्वरको क्यों मानें ?**—(हिन्दी)	०.८०	△	१.००
450 ,, ,, (बँगला)	१.२५	△	१.००
554 ,, ,, (नेपाली)		△	
446 **आहार-शुद्धि**—(हिन्दी)	०.८०	△	१.००
551 **आहार-शुद्धि**—(तमिल)	१.००	△	१.००
447 **मूर्तिपूजा**—(हिन्दी)	०.८०	△	१.००
469 ,, —(बँगला)	०.८०	△	१.००
569 ,, —(तमिल)	१.००	△	१.००
448 **नाम-जपकी महिमा**—(हिन्दी)	०.८०	△	१.००
550 ,, ,, —(तमिल)	१.००	△	१.००

नित्यपाठ साधन-भजन-हेतु

कोड	मूल्य		डाकखर्च
052 **स्तोत्ररत्नावली**—सानुवाद	९.००	□	२.००
117 **दुर्गासप्तशती**—मूल, मोटा टाइप	८.००	□	२.००
118 ,, ,, —सानुवाद	७.५०	□	२.००
489 ,, ,, —सजिल्द	१०.००	□	२.००
206 **विष्णुसहस्रनाम**—सटीक	२.००	□	१.००
226 ,, ,, —मूलपाठ	०.५०	□	२.००
207 **रामस्तवराज और रामरक्षास्तोत्र**—		□	
211 **आदित्य-हृदयस्तोत्रम्**—हिन्दी-अंग्रेजी-अनुवादसहित	०.७५	□	१.००
224 **श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र**—भक्त बिल्वमंगलरचित (सानुवाद)	२.००	□	१.००
524 **ब्रह्मचर्य और संध्या-गायत्री**—पृष्ठ ४८	१.५०	□	१.००
231 **रामरक्षास्तोत्रम्**—	०.७५	□	१.००
235 **सौभाग्याष्टोत्तरशतनामस्तोत्र**—		□	
202 **गंगासहस्रनामस्तोत्र**—	१.००	□	१.००
495 **दत्तात्रेय-वज्रकवच**—सानुवाद	१.५०	□	१.००
229 **नारायणकवच**—सानुवाद	०.७५	□	१.००
230 **अमोघशिवकवच**—सानुवाद	१.००	□	१.००
563 **शिवमहिम्नस्तोत्र**—	०.७५	□	१.००
054 **भजन-संग्रह**—पाँचों भाग एक साथ	१५.००	□	४.००
063 **पद-पद्माकर**—		□	
140 **श्रीकृष्णलीला-भजनावली**—१९१ भजनसंग्रह	४.५०	□	१.००
141 **श्रीरामलीला-भजनावली**—१३७ ,,	४.००	□	१.००
142 **चेतावनी-पद-संग्रह**—भाग-१	४.५०	□	१.००
143 ,, ,, भाग-२	४.००	□	१.००
144 **भजनामृत**—६७ भजनोंका संग्रह	३.५०	□	१.००
153 **आरती-संग्रह**—१०२ आरतियोंका संग्रह	३.००	□	१.००
208 **सीतारामभजन**—	०.७५	□	१.००
221 **हरेरामभजन**—दो माला (गुटका)		□	
222 ,, ,, —१४ माला		□	

कोड		मूल्य		डाकखर्च
225	गजेन्द्रमोक्ष—सानुवाद, हिन्दी पद्य, भाषानुवाद	०.७५	□	१.००
227	हनुमानचालीसा—	०.७५	□	१.००
228	शिवचालीसा—	०.७५	□	१.००
203	अपरोक्षानुभूति—	१.००	□	१.००
204	गीताप्रेस-लीला-चित्रमन्दिर-दोहावली—	१.००	□	१.००
205	गीताभवन-दोहा-संग्रह—	१.००	□	१.००
139	नित्यकर्म-प्रयोग—	६.००	□	२.००
210	सन्ध्योपासनविधि—मन्त्रानुवादसहित	१.२५	□	१.००
220	तर्पण एवं बलिवैश्वदेवविधि—मन्त्रानुवादसहित	०.५०	□	१.००
232	श्रीरामगीता—		□	
233	दोहावलीके चालीस दोहे—		□	
61	सूरविनयपत्रिका—		□	
509	सूक्ति-सुधाकर—		□	
576	विनयपत्रिकाके ३५ पद—	१.५०	□	१.००
234	बलिवैश्वदेवविधि—	०.१०	□	१.००
236	साधकदैनन्दिनी—	१.००	□	१.००

पाठ्यपुस्तकें, बालकोपयोगी, स्त्रियोपयोगी एवं सर्वोपयोगी प्रकाशन

कोड		मूल्य		डाकखर्च
209	रामायण-मध्यमा-परीक्षा-पाठ्यपुस्तक—	०.७५	□	१.००
116	लघुसिद्धान्तकौमुदी—	१०.००	□	२.००
154	ज्ञानमणिमाला—	२.००	□	१.००
196	मननमाला—	१.२५	□	१.००
461	हिन्दी बालपोथी—(भाग-१)	१.२५	□	१.००
212	हिन्दी बालपोथी—(भाग-२)	२.५०	□	१.००
197	संस्कृतिमाला—भाग-१	२.००	□	१.००
198	,, ,, —भाग-२	१.५०	□	१.००
199	,, ,, —भाग-३		□	
200	,, ,, —भाग-४		□	
59	जीवनमें नया प्रकाश— (ले॰ रामचरण महेन्द्र)	८.००	□	२.००
60	आशाकी नयी किरणें— (,,)	९.००	□	२.००
119	अमृतके घूँट— (,,)	७.००	□	२.००
132	स्वर्णपथ— (ले॰ रामचरण महेन्द्र)	६.५०	□	२.००
55	महकते जीवनफूल— (,, ,,)		□	
57	मानसिक दक्षता—पृष्ठ २६४	१०.००	□	३.००
62	श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी—	६.००	□	२.००
64	प्रेमयोग—	४.००	□	१.००
103	मानस-रहस्य—	८.००	□	२.००
104	मानस-शंका-समाधान—पृष्ठ १६०	६.००	□	२.००
501	उद्धव-सन्देश—पृष्ठ २०८	७.५०	□	२.००
460	रामाश्वमेध—	१०.००	□	२.००
191	भगवान् कृष्ण—पृष्ठ ७२	२.५०	□	१.००
193	भगवान् राम— पृष्ठ ६४	२.५०	□	१.००
195	भगवान्पर विश्वास—	१.२५	□	१.००
120	आनन्दमय जीवन—	६.५०	□	२.००
133	विवेक-चूड़ामणि—	३.००	□	१.००
130	तत्त्वविचार—		□	
131	सुखी जीवन—	३.५०	□	१.००
190	बाल-चित्रमय कृष्णलीला—	४.००	□	२.००
192	बालचित्र-रामायण—(दोनों भाग)	२.५०	□	१.००
238	कन्हैया— (धारावाहिक चित्रकथा)	५.००	△	२.००
239	गोपाल— (,, ,,)	५.००	△	२.००
240	मोहन— (,, ,,)	५.००	△	२.००
241	श्रीकृष्ण—(,, ,,)	५.००	△	२.००
122	एक लोटा पानी—पृष्ठ १६०	५.००	□	२.००
134	सती द्रौपदी—पृष्ठ १३६	४.५०	□	२.००
137	उपयोगी कहानियाँ—पृष्ठ ९६	४.००	□	१.००
157	सती सुकला—	१.५०	□	१.००
158	महासती सावित्री—	१.५०	□	१.००
145	बालकोंकी बातें—पृष्ठ ९८	४.००	□	१.००
146	बड़ोंके जीवनसे शिक्षा—पृष्ठ ११२	३.५०	□	१.००
147	चोखी कहानियाँ—पृष्ठ ८०	३.००	□	१.००
148	वीर बालक—पृष्ठ ८०	३.००	□	१.००
149	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक—पृष्ठ ८०	३.००	□	१.००
150	पिताकी सीख—पृष्ठ १२४	४.५०	□	२.००
152	सच्चे ईमानदार बालक—पृष्ठ ७२	२.५०	□	१.००
155	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ—	२.५०	□	१.००
156	वीर बालिकाएँ—	२.५०	□	१.००
213	बालकोंकी बोलचाल—	१.५०	□	१.००
214	बालकके गुण—	२.००	□	१.००
215	आओ बच्चों तुम्हें बतायें—	२.००	□	१.००
216	बालककी दिनचर्या—	२.००	□	१.००
217	बालकोंकी सीख—	२.००	□	१.००
218	बाल-अमृत-वचन—	१.००	□	१.००
219	बालकके आचरण—	२.००	□	१.००
159	आदर्श उपकार— (पढ़ो, समझो और करो)	४.५०	□	२.००
160	कलेजेके अक्षर— (,, ,,)	४.५०	□	२.००
161	हृदयकी आदर्श विशालता— (,, ,,)	४.५०	□	२.००
162	उपकारका बदला— (,, ,,)	४.५०	□	२.००
163	आदर्श मानव-हृदय— (,, ,,)	४.५०	□	२.००
164	भगवान्के सामने सच्चा सो सच्चा— (,, ,,)	४.५०	□	२.००
165	मानवताका पुजारी— (,, ,,)	४.५०	□	२.००
166	परोपकार और सच्चाईका फल— (,, ,,)	४.५०	□	२.००
510	असीम नीचता और असीम साधुता—(,, ,,)	४.५०	□	२.००
129	एक महात्माका प्रसाद—	५.००	□	२.००
151	सत्संगमाला—पृष्ठ ७२	३.००	□	१.००

'कल्याण'के पुनर्मुद्रित विशेषाङ्क

कोड		मूल्य		डाकखर्च
040	भक्त-चरिताङ्क— (कल्याणवर्ष २६)	६०.००	□	९.००
041	शक्ति-अङ्क— (,, ,,९)	५०.००	□	८.००
572	परलोक एवं पुनर्जन्माङ्क—(,, ,,४३)	६५.००	□	८.००
587	सत्कथाङ्क— (,, ,,३०)	६५.००	□	८.००
042	हनुमान-अङ्क— (,, ४९)	४०.००	□	६.००
043	नारी-अङ्क— (,, २२)	५०.००	□	८.००
044	संक्षिप्त पद्मपुराण— (,, १९)	५५.००	□	८.००
045	,, शिवपुराण— (,, ३९)	४०.००	□	६.००
279	,, स्कन्दपुराण— (,, २५)	८०.००	□	१०.००
539	मार्कण्डेय-ब्रह्मपुराणाङ्क—(,, २१)	६५.००	□	७.००
518	हिन्दू-संस्कृति-अङ्क— (,, ,, २४)	७५.००	□	९.००
517	गर्ग-संहिता— (,, ४४ एवं ४५) [भगवान् श्रीराधाकृष्णकी दिव्य लीलाओंका वर्णन]	४५.००	□	७.००
573	बालक-अङ्क— (कल्याणवर्ष २७)	७०.००	□	९.००
046	संक्षिप्त श्रीमद्देवीभागवत—(,, ३४)	५०.००	□	७.००
028	श्रीभागवत-सुधासागर— (,, १६)	५५.००	□	९.००
574	संक्षिप्त योगवासिष्ठाङ्क— (,, ३५)	६५.००	□	९.००

कल्याण-कार्यालयसे प्राप्य पुराने विशेषाङ्क

कोड		मूल्य
500	योगतत्वाङ्क— (,, ६५)	५५.००
584	भविष्य-पुराणाङ्क—(,, ६६)	५५.००
586	शिवोपासनाङ्क— (,, ६७)	५५.००

Our English Publications

CODE		Price-Rs.	Postage
457	Shrimad Bhagavadgita—Tattvavivechani [With Sanskrit Text and English Commentary] *(By Jayadayal Goyandaka)* (Pages 736)	25·00 □	8·00
458	Shrimad Bhagavadgita—Sadhak-Sanjivani [With Sanskrit Text and English Commentary] *(By Swami Ramsukhdas)*(Pages 896)	32·00 □	8·00
0459	.. .. (Pocket-Size) Vol. I	20·00 □	2·00
0490	.. .. .. Vol. II	20·00 □	1·50
0493	Shrimad Bhagavadgita: The Gita–A Mirror (Pocket-Size) (Pages 700)	20·00 □	1·50
0455	Shrimad Bhagavadgita [With Sanskrit Text and English Translation] (Pocket-Size)	2·50 □	1·00
0470	Shrimad Bhagavadgita—Roman Gita [With Sanskrit Text, Transliteration and English Translation]	6·00 □	1·50
0487	Gita Madhurya *(By Swami Ramsukhdas)* (Pages 155)	6·00 □	1·00
0452	Shrimad Valmiki Ramayan [With Sanskrit Text and English Translation) Part I	60·00 □	8·00
0453	,, .. Part II	60·00 □	8·00
0454	,, .. Part III	65·00 □	8·50
0456	Shri Ramacharitamanas [With Hindi Text and English Translation]	45·00 □	8·50
	By Jayadayal Goyandka		
0477	Gems of Truth Vol. I (Pages 204)	4·00 △	1·00
0478	.. Vol. II (Pages 216)	2·00 △	1·00
479	Sure Steps to God-Realization (Pages 344)	2·50 △	1·00
481	Way to Divine Bliss (Pages 93)	2·50 △	1·00
482	What is Dharma ? What is God ? (Pages 64)	0·75 △	0·50
480	Instructive Eleven Stories (Pages 104)	2·50 △	1·00
520	Secret of Jnanayoga (Pages 272)	5·00 △	1·00
521	The Secret of Premayoga (Pages 184)	4·00 △	1·00
522	The Secret of Karmayoga (Pages)	0·00 △	0·00
	By Hanuman Prasad Poddar		
484	Look Beyond the Veil (Pages 208)	7·00 △	1·00
496	How to Attain Eternal Happiness ? (Pages 204)	0·00 △	0·00
483	Turn to God	0·00 △	0·00
486	The Divine Message	0·00 △	0·00
485	Path to Divinity (Pages 166)	6·00 △	1.00
	By Swami Ramsukhdas		
498	In Search of Supreme Abode (Pages 146)	4·00 △	1·00
471	Benedictory Discourses (Pages 192)	3·50 △	1·00
473	Art of Living (Pages 124)	3·00 △	1·00
472	How to Lead A Household Life (Pages 72)	3·00 △	1·00
570	Let us Know the Truth (Pages 92)	0·00 △	0·00
475	Divine Name (Pages 94)	2·00 △	1.00
474	Be Good	0·00 △	0·00
497	Truthfulness of Life	0·00 △	0·00
476	How to be Self-Reliant	1·00 △	0·50
552	Way to Attain the Supreme Bless	.80 △	1.00
494	The Immanence of God *(By Madanmohan Malaviya)*	0·30 □	0·50

अन्य भारतीय भाषाओंके प्रकाशन-भाषाक्रममें

कोड		मूल्य	डाकखर्च
	बँगला		
556	गीता-दर्पण—बँगला	२५.०० □	५.००
013	गीता-पदच्छेद—	१०.०० □	४.००
275	कल्याण-प्राप्तिके उपाय—(तत्त्वचिन्तामणि भाग-१)	६.०० △	२.००
395	गीतामाधुर्य—	५.०० △	२.००
428	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	३.०० △	१.००
276	परमार्थ-पत्रावली—भाग-१	२.५० △	१.००
449	दुर्गतिसे बचो—	१.०० △	१.००
450	हम ईश्वरको क्यों मानें—	१.२५ △	१.००
312	आदर्श नारी सुशीला—	१.२५ △	१.००
330	नारद-भक्ति-सूत्र—	१.२५ △	१.००
451	महापापसे बचो—	०.८० △	१.००
469	मूर्तिपूजा—	०.८० △	१.००
296	सत्संगकी सार बातें—	०.५० △	१.००
	मराठी		
7	साधकसंजीवनी टीका—	६०.०० □	१०.००
504	गीता-दर्पण—	२०.०० □	५.००
14	गीता-पदच्छेद—	१५.०० □	४.००
15	गीता माहात्म्यसहित—	१५.०० □	४.००
391	गीतामाधुर्य—	६.०० △	२.००
429	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	५.०० △	२.००
	नेपाली		
394	गीतामाधुर्य—	५.०० △	२.००
	गुजराती		
467	साधकसंजीवनी—	६०.०० □	१०.००
468	गीता-दर्पण—	२५.०० □	५.००
12	गीता-पदच्छेद—	१५.०० □	४.००
392	गीतामाधुर्य—	५.०० △	२.००
404	कल्याणकारी प्रवचन—	४.०० △	२.००
413	तात्त्विक प्रवचन—	४.०० △	२.००
	तमिल		
389	गीतामाधुर्य—	८.०० △	२.००
365	गोसेवाके-चमत्कार—	३.५० △	१.००
423	कर्मरहस्य—	३.०० △	१.००
568	शरणागति—	३.०० △	१.००
569	मूर्तिपूजा—	१.०० △	१.००
551	आहारशुद्धि—	१.०० △	१.००
550	नाम-जपकी महिमा—	१.०० △	१.००
	कन्नड़		
390	गीतामाधुर्य—	४.५० △	२.००
128	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	२.७५ △	२.००
	उड़िया		
430	गृहस्थमें कैसे रहें ?—	३.५० △	१.००
	उर्दू		
393	गीतामाधुर्य—	६.०० △	२.००
549	महापापसे बचो—	१.२५ △	१.००

बिक्री हेतु उपलब्ध चित्र

	मूल्य	(आकार सेमीमें)
जयश्रीराम—(भगवान् रामकी सम्पूर्ण लीलाओंका चित्रण)	१०.००	९० x ५८
हनुमानजी (भक्तराज हनुमान)	५.००	५८ x ४५
भगवान् विष्णु	५.००	५८ x ४५
लड्डू गोपाल—(भगवान् श्रीकृष्णका बालरूप) विशेष संस्करण	२०.००	५८ x ४५
लड्डू गोपाल (भगवान् श्रीकृष्णका बालरूप) सामान्य संस्करण	५.००	५८ x ४५

पंजीकृत-संख्या जी० आर०-१३

हनुमान्‌जीद्वारा भगवान् रामकी अनवरत उपासना

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासित-लोकाय नमः साधुवादनिकषणाय नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति।

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये॥
मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥
न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति॥
न जन्म नूनं महतो न सौभगं न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि नो वनौकसश्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥
सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं य उत्तराननयत् कोसलान् दिवमिति॥

(श्रीमद्भा० ५।१९।३-८)

हम ॐकारस्वरूप, पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं, आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं; आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज रामको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है। भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण किये जानेयोग्य नाम-रूपसे रहित और अहङ्कारशून्य हैं; मैं आपकी शरणमें हूँ। प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है। अन्यथा अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था। आप धीर पुरुषोंके आत्मा और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं। आपके ये व्यापार केवल लोकशिक्षाके लिये ही हैं। लक्ष्मणाग्रज! उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमेंसे कोई भी गुण आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखानेके लिये ही आपने इन सब गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है। देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी हो उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिये; क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्यधामको सिधारे थे, तब समस्त उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे।